





विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
<b>विष्णुस्मृति २.</b>		<b>अध्याय ६</b>	
<b>अध्याय १</b>		बौधे आश्रम ( सन्यास ) के धर्मका कथन	८०
— मरने कासकरनद्वारे प्रायश्चित्तका		<b>अध्याय ७</b>	
— सीसे धर्मके विषय प्रथम करना		संक्षेपसे योगशास्त्रका सार कथन	८२
— अनस्य द्विजसंस्कारोंके काल		<b>औशनसीस्मृति ४</b>	
— विचार उपवीतके अर्न्ततः	४९	जाति और वृत्तिका विधान और अनु- स्येन प्रतिषेधेन उत्सन्नदुःख जाति बोका विचार	८५
— अर्न्तक सामान्य नियम		<b>आगिरसस्मृति ५</b>	
<b>अध्याय २</b>	५२	चारों वर्णोंके गृहस्थ आदि आश्रमधर्मोंमें प्रायश्चित्तनियमिका निरूपण	९१
— उच्यते धर्मोका कथन		<b>यमस्मृति ६</b>	
<b>अध्याय ३</b>		महापाप तथा उपपापकादि दोषनिवृ- त्तिके लिये संक्षेपसे प्रायश्चित्तनि- यमिका निरूपण	९९
— श्रद्धेपाधा ) के धर्मोका	५५	<b>आपस्तवस्मृति ७</b>	
—		<b>अध्याय १</b>	
<b>अध्याय ४</b>		वाक्य गौ आदिके पावन करनेमें असाधपान्द्रसे उनको विपत्ति न जाय तो इस विषयमें प्रायश्चित्त वर्णन	११
— ये नियमोंका कथन	५६	<b>अध्याय २</b>	
<b>अध्याय ५</b>		अच्छोचनका विचार	११४
— और सूत्रके		<b>अध्याय ३</b>	
१ ३		विना जानेहुय अशुभके परमें मित्रास हो जानेपर विदित होय तो उस गृह पतिको करनेयोग्य प्रायश्चित्तका कथन तथा वाक्य गौ आदिके पापके परिहारेका उपाय	११५

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अध्याय ५.		खण्ड २.	
ब्राह्मण चांडालको स्पर्श कर जलपा- नादि करे उसका प्रायश्चित्त तथा उच्छिष्ट अन्न खानेमें प्रायश्चित्त	११८	वृद्धि ( नांदीमुख ) श्राद्धमें जो विशेष हो उसका कथन .. ....	१५९
अध्याय ६.		खण्ड ३.	
नीलीवस्त्रके धारण आदिमें प्रायश्चित्त	१२०	वृद्धिश्राद्धका विधान .. ...	१६०
अध्याय ७.		खण्ड ४.	
रजस्वलास्त्रीकी शुद्धिकी विचारणा	१२१	वृद्धिश्राद्धमें पिंडदानकी विधि ...	१६२
अध्याय ८.		खण्ड ५.	
काँसी आदि पात्रोंकी शुद्धि और शूद्रा- न्नभक्षणका प्रायश्चित्त ... ..	१२४	वृद्धिश्राद्ध कियेविना गर्भाधानादिसं- स्कारोंकी सांगता नहीं होती ...	१६३
अध्याय ९.		खण्ड ६	
भोजन करते २ अधोवायु वा मलत्याग होय उसकी शुद्धि तथा भक्षणके, चाटनेके, पीनेके और खानेके अयो- ग्य पदार्थके सेवनमें प्रायश्चित्त ..	१२५	अग्निके आधानकालका निरूपण ....	१६४
अध्याय १०.		खण्ड ७.	
क्रोधरहित क्षमाशील पुरुषको ही मोक्ष लाम होता है ... ..	१३१	दोनो अरणिका विचार ... .	१६६
संवर्तस्मृति ८.		खण्ड ८	
यज्ञोपवीत होनेपर ब्रह्मचारीका अवश्य कर्तव्य ... ..	१३३	दोनो अरणियोंको घिसनेसे अग्निकी उत्पत्ति होतीहै उसकी विधि ...	१६७
विवाहके अनंतर गृहस्थीके आचारका निरूपण .... ..	१३६	खण्ड ९,	
फलके साथ नानाविधदानोंका वर्णन	१३७	होमकालका कथन तथा विना प्रदीप्त- हुये अग्निमें हवन करनेसे दाष ...	१७०
वानप्रस्थ और सन्यासआश्रमके धर्मोंका निरूपण .. ... ..	१४३	खण्ड १०.	
ब्रह्महत्या आदि पातकोंका प्रायश्चित्त	१४४	स्नानयोग्य जलोंका विचार ...	१७२
क्रात्यायनस्मृति ९.		खण्ड ११.	
खण्ड १		संध्योपासनके विधिका निरूपण ..	१७३
यज्ञोपवीत बनानेकी विधि और वृद्धि- श्राद्धमें पूजनेयोग्य सोलह मातृका- नामका कथन ... ..	१५७	खण्ड १२.	
		पितरोंका तर्पण ... ..	१७५
		खण्ड १३	
		पाचयज्ञोंका विचार ... ..	१७७
		खण्ड १४.	
		बलिदानका विचार और अग्निकी प्रार्थना ... ..	१७८

## अष्टादशस्मृतियोंकी भूमिका ।

श्रुति स्मृतिश्च विमाणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।

काण स्यादकत्या हीनो द्वाभ्यामन्ध' प्रकीर्तित ॥

वेद और धर्मशास्त्र ब्राह्मणोंकी दाहिनी बाईं दो आँखें हैं, इनमेंसे किसी एक ( श्रुति वा स्मृति ) के न जाननेसे काना और दानोंके न जाननेसे ब्राह्मण अन्धा होता है अर्थात् बाहरकी आँख होनेपरभी न होनेके तुल्यही है ।

कर्तव्य विषयको जब आँख सुझादेती है सभी मनुष्य उसके करनेमें प्रवृत्त होता है । धर्मशास्त्र हमको यही शिक्षा देता है कि असुक कर्म कर्तव्य है, असुक नहीं ।

धर्मशास्त्रमात्रमें दिखाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका अधिकार है । महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि—“निषेकादि' श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधि' ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोस्मिन्सम्यक् नान्यस्य कस्यचित् ॥” अर्थात् गर्माधानसे लेकर मन्त्र्येष्टि ( मृत संस्कार ) पर्यन्त जिनकी सभी क्रिया वैदिक मन्त्रोंसे होती हैं उन्हीं मात्रका धर्मशास्त्रके पठने और तदनुसार कर्म करनेका अधिकार है दूसरे किसीका नहीं ।

पहिले भारतवर्षमें लोग अपने अपने कर्म करनेमें किसी प्रकार आसक्त नहीं करतेथे बल्कि यों कहिये राजनियमके अनुसार ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की जातीथी कि आप अपना धर्मपालन कीजिये उसमें जो पापार्थ उपस्थित होवैर्था राजा उनका निवारण करतेथे । मोक्षनाच्छादनादिकी तो कोई भी चिन्ता न थी ।

अब समयने ऐसा पल्ला खायो है कि दिखाति अपना कर्म धर्म भलीमार्ति कर नहीं सकते । कितनीही पराधीनता ऐसी आपकी है कि मनुष्य विवश है । ऐसी दशामें हम इतना अवश्य चाहते हैं कि प्रत्येक सनातन धर्मियोंको अपना अपना कर्तव्य तो मालूम होजाय जिसके अनुसार वह प्रथाशक्ति वर्तै ।

यह अष्टादशस्मृति धर्मका माण्डार है इनमें सभी विषय मिलेंगे जिनका यथाशक्ति आचरण करनाही दिनोंका कर्तव्य है । कोईभी विषय इसका छिद्र न रहजाय इसलिये हमने सुरादावाद निवासी पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीजीसे सरल उत्तम भाषाटीका करवाई है । आशा है कि, प्रत्येक गृहस्थ इस अत्यन्त उपयोगी धर्मग्रन्थको लेकर स्वकर्तव्य पालन करेंगे

खेमराज श्रीकृष्णदास, अण्ण्ड “श्रीबिहारीश्वर स्टीम् प्रेस—बंयई

भाषाटीकासमेत अष्टादशस्मृतिकी विषयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
<b>अत्रि स्मृति १.</b>			
लोगोंके हितके लिये मुनिजनोंका अत्रि- ऋषिसे प्रश्न, ऋषिका स्मृतिनामक धर्मशास्त्रको बनाना, इसके श्रवणप- ठनका फल ... ..	१	स्त्रियोंको प्रतिमास रज निकलनेसे सदा शुचित्वका कथन ... ..	२३
स्वर्णके अनुसार कर्म करनेसे लोकप्रि- यता होती है, चारों वर्णोंका कर्म और उनके उपजीविकाका विचार ब्राह्मण आदिको पतित करनेवाली क्रियाका कथन ... ..	२	मदिरासे लुये घडेमेंसे जलपानमें प्राय- श्चित्त, जूता, विद्या आदिसे दूषित कूपका जल पीनेसे प्रायश्चित्त ... ..	२५
क्षत्रियके कर्मका निरूपण, मलशुद्धिका कथन, ब्राह्मणोंका लक्षण ... ..	३	गोवधका प्रायश्चित्त ... ..	२७
इष्ट, पूर्व, यम, नियमादिका विवरण पुत्रकी प्रशंसा ... ..	४	दूषित जलके पानमें प्रायश्चित्त ... ..	२९
प्रमादसे या आलस्यसे संध्योलंघनमें प्रायश्चित्त ... ..	५	स्पर्शास्पर्शदोषका प्रायश्चित्त ... ..	३०
जूठा आदि भोजन करने में प्रायश्चित्त मुर्दा पढनेसे अपवित्र गृहकी शुद्धि ... ..	६	शूद्रके यहाँ का जल पानकरनेमें प्राय- श्चित्त .... ..	३१
सूतकनिर्णय ... ..	७	पतितका अन्न खानेमें ब्राह्मणको प्राय- श्चित्त ... ..	३२
परिवेत्ता और परिवित्ति इनके दोष कथन ... ..	८	पशु वेश्यागमन करनेमें प्रायश्चित्त .	३३
चाद्रायण कृच्छ्रातिकृच्छ्रका कथन ..	९	रजस्वला स्त्रीकी कुत्ता आदिके स्पर्श- से शुद्धि ... ..	३४
स्त्री और शूद्रोंको पतित करनेवाले क- र्मका कथन ... ..	१०	मूर्ख ब्राह्मणके मारनेमें प्रायश्चित्त ... ..	३५
भोजनमें निषिद्ध पात्र ... ..	११	बिल्लीआदिसे उच्छिष्ट अन्नके खानेमें प्रायश्चित्त, और ऊंट आदिके गाड़ी- पर बैठनेमें प्रायश्चित्त... ..	३६
छै. भिक्षुक होते हैं ... ..	१२	अभक्ष्य अन्नके भक्षणमें प्रायश्चित्त ... ..	३७
धोवी आदिके अन्नभक्षणमें प्रायश्चित्त और चांडाल आदिके अन्नभक्षणमें प्रायश्चित्त ... ..	१३	अमंगल पदार्थ खेवनका निषेध मौन करनेके स्थान और उसका फल ... ..	३९
	१४	वहुविध दानोंका फल .... ..	४०
	१५	दान देनेमें योग्य ब्राह्मण ... ..	४१
	१६	श्राद्धकाल, श्राद्धदानकी प्रशंसा और उसका फल ... ..	४२
	१७	दशविध ब्राह्मणोंका निरूपण ... ..	४५
	१८	दान देनेमें अयोग्य ब्राह्मणोंका कथन अत्रिजीने बनायी हुई स्मृतिके श्रवण पठनका फल .... ..	४६
	१९		४८
	२०		
	२१		

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
<b>विष्णुस्मृति २.</b>		<b>अध्याय ६</b>	
<b>अध्याय १</b>		शौच आश्रम ( सन्यास ) के धर्मका कथन	८०
कसापमगरमें वासकरनहारे आविर्भाव विष्णुजीसे धर्मोंके विषय प्रथम करना गर्मानसे द्विजसंस्कारोंके काष्ठ का विचार उपवीतके अनंतर ब्रह्मचारीके सामान्य नियम	४९	<b>अध्याय ७</b>	
<b>अध्याय २</b>		संक्षेपसे योगज्ञानका सार व धन	८२
गृहस्थियोंके उत्तम धर्मोंका कथन	५२	<b>औशनसीस्मृति ४</b>	
<b>अध्याय ३</b>		जाति और वृत्तिका विधान और मनु-ज्येष्ठ प्रतिज्येष्ठ उत्पन्नगृह जाति बौद्धा विचार	८५
शामप्रस्थ ( वननिवासी ) के धर्मोंका निरूपण	५५	<b>आगिरसस्मृति ५</b>	
<b>अध्याय ४</b>		चारों वर्णोंके गृहस्थ आदि आश्रमधर्मोंमें प्रायश्चित्तविविधिका निरूपण	९१
संन्यासीके संक्षेपसे नियमोंका कथन	५६	<b>यमस्मृति ६</b>	
<b>अध्याय ५</b>		महापाप तथा उपपातकादि दोषनिवृत्तिके लिये संक्षेपसे प्रायश्चित्तविविधिका निरूपण	९९
संक्षेपसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके धर्मोंका कथन	७	<b>आपस्तम्बस्मृति ७</b>	
<b>हारीतस्मृति ३</b>		<b>अध्याय १</b>	
<b>अध्याय १</b>		बाळक गौ आदिके पावन करनेमें कसापधानीसे इनको विपत्ति या काय तो इस विषयमें प्रायश्चित्त धर्मन	११
धर्मशास्त्रोंके धर्म जाननेके लिये मुनि-योंका हारीतनामक अधिसे प्रथम करना और हमसे आश्रमके आचाराका कथन	१३	<b>अध्याय २</b>	
<b>अध्याय २</b>		लक्ष्मणोपमका विचार	११४
क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके धर्मोंका कथन	१३	<b>अध्याय ३</b>	
<b>अध्याय ३</b>		विदा आनेद्वये उत्पन्नके धर्मों निवास होनासेपर विहित होय तो उस गृहपतिको करनेयोग्य प्रायश्चित्तका कथन तथा बाळक बृद्ध आदिके पापके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था	११५
पञ्चोपवीत होनेके उपरान्त ब्रह्मचारीके नियम	६८	<b>अध्याय ४</b>	
<b>अध्याय ४</b>		बाँझाके पुत्र अथवा बच्चे बरतनम कृष्णानसे अन्नपान करनेमें चारों वर्णोंको प्रायश्चित्तका कथन	११७
ब्राह्मविवाहसे स्त्रीका स्वीकारकरनेपर आचरने योग्य धर्मोंका निरूपण ..	७		
<b>अध्याय ५</b>			
धानप्रस्थधर्मोंका निरूपण	७८		

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अध्याय ५.		खण्ड २.	
ब्राह्मण चांडालको स्पर्श कर जलपा- नादि करे उसका प्रायश्चित्त तथा उच्छिष्ट अन्न खानेमें प्रायश्चित्त	११८	वृद्धि ( नांदीमुख ) श्राद्धमे जो विशेष हो उसका कथन . . . . .	१५९
अध्याय ६.		खण्ड ३.	
नीलीवस्त्रके धारण आदिमें प्रायश्चित्त	१२०	वृद्धिश्राद्धका विधान .. . . .	१६०
अध्याय ७.		खण्ड ४.	
रजस्वलास्त्रीकी शुद्धिकी विचारणा	१२१	वृद्धिश्राद्धमे पिंडदानकी विधि ...	१६२
अध्याय ८.		खण्ड ५.	
कौंसी आदि पात्रोंकी शुद्धि और शूद्रा- न्नभक्षणका प्रायश्चित्त ...	१२४	वृद्धिश्राद्ध कियेविना गर्भाधानादिसं- स्कारोंकी सागता नहीं होती . . . . .	१६३
अध्याय ९.		खण्ड ६.	
भोजन करते २ अधोवायु वा मलत्याग होय उसकी शुद्धि तथा भक्षणके, चाटनेके, पीनेके और खानेके अयो- न्य पदार्थके सेवनमें प्रायश्चित्त ...	१२५	अग्निके आधानकालका निरूपण ....	१६४
अध्याय १०.		खण्ड ७.	
क्रोधरहित क्षमाशील पुरुषको ही मोक्ष लाम होता है ... . . . . .	१३१	दोनों अरणिका विचार ... . . . .	१६६
संवर्तस्मृति ८.		खण्ड ८	
यज्ञोपवीत होनेपर ब्रह्मचारीका अवश्य कर्तव्य ... . . . . .	१३३	दोनों अरणियोंको घिसनेसे अग्निकी उत्पत्ति होतीहै उसकी विधि ...	१६७
विवाहके अनंतर गृहस्थीके आचारका निरूपण .... . . . . .	१३६	खण्ड ९,	
फलके साथ नानाविधदानोंका वर्णन वानप्रस्थ और सन्यासआश्रमके धर्मोंका निरूपण ... . . . . .	१३७ १४३	होमकालका कथन तथा विना प्रदीप्त- हुये अग्निमें हवन करनेसे दाष ...	१७०
ब्रह्महत्या आदि पातकोंका प्रायश्चित्त	१४४	खण्ड १०.	
कात्यायनस्मृति ९.		स्नानयोग्य जलोंका विचार ...	१७२
खण्ड १		खण्ड ११.	
यज्ञोपवीत बनानेकी विधि और वृद्धि- श्राद्धमें पूजनेयोग्य सोलह मातृका- ओंके नामका कथन ... . . . . .	१५७	संध्योपासनके विधिकानिरूपण ...	१७३
		खण्ड १२.	
		पितरोंका तर्पण ... . . . . .	१७५
		खण्ड १३.	
		पाचयज्ञोंका विचार ... . . . . .	१७७
		खण्ड १४.	
		बलिदानका विचार और अग्निकी प्रार्थना ... . . . . .	१७८



विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
स्वण्ड १५		स्वण्ड २७	
मन्वाहारे दक्षिणा देनेका प्रमाण तथा आम्पस्वाही आदिके प्रमाणका कथन	१८०	अन्वाहारकी विधि	२०४
स्वण्ड १६		स्वण्ड २८	
अन्वाहार्ये आमहायणादि पितृयज्ञोंका कथन	१८१	अभ्ययनमें अन्वाहारोंका विचार	२०७
स्वण्ड १७		स्वण्ड २९	
पितृयज्ञविधिका निरूपण	१८५	पशुके छोटोंका दर्भकृर्वादिसे घोंटा इसकी विधि	२११
स्वण्ड १८		वृहस्पतिस्मृति १०	
दर्शपूर्णमासादिमें होमादिका विचार	१८८	भूमिदानकी प्रशंसा	२१२
स्वण्ड १९		गयाभाय और द्रुपोत्तराकी पुत्रका अग्रहण कर्तव्यता	२१२
पति प्रवासमें गया हो तो अग्निसेवामें कीकामधिकार तथा स्त्रीकी मर्दासा और अग्निहोत्रीकी मर्दासा	१९१	स्वयं वा परस्वयं भूमिका प्राज्ञपसे अपहार करनेमें होयोंका कथन	२१५
स्वण्ड २०		मन्वास्व हरणकरनेसे सर्वस्वका नाश	२१६
पुनरापान अग्निसमारोपणका विचार	१९२	सत्यात्रको मुर्खभादिके दानसे सर्वथा रकोंका नाश	२१७
स्वण्ड २१		बापी रूपभादिका जीर्णोद्धार करनेका पृष्ठ	२१८
गृहस्त्रीके मरगकी विधि	१९४	प्रथमें फलमूलादिके मक्षणसे महापुण्य काम	२१९
स्वण्ड २२		पाराशरस्मृति ११	
अवस्थान करनेवाले पिताको देखकर किंसपकारपरतडीते	१९६	अध्याय १	
स्वण्ड २३		पद्म करमेसे प्राज्ञोंको सौख्यकाम, अधियसहारका पृष्ठ और सामा न्यतासे वर्णवतुल्यका कर्म	२१९
अग्निहोत्री विदेशमें मरगवा हो उस की व्यवस्था	१९७	अध्याय २	
स्वण्ड २४		कश्चिपुगमें गृहस्थके आवश्यककर्मोंका साधारणताये कथन	२२०
गृहस्थमें त्याग्य कर्मोंका कथन और पांडुरमात्रोंका विधान	१९९	अध्याय ३	
स्वण्ड २५		अन्नमरणके अशीर्षकी मुद्रिका कथन	२२१
मन्वाहारादिसे मुक्त जो लगे विषयमें कर्तव्यविधि	२०१	अध्याय ४	
स्वण्ड २६		अविमानसे वा अतिक्रोधादिसे मरेहुये ग्रीपुत्रोंका दाद आदिकरनेमें प्रा पश्चिमा, उत्तरा, अमग और परिदेवनादिदण्डका विचार	२२३
द्रुपोत्तराभारिमें रामशनीय चरका नियम किंसपकार करना वगैरा कथन	२०३		

विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
अध्याय ५. भेदियाकृत्ते आदिसे काटनेमें शुद्धि, घाटाटादिसे मारुये ब्राह्मणके दंहुका स्पर्श करनेमें प्रायश्चित्त और अग्निहोत्रोंका देशांतरमें मरण होय तो उसकी क्रियाका विचार ... २४१		अध्याय २. गृहस्थाश्रमधर्मका निरूपण, स्त्रियोंके धर्म और पतिव्रतान्त्रीका परित्याग करनेमें प्रायश्चित्त ... २८९	
अध्याय ६. प्राणियोंकी हिसाका प्रायश्चित्तकथन .. २४३		अध्याय ३. गृहस्थमात्रके नित्य नैमित्तिक कान्यक- कोंका कथन .. २०५	
अध्याय ७. काठ आदिके बनावे पात्रोंकी शुद्धि और रजस्वलास्त्री परस्परस्पर्श करे तो उसका प्रायश्चित्त. . . . . २५१		अध्याय ४. सब जाधमोंमें गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा और दानधर्म कथन . . . . . ३०३	
अध्याय ८. अकामसे धंधल आदिमें गौ मरजाय तो उसका प्रायश्चित्त... .. २५६		शंखस्मृति १३. अध्याय १. सामान्यरीतसे चारों वर्णोंके कर्मका कथन .... . . . . ३११	
अध्याय ९. भलीभांति गौकी रक्षा करनेकी इच्छासे वांधने वा रोकनेमें गोहत्या होय तो उसका प्रायश्चित्त... .. २६१		अध्याय २. निपेक आदि संस्कारोंके कालका निरू- पण ... .. ३१२	
अध्याय १०. अगम्यस्त्रीगमनका चारों वर्णोंको योग्य प्रायश्चित्त.... .. २६८		अध्याय ३. यज्ञोपवीत करनेपर ब्रह्मचारीको अवश्य प्रतिपालनीय नियमोंका निरूपण.... ३१३	
अध्याय ११. अशुद्ध वीर्यआदि पदार्थके भक्षणमें प्रायश्चित्त और शूद्रात्रभक्षणमें ब्रा- ह्मणको प्रायश्चित्त ... .. २७२		अध्याय ४. ब्राह्मणादि आठप्रकारके विवाहोंका निरूपण और विवाहकरनेयोग्य स्त्रीका कथन . . . . . ३१५	
अध्याय १२ विष्ठा मूत्र आदि भक्षणमें प्रायश्चित्त और ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त . . २७७		अध्याय ५. पाच हत्याके दोष निवृत्तिके लिये पंच महायज्ञोंका कथन, अग्निकी सेवा और अतिथिकी पूजा हीसे गृहध- र्मकी सफलता . . . . . ३१७	
व्यासस्मृति १२. अध्याय १ सोलह संस्कारोंके नाम कथन और सक्षेपसे ब्रह्मचारीका धर्म ..		अध्याय ६. वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंका निरूपण ... ३१९	
		अध्याय ७. संन्यासाश्रमधर्मका निरूपण, अष्टांगयोग कथन और ध्यानयोगका निरूपण ३२०	
		अध्याय ८. नित्य नैमित्तिकादिभेदसे छहविध ज्ञान-	

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अध्याय ९		अमलक्षणका निरूपण	३६०
क्रियाज्ञानकी विधि	३२६	अध्याय २	
अध्याय १०		ब्राह्मणके प्रतिदिन करने योग्य कर्मोंका निरूपण	३६१
शुभकारक भाषमनकी विधि	३२६	अध्याय ३	
अध्याय ११		गृहस्थाके असुख ईपदान कर्म विकर्मोंका निरूपण	३६७
अध्याय १२		अध्याय ४	
गायत्रीमंत्ररूपका फल	३२९	अशुभकर्मोंकी शीघ्रही गृहस्थाके धर्मोंके कामकी व्यवस्था होती है	३७०
अध्याय १३		अध्याय ५	
दर्शनविधिका कथन	३३१	शौच अस्तीचका विचार	३७३
अध्याय १४		अध्याय ६	
पितृकार्यमें ब्राह्मणकी परीक्षा, पंक्ति- वाचन पच्छिभूपकोंका कथन आदिके योग्य देशकाओंका निरूपण	३३३	अध्याय ७	
अध्याय १५		पङ्कगयोगका निरूपण	३७६
अध्याय १६		गौतमस्मृति १६	
अध्याय १७		अध्याय १	
अध्याय १८		अध्याय २	
अध्याय १९		अध्याय ३	
अध्याय २०		अध्याय ४	
अध्याय २१		अध्याय ५	
अध्याय २२		अध्याय ६	
अध्याय २३		अध्याय ७	
अध्याय २४		अध्याय ८	
अध्याय २५		अध्याय ९	
अध्याय २६		अध्याय १०	
अध्याय २७		अध्याय ११	
अध्याय २८		अध्याय १२	
अध्याय २९		अध्याय १३	
अध्याय ३०		अध्याय १४	
अध्याय ३१		अध्याय १५	
अध्याय ३२		अध्याय १६	
अध्याय ३३		अध्याय १७	
अध्याय ३४		अध्याय १८	
अध्याय ३५		अध्याय १९	
अध्याय ३६		अध्याय २०	
अध्याय ३७		अध्याय २१	
अध्याय ३८		अध्याय २२	
अध्याय ३९		अध्याय २३	
अध्याय ४०		अध्याय २४	
अध्याय ४१		अध्याय २५	
अध्याय ४२		अध्याय २६	
अध्याय ४३		अध्याय २७	
अध्याय ४४		अध्याय २८	
अध्याय ४५		अध्याय २९	
अध्याय ४६		अध्याय ३०	
अध्याय ४७		अध्याय ३१	
अध्याय ४८		अध्याय ३२	
अध्याय ४९		अध्याय ३३	
अध्याय ५०		अध्याय ३४	
अध्याय ५१		अध्याय ३५	
अध्याय ५२		अध्याय ३६	
अध्याय ५३		अध्याय ३७	
अध्याय ५४		अध्याय ३८	
अध्याय ५५		अध्याय ३९	
अध्याय ५६		अध्याय ४०	
अध्याय ५७		अध्याय ४१	
अध्याय ५८		अध्याय ४२	
अध्याय ५९		अध्याय ४३	
अध्याय ६०		अध्याय ४४	
अध्याय ६१		अध्याय ४५	
अध्याय ६२		अध्याय ४६	
अध्याय ६३		अध्याय ४७	
अध्याय ६४		अध्याय ४८	
अध्याय ६५		अध्याय ४९	
अध्याय ६६		अध्याय ५०	
अध्याय ६७		अध्याय ५१	
अध्याय ६८		अध्याय ५२	
अध्याय ६९		अध्याय ५३	
अध्याय ७०		अध्याय ५४	
अध्याय ७१		अध्याय ५५	
अध्याय ७२		अध्याय ५६	
अध्याय ७३		अध्याय ५७	
अध्याय ७४		अध्याय ५८	
अध्याय ७५		अध्याय ५९	
अध्याय ७६		अध्याय ६०	
अध्याय ७७		अध्याय ६१	
अध्याय ७८		अध्याय ६२	
अध्याय ७९		अध्याय ६३	
अध्याय ८०		अध्याय ६४	
अध्याय ८१		अध्याय ६५	
अध्याय ८२		अध्याय ६६	
अध्याय ८३		अध्याय ६७	
अध्याय ८४		अध्याय ६८	
अध्याय ८५		अध्याय ६९	
अध्याय ८६		अध्याय ७०	
अध्याय ८७		अध्याय ७१	
अध्याय ८८		अध्याय ७२	
अध्याय ८९		अध्याय ७३	
अध्याय ९०		अध्याय ७४	
अध्याय ९१		अध्याय ७५	
अध्याय ९२		अध्याय ७६	
अध्याय ९३		अध्याय ७७	
अध्याय ९४		अध्याय ७८	
अध्याय ९५		अध्याय ७९	
अध्याय ९६		अध्याय ८०	
अध्याय ९७		अध्याय ८१	
अध्याय ९८		अध्याय ८२	
अध्याय ९९		अध्याय ८३	
अध्याय १००		अध्याय ८४	

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अध्याय ७.		अध्याय २१.	
आपत्कालमें ब्राह्मणोंके धर्मोंका		पंक्तिवाला द्विजादिका निरूपण ...	४१३
कथन ... .. ३९२	३९२	अध्याय २२.	
अध्याय ८.		पतितोंकी गणना ....	४१४
संस्कारयुक्त ब्राह्मणको अपराध होनेपर		अध्याय २३.	
भी वधवधनादि दंडका निषेध और		ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त ...	४१५
सब संस्कारोंसे युक्त द्विजका मोक्ष-		अध्याय २४.	
आधिकार होना . . . . . ३९२	३९२	मदिरापानआदिका प्रायश्चित्त ....	४१६
अध्याय ९.		अध्याय २५.	
गृहस्थोंको पालनीयव्रतोंका कथन....	३९४	रहस्यपातकोंका प्रायश्चित्त .	४१८
अध्याय १०.		अध्याय २६.	
चारोंवर्णोंके षपजीविकाका विचार ..	३९६	जिसके व्रतका भंग हुवा हो ऐसे अव-	
अध्याय ११.		कीर्णोंको व्रत पूर्ण होने योग्य कर्म-	
राजाके आचारका निरूपण . . . . . ३९८	३९८	का कथन . . . . . ४१९	४१९
अध्याय १२.		अध्याय २७.	
शूद्रको अपराधी होनेपर उसके विषयमें		कृच्छ्रनामक व्रतका विवरण ..	४२०
दंडका विचार ... .. ४००	४००	अध्याय २८.	
अध्याय १३.		चांद्रायणव्रतविधिका वर्णन ...	४२१
साक्षिके प्रसंगसे सत्यासत्यका विचार	४०२	अध्याय २९.	
अध्याय १४.		द्रव्यविभागके अधिकारियोंका विवरण	४२२
चारों वर्णोंके आशौचका निरूपण ....	४०३	शातातपस्मृति १७.	
अध्याय १५.		अध्याय १.	
दर्शनादि सर्वश्राद्धोंका कथन ...	४०५	इहलोकमें संपादित दुष्कर्मसे नरकया-	
अध्याय १६.		तना भोगके अनंतर भूमीपर उत्पन्न	
अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार . . .	४०६	हुये प्राणियोंके देहचिह्नका कथन	४२५
अध्याय १७.		अध्याय २.	
ब्राह्मणको शुद्धान्नभोजन और शुद्धप्र-		ब्रह्महत्या आदि करनेसे नरकयातना	
तिग्रहका कथन . . . . . ४०८	४०८	भोगनेपर यहाँ कुटी होताहै उसका	
अध्याय १८.		प्रायश्चित्त और गोहत्यादिका प्रा-	
श्रीधर्मोंका वर्णन .. .... ४०९	४०९	यश्चित्त ... .. ४२८	४२८
अध्याय १९.		अध्याय ३.	
निषिद्धआचार करनेसे दोष, तन्निवृत्तिके		सुरापान आदिपातकोंका प्रायश्चित्त...	४३३
लिये प्रायश्चित्तका कथन . . . . . ४११	४११	अध्याय ४.	
अध्याय २०.		कुलनआदिकी शुद्धिकी लिये प्रायश्चित्त	४३६
पापसे नरकयातना भोगकर उत्पन्नहुये			
मनुष्यके शरीरचिह्नोंका कथन . . . . . ४१२	४१२		

विषय	पृष्ठंक	विषय	पृष्ठंक
मातृगमन श्रित्त	अध्याय ५ आदि करनेवालेको प्राय — ४३९	विवाहके अनंतर पारमनीय धर्मोंका निरूपण	४६५
पोडा सूकर हाँगावाले पशु आदिसे इष्ट गतिदीनके पदार्थके लिये प्राय श्रित्तका कथन	अध्याय ६ — ४४३	अध्याय ९ वानप्रस्थभ्रातृका श्लेषसे धर्मकथन	४६७
वसिष्ठस्मृति १८	अध्याय १	अध्याय १० सत्यासीके धर्मोंका निरूपण	”
मनुष्योंको मुक्तिके लिये धर्मशिक्षा सा, धर्माचरणमें आर्यावर्ष देशका सहस्र कथन, और ब्राह्मणकी प्रशंसा	४४८	अध्याय ११ है कर्मरत ब्राह्मणको ब्राह्मणपारी धरि और अतिथिसे अन्न देनेका विचार भ्रातृका विचार और धर्म प्रयत्नको योग्य वृद्ध अग्नि वृद्ध भिक्षा और उपनयनकाछका विचार	४६९
अध्याय २ धर्मत्रयको द्विसत्वकथन अथवायनकी आवश्यकताका निरूपण	४४९	अध्याय १२ स्तावकके धर्मोंका कथन	४७३
अध्याय ३ वेवाप्ययन न करनेवाला द्विस शूद्रसमान होता है, आठवां ब्राह्मणका भी व्यतिथि है धर्मकथनके अधि कारी, आपमनाविधि और मूमि आदिकी शुद्धताका कथन	४५३	अध्याय १३ स्वाध्याय और उपाकर्मका कथन	४७५
अध्याय ४ संस्कारके विशेषसे चारवर्षोंका विभाग देवता अतिथि इनकी पूजामें पशु व्यक्त होप नहीं और भोजीचका विचार	४५८	अध्याय १४ महाजमें योग्य अयोग्य वस्तुओंका विचार	४७७
अध्याय ५ द्वियोंको परमनीयत्वका कथन और रजस्रवणा द्वियोंके नियमका कथन	४६०	अध्याय १५ पुत्रके दान प्रतिमहका विचार	४८०
अध्याय ६ आचारकी प्रशंसा और सामान्यतासे ब्राह्मणके आपरणका कथन	४६१	अध्याय १६ राजस्यवहार साक्षिभाषिका विचार	४८२
अध्याय ७ श्लेषसे प्रसपारीके कर्तव्यका कथन	४६५	अध्याय १७ पुत्र होनेसे मनुष्य पिताके धनसे मुक्त होता है इससे बारह पुत्रोंका कथन	४८४
अध्याय ८ विवाहकरनेयोग्य स्त्रीका निरूपण और		अध्याय १८ प्रतिश्रोमतासे उत्पन्नहुये पांडास्रभाषिका कथन और शूद्रको धर्मोपदेश नर नेमें अनधिकारका विचार	४८८
		अध्याय १९ श्लेषसे राजधर्मका कथन	४९०
		अध्याय २० ब्रह्महत्या अपिपातकोंका प्रायश्चित्तविधि	४९२
		अध्याय २१ शुश्रूष्य वैश्य और शूद्र इनको मादण स्त्री गमनमें प्रायश्चित्त	४९५

# अष्टादशस्मृतयः ।

भाषाटीकासमेताः ।

श्रीयोगिजनवल्लभाय नमः ।

अत्रिस्मृतिः १.

हुताग्निहोत्रमासीनमत्रिं वेदविदां वरम् ॥ सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नम-  
स्कृतम् ॥ १ ॥ नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रुवन् ॥ हितार्थं सर्वलो-  
कानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रइत्यादिसे निश्चिन्तमनयुक्त बैठेहुए वेदकी विधिके जाननेवालोंमें प्रधान शा-  
स्त्रके पारदर्शी ऋषियोंके पूज्य महर्षि अत्रिजीको ॥ १ ॥ प्रणाम करके ऋषि बोले कि,  
हे भगवन् ! जिसके करनेसे त्रिलोकीका कल्याण हो, आप उसी विषयको हमसे कहिये ॥२॥

अत्रिरुवाच ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

अत्रिजी बोले कि, हे वेदशास्त्रार्थतत्त्व जाननेवाले ऋषियो ! तुमने जैसे सन्देहयुक्त अर्थात्  
अनिश्चित विषयको पूछाहै सो उसे मैंने जैसा देखा और जैसा सुनाहै [ अर्थात् अपने  
विचारसे और गुरुके उपदेशके अनुसार ] वह सभी वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥ जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रा-  
नुसारतः ॥ ४ ॥ सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥ चतुर्णामपि वर्णा-  
नामत्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥

( इस प्रतिज्ञायुक्त वचन कहनेके उपरान्त ) महर्षि अत्रिजीने सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे  
आचमन, समस्त देवताओंको प्रणाम और सम्पूर्ण सूक्तोंका जप करके सम्पूर्ण शास्त्रोंके अनु-  
सार ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण पाप और सन्देहोंका नाश करनेवाला, चारों वर्णोंका हितकारी  
सनातन धर्मशास्त्र निर्माणकिया ॥ ५ ॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥ सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं  
शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥ तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च  
प्रवक्तव्यं सदृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥ ७ ॥

१ अथानिस्मृत्युपक्रमः ।

यहापर "इत्युक्त्वा ततः" ऐसा अध्याहार होताहै अर्थात् मूलमें यह पद न होनेपर भी अर्थके वश  
लाना पड़ताहै ।

इस ससारमें जो इच्छानुसार पाप करनेवाले हैं और जो धर्मकी निन्दा करते हैं वह भी इस उचन धर्मशास्त्रके अर्षण करनेसे सन्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजायेंगे ॥ ६ ॥ इस कारण वेदके आनेवाले पलसहित इसका पाठ करें और धर्मके अनुसार उचन चरित्रोंवाले सिष्योंकी भी सुनावें ॥ ७ ॥

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शुद्धे क्षते द्विजे ॥

एतेष्वेष न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

निन्दित कुलमें उत्पन्नहुए, दुराचरण करनेवाले, भूर्ख, शूद्र और दुष्टस्वभाववाले ब्राह्मण इन पांच प्रकारके मनुष्योंको भेद्य ब्राह्मण इसकी शिक्षा न दें ॥ ८ ॥

एकमप्यक्षर यस्तु गुरुं शिष्ये निषेदयेत् ॥ पुपिष्यां नास्ति तद्रथं यद्वत्त्वा  
ह्यनुणी भवेत् ॥ ९ ॥ एकाक्षरप्रदातार यो गुरुं नाभिमन्यते ॥ शुनां योनिशत  
गत्या चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

यदि गुरुने शिष्यको एक अक्षर भी पढाया है, तथापि पृथ्वीमें देसी कोई वस्तु नहीं है, किसे अर्पणकर शिष्य अप्ससे मुक्त होसके ॥ ९ ॥ एक अक्षरके शिक्षा देनेवाले गुरुका जो मनुष्य सम्मान नहीं करते वह सौ अन्यतक कुत्तेके जन्मको भोगकर अन्तमें जाकर हो जन्म लेते हैं ॥ १० ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं शैषावमन्यते ॥

स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य वेदको पढ़कर उसके गर्बसे अन्यान्य शास्त्रके उपदेशको महत्त्व नहीं करता वह इष्टीस बार पशुकी योनियोंमें जन्म लेता है ॥ ११ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥

प्रिया भवति लोकस्य स्ये स्ये कर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य अपने व्यापारके पाठनमें उत्तर हैं अर्थात् कमी कुमार्गमें पैर नहीं करते वह दूर जानेपर भी मनुष्योंकी प्रीतिके पात्र हैं ॥ १२ ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययन तप ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति

वृत्तयः ॥ १३ ॥ क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥ क्षत्रोपजीवनं

भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥ दानमध्ययनं धार्तां यजनं चेति षे विशः ॥

शूद्रस्य धार्तां शुभूपा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥ तदेतत्कृत्वाभिहितं

सस्तिता यत्र वर्णिनः ॥ बहुमानमिह प्राप्य प्रयाति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन उपस्था हैं और दान सेना, पढ़ना, यज्ञ करना यह तीन जीविका हैं ॥ १३ ॥ क्षत्रियोंके पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन उपस्था हैं, और दायका व्यवहार और प्राणियोंकी रक्षाकरना यह सा जीविका हैं ॥ १४ ॥ वैश्यकी भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन उपस्था हैं और धार्ता अर्थात् गेदी, बाजिर, गौमोंकी रक्षा और व्यवहार यह चार भाजीविका हैं,

शूद्रोंकी, ब्राह्मणोंकी सेवा करना यही तपस्या और शिल्पकार्य उनकी जिविका है ॥ १५ ॥  
मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्मके अनुसार  
चलनेपर इस कालमें बहुतसा सन्मान प्राप्तकर परलोकमें श्रेष्ठ गतिको पातेहैं ॥ १६ ॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥

तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके ऋणियते ॥ १७ ॥

जो पूर्वोक्त अपने २ धर्मका त्यागकर दूसरे धर्मका आश्रय करतेहैं, राजा उनको दण्ड  
देकर स्वर्गका भागी होताहै ॥ १७ ॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥

परधर्मो भवेत्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करतेहैं, दूसरोका धर्म सुन्दरी पराई स्त्रीकी  
समान तजनेके योग्य है ॥ १८ ॥

वधयो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥

यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वद्वेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि  
जलधारा जिस प्रकारसे अग्निको नष्ट करतीहै, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र  
सम्पूर्ण राज्यका नाश करताहै ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥

याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

दानलेना, पढ़ाना, निषिद्ध वस्तुका खरीदना और बेचना वा यज्ञकराना इन चारों कर्मोंके  
करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होतेहैं ॥ २० ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥

त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवणके बेचनेसे तत्काल पतित होता है और दूधके बेचनेसे  
भी तीन दिनमें शूद्रकी समान होजाताहै ॥ २१ ॥

अब्रताश्रानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडेयद्राजा चौरभक्त-  
ददंडवत् ॥ २२ ॥ विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ॥ तेषु ऽष्वनावृष्टिभि-  
च्छंति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

व्रत और अध्ययनसे शून्य ब्राह्मण जिस ग्राममें भिक्षा मागकर जीवन धारण करतेहैं राजा  
उस ग्रामको अर्थात् उस ग्रामके अब्रत और निरश्र ब्राह्मणोंके पालनेवाले नगरवासियोंको  
चोरको भात देनेवालेके दंडकी तुल्य ( अर्थात् चौरको पोषण करनेवालेके दंडके तुल्य ) दंड  
देवै ॥ २२ ॥ जिस राज्यमें पंडितोंके भोगनेयोग्य वस्तुको मूर्ख भोगतेहैं, वहाँ अनावृष्टि वा  
अन्य किसी प्रकारका महाभय उपस्थित होताहै ॥ २३ ॥



ब्राह्मणान्वेदधिबुधः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥ तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रितान्बृजये  
नृपः ॥ २४ ॥ त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आभमाभ त्रयोऽस्य ॥ एतेषां  
रक्षणार्थाय ससृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

जिस राज्यमें राजा वेदके जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रमें कुशल ऐसे ब्राह्मणोंका आहारे  
करताहै, उस स्थानपर सर्वेश सुवृष्टि होतीहै ॥ २४ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल यह तीनों  
लोक, ऋक्ष, यजुः, साम यह तीनों वेद, ब्रह्मचर्य, गार्हपत्य, वानप्रस्थ और सन्यास यह चारों  
आश्रम, इक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय यह तीनों अग्नि इन सबकी रक्षाके निमित्त  
विधाताने ब्राह्मणोंकी सृष्टि कीहै ॥ २५ ॥

उभे सध्ये समाधाय मौनं कुर्वति ते द्विजाः ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि स्वगल्लोके  
महीयते ॥ २६ ॥ य एष कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ॥ यज्ञस्वर्गे  
नृपत्वं च पुनः कोशं च सोऽर्जयेत् ॥ २७ ॥

जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण मौनका अवलम्बन कर प्रातःकाळ और सायंकालके समय  
सन्यासवन्दन करतेहैं, वह राजा दिव्य सहस्र वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ २६ ॥  
जो राजा चारों बर्णोंके लच्छ धर्मको विचारकर उनके गुण दोषका विचार करताहै, उसके  
राज्यकी दृढ़ता और कोश (सम्पत्ति) का सचय होताहै, और उसके स्वर्ग प्राप्तहोताहै ॥ २७ ॥

बुधस्य दंडं मुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च समवृद्धिः ॥

अपक्षपातोर्ध्विषु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञा कथिता नृपाणाम् ॥ २८ ॥

बुधोंका दण्डन और श्रेष्ठोंका पावन, न्यायके अनुसार धनका संग्रह करना, विचारके  
निमित्त आयेहुए अर्थियोंपर पक्षपातका न करना और सब प्रकारसे राज्यकी रक्षा  
करना यह पांच राजाओंके यज्ञ ( अर्थात् उत्सवका आयोजन ) कर्म हैं ॥ २८ ॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्तुर्वर्तीह पार्थिवाः ॥

नतु कृतसहस्रेण प्राप्तुर्वति द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥

राजा इस प्रकारसे प्रजापालन करके सैते पुण्यको प्राप्त करताहै, ब्राह्मण हजार २ पक्षक-  
रके भी बैसे पुण्यको नही प्राप्त करसके ॥ २९ ॥

अलाभे देवस्तातानां हृदेषु सरसीषु च ॥

उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारिष्ये स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥

देवताओंके तीर्थ वा ललाशयोंके न मिचनेपर हृत् ( हृत् ) वा सरोवरमें स्नान करे, दूसरे  
ललाशय ( ललाशयादिक ) होनेपर चार महीके पिंड बाहर निकालकर फिर उसमें स्नान  
करे ॥ ३० ॥

यसा शुक्रमसृष्टमम्मा मूत्रं विद् कर्णविष्णुस्वा ॥ श्लेष्मास्यि हृषिका स्वेदोद्वा  
दर्शितं नृणां मला ॥ ३१ ॥ यण्णां यण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥  
मूद्धारिभिश्च पुर्येषामुचरेषां तु धारिणा ॥ ३२ ॥

वसाँ ( भेद ) शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्टा, कानकाँ मल, नख, श्लेष्मा, अस्थि, नेत्रोंका मल, धर्म ( पसीना ) यह बारह मनुष्योंके मल हैं ॥ ३१ ॥ उनमेसे मट्टी और जलसे तो प्रथमके छहों मलोंकी शुद्धि होती है और केवल जलसे शेष छहों मलोंकी शुद्धि पंडितोंने कही है ॥ ३२ ॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहा दमः ॥

लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान, और दया यह ब्राह्मणोंके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ॥ आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥ एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३५ ॥ शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥ अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ३६ ॥ न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥ न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥ यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥ न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥ न कुप्यति न चाहंति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥ स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥ परस्मिन्बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ॥ आत्मवर्द्धतितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥ यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपि भवेद्विजः ॥ स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥ ४२ ॥

अभक्ष्य वस्तुका त्याग, श्रेष्ठका संसर्ग, और शास्त्रमें कहेहुए अन्यान्य आचारोंके पालन करनेका नाम शौच है ॥ ३४ ॥ उत्तम कर्मोंका आचरण और निन्दित कर्मोंका त्याग करना इसीको धर्मके जाननेवाले ऋषियोंने मंगल कहा है ॥ ३५ ॥ शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो जिससे शरीरको ग्लानि होती हो उसे अत्यन्त न करे उसका नाम अनायास है ॥ ३६ ॥ गुणवान् मनुष्योंके गुणोंको नष्ट न करना और दूसरेके गुणोंकी प्रशंसा करना दूसरेके दोषोंको देखकर उनका उपहास न करना इसीका नाम अनसूया है ॥ ३७ ॥ आवश्यकीय सम्पूर्ण वस्तुओंमेंसे जो कुछ भी मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहना और पराई स्त्रीकी अभिलाषा न करना इसीका नाम अस्पृहा है ॥ ३८ ॥ कोई मनुष्य यदि बाह्य वा मानसिक दुःख उत्पन्न करे तो उसके ऊपर क्रोध वा उसकी हिंसा न करनेका नाम दम है ॥ ३९ ॥ किञ्चित् प्राप्तिके होनेपर भी उसमेंसे थोड़ा २ प्रतिदिन प्रसन्न मनसे दूसरेको देना इसका नाम दान है ॥ ४० ॥ दूसरेके प्रति, माता पिता आदि अपने कुटुम्बियोंके प्रति, मित्रोंके प्रति, वैरकारीके प्रति और अपने शत्रुके प्रति समान व्यवहार करना इसीका नाम दया है ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थ होकर भी इन सब लक्षणोंसे भूषित है वह उत्तम स्थानको प्राप्त करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ४२ ॥

इष्टार्थं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नत ॥

इष्टेन कृमते स्वर्गं पूर्णं मोक्षो विधीयते ॥ ४१ ॥

इष्टकर्म और पूर्णकर्म ये समयविध कर्म ब्राह्मणेनही यत्नसे करने इष्टकर्मसे स्वर्ग प्राप्तहोताहै और पूर्णकर्मसे मोक्ष मिलताहै ॥ ४१ ॥

अभिहोत्रं तपः सत्यं धेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४२ ॥ षापीकूपतडागादिदेषतापतनानि च ॥ अन्नप्रदानमा रामं पूर्णमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥

अभिहोत्र, तपस्या, सत्यमे तत्परता, वैश्वकी आज्ञाका पालन, अतिथियोंका सत्कार और यज्ञदेव इनका नाम इष्ट है ॥ ४४ ॥ षापी, कूप, तडाग, इत्यादि जलाशयोंका बनाना, देवताओंके मंदिरकी प्रतिष्ठा, अन्नदान और बगीचोंका छगाना इसका नाम पूर्ण है ॥ ४५ ॥

इष्टार्थं दिजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ॥

अधिकारी भवेच्छूद्रं पूर्णं धर्मं न धेदिके ॥ ४६ ॥

इस इष्ट और पूर्ण कार्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको समान अधिकार है, बद्यपि शूद्र भी पूर्ण कार्यमें अधिकारी है, परन्तु उसके अन्वर्गत जो वैदिक कर्म है उसका अधिकार उसे नहीं है ॥ ४६ ॥

यथाम्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥

यमान्यतत्यकुर्वाणो नियमान्केवललाभजन् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा यमोंका सेवन करे, नियमका अनुष्ठान यथासमयमें कियाजताहै सर्वदा नहीं, और जो यमोंका त्याग कर केवल नियमही करताहै तो वह पतित होताहै ॥ ४७ ॥

आनृशस्यं समा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥ प्रीति प्रसादो माधुर्यं

मार्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥ शीघ्रमिज्या तपो दान स्वाभ्यायोपस्थ

निग्रहः ॥ अतमीनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥

अनृता, क्षमा सत्यपादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता इन दशोंका नाम यम है ॥ ४८ ॥ शीघ्र यज्ञका अनुष्ठान, तपस्या, अन्नान् वेदका पठना विधिद्वित रतिका त्याग, व्रत, मौन, उपवास और स्नान यह दश नियम हैं ॥ ४९ ॥

प्रातीनिधिं शुशमयं तीर्थपारियु मञ्जति ॥ यमुंदिश्य निमज्जेत अष्टभागं कृमेत

सं ॥ ५० ॥ मातरं पितरं पापि धातरं सुहृदं गुरुम् ॥ यमुंदिश्य निमज्जेत द्वाद

शाशफल् भवेत् ॥ ५१ ॥

कुशारी प्रतिमाको छेकर तीर्थके अक्षमें ध्यान करे, उसने इस मूर्तिको जिसके आश्रयसे जन्में ध्यान करायाहै, वह आठवां हिस्सा पुण्यका प्राप्त करताहै ॥ ५० ॥ माता, पिता,

१ अनुवरे कल्पमात्रमात्रावितरिणम् । २ नियमनं कायवित्त ।

भ्राता, मित्र, और गुरुके पुण्यकी इच्छासे जो स्नान करतेहैं, वह उस स्नानके वारहवें अंशके फलको प्राप्त करतेहैं ॥ ५१ ॥

अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥

पिडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

जिस मनुष्यके पुत्र नहीं है वह पुत्रके प्रतिनिधिको ग्रहण करै, कारण कि श्राद्ध तर्पणादिक कार्य विना पुत्रके नहीं होते ॥ ५२ ॥

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चैजीवतो सुखम् ॥ ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ ५३ ॥ जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता ॥ तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥ एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत चाश्वमेधं च नीलं वा वृषभुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥ कांक्षंति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥

पिता यदि उत्पन्न हुए पुत्रका मुख जीवित अवस्थामें एकवार भी देखले तो वह पितरोके ऋणसे मुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ पुत्रके पृथ्वीपर उत्पन्न होतेही मनुष्य पितरोके ऋणसे छूटजाताहै, और उसी दिन वह शुद्ध होनाहै कारण कि यह पुत्र नरकसे उद्धार करताहै ॥ ५४ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी उचित है कारण कि यदि उनमेंसे कोई एकभी पुत्र गयाजी जाय, कोई अश्वमेध यज्ञको करै और कोई नील वृषका उत्सर्ग करै ॥ ५५ ॥ नरकसे भयभीत हुए पितृगण “जो पुत्र गयाको जायगा वही हमारे उद्धारका करनेवाला होगा” यह विचारकर ऐसे पुत्रकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥

फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥

गयशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥ ५७ ॥

फल्गु नदीमें स्नान करके गयासुरके मस्तकपर चरण धर गयाके गदाधर देवताका दर्शन करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे भी छूटजाताहै ॥ ५७ ॥

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ॥

अक्षयाल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य महानदी ( गंगाआदि ) में स्नान आचमन कर देवता और पितरोंका तर्पण करतेहै, वही अक्षय लोकको प्राप्त होकर वंशका उद्धार करतेहैं ॥ ५८ ॥

शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ॥

आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥

१ “पुत्र” नाम नरकका है उससे त्राण ( उद्धार ) करताहै, अपने पिताको, इसीसे वह पुत्र कहा ताहै, ऐसा अक्षरार्थ पाया जाताहै ।

२ नील वृषका लक्षण—जिसकी पूँछका अग्रभाग, खुर और शींग श्वेत हों और सब अंग लाल हो उसको नील वृष कहतेहैं ।

३ गंगाम् ।

पवित्र भोजन और मोक्षहीन हेतुमें, संकाके स्थानमें, प्राणकी रक्षाके अथ जिसकी पवित्रतामें संदेह है ऐसे द्रव्योंके भासन करनेसे उसका जो प्रायश्चित्त है उसे मैं कह्वाहुं तुम अक्षय्य करो ॥ ५९ ॥

अक्षारलक्षणं रीसं पिबेद्वाहीं सुषर्वलाम् ॥

धिरात्र शस्त्रपुष्पी वा ब्राह्मणं पयसा सह ॥ ६० ॥

प्रथमतः ब्राह्मण (अपने सुदिके अर्ध) जारी नमकसे रहित अर्घात् स्त्रिया अथ और काँचिही वेनेवाली ब्राह्मी वा शस्त्रपुष्पी औपनीचो रूपके साथ मिलाकर तीन रात तक पिबे ॥ ६० ॥

मद्यमदि दिजं कश्चिदज्ञानात्पिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्त कथं तस्य मुच्यते  
केन कर्मणा ॥ ६१ ॥ पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मान्युदुषरम् ॥ कायपित्वा  
पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६२ ॥

(प्रश्न) यदि कोई ब्राह्मण विना जानेहुए मरिचिके पात्रमें अक्षयान करके दो बसका प्रायश्चित्त किसप्रकार होवाहै, और उस मनुष्यकी सुधि किस कर्मके अनुष्ठान करनेसे होतीहै ? ॥ ६१ ॥ (उत्तर) बालके पत्र, बेलके पत्रे, कुश, कमलके पत्रे, गूँधरके पत्रे इन सबका अक्षय बनाय कर तीन दिन तक पामकरे तब शुद्ध होवाहै ॥ ६२ ॥

साय मातस्तु यं सभ्यां प्रमादादिक्रमेत्सकृत् ॥

गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्स्नात्वा समाहितं ॥ ६३ ॥

जो मनुष्य असावधानतासे एकबार प्रातःकाळ वा संध्याकाळकी सभ्या न करे तो दूसरे दिन ज्ञानकरनेके उपरान्त एकामपिच हो एकसहस्रबार गायत्रीका अक्षय करे ॥ ६३ ॥

रोगाक्रांताऽपघाऽभ्यासात् स्थितं स्नानमपाद्बहिः ॥

प्रक्षाल्यैव श्वेदस्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य रोगसे व्याकुल हो या अथन्त परिश्रमके करनेसे स्नान और अथ न करसके वह अधिकभूषक "अक्षय" और बत्किचित् दान करके शुद्ध होवाहै ॥ ६४ ॥

गवां शृंगोदके स्नात्वा महानद्युपसगमे ॥

समुद्रदर्शने चापि प्यालवष्ट शुचिर्मवेत् ॥ ६५ ॥

सर्पसे कालाहुजा मनुष्य गौओंके सींगोंके जलमें वा गंगा यमुनाके संगमके स्थानमें स्नान करके फिर समुद्रका दर्शन करनेसे शुद्ध होवाहै ॥ ६५ ॥

पृथग्भानशृंगास्त्रिस्तु यदि वष्टस्तु ब्राह्मण ॥ हिरण्योदकसमिधं घृतं प्राश्य

१ "अक्षयुष्येणाम्" इस पात्रके दोमेसे उरका अर्ध और दोसे अर्धके शृंगोदके वृत्तके पत्रे, पैला हुमाहै ।

२ इति किञ्चित्पौ लक्ष्यमिति भ्येकतरोप । ३ अतिशयैः । ४ पृथग्भ्यामप्राधान्यैर्नैकं अतिशयप्रत्यय परिहायर्ष अक्षयितम् ।

५ ब्राह्मणप्राधान्य (अक्षय) पूर्वक अतिशयप्रत्ययवाचनार्हायर्ष अक्षयितम् ।

विशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं  
ग्रहनक्षत्रं दष्टा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥

जिस ब्राह्मणको वृक ( भेडिया ) कुत्ता, या गीदडने काटाहो वह सुवर्णसे शुद्धहुए जलके साथ घृतको भोजन करै तब वह शुद्ध होताहै ॥ ६६ ॥ ( परन्तु ) जिस ब्राह्मणीको कुत्ता, गीदड, भेडिया आदि हिंसक जन्तुओंने काटाहो तो वह उदयहुए ग्रह नक्षत्रोंके देखनेसे शीघ्र ही शुद्ध होजातीहै ॥ ६७ ॥

सत्रतरतु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥

सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥

यदि व्रती ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो तो वह तीन दिनतक उपवास करै, और घृतसहित यावक ( आधा पकाहुआ जौ वा कुलथी ) को भोजनकर व्रतकी समाप्ति करै ॥ ६८ ॥

मोहात्ममादासंलोभाद्भ्रतभंगं तु कारयेत् ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥

मोह वा असावधानतासे या लोभके वशसे जिसने व्रतभंग करदियाहै वह तीन दिन तक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै और फिर व्रतको धारण करै ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा  
विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥ क्षत्रियात्रं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ त्रिरात्रेण  
भवेच्छुद्धिर्यथा क्षेत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥ अभोज्यात्रं तु भुक्तानं स्त्रीशूद्रो-  
च्छिष्टमेव वा ॥ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ ७२ ॥

यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानसे दूसरे ब्राह्मणका जूठा भोजन करले तो वह दो दिन गायत्रीके जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७० ॥ यदि ब्राह्मण विना जानेहुए क्षत्री या वैश्यका जूठा अन्न भोजन करले तो वह तीन दिनतक गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७१ ॥ भक्षण न करनेयोग्य अन्नको, पूर्वभुक्तसे अवशिष्ट ( बचेहुए ) अन्नको, स्त्री और शूद्रके जूठे अन्नको, या भक्षण न करनेयोग्य मांसको जो मनुष्य भोजन करताहै, वह सात दिनतक जौकी लपसी ( दलिया ) को पिये तो शुद्ध होताहै ॥ ७२ ॥

असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥

तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ७३ ॥

जो जाति स्पर्श करनेके योग्य नहीं है उसके स्पर्श करनेवाले द्विजको स्नान करना योग्य है, जिसने उसका जूठा खायाहै वह छैः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करै ॥ ७३ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥

पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥

१ रातमें काटे तो दिन निकलतेही सूर्यको देखले तो शुद्धि होतीहै । दिनमें काटे तो सध्याको तारा देखकर शुद्धि होतीहै ।

८ पूर्वभुक्तावशिष्टमन्नम् ।

जिस ब्राह्मण, भूमी, और वैश्यने विद्या, मूत्र, वा मूरा जिसमें मिछी हो ऐसी कोई वस्तु  
अज्ञान ( मूत्र ) से बार्ई है, तो वह फिर संस्कारके ( पञ्चोपवीत इत्यादिके ) योग्य है ॥७४॥

षण मेखला ददं भैक्ष्यर्षय घृतानि च ॥

निवर्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ७५ ॥

उन द्विजातियोंको पुनःसंस्कारके समय मस्तक मुझाना, मेखलाका धारणकरना, दूधका  
प्रक्षण करना, भिक्षाका माँगना, और ब्राह्मणके धारण करना, सब कार्य करने स्त्री होगी ॥७५॥

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अतःस्पर्शशब्दुपिताम् ॥ प्रत्याञ्ज्य मृन्मयं भांडं सिद्धमन्न  
तथैव च ॥ ७६ ॥ गृहान्निष्कम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलपयेत् ॥ गोमयेनोप  
लिप्याय छेगेनाप्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥ व्राक्षीर्मंत्रैस्तु प्लुत तु हिरण्यकुक्ष्या-  
रिभिः ॥ तेनिवाम्युक्ष्य तद्देश्म शुष्यते नात्र संक्षयः ॥ ७८ ॥

जिस घरमें गुर्वा पडा है उसकी शुद्धि किस प्रकार होती है सो मैं कहता हूँ उस घरके मट्टीके  
पात्र और सिन्धुए अन्नको स्थागरे ॥ ७६॥ इन सब वस्तुओंको घरसे निकालकर फिर गोबर  
से घरको लिपाये और पीछे बरतके गोबरसे शूषितकरे ॥ ७७ ॥ ब्राह्म मंत्रको पढकर सुवर्ण  
और कुक्ष्याओंसे कक्षको घरमें छिन्नके तब उस गृहकी शुद्धि होमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७८॥

राजन्मैः अपथैर्वापि बलाद्विखलितो द्विजः ॥

पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रप्रयं घरेत् ॥ ७९ ॥

राजा अथवा अन्धस्य बाँडा जिस किसी ब्राह्मणके बलपूर्वक विखलित ( भेद मार्गसे  
अन्ध करके अमस्य वस्तुका भोजन कराय असत् मार्गमें ) करे तो यह ब्राह्मण तीन प्राण-  
पत्य करके फिर संस्कार करे ॥ ७९ ॥

शुना शैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नान विधीयते ॥

तद्बुच्छिष्टं तु संमाश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥

जिसको कुत्तेने स्पर्श किया हो वह स्नान करे, और जिसने मूत्र भोजन किया हो तो वह  
बलपूर्वक कृच्छ्रप्रव्रत करे ( तब मुक्त होता है ) ॥ ८० ॥

अतः पर प्रवक्ष्यामि सुतकस्य विनिर्णयम् ॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥

इसके पीछे सुतक अर्थात् आशीषके विषयका वर्णन करवाहूँ और उसके पीछे प्रायश्चि-  
त्तोंका वर्णन करूँगा ॥ ८१ ॥

एकाहाच्छुद्धघते विमो धोमिषेवसमन्वितः ॥

अप्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनीः ॥ ८२ ॥

१ "प्रयोष्यं" ऐसा पाठ हो तो 'महीके पात्रोंको कर्त और सिद्ध (अन्धके ) पकाने, अन्नको मद्य  
करे' ऐसा अर्थ अज्ञाना ।

२ छगलर्चनिका पुण्येय ।

३ जिस मंत्रके प्रसाद देवता हों उस वैदिक मंत्रको ब्राह्म मंत्र करते हैं ।

जो अग्नि और वेदकरके समन्वित ( युक्त ) है वह एकही दिनमें, जो केवल वेदपाठी ही हैं वह तीन दिनमें, और जो अग्निहोत्री और वेदपाठी नहीं हैं ऐसे निर्गुण ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ८२ ॥

व्रतिनः शास्त्रपठस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥

राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छंति ब्राह्मणाः ॥ ८३ ॥

शास्त्रके अनुसार व्रत धारणकरनेवाला, अग्निहोत्रका करनेवाला, और राजा, एवं ब्राह्मण जिसको अशौच होनेकी इच्छा नहीं करते, इन सब मनुष्योंके यहां अपने २ कर्मके अनुसार अशौच नहीं होता ॥ ८३ ॥

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ॥

वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण दशदिनके पीछे, क्षत्रिय वारह दिनके उपरान्त, और वैश्य पंद्रह दिनके पीछे, शूद्र एक महीनेके पीछे शुद्ध होता है ॥ ८४ ॥

सपिडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः ॥ पिंडांश्चोदकदानं च शावशौचं तथानु-  
गम् ॥ ८५ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥ षष्ठे चैव त्रिरात्रं  
स्यात्सप्तमे त्र्यहमेव वा ॥ ८६ ॥

एक वंशमें उत्पन्न होकर अपनेसे सात पीढियोंतक सपिंड सज्ञा होती है, और इनको ही पिंड प्रदान और तर्पण किया जाता है, पूर्वोक्त मरणाशौचभी उसका अनुगामी है, अर्थात् सपिंडोंके निमित्त करना योग्य है ॥ ८५ ॥ परन्तु सूतिकाके अशौचमें चार पीढीतक, दश रात्रि, और पाचवी पीढीमें छै. दिनतक, और छठी पीढीमें तीन राततक, और सातवीमें तीन दिनतक ही अशौच रहता है ॥ ८६ ॥

मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तारि यौनिकम् ॥ ८७ ॥

मरणके अशौचमें ( हीनवर्णकी ) दासी और अनुलोमी ( पतिसे नीच वर्णकी ) स्त्रियोंको पतिकी समान अशौच होता है, स्वामीके मरनेके उपरान्त जिस वंशमें उसका जन्म हुआ था उस वंशके अनुसार ही सूतक माना जायगा ॥ ८७ ॥

शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

चतुर्थे सप्तभिक्षं स्यादेष शावविधिः स्मृतः ॥ ८८ ॥

जिस मनुष्यने मृतक मनुष्यका स्पर्श किया हो ( उस मृतक शरीरके छूनेवाले मनुष्यको जो स्पर्श करता है और उसको जो छूता है वह उस समय पढ़नेहुए बस्त्रको बिना उतारेही सबस्र स्नानकरै, और शवस्पृष्ट चौथा अर्थात् तीसरे स्पर्शको छूनेवाला सात वरोंकी भिक्षा करके खाय, यही शवस्पर्शमे विधि कही गई है ॥ ८८ ॥

एकत्रु संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ॥ ८९ ॥



सौतके पुत्रका जन्म भयवा उसकी मृत्यु होनेपर एक समयमें व्याही हुई, एक परमें अनेक शानेशाही असवर्णा माताओंको पतिको समान (स्वामीके अनुसार) सूतक होगा, परन्तु यह सब पूषङ्ग रद्वीहो या मछग २ व्याहीगई हों वो अपनी २ जातिके अनुसार अशौच होगा ॥ ८९ ॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्न मृतसूतके ॥

पाचफान्न नवभाद्रं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ९० ॥

उष्ट्री, या मेढका दूध, अशौचान्न, और रसोद्वये ब्राह्मणका भक्ष और जो ( गरेका एकी वसाह ) भाद्रका भक्ष भोजन करवाहै उसको चांद्रायण व्रत करना योग्य है ॥ ९० ॥

सूतफान्नमपमाय यस्तु प्राश्नाति मानवः ॥

त्रिरात्रमुपयासः स्यादेकरात्रं जले यसेत् ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य अश्वमेधके निमित्त ( अर्थात् आज संध्या इत्यादि कर्म नहीं करना होगा ऐसा विचार कर ) अशौचान्नको खावाहै वह तीन दिनतक उपवास करके एक दिन जलमें निवास करे ॥ ९१ ॥

महापशुविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ॥

होम तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ९२ ॥

घातस्त्वतर्षशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥

सद्य एव विशुद्धिः स्यात्त मेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य दोनों ही अशौचमें महापशु ( काम्यपशु )को न करे, परन्तु शुष्क अन्न या फलसे नित्यका होम करे ॥ ९२ ॥ जन्म होनेके उपरान्त दशदिनके भीषमें ही निश्च बासककी मृत्यु होनाय उसकी शुद्धि उत्काराहरी होजातीहै, उसको जन्मका सूतक नहीं होता ॥ ९३ ॥

फुत नूढे प्रकुर्वीत उदकं पिंडमेष च ॥

स्वपाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेष च ॥ ९४ ॥

जो मूढ ( बौद्ध ) होमके पीछे बाळक मरजाय ही नाम और स्वपाका उच्चारण करके पपन और पिंड उसका करना होगा ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी यतिक्षीय मंत्रे पूषफूते तथा ॥

यज्ञे विषाहयाले च सद्यः शीघ्रं विधीयते ॥ ९५ ॥

विषाहोत्सवपक्षु अंतरा मृतसूतके ॥

पूर्वसकल्पितार्यस्य न दोषभात्रिरमधीत् ॥ ९६ ॥

ब्रह्मचारी और संन्यासीको और अशौचसे पहले संकल्प कियेहुए मंत्रके अपमें और यज्ञमें तथा जिस विषाहमें बृद्धिभाद्रवक होगवादे, उस विषाहमें ( विषाहपक्ष संस्कारमात्रका उपसंग्रह है ) तत्प्राप्तदी अशौचनिवृत्ति दामातीहै ॥ ९५ ॥ जो विषाह, उत्सव और यज्ञकी भीषमें अशौच दोषाय ही उस पूर्वसंकल्पित कार्यके करनेमें कोई दोष नहीं होगा, यह अत्रिऋषिका पपन है ॥ ९६ ॥

मृतसञ्जननोद्धं तु सूतकादौ विधीयते ॥

स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाश्चैत्र संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥

मरेहुए बालकके जन्म होनेके पीछे जो अशौच होताहै उसमें आचमनके द्वारा ब्राह्मणोके अंगका स्पर्श होतेही अशौच नहीं रहता, जो सूतिकाको स्पर्श न कियाहो तो ॥ ९७ ॥

पंचमेहनि विज्ञेयं संस्पर्शं क्षत्रियस्य तु ॥ सप्तमेहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ ९८ ॥ दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥ मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ९९ ॥

क्षत्रियका पाच दिनमें, वैश्यका सात दिनमें, और शूद्रका दशदिनमें स्पर्श होताहै, यह बुद्धिमानोंको जानना योग्य है ॥ ९८ ॥ और शूद्रके जन्म मरणमे एक मासतक अशौच होताहै, बुद्धिमानोंको ऐसा जानना योग्य है ॥ ९९ ॥

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्राद्धत्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १०१ ॥

चिरकालतक रोगी, कजूस, जो सर्वदा ऋणी रहै, धर्मकार्यसे रहित, मूर्ख, और जो स्त्रीमे अत्यन्त आसक्त हो ॥ १०० ॥ और जिसका चित्त जुयेमें अत्यन्त लगा हो सर्वदा पराधीनतामें रहनेवाला और श्राद्धदान रहित मनुष्यके दग्धहोकर मरम होवै तवतकही अशौच है ॥ १०१ ॥

द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्यात्पितुः सांतपनं कृतम् ॥ १०२ ॥ कुञ्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥ जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ १०३ ॥ क्लीबे देशांतरस्थे च पतिते व्रजितेपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥ पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥ अग्निहोत्राधिकार्यस्ति न दोषः परिवेदने ॥ १०५ ॥

परिवित्ति(१) मनुष्य दो प्राजापत्यको करै तौ वह शुद्ध होताहै, और परिवेत्तासे विवाहिता कन्याको एक प्राजापत्य करना होताहै, और कन्याकी माताको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करना योग्यहै, और कन्याके पिताको सान्तपन करना चाहिये ॥ १०२ ॥ बडा भाई यदि ( जो ) कुबडा, बौना, वावला, जन्मसे अंधा, जन्मसे बहरा, गूंगा, जनसमाजमें निंदित, तोतला, और वेदके पढनेमें असमर्थ हो तौ छोटे भाईका प्रथम विवाह होजानेपर उसे दोष नहीं लगेगा ॥ १०३ ॥ बडा भाई यदि नपुंसक, विदेशी, सन्यासी, पतित और योगशास्त्रमें ग्त हो ( योगाभ्यास करनेके कारण उसकी विवाहमें इच्छा नहीं हो ) तौ उसे भी परिवेदनमें दोष नहीं होगा ॥ १०४ ॥ जिस मनुष्यका पिता, पितामह, बडाभाई यह अग्निहोत्रके अधिकारी हुएहैं, पीछे यह मनुष्य ( प्रायश्चित्त करके ) अग्निहोत्रको ग्रहण करै तौ बडे भाईसे प्रथम विवाह करनेमें दोषी नहीं होगा ॥ १०५ ॥ ५

१ बडे भाईका विवाह होजानेक पहले ही जो छोटेका विवाह होजाय तो उस छोटे भाईको "परिवेत्ता" और बडेको "परिवित्ति" कहतेहैं ।

मार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतपि वा ॥

अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकस्युगे ॥ १०६ ॥

स्त्रीके मरनेपर भयवा दूरदेशमें जानेपर भयवा पातक छानेपर पुत्र अभिहोत्रादि कर्मोच्च  
अधिकारी होताहै ॥ १०६ ॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्य रोगसमन्वितः ॥

अनुद्घातस्तु कुर्वीत शंसस्य वचनं यया ॥ १०७ ॥

यदि ज्येष्ठ भाईकी मृत्यु होगई हो, या वह सर्वदा रोगी रहताहो तो उसकी आज्ञा लेकर  
छोटा भाई शंस अपिके वचनके अनुसार अपना विवाह करे ॥ १०७ ॥

नामयः परिवर्द्धति न वेदा न तर्पासि च ॥

नच भ्रातृं कनिष्ठो वै विना वैषाम्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥

ज्येष्ठ भाईकी विना आज्ञाके छोटा भाई अभिहोत्र नहीं करसकता, वेद नहीं पढ़ सकता,  
तप नहीं करसकता, और न भ्रातृ ही कर सकताहै ॥ १०८ ॥

तस्माद्धर्म सदा कुर्याच्च्युतिस्मृत्युदित च यत् ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्य यश्च स्वर्गस्य साधनम् ॥ १०९ ॥

जो श्रुति स्मृतिमें कहेहुए नित्य (संभ्राज्यादि) वा नैमित्तिक (जातकर्मआदि) और  
जो स्वर्गके देनेवाले काम्य कर्म हैं, उनका अनुष्ठान कर धर्मका संभय करे ॥ १०९ ॥

एकैक वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च द्वासयेत् ॥

अमावास्यां न मुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥ ११० ॥

शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको केवल एक ही मास खाव, इस दिनसे प्रारंभ कर पूर्वमासक एक  
मासमें बढ़ाता जाय अर्थात् पूर्वमासक विधिकी संख्याके अनुसार मासोंकी संख्या  
होगी और कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे प्रतिदिन एक २ मासको कम करे, और अमावस्याको  
अपवास करे, ऐसा करनेसे चान्द्रायण ब्रत होताहै, यह चान्द्रायण ब्रतकी विधि है ॥ ११ ॥

एकैकं प्रासमभीयाभ्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥

अयं पर च नाभीपादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥

इत्येतत्कथितं पूर्वैर्महापातकनाशनम् ॥ १११ ॥

पहले तीन दिनतक एक २ मासका भोजन करे; और अगले तीन दिनमें सर्वथा भोजन  
न करे इसे अतिकृच्छ्र कहतेहैं। पहले आचार्योंने इस ब्रतको ही महापातकोंका नाशकरनेवाला  
कहा है ॥ १११ ॥

वेदाम्यासरत शान्त महायज्ञक्रियापरम् ॥ न स्पृशतीह पापानि महापातकना  
न्यपि ॥ ११२ ॥ वायुभक्तो दिया तिष्ठेद्वारिं नीत्वाप्सु स्यदक् ॥ जप्त्वा सहस्रं  
गायत्र्यां शुद्धिवृद्धयवाहते ॥ ११३ ॥

वेदके अभ्यासमें रत, समाशील, और महायज्ञक करनेवाला मनुष्यको ब्रह्मत्यादिकोंका  
पाप भी स्पृश नहीं करसकता ॥ ११२ ॥ वायुका पान कर दिनमें सूपकी और देवता री,  
॥ ११३ ॥

और रात्रिमें जलमें निवास कर सहस्रवार गायत्रीका जप करनेसे ब्रह्महत्याके अतिरिक्त  
-सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ११३ ॥

पद्मोद्वंवरविल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥

एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कमलपत्र, गूलरके पत्ते, वेलपत्र, कुश, पीपलके पत्ते और ढाकके पत्ते इन सबका काथ  
बनाकर इस जलको पानकरै इसका “पर्णकृच्छ्र” नाम कहाहै ॥ ११४ ॥

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम् ॥

जग्ध्वा परेद्व्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ११५ ॥

गायकौ दूध, गोमूत्र, गायकौ दही, गायकौ गोवर, और घी, इस पंचगव्यका पानकरै,  
और दूसरे दिन निर्जल उपवास करै, इसको “सान्तपनकृच्छ्रव्रत” कहतेहैं ॥ ११५ ॥

पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥

सप्ताहेन तु कृच्छ्रोयं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ११६ ॥

ऊपर कहेहुए पंचगव्यमेंसे एक २ पदार्थको एक २ दिन ( किसी दिन दूध किसी दिन  
दही आदि ) इस प्रकारसे पाँच दिन भोजन करै, छठे दिनके उपरान्त सातवें दिन उपवास  
करै, इस व्रतको “महासान्तपनकृच्छ्र” कहतेहैं ॥ ११६ ॥

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातरुपहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नाश्रीयात्प्राजा-

पत्यो विधिः स्मृतः ॥ ११७ ॥ सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥

अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥ ११८ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्याव-

द्वास्य विशेषमुखे ॥ एतद्भासं विजानीयाच्छुद्धयर्थं कायशोधनम् ॥ ११९ ॥

तीन दिन सायंकालको और तीन दिन प्रातःकालको, और तीन दिन विना मागेहुए जो  
मिलजाय ऐसे भोजनको करै, इसके पीछे तीनादिनतक उपवास करै ( इन बारह दिनमें  
होनेवाले व्रतको ) “प्राजापत्य ” कहतेहैं ॥ ११७ ॥ इस व्रतमें सायंकालके समय बारह  
ग्रास, और प्रातःकालके समयमें पंद्रह ग्रास, और विना मागेहुए चौबीस ग्रास खाय, इसके  
पीछे तीन दिनतक उपवास करै ॥ ११८ ॥ यह सभीको जानना उचित है कि इस प्रायश्चि-  
त्तके, अंगसे उत्पन्नहुए शरीरकी शुद्धि करनेवाले भोजनका, ग्रास मुरगेके अंडेकी समान हो-  
या जितना ग्रास उसके मुखमें स्वच्छन्दतासे जा सकै उसके निमित्त वही ग्रास श्रेष्ठ है ॥ ११९ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेदापरुहमुष्णं पिवेत्पयः ॥ त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो  
दिनत्रये ॥ १२० ॥ षट्पलानि पिबेदापस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ पलमेकं तु  
चै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ १२१ ॥

तीन दिन छै पलपरिमित तनक गरम जल पिये; और तीन दिन तीन पलपरिमि-  
त गरम दूध पिये, और तीन दिनतक एक पलपरिमित गरम घृतका पान करै, और ती-  
नदिनतक वायु भक्षण करै, ऐसा अनुष्ठान करनेसे “तप्तकृच्छ्र” व्रत होताहै ॥ १२० ॥ १२१

अथ ह त्वघिना भुक्ते अथ हं भुक्ते च सर्पिणा ॥ क्षीरेण तु अथ हं भुक्ते वायुमत्ता  
दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥ त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिणा ॥ एतदेव व्रत  
पुण्य वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२३ ॥

तीन दिनतक तीन पत्रपरिमित दहीका, और तीन दिनतक एक पत्रपरिमित घृतका और  
तीन दिनतक तीन पत्रपरिमित घृतका, पानकरी, और तीन दिनतक वायुको मद्यपन करे,  
इसीका " वैदिककृच्छ्र" व्रत कहावेई ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

एकभुक्तेन नक्तेन तर्धवापायितेन च ॥

उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् ॥ १२४ ॥

एक दिनमें केवल एकहीवार भोजन करे, एक दिन रात्रिको एक दिन बिना मगिष्ठुप  
भोजन करे, और एक दिन उपवास करे, इस प्रकारसे "पादकृच्छ्र" व्रत होताई ॥ १२४ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥

द्वादशाहापवासेन पराकं परिकीर्तितं ॥ १२५ ॥

और इच्छीस दिनतक केवल दूधकी पीकर रहे इस प्रकारसे "कृच्छ्रातिकृच्छ्र" व्रत  
होताई, और बारह दिनतक उपवास करे इसको "पराक" व्रत कहावेई ॥ १२५ ॥

पिप्याकश्चामतत्रासुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥

एकैकमुपवासं स्यात्सौम्यकृच्छ्रं प्रकीर्तितं ॥ १२६ ॥

चार दिन तककरात्र प्रतिदिन खट, कषा मठा, अन्न, सत्तु, इनका एक ० प्राप्त भोजन  
करे, और एक दिन उपवास करे इस व्रतका नाम "सौम्यकृच्छ्र" कहाई ॥ १२६ ॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥

तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयं पंचदशाह्निकं ॥ १२७ ॥

इन पाचोंमेंसे क्रमानुसार एक २ का तीन २ दिनतक आशुषि करनेसे पत्रह दिनमें जो  
व्रत होताई उसीका नाम "तुलापुरुष" है ॥ १२७ ॥

कपिलात्मास्तु दुग्धाया धारोप्य यत्पयं पिबेत् ॥

एष म्यासकृतं कृच्छ्रं श्वपाकमपि क्षापयेत् ॥ १२८ ॥

दुग्धात्तुमा कपिलमगळके स्वामाषिक गरम दूधको जो मनुष्य पीताई वह म्यासकीका व्रत  
का ( किया ) हुआ "कृच्छ्र" है, वह श्वपाकको भी क्षुद्र करदेताई ॥ १२८ ॥

निशायाम् भोजनं दीप तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥ अनाविष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथो  
दितम् ॥ १२९ ॥ अग्निष्टामादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥ यत्फलं समवा-  
प्नोति तथा कृच्छ्रस्तपाधना ॥ १३० ॥

( दिनमें अनाहार रहकर ) रात्रिमें भोजन करनेका नाम "नक्तमेव" है, जिस पापका  
प्रायश्चित्त नहीं कहाई उसका यह प्रायश्चित्त चान्द्रायण व्रत कहाई ॥ १२९ ॥ ( हे तपस्वी  
मनुष्यो ! ) दुग्धीनी दक्षिण्य देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जिस प्रकारका फल प्राप्त  
होताई; प्रथम कहेहुए कृच्छ्रके करनेसे भी उसी प्रकारका फल प्राप्त होताई ॥ १३० ॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतोनित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥

शौचमृद्वार्यभिरतो गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥ १३१ ॥

जो मनुष्य वेदके पढनेमें तत्पर, क्षमाशील, और धर्मशास्त्रको विचारकर उसके उपदेशके अनुसार शौच और आचारका पालन करतेहैं, वह गृहस्थी होनेपरभी मुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ १३१ ॥

उक्तमेताद्विजातीनां महर्षेभ्यतामिति ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

इस प्रकारसे यह द्विजातियोंका धर्म कहा, इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणोंसे पतित होतेहैं उसका वर्णन करताहूँ, हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, सन्यास, मन्त्रसाधन, देवताओंकी आराधना, यह छैः कर्म स्त्री शूद्रोंको पतित करनेवाले हैं ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तारि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

जो स्त्री स्वामीके जीवित रहतेहुए उपवास करके व्रत धारण करतीहै, वह स्त्री अपने स्वामीकी आयुको हरण करतीहै, और अन्तमें वह नरकको जातीहै ॥ १३४ ॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थके स्नान करनेकी इच्छा है तो वह अपने पतिके चरणोदकका पान करे, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवान्के परम पद ( कैलास वा वैकुण्ठ ) को प्राप्त करसकैगी ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तारि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

स्वामीकी जीवित अवस्थामें वा मृत्युकी अवस्थामें स्त्री वामाङ्गी है, और पुरुष दाहनी ओरका भागी है। परन्तु श्राद्ध, यज्ञ, और विवाहके समयमें स्त्री दहिनी ओरको ही बैठतीहै ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥

पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥ ॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा ( बृहस्पति ) ने इन स्त्रियोंको शुद्धता दान कीहै, और अभिने भी सम्पूर्ण शुद्धता दीहै, इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र हैं ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्रिज उच्यते ॥ विद्यया याति विप्रं च श्रोत्रिय-  
स्त्रिभिरैव च ॥ १३८ ॥ वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयत् ॥

तदासी वेदविद्योक्तो घचन तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥ एकोपि वेदविद्धर्म य  
व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥ स ज्ञेय परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतिः ॥ १४० ॥

ब्राह्मणके ब्रह्ममें जन्म लेनेसे ब्राह्मण होताहै, और जब उसका सस्कार होताहै ( उपनयन होताहै ) तब उसको द्विज कहतेहैं, विद्यासे विप्रत्व प्राप्त होताहै, और उक्त जन्म सस्कार और विद्या इन तीनोंसे "त्रिविध" पदका पाच्य होताहै ॥ १३८ ॥ जो ब्राह्मण वेद शास्त्रको पढते और उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करतेहैं उनको वेदवित् ( वेदका ज्ञाननेवाला ) कहा जाताहै, उनके बचन पवित्रताके देनेवाले हैं ॥ १३९ ॥ वेदका ज्ञाननेवाला एक भी ब्राह्मण जिस ब्रह्मका आचरण करताहै, वही भेद धर्म है, और मूर्खोंके सहजों बल करनेपर भी वह धर्म नहीं होता ॥ १४० ॥

पावका इव दीप्यन्ते जपहोर्मिद्विजोत्तमाः ॥ प्रतिग्रहेण नश्यति वारिणा इव पावकः ॥ १४१ ॥ ता प्रतिग्रहजान्दोषा प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥ नाशयति हि विदांसो वायुर्मेघानिवाशरे ॥ १४२ ॥

भेद ब्राह्मण रूप होमादिके द्वारा अभिधी समान शीतिमान् होजातेहैं, और सबसे किस प्रकार अभिधे वेदका नाश होताहै वही प्रकारसे जो ब्राह्मण प्रतिग्रह ( अर्थात् दान ) को लेतेहैं उनका वेद भी नष्ट होजाताहै ॥ १४१ ॥ जिस प्रकारसे हीमण पवन आकाशमें स्थित सम्पूर्ण मेघोंको छिन्न भिन्न कर देताहै, वही प्रकारसे विद्वान् भेद ब्राह्मण भी उस प्रतिग्रहसे उत्पन्नहुए दोषोंको प्राणायामसे दूर करदेताहै ॥ १४२ ॥

भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥ लक्ष्मीर्बल यदास्तेज आयुश्चैव प्रहीयते ॥ १४३ ॥ यस्तु भोजनशालापामासनस्य उपस्पृशेत् ॥ तच्चात्र नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायण चरेत् ॥ १४४ ॥ पात्रोपरि स्थितं पात्रे यस्तु स्थाप्य उपस्पृशेत् ॥ तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायण चरेत् ॥ १४५ ॥

जो ब्राह्मण भोजन करनेके उपरान्त आचमन कर गीले हाथ रक्ताहै अर्थात् अंगोष्ठे अत्रिसे हाथ नहीं पोंछेता उसके यहां लक्ष्मी कमी निवास नहीं करती, और बल, तेज, ब्रह्म, आयु इन सभीकी हानि होतीहै ॥ १४३ ॥ जो मनुष्य भोजनके गृहमें ( भोजनके ) आसन पर स्थित होकर कुड़ा करताहै; उसका भ्रम भोजन करनेके योग्य नहींहै और जो यदि भोजन भी करेताहै तो वह चांद्रायण प्रव करे ॥ १४४ ॥ और जो मनुष्य आसन पर स्थित पात्रके ऊपर पात्र रखकर उस पात्रके अङ्गसे आचमन करताहै उसके अङ्गों भी भोजन न करे और जो भोजन करेगा तो उसे चांद्रायण प्रव करना होगा ॥ १४५ ॥

अमद्भया य यदत्तं विप्रेर्षी देविके फती ॥

न देवास्तुतिमायाति दातुर्मयति निष्कलम् ॥ १४६ ॥

देवताके बर्हस्पकरके जो पत्र क्रियाजाता है इसमें अद्वारहित जो कुछ ब्राह्मण वा अभिधे अथवा क्रियाजाताहै उसके देनेसे देवता एम नहीं हाने किन्तु वह अमार्थिक प्रदान कियेहुए भी निष्कल होजातेहैं ॥ १४६ ॥

इस्तं प्रसालयित्वा यः पिबेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥

तदन्नमसुरिर्भुतं निराशाः पितरो गताः ॥ १४७ ॥

जो द्विजोंमें उत्तम भोजन करनेके अनन्तर हाथोंको धुलाकर उसी शेष जलको पीतेहैं उस श्राद्धकर्मके अन्नको पितरलोग स्वीकार नहीं करते, वह मानों राक्षसोंने खाया, पितर निराश होकर चलेगये ॥ १४७ ॥

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः ॥

नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥ १४८ ॥

वेदसे श्रेष्ठ और कोई शास्त्र नहीं है, मातासे श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें दानकी अपेक्षा उत्तम मित्र नहीं है ॥ १४८ ॥

अपात्रेष्वपि यदत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥

हव्यं देवा न गृह्णांति कव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥

परन्तु जो दान कुपात्रको दियाजाता है वह सात पीढीतक दग्ध करताहै, अपात्रमें ( कुपात्रमें ) दियाहुआ हव्य ( देवताओंके योग्य ) कव्य ( पितरोंके योग्य ) जो अन्न उसे देवता वा पितर ग्रहण नहीं करते ॥ १४९ ॥

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥

श्वानविष्टासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥

लोहेके पात्रसे जो अन्न दिया जाताहै वह अन्न सब प्रकारसे भोजन करनेवालेको विष्टाकी समान वरजनेयोग्य है, और उसका दाता नरकको जाताहै ॥ १५० ॥

पित्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥

न दद्याद्दामहस्तेन आयसेन कदा च न ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य पीतल अथवा लोहेके पात्रमें रखकर अन्नको वाँचे हाथसे कदापि न परोसे ॥ १५१ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितृन् ॥ अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेतां नरकं च तौ ॥ १५२ ॥ अभावे मृन्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥ १५३ ॥

जो मनुष्य श्राद्धमें अपने पितरोंकी तृप्तिके अभिप्रायसे मट्टीके पात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै, उस अन्नको देनेवाला और खानेवाला दोनोंही नरकको जातेहैं ॥ १५२ ॥ और जो अन्यान्य पात्र न मिले तौ श्राद्धीय ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मट्टीके पात्रमें परोसदे, कारण कि, पवित्र ब्राह्मणोंके सत्य असत्य सभी वचन प्रामाणिक हैं ॥ १५३ ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥ भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥ न च कांस्येषु भुंजीयादापद्यपि कदाचन ॥ मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥ कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः ॥ १५६ ॥

यदि संन्यासीको सुवर्णके पात्र, लोहेके पात्र, चांदी, अथवा कासीके पात्रमें जो भिक्षा दीजातीहै उसका वर्म नहीं होता, और उससे प्राप्तहुई भिक्षाको खानेवाला भिक्षु (संन्यासी) पापका भोक्ता होताहै ॥ १५४ ॥ भिक्षुक कधी अधिक विपत्तिके आजानेपर भी कासीके



पात्रमें भोजन न करे, कारण कि, जो संन्यासी कांसीके पात्रमें भोजन करतेहैं, उन्हें मल मद्यपका दोष कहाहै ॥ १५५ ॥ कांसीके पात्रकी जो अपवित्रता है, और गृहस्थमें जो पाप है, कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाला भिक्षुक इन दोनोंके पापोंका अधिकारी होताहै ॥ १५६ ॥

अत्राप्युदाहरति ॥ सीवर्णायसताम्रेषु कांस्थरीप्यमयेषु च ॥

भुजन्मिसुत्रं दुप्येत दुप्येषैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥

इस विषयमें ( किसीने ) कहाहै कि, सुवर्ण, खेरा, तांबा, कांसी, चांदी, इनके पात्रमें भिक्षुक भोजन करनेसे दोषी नहीं होता, परन्तु इन सब पात्रोंके ग्रहण करनेसे दोषी होताहै ॥ १५७ ॥

यतिहस्ते जल दद्याद्रिसां दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तत्रैस मरुभा तुल्य तज्जल साग रोपमम् ॥ १५८ ॥ चरेन्माधुकरां पृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥ एकाग्र नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥ १५९ ॥

प्रथम संन्यासीके हाथमें जल दे, फिर मिखा दे, और इसके पीछे जल दे, तो वह मिखा मरुपर्यंतकी समान होजातीहै, और वह जल समुद्रकी समान होजाताहै ॥ १५८ ॥ यती म्लेच्छके गृहसे भी भ्रमर ( मोंरे ) की बुधिया अवलम्बन करे ( अर्थात् क्लेश स्वादोंसे अन्नका समग्र करे ) परन्तु एकके खानका अन्न भक्षण न करे चाहे उसका देनेवाला बृहस्पतिकी भी समान क्यों न हो ॥ १५९ ॥

अनापदि शरेद्यस्तु सिद्ध मैत्रं गृहे वसन् ॥ दशरात्र पिषदञ्जमापस्तु घ्यहमेव च ॥ १६० ॥ गोमूत्रेण तु समिन्न यावत्क पृतपायितम् ॥ एतदभिमिति प्रोक्त भगवानत्रिरस्रधीत् ॥ १६१ ॥

और जो प्रति गृहमें रहकर विपत्तिके बिना ही अये ( इच्छानुसार ) सिद्धप्य जलकी मिखा करवाहै वह दश दिनतक ब्रह्म और तीन दिनतक शुद्ध जलका पान करे ॥ १६० ॥ गोमूत्रसे मिछेहुए और पृतसे पकायेहुए जौका नाम 'अन्न' है वह भगवान् अत्रिजीने कहाहै ॥ १६१ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥

अध्यगः क्षीणवृत्तिश्च पठते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२ ॥

ब्रह्मचारी, यती, विद्यार्थी, गुरुकी प्रतिपाज्या करनेवाला, भिक्षु और बरिद्र, इन छै-जनोको भिक्षुक कहातेहैं ॥ १६२ ॥

पण्मासान्कामयेन्मर्त्यां गुर्विणीमेव धे स्त्रियम् ॥

आर्दतजनानावृष्वमेव धर्मो न हीयते ॥ १६३ ॥

गर्भवती स्त्रीके सग छै महीनेतक विषय करे, और फिर बाळक होनेके उपरान्त जबतक बाळकके हाँव न बपजयावै तयतक विषय न करे इस प्रकारसे धर्म मष्ट नहीं होताहै ॥ १६३ ॥

ब्रह्महा प्रथम धेव द्वितीय गुरुतल्पगः ॥ तृतीय तु सुरापेय चतुर्थ स्तयमेव च ॥ १६४ ॥ पापानां धेव संसर्ग पंचम पातक महत् ॥ १६५ ॥ एषामेव

विशुद्धयर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥ त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथ-  
क्पृथक् ॥ १६६ ॥

बालकके जन्महोनेके पीछे पहले महीनेमें ब्रह्महत्याका, दूसरेमें गुरुपत्नीमें गमनका, तीस-  
रेमें सुरापान, और चौथेमें चोरीकरनेका ॥ १६४ ॥ पाचवेंमें गाढ ससर्ग करनेका, पाप  
लगताहै ॥ १६५ ॥ इन पापोंसे शुद्धहोनेके निमित्त क्रमानुसार तीन वर्षतक व्रत करे तब  
ब्रह्महत्याके पापसे भी मुक्त होसकताहै और चतुर्विध अन्य पातकोंसे भी पृथक् पृथक् कृच्छ्र-  
करनेसे मुक्त होताहै ॥ १६६ ॥

अर्द्धं तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥

षड्भागो द्वादशश्चैव विट्शूद्रयोस्तथा भवेत् ॥ १६७ ॥

क्षत्रीको ब्रह्महत्याका ब्राह्मणसे आधा पाप और वैश्यको छठा भाग, और शूद्रको बार-  
हवाँ भाग ब्रह्महत्याका पाप लगताहै ॥ १६७ ॥

त्रिन्मासान्नक्तभर्शनीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥

स्त्रीघाती शुद्धयतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेव वा ॥ १६८ ॥

स्त्रीका मारनेवाला मनुष्य तीन महीनेतक नक्तव्रत करे, पृथ्वीमें शयन, और एक वर्षतक  
कृच्छ्रव्रत करे तब शुद्ध होताहै ॥ १६८ ॥

रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥

एतेषां यस्तु भुंक्ते वै द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥

धोबी, नट, ( नाटिका इत्यादिमें सजकर जो जीविका निर्वाह करतेहैं ) वेणुकर्मोपजीवी  
( डोम ) इनके यहाके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करताहै वह चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध  
होताहै ॥ १६९ ॥

सर्वाल्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥

पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरत्रवीत् ॥ १७० ॥

सम्पूर्ण अंत्यजोंके साथ जाने और उनके द्रव्यके भोजन करने एवम् उनके साथ  
बैठनेसे पराव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै, यह भगवान् अत्रिजानें कहाहै ॥ १७० ॥

चांडालभांडे यत्तोर्यं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ॥ गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिद्व्य-  
हान्यपि ॥ १७१ ॥ संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाप्युदक्यया ॥ अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽ-  
श्रीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥ १७२ ॥

जो ब्राह्मण चांडालके पात्रका जल पीताहै वह सत्ताईस दिनतक गोमूत्रसे मिलेहुए जौ  
भोजनकरे तब शुद्ध होताहै ॥ १७१ ॥ यदि जिस ब्राह्मणने चांडाल वा ऋतुमती स्त्रीके स्पर्श-  
किये हुए पक्वान्नको अज्ञानतासे भोजन कियाहै तौ वह आधा प्राजापत्य करे ॥ १७२ ॥

चांडालान्नं यदा भुंक्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः ॥ चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपर्न  
चरेत् ॥ १७३ ॥ षड्वात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥ त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो  
दानं दत्त्वा विशुद्धयति ॥ १७४ ॥

यदि चांढाळके यहाँके अन्नको चारों वर्षोंन मोजन कियाहै, तो उनकी शुद्धि इस प्रकारसे होतीहै, ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै क्षत्री सांवपनको करै ॥ १७३ ॥ और वैश्य छे' विसतक व्रत और पंचगव्यका पान करै, और दूध तीन रात्रितक व्रत करके यत् किंचित् पान करै, तब उनकी शुद्धि होतीहै ॥ १७४ ॥

ब्राह्मणा वृक्षमारूढभंडालो मूलसस्पृश ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ्य भवेत् ॥ १७५ ॥ ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासा' ज्ञानमाचरेत् ॥ नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृत प्राश्य विशुद्धयति ॥ १७६ ॥

( मन्त्र—) जिस ब्राह्मणने वृक्षपर चढ़कर फल खायाहै और उस समय उस वृक्षकी जड़को चांढाळने छूँलियाहो तो उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥ १७५ ॥ ( उत्तर—) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह ब्राह्मण बर्रोंसहित स्नान करै, और एक दिन नक्तभोजन करै पदचान् घृतका पान करै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ १७६ ॥

एकः वृक्ष समाकूढभंडालो ब्राह्मणस्तथा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ्य भवेत् ॥ १ ॥ ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासा' ज्ञानमाचरेत् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगम्येन शुद्धयति ॥ १७८ ॥

( मन्त्र—) जो ब्राह्मण और चांढाळ एकही वृक्षपर चढ़कर वहाँ स्थित फलोंको मक्षण करतेहैं तो उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७७ ॥ ( उत्तर—) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर बर्रोंसहित स्नान करके अहोरात्र ( एक दिन एक रात ) उपवास करै, पचाव पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि हातीहै ॥ १७८ ॥

एकशाखासमारूढभंडालो ब्राह्मणो यदा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ्य भवेत् ॥ १७९ ॥ त्रिरात्रोपोपितो भूत्वा पंचगम्येन शुद्धयति ॥ स्त्रियो म्लेच्छस्य सपर्काच्छुद्धि' सांतपने तथा ॥ १८० ॥ तप्तकृच्छ्रं पुन' कृत्वा शुद्धिरेषामिधीयते ॥ १८१ ॥

( मन्त्र—) जो ब्राह्मण और चांढाळ एकही वृक्षकी शाखापर चढ़कर फलोंको मक्षण करतेहैं तो उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७९ ॥ ( उत्तर—) वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यका पानकरै तब शुद्ध होतीहै ॥ १८० ॥ स्त्रियोंको म्लेच्छके साथ संसर्ग होनेपर सांवपन कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होतीहै, और पीछेसे तप्तकृच्छ्रके करनेसे शास्त्रकारोंन उनकी शुद्धि कहीहै ॥ १८१ ॥

स धर्तेत यथा भार्या गत्या म्लेच्छस्य संगताम् ॥ सधैलं ज्ञानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥ सगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुन' ॥ १८३ ॥

म्लेच्छने जिसका संग कियाहै ऐसी भार्याके साथ संमोग करनेवाला बर्रसहित स्नान करै और केचल घृतकाही भोजन कर तप्तकृच्छ्र करै तब शुद्ध होतीहै और भिसने संतानके निमित्त ऐसी स्त्रीका संग कियाहो वह भी उपरोक्त व्रतके करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

चंडालम्लेच्छपंचकपालव्रतपारिण ॥

अकामत' स्त्रियो गत्या पाराकेण विशुद्धयते ॥ १८४ ॥

चाडाल, म्लेच्छ, श्वपच, कपालव्रतधारी ( अघोरी ) जिस मनुष्यने अज्ञानतासे इनकी स्त्रियोंके साथ गमन कियाहै तौ वह पराकत्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८४ ॥

कामतस्तु प्रसूतां वा तत्सर्मा नात्र संशयः ॥

स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥

यदि जानकर इन स्त्रियोंमें जिस मनुष्यने गमन कियाहै, अथवा संतान उत्पन्न होनेपर प्रसूतास्त्रीके सग भोग करनेवाला पुरुष स्त्रीकी समान जातिमें होजाताहै इसमें कुछ भी संदेह नहीं कारण कि वह पुरुष ही उस स्त्रीकी सतान होकर जन्म लेताहै ॥ १८५ ॥

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्रं कुरुते द्विजः ॥ तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १८६ ॥ केशकीटनख-स्त्रायु अस्थिकण्टकमेव च ॥ स्पृष्ट्वा नद्युदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

जो ब्राह्मण तेल वा घृतसे उवटन करके ( विना स्नान किये ) शौचको जाताहै, अथवा लघुशुका करताहै अथवा जो ब्राह्मण तैल वा घृतसे उवटन करके चाण्डालको स्पर्श करताहै वह पंचगव्यका पान कर एक दिन रात्रितक उपवास करके शुद्ध होताहै ॥ १८६ ॥ केश, कीट, नख, स्त्रायु, अस्थि और काटोंको जो स्पर्श करताहै वह नदीके जलमे स्नान कर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८७ ॥

मत्स्यास्थि जंबुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥

हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥ १८८ ॥

मच्छीकी अस्थि, शृगालकी अस्थि, नख, शुक्ति ( शीपी ) और कौडी इनके स्पर्श करनेसे स्नानकर, सुवर्णसे शोधित गरम घीका भोजन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १८८ ॥

गोकुले कंदुशालायां तैलचक्रेक्षुयंत्रयोः ॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

गोकुल ( ग्वाल ) कंदुशाला ( भट्टी ) तेल निकालनेका कोल्हू, और ईख पेलनेका कोल्हू, स्त्री और रोगीका शौचाशौच विचारके योग्य नहीं है, अर्थात् यह सबही पवित्र है ॥ १८९ ॥

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥ नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥ पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभिः ॥ भुंजते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यंति कर्हिचित् ॥ १९१ ॥ असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते ॥ अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुंचति ॥ १९२ ॥ विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥ तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ १९३ ॥ स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥ बलात्रारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥ १९४ ॥ न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥

क्रिये देवताओंके जारत्वसे ऋ भी वृषित नहीं होती, प्राण्यन वेदोक्त कर्म यज्ञिय हिंसा इत्यादिक ) करनेसे वृषित नहीं होते ( ताकाव आदिमें स्थित ) अथ विद्या मूत्रके स्पर्श होनेसे भी अनुद्ध नहीं होता अग्नि अपवित्र वस्तुओंको वृष्यकरके भी अपवित्र नहीं होती ॥ १९० ॥ प्रथम क्रियोंको पत्रमा, गंधर्व, अग्नि इत्यादि देवता भोग करतेहैं, पीछे मनुष्य भोगतेहैं । वह किछी प्रकारसे भी ( मानसादि सामान्य पापसे ) दुष्ट नहीं होती ॥ १९१ ॥ असवण ( इतरवर्ण ) पुरुषका जो स्त्री गर्भ धारण करतीहै वह गर्भिणी स्त्री जपतक संतान उत्पन्न न करे तपतक अनुद्ध रहतीहै ॥ १९२ ॥ संतान जन्मके पीछे वह स्त्री जब अस्तुमयी होतीहै तब वह कांचन ( अग्नि ) समान शुद्ध होजातीहै ॥ १९३ ॥ स्त्रीके सब प्रकारसे अस्वीकार व्यवस्थामें ( बिना राजीके ) यदि कोई छलसे या धडसे या चोरीसे उससे मिले ॥ १९४ ॥ जो इस प्रकार दुष्टा हुई स्त्रीको त्याग करना उचित नहीं, कारण कि इस कार्यमें स्त्रीकी इच्छा नहीं थी, पीछे अतुकाळके उपस्थित होनेपर इस स्त्रीक साथ संसग करना योग्य है ( इससे प्रथम संसर्ग न करे ) कारण कि अतुकाळके जानेपर स्त्रियें शुद्ध होतीहैं ॥ १९५ ॥

रजकधर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ केशवमेदमिच्छाम्य संतते अत्यजा  
स्मृता ॥ १९६ ॥ पतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ कृष्या  
न्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव सद्गमम् ॥ १९७ ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी स्लेच्छेद्य  
पापकर्मभिः ॥ प्राजापत्येन शुद्धयेत ऋतुप्रसवणेन तु ॥ १९८ ॥ बलोद्धृता  
स्वयं पापि परमेरितया यदि ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्धय  
ति ॥ १९९ ॥ मारुधदीर्यतपसां नारीणां यद्भजो भवेत् ॥ न तेन तद्गत तासां  
घिनश्यति कदाचन ॥ २०० ॥

रजक, धर्मकार, नट ( नाटक इत्यादिको करके जीविका निर्वाह करनेवाले ) बुरुड ( जो  
घांसकी बालियाँ बनातेहैं ) पीस, कलाक, मीस इन साठ जातियोंको अत्यज कहतेहैं ॥ १९६ ॥  
जानकर जो स्त्री इनसे अपवा जो मनुष्य इनकी ग्रीमें गमन करताहै और जो इनके गहोंका  
अन भोजन करताहै, वा दान लेताहै उसका प्रायश्चित्त कृष्णाम्बु ( एक वर्षतक एक ० करके  
फनानुसार प्राजापत्य प्रथ ३ प्राजापत्य ) करना योग्य है, और जिसने विद्या जाने कियाहै  
वद धान्त्रायण करे तब शुद्ध होताहै ॥ १९७ ॥ जो स्त्री केशव एकहीवार स्लेच्छेद्य वा  
( इसकी समान ) पापी ( चांडाल वा अत्यन्त पापी इत्यादि ) से भोगी गईहै, वद प्राजा  
पत्य प्रथका अनुष्ठान करे; और रजस्वला होनेपर उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १९८ ॥ जो स्त्री

ऋः यदा अर शब्दसे देवताभुक्त जनन्य मनुष्यीका जारत्व न देना भेदा कि कश्येदमें बिद्या दे  
तामा प्रपथ विविदे गत्यसौ विविद उक्तम् । तुतीयोऽग्निरे पठितुपीपस्ते मनुष्यस्य ॥ ११  
भरुड ८ शब्दस्य ३ । वर्ग २७ भंत्र ४

अथ १ परगे सोम द्विर गौर्यं तिसके पीठे मास्ये स्त्रीर अथिकार करतदे पीठे मनुष्य पति होताहै  
सोने पतिपत्र गंधर्वेन सुम्बर बाली और अग्निदेवतमध्यात्म विद्याहै इव कारण गी छत्र दे, एम पीठे  
देवताभोजन ०ः पराठक अथिकार ररताहै इतीवे इनको जारत्व्य करतेहैं, मनुष्यीका जारत्व यदा  
नही करताहै

चलपूर्वक हरि गईहो, या किसीके कहनेसे गईहो, और एकवार ही भोगीगईहो तौ वह प्राजा-पत्य व्रतको करके शुद्ध होतीहै ॥ १९९ ॥ जिन स्त्रियोंने बहुत दिनोंके तपका प्रारंभ कियाहो तौ उनके मासिक धर्म होनेपर उनका व्रत कभी भंग नहीं होता ॥ २०० ॥

**मद्यसंपृष्टकुम्भेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥**

**कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत पुनः संस्कारमर्हति ॥ २०१ ॥**

जिस ब्राह्मणने मदिरासे छुए घडेका जल पियाहो तो वह कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त करके शुद्ध होताहै, और फिर वह संस्कारके योग्य है ॥ २०१ ॥

**अंत्यजस्थासु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥**

**उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥**

जो वृक्ष अंत्यजोंके हों, और उनपर बहुत सारे फल पुष्प आतेहों तो उन वृक्षोंके फूल फल सभीके भोगने योग्य हैं ॥ २०२ ॥

**चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥**

**कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २०३ ॥**

जो ब्राह्मण चाडालसे स्पर्श कियेहुए जलको पीताहै वह "कृच्छ्रपाद"का अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै यह आपस्तंब ऋषिका वचन है ॥ २०३ ॥

**श्लेष्मोपानहंविण्मूत्रस्त्रीरजोमद्यमेव च ॥ एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥ २०४ ॥ एकं द्रव्यं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २०५ ॥**

( प्रश्न- ) श्लेष्मा, जूता, विष्ठा, मूत्र, रज, रुधिर, वा मदिरासे दूषित कूपकाजल पानक-नेसे उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥ २०४ ॥ ( उत्तर- ) ब्राह्मण तीन दिनतक, क्षत्री दो दिनतक, और वैश्य एक दिनतक उपवास करै, और शूद्र नक्तव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०५ ॥

**सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥ पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ॥ शिरःकंठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥ २०६ ॥ दशषट्-त्रितयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ॥ अत्राप्युदाहरंति ॥ प्रमादान्मद्यपसुरांसकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥ गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ॥ २०७ ॥**

सद्य वमनके ( तत्काल हुई कैके ) स्पर्शसे वस्त्रों सहित स्नान करै, और पहले दिनके वमनके स्पर्शसे एक दिन और अधिक दिनकी वमनके स्पर्शसे तीन दिनतक उपवास करना ब्राह्मणोंको कर्तव्य है मस्तकमें सुराका लेप होनेसे दश दिन, और कठमे सुराका लेप होनेसे छै दिन जाग्रमें सुराका लेप होनेसे तीन दिन और पैरमें सुराका लेप होनेसे एक दिनतक उपवास करै ॥ २०६ ॥ इस स्थानपर ऋषिने कहाहै कि जो श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रमादके बगसे मद्यपाई पुरुषसे मद्य लेकर ( अर्थात् अविधि मद्य ) पान करताहै वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौको दश दिनतक खाय तब शुद्ध होताहै ॥ २०७ ॥

मद्यपस्य निपादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥

न देवा भुजते तस्य न पिबति हविर्जलम् ॥ २०८ ॥

जो ब्राह्मण मद्य ( अविधि मद्यका पानकरतेबाडे ) के वा निपाद् ( मील ) के अन्नको भोजन करता है देवता उसके दिये हुए हव्यका भोजन वा उसके दिये हुए, जलका पानकर भी नहीं करते ॥ २०८ ॥

चितिधृष्टा तु या नारी ऋतुधृष्टा च व्याधितः ॥

प्राजापत्येन शुद्धयेत ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥ २०९ ॥

जो स्त्री स्वामीके साथ मरनेको चितापर चढ़कर पड़पाए उठकर चितासे निकल पड़े, वा रोगद्वारा रजोहीन होजाय वह प्राजापत्य ऋतु करते उसा दस ब्राह्मणों को भोजन करानसे शुद्ध होगी ॥ २०९ ॥

ये च प्रयजिता धियां प्रयज्यामिजलाषहाः ॥ अनासकान्निवर्तते विकीर्यति  
गृहस्थितिम् ॥ २१० ॥ धारयेन्नीणि कुर्वन्नाणि चांद्रायणमथापि वा ॥ जाति  
कर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥ २११ ॥

जो निषिद्ध ब्राह्मण सन्यासी होजाते हैं, वा जिन्होंने अपनी सत्युक्त सक्त्य करके अग्निमें प्रवेश या जलमें प्रवेश किया है और फिर भी उनका जीवन नष्ट नहीं हुआ है ॥ २१० ॥ और वह फिर गृहस्थ होनेकी इच्छा करते हैं तो वह तीन प्राजापत्य, चांद्रायण और जातकर्म इत्यादि सब संस्कारोंके भागी होते हैं ॥ २११ ॥

न क्षीचं नोदकं नाम्नु नापघादानुर्षपने ॥ ब्रह्मदब्रह्मतानां तु न कार्यं कृत्धार  
णम् ॥ २१२ ॥ स्त्रेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥ गोमूत्रपावका  
हारं कृच्छ्रमकं विशोधनम् ॥ २१३ ॥

ब्रह्मदं, ( ब्रह्मघातादि ) से जो नष्ट होगया है, उसका अक्षीच नहीं होता उसके निमित्त जल भादिका दान वा अक्षुत्पाग करना, उचित नहीं है उसका गुण वर्धन करना वा उसके प्रति दया प्रकाश करके दुःखकरमा वा उसके निमित्त "कृत् धारणम्" ( शय्यान्तरको छोड़कर केवल काठपर सपन ) करना ठीक नहीं है ॥ २१२ ॥ यदि कोई मनुष्य इस ( ब्रह्मददत्त ) मनुष्यके प्रति अवाकरणके आहसे वा उसके क्षमावाग् पुत्रादिके मयसे अबवा विनयसे इन सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करे वा वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौका आहार करे यही एक ब्रह्म प्रायश्चित्त है ॥ २१३ ॥

पृथक् शीघ्रस्मृतेर्द्धिसं प्रस्थाकृपातामिपक्किय ॥ आत्मानं पातयेद्यस्तु भृगवग्न्य  
नशानांशुमिः ॥ २१४ ॥ तस्य त्रिंशत्प्रमाशीत्य द्वितीये स्वास्तिसंघय ॥ तृतीय  
नूदकं कृत्वा चतुर्थे भाद्रमाचरेत् ॥ २१५ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मदकर शीघ्र स्मृतिमें बर्जित होगया हो अर्थात् जिसको शौचादीयके दियेका ज्ञान नहीं है वैद्योम भी जिसकी चिकित्सा करनी छोड़नी हो, पत्रान् उसने ऊँचे-

से गिरकर या अग्निमें प्रवेश करके निर्जल रहकर वा जलमें डूबकर आत्मघात किया हो ॥ २१४ ॥ तौ उसके पुत्रोंको तीन दिनतक अशौच होगा, दूसरेही दिन अस्थिसंचय ( गगाजीमें डालनेके निमित्त चितासे अस्थियोंका संग्रह करना ) और तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन श्राद्ध करें ॥ २१५ ॥

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥

मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ॥ २१६ ॥

जिसके घरमें एक भी गौ बछड़ेवाली अर्थात् दूध देनेवाली न हो उसका मंगल किस प्रकारसे होसकता है और पाप दुःख वा अमंगलका नाश किस प्रकारसे होसकता है ॥ २१६ ॥

अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥

नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २१७ ॥

अधिक दूधके दुहनेसे या अधिक चढ़नेसे, रसी डालनेके अर्थ नाक छेदनेसे, या नदी वा पर्वतमें रोकनेसे गौकी मृत्यु होनेपर साक्षात् गोवधप्रायश्चित्तका पादोन ( एकपाद कम ) प्रायश्चित्त करै ॥ २१७ ॥

अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥ चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्य-  
कृत् ॥ २१८ ॥ द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ षड्गवं तु त्रिपादोक्तं  
पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥ २१९ ॥

धर्ममें निष्ठा करनेवाले आठ बैलोंके हलको चलाते है, छै. बैलोंका हल चलाना भी व्यावहारिक है, अर्थात् उसके करने से समाज में निन्दनीय नहीं है, निर्दयी मनुष्य चार बैलोंका हल चलाते हैं, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वे गौकी हत्या करनेवाले हैं ॥ २१८ ॥  
ॐ दो बैलोंका हल एक पहरतक और चार बैलोंका हल मध्याह्न कालतक, छै. बैलोंका हल तीन पहरतक, और आठ बैलोंका हल सारे दिनतक चञ्चाना योग्य है ॥ २१९ ॥

काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ प्राजापत्यं चरेन्मृत्सा अतिकृच्छ्रं  
तु आयसैः ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्तेन तच्चूर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनडुत्स-  
हितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ २२१ ॥

जो मनुष्य काष्ठ, लोष्ट ( ढेला आदि ) से गौको मारता है वह “कृच्छ्र” व्रतको करै और जिसने मट्टीके द्वारा गौहत्या की है वह “प्राजापत्य” को करै, और जिसने लोहदंड से गौहत्या की है वह “अतिकृच्छ्र” व्रतको करै ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्त हो जानेपर ब्राह्मण-भोजन करावै, और बछड़े सहित एक गाय ब्राह्मणको दक्षिणामें दे ॥ २२१ ॥

शरभोष्ट्रहयान्नागान्सिहशार्दूलगर्दभान् ॥

हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २२२ ॥

ॐ पहले श्लोकमें चार और दो बैलोंके हल चलाने को निषिद्ध कहाहै, और इस स्थानमें उनका एक प्रकारसे विधान किया है, इस कारण यहा यह जानना होगा कि इसप्रकार कुछ समयके लिये चार वा दो बैलोंका हल चलाना निषिद्ध नहीं है परन्तु सम्पूर्ण दिन हल चलाना निषिद्ध है ।



क्षरम ( जाठ पैरवाला मृग ) रुद्र, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र वा गर्दम इनकी इत्या  
-करनेवाला क्षरकी इत्याका जो प्रायश्चित्त कहा है उस करै ॥ २२ ॥

माजार्गोधानकुलमदुकांश्च पतत्रिण ॥

इत्या अपहं पिवेत्सीर कृच्छ्र वा पादिक चरेत् ॥ २२३ ॥

संहारस्य च सस्पृष्टं विष्णुप्रोच्छिष्टमेव वा ॥

त्रिरात्रेण विशुद्धं हि भुक्तोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२४ ॥

बिछी, गोह, मौका, मेंढक वा पक्षीका मारनेवाला तीन दिनतक दुग्ध पान कर फिर  
“पावकधूप” को करै ॥ २२३ ॥ चांडालका स्पर्श किया हुआ और बिछा मूत्रसे स्पर्श  
किया हुआ वा अपनी उच्छिष्टको जो मनुष्य भोजन करता है वह तीन दिनतक उच्छिष्ट  
भोजन करनेके प्रायश्चित्तको करै ॥ २२४ ॥

घापीकूपतडागानां दूषितानां च शोषनम् ॥

उदरेत्वद्दशत पूर्ण पचगम्येन शुद्धयति ॥ २२५ ॥

जो कलाशय, बाणजी, कुआ तडाग, मुखे इत्यादिके स्पर्शसे दूषित होजाते हैं इनकी  
शुद्धि के- सो पडे मरु मरकर बाहर निकालनेसे तथा उसमें पचगम्य बाढनेसे होती है ॥ २२५ ॥

अस्थिचर्मासिकेषु स्वरसानादिदूषिते ॥

उदरेतुदकं सर्वं शोषनं परिमाजनम् ॥ २२६ ॥

दिन अन्नशयोंमें अस्थि, और चर्म पडे हैं अथवा गर्दम कुपे पडके मरगएँ, उन अन्न  
शयोंका संपूर्ण उदक निकालना है, और पचगम्य आविकोंसे शुद्ध करै ॥ २२६ ॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोर्य यत्राकरे कारुकक्षिस्त्रिहस्ते ॥

स्त्रीषालवृद्धाचरितानि यान्यप्रस्पृहहृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२७ ॥

बोहिनी और मसकका जल, पत्र ( अन्नदिके निकालनेकी कल ) आकर ( जल )  
कारीगर और शिस्पीका हाथ ली, बाढक और बुद्धोंके आचरण और बिनका अपवित्र  
पन प्रायश्चित्तमें नहीं देखागया है वह सब पवित्र हैं ॥ २२७ ॥

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेक्षे भयनस्य दाहे ॥

अथास्ययज्ञेषु महोत्सवेषु तेजैव दोषा न विकल्पनीया ॥ २२८ ॥

नगरीकी रोक घाटमोसे परकोटाके पिरजानके समयमें, संकटके देशमें, सेवाके स्थानमें  
आगिके परमें अजानके समय यज्ञकी समाप्ति हुए बिना और भडे २ उत्सवोंके समयमें  
दोषादोषका विचार करना कर्तव्य नहीं है ॥ २२८ ॥

प्रपास्वरप्ये घटकस्य कूपे क्षोण्यां जल कोशाविनिर्गतं च ॥

शपाकथडालपरिमहे तु पीत्वा जल पचगम्येन शुद्धि ॥ २२९ ॥

प्याऊ बन, पक्षियों, ( पीठों ) का हुआ और शोषी ( लेवकी ब्यारी ) में जो  
झोतल निकला हुआ जल हो उसके पीनेमें कुछ दोष नहीं है । कजर, और चांडालके पनाथे  
हए कुण्मादिका जल पीकर मनुष्यकी पचगम्यके पीनेसे शुद्धि होती है ॥ २२९ ॥

रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥ २३० ॥

वीर्यं, विष्ठा, वा मूत्र, इनका जिसमें स्पर्श हो ऐसे कूपके जलको जो पान करताहै वह तीन रात्रितक उपवास करै और जिसने ऐसे दूषित घडेके जलका पान किया हो वह "सान्तपन" करके शुद्ध होता है ॥ २३० ॥

क्लिन्नभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानान्च तथोदकम् ॥

प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३१ ॥

जो किसी ब्राह्मणने मुरदेके स्पर्शसे दूषित हुए जलको पान किया हो तो उसका प्रायश्चित्त तप्तकृच्छ्र करना योग्य है ॥ २३१ ॥

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥

प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३२ ॥

जिस ब्राह्मणने, ऊदनी, गधी, वा किसी अन्य मनुष्यकी स्त्रीके दूधको पिया हो तो वह तप्तकृच्छ्र व्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ २३२ ॥

वर्णवाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥

पंचरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २३३ ॥

यदि ब्राह्मणको उच्छिष्ट अवस्थामे यवन इत्यादि स्पर्श करले, तो वह पंचगव्यका पान कर पांच रात्रितक उपवास करै तब शुद्ध होता है ॥ २३३ ॥

शुचि गोतृप्तिकृतोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥

चर्ममांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥ २३४ ॥

जिस जलसे गौकी तृप्ति होसकै वह पृथ्वीपर रक्खा हुआ निर्मल जल, चर्मपात्रसे लगाई हुई धाराका जल, और यंत्रसे निकला हुआ जल यह सब पवित्र हैं ॥ २३४ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥

उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३५ ॥

चाडालने जिसे स्पर्श किया हो वह केवल स्नानही करै, और जो उच्छिष्ट अवस्थामें स्पर्श किया हो तो तीन रात्रिमें शुद्ध होता है ॥ २३५ ॥

आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥

आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥ २३६ ॥

खानसे निकली हुई वस्तु कभी अशुद्ध नहीं होती, मदिराके स्थानको छोडकर सभी आकर शुद्ध हैं ॥ २३६ ॥

भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥ खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्रुष्टतरं

शुचि ॥ २३७ ॥ अभीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥ गोकुले

केदुशालायां तैलयंत्रेषुयंत्रयोः ॥ २३८ ॥

जौ, चना, खजूर और कपूर यह भुने हों अथवा बिना भुने हों सभी अवस्थामें शुद्ध हैं और अन्यान्य द्रव्योंकी ढेरियों जो परस्पर मिलीहुई धरी हैं उनमें जो अशुद्ध हो जाँय वही

अथ गन्ती काँयगी दूसरी नहीं ॥२३७॥ सियोंके आचरण किये हुए कार्यमें गामाक कुसमें  
कदुशाकामें ( अर्थात् इल्लवाईक वृकान में ) ठेकनिकाउनके धत्रमें, और ईलके फेसूमें,  
श्रीचासौचक विचार करना योग्य नहीं है ॥ २३८ ॥

अहुष्टा सतत धारा वातोद्भूताश्च रेणवः ॥ २३९ ॥

पवित्र आकाशसे गिरनेवाली अलुधारा और वायुस ग्रीहुरे घूरि यह सर्वदाही पवित्र  
है ॥ २३९ ॥

बहूनामेकलभानामेकभेदशुचिर्भवेत् ॥

अशीचमेकमात्रस्य नेतरेषां कर्षचन ॥ २४० ॥

एक साथ बैठे हुए अनेक मनुष्योंमें यदि एक मनुष्य अपवित्र हुआ बैठा होय औ असौच  
उसी एककोही लगताहै, अन्य मनुष्योंको किसी तरहसे आशीच लगता नहीं ॥ २४ ॥

एकपंत्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ॥

यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥ २४१ ॥

एक पंक्तिमें पृथक् २ बैठे हुए भोजन करनेवालोंमेंसे यदि एक मनुष्यकी देहमें नीलका  
स्पर्श होजाय औ उस पंक्तिके सभी मनुष्योंको अशुद्ध कहा जायगा ॥ २४१ ॥

यस्य पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥

त्रिरात्र तस्य दासव्य दोषाश्चोपवासिनः ॥ २४२ ॥

जिस मनुष्यके धरीरपर नीलेरक्तका रङ्ग देखा जायगा ( अर्थात् जो नीले रक्तका रङ्ग  
पहर रहाहै ) वह मनुष्य तीन रात्रि, और अन्य एक दिनतक उपवास करे ॥ २४२ ॥

आदित्येस्तमिते रात्रावस्पृश्य स्पृशते यदि ॥ भगवन्केन शुद्धिं स्यात्ततो ब्रूहि  
तपोधन ॥ २४३ ॥ आदित्येस्तमिते रात्रौ स्पृशद्दीन दिवा जलम् ॥ तत्रैव  
सर्वशुद्धिं स्याच्छुद्धस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ २४४ ॥

( आदित्योंने प्रसन्न किया कि ) हे भगवन् ! हे तपोधन ! सूर्यके अस्त होनेके उपरान्त  
रात्रिके समय यदि स्पृश न करनेयोग्य वस्तुका या स्पृश करल औ उसकी शुद्धि किस-  
प्रकारसे होतीहै सो आप कहिये ॥ २४३ ॥ ( अत्रिजी बोले कि ) रात्रिके समय बिना सुम्हा  
जो दिनका निर्मल अन्न रक्ता इमा है उसके जलसे मुखके स्पृश अतिरिक्त और उसकी  
शुद्धि होतीहै ॥ २४४ ॥

देशं फालं च यं शक्तिं पाप चावेक्षयेद्यतः ॥

प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः ॥ २४५ ॥

और जिन पापोंका प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं कहाहै, देख, ममव क्षति और पापका  
विचार करके उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करके ॥ २४५ ॥

देवयाप्राधिवाहपु यज्ञप्रकरणेषु च ॥

उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४६ ॥

देवयागामें ( देवताओंके दशनच निमित्त यानमें ) विवाहमें, यज्ञभादि प्रकरणमें और  
सम्पूर्ण उत्सवोंमें स्पृश करनेके योग्य और अयोग्यका विचार नहीं होता है ॥ २४६ ॥

आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥ स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रस्यापि न  
दुष्यति ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥ अंत्यभांड-  
स्थितास्त्वैते निष्क्रांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥ २४८ ॥

आरनाल ( चनेआदिकी खटाई ) दूध, कंदुक, दही, सत्तू, स्नेह, ( घी तेलसे पकाहुआ )  
पदार्थ और मट्ठा यह यदि शूद्रके यहांकाभी हो ( उसको भक्षण करनेसे ब्राह्मणोंको ) दोष  
नहीं है ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांस ( विना पकाहुआ मांस ) घृत, तेल और फलसे उत्पन्नहुए  
स्नेह ( इगुनीवृक्षका तेल आदि ) यह चांडालके पात्रसे निकलतेही शुद्ध होजाते हैं ॥ २४८ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥

अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २४९ ॥

यदि ब्राह्मणने विना जाने हुए शूद्रके यहाँका जलपान कर लिया है तौ वह स्नान करनेके  
उपरान्त पंचगव्यका पानकर एक दिनतक उपवास करै तब शुद्ध होता है ॥ २४९ ॥

आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ॥

अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५० ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हैं वह यदि महापातकी होजाय तौ वह जलमें होमके पात्रोंको  
फेंककर फिर अग्निको ग्रहण करै ॥ २५० ॥

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ॥ अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा-  
पाको हि स स्मृतः ॥ २५१ ॥ वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरोद्विजः ॥  
प्राणानाशु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २५२ ॥

जो मनुष्य विवाहकी अग्निको ग्रहण करके अपनेको गृहस्थ मानते हैं ( और अग्निकी  
रक्षा नहीं करते ) उनका अन्न भोजन करनेके योग्य नहीं है, कारण कि उनका भोजन  
वृथापाक ( निष्फल ) कहा गया है ( देवता उसके अन्नको भोजन नहीं करते इसीसे  
उसका पाक निष्फल है ) ॥ २५१ ॥ इस वृथापाकके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करले वह  
इस प्रायश्चित्तको करै कि जलके बीचमें तीनवार प्राणायाम करके घृतका भोजन करै तब  
शुद्ध होता है ॥ २५२ ॥

वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५३ ॥

पाँच हत्याके पापको दूरकरनेके निमित्त वैदिक अग्निमें ( वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कीहुई  
अग्निमें ) वा लौकिक अग्निमें ( पदार्थ पकानेके निमित्त प्रज्वलित अग्निमें ) वा हुतोच्छि-  
ष्टमें ( नित्य जिसमें होम किया हो ऐसी अग्निमें ) अथवा जलमें वा, पृथ्वीमें वैश्वदेव  
करै ॥ २५३ ॥

कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ॥ पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं  
धारयेद्भुवः ॥ २५४ ॥ ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्याग्निं यवीयकः ॥ नित्यं  
नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५५ ॥

यदि बड़ा माई निर्गुण हो, और छोटा सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित हो तो ज्ञानो छोटाभाई बड़े भाईसे प्रथम विवाह करके गृह्य ऋषिको पारण करे ॥ २५४ ॥ परन्तु जब बड़े भाईमें कोई दोष नहीं है तब छोटा भाई जो ( गृह्य ) ऋषिको ग्रहण करे तो उसको प्रतिदिन निम्नदेह ब्रह्मरस्याका पाप छटावा है ॥ २५५ ॥

महापातकिसस्पृष्टं खानमेव विधीयते ॥

सस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते खानमेव विधीयते ॥ २५६ ॥

जिस मनुष्यको महापातकीने स्पृष्ट किया हो वह, और जिसने महापातकीके स्पर्श किये हुएके भक्षणको भोजन किया हो वह दोनोंही खानकरनेसे मुक्त होजाते हैं ॥ २५६ ॥

पतिते सह ससर्ग मासार्द्ध मासमेव च ॥ गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन वि  
शुद्धयति ॥ २५७ ॥ कृच्छ्रार्द्ध पतितस्वीय सकृद्भुक्त्वा द्विजासम ॥ अविज्ञा  
नाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्र सांतपन चरेत् ॥ २५८ ॥ पतितानां यदा मुक्तं मुक्तं  
श्रद्धाल्लवेषमनि ॥ मासार्द्धं तु पिषेद्वारि इति शातातपोऽश्रयीत् ॥ २५९ ॥

पतित मनुष्यका साथ जिसने एक पक्ष वा एक महीनेतक कियाहो वह मनुष्य पंद्रह दिनतक गोमूत्रसे सिद्धहृण जौका भोजन करे तब शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥ जो ब्राह्मण पतित मनुष्यके यहाँ भक्षणको जानकर भोजन करे तो वह आपाकृच्छ्र करे और बिना जानेहुए भोजन करे तो कृच्छ्रसांतपन प्रवक्तो करे ॥ २५८ ॥ शातातप गुणिने कहा है कि यदि जिस मनुष्यने पतितके यहाँका भोजन किया हो, वा चाँदाढके घरमें भोजन किया हो तो वह पंद्रहदिनतक केवल जलहीको पीता रहे ॥ २५९ ॥

गोश्राद्धपहतानां च पतितानां तथैव च ॥

अग्निना न च सस्कारः शस्त्रस्य वचनं यथा ॥ २६० ॥

गौ और ब्राह्मणके द्वारा निहवहृण और पतित मनुष्योंका अग्निसे सस्कार नहीं होता है; यही शस्त्रापिका वचन है ॥ २६० ॥

यश्रद्धालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥

त्रिभिः कृच्छ्रीर्विशुद्धयेत् प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥ २६१ ॥

यदि ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो किसी चाँदाढकी स्त्रीके साथ भोग करे तो वह प्राजापत्य प्रवक्तो कर तीन कृच्छ्रप्रवक्तो करे तब मुक्त होता है ॥ २६१ ॥

पतितायाः जमादाय भुक्त्वा वा वा ब्राह्मणो यदि ॥

कृत्या तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥ २६२ ॥

जो ब्राह्मणने पतितके यहाँका भक्षण ग्रहण किया हो तो उस भक्षणको त्यागने और यदि ब्राह्मणने पतितके भक्षणको भोजन किया हो तो उसको व्रतनद्वारा त्याग दे और फिर अति-कृच्छ्रप्रवक्तो करे ( तब मुक्त होता है ) ॥ २६२ ॥

अंत्यहस्ताद्यु विक्षिप्त काष्ठलाष्टृणानि च ॥

न स्पृशेद्यु तपोऽच्छिष्टमक्षोरात्र समाचरेत् ॥ २६३ ॥

अंत्यज ( चाढालादि ) के हाथसे फेंकेहुए, काष्ठ, लोष्ठ, तृण और उच्छिष्टका स्पर्श न करै ( और यदि करै ) तौ अहोरात्रका व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २६३ ॥

चंडाल पतितं म्लेच्छं मद्यभांडं रजस्वलाम् ॥ द्विजःस्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो  
यदि संस्पृशेत् ॥ २६४ ॥ अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वात्रं स्नानमाचरेत् ॥ ब्रा  
ह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समाप  
येत् ॥ २६५ ॥ भुंजानः संस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुटं तथा ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धिः  
स्यादथोच्छिष्टस्यहेण तु ॥ २६६ ॥

चाढाल, पतित, म्लेच्छ, मदिराका पात्र और रजस्वला स्त्री इनका स्पर्श कर न ब्राह्मण भोजन न करै, और जो भोजन करते समय इनका स्पर्श होजाय तौ ॥ २६४ ॥ फिर भोजन न करै, और उस अन्नको त्यागकर स्नान करै, फिर ब्राह्मणोकी आज्ञा लेकर तीन रात्र उपवास करै, और घृतके सहित जौका भोजन कर व्रतको समाप्त करै ॥ २६५ ॥ भोजन करते समय कौआ, या मुरगा छूजाय तौ तीन रात्रतक उपवास करै तब शुद्ध होता है और जो भोजनके अतमे उच्छिष्ट अवस्थाके समयमें कौए या मुरगेका स्पर्श होजाय तौ एकदि-  
नमे उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ २६६ ॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥

चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६७ ॥

जो नैष्ठिक धर्ममें स्थित होकर फिर उसको त्याग देता है वह एक महीनेतक चांद्रा-  
यण व्रतको करै, यह शातातप ऋषिने कहा है ॥ २६७ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चांद्रायणं  
चरेत् ॥ २६८ ॥ अमानुषीषु गोवर्जमुदकयायामयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले  
चैव कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥ २६९ ॥

जो मनुष्य पशु और वेश्यामे गमन करते हैं, वह प्राजापत्य व्रतको करै, और जौ गौके साथ गमन करते हैं वह मनुजीके कहेहुए चांद्रायण व्रतको करै ॥ २६८ ॥ गौके अतिरिक्त पशुकी योनि, अयोनि, अर्थात् भूसि आदिमें वा जलमे वीर्य डालनेवाले मनुष्य कृच्छ्र सातपन व्रतको करै ॥ २६९ ॥

उदक्यां स्रुतिकां वापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥ २७० ॥

रजस्वला, स्रुतिका, वा अंत्यजाका स्पर्श करनेवाला मनुष्य तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, यह पुरातन विधि है ॥ २७० ॥

संसर्गे यदि गच्छेच्चैदुदकया तथात्यजैः ॥ प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं  
समाचरेत् ॥ २७१ ॥ एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥ दिनत्रयं तथा  
पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७२ ॥

जिस मनुष्यका रजस्वलाके साथ वा अंत्यजाके साथ स्पर्श होजाय तौ वह मनुष्य प्राय-  
श्चित्त करनेके योग्य है, और प्रायश्चित्तके प्रथम स्नान करै ॥ २७१ ॥ और एक दिन गोमूत्र

पिये, और तीन दिनों गौका गोबर मक्ष्म करै, यदि विजातीय चाहाली भादि स्त्रीके साथ जळ पिया हो तो तीन दिन गोमूत्र और तीन दिन गोबर मक्ष्म करै, यदि पूर्वोक्त स्त्रीके साथ मैथुन किया हो तो पांच तथा सात दिन गोमूत्र और गोबरका सेवन करनेसे दोष दूर होता है ॥ २७२ ॥

स्मृत्यंतरम् ॥ अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥

पूर्यते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७३ ॥

अन्य स्मृतियोंमें भी कहा है, कि अपनी जातिके स्वीकार करनेसे या ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे महापातकी पापीमी शुद्ध हो जाते हैं ॥ २७३ ॥

भोजने तु प्रसक्तानां मानापत्यं विधीयते ॥

दत्तकाष्ठे स्वहोराश्रयेण शीचविधिः स्मृतः ॥ २७४ ॥

पूराक्त विना कुछदुए पातकियोंके साथ भोजन करनेवाळा पुरुष प्राजापत्य नामक ध्रत करनेसे शुद्ध होता है, और उनके साथ दत्तपावन करनेसे एक दिन रातमें शुद्ध होता है, यही पवित्र इतिके विधि है ॥ २७४ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालधायसी ॥ निराहारा भवत्तायस्त्रास्या फालेन शुद्धयति ॥ २७५ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा ठपूजंशुकशर्करे ॥ पचरात्रं निराहारा पचगव्येन शुद्धयति ॥ २७६ ॥ स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥ पकरात्र निराहारा पचगव्येन शुद्धयति ॥ २७७ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ॥ त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्रह्मासस्य घपन यया ॥ २७८ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥ चतुरात्रं निराहारा पचगव्येन शुद्धयति ॥ २७९ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥ पदुरात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥ २८० ॥ अक्रामतश्चेदूर्ध्वं ब्राह्मणी सवतः स्पृशेत् ॥ घनुर्णामपि घणानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८१ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुछा, कौमा, अथवा पांडास छूजे तो वह रजकी शुद्धिके लिए दार रहे पीछे पाच दिन शुद्ध स्नानको करके शुद्ध होजाती है ॥ २७५ ॥ जिस रजस्वला स्त्रीका ईश, गीह, या दंडर स्पर्श करके तो वह पांच राततक निराहार प्रतकर पचगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ २७६ ॥ यदि ब्राह्मणी रजस्वलाके ब्राह्मणी रजस्वलाका स्पर्श कर छिवा हा या वह एक रात्रितक निराहार रहकर पचगव्यका पान करे तो वह शुद्ध होती है ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणी रजस्वलाके क्षत्रीकी स्त्री रजस्वलाका स्पर्श कर छिवा हा तो वह ब्राह्मणी तीन रात्रितक उपवास कर ( पचगव्यका पान करे ) वह शुद्ध होती है यह ब्यासजीका धपन है ॥ २७८ ॥ यदि वैश्यकी कन्या रजस्वलाके ब्राह्मणीकी स्त्रीने स्पर्श किया हा तो वह ब्राह्मणी चार रात्रितक निराहार रहकर पचगव्यका पान करनेसे शुद्ध होजाती है ॥ २७९ ॥ यदि ब्राह्म रजस्वला शूद्रा रजस्वलाका स्पर्श करके तो छे रात्रिये शुद्ध होती है ॥ २८० ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेके ब्राह्मणा सबको रजस्वलाकी है, इस विधिसे पापोंको छुड़ि करी है ॥ २८१ ॥

उच्छिष्टेन तु संपृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥ भोजने मूत्रचारे च शंखस्य वचनं  
यथा ॥ २८२ ॥ स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शं जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥ वैश्ये नक्तं च कु-  
र्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥ २८३ ॥ चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ॥  
एतान्संपृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥ २८४ ॥ एतैः संपृष्ट्वा द्विजो  
नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥ उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्धृतं प्राश्य विशुद्ध्य-  
ति ॥ २८५ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मणने उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मण स्नान  
करै, और भोजन वा मूत्र त्यागनेके समय स्पर्श किया हो तो स्नान करै, यदि इस प्रकारसे  
क्षत्रीने स्पर्श किया हो तो जप, होम करै और इसी प्रकारसे वैश्यने स्पर्श किया हो तो नक्त-  
व्रत करै, और जो शूद्रने स्पर्श किया हो तो उपवास करै यह शंख ऋषिका वचन है  
॥ २८२ ॥ २८३ ॥ चमार, वीमर, धोवी, और नट जिस ब्राह्मणने इनका स्पर्श अज्ञानतासे  
किया हो तो वह सावधान होकर आचमन करै ॥ २८४ ॥ यदि ये ब्राह्मणका स्पर्श करलें  
तौ एक रात्र दूध पिये, और पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श करलें तौ पृतको  
खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥ २८५ ॥

यस्तु च्छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८६ ॥

जो ब्राह्मण श्वपाककी छायामें चले तौ स्नान कर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होता  
है ॥ २८६ ॥

अभिशस्तो द्विजोरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणम-  
थापि वा ॥ २८७ ॥ वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥ अब्भक्षो  
द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥ २८८ ॥

जो ब्राह्मण अभिशस्त ( कलंकित ) हो वह वनमें जाकर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करै, और  
एक महीनेतक उपवास करै, या चांद्रायण व्रतको करै ॥ २८७ ॥ यदि झूटाही दोष लगाहो  
तो भ्रूणहत्याका व्रत करै बारह दिनतक केवल जलहीको पीकर पराकव्रतका अनुष्ठान करै  
( तब शुद्ध होता है ) ॥ २८८ ॥

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २८९ ॥

मूर्ख ब्राह्मणको मारकर शूद्रकी हत्याका प्रायश्चित्त करै और गुणी निर्गुणको मारकर पराक-  
व्रतका अनुष्ठान करै ॥ २८९ ॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥

तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९० ॥

जिसको उपपातक लगा हो यदि वह मनुष्य मरजाय तो उसका संस्कार करनेवाला ३  
प्राजापत्यको करै ॥ २९० ॥



प्रभुजानोऽतिसंज्ञेह कदाचित्पृश्यते द्विजः ॥

त्रिराप्रमाचरेत्सर्त्तनिःश्रेहमथया चरेत् ॥ २९१ ॥

स्नेह सहिष पदार्थका भोजन करते समय माछणको फदापित् कार्य छूट तो खीन रात्रवक मच्छयव करै अथवा स्नाना भाजन करै ॥ २९१ ॥

विहालकाफागुच्छिष्ट जग्याश्वनकुलस्य च ॥

केशकीटावपन्न च पिबेद्वाही सुवर्चलाम् ॥ २९२ ॥

विही, कौआ, कुत्ता, और नौलेही उच्छिष्टको, कश और कीटयुक्त द्रव्यको भोजन कर नेसे वेमकी बहानेवाही माही औपधीका कषय बनायकर पान करै ॥ २९२ ॥

उष्ट्रयान समारुह्य स्वरयान च कामतः ॥

स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २९३ ॥

ऊँट गाड़ीपर वा गधेही सवारीपर बैठकर प्राणाय स्नानकर प्राणायाम करै तब शुद्ध होय है ॥ २९३ ॥

सन्याहृति समणवां गायत्री शिरसा सह ॥

त्रिः पठेद्वा यतप्राण प्राणायामः स उच्यते ॥ २९४ ॥

अमानुसार प्राणोका रोककर व्याहृति ( मू इत्यादि ) अकार और क्षिप्र मन्त्रयुक्त गायत्रीका तीनवार पाठ करै उसको प्राणायाम कहते हैं ॥ २९४ ॥

शकृद्दिगुणगोमूत्र सर्पिर्दद्यात्तुण्यम् ॥

क्षीरमष्टगुण देयं पचगम्य तथा दधि ॥ २९५ ॥

गोबरसे बना गोमूत्र आंगुना पी, अठगुना दूध और अठगुना दही छाले इसे पचगम्य कहते हैं ॥ २९५ ॥

पचगम्यं पिबेच्छुद्धा ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत् ॥

उभी सौ दुह्यदोषी च वसतो नरके चिरम् ॥ २९६ ॥

पचगम्यका पान करनेवाला शुद्ध, मदिराका पान करनेवाला ब्राह्मण यह दोनों समान पापके अधिकारी हैं, यह दोनोंही मनुष्य निरकासतक नरकमें रात करत हैं ॥ २९६ ॥

अजा गावा महिष्यश्च अमेभ्य भक्षयति याः ॥

दुग्ध हृद्यं च पश्य च गामय न विभ्रेपयेत् ॥ २९७ ॥

जा ककरी गौ और भैस यह अपवित्र ( विष्ठा ) इत्यादिका भोजन करती हैं वा उनके दूधको हृद्यमें ( जो दूधताओंको द्रव्य दिया जाता है ) और कषयमें ( जो पित्तोंके निर्मित दिया जाता है ) न लगावै, और इनके गोबरसे भी न छीप ॥ २९७ ॥

ऊनस्तनी अधीका वा या ख स्वस्तनपापिनी ॥

तासां दुग्ध न होतम्य ह्यस विषादुतं भवेत् ॥ २९८ ॥

और जिनके धन छोट वा बटे हों अथवा चारसे अधिकहों अथवा जो अपण्य स्नान न देखी पीतीहो तो उनके दूधकाहवनमें मद्यन न करै जा करंगा तो किया या कियाबराबर हागा २९८ ॥

ब्राह्मोदने च सोमे च सीमंतोन्नयने तथा ॥

जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९९ ॥

ब्राह्मोदनेमें, सोम यज्ञमें, सीमन्तोन्नयनमें, और जातकर्मके श्राद्ध और नवक श्राद्धमें जो भोजन करताहै वह चांद्रायणव्रतको करै ॥ २९९ ॥

राजात्रं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥

स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ३०० ॥

राजाका अन्न तेजको और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको नष्ट करता है ( इस कारण वह भोजन करनेके योग्य नहीं है ) और जो मनुष्य अपनी कन्याके अन्नको भोजन करता है वह मानो पृथ्वीके मलको भोजन करता है ( कन्याका अन्न और मल दोनोंही समान हैं ) ॥ ३०० ॥

स्वसुता अप्रजाता चेन्नाश्रीयात्तद्गृहे पिता ॥

भुंक्ते त्वस्या माययान्नं पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ३०१ ॥

कन्याके सतानआदि उत्पन्न न हुई हो तो पिता उसके गृहमें भी भोजन न करै, और जो ऐसा करता है वह पूयनामक नरकमें प्राप्त होता है ( इन दोनों वचनोंसे तो यह सिद्ध हुआ कि दौहित्र और दौहित्रीके जन्म होनेपर जमाईके घरमें और दौहित्र इत्यादिके जन्म होनेके प्रथम अपने गृहमें कन्याके हाथसे खानेमें कोई बाधा नहीं है ) ॥ ३०१ ॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्टायां जायते कृमिः ॥ ३०२ ॥

चारों वेदोंका पढ़नेवाला, सर्वशास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला ( ब्राह्मण ) जो राजाके घरमें जाकर भोजन करता है ( तो वह राजाके यहाका अन्न खानेवाला ) विष्टाके कीड़े होकर जन्म लेता है ॥ ३०२ ॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥ पतंति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽना-

पदि द्विजः ॥ ३०३ ॥ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ त्रिपक्षे

चैव कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ३०४ ॥ आब्दिके पादकृच्छ्रं स्या-

देकाहः पुनराब्दिके ॥ ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ॥ ३०५ ॥

द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥ पतंति पितरस्तस्य ब्रह्मालीके

गता अपि ॥ ३०६ ॥

जो ब्राह्मण विनाही आपत्तिके आयेहुए नवकश्राद्ध x तीन पक्षका श्राद्ध, षण्मासिक श्राद्ध मासिक और वार्षिक श्राद्धमें जो भोजन करता है उसके पितर गिरकर नरकको जाते हैं ॥ ३०३ ॥ जिसने नवक श्राद्धमें भोजन किया है वह चांद्रायण व्रतको करै, और जिसने मासिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पराक व्रतको करै, और जिसने त्रिपक्षके श्राद्धमें

१ जो यज्ञोपवीतके समय चावल वनते हैं ।

x मरनेके दिनसे चौथे, पाँचवे नौ और ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होताहै उसको नवक श्राद्ध कहते हैं ।

और छठे मासक भास्त्रमें भोजन किया है वह कृष्णप्रतका करे ॥ ३४ ॥ और जिसने वार्षिक भास्त्रमें भोजन किया है वह पादकृष्णको करे, और दूसरे वार्षिक भास्त्रमें भोजन करनेवाला एक दिनतक उपवास करे, जो ब्राह्मण ब्राह्मणको न करके महीनेके भास्त्रमें वर्ष ( पूर्णमासीआदि ) में ॥ ३०५ ॥ द्वादशमास भास्त्रमें [ कुसुमचारके अनुसार वा युक्त गणनाके द्वारा आयुष्ठा भाव निर्णय होनेपर चारदिनमें अर्थात् भास्त्रके दूसरे दिनमें जो कवच्य सर्पिणीकरणान्त कार्य किया जाता है उसका नाम द्वादशाह भास्त्र है ] त्रिपक्ष भास्त्रमें और वार्षिक भास्त्रमें जो भेष्य माद्य भोजन करता है उसके पितर ब्राह्मणोंको न जाकर भी पतिव्य होत हैं ( बहसि गिरकर नरकका जाते हैं ) ॥ ३०६ ॥

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाभंति वै दिनाः ॥

भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य दिजध्वाद्रायण शरेत् ॥ ३०७ ॥

जिसके घरमें पक्षमें अथवा महीनेमें जो ब्राह्मण भोजन न करते हों वी उस दुष्टपित्तके ब्राह्मणको त्याकर ब्राह्मण ब्राह्मण्य प्रवृत्तको करे ॥ ३०७ ॥

एकदशाहोद्देशेरात्र भुक्त्वा सचयने प्यहम् ॥

उपोष्य विधिवदिमं पूंष्मांहीं अहुपादपृतम् ॥ ३०८ ॥

मृतके ग्यारहवें दिन भोजन करके अशोरात्र ( एकरात्र एकदिन ) और अस्थिसचयके दिन भोजन करके तीन दिन विधिपूर्वक उपवास करके ब्राह्मण बैठे और पृतसं दहन करे ॥ ३०८ ॥

यत्र वेदध्वनिभ्रांतं न च गोमिरलकृतम् ॥

यत्र बालीं परिशृतं श्मशानमिष सद्रुहम् ॥ ३०९ ॥

जा पर वेदकी ध्वनिसे पवित्र नहीं, जो घर गौसे शोभायमान नहीं है, और जो घर बालीसे परिशुद्ध नहीं है वह घर स्मशानके समान है ॥ ३०९ ॥

हास्यप्रपि बहवो यत्र विना पर्यवर्दति हि ॥

विनापि धर्मशास्त्रेण स धर्म पावन स्मृतः ॥ ३१० ॥

हास्यक समयमें भी बहुतसे मनुष्य धर्मके विरुद्ध कहते हैं वी धर्मशास्त्रक बिनाही वह धर्म पवित्र माना गया है ॥ ३१० ॥

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभियादनम् ॥

तत्र ज्ञान प्रकृषीतं घृतं प्राशय विशुद्धघति ॥ ३११ ॥

जो मनुष्य अज्ञानतासे हीन वर्णका (अपनेसे अधम जातिकी) अभिवादन करता है वा वह मनुष्य ज्ञानकर घृतका भोजन करनेस मुक्त हो जाता है ॥ ३११ ॥

समुत्पन्ने यदा ज्ञाने भुक्तिं चापि पिबेद्यदि ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपित्वात्वा समाहितः ॥ ३१२ ॥

जो ( मनुष्य ) ज्ञानके योग्य हो और वह बिनाही स्नान किये यदि भोजन करके या सहायन करके वी वह स्थित करके एकाम चित्तसे आठ हजार गायत्रीका जप करे ॥ ३१२ ॥

अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥ मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांस-  
भक्षणम् ॥ ३१३ ॥ दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ॥ कार्पासं  
दंतकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥ ३१४ ॥

जो मनुष्य अंगुलीसे दंतौन करता है, और जो केवल लवणका भोजन करता है, जो मिट्टीका भोजन करता है, यह गोमांसभक्षणकी समान है ( अर्थात् उपरोक्त तीनों कार्योंको जो मनुष्य करता है उसको गोमांस भक्षण करनेका पाप होता है ) ॥ ३१३ ॥ दिनमें कैथकी छायाका निवास, रात्रिमें दहीका भोजन, शमी और कपासकी लकड़ीकी दंतौन करनेसे विष्णुकीभी लक्ष्मी हर जातीहै ॥ ३१४ ॥

शूर्पवातो नखाग्रांबु स्नानवस्त्रं घटोदकम् ॥ मार्जनीरजः केशांबु देवतापतनोद्भ-  
वम् ॥ ३१५ ॥ तेनावगुंठितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥ मार्जनीरेणुकेशांबु  
हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ३१६ ॥

सूपकी पवन, नखोंके अग्रभागका जल, स्नानका वस्त्र, घटका जल, बुहारीकी बूरि, केशोंका जल यदि यह देवस्थानके हों ॥ ३१५ ॥ और जो मनुष्य इनमें लोटताहै वह मानो गंगाजलसे लोटताहै ( देवस्थानको छोड़कर अन्यस्थानकी ) उडीहुई बुहारीकी बूरि, और केशोंका जल इन दोनोंका ससर्ग मनुष्योंके दिनमें किये हुए पुण्योंका नाश करताहै ॥ ३१६ ॥

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके ऊपरस्थले ॥ अंतर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले  
सुरालये ॥ ३१७ ॥ वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥ शुचौ देशे  
तु संग्राह्या शर्कराश्मविर्जिता ॥ ३१८ ॥

सप्तमईकी मट्टी, चुहोंके भट्टेकी मट्टी, जलभेकी मट्टी, श्मशानकी मट्टी देवताओंके मंदिरकी मट्टी, ॥ ३१७ ॥ और जिसे वेलोंने खोदाहो ऐसी मट्टी इन सात स्थानकी मट्टीको कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ग्रहण न करे और पवित्रस्थानसे कंकर और पत्थर जिसमें न हो ऐसी शुद्ध मृत्तिकाका ग्रहण करे ॥ ३१८ ॥

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्त्रावे दंतधावने ॥ स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समा-  
चरेत् ॥ ३१९ ॥ यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥ युगकोटिसहस्रेषु  
स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२० ॥

विष्ठात्यागनेके समयमें, मैथुनमें, मूत्रत्याग, होम, और दंतौनके समयमें स्नान, भोजन, और जपकरनेके समयमें सदा मौन धारण करे ॥ ३१९ ॥ जो मनुष्य वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मौनको धारणकर भोजन करताहै वह हजार करोड़ युगतक स्वर्गमें वास करताहै ॥ ३२० ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२१ ॥

प्रौढपाठ ( पॉवपसारकर ) स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवताओंकी पूजा, स्वाध्याय, और पितरोंका तर्पण न करे ॥ ३२१ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात्प्राप्तयित्वा द्विजोत्तमम् ॥

नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं भवेत् ॥ ३२२ ॥

जो मनुष्य अष्ट ब्राह्मणको पातक उगाकर सर्वस्वमी दान करताहै उसका सब ( दानसे उत्पन्नहुआ फल ) मष्टहाकर भूणहरणके फलको प्राप्त होताहै ॥ ३२१ ॥

ग्रेहणोद्गाहसक्रीती स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥

दान नैमित्तिक ज्ञेय रात्रावापि प्रशस्यते ॥ ३२३ ॥

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और स्त्रियोंको प्रसवकालमें ( सतान होनेके समयमें ) जो दान करनेको नैमित्तिकदान कहाहै इसकारण वह दान रात्रिनेमी श्रेष्ठ है ॥ ३२३ ॥

क्षौमज घाय कार्पास पट्टसूत्रमथापि वा ॥

यज्ञोपवीत यो दद्याद्द्विदानफलं लभेत् ॥ ३२४ ॥

जो मनुष्य रेशम, कपास, वा पट्टसूत्रके बनेहुए यज्ञोपवीतको दान करताहै वह वरदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२४ ॥

कांस्यस्य भोजन दद्यात्पृतपूर्ण सुशोभनम् ॥

तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२५ ॥

पृतके मरेहुए उत्तम कौंसिके पात्रको मक्तिपूर्वक बधाविधिसे जो दान करताहै तो उसको अग्निष्टोमफलका फल प्राप्त होताहै ॥ ३२५ ॥

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छोभने च उपानहो ॥

स गच्छन्नन्यमार्गोपि अश्वदानफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥

जा मनुष्य श्राद्धके समयमें उत्तम उपानहको दान करताहै वह कुमागगामी होकरभी अश्वदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२६ ॥

तेल्पात्र तु यो दद्यात्सपूर्णं तु समाहित ॥

स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र सशय ॥ ३२७ ॥

जा मनुष्य मत्सिंहित्वश्वेच्छसे मरेहुए पात्रको दानकरताहै वह निम्नवही स्वर्गमें जाताहै जसमें किष्किमी सरोह नहीं ॥ ३२७ ॥

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यद ॥

पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गे लोके महीयत ॥ ३२८ ॥

दुर्भिक्षके समयमें अन्न देनेवाला सुखाङ्गके समयमें सुवर्णका दान करनेवाला भीरु बनमें ( दुर्गम वन, जिसमें अन्न न हो ) अन्नका देनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाताहै ॥ ३२८ ॥

यावदधप्रसूता गोस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥

पृथिवी तेन दद्यात्स्यादीदर्शां गां ददाति यः ॥ ३२९ ॥

जा जपतक मयम्बाह हा ( अर्थात् संतान सम्पूण रूपसे पृथ्वीपर न प्यार्ह हो ) तो यह तपतक पृथ्वीकी समान है, जो मनुष्य इसप्रकारकी गौका दान करता है उसको पृथ्वीके दानकरनेकी समान फल प्राप्तहोताहै ॥ ३२९ ॥

तेनागपा हृता सम्पत्पितरन्तन तर्पिता ॥

देषाश्च पतिता सप्यं यो ददाति गपादिभ्यम् ॥ ३३० ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन गौको घ्रास ( खानेको ) देताहै वह [ इस घ्रासके दानसेही ] अग्नि-  
होत्र, पितृतर्पण, और देवताओंकी पूजा इन सभीके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३३० ॥

**जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥**

**तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ ३३१ ॥**

जन्मसे लेकर जितने पाप किये हैं वह, और मातापिताका जो अपराध कियाहै वह,  
शीघ्रही वस्त्रदान करनेसे निःसंदेह नष्टहोजातेहैं ॥ ३३१ ॥

**कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥**

**उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ ३३२ ॥**

जो मनुष्य शृंग आदिके सहित काली मृगछालाका दान करताहै वह नरकमे पड़ेहुए पूर्वपु-  
रुषोंके एकसो एक कुलोका उद्धार करताहै ॥ ३३२ ॥

**आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥**

**शूलपाणिस्तु भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥ ३३३ ॥**

सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चंद्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव, यह पृथ्वीके दानकरन-  
वालेकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३३३ ॥

**वालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तार्धिमंडलम् ॥ गते वर्षशते चैव पलमेकं विशी-  
र्यति ॥ ३३४ ॥ क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ॥ ३३५ ॥**

सप्तार्धिमंडलपर्यन्तकी जो वालु ( रेत ) की राशि है वह सौवर्ष पीछे एक २ पल कमहोने  
से नष्ट होजातीहै ॥ ३३४ ॥ परन्तु कन्याके दान करनेसे जो फल होताहै वह नष्ट  
नहीं होता ॥ ३३५ ॥

**आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥ सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं  
ततोधिकम् ॥ ३३६ ॥ पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥ सकामः स्व-  
र्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३३७ ॥**

दुखकी अवस्थामें जो प्राणकी रक्षा करता है उसको दानके तीन [ धर्म, अर्थ, और  
काम ] फल प्राप्तहोते हैं, समस्त दानके बीचमें विद्याका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है ॥ ३३६ ॥  
पुत्रादि आत्मीय मनुष्यको और ब्राह्मणको विद्याका दान दे और कपटी मनुष्यको विद्याका  
दान न दे, किसी मनोरथसे विद्याका दान करनेवाला स्वर्गको और निष्काम विद्याका दाता  
मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ ३३७ ॥

**ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥ मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामि-  
नि ॥ ३३८ ॥ शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥ तस्यैव दीयते दानं य-  
दीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ३३९ ॥**

अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जो ब्राह्मण वेदका ज्ञाता, सबशास्त्रका  
पारदर्शी, मातापिताका भक्त, ऋतुके समयमें अपनी ही ज़मीमें गहनकरनेवाला, शीलवान्,  
उत्तम वाचरणामे युक्त, और प्रातःकालके समय [ ब्राह्म सुहृद्वर्षे ] स्नान करनेवाला हो उसी-  
को दान करके दे ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

संप्रत्य विदुषो विमानन्म्योऽपि प्रदीयत ॥

तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न ह्यष्ट न भुत मया ॥ ३४० ॥

प्रथम विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करके अन्य ब्राह्मणका दानद, आरंभसे कार्यको न करे कि जिस न कमी मुक्त और न कभी देखाहा ॥ ३४० ॥

अतः पर प्रयक्ष्यामि भ्रातृकर्मणि ये द्विजा ॥

पितृणामक्षय दान दत्त येषां तु निष्कलम् ॥ ३४१ ॥

इसके उपरान्त कहताहू कि भ्रातृकर्ममें जिन ब्राह्मणोंका पितरोंके निमित्त दान देनेसे अक्षय होताहै और जिन ब्राह्मणोंको दान देनेसे निष्कल होताहै ॥ ३४१ ॥

न हीनांगो न रोगी च क्षुतिस्मृतियियर्जित ॥ नित्य चानृतयादी च तांस्तु

भ्रातृ न भोजयेत् ॥ ३४२ ॥ हिंसारत च फण्डमुपयुङ्ग भुत च य ॥ किंवर

कपिल काण शिथिल रागिण तथा ॥ ३४३ ॥ दुष्कर्माण क्षीणकेश पांडुरोग जटा

धरम् ॥ भारवादिन रीद्र च द्विभार्य वृषलीपतिम् ॥ ३४४ ॥ भेदकारी भव-

क्षीष बहुपीडाकरापि वा ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यननयत्तया ॥ ३४५ ॥

बहुभोक्ता दीनमुत्स्रो मत्सरी क्रूरखुद्रिमान् ॥ एतेषां नैव दातव्यं कदाचित्तु

प्रतिग्रहं ॥ ३४६ ॥

जा अंगहीन हैं, रोगी, वेद और धर्मशास्त्रोंका नहीं जानत, सबदा मिथ्या मापण कर-  
तेहैं उनको भ्रातृमें भोजन करना योग्य नहीं ॥ ३४२ ॥ हिंसक, कपटी, भेदको छिपाने

वाला, नौकर, कपिल काना कुष्ठरोगी, ॥ ३४३ ॥ दुष्कर्मा ( जिसके शरीरका नाम बिगाड  
गयाहो ) शार्णकेस, ( जिसके किरके बाल गिरगयेहों ), पांडुरोगी, जटापारी घोड़ेका छटा

नवाला, भयानक, दो स्त्रियोंवाला, और वृषलीपतिको भ्रातृमें भोजन न करावै ॥ ३४४ ॥

जा मनुष्य परस्परमें भेद डलवानेवाला हो, अनेकोंको पीडादायक, अंगहीन, वा जिसका  
कोई अंग अधिक हो उसकोभी भ्रातृमें भोजन न करावै ॥ ३४५ ॥ बहुत भोजन कर

नेवाला, जिसके मुखमें रीनता हो, दूसरोंके गुणोंमें दोषोंको देखनेवाला और क्रूरखुद्रि  
वाले पुत्रको कदापि अनादि वा पात्रका अन्न दान करके न दे ॥ ३४६ ॥

अथ चेन्मत्रविद्युक्तं शारीरं पक्तिरूपिणि ॥

अदृश्यं तं यमं प्राह पंक्तिपावन एव स ॥ ३४७ ॥

यदि कोई मनुष्य किसी शारीरिक अंगके विकारके वशसे पंक्तिको दूषित करनेवाला  
हो अर्थात् अंगहीन हो परन्तु वह वेद इत्यादि शास्त्रोंका जामनेवाला हो तो धर्मराजने उसको

निर्दोषी मानकर पंक्तिको पवित्र करनेवाला कहाहै ॥ ३४७ ॥

भ्रुतिः स्मृतिश्च विमाणा नयने द्वे प्रकीर्तिते ॥

काण स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामंधं प्रकीर्तितं ॥ ३४८ ॥

भ्रुति और स्मृतिही ब्राह्मणोंके दो नेत्र हैं जो एकका जाननेवाला है ( भ्रुति और स्मृति,  
इन दोनोंमेंसे जो एकका जाननेवाला है ) वह एकनेत्रसे हीन है, और जा दोनों विषयोंके

नहीं जानताहै उसको अंधा कहाहै ॥ ३४८ ॥

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥

तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वंधकस्यात्रिरब्रवीत् ॥ ३४९ ॥

जिसमें श्रुति, स्मृति, शास्त्र न हो, न शील हो, न कुल हो, उस अंधे और अघमको श्राद्धमें अन्नदान न करै यह अत्रिकृपिने कहाहै ॥ ३४९ ॥

तरमाद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥

न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ ३५० ॥

इसकारण वेद और धर्मशास्त्रोंसे ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व है, केवल वेदसेही ब्रह्मत्व प्राप्त नहीं होता, यह अत्रिका वचन है ॥ ३५० ॥

यांगस्यैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥ लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैपोऽ-

धरोत्तरम् ॥ ३५१ ॥ वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाच्छास्त्रवेदवित् ॥ व्रतिनं च

कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥ तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितृणामक्षयं भवेत् ॥

॥ ३५२ ॥ यावतो व्रतते प्रासान्पितृणां दीप्ततेजसाम् ॥ पिता पितामह-

श्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३५३ ॥ नरकस्था विमुच्यन्ते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ॥

तस्माद्भिर्परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥ ३५४ ॥

योगशास्त्रकं कथित जिसके नेत्र हों, और अपने चरणोंके जो अग्रभागको देखताहों, अर्थात् कहींभी कुट्टिमें जो न देखताहो, लौकिक व्यवहारका जाननेवाला हो, शास्त्रमें कहे-हुए ऊच नीचको जो देखनेवाला हो ॥ ३५१ ॥ ज्ञानवान् हो शास्त्र और वेदका जाननेवाला हो आर जो व्रतकरनेवाला तथा कुलीन हो, वेद और स्मृतियोंमें सदा प्रीति रखनेवाला हो, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें जिमावै तौ पितरोंकी अक्षय्य वृत्ति होतीहै ॥ ३५२ ॥ जितने प्रास उपरोक्त लक्षणयुक्त ब्राह्मण भोजन करता है उतनेही प्रकाशमान तेजस्वी पितर पिता, पितामह और प्रपितामह नरकमें पड़ेहुए भी मुक्तहोकर शीघ्रही स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं, इस-कारण श्राद्धके समय यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करै ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रभीतपितृको द्विजः ॥

इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥ ३५५ ॥

जिस ब्राह्मणका पिता मरगयाहो वह यदि प्रत्येक महीनेकी अमावसके दिन श्राद्ध न करै तो प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ ३५५ ॥

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥

धनं पुत्राः कुलं तस्य पितृनिःश्वासपीडया ॥ ३५६ ॥

जो गृहस्थ कन्याके सूर्य अर्थात् कन्यागतोंमें श्राद्ध नहीं करता उसका धन, पुत्र, और वंश पितरोंके श्वासकी पीडासे नष्ट होजाता है ॥ ३५६ ॥

कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ॥ शून्या भ्रतपुरी सर्वा यावद्दृश्वि-  
कदर्शनम् ॥ ३५७ ॥ ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ॥ पुनः



स्वमघन याति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५८ ॥ पुत्र वा भ्रातरं वापि दी  
हित्र पीत्रक तथा ॥ पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते याति परमां गतिम् ॥ ३५९ ॥

कन्याराशिपर सूर्यके होनेसे सब पितर अपने उत्तम पुत्रोंके पास आजाते हैं, और जब  
सक बुद्धिबूकी सम्मानिका दर्शन न हो तपवक्र प्रेवपुरी सूनी रहती है ॥ ३५७ ॥ और जब  
सूर्य बुद्धिक राशिमें आते हैं तब पितृगण [ भाद्रके विना पावेद्वय ] उनके दारुण शाप  
देकर अपने स्थानको चले जाते हैं ॥ ३५८ ॥ पितरोंके कार्योंके पुत्र मार्ग, धैर्यता और  
पोषा यदि यह अधिकदित्व करते हैं तो यह भेष्ट गतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३५९ ॥

यया निर्मपनादमि सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥ तथा सहश्यते धर्मं भाद्रदानान्न  
सशय ॥ ३६० ॥ यं प्राप्नोति तदा सर्वं कन्यागते च गगया ॥  
सर्वशास्त्रार्यगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ ३६१ ॥ सवयज्ञफलं विद्या  
ब्रह्मदानान्न सशय ॥ ३६२ ॥ महापातकसयुक्तो या युक्तश्चोपपातकैः ॥  
घनेर्मुक्तो यया मानू राहुमुक्तश्च चद्रमा ॥ ३६३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्त संता  
प च विलघयेत् ॥ सर्वसौख्यमयं प्राप्तं भाद्रदानान्न सशय ॥ ३६४ ॥ सर्वेषा  
मेव दानानां भाद्रदानं विशिष्यते ॥ भेरुतुल्यं कृतं पापं भाद्रदानं विशोधन  
म् ॥ ३६५ ॥ भाद्र कृत्वा तु मर्त्यां वै स्वर्गलोके महीयते ॥ अमृतं ब्राह्मण-  
स्यान्न क्षत्रियान्न पयं स्मृतम् ॥ ३६६ ॥ वैश्यस्य चात्तमेघान्य भूद्रात्तं रुधिरं  
भवेत् ॥ एतत्सर्वं मया रूपात् भाद्रकाले समुत्पिते ॥ ३६७ ॥

जिम प्रकारसे सम्पूर्ण काष्ठोंमें अग्नि मघन करनेसे जानी जाती है वही प्रकारसे भाद्र करने  
से बिना धर्मका स्वरूप ज्ञात नहीं जाता इसमें सर्वेह नहीं ॥ ३६० ॥ जो गगाजीपर कन्याके सूर्यमें  
भाद्र करता है उसको सम्पूर्ण शास्त्रोंके पढ़नेका, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल, सब यज्ञों  
का फल और विद्यादानका फल निःसंदेह प्राप्त होता है ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ जिसप्रकार  
सूय भगवान् मेघोंके प्रासेसे मुक्त होते हैं, और चंद्रमा जिसप्रकारसे राहुके प्रासेसे मुक्त  
होता है वही प्रकारसे भाद्रके दानके प्रभावसे महापातकी मनुष्य भी सर्व पापोंसे तथा  
उपपातकोंसे मुक्तकर सर्व प्रकारके सुखोंका प्राप्त करते हैं इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ३६३ ॥  
॥ ३६४ ॥ सब दानोंके बीचमें भाद्रदानही भेष्ट है कारण कि सुमेरुपर्वतकी समान किये हुए  
पापोंकीभी भाद्रका दान शुद्ध करेता है ॥ ३६५ ॥ मनुष्य भाद्र करनेसे स्वर्ग लोकमें  
सम्मान पाता है, भाद्रके समय ब्राह्मणका भक्ष अमृतकी समान है क्षत्रीका भक्ष पृषधी  
समान है, वैश्यका भक्ष पुत्ररूप है, और शूद्रका भक्ष रुधिरकी समान है इन सबका वर्णन  
मैंने गुप्तसे किया ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

शैश्वदेव च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ॥ अमृतं तेन विमानसृग्यञ्जुसाम-  
संस्कृतम् ॥ ३६८ ॥ ध्यवहारानुष्म्येण धर्मेण बलिभिर्जितम् ॥ क्षत्रियान्नं  
पयस्तेन पूतात्तं यज्ञपालने ॥ ३६९ ॥

पक्षि, शैश्वदेव, होम, और देवताओंके पूजनमें पेशोक्त मंत्रोंको जपे, ब्रह्म, यजु और  
सामवेदके मंत्रोंसे अभिषादित होनेके कारण ब्राह्मणका भक्ष निर्मल अमृतरूप है ॥ ३६८ ॥

व्यवहारकी रीतिसे धर्मपूर्वक बलवानोंने जीतकर सचिंत कियाहै इस कारण क्षत्रीका अन्न दूधकी समानहै, और यज्ञकी रक्षा करनेके कारण वैश्यका अन्न घृतरूप है ॥ ३६९ ॥

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निपादकः ॥

पशुम्लेच्छोऽपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥ ३७० ॥

देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निपाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल, यह दश प्रकारके ब्राह्मण कहे हैं ॥ ३७० ॥

संख्या ज्ञानं जपं हामं देवतानित्यपूजनम् ॥ अतिथि वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७१ ॥ शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥ निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७२ ॥ वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥ सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७३ ॥ अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥ आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ३७४ ॥ कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥ वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७५ ॥ लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुमं क्षीरसर्पिषः ॥ विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥ चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥ मत्स्यमांसं सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७७ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७८ ॥ वार्पाकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥ निश्शंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीनश्च भूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥ निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चंडाल उच्यते ॥ ३८० ॥

जो प्रतिदिन सध्या, ज्ञान, जप, होम, देवपूजा अतिथिकी सेवा और जो वैश्वदेव करतेहैं उनको "देव" ब्राह्मण कहतेहैं [ इन सब कर्मोंके करनेवाले ब्राह्मणकी देवसंज्ञा है ] ॥ ३७१ ॥ शाक, पत्ते, फल, मूलको भक्षण करनेवाला और जो वनमें निवासकर नित्य श्राद्धमें रत रहताहै ऐसे ब्राह्मणको "मुनि" कहाहै ॥ ३७२ ॥ जो प्रतिदिन वेदान्तको पढताहै और जिसने सबका संग त्यागदियाहै, साख्य और योगके ज्ञानमें जो तत्पर है उस ब्राह्मणको "द्विज" कहाहै ॥ ३७३ ॥ जिसने रणभूमिमें सबके सन्मुख धान्वीयोंको युद्धके आरंभमें जीताहो और अस्त्रोंसे परास्त कियाहो उस ब्राह्मणको "क्षत्री" कहतेहैं ॥ ३७४ ॥ खेतीके कार्यमें रत और गौकी पालनामें लीन, और वाणिज्यके व्यवहारमें जो ब्राह्मण तत्पर हो उसको "वैश्य" कहतेहैं ॥ ३७५ ॥ लाख, लवण, कुसुम, घी, मिठाई, दूध, और मांसको जो ब्राह्मण बेचताहै उसको "शूद्र" कहतेहैं ॥ ३७६ ॥ चोर, तस्कर, [ बलपूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेवाला ] सूचक, [ निकृष्ट सलाहका देनेवाला, ] दंशक [ कडवा बोलनेवाला ] और सर्वदा मत्स्य मांसके लोभी ब्राह्मणको "निपाद" कहतेहैं ॥ ३७७ ॥ जो ब्रह्म वेद और परमात्माके तत्त्वको कुछ नहीं जानता, और केवल यज्ञोपवीतके बलसेही अत्यन्त गर्व प्रकाश करताहै, इस पापसे उस ब्राह्मणको "पशु" कहतेहैं ॥ ३७८ ॥ जो निश्शंकभावसे ( पापका भय न करके ) बावडी, रूप, तालाब, बाग, छोटा तालाब इनको बन्द करताहै उस ब्राह्मणको

'अच्छ' कहा है ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीन ( संध्या इत्यादि नियम नैमित्तिक कर्मोंस हीन ) मूर्ख, सर्व धर्म ( सत्यवादिता इत्यादि ) स रहित और सर्व प्राणियोंक प्रति जो निर्दयता प्रकाश करता है वन ब्राह्मणको 'बाढाल' कहते हैं ॥ ३८ ॥

वेदविहीनाश्च पठति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठा ॥

पुराणहीना कृपिणो भवति अष्टास्ततो भागवता भवति ॥ ३८१ ॥

अिनको वेद नहीं आता वह शास्त्रको पढते हैं, किन्हीं शास्त्र नहीं आता वह पुराणोंको पढते हैं, और किन्हीं पुराण नहीं आता वह सेती करत हैं और अिनस अती नहीं होती वह धरागी ब्राह्मण हैं ॥ ३८१ ॥

ज्यांविदिदो ह्ययर्वाणं कीरा पौराणपाठका ॥

आद्यपन्न महादाने धरणीया कदाच न ॥ ३८२ ॥

ज्योतिषी, मर्षयवेदका ज्ञाता, कीर ( जो दावेकी समान केवल पढाई हुए वाणी बोलता हो ) और पुराणक पाठकरनेवाळको आद्य, यज्ञ, और महादानमें कदापि धरण न करै ॥ ३८२ ॥

आद्ये च पितरो धोरं दानं विष तु निष्फलम् ॥

यज्ञे च फलहानि स्यात्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ३८३ ॥

उपरोक ब्राह्मणको आद्यमें भोजन करनेसे पितर धोर नरकमें जाते हैं, दान देनेसे दान निष्फल होता है, यज्ञमें धरण करनेसे फलकी हानि होती है, इसकारण इन कामोंमें ऐसे ब्राह्मणोंको बर्जये ॥ ३८३ ॥

आधिकशित्रकारश्च वैद्या नक्षत्रपाठक ॥

चतुर्विधा न पूज्यते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८४ ॥

अधिक पाठनेवाळा, चित्रकार, वैद्य और नक्षत्रपाठक, ( जो घर २ मन्त्र विधि तथा शाहुआ फिरता है ) यह चार प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान पंडित होनेपरमी पूजनीय नहीं हैं ॥ ३८४ ॥

मागधो मायुरधीष कापटं कीटकानजी ॥

पद्य विधा न पूज्यते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८५ ॥

मागध देशके निवासी, मायुर, कपट देशका खनेवाळा कीटक, और कान देशमें जो ब्रह्मण हुआ हो, यह चार ब्राह्मण बृहस्पतिकी समान पंडित होनेपरमी पूजनीय नहीं हैं ॥ ३८५ ॥

कपक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ॥

तस्या जाता सुतास्तेषां पिदृषिड न विद्यते ॥ ३८६ ॥

माके लीडुर कन्या मार्या नहीं होसकती इसकारण वससे प्रत्यक्ष हुए पुत्र पितरोंको पिड देनेके अधिकारी नहीं हैं ॥ ३८६ ॥

अष्टशत्यागतो नीरं पाणिना पिचते क्रिमः ॥

सुरापानन तजुर्न्यं तुन्य गोमांसभक्षणम् ॥ ३८७ ॥

जो ब्राह्मण अट्टशङ्कीके जलको अंजुलीसे पीनाहै वह जल मन्त्रिा और गोमांसभक्षणकी समान है ॥ ३८७ ॥

उर्ध्वजंबु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥

तावच्चंडालरूपेण यावद्रंगां न मज्जति ॥ ३८८ ॥

जो ऊर्ध्वजंब ( जंघा ऊपरको करकै ) ब्राह्मणके दोनों चरणोंको धोतेहै वह जबतक रंगा न्दान नहीं करते तबतक चांडाल ( अशुद्धि ) अवस्थामें रहते हैं ॥ ३८८ ॥

दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥

अजाखररजःस्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३८९ ॥

दीपक, शय्या, और आसनकी छाया ( जो ऊपर पड़े तो ) कपासके वृक्षकी दंतौन और बकरीके खुरोंसे उटीहुई बूरि इसका स्पर्श इन्द्रकी भी लक्ष्मी हरताहै ॥ ३८९ ॥

गृहादशगुणं कूपं कूपादशगुणं तटम् ॥

तटादशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥ ३९० ॥

बरेके स्नानकी अपेक्षा कुएका स्नान करनेसे दशगुणा फल होताहै, कुएसे दसगुणा तट-पर और तटसे दसगुणा नदीमें स्नान करनेसे फल मिलताहै, और गंगोके स्नानसे असंख्य पुण्य प्राप्त होताहै उसकी गणना नहीं होसकती ॥ ३९० ॥

स्रवद्यद्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥

वापी कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥ ३९१ ॥

ब्राह्मणोंको स्रोतोंका जल, क्षत्रियोंको सरोवरका जल, वैश्यको वापी कूपका जल, और शूद्रको वरतनका जल साधारण स्नानके उपयोगी है वा इस वचनसे वर्णानुसार इन सब जलोंके पार्थक्यके निर्णय करनेसे जाना जाताहै, स्रोतोंका जल सबसे श्रेष्ठ है, सरोवरका जल उससे कम है, वापी और कुएका जल उससे अपकृष्ट है और वरतनका जल सबसे क्षिपिद्ध है ॥ ३९१ ॥

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यात्तिलतर्पणम् ॥ अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपात-  
तः ॥ ३९२ ॥ गंगा गया त्वद्भावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ॥ मवा पिंडप्रदा-  
नं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९३ ॥

यदि किसीका भृंगुपतन हो तो तीर्थका स्नान, महादान, और तिलसे तर्पण, एक वर्ष पर्यन्त न करै ॥ ३९२ ॥ गंगापर, गयामें, तथा अमालस्याके दिन अथवा क्षय तिथिमें और वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीमुख श्राद्धके करनेमें पिंडदानका प्रधानक्षत्रके होनेपर कुछ दोष नहींहै इनके अतिरिक्त अन्य स्थलमें प्रधानक्षत्रमें श्राद्ध वर्जित है ॥ ३९३ ॥

वृतं वा यदि तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥

चत्वारो ह्याज्यसंस्थाना हृतं नैव तु वर्जयेत् ॥ ३९४ ॥

१ जो पहाडके ऊपर मुक्तिके निमित्त गिरकर मरते हैं उसको महागुरुनिपातन अर्थात् भृंगुप-  
तन कहते हैं ।

पृथ, वेळ, दूष, और दधि यह चार वस्तु चाहे नीचसेभी प्राप्त हों वीभी इन्के द्वारा हवन करनेमें किसीप्रकारका दोष नहीं है ॥ ३९४ ॥

भ्रुवैतानुपयो धर्माभापितानत्रिणा स्वयम् ॥ इदमूत्रमहाभान सर्वे ते धर्मनिष्ठिता ॥ ३९५ ॥ य इद धारयिष्यति धर्मशास्त्रमतप्रिता ॥ इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यति त्रिविष्टपम् ॥ ३९६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ॥ आयुष्कामस्तर्यैवायुः श्रीकामो महर्ता त्रियम् ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिमहर्षिस्मृतिः समाप्ता ॥ १ ॥

भद्रिजीने कोहेहुए इन धर्मोको सुनकर धन धर्मपरायण ऋषियोंने महारमा भद्रिजीसे यह कहा ॥ ३९५ ॥ कि, जो मनुष्य आलस्यको छोडकर इस धर्मशास्त्रको धारण करेते ( कर्मात् इसके मर्मको मह्य करेगे ) वह इस लोकमें यश प्राप्त कर अवमें स्वर्गप्राप्तको प्राप्त होंगे ॥ ३९६ ॥ इसके पाठ करनेस विद्यार्थी विद्याको और धनकी इच्छा करनेवाला धनको और आयुकी इच्छा करनेवाला आयुको सौन्दर्यकीकी इच्छा करनेवाला सौन्दर्यकीको प्राप्त करेगा ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ॥ १ ॥



॥ श्रीः ॥

## विष्णुस्मृतिः २.

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारंभः ॥ विष्णुमेकाग्रमासीनं  
श्रुतिस्मृतिविशारदम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे कलापग्रामवासिनः ॥ १ ॥ कृते  
युगे ह्यपक्षीणे लुप्तो धर्मस्सनातनः ॥ तत्र वै शीर्यमाणे च धर्मो न प्रतिमा-  
र्गितः ॥ २ ॥ त्रेतायुगेऽथ संप्राप्ते कर्तव्यश्चास्य संग्रहः ॥ यथा संप्राप्यतेऽ-  
स्माभिस्तत्त्वन्नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमाणां यो धर्मो विशेषश्चैव यः  
कृतः ॥ भेदस्तथैव चैषां यस्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ ऋषीणां समवेतानां  
त्वमेव परमो मतः ॥ धर्मस्येह समस्तस्य नान्यो वक्तास्ति सुव्रत ॥ ५ ॥ श्रुत्वा  
धर्मं चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ॥ तस्माद्ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ धर्मकामा इमे  
द्विजाः ॥ ६ ॥

एकाग्र चित्तसे बैठेहुए श्रुति और स्मृतियोंके जाननेवाले विष्णुजीसे कलापग्रामके निवासी  
सम्पूर्ण मुनियोंने यह पूछा ॥ १ ॥ कि सतयुगके बीतजानेपर सनातनधर्म लोप होगया, और  
उसके बीतनेपर किसीने धर्मका शोधन नहीं किया ॥ २ ॥ इससमय धर्मका समग्र अवश्य  
करना उचित है, कारण कि अब त्रेतायुग वर्तमान है, जिस रीतिसे वह धर्म हमको प्राप्त  
होजाय, वह रीति आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम श्रेष्ठ ! वर्ण और आश्रमोंका धर्म  
तथा इनके धर्मोंकी विशेषता ऋषियोंने कीहै, अथवा परस्परके धर्मका भेद, यह आप सब  
हमसे कहो ॥ ४ ॥ यहापर जितने ऋषि एकत्रित हुए हैं, उन सबमें तुम्हीं श्रेष्ठ माने गये  
हो, हे सुव्रत ! इसकारण तुम्हारे अतिरिक्त सम्पूर्ण धर्मका वक्ता दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥  
आपके कहे हुए धर्मको सुनकर उसीके अनुसार हम सब आचरण करेंगे, यह सभी ब्राह्मण  
धर्मके श्रवण करनेकी अभिलाषा कर रहे हैं, इसकारण हे द्विजोंमें उत्तम ! आप धर्मका  
वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

इत्युक्तो मुनिभिस्तैस्तु विष्णुः प्रोवाच तांस्तदा ॥ अनघाःश्रूयतां धर्मो वक्ष्य-  
माणो मया क्रमात् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ॥ एते-  
षां धर्मसारं यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥

मुनियोंके इसप्रकार कहनेपर उससमय विष्णुजी बोले कि, हे पापरहितों ! मैं जिस धर्मको  
क्रमानुसार कहूंगा उसको तुम सब श्रवण करो ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र तथा  
इतर ( प्रतिलोम सङ्कर अन्त्यजादिक ) इतने वर्ण लोकमें वर्तमान हैं, मेरे कहेहुए इन्हींके  
धर्मके अनुसार धर्मको तुम सुनो ॥ ८ ॥

ऋताश्रुतौ तु सयोगाद्ब्राह्मणो जायते स्वयम् ॥

तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गमादीं तु प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

भ्रतु ( एजोवर्षनसे सोळहदिनके भीवर ) में श्री और पुरुषके सयोगसे ब्राह्मण कल्पन होते हैं, इसी निमित्त ब्राह्मणका संस्कार गर्भसे लेकर करै ( यहाँपर गमांघाननामक संस्कार भी अन्यत्र लिखा हुआ, बेशेक धान डेना ) यह प्रथम संस्कार गर्भका है ॥ ९ ॥

सीमतोन्नयन कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥

गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भेगर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

सीमत ( अठमासा ) कर्म स्त्रीका संस्कार नहीं है, परन्तु गर्भकाही है, इसकारण प्रथि-  
गर्भमें सीमत संस्कार करै ॥ १० ॥

जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते ययोदितम् ॥

बहिर्निष्कमणं चैव तस्य कुर्याच्छिक्षो शुभम् ॥ ११ ॥

पुत्रके उत्पन्न होनेपर वेद शास्त्रके अनुसार जातकर्म ( वसुधन ) करै इसके पीछे उस पाठकका माण्ड सहित बहिर्निष्कमण करै ( घरसे बाहर डे जावै ) ॥ ११ ॥

पष्ठे मासे च सप्ताप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ॥

तृतीयेऽध्वे च सप्ताप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥

जब छै महीनेका पाठक होगाय तो उसका भ्रमप्राशन करै और जब तीन वर्षका हो जाय तब केशकर्म ( मुंडन ) करै ॥ १२ ॥

गमाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्तोपनायनम् ॥ द्विजत्वे त्वय सप्ताप्ते सावित्र्यामपि

कारमाक् ॥ १३ ॥ गर्भदिकादशे सैके कुर्यात्सात्रियवैश्ययो ॥ कारयेद्विजक

माणिं ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मणका गर्भसे उगाकर धर्मके वर्षमें पञ्चोपवीत करै, कारण कि ब्राह्मण होनेपरही गायत्रीका अभिकारी होता है ॥ १३ ॥ क्षत्रियका पञ्चोपवीत गर्भसे उगाकर ग्यारहवें वर्षमें करै और वैश्यका पञ्चोपवीत चारहवें वर्षमें करना उचित है ॥ १४ ॥

१ यहाँपर पुंसवन संस्कारका कथन इसकारण नहीं किया कि यह पुत्रही होमा देना किसी कारण से प्रेरित होनाय उनी करना बिलारे ।

२ इसीको सूत्रकारण 'सौख संस्कार' भी कहतेहै ।

३ यह कालनियम अथम वर्षभ्रमी उपलब्ध ( लब्ध ) है कारण कि 'गमाष्टमेऽष्टमे चान्दे वा स्तनस्तोपनयनम्' एता मनुका बचन है । ब्राह्मणवसकाम हो अवात् पाठक प्रसूत हो तो उसको शीघ्र मस्रयन्त्री ( मस्रवेत्तमस्र ) होनेके अर्थ लौकिक वर्षमें भी उपनयन करदे क्योंकि मस्रवर्षस्व-  
यामस्य वार्षो विप्रस्व पंचमे एता मनुका बचन है; यह सुस्पष्टका पदान्त कदाहै गौणकाष्ठ गर्भसे षोडश वर्षभ्रमी मस्यय कदा, सप्तपर मस्य ( अर्थात् संस्कारसे हीन ) होजावैरे एता होनेपर मस्य स्तनम यह करके उसका वरकार दोषकदाहै, एवं सावित्रिकके नियममें भी सुस्पष्ट कालसे विद्युत्प  
पत्र समराहेना ।

शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥

उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे रवात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

और चौथा शूद्रवर्ण सम्पूर्ण संस्कारोंसे हीन है, उसका संस्कार केवल यही कहा है वह तीनों वर्णोंको आत्मसमर्पण करै, अर्थात् उनकी सेवा भली भाँतिसे करता रहै ॥

यो यस्य विहितो दंडो भेखलाजिनधारणम् ॥

सूत्रं वस्त्रं च गृहीयाद्ब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्य ( यज्ञोपवीत होनेसे लेकर प्रथम आश्रम ) में जिस वर्णका जो जो दंड, ला, ( मूँजकी कौंधनी ) मृगछाला, सूत्र, यज्ञोपवीत जनेऊ, वस्त्र, अन्यत्र ( मन्वादि शास्त्रोंमें ) कहे हैं, उस २ का नियमसहित धारण करै ॥ १६ ॥

ब्राह्मे सुहूर्त उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तथा ॥ त्रिरायस्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मं  
समाहितः ॥ १७ ॥ अद्वैदवतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिभार्जनम् ॥ सावित्री  
जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥ १८ ॥

ब्राह्मसुहूर्तमे उठकर शुद्ध जलसे तीनवार आर्चन और प्राणायाम करके सावधान मौन धारण कर बैठे ॥ १७ ॥ अप् ( जल ) है देवता जिनकी ऐसे मंत्रोंसे देहका ( देहसे शिरपर्यन्त छीटा मार ) कर ( पूर्वमुख हो ) सूर्योदयतक गायत्रीका जप हुआ बैठारैहै ॥ १८ ॥

अधिकार्यं ततः कुर्यात्प्रातरेव व्रतं चरेत् ॥ गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभि  
दनम् ॥ १९ ॥ समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥ प्रांजलिः सम्य  
सीन उपस्थाय यतः सदा ॥ २० ॥

इसके पाँछे अग्निहोत्र करै, और प्रातःकालके समय ही व्रत ( महानाम्न्यादि ) करै; उपरान्त गुरुके चरणोंमें प्रणाम करै ॥ १९ ॥ समिध ( हवनआदिकके अर्थ लकड़ी ) और जलका घड़ा गुरुके लिये लाकर हाथ जोड़ भलीभाँति जितेन्द्रिय हो गुरुके सन्मुख कर गुरुकी स्तुति करके सावधानीसे रहाकरै, इस प्रकारसे सर्वदा नियम पालन करै यंत्रं ग्रंथमधीयीत तस्यतस्य व्रतं चरेत् ॥ सावित्र्युपक्रमत्सर्वभावेद्ग्रह चरम् ॥ २१ ॥ द्विजातिषु चरेद्दैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ॥ निवेद्य गुरवेः यात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥ सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥

१ तीन वा चार घड़ी रात्रि शेष रहनेपर ।

२ यहा दो वार विना मंत्रके तीसरे वार “ऋतञ्च सत्यञ्च” इस अथमर्पण सूक्तसे आचमन बाद श्रोत्र वदन आदिक करके प्राणायाम सतन्याहृतिक सशिरस्क सावित्रीमंत्रसे करै, ऐसा में स्पष्ट लिखाहै सो वहासे जानलेना ( यहासे ब्रह्मचर्य धर्मको अध्याय समाप्त होनेतक कहेंगे )

३ “आपो हि धा ” इत्यादिक इसका मंत्र है ।

४ यह अशक्तियक्षमें बैठकर जपकरना लिखाहै, शक्ति हो तो खडा होकर जपै क्योंकि “



जिस २ ग्रन्थको पढ़े वही २ ग्रन्थका ग्रन्थ करे, और गायत्रीके उपवेद्यसे सम्पूर्ण वेदके पठनपर्यन्त ॥ २१ ॥ वीनो द्विजादियोंने भिक्षाके समय भिक्षात्न करे, उस भिक्षाको गुरु-वेदको निषेधन करके गुरुकी सम्मतिसे ब्रह्मचारी भोजन करे ॥ २२ ॥ सायंकालकी सभ्या करने समय ऋषोत्तरशत गायत्रीका जप करे और सायंकालको भोजनके छिये वही भौति भिक्षाके निमित्त जाय ॥ २३ ॥

वेदस्वीकरणे इष्टो युवधीनो गुरोर्हितः ॥

निष्ठा तत्रैव यो गच्छेन्नैष्टिकस्त्स उदाहृतः ॥ २४ ॥

आ ब्रह्मचारी वेद पढ़नेमें प्रसन्न और गुरुके श्यवीन तथा गुरुका हितकारी होताहै, और जो मृत्युकाळवत् गुरुके यहाँही निवास करता है वहीको नैष्टिक ब्रह्मचारी कह्ये ॥ २४ ॥

अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥ गृहस्थधर्ममाकांसन्गुहोहादुपा-  
गतः ॥ २५ ॥ अननैव विधानेन कुन्याहारपरिग्रहम् ॥ कुले महति सम्भूतां  
सर्षणां लक्ष्म्यान्विताम् ॥ २६ ॥

इस प्रकारसे ब्रह्मचर्य धर्मको करके वेदको पढ़कर गुरुदेवके घरसे बाहर गृहस्थ धर्मकी आकांक्षा करे ॥ २५ ॥ शास्त्रकी विधिके अनुसार इसीप्रकार स्त्रीका पाणिग्रहण ( विवाह ) करे, वहे कुलमें उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्रीका ॥ २६ ॥

परिणीय तु पण्मासान्वत्सरं वा न सविशेत् ॥

औदुवरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहे गृहे ॥ २७ ॥

विवाह करके आ छे: महीने अथवा एक वर्षवत्क स्त्रीका सग नहीं करताहै, उस ब्रह्म-  
चारीको घर ३ में औदुवरायण नामसे पुकारते हैं ॥ २७ ॥

अदुकाले तु समाप्ते पुत्रार्थी संविशेत्सदा ॥

जाते पुत्रे तथा कुर्याद्गन्यायेय गृहे वसन् ॥ २८ ॥

जिस समय स्त्री अतुमवी हो तो पुत्रकी इच्छासे स्त्रीका ससर्ग करे, पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर धरमें रहता हुआ भी अग्निहोत्र ग्रहण करे ॥ २८ ॥

पुत्रे जातेऽनृती गच्छन्सप्रदुष्येत्सदा गृही ॥ चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न  
विस्मृतः ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुत्र उत्पन्न हानके पीछे स्त्रीको विना अतुदुप स्त्रीसग करनेसे पृथग् स्त्री होपी होताहै, और चौथे पुत्र हानेपर गृहस्त्री होकेभी जान बूझकर ब्रह्मचर्यही रखे ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे माणवीकानां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्मसूचनम् ॥

भ्राजापत्यपदस्थानं सम्पत्कृत्य निघोचत ॥ १ ॥

अब मैं इसका आगे गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका कह्याहूँ, ब्रह्मसोफके स्थानके श्रावण उस धर्मका महीमांति सुनै ॥ १ ॥

सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥

स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमर्तद्रितः ॥ २ ॥

प्रातःकालही सबजने उठकर शौचादि कार्यसे निश्चिन्त हो सदा आलस्यरहित, स्नानकर संध्योपासन करै ॥ २ ॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यदुरितं कृतम् ॥

प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयंति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

मोहसे अथवा अज्ञानसे जो पाप रात्रिमें कियाहै उसको प्रातःकालके स्नान करनेसे ब्राह्मणोंमें उत्तम मनुष्य दूर करते हैं ॥ ३ ॥

प्रविश्याथामिहोत्रं तु हुत्वाग्नि विधिवत्ततः ॥ शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥ स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवत् ॥ देवानृषीन्पितृंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥

फिर अग्निशालामें जाकर विधिसहित अग्निहोत्र कर शुद्धदेशमें बैठकर शक्तिके अनुसार वेदको पढ़ै ॥ ४ ॥ वेदके पाठ करचुकनेके पीछे वेदका पढनेवाला ब्राह्मण स्नान करके तिल और जलसे देवता ऋषि पितर इनका तर्पण करै ॥ ५ ॥

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुंजीत वाग्यतः ॥

भुक्तोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किंचिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥

फिर मध्याह्न समयके आनेपर शिष्ट ( वलिवैश्वदेवसे बचाहुआ ) अन्नको मौन धारण कर-भोजन करै, भोजन करनेके उपरान्त कुछ विश्राम करके ब्रह्मका विचार करै ॥ ६ ॥

इतिहासं प्रयुंजीत त्रिकालसमये गृही ॥ काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा वहिः ॥ ७ ॥ आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्री शक्तितो जपेत् ॥ हुत्वा चाथामिहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रियाम् ॥ ८ ॥ बलि च विधिवद्त्वा भुंजीत विधिपूर्वकम् ॥

दिनके तीसरे भागमें इतिहास ( महाभारत आदि ) काभी विचार करै, और संध्या होनेपर घरमें अथवा बाहर ॥ ७ ॥ पश्चिम दिशाके सन्मुख बैठकर संध्योपासन करै, और यथा शक्ति गायत्रीका जप करै, इसके पीछे अग्निहोत्र और अग्निकी प्रदक्षिणा ॥ ८ ॥ और विधिसहित वलिवैश्वदेव करके विधिपूर्वक भोजन करै,

दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाब्रजेद्यादि ॥ ९ ॥ तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥ कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥

संनिवेश्याथ विप्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥

१ यहापर उस स्थानसे पहलेके अर्घसे लेकर सब कृत्य पश्चिममुख होकर करै और उससे पहलेका कुल कृत्य पूर्वमुखही होकर करै ।

२ दशवार वा अट्ठाईस वार, वा अष्टोत्तर, इससे अधिक नहीं, कारण कि नित्यकर्मका निर्वाह इतनेमें ही होताहै अधिक ( १००० ) करनेसे रात्रि आजायगी उससे सूर्यके अभाव हेनेसे गायत्री जप निषिद्ध है ।

जो दिनके समय या रात्रिके समय कोई अभ्यागत आजाय तो ॥ ९ ॥ वृण ( आसन ) भूमि, जल, वाणीसे वसका मली मॉसिसे आदर सरकार करै, आने जानेकी कथा ( आपने बडी कृपा की आपका आन्य कहींसे हुआ इत्यादि ) से वसको सन्तुष्ट करके विधाभाविका बिचार करै ॥ १ ॥ पहली पहल वसे क्षयन कराकर वसकी आहा लेकर पीछे आप क्षयन करै,

यदि योगी तु समाप्तो मिसार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥ योगिन पूजयेन्नित्यम  
न्यथा किस्विपी भवेत् ॥ पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥ १२ ॥  
पूज्या नित्यं भवत्येव सर्वे धैव निवासिनः ॥ तस्मात्सपूजयेन्नित्यं योगिन  
गृहमागतम् ॥ १३ ॥ तस्मिन्मयुक्ता पूजा या साक्षयापोपकल्पते ॥

जो मिस्राके छिमे योगी आवै तो वसके समुप बैठकर ॥ ११ ॥ योगीका नित्य पूजन करै, ऐसा न करनेसे पापका भागी होछाहै, पुरमें अथवा ग्राममें यदि योगी आजाय ॥ १२ ॥ तो वस योगीके आवैसे वहांके निवासी सब पूजने योग्य होछें, इस कारण जो योगी घरमें आवै तो वसका नित्य पूजन कर ॥ १३ ॥ वसकी कीहुई पूजा अथवा ( अविनाशी ) सुख देनेवाली होती है,

गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्तं उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥

गृहस्थियोंका उत्तम स्वर्गका साधन जो कर्म है वह कर्म मैं तुमसे कहछाहू कि ॥ १४ ॥  
ब्राह्म मुहूर्तमें बैठकर वस ( पूर्वोक्त ) सम्युक्त कर्मका मही प्रकार आचरण करै,

चतुःप्रकारं भिद्यंते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥ १५ ॥ वृत्तिभेदेन सततं ज्यायां  
स्तेषां परं परं ॥ कुसुलधान्यको वा स्यात्कुमीधान्यक एव वा ॥ १६ ॥ ध्य  
हेहिको वापि भवेत्सद्यःप्रसालकोपि वा ॥ भीतं स्मार्तं च यत्किंचिद्विधानं  
धर्मसाधनम् ॥ १७ ॥ गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥ एय विप्रो  
गृहस्थस्तु स्नातं शुद्धापरं शुचिः ॥ १८ ॥ प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति  
न साप्तयः ॥ १९ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

धर्मके सिद्ध करनेवाले गृहस्थी चार प्रकारके भिन्न २ होतेहैं ॥ १५ ॥ अपनी २ वृत्ति ( व्यवसाय ) के भेदसे धर्ममें वचरोत्तर भेद होछाहै १ जो कुसुलधान्य ( कोठेमें तीन वर्षतक निर्बाह क्षेत्राय इतने अन्नको जो रक्खै ) २ कुमीधान्यक ( एक वर्षतक निर्बाह क्षेत्रके छिमे कुसुमों जो अन्नको रक्खै ) ॥ १६ ॥ ३ प्रवैदिक ( तीन दिनका जो अन्न रक्खै ) ४ सद्यःप्रसालक ( उस दिनका वसीहित कठामेबाछा ) वेद अथवा स्मृतियोंमें कहाहुआ जो धर्मका साधन कर्म है ॥ १७ ॥ घरमें रहनेवाले मनुष्यको वह समस्त करन्य चाहिये, कारण कि, न करेबाछा दोषका भागी होछाहै, इस प्रकारसे स्नात स्वमाय श्वेत वस्त्रोवाछा मुद्ध गृहस्थी प्राप्नय ॥ १८ ॥ ब्राह्मके उत्तम स्थानको प्राप्त होछाहै, इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे मनुष्यवैकान्तं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ॥ चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥ १ ॥ गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान्न हापयेत् ॥ अग्निहोत्रं च जुहुया-  
दन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥

गृहस्थी अथवा ब्रह्मचारी जिस सप्रथ वनमे निवास करै तव चीर ( चीथडे ) अथवा वल्कल इनको धारण करै, और अकृष्टान्न ( जो विना जोते और बोये पैदा हो उस अन्नको ) भक्षण करै और मौन होकर रहै ॥ १ ॥ अथवा निर्जन स्थानमे जाकरभी पंच यज्ञोंका परि-  
त्याग न करै, अन्न अथवा नीवार ( पसाईके चावल ) आदिसे अग्निहोत्रभी करै ॥ २ ॥

श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥

पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥ ३ ॥

और श्रावणके महीनेमे अग्निका आधानकर ब्रह्मचारी ( ब्रह्मचर्यधर्ममे स्थित ) वनमे रहता हुआ पंचयज्ञकी विधिसे आलस्यरहित हो यज्ञ करै ॥ ३ ॥

संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्दने ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यधन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥

जो अपने भोजनके लिये वनका अन्न इकट्ठा कियाहै उसको कारके महीनेमे दानकरदे, और नये वनके अन्नको संग्रह करै ॥ ४ ॥

आकाशशायी वर्षासु हेमंते च जलाशयः ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रं चाद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥ अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥

वर्षाऋतुमें आकाश ( खुले ऊँचे ) स्थान में, जाडोंमें जलमे शयन करै, ग्रीष्मऋतु ( गर-  
मी ) में पंचाग्निके मध्यमें बैठकर वनमें वास करताहुआ मनुष्य सर्वदा रहै ॥ ५ ॥ और इसके पीछे कृच्छ्र, चाद्रायण, तुलापुरुष, अतिकृच्छ्र, इन व्रतोंको निष्काम होकर शुद्ध-  
तासे करै ॥ ६ ॥

त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भतजान्गुणान् ॥ पूजयेदतिथीश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥ ७ ॥ प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषां किञ्चिदात्मवान् ॥ दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्धवानः प्रियंवद ॥ ८ ॥ रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥ वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्याचितयन् ॥ ९ ॥ केशरोमनखश्मश्रून् छिद्यान्नापि कर्तयेत् ॥ त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥ चतुःप्रकारं भिद्यंते मुनयः शंसितव्रताः ॥ अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥

१ अर्थात् स्त्रीसगत्यादिक ऋतुकाल अन्य समयमें गृही पुरुष वानप्रस्थी हुआ न करै, जितेन्द्रिय होकर रहै ।

और पाँचों सूयोंके गुणों ( अन्न, स्वध, तप, रस, गण ) को स्रष्टा हुआ प्रिकारक स्नान करे; वनमें प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी ( ब्रह्मचर्यधर्ममें स्थित ) पुरुष व्यक्तियोंका पूजन करे ॥ ७ ॥ और दान किस्तीसे न ख, केवल ब्रह्मचारी ही जानता रहे, ब्रह्मचान् और भियमापी होकर प्रविष्टिन वमाश्रुति दान दे ॥ ८ ॥ रात्रिमें स्वयं बनाये स्वपिण्ड ( चौदरे ) पर शयन करे और पैरोसे सिन्धे २ साराहित व्यतीथ करे अथवा अपने मनमें किंचित् भी क्रुद्धित न हो; और शीतलसे पैठा रहे ॥ ९ ॥ और वेष्ट, रोम, नख, डाढ़ी इनका न कटरे और न इनको छेदन करे; और वनवासमें उत्तर शुद्ध अपने शरीरकी प्रीतिको छोड़ दे। अर्थात् अपने शरीरसे किंचित् मो प्रेम न करे; और अपने पूर्वोक्त कर्मोंको करता रहे ॥ १० ॥ इस व्रतके करनेवाले सुनि बार प्रकारके होते हैं, यह व्रत यथा कठिन है अनुष्ठान ( अपने २ कर्म ) की निशपत्तासे वनमें उत्तर उत्तर अष्ट हावते ॥ ११ ॥

वार्षिक वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वनस्यधर्ममातिष्ठन्नपेत्कारं जिते द्वियं ॥ १२ ॥ मूरिसवार्षिकमाय वनस्थं सर्वकर्मकृत् ॥ आदेहपतन तिष्ठे-  
न्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥ पण्मासास्तु ततश्चान्यं पचयन्नाभियारत् ॥  
फाले चतुर्थे भुञ्जानो देह त्यजति धर्मत ॥ १४ ॥ त्रिंशद्विनार्थमाहृत्य  
वन्याह्नानि शुद्धिवत् ॥ निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्थाय्यं पष्टेन्नभोजन ॥ १५ ॥  
दिनार्थमन्नमादाय पचयन्नाभियारत् ॥ सद्यःप्रसालको नाम चतुर्थं परिकी-  
र्तित ॥ १६ ॥ एषमेतं हि वैमान्या मुनयः शसितवता ॥ १७ ॥  
इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे वृत्तिसौध्याय ॥ ३ ॥

पचय साक भरके जिये विधिपूर्वक वनके आहारको संपन्न कर दानप्रदोंके धर्ममें स्थित आत्मस्वकी छोड़ और शिष्टियोंका जीतकर जा समयको बिताता हो ॥ १२ ॥ इन सब कर्म के करनेवाले वनमस्थको मूरिसवार्षिक कहते हैं । २ बूसरा पर्यत्र अन्नक वनमें रहे और मृत्युकी इच्छामी न करे ॥ १३ ॥ और छे महीनवकके अन्नका संपन्न करे और पंचवत् कर्ममें तत्पर रहे, चौथ फाल ( अथा ) में भोजन करताहुमा धर्मसे शरीरकी स्थायता है ॥ १४ ॥ तीसरा पठ महीनेअर्थात् तीसदिनके जिये शुद्धव्रत हो वनके अन्नका संपन्न कर, सम्पूर्ण कर्मोंको करके दिनके अठमागमें भोजन करे ॥ १५ ॥ चौथा एक दिनके जिये अन्नका संपन्न करके पंचवत् कर्ममें तत्पर रहे यह उत्तमप्रसालक नामक चौथा कहा है ॥ १६ ॥ इस प्रकारस चारी सुनि कठिन व्रत करनेके पूरनीय बात है ॥ १७ ॥

इति वन्यधर्मशास्त्रे भाग्यदीक्षायां वृत्तिसौध्याय ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४

यथात्मामि स्थानानि प्राप्नुवति व्रतपता ॥

ब्रह्मचारी गृहस्था वा यानमस्यो पतिस्तथा ॥ १ ॥

जिसे प्रकारसे पृथक् यानप्रत्येक ब्रह्मचारी भात बहि पद चारी व्रतवत् करनेवाले व्रतम स्थान ( ब्रह्मचारी ) की प्राप्त शयन है वद वद दे हि ॥ १ ॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य दत्त्वा  
चाभयदक्षिणाम् ॥ २ ॥ चतुर्थमाश्रयं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥ आचार्येण  
समादिष्टं लिंगं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥ शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्माश्च शि-  
क्षयेत् ॥

सब कामनाओंसे विरक्त होकर सन्यासको ग्रहण कर अपनी आत्मामेंही अभियोंको मान-  
कर स्त्रीआदिकोंको अभयदक्षिणा ( त्याग ) देकर ॥२॥ ब्राह्मण घरसे चलकर चौथे आश्रममें  
गमन करे, आचार्यके बताये हुए चिन्होंको सावधान होकर धारण करे ॥ ३ ॥ संन्यास  
आश्रमके धर्मोंको सीखे, शौच और संन्यासियोंके धर्मोंको सीखता रहे

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्युता ॥ ४ ॥ दयां च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यति-  
श्चरेत् ॥ ग्रामांते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥ पयटेत्कीटवद्भूमिं वर्षा-  
स्वेकत्र संविशेत् ॥ वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥ ग्रामे  
वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्येति ॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीताप-  
हारिणीम् ॥ ७ ॥ पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ संभाषणं  
सह स्त्रीभिरालम्बप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥ नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्ज-  
येत् ॥ वानप्रस्थगृहरथाभ्यां प्रीति यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥ एकाकी विचरोन्नित्यं  
त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥ याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम्  
॥ १० ॥ साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥

अहिंसा, सत्य, चोरीको छोड़देना, ब्रह्मचर्य, अफल्युता (निरर्थकपन का त्याग) ॥४॥ समस्त  
प्राणियोंपर दया करना, यति इतने कर्मोंको नित्यप्रति अवश्य करे ग्रामके निकट किसी वृक्ष-  
के नीचे सदा अपना स्थान बनाकर रातभर रहे ॥ ५ ॥ वर्षाऋतुमें एक स्थानपर बैठा  
रहे, और काँडेकी समान पृथ्वीपर भ्रमण करे, वृद्ध, रोगी, भयानक इनकी संगति न करे  
॥ ६ ॥ वर्षाकालके समय ग्राममें अथवा नगरमें जो यति एक स्थान में रहता है वह दूषित  
नहीं होता, कोपीन ( लंगोटी ) ओढ़ने का वस्त्र जिसमें कि शरदी न लगे, ऐसी कंथा  
( गुदडी ) ॥ ७ ॥ और खडाऊं इनको ग्रहण करे, और इनसे इतरका संग्रह न करे स्त्रियों-  
का स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप तथा देखना ॥ ८ ॥ नाच, गान, सभा, सेवा, नौकरी,  
निन्दा, इनको छोड़दे वानप्रस्थ और गृहस्थी इनका संगभी यत्नसहित त्यागदे ॥ ९ ॥ -  
स्युर्ण परिग्रह त्यागकर केवल अंकला भ्रमण करे, मागे या विना मागेसेही जो मिल जाय  
उसी भिक्षासे अपना निर्वाह करे ॥ १० ॥ अच्छा कहकर लेनेवालेको याचित, विना मागे  
जो मिले उसे अयाचित, कहते हैं ,

चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकव दकौ ॥ ११ ॥

हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥

यह सन्यासी चार प्रकारके होते हैं १ कुटीचक, २ बहूदक ॥ ११ ॥ ३ हंस, ४ परमहंस  
इनमें जो २ पिछला है वही वही उत्तम है

एकदन्डी भवेदापि त्रिदन्डी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥ त्यक्त्वा सवसुखास्ववाद्  
पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥ अपत्येषु घसेन्नित्य ममत्व यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥ ना-  
न्यस्य गैह्ये भुज्जीत भुज्जानो दोषभाग्भवेत् ॥ काम क्रोधं च लोभं च तयेर्ष्यासत्यमे-  
व च ॥ १४ ॥ कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥ भिक्षाटनादिकेऽशक्तौ  
यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥ कुटीचक इति श्लेषः परित्राद् त्यक्तवापयः ॥

एक दंडको धारण करै या तीन दंडको ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण सुखोंके स्वादको छोड़कर पुत्रके ऐश्वर्य  
(प्राप्त) के सुखको त्यागवे अपने दंडकोहीमें नित्य निवास करै और यत्नसहित ममताको  
त्यागवे ॥ १३ ॥ दूसरेके घरमें भोजन न करै, जो पराये घरमें भोजन फरणाहै वह दोषका  
भागी होता है और काम क्रोध लोभ, ईर्ष्या, ईदृ इत सबको ॥ १४ ॥ कुटीचक त्यागवे  
और समस्त वस्तु ( जो कि सभित की है ) पुत्रके अथ छोड़वे, आप भिक्षाटनार्थमें भस  
मथ होकर संन्यासी अपने पुत्रोंकोही देखको सोंपदे ॥ १५ ॥ इस संन्यासीको पुटीचक  
कहते हैं

त्रिदंडं कुंडिकां चैव भिक्षाधार तथैव च ॥ १६ ॥ सूत्रं तथैव गृहीयान्नित्यमेव  
वहृदकः ॥ प्राणायामेऽप्यभिरतां गायत्रीं सतत जपेत् ॥ १७ ॥ विश्वरूपं हृदि  
ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ ईपत्कृतकत्रापस्य लिंगमाभित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥  
अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥

२ दूसरा पशु जिसने अपने त्याग दिये हैं ऐसा संन्यासी त्रिदंड कुंडी और भिक्षाधार  
वात्र ॥ १६ ॥ पशोपवीत इनका वहृदक नित्य प्रह्व करै प्राणायाम में तत्पर रहै और  
निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ १७ ॥ हृदय में भगवान् का ध्यान कर इन्द्रियोंको  
धीतकर समय बिताता रहै कुंडिक गेदवा बच्चोंको रंगकर एक पिंड ( संन्यासीको  
पहचान ) बनाकर स्थित हुए संन्यासीका ॥ १८ ॥ त्रिदंड अन्नके निमित्त कहा है, मोक्षके  
छिये नहीं कहा, ऐसी मर्यादा है ॥

त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यथस्थितः ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्ष-  
न्सुतोऽभिधीयते ॥ कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्च तृलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥ अन्धैश्च  
शोपयेद्देहमाकांक्षान्द्राण्यं पदम् ॥ पशोपवीतं दंडं च बद्धं जलुनिवारणम् ॥  
॥ २१ ॥ अयं परिग्रहो नाम्यो हसस्य भुतिवेदिनः ॥

२ तीसरे इसमें सम्पूर्ण पुत्रादिकोंको त्याग और योगमार्गमें स्थित रहकर ॥ १९ ॥ आ-  
इन्द्रिय और मनको बंधने करताहै बरा संन्यासीको इस कहते हैं । कृच्छ्रप्राणायाम, तुलापुरुष-  
॥ २० ॥ और इतर प्रतीति ब्रह्मपक्षी इच्छा करता हुआ संन्यासी अपने शरीरको सुलावे,  
पशोपवीत दंड और जिससे मक्खी आदिक जीव शरीरपर न गिरे ऐसा बद्ध ॥ २१ ॥  
बेचके ज्ञाता दंडको यही परिग्रह है इतर नहीं ॥

आध्यात्मिक ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥ विपुक्तः सर्वसंगेभ्या  
योगी नित्य शरेन्महीम् ॥ आत्मनिष्ठः स्वयं मुक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥

चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥ त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥ जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षरिदं त्यजेत् ॥ कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽधश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥ कुर्यात्परमहंसस्तु दडमेकं च धारयेत् ॥ आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥ अव्यक्तलिगोऽव्यक्तश्च चरोद्भिक्षुः समाहितः ॥ प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥ त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवी चरेत् ॥ देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥ २८ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥

४ चौथा अपने आत्मा ( देह ) में व्यापक ब्रह्मको जपता और प्राणायामोंको करता हुआ, ॥ २२ ॥ सब संगोसे रहित और आत्मामे स्थित, और जिसने युक्त होकर गृहआदिकोंको त्याग दियाहै, वह नित्य पृथ्वीपर विचरण करै ॥ २३ ॥ यह चौथा इन चारोंमे बडा और ध्यानभिक्षु ( परमहंस ) को कहाहै, त्रिदंड, कुंडी, यज्ञोपवीत, कपालिका ( भिक्षाका पात्र ) ॥ २४ ॥ जतुओंकी निवारण करने योग्य वस्त्र इन सबको भिक्षुक त्यागदे, कौपीन ओढनेका वस्त्र, इनकाही केवल धारण ॥ २५ ॥ परमहंस करै, और एक दंडका धारण करै, और अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंको त्यागकर रहै ॥ २६ ॥ अपने चिह्नोंको छिपाकर और अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरण करै, पूजा ( बडाई ) की प्राप्तिसे प्रसन्न न हो और जो पूजा न हो तो क्रोधभी न करै ॥ २७ ॥ तृष्णाको त्यागकर गूंगेकी समान मौन धारणकर पृथ्वीमे भ्रमण करै, और देहहीकी रक्षाके निमित्त भिक्षाको द्विजातियों ( ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीन जातियोंके घर ) में मागे ॥ २८ ॥ भिक्षुकका पात्र हाथही है उसीसे नित्य गृहोंमें विचरण करै, अर्थात् भिक्षा मागै ॥

अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृत्वान्मनुः ॥ २९ ॥

सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च ॥

और मनुजीने भिक्षाके लिये विना वातु तुवा आदिके पात्र रचे हैं ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण भिक्षुकोंको, काष्ठ तौवी आदिकोंके पात्र कहेहैं ॥

कांस्यपात्रे न भुञ्जीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥ मलाशाः सर्व उच्यन्ते

यतयः कांस्यभोजिनः ॥ कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥

कांस्यभोजी यतिः सर्व तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥

और विपत्तिके आजानेपर भी कासीके पात्रमें भोजन न करै ॥ ३० ॥ जो यति कांसिके पात्रमें भोजन करते हैं, उन्हें विष्ठाका खानेवाला कहाहै, कासीके पात्र बनानेवालेको और उसमें भोजन करनेवाले गृहस्थको जो पाप हेतवाहै ॥ ३१ ॥ उन दोनोंका वह पाप कांसिके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको मिलताहै ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥ उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥ आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मवाहिष्कृतः ॥ ३३ ॥ निद्यश्च सर्वदेवानां पितृणां च तथोच्यते ॥



जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ॥ ३२ ॥ उच्यते आचरणको स्वीकार कर फिर उसका त्याग करता है, उसे आख्यपवित्र जानना; और वह सब धर्मोंसे अधिकृत ( बाध्य ) है ॥ ३३ ॥ और वह सब देवता और पितरोंमें निहित कहाताहै ॥

त्रिदश लिंगमाभिस्य जीषति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमाश्रोपजीविनाम् ॥

त्रिदश ( संन्यास ) के आभयसे बहुतसे द्विज जीवन करते हैं ॥ ३४ ॥ लिंगमाश्रयेण जीवनकरनेवालेको मोक्ष नहीं मिलती, ॥

त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥ आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे ऋतुर्योऽध्यायः ॥ ४ ॥

और जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय, इनको त्यागकर ॥ ३५ ॥ आत्मके विषयही स्थित रहता है, वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे मायादीकारां ऋतुर्योऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पञ्चमोऽध्यायः ५

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकाक्षिणाम् ॥

धक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तत्रिविधोऽथ ॥ १ ॥

पवित्र आचरणवाले धर्म धर्म कामके अमिल्लपी राजाओंका धर्म है उसको मैं कह चाहूँ, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

तेजः सत्य धृतिर्दाक्ष्यं संप्रामेष्वनिवर्तिता ॥ दानमीश्वरभावश्च सप्तधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजाणां परिपालनम् ॥ तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन रक्षयेन्नुपति प्रजाः ॥ ३ ॥

तेज, सत्य, धैर्य-बलवा ( चतुरता ) संप्रामर्श न भाग्य, दान, ईश्वरता, ( यथार्थ न्याय करना ) यह क्षत्रियोंका धर्म कहाहै ॥ २ ॥ प्रजाओंका पालन करना क्षत्रियोंका परम धर्म है, इसकारण पत्रसहित राजा प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ३ ॥

प्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥

दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥ ४ ॥

और क्षत्री पत्रसहित तीन कर्मोंको करै, दान, पढ़ना यज्ञ, और फिर योगमार्गका सेवन ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सतत तथा ॥

तेषु ह्येषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्धते ॥ ५ ॥

सर्वदा ब्राह्मणोको संतोष देनेवाला आचरण करता रहै, उनके प्रसन्न होनेपर राजाओंके राज्य और उनके राजानेकी वृद्धि होतीहै ॥ ५ ॥

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ॥ ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥ खल्यज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ॥ कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥ ७ ॥

व्यवहार ( लैनदेन ), कृषि, गौओंकी पालना, ब्राह्मण और क्षत्रीकी सेवा यह तीन कर्म वैश्यके लिये कहे हैं ॥ ६ ॥ और कृषि ( येती ) के रालियानके यज्ञ और गौओंके यज्ञको गौओंके शरण ( घर ) इनको वैश्य सर्वदा करै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥ कुर्वस्तु शूद्रः शुश्रूपां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥ पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥ तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥

शूद्र ईर्ष्याको त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इनको सर्वदा सेवा करै कारण कि इनकी शुश्रूपा धर्मसहित करनेवाला शूद्र स्वर्गलोकको जीतलेता है ॥ ८ ॥ और शूद्रको भी पंचयज्ञ करना कहा है, उसको भी परस्परमें नमस्कार करना कहाहै, इसमें अन्योन्यमें सर्वदा नमस्कार शब्दसे व्यवहार करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता ॥ ९ ॥

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥ श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरौ मतः ॥ १० ॥ प्राणानर्थास्तथा दारान्ब्राह्मणार्थं निवेदयेत् ॥ स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥

शूद्र दो प्रकारके हैं एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरा अनधिकारी, उन दोनोंमेंसे श्राद्धके अधिकारीका अन्न भोजन करना उचित है और अनधिकारीका उचित नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र, अपना स्त्री, धन, प्राण इनको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण करदे, उस शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य है, और शेष शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य नहीं ॥ ११ ॥

कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूपां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥

कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

और शूद्र क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनकी सेवाको करै, वैश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, इनकी सेवा करै, और क्षत्री केवल ब्राह्मणही की सेवा करै ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥

पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥

१ यद्वा ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकका प्रतिदिन नमस्कार करना उसको कहाहै उसे करता हुआ शूद्र दानिको नहीं प्राप्त होसकताहै, इस कारण अवश्य प्रतिदिन उन्हें प्रणाम कराकरै—ऐसामी अर्थ किन्ही २ का अभिमत है ।

वैश्य और क्षत्रिय, इनको तीन आश्रम कहे हैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमकी प्राप्ति तो केवल ब्राह्मणहीको कही है ॥ १३ ॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सुनातनः ॥

यदत्राविदितं किञ्चित्तदन्पुंस्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह चारों आश्रमोंका सुनावन धर्म मैंने तुमसे कहा, इसमें जो कुछ जानना तुमको क्षेप यहाँ है उसको तुम इतर धर्मोंसे जान जाओगे ॥ १४ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाष्यटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

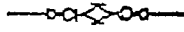
विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥ २ ॥



श्रीः ॥

## हारीतस्मृतिः ३.

### भाषाटीकासमेता ।



### प्रथमोऽध्यायः १.

( यहासे हारीतस्मृतिका आरम्भ है इसमें हारीतशिष्य और अन्यान्यऋषियोंका संवाद है ।  
ऋषियोंका प्रश्न )

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ॥ इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवः-  
स्वर्दिजोत्तम ॥ १ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ॥ येन  
संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥

भू' सुव. और स्वर्गलोकमें स्थित जिन सम्पूर्ण द्विजश्रेष्ठोंने वर्णाश्रमधर्मको अवलम्बन  
किया, वह केशव भगवान्के भक्त हैं यह आपने प्रथम कहाथा ॥ १ ॥ इससमय वर्ण और  
आश्रमका धर्म आप हमसे कहिये, जिससे सनातन नारसिंह देव सन्तुष्ट हों ॥ २ ॥

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥

ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

( यह सुनकर हारीतशिष्यने उत्तर दिया कि ) मैं इस समय पूर्वकालमें ऋषियोंके साथ  
महात्मा हारीतका जो अति उत्तम संवाद हुआथा वह आपसे कहूंगा ॥ ३ ॥

हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥ प्रणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयो धर्म-  
कांक्षिणः ॥ ४ ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ॥ वर्णानामाश्रमाणां च  
धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥ ५ ॥ समासाद्योगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥  
एतच्चान्यच्च भगवन्ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें धर्मके ज्ञाता सम्पूर्ण मुनि सब धर्मोंके जाननेवाले अभिक्ती समान दीक्षिमान् बैठे  
हुए हारीत ऋषिको नमस्कार करके पूछते हुए ॥ ४ ॥ कि हे भार्गव ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे  
सर्वधर्मप्रवर्तक भगवन् ! हमसे वर्ण और आश्रमोंके धर्मको कहिये ॥ ५ ॥ और संक्षेपसे  
विष्णुभक्तिकारक योगशास्त्र और जो अन्यान्यविष्णुभक्ति है उसेभी आप कहिये, कारण कि,  
आप हम सबके परमगुरु हों ॥ ६ ॥

हारीतस्तातुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे धर्मान्व-  
क्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ७ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥  
सन्धार्यं सुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् हारीत मुनिने उत्तर दिया कि हे सज्जनश्रेष्ठ मुनि-  
गण ! मैं वर्ण और आश्रमसमूहका नित्य धर्म योगशास्त्र कहताहूँ ॥ ७ ॥ इस धर्म और  
योगशास्त्रको भलीभाँतिसे जानकर मनुष्य जन्म संसारके बंधनसे छूटजाताहै ॥ ८ ॥

पुरा देवो जगत्त्रष्टा परमात्मा जलोपरि ॥ सुष्याप भोगिपर्यके शयने तु  
श्रिया सह ॥ ९ ॥ तस्य सुतस्य नामी तु महत्पद्ममसूत्रिकल ॥ पद्ममन्धेऽभव  
द्रक्षा वेदवेदांगभूषण ॥ १० ॥ स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनःपुन ॥  
सोपि सृष्टा जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥ यज्ञसिद्धधर्ममनवान्त्राक्षणा  
न्मुखतोऽभूजत् ॥ असृजत्त्रियान्ब्राह्मणैर्वैश्यान्पुरुदेशत ॥ १२ ॥ शर्दाश्च  
पादयोः सृष्टा तेषां वैशानुर्षश ॥ यथा प्रोषाच भगवाः रभयोनिः पितामह  
॥ १३ ॥ तद्वचः समवस्थामि शृणुत द्विजसत्तमा ॥ धन्यं यशस्पमायुष्य  
स्वर्ग्य मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥

पूर्व कास्मिन् सृष्टिके रचनेवाले लखके ऊपर लक्ष्मीके सहित शेषकी शय्यापर परमात्मा देव  
भगवान् विष्णु भोगनिग्रामे मग्न थे ॥ ९ ॥ उन सोठेहुए भगवान्की नाभिसे एक बड़ा कमल  
उत्पन्नहुआ, उस कमलके बीचमेंसे वेद वेदांगोंके मूषण त्रयाची उत्पन्नहुए ॥ १० ॥ वेदा-  
विदेव भगवान् विष्णुजीने उनसे धारंवार जगत्की सृष्टि रचनेके छिय कहा तब ब्रह्माजीने  
मी देवता, असुर मनुष्य इनके सहित सम्पूर्ण जगत्को रचकर ॥ ११ ॥ यज्ञकी सिद्धिके  
क्रिये पापरहित ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया, इसके पीछे क्षत्रियोंको मुर्बाओंसे और  
वैश्योंको जमाओंसे रचा ॥ १२ ॥ और सूत्रोंको चर्योंसे रचकर भगवान् पद्मयोनिने उनसे  
जो वचन कहे, हे द्विजोत्तमा ! उन वचनोंको मैं तुमसे कहवाहूँ तुम भवण करो, और वह  
वचन धन, यश अवस्था स्वर्ग, मोक्ष फल, इनके देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनिवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥

तस्य धर्मः प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंके गर्भमें ब्राह्मणके औरससे उत्पन्नहुआ मनुष्यही ब्राह्मण कहावाहै उसके धर्म  
और उसके रहनेयोग्य देशको कहताहूँ ॥ १५ ॥

कृष्यसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते ॥

तस्मिन्देक्षे षसेद्धर्मां सिद्धयति द्विजसत्तमा ॥ १६ ॥

हे द्विजसत्तमगण ! जिस देशमें काष्ठामृग स्वभावसे ही बिचरण करे उस देशमें ब्राह्मण  
निवास करे, कारण कि क्रिये हुये धर्म वही देशमें सिद्ध होतेहैं ॥ १६ ॥

पट्टकर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ तैरेव सततं यस्तु षतेपेसुस्रमे  
भते ॥ १७ ॥ अध्यापनं ध्यापनं याजनं यजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चेति  
पट्टकर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥

महात्मा ब्राह्मणोंके निजके छैः कर्म कहेहैं, जो उन छैः प्रकारके कर्मोंसे निरन्तर जीवन  
क्यतीव करताहै, वही सुखी होताहै, अर्थात् धनवान् पुत्रवान् होता है ॥ १७ ॥ पढ़ाना,  
पढ़ना, पत्रकरना, और धनकरना, दान और प्रतिग्रह ये छैः प्रकारके कर्म कहेहैं ॥ १८ ॥

अध्यापनं च त्रिविधं धर्म्मार्थमृक्यकारणात् ॥ शुभूपाकरणं येति त्रिविधं परि  
कीर्तितम् ॥ १९ ॥ एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्विजः ॥ तत्र विद्या न  
दातव्या पुरुषेण हितैपिणा ॥ २० ॥ योग्यानव्यापयेच्छिष्यान्योग्यानधि  
घनयेत् ॥ विदिताव्यतिगृहीयाद्देहं धर्ममसिद्धये ॥ २१ ॥ वेदब्रह्मव्यसेन्नित्यं

शुचौ देशे समाहितः ॥ धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥  
वेदव्यपठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥

इनमें पढ़ाना तीन प्रकारका है पहला धर्मके निमित्त दूसरा धनके निमित्त, और तीसरा सेवा शुश्रूषा के लिये ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मण इन तीनोंमें से एकको भी नहीं करता वह वृथा-चारी कहाताहै, ऐसे कर्महीन ब्राह्मणको हितका अभिलाषी मनुष्य कभी विद्यादान न करै ॥ २० ॥ योग्य शिष्यको विद्या पढावै और अयोग्य शिष्यको त्यागदे, विदित ( अर्थात् निष्पाप मनुष्यको जानकर ) मनुष्यके निकटसे गृहस्थधर्मकी सिद्धिके लिये प्रतिग्रह ले ॥ २१ ॥ प्रतिदिन शुद्ध देशमें सावधान होकर वेदका अभ्यास करै, और शुद्ध मनवाले ब्राह्मणसे सर्वदा धर्मशास्त्र पढना उचित है ॥ २२ ॥ धर्मशास्त्र भी वेदकी समान पढना उचित है, रात-दिन धर्मशास्त्रको सुनना चाहिये,

स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥ २३ ॥ दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुल-  
विनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्विजः ॥ २४ ॥

श्रुति स्मृति इन दोनोंसे हीन ब्राह्मणको ॥ २३ ॥ जो दान देता है, या जो भोजन कराता है, उस दान और भोजनादिकर्मसे दाताका कुल नष्ट होजाता है; इस कारण ब्राह्मण सब प्रकारसे यत्नसहित धर्मशास्त्रको पढै ॥ २४ ॥

श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥

काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्यः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥

श्रुति और स्मृति ब्राह्मणके दोनों नेत्र परमेश्वरके बनाये हुए हैं, इन श्रुति या स्मृतिरूप एक नेत्रके बिना हुए वह काना है, और श्रुति स्मृति रूप दोनोंसे जो हीन है उसे अंधा कहा है ॥ २५ ॥

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतंद्रितः ॥ सायंप्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजो-  
त्तमः ॥ २६ ॥ सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिनेदिने ॥ अतिथीनागता  
ञ्छक्त्या पूजयेद्विचारतः ॥ २७ ॥ अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो  
गही ॥ स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २८ ॥ कृतहोमस्तु भुञ्जीत  
सायंप्रातरुदारधीः ॥ सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्प्रतिभू ॥ २९ ॥  
स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ॥ सत्यां हितां वेदेद्राचं परलोकहितै-

१ तात्पर्य यह है कि, केवल प्रत्यक्षमें दो नेत्र होनेसे ब्राह्मण नेत्रवान् नहीं होसकते परन्तु वेद और शास्त्रके जाननेसे ही ब्राह्मण नेत्रवान् कहातेहैं, बाहिरी कामोंमें, अर्थात् मार्गादिकके चलनेमें हमारे यह बाहिरी नेत्र काम आतेहैं, परन्तु किस मार्गमें जानेसे हमारा कल्याण होताहै और किस मार्गमें जानेसे हमारा अमगल होगा, इस बातके निर्णय करनेमें इनकी सामर्थ्य नहींहै, इसके निर्णय करनेमें श्रुति स्मृति रूपी दोनों नेत्र ही मार्ग दिखलानेवाले हैं, वरन् ब्राह्मणोंको सर्वदा बाह्य मार्ग त्यागकरके अन्तर ( ज्ञान ) के मार्गमें विचरण करना होताहै इस कारण श्रुति और स्मृतिरूपी नेत्रोंके बिना हुए ब्राह्मणोंको पग २ पर अधेकी समान ठोकरें खानी पडतीहैं ।

पिपीम् ॥ ३० ॥ एष धर्मः समुद्रिष्टो ब्राह्मणस्य समासत ॥ धर्ममेव हि  
यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

आळस्परहित होकर गुरूजी सवा करै, मातःकाळ और सप्याकाळमें विवोदाप्रिकी उपासना  
करै ॥ २६ ॥ और मछी मांतिसे स्नानकर प्रतिदिनही बलि वैश्वदेव करै और अपनी शक्तिसे  
अनुसार धरपर आयेहुए जतिविषयोंकी विना विचार कियेहुए ( अर्थात् यह गुणबाम् है वा  
निर्गुम है इस बातका विचार न कर ) पूजा करै ॥ २७ ॥ और अन्य अस्यागतोंकी भी  
गुरूस्वी ब्राह्मण शक्तिसे अनुसार पूजा करै, और सर्वदा अपनी स्त्रीमें रत रहै, पराई स्त्रीको  
त्यागवै ॥ २८ ॥ उदार बुद्धिवाला मनुष्य सायंकाळमें और मातःकाळमें होम करके भोजन  
करै, सत्य बोले क्लेपको जीतले अधर्ममें बुद्धिका न रगवै ॥ २९ ॥ अपने कर्मके समयमें  
प्रमादसे कर्मको न छोडै, और सत्य हितकारी, और परलोकेमें सुखकारी ऐसी बाणीको  
कहै ॥ ३० ॥ यह सक्षेपसे ब्राह्मणोंका धर्म कहा; जो ब्राह्मण सर्वदा धर्माचरण करतेहैं  
यह ब्राह्मणवद अर्थात् सुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३१ ॥

इत्येष धर्मः कथितो मयाय पृष्टो भवन्निस्त्वस्त्रिलायहारी ॥

वदामि राक्षामपि वैव धर्मान्पृथक्पृथक्वोचत विप्रधर्ष्याः ॥ ३२ ॥

इति हारीवे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो धर्म तुमने मुझसे पूछाया वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला धर्म  
मैंने तुमसे कहा, अब राजाओंके भी पृथक् २ धर्मोंको कहताहूँ तुम अवणकरो ॥ ३२ ॥

इति हारीवे धर्मशास्त्रे मातृकीकामा प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २

सत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥

येषु मनुष्या विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १ ॥

अनुसार सत्री वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्मोंको कहताहूँ, जिन धर्मोंके आचरण  
करनेसे सत्री आदि तीन वर्ण उत्तम गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मैः पाठयन् ॥ कुर्यादभ्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान्  
न्ययाविधिः ॥ २ ॥ दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्मैः बुद्धिसमन्वितः ॥ स्वभार्या  
निरतो नित्यं बह्मभार्या सदा नृपः ॥ ३ ॥

सत्री राजादिवासनपर स्थित होकरभी धर्मके अनुसार प्रजापाठनकर मछी मांतिसे वेपु  
पढ़ै, और विधिसहित यज्ञको करै ॥ २ ॥ जो राजा सर्वदा धर्ममें बुद्धि करके ब्राह्मणोंको  
दान देता है, और जो नित्य अपनी स्त्रीमें ही रत रहता है, वह राजा सर्वत्र छोटे भागके  
अनेका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

१ जितमें विवाहका होम हो और स्त्रीके बनीरहै उतीको विवाहप्रति करतेहैं उतीमें होम करै ।

२ अर्थात् अतिविधौते भोज्यादि उत्कार करनेसे प्रथम गेत्र घान्ना आदिक नहीं पूछै ।

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥ देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपर-  
स्तथा ॥ ४ ॥ धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ॥ उत्तमां गतिमाप्नोति  
क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥

नीतिशास्त्रमें कुशल और संधि (मेल) विग्रह (लडाई) इनके तत्त्वको भी राजा  
जाने-देवता और ब्राह्मणोंमें भाक्ति रखवै और पितरोंके कार्यमें भी तत्पर रहै ॥ ४ ॥ धर्मसे  
यज्ञ करना और अधर्मको त्यागना उचित है, इन पूर्वोक्त कर्मोंके करनेसे क्षत्रियको उत्तम  
गति प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ॥ दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां  
च भोजनम् ॥ ६ ॥ दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥ स्वदारनिरतो  
दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥ धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥  
अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्मे चादेहपातनात् ॥ ८ ॥ यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नि-  
त्यमतन्द्रितः ॥ पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥ ९ ॥ एतद्वैश्यस्य  
धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥ एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥ १० ॥

वैश्यका यह धर्म है, कि गौओंकी रक्षा करै, खेती और वाणिज्य करै यथाशक्ति दान  
और ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ६ ॥ वैश्य दंभ और मोहरहित वाक्यके द्वारा दूसरेकी  
ईर्ष्या न करै अपनी स्त्रीमें रत रहै, और पराई स्त्रीको त्यागदे ॥ ७ ॥ धनसे ब्राह्मणोंको और  
यज्ञके समय ऋत्विजोंको जिमा ( दत्त ) कर मृत्युकाल तक धर्ममें अपनी प्रभुताई न चलाकर  
समय वित्तावै, ॥ ८ ॥ और प्रतिदिन आलस्यको छोडकर यज्ञ, अध्ययन और दान करै, और  
पितरोंके कार्य (श्राद्धआदि) और भगवान् नरसिंहजीके पूजनमें तत्पर रहै ॥ ९ ॥ यह  
वैश्यका धर्म है, धर्मानुष्ठानमें रतहुआ जो वैश्य इसके अनुसार धर्माचरण करता है, वह  
स्वर्गमें जाता है इसमें सदेह नहीं ॥ १० ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥ दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समा-  
चरेत् ॥ ११ ॥ अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥ पाकयज्ञविधानेन  
यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥ शूद्राणामधिकं कुर्यादन्नं न्यायवर्तिनाम् ॥  
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥ स्वदारेषु रतिश्चैव पर-  
दारविवर्जनम् ॥ इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ १४ ॥  
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५ ॥

शूद्रका यही धर्म है कि वह यज्ञपूर्वक ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी सेवा करै और विशेष  
करके ब्राह्मणोंकी तो दासकी समान सेवा करै ॥ ११ ॥ बिना माँगे दे, और अपनी जीविका  
निर्वाहके लिये कष्ट सहन करै, और पाकयज्ञकी विधिसे आलस्यको छोडकर देवताओंकी  
पूजाकरै ॥ १२ ॥ और न्यायमें तत्पर हुए शूद्रका भी पूजन अधिकतासे करै, मन वचन  
और शरीरकी क्रियासे, सर्वदा जीर्ण वस्त्रोंका धारण करै, और ब्राह्मणकी उच्छिष्टकी भोजन  
करै ॥ १३ ॥ अपनी स्त्रियोंमें रमण करै, और पराई स्त्रीको त्यागदे, मन, वचन, कर्म, और



देहसे शूद्र इधी प्रकार करता रहे ॥ १४ ॥ इन सब कर्मोंके करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, और पुण्यके प्रभावसे शूद्र इंद्रके स्थानको प्राप्त होजाता है; ॥ १५ ॥

वर्षेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्मसुतेरिता पुरा ॥

गृणुष्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोक्ष्यमान क्रमशो मुनीन्द्रा ॥ १६ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पूर्वकासमें जिसप्रकार ब्रह्माजीने कहाया, वही मैंने तुमसे सब वर्णोंके यथावत् धर्म कह दिये हैं, हे मुनीन्द्रों ! इस समय मैं सनातन माममधर्मको कहता हूँ, आप क्रमानुसार अभ्यस्यते ॥ १६ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे मायाटीकानां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्याय ३

उपनीतो माणवको षसेद्गुरुकुलेषु च ॥ गुरोः कुले मिय कुर्यात्कर्मणा मनसा

गिरा ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्यमथ शय्या तथा षोडशरुपासना ॥ उदकुम्भान्गुरोर्दद्या

द्रोमास चैषानानि च ॥ २ ॥ कुर्यादध्ययन चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥ विधिं

त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ ३ ॥ यः कश्चिदुक्ते धर्मं

विधिं हित्वा दुरागमयान् ॥ न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिष्युत ॥ ४ ॥

तस्माद्देवमतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ शौचाचारमशेषं तु शिष्येद्गुरु

सन्निधी ॥ ५ ॥

षष्ठीवर्षीय होनेके उपरान्त पाठक गुरुकुलमें निवास करे, और कर्म, मन, वाणीसे गुरुके कुलमें प्रीति रखे ॥ १ ॥ गुरुके घरमें वासकरनेके समय, ब्रह्मचर्य पृथ्वीपर ध्यान, अभिवादन करता रहे और गुरुके द्विजे जसका पत्रा, और ईशत ( लक्ष्मी ) और गायोंके निमित्त वास दे ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी विधिपूर्वक वेदको पढ़े, और जो बिना विधिसे अभ्यसन करताहै उसे अभ्यसन (पढ़ने) का फल प्राप्त नहीं होता ॥ ३ ॥ जो कोई गुरारसा विधिको छोड़के धर्मको आचरण करताहै, वह विधिब्रह्म गुरुव धर्मको आचरण करके भी उच्छेके फलको प्राप्त होता नहीं ॥ ४ ॥ इसकारण स्वाध्यायकी (पढ़नेकी) सिद्धिके निमित्त गुरुकुलमें वेदके प्रयोगको करे, और गुरुके समीपसे सम्पूर्ण शौचादिके आचरण सीखे ॥ ५ ॥

अग्निने दृढकाष्ठं च भेसलाशोपवीतकम् ॥ धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समा-

हितः ॥ ६ ॥ सार्धमातश्चरेद्भिक्षं भोज्यार्थं संपतेन्द्रियं ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं

न कुर्यात्तथावनम् ॥ ७ ॥ छत्रं चोपानहं शीघ्रं गंगमात्स्यादि वर्जयेत् ॥ नृत्यं

गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ हस्त्यश्वारोहणं शीघ्रं सौम्यजेत्संपते-

न्द्रियं ॥ सभ्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९ ॥ अभिवाद्य गुरोः

पादौ सध्याकर्मावसानतः ॥ तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥ १० ॥

ब्रह्मचर्य बंध, पदच्छा ( मूँककी कौबनी ) पक्षोपवीत, इनको सावधान और अप्रमत्त हो कर धारणकरे ॥ ६ ॥ विधेन्द्रिय होकर भोजनकी प्राप्तिके निमित्त मातृकाक और सध्याके समय भिक्षाके निमित्त भ्रमण करे और नित्य सावधानीसे आचमन करने पीछे नृत्यवादन करे ॥ ७ ॥ छत्री, अता, गंध, माछा, मूख, गाना, निरर्थक बोझना और मैथुन इनको त्याग

दे ॥ ८ ॥ जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोड़ेपर न चढ़ें, और व्रतमें स्थित रहकर ब्रह्मचारी सध्योपासना करै ॥ ९ ॥ संन्या करनेके उपरान्त गुरुके दौनो चरणों में नमस्कार कर पीछे भक्तिसहित पिता और माताकी सेवा करै ॥ १० ॥

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥

एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥

जो ब्रह्मचारी तीन कर्मोंसे ( अर्थात् गुरु, माता, पिता, इनकी सेवासे ) नष्ट होजाय तौ उसपर सब देवता अप्रसन्न होते हैं इससे ईर्षारहित होकर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षामें स्थित रहै ॥ ११ ॥

अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥

गुरुवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥

गुरुसे सम्पूर्ण चारों वेद अथवा दो वेद या एक वेदको पढकर उन्हें दक्षिणा दे, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ग्राममें निवास करै ॥ १२ ॥

यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥ संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १३ ॥ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्य्यं यावदायुषम् ॥ तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥ १४ ॥

जिसकी जिह्वा, लिंग, इन्द्रिय, उदर ( पेट ) और हाथ भलीभाँतिसे बगमें है, वह ब्राह्मण संन्यासकी प्रतिज्ञाको करके ब्रह्मचारीके आचरणसे ॥ १३ ॥ उस आचार्य ( गुरु ) के यहाँ ही जितनी अवस्था है उतने समय को व्यतीत करै, यदि आचार्य न हो तौ उसके पुत्रके समीप, और पुत्रके न होनेपर उसके शिष्यके निकट, और शिष्यभी न हो तौ गुरुके कुलमें रहकर जन्म वित्तवै ॥ १४ ॥

न विवाहो न संन्यासो नैष्टिकस्य विधीयते ॥ इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देह-मतंद्रितः ॥ १५ ॥ नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

इस नैष्टिक ब्रह्मचारीको विवाह और संन्यास नहीं कहा, जो आलस्यरहित होकर उस विधिसे शरीर छोडता है ॥ १५ ॥ उस ब्रह्मचारीका पृथ्वीपर फिर जन्म नहीं होता, ( अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त होताहै ) ॥ १६ ॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥

संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विदति ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

जो ब्रह्मचारी सावधान होकर विधिपूर्वक गुरुकी सेवा करताहुआ पृथ्वीमें भ्रमण करताहै वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्याको प्राप्त होकर उस विद्या के सुलभ फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्योऽध्याय ४

गृहीतवेदाध्ययन श्रुतशास्त्रार्थत्ववित् ॥ असमानर्पिगोत्रां हि कन्यां सधा  
 वृकां शुभाम् ॥ १ ॥ सर्वावयवसपूर्णां सुवृधामुद्वेक्षरं ॥ ब्राह्मण विधिना  
 कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमं ॥ २ ॥

वेदको ब्राह्मणवर्षसे पढाहुआ और गुरुके मुक्तसे पढाहुआ क्षात्रके तात्पर्यका ज्ञाता, ब्राह्मण  
 अपन्य ( विवाहकरनेवाला पुरुषका ) गोत्र और प्रवरके तुल्य मोत्र और प्रवर जिसके नहीं है  
 ऐसी और जिसके माई हो ऐसी बरखी ॥ १ ॥ सुन्दर आचरणवाली, और देहके सम्पूर्ण  
 अंगोंसे युक्त ऐसी कन्या से विवाह करै, और ब्राह्मण या ठ विवाहोंके मध्यमें जो उत्तम ब्राह्म-  
 विवाह है, उससे विवाह करै ॥ २ ॥

तयान्ये षड्व्यं प्रोक्ता विवाहा षण्णधर्मतः ॥

इसी प्रकारसे औरभी वर्षोंके विवाह धर्मानुसार बहुत कहे हैं

औपासन च विधिवदाहृत्य द्विजपुगवां ॥ ३ ॥

सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतंद्रितं ॥

स्नानं कार्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण विधिपूर्वक औपासनाधीक्षे प्रहण करके ॥ ३ ॥ आळस्वरहित हा सायंकाल और  
 प्रातःकालमें प्रतिदिन होमकरै । और नित्य दंतधावन करके स्नान करै ॥ ४ ॥

उपकाले समुत्पाय कृतशीघ्रो ययाविधि ॥ मुक्ते पथ्युपिते नित्य भवत्यप्रयतो  
 नरं ॥ ५ ॥ तस्माच्छुष्कमयद्रि षा भक्षयेदन्तकाष्ठकम् ॥ करजं स्वादिर धापि  
 कदंबं कुरवंतया ॥ ६ ॥ सप्तपर्णं पृथिपर्णी जम्बू निंबं तथैव च ॥ अपामार्गं च  
 वित्त्व चार्कं चोदुम्बरमेव च ॥ ७ ॥ एते प्रशस्ता कथिता दंतधावनकर्मणि ॥  
 दंतकाष्ठस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्तितं ॥ ८ ॥ सर्वे कटफिनं पुण्या क्षीरिणश्च  
 यक्षस्विनः ॥ अष्टांगुलेन मानेन दत्तकाष्ठमिहोच्यते ॥ प्रादेशमात्रमयवातेन दन्ता  
 न्विशोषयेत् ॥ ९ ॥ प्रतिपत्सर्वपृष्ठीषु नयम्यां चैव सयमा ॥ दंतानां काष्ठसं  
 योगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ १० ॥ अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिपिद्दिनेषु च ॥  
 अपां द्वादशगह्वैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥ ११ ॥

१ रतोंकी शुद्धि पराङ्गिक निरिद्धकालसे अन्य कालमें "कष्टकधीरुचोत्वं दारुणां गुणसंमितम् ।  
 कनिष्ठिकामपत्सुतं दन्तपाकमाचरेत् ॥ इत यावत्स्योच्छ्वसनके अनुहार प्रितमें कडे हो या हूय  
 वा उठ चुपकी कनिष्ठा उंगलीकी बराबरमोरी बारदभंगुलीकी लगी लकड़ीका छेकर उसके पूषार्धमें  
 सूची बनाकर बिसाडै उसका मंत्र बह है ॐ आनुर्बलं मयी बभूवः प्रयाः पयुगुनि च । ब्रह्म प्रतो  
 च मेपाय तं मे देहि मनस्ते ॥ १ ॥ इसकी पाकर दाँत करके उसके पीरकर प्रितकी शुद्धि  
 करके उसे चेरे फिर करने लग्यते बपाकर हाकके ती मर्तवकीने पहले दहि हापकी फिर कति  
 हापकीका वैकरेने ।

उपःकाल में उठकर यथाविधि शौचादि को करै, कारण कि मुखके पर्युपित रहनेसे मनुष्य-  
नित्य अपवित्र रहताहै ॥ ५ ॥ इसकारण सूखी अथवा गीली दंतकाष्ठका भक्षण ( दंतौन )  
करै और वह काठ कंरज वा, खैर, कदव, मौलसिरीका होना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ सप्तपर्ण, पृष्णिपर्णा  
जामन, नीम, अंगा, वेल, आक, गूलर, ॥ ७ ॥ इतने वृक्ष दंतौनके लिये उत्तम कहे हैं,  
और दंतौनके काठका भक्षण इस भाति संक्षेपसे कहाहै ॥ ८ ॥ कांटेवाले वृक्ष और दूधवाले  
वृक्षोकी लकड़ीकी दंतौन करनेसे पुण्य और यशकी वृद्धि होतीहै, आठ अगुल, या दश अगु-  
लकी लम्बी लकड़ी दंतौनके लिये कहीहै, अथवा प्रादेशमात्र लम्बी [ अंगूठसे तर्जनीतक ]  
दंतौनकी लकड़ीका प्रमाण है इससे दातोंकी शुद्धि करै ॥ ९ ॥ हे सन्तोंमें उत्तमो ! पडवा,  
अमावस्या, छठ और नवमीतिथिमें जो दंतौन करता है उसके सात कुल दग्ध होजाते हैं  
॥ १० ॥ इन दिनोंमें दंतौन न करकै दंतौनके अभावमें केवल जलसे वारह कुल करकै  
मुख शुद्ध करै ॥ ११ ॥

स्नात्वा मंत्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥ मंत्रवत्प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकांज-  
लिम् ॥ १२ ॥ आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ युद्धयन्ति वरदा-  
नेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ १३ ॥ उदकांजलिनिःक्षेपाद्वायव्या चाभिमंत्रिताः ॥  
निघ्नन्ति राक्षसान्सर्वान्मन्देहाख्यान्द्रिजेरिताः ॥ १४ ॥ ततः प्रयाति सविता ब्रा-  
ह्मणैरभिरक्षितः ॥ मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १५ ॥ त-  
स्मात्त्र लंघयेत्संध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥ उल्लंघयति यो मोहात्स याति न-  
रकं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पहले मंत्रोंसे आचमन करकै पीछे स्नानकर आचमन करै, और मंत्रोंसे आत्मा ( देह )  
को शुद्धकर जलकी अंजुली सूर्य भगवान्को दे ॥ १२ ॥ कारण कि अव्यक्तजन्मा भगवान्  
ब्रह्माजीके वरदानसे दर्पितहो मदेह नामके राक्षसगण प्रातः कालके सूर्यके साथ युद्धकरते हैं  
॥ १३ ॥ उस समय गायत्रीके मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुई ब्राह्मणोंकी दीहुई जलाञ्जलि उन मदेह-  
नामके सम्पूर्ण राक्षसोंको नष्टकरतीहै ॥ १४ ॥ तिस जलाञ्जलिसे ब्राह्मणोंके द्वारा तथा मरी-  
चि आदि महाभागो और सनकादिक योगियोंसे सुरक्षित होकर सूर्यभगवान् ( आकाश में )  
गमनकरते हैं ॥ १५ ॥ इसकारण द्विजातिगण सावधान होकर प्रातःकाल और सायंकाल  
की संध्याका उल्लघन न करै जो मनुष्य मोहके वशसे संध्याका उल्लघन करतेहैं वह निश्चयही  
नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥

सायं मंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥

दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्याञ्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्धयति ॥ १७ ॥

सायंकालमें आचमन करनेके पीछे मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुए जलको शरीरपर छिडककर  
सूर्यभगवान्को जलाञ्जलि देकर ( चारबार ) उनकी प्रदक्षिणा करै, इसके पीछे जलको स्पर्श  
कर शुद्धि प्राप्तकरै ॥ १७ ॥

१ भक्षण इसवास्ते कहाहै कि त्रतादिकमें दन्तधावन काष्ठसे न करै ।

२ यह प्रमाण क्षत्रियके अर्थ कहाहै, अथवा द्वादशागुल ( बारहअगुल ) नहीं मिलनेपरका है ।

३ यह प्रमाण वैश्यके अर्थ कहाहै ।

पूर्वा संप्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ गायत्रीमन्म्यसेचावद्यावदादित्य-  
दक्षनात् ॥ १८ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यां च यथाविधि ॥ गायत्री  
मन्म्यसेचावद्यावचाराणि पश्यति ॥ १९ ॥

मछीमांविसे नक्षत्र दीखतेहोँ उस समय प्रातःकाळकी संध्या करै, और जयवक सूर्यभग  
वान्का वक्षन मछीमांविसे न होआय तबतक गायत्रीका शप करवाहै ॥ १८ ॥ और सूर्यके  
अस्तहोनेके पूव भयात् अभास्वमित्थ समयमें विधिये संध्या प्रारम्भ करके जयवक कुछ २  
घारोंका वर्धन न हो तबतक गायत्रीका शप करता रहै ॥ १९ ॥

ततश्चावसथ प्राप्य कृत्वा होम स्वयं शुभः ॥  
सर्विस्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ॥ २० ॥

इसप्रकार सन्ध्यावन्दन करनेके उपरान्त सुदिनाएँ ब्राह्मण परमें जाकर शास्त्रकी विधिके  
अनुसार स्वयं होम करै; इसके पीछे पोष्यवर्ग ( पुत्र मूल्य आदि ) के भरणके निमित्त  
चिन्ताकरै ॥ २० ॥

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥  
ईश्वरं शेषं कार्प्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ॥ २१ ॥

इसके उपरान्त निश्चिन्त होकर ज्ञानी ब्राह्मण अपने शिष्यके कस्यापके छिय कुछ एक  
स्वाध्याय ( पढ़ाना ) करै, और इ द्विजोत्तमो ! इसके पीछे कार्यके छिये राजाके यहाँको  
जाय ॥ २१ ॥

कुशपुष्पधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥ ततो मध्याह्निकं कुर्याच्छुचौ वेश  
मनोरमे ॥ २२ ॥ विधिं तस्य प्रयक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥ स्नात्वा येन  
विधानेन मुच्यते सषकिन्निपात् ॥ २३ ॥

दूरवेष्टामेंसे जाकर कुश, फूल, ईश्वर ( छकड़ी ) आदिको धरै, इसके पीछे मनोरम कुछ  
वेष्टमें जाकर मध्याह्निक ( जो दुपहरको कियाजाताहै ) कर्मको करै ॥ २२ ॥ संश्लेषसे पाप  
नाशक उसकी विधि कहताहूँ उसविधिके अनुसार जान करनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २३ ॥

श्रानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ॥ सुमनाश्च ततो गच्छेत्तर्दी शुद्धजला  
धिकाम् ॥ २४ ॥ नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यथारिणि ॥ न स्नायादल्प  
तोपेयु विद्यमाने बहुदके ॥ २५ ॥ सरिद्धरं नदीस्नानं प्रतिश्रोतः स्थितश्चरेत् ॥  
सदागादिषु तोपेषु स्नायाच्च तदभाषत ॥ २६ ॥

सुद मसत ( चाबक ) और तिलोंके साथ स्नानके छिये महीको धाकर उदार मन होकर  
शुद्ध और अधिक जलवाली नदीपर जा स्नानकरै ॥ २४ ॥ नदीके हाठेहुए इतर जलमें स्नान  
न करै, और अधिक जलवाले तीरके हाते हुए अल्पजलवाले ( कूपारि ) में स्नान न करै ॥ २५ ॥  
नदियोंमें अथ गंगादि समुद्रवाहिनीमें स्रोत ( प्रवाह ) के सम्मुख स्थितहोकर स्नानकरै नदीके  
न होनेपर ठाठावाहिके जलमें स्नान करै ॥ २६ ॥

शुचिदेशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलावरम् ॥ मृतोयेने स्वकं देहं लिपेत्प्रक्षाल्य  
यत्नतः ॥ २७ ॥ स्नानादिकं च समाप्य कुर्यादाचमनं बुधः ॥ सोऽन्तर्जलं प्रवि-  
श्याथ वांग्यतो नियमेन हि ॥ २८ ॥ हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥

प्रथमं शुद्धदेशमें जलको छिडकर सम्पूर्ण वस्त्रोंको रखदे, पीछे यत्रपूर्वक मट्टी और जलसे  
अपनी देहको लीपकर प्रक्षालन करै ॥ २७ ॥ स्नानादिको करके बुद्धिमान् मनुष्य आचमन  
करै, फिर वह पुरुष जलके भीतर प्रवेशकरके मौनहोकर नियम सहित ॥ २८ ॥ हरिका  
स्मरणकरके जंघातक जलमें गोतालगावै ॥

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समंत्रतः ॥ २९ ॥ प्रोक्षयेद्धारुणैर्मंत्रैः पावमा-  
नीभिरेव च ॥ कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ३० ॥ स्योनापृथ्वी-  
ति मृद्गात्रे इदंविष्णुरिति द्विजाः ॥ ततो नारायणं देवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम्  
॥ ३१ ॥ निमज्ज्यांतर्जले सम्यक्क्रियते चाघमर्षणम् ॥

इसकेपीछे किनारेपर आकर मंत्रोंसहित जलसे आचमन करके ॥ २९ ॥ वरुणदेवताके  
अथवा पावमानी सूक्तसे शरीरका प्रोक्षणकरै, कुशाके अग्रके जलसे यत्नसहित देहका  
प्रोक्षण करके ॥ ३० ॥ स्योनापृथ्वी इत्यादि मंत्रोंसे अथवा इदंविष्णु-इत्यादि मंत्रोंको पढकर  
देहमें मट्टी लगावै, इसके पीछे प्रत्येक गोलेमें नारायणका स्मरण करै ॥ ३१ ॥  
इसके पीछे जलके बीचमें निमग्न हुए अघमर्षण मंत्र ( ऋतंचसत्यमित्यादि ) को जपै ॥

स्नात्वाक्षततिलैस्तद्देवर्षिपितृभिः सह ॥ ३२ ॥ तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पी-  
डय च समाहितः ॥ जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ॥ ३३ ॥ परि-  
धायोत्तरीयं च कुर्यात्केशान्न धूनयेत् ॥

इसके पीछे स्नानकरके अक्षत और तिलोंसे देव ऋषि और पितरोंका ॥ ३२ ॥ तर्पणकरके  
किनारेपर आकर वस्त्रको निचोडकर सावधानीसे सफेद वस्त्रोंको ॥ ३३ ॥ पहनकर दुपट्टा-  
पहने, और वालोंको न झाड़े, अर्थात् शिराको नहीं फटकारे कारण कि, उसके जलका अंग-  
पर गिरना अच्छा नहींहै ॥

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ मलाक्तं गंधहीनं च वर्जये-  
दंबरं बुधः ॥ ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृतोयेन विचक्षणः ॥ ३५ ॥

अत्यन्तलाल और नीलावस्त्र श्रेष्ठ नहींहै ॥ ३४ ॥ भैले कुचैले और गन्धहीन वस्त्रको  
त्यागदे, इसके पीछे बुद्धिमान् मनुष्य मट्टीके जलसे पैरोंको धोवै ॥ ३५ ॥

दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥ त्रिःपिबेदाक्षितं तोयमास्यं द्विः  
परिमार्जयेत् ॥ ३६ ॥ पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यसुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठा-  
नामिकाभ्यां च चक्षुषीं समुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥ तथैव पंचभिर्मूर्तिं स्पृशेदेवं स-  
माहितः ॥ अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥ ३८ ॥ कुर्वीत दर्भ-

\* यहापर देव ऋषियोंके अक्षतसे और पितरोंके तिलसे ऐसा क्रमिक जानलैना ॥

पाणिस्तुदङ्गुस्तु प्राङ्मुखोऽपि वा ॥ प्राणायामत्रय धीमान्ययान्यायमत  
दित ॥ ३९ ॥

इसके पीछे पहिले हाथका गोंके कानके समान आकार बनाय देखेकर तीनबार उन्न पिये  
( आचमन करै ) फिर दोषार अंगूठेसे मुसमार्जन करै अर्थात् दानों होठोंको पोछै ॥ ३६ ॥  
फिर पैर और शिरपर जलछिड़ककर बीचकी तीन अंगुलियोंसे मुसका स्पर्श करै, अंगूठे और  
अनौसिकासे दानों नेत्रोंका स्पर्श करै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार विधिसहित बुद्धिमात् मनुष्य साव  
धान होकर पांचों अंगुलियोंसे मसकका स्पर्श करै, शुद्ध मनवाला ब्राह्मण इस विधिसे आ-  
चमन करै ॥ ३८ ॥ कुशा हाथमें छेकर पूव मुख हो आससके छेकर न्याससहित तीन  
प्राणायाम करै ॥ ३९ ॥

जपयज्ञ तत कुर्पाङ्गायत्रीं वेदमातरम् ॥ त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तस्य नि  
घोषत ॥ ४० ॥ वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥ त्रयाणामपि  
यज्ञानां भेषु स्यादुत्तरोत्तर ॥ ४१ ॥ यदुच्चनीचोच्चरति शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥  
मन्त्रमुखारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ ४२ ॥ शनैरुच्चारयन्मन्त्र किञ्चिदोष्ठी  
प्रचास्येत् ॥ किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ४३ ॥ धिया  
पदाक्षरभेष्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥ शब्दार्थचिंतनान्यां तु तदुक्तं मानस स्मृत  
म् ॥ ४४ ॥

इसके पीछे वेदोंकी माता गायत्रीको जपे और जपयज्ञ करै यह जपयज्ञ तीन प्रकारकाहै,  
आपसे उसका स्वरूप फइगाहूँ ॥ ४० ॥ वाचिक, उपांशु ( धीमीवाणीसे ) और मानसिक,  
यह तीन प्रकारके जपके भेदहैं । इन तीनों जपयज्ञोंके बीचमें उचरोत्तर भेदहै ॥ ४१ ॥  
मिसका ऊँचा और नीचा उच्चारण स्पष्टपदाक्षरोंके शब्दोंसे मन्त्रपाठ कियाजावाहै उसी  
जपको वाचिक कहतेहैं ॥ ४२ ॥ और जिसमें कुछ २ होठ कपित हों और धीरे २ मन्त्रका  
उच्चारणहो, कुछ २ शब्द सुनाई आताहो, वसे उपांशु जप कहतेहैं ॥ ४३ ॥ बुद्धिसही  
पद और अक्षरकी धंकिता स्मरणहो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आये केवल शब्द और  
अर्थका विचारही जिसमें हो, उसका नाम मानसिक जपयज्ञहै ॥ ४४ ॥

जपेन देवता नित्यं स्तूपमाना मसीदति ॥ प्रसन्ने बिपुलान्गोत्राग्रामुवंति मनी  
षिणः ॥ ४५ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ॥ जपितासोपसर्ष  
ति दूरादेव प्रपीति ते ॥ ४६ ॥ छन्दःशुद्ध्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमर्षदितः ॥  
जपेदहरहर्तात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥ ४७ ॥

१ अर्थात् उठमें केन तुल्यसे आदि बुद्धि म होये देण देताके ।

२ परां वद वात जानना आदिसे कि अंगुठ उर्कपीछे दोनों मालापुर अंगुठ मध्यमले च्युपुमा  
अंगुठमनामिकासे कर्षय अंगुठकनिष्ठिकासे तर्जम स्वय करके हाथ पो हरपका लगूँ दस्तके रस  
करे, फिर हाथ बा इन्को अंगुठारे शिरका रस करके दोस्रो अंगुठोंवापी उठीयवाररस करे रसको  
भोजनकरन करे ।

जपसे स्तुति कियेजाकर देवता प्रसन्न होतेहैं, देवताओंके प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको बहु-  
तसी वशकी वृद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ४५ ॥ जपकरनेसे भयंकर राक्षसगण, पिशाच और सर्प  
यह निकट नहीं आसकते वरन् वह दूरसेही भाग जातेहैं ॥ ४६ ॥ छद् और ऋषिको जान-  
कर आलस्यरहित होकर मन्त्रजपै, प्रतिदिन मनसे छन्द आदिनो जानकर ब्राह्मण गाय-  
त्रीको जपै ॥ ४७ ॥

सहस्रपरमां देवी शतमध्यां दशावराम् ॥  
गायत्री यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ४८ ॥

सहस्र गायत्रीका जप श्रेष्ठ है, और शत ( १०० ) गायत्रीका जप मध्यम, और दश-  
का जप निकृष्ट ( अधम ) है, जो प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है वह पापसे लिप्त  
नहीं होता ॥ ४८ ॥

अथ पुष्पांजलि कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥ उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति  
चापरम् ॥ ४९ ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्विवाकरम् ॥

इसके उपरान्त श्रीसूर्यनारायणको पुष्पसहित जलकी अजुली ( अर्घ ) देकर उर्ध्वबाहुको  
( ऊपरको दौनो हाथउठा ) कर “उदुत्य जातदेदसम्,, और “तच्चक्षुर्देवहितम्” इन सूक्तों-  
[ सूर्यकी स्तुतिके मंत्रों ]को जपै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे ( ७ सातवार वा तीनवार ) प्रदक्षिणा  
करके सूर्यको नमस्कार करै ॥

तत्ततीर्थेन देवादीनाद्भिः संतर्पयेद्विजः ॥ ५० ॥ स्नानवस्त्रं तु निष्पीड्य पुनरा-  
चमनं चरेत् ॥ तद्ब्रह्मक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

फिर द्विज, जलसे देव आदिक तीर्थसे सूर्यदेवता आदिकोंका तर्पण करै ॥ ५० ॥ फिर  
स्नानके वस्त्रको निचोडकर पुनर्वार आचमन करै, कारण कि इसीस्थानपर भक्तोंका स्नान  
और दान कहा है ॥ ५१ ॥

दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥

प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छूद्रासमन्वितः ॥ ५२ ॥

श्रद्धायुक्त हो कुशाके आसनपर बैठकर कुशा हाथमें ले पूर्वमुख होकर ब्रह्मयज्ञकी विधिके  
अनुसार ब्रह्मयज्ञ करै ॥ ५२ ॥

१ यहा जपके उपरान्त अर्घ देकर उपस्थान कहाहै परन्तु सो अन्यस्मृतिसे विरुद्ध होताहै, अतः  
प्राणायामके अनन्तर आपो हिंष्टा इत्यादिक मन्त्रसे मार्जनकरनेपर अधमर्पणसूक्त जपै, इसके उपरान्त  
आचमन करके इस अर्घको दे वो उपस्थान करे, तत्पश्चात् जप करै, उपस्थानमें उर्ध्वबाहु होना मध्या-  
ह्नीमें कहाहै, साय प्रातः अंजली बांधही कर करै ।

२ “कनिष्ठातर्जन्यगुष्ठमूलान्म्रम करस्य तु । प्रजापतिनितृमहोदेवतीर्थान्यनुक्रमात्” ऐसा मनुका वचन  
है, अगुलियोंके अग्रभागको देवतीर्थ कहतेहैं, उससे देवताओंको तर्पण करै अगुष्ठतर्जनीको मध्यके पितृ  
तीर्थ कहतेहैं उससे पितरोंका तर्पणकरै । अगुष्ठमूलको ब्रह्मतीर्थ कहतेहैं उससे ऋषियोंका तर्पणकरै ।



ततोऽर्घ्यं मानवे दद्यात्सिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ उत्याय सूदपय्यत ईसं शुचि-  
पदित्युवा ॥ ५३ ॥ ततो देव नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्तत पुनः ॥ विधिना  
पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णु सप्तर्चयेत् ॥ ५४ ॥

इसके उपरान्त उठकर फिर विष्णु पुण्य और अश्वतोसे अर्घको मस्तक पर्यन्त उठाकर ईस-  
शुचिपद-इत्यादि श्रद्धासे अभिमंत्रित करके सूर्यको दे ॥ ५३ ॥ फिर सूर्ययगत्वाको नमस्कार  
करके परको जाय, वहां विधिसे पुरुषसूक्त ( सहास्रीयां इत्यादि १६ मंत्र ) से विष्णुका  
पूजन करे ॥ ५४ ॥

वैश्वदेव ततः क्रुयाद्दलिकर्म विधानतः ॥

गोदोहमात्रमाकाक्षेदतिथिं प्रति धि गृही ॥ ५५ ॥

इसके उपरान्त वैश्वदेवकी विधिके अनुसार वैश्वदेवको षड्विधै, अथने समयमें गौदोहन  
शोसकृत्वा है करने समयतक गृहस्त्री अतिथिकी वाट देखवाराहे ॥ ५५ ॥

अष्टपुर्वमज्ञातमतिथिं प्रातमर्चयेत् ॥ स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाशुना  
॥ ५६ ॥ स्वागतेनामयस्तुष्टा भवति गृहमेधिनः ॥ आसनेन तु दत्तेन प्रीतो  
भवति देवराट् ॥ ५७ ॥ पादशीचेन पितरः प्रीतिमाप्नोति दुर्लभाम् ॥ अन्न  
दानेन युक्तेन हृष्यते हि प्रजापतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादतिथये कार्म्यं पूजनं  
गृहमेधिना ॥

जिसको पहले कभी न देखाहो ऐसे जाये अतिथिकीसी स्वागतवचन (भाप अच्छे हैं वही  
कृपाकरी जो वर्त्मन दिया इत्यादि) कहना आसन देना, देखाकर उठना, अन्न आदिसे अतिथि  
की पूजा (सत्कार) करे ॥ ५६ ॥ स्वागत पूजनेसे गृहस्त्री की अग्नि संतुष्ट होती है, आस-  
नके देनेसे इन्द्र प्रसन्नहोते हैं ॥ ५७ ॥ चरणोंके छेनेसे पितृगण दुर्लभ प्रीतिको प्राप्त हावें हैं  
उत्तम अन्नके देनेसे प्रजापति प्रसन्नहोते हैं ॥ ५८ ॥ इसकारण गृहस्थियोंकी अति  
थिका पूजन करना अवश्य कर्तव्य है,

अथवा च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ॥ ५९ ॥ भिक्षां च भिक्षुषु  
दद्यात्परिधाद्ब्रह्मचारिणे ॥ अकल्पितान्नातुष्ट्यस्य सप्यजनसमन्विताम् ॥ ६० ॥  
अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षी च गृहमागते ॥ उद्वृत्तस्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विस-  
र्जयेत् ॥ ६१ ॥ वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छक्तौ भिक्षुर्मर्षपोहितम् ॥ न हि भिक्षु  
कृतान्दोषान्विश्वदेवो व्यपोहितः ॥ ६२ ॥ तस्माच्छाताय यतये भिक्षां दद्यात्  
माहितः ॥ विष्णुरेव यतिश्चापमिति निश्चित्य भाषयेत् ॥ ६३ ॥

जब गृहस्थी भक्ति और शक्तिसे सर्वदा विष्णुका पूजन करे ॥ ५९ ॥ अनंतर अन्नके  
विभागसे पूर्वही भ्यजन ( माजी ) सहित भिक्षा देवे ॥ ६० ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी भिक्षुको  
बलिदेवदेवके शिष्ये अन्नको मिठाकाकर मिठा देकर बिनाकरे ॥ ६१ ॥ कारण कि, वैश्व  
देवके न करनेसे जो पाप होताहै उसके दूर करनेको भिक्षुके समर्थ है और जो पाप भिक्षु  
के मिठाकर करनेसे होताहै, उस पापको वैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ६२ ॥ इसकारण

जो अतिथि आवै उसे सावधान होकर भिक्षा दे और निःसन्देह सन्यासीको विष्णुका रूप विचारै ॥ ६३ ॥

सुवासिनी कुमारी च भोजयित्वा नरानपि ॥

बालवृद्धास्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥ ६४ ॥

गृहस्थी मनुष्य प्रथम, सुहागिनी, और कुमारी, बालक और वृद्ध इन मनुष्योंको भोजन कराकर पीछे शेष बचे अन्नको आप भोजन करै ॥ ६४ ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥ अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ ६५ ॥ पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक्पृथक् ॥ ततः स्वादुकरान्नं च भुञ्जीत सुसमाहितः ॥ ६६ ॥

( भोजनको इसभातिसे करै कि ) पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर बैठे और मौन धारणकर अथवा परिमित बोलकर प्रसन्नचित्तहो प्रथम अन्नदेवको नमस्कारकर ॥ ६५ ॥ पीछे पृथक् पृथक् मन्त्रोंसे प्राणाहुति ( प्राणाय स्वाहा इत्यादि ) को करै, पीछे स्वादिष्ट अन्नको भलीभातिसे सावधानहोकर भोजन करै ॥ ६६ ॥

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥

इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥ ६७ ॥

भोजनके उपरान्त आचमन करके इष्टदेवताका स्मरण करताहुआ उदरका स्पर्श करै, इसके उपरान्त विद्वान् मनुष्य कुछेक समयको इतिहास और पुराणोंके सुननेमें वितावै ॥ ६७ ॥

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥

कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥ ६८ ॥

फिर विधिविधानसहित ग्रामसे बाहर जाकर सन्ध्यावंदन करै, फिर होमकरके और अभ्यागतको भोजन कराकर आप रात्रिको भोजन करै ॥ ६८ ॥

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥

नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ६९ ॥

सायंकाल और प्रातःकालमें भोजन करनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको वेदमें दीहै, इस बीच- ( दिनमें दुबारा ) भोजन नहीं करै, कारण कि यह भोजनकी विधिभी अग्निहोत्रके तुल्य है ॥ ६९ ॥

शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥ स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥ ७० ॥ महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ॥ तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्विजः ॥ ७१ ॥ माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्जयेत् ॥ अध्यापनं समभ्यस्यन्त्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७२ ॥ नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥ न पठेद्दुदितं श्रुत्वा संध्यायां तु द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥

शिष्योंको पढावै, और अनध्यायके दिन न पढावै, ब्राह्मण जो यह सम्पूर्ण अनध्याय अष्टमी चतुर्दशी आदिक धर्मज्ञान और पुराणोंमें कहेहैं उनको पढाना वर्जितकर दे ॥ ७० ॥ १९

तथा महानधमी, द्वावसी, भरणी मक्षत्र, पशु, अक्षयतृतीया, इनमेंही द्विज स्त्रियोंको न पढ़ावे ॥ ७१ ॥ माघमहीनेकी रथसप्तमीको भी पढ़ाना उचित नहीं ज्ञानके समय पढ़ानेको वर्ज्ये ॥ ७२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! गुरुदेको छेमावे अथवा पूष्पीपर पड़ेहुप बेसकर या रोनेके क्षणको मुनकर, और सन्ध्याके समयमें न पड़े ॥ ७३ ॥

दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमा ॥

हिरण्यदान गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ ७४ ॥

और हे ब्राह्मणों ! यह दानभी गृहस्थियोंको देने योग्य है, सुवर्षदान, गौदान, और पृथ्वीदान ॥ ७४ ॥

एष धर्मो गृहस्थस्य सारमूत उदाहृत ॥ य एष भद्रया कुर्यात्स याति ब्रह्म-  
णः पदम् ॥ ७५ ॥ ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नरसिंहप्रसादतः ॥ तस्मान्मुक्ति  
मवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमा ॥ ७६ ॥

इस प्रकार गृहस्थीके सारमूत धर्मको मैंने तुमसे कहा, जो भद्रासहित इस धर्माचर-  
णको करताहै, वह ब्रह्मपदको प्राप्तहोवाहै ॥ ७५ ॥ और नरसिंह भगवान्की कृपासे उसे  
अधिक ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै, हे द्विजोत्तमों ! इस ज्ञानसे ब्राह्मण मुक्तिको प्राप्तहोवेहै ॥ ७६ ॥

एष हि विप्रः कथितो मया घः समासतः क्षाश्वतधर्मराशिः ॥

गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्यः प्रयत्नाद्दरिमेति युक्तम् ॥ ७७ ॥

इति हारीत धर्मशास्त्रे ऋतुबोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे विप्रगण ! संक्षेपसे मैंने तुमसे सनातनधर्मका समूह कहा; गृहस्थी यत्नसहित गृह-  
स्थके पाठनेयोग्य इस धर्मके करनेसे सर्वोत्तम विष्णु भगवान्को प्राप्त होवाहै, अर्थात् उसकी  
मुक्ति होजातीहै ॥ ७७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे मातृकीकावर्ग ऋतुबोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पञ्चमोऽध्यायः ५

अतः पर प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमा ॥

धर्माभम महाभागः कथ्यमानः निषोद्यतः ॥ १ ॥

हे महाभाग सत्तमगण ! अब मैं वानप्रस्थधर्मको कहूँगा, तुम सावधान होकर मेरे कहे हुए  
धर्म आश्रमके धर्मको अवलोकते ॥ १ ॥

गृहस्थः पुत्रप्रीत्यादीन्ब्रह्मा पलितमामनः ॥

भार्या पुत्रपु निःसिष्य सद् या प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥

गृहस्थी पुत्रप्रीत्यादिबो और अपनी वृद्ध भवत्याका देतकर पुत्रोके ऊपर अपनी स्त्रीको  
सौंघ या उसे अपने सग लेकर वनको पछाजाव ॥ २ ॥

नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ॥

धारयञ्जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥ ३ ॥

नख, केश, और सफेद गात्रकी त्वचाको धारण करताहुआ वनमें स्थितहो शास्त्रकी विधिके अनुसार अग्निहोत्र करै ॥ ३ ॥

धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिदितैः ॥ शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः

॥ ४ ॥ त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपस्तदा ॥ पक्षांते वा समश्नीयान्मा-

सान्ते वा स्वपक्कभुक् ॥ ५ ॥ तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ॥ षष्ठे च

कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥ ६ ॥ घर्मे पंचाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे

निराश्रयः ॥ हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥

वनमें उत्पन्नहुए अथवा अनिदित नीवारादि अन्नसे शाक मूल फलोंसे यत्नसहित अपना

निर्वाह और होमको करै ॥ ४ ॥ त्रिकाल स्नानकर तीक्ष्ण ( कठिन ) तपस्या करै, पक्षके

अन्तमें वा महीनेके अन्तमें भोजन करै, और अपने आप भोजन बनाकर भक्षणकरै ॥ ५ ॥

चौथे पहरमें अथवा आठपहरमें या छठेपहरमें भोजनकरै, या वायुही भक्षणकरकै रहै ॥ ६ ॥

घर्म ( उष्णकाल ) में पचाग्निके मध्यमें और वर्षाऋतुमें निराश्रयमें, और शीतकालमें जलके

मध्यमें बैठकर तप करता हुआ समय बितायै ॥ ७ ॥

एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ॥ अग्निं स्वात्मानि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां

दिशम् ॥ ८ ॥ आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥ स्मरन्तीन्द्रियं ब्रह्म

ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥

जो क्रमानुसार इस प्रकार क्रमोंके करनेमें समर्थ होताहै वह धर्मात्मा अग्निको अपने

आत्मामें रखकर उत्तरदिशामें जाय ॥ ८ ॥ पीछे वनमें जाकर शरीर छूटनेतक मौन धारण-

कर जो तपस्वी अतीन्द्रिय ( जिसको नेत्रआदि न जाने ) ब्रह्मका स्मरण करताहै, वह ब्रह्म-

लोकमें पूजित होताहै ॥ ९ ॥

तपो हि यः श्रेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥

विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो वानप्रस्थ वनमें जाकर मनको वशमें कर समाधि लगाये तपकरताहै, वह पापोंसे रहित

निर्मल और शातरूप वानप्रस्थ सनातन दिव्यपुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

१ यहापर चतुर्थकाल शब्दका अर्थ यह है कि, जिसप्रकार ब्राह्मणोंकी प्रातःकाल और सायंकालमें दोबार भोजनकरनेकी विधि कहीहै, प्रातःकाल भोजनका पहला काल कहाहै, उसी प्रकारसे मायकालको दूसरा काल कहाहै, यदि कोई एकदिन व्रत रहकर दूसरे दिन मध्याह्नके समयमें भोजनकरै, तौ उसने चौथे समयमें भोजन किया, कारण कि उसके उस भोजनके पहले उसके भोजनका तीनवारका समय शीत सुकाहै, इस प्रकारसे आठवा और छटा कालभी समझना योग्य है ।

## पष्ठोऽध्याय ६

अतः पञ्च प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥

श्रद्धया तमनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत वधनात् ॥ १ ॥

इसके पीछे उत्तम चौथेआश्रम ( संन्यास ) का धर्म कहूँगा, अष्टासहित उस धर्मके अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सप्तारके बचनसे कृतजाता है ॥ १ ॥

एवं घनाश्रमे तिष्ठन्पातयन्नैव किल्बिषम् ॥ चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्सन्पासविधिना द्विजः ॥ २ ॥ दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥ दत्त्वा भ्रातृ पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥३॥ इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ अग्निं स्वात्मनि सरोप्य मंत्रवत्प्रजेत्युनः ॥ ४ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रममें स्थिति और पापोंको दूरकरना हुआ ब्राह्मण संन्यासकी विधिसे चौथे आश्रममें जाय ( संन्यास ) को छे ॥ २ ॥ पितर, देवता और मनुष्य इनके निमित्त दानकरके और पितर मनुष्य अपनी आत्माके छिये श्राद्ध करके ॥ ३ ॥ पूर्व भगवा उत्तरको मुखकरके वैश्वानरी वैज्ञ करे, फिर अपनेमें अग्निको मानकर मंत्रका ज्ञाता पुरुष संन्यासको ग्रहण करे ॥ ४ ॥

ततःममृति पुत्रादीं स्नेहालापादि व्रजेत् ॥ बंधूनामभय दद्यात्सवभृतामय तथा ॥ ५ ॥ त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् सततं समपर्वकम् ॥ वेष्टितं कृष्णगोवाल-रज्जुमञ्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥ शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥ कीपीनाच्छादनं वास कर्था शीतनिधारिणीम् ॥ ७ ॥ पातुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य समग्रम् ॥ एतानि तस्य लिंगानि यते प्रोक्तानि सर्वदा ॥ ८ ॥

उत्तममयसे पुत्रादिकोंका स्नेह और संभाषणादिको स्वाग वे, और अपने दणु तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको भय दान करे ॥ ५ ॥ चार अंगुलका कपडा और कासी गौके बाळोंकी रस्ती लिपटी हो और शिसकी प्राथि सम हों, ऐसा बसिका त्रिदण्ड ग्रहण करे ॥ ६ ॥ शीच और आसनके विचारके छिये मुनिपोंकी कहीहुई कौपीन और शीतको दूरकरनेवाली गुर्वी ॥ ७ ॥ और लडाकं इनको ग्रहणकरे, अन्य वस्तुका समग्र न करे; यह संन्यासीके संदेस काळके पिछ फरे ॥ ८ ॥

सगृह्य कृतसन्पासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ स्नात्वाचम्य च विधिवद्ब्रह्मदेन यारिणा ॥ ९ ॥ सर्पयित्वा तु देषांश्च मंत्रवद्भास्कर नमेत् ॥ आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामार्थं चरेत् ॥ १० ॥ गापर्त्री च यथाशक्तिं जप्त्वा ध्यायेत्परपदम् ॥

पूर्वोक्त सम्पूर्ण बागुओंका समग्र कर संन्यास छेनेवाला उत्तम तीर्थमें जाकर ब्रह्मदेव (उने) जससे विधिसहित आचमन करे; और स्नान करे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त देवताओंका

तर्पणकर सूर्यभगवान्को तथा आत्माको नमस्कार करै, पूर्वको मुखकर मौन धारण कर तीन प्राणायाम करै ॥ १० ॥ पीछे यथाशक्ति गायत्रीका जपकरनेके उपरान्त परब्रह्मका ध्यान करै,

स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥ सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥ सम्यग्याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥ पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोषयेत् ॥ यावतात्रेण तृप्तिः स्यात्तावद्देक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्त्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥ चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य प्रासमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥ सर्वच्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रे नियोजयेत् ॥ सूर्यादिभूतदेवैभ्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥ भुंजीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ वटकाश्वत्थपर्णेषु कुंभीतैन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥ कौविदारकदंबेषु न भुंजीयात्कदाचन ॥ मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ १७ ॥ कांस्यभांडेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्ये भोजयतः सर्व्वं कित्त्विपं प्राप्नुयात्तयोः ॥ १८ ॥ भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥ न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥ १९ ॥

प्रतिदिन अपनी जीविकाके निम्न भिक्षाके लिये भ्रमण करै ॥ ११ ॥ सन्ध्याके समय ब्राह्मणके घरपर जाकर दहिने हाथसे भर्त्सनाकेवल ( ग्रास ) मागै ॥ १२ ॥ वाये हाथमें पात्रको रखकर उसे दहिने हाथसे खाली करै अर्थात् पात्रमेंसे अन्नको निकाले, जितने अन्नसे अपनी तृप्ति होसके उतनीही भिक्षाका संग्रह करै ॥ १३ ॥ इसके पीछे फिर लौटकर उस पात्रको दूसरे स्थानपर रख और चारअंगुलसे ढककर सावधानीसे एक ग्रासको ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण व्यजनों सहित दूसरे पात्रमें रखलै, और उसको सूर्यआदि भूत देवताओंको देकर, और जलसे छिड़कर ॥ १५ ॥ पत्तोंके दोने या पात्रमें संन्यासी मौन धारणकर भोजन करै. वट, पीपल, अगस्त, तेंदु, ॥ १६ ॥ कनेर, कदंब इनके पत्तोंमें कभी भोजन न करै. जो संन्यासी वामीके पात्रमें भोजन करतेहै उनको मलीन कहा है ॥ १७ ॥ कांसीके पात्र जो भोजन पकाताहै और कांसीके पात्रमें जिमानेवाले गृहस्थीको जो पाप होताहै, उन दोन पाप कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको लगताहै ॥ १८ ॥ संन्यासी जिस भोजन करै उस पात्रको मंत्रोंसे प्रक्षालन ( धोना ) करै, वह पात्र यज्ञके चमसा यज्ञका पात्र होताहै ) की समान कभी अशुद्ध नहीं होता ॥ १९ ॥

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच्च भास्करम् ॥

जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥ २० ॥

इस उपरान्त आचमन और ध्यान करके भगवान् सूर्यदेवकी स्तुति के अनुष्य शेष दिनको जप ध्यान और इतिहासोंमें व्यतीत करै ॥ २० ॥

कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ॥

हृत्पुंडरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २१ ॥

सत्यवाक्ये सन्त्याहनादि करे परमे रात्रिको विवादे, अपने हृदयरूपी कमलमें आवि-  
ष्टप्रति आत्माका ध्यान करे ॥ २१ ॥

यदि धमरति शान्त सर्वभूतसमो वशी ॥

प्राप्नोति परम स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ २२ ॥

यदि संन्यासी इसप्रकारसे धर्ममें उत्तर और सब प्राणियोंमें समदर्शी, वशी ( जिसके  
इन्द्रिय कममें हो ) और शांत हो वो वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै, वहां जाकर फिर उसे  
दूस संसारमें माना नहीं पड़ता ॥ २२ ॥

त्रिददमृद्यो हि पृथक्समाचरेच्छनैः शनियस्तु बहिर्मुखाक्षः ॥

समुच्य संसारसमस्तर्षधनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदमुर ३॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पद्योऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो त्रिपदी संन्यासी पृथक् ० ऐसा आचरण करे और पीरे २ जिसकी इन्द्रिय  
शुद्धरस विरक्त होजाय वह संसारके सम्पूर्ण धनोंको छोड़कर अमृतरूपी विष्णुमगबाणके  
पदमें प्रार होताहै ॥ ०३ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे मायादीक्षणां पद्योऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

वर्णानामाभमाणां च कथित धर्मलक्षणम् ॥

येन स्वर्गापवर्गौ च प्राप्नुवति द्विजातयः ॥ १ ॥

धर्म और आभनोंके धर्मोका स्वरूप कहा, इस धर्मोका अनुष्ठान करनेसे द्विजातिगण स्वर्ग  
और मर्त्यको पाते हैं ॥ १ ॥

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षिपात्सारमुत्तमम् ॥

यस्यैष्य भ्रशणाद्याति मोक्षं चैष मुमुक्षुषः ॥ २ ॥

इस समय संक्षेपसे योगशास्त्रका उत्तम सार बतावूँ, जिसके सुननेसे माझमी इच्छा  
करनेवाले मनुष्य मुक्त होजावें ॥ २ ॥

योगाभ्यासबलेनैष नश्येयुः पातकानि तु ॥

तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥ ३ ॥

योगाभ्यासक बलसेही सम्पूर्ण पाप मट होजावें, इसकारण आगमें उत्तर दाकर मनुष्य  
एकम आचरणसे नित्य ध्यान करे ॥ ३ ॥

ज्ञानायामनं यत्र प्रत्याहारो चेन्द्रियम् ॥ धारणाभियंशे श्रुत्या पूर्व दुर्धर्षं

मनः ॥ ४ ॥ एकाकारमनानत शुद्धी रूपमनामपम् ॥ सुस्मासुस्मतरं ध्याये

त्पदद्वारमभ्युत्तम् ॥ ५ ॥

इस प्रकारामन धारणा, प्रत्याहार ( बिषयोंसे इन्द्रियोंके हटान ) से इन्द्रियको, और  
एककार ( स्थिरताक मन ) से मनमें गंभीर भावो पदास करके ॥ ४ ॥ एकामविष

होकर देवताओंको भी अगम्य ( प्राक्तिके अयोग्य ) और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जो जगत्के आश्रय विष्णु भगवान् हैं उनका ध्यान करै ॥ ५ ॥

आत्मना वहिरंतःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ॥

रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम् ॥ ६ ॥

जा ब्रह्म अपने स्वरूपसे बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्णकी समान जिसकी कांति है, ऐसे ब्रह्मका एकान्तमें बैठकर मरणसमयतक ध्यान करै ॥ ६ ॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥

यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चितयेत् ॥ ७ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, जो सबके हृदयमें विराजमान है और जो सबके जानने योग्य है, वह परमात्मा मैंही हूँ, ऐसा चितवन करै ॥ ७ ॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ॥

श्रुतिरमृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥ ८ ॥

जबतक आत्माके लाभका सुख न हो, तबतक शास्त्रकारोंने तप ध्यान श्रुति और स्मृतियोंको धर्म करना कहाहै, आत्माकी प्राप्तिका विरोधी जो है उसको न करै ॥ ८ ॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ॥ एवं तपश्च विद्या च संयुत भेषजं भवेत् ॥ ९ ॥ यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चात्रेण संयुतम् ॥ उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥ देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बंधनात् ॥ न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥ १२ ॥

जिसप्रकारसे घोड़ेके विना रथ और सारथीके विना घोडा नहीं चलता और दोनोंही परस्परमें सहायक हैं, इसीप्रकारसे विद्याभी तपस्याके विना साथहुए कुछ काम नहीं करसकती, विद्या ( ज्ञान ) तप यह दोनों मिलकर संसारके रोगकी औषधी है ॥

॥ ९ ॥ जिसभांति मीठेसे युक्त अन्न और अन्नसे युक्त मीठा, और जैसे दोनों पंखोंसेही आकाशमें पक्षियोंकी गति ( उडान ) है ॥ १० ॥ उसीभांति ज्ञान और कर्म इन दोनोंसेही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै, ज्ञान और तपसे युक्त और योगमें तत्पर हुआ ब्राह्मण ॥ ११ ॥ दोनों देहो ( स्थूल और सूक्ष्म ) को शीघ्र छोडकर बंधनसे छूटजाताहै, इसभांति जिसका देह नष्ट होगयाहै उसका नाश कभी नहीं होता ॥ १२ ॥

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥

संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मैंने वर्ण और आश्रमके भेद और उनका सनातन धर्म संक्षेपसे तुमसे कहा ॥ १३ ॥

श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥

प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वस्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥



स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले धर्मको इसप्रकार सुन्दर उन हारीतमुनिको नमस्कार करते सब मुनि प्रसन्न होकर अपने २ आभमको चलेगये ॥ १४ ॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥

अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

जो मनुष्य हारीतमुनिके कहेहुए धर्मशास्त्रको पढ़कर धर्मका आचरण करताई, वह मोक्षको प्राप्त होताई ॥ १५ ॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं चाहुजस्य च ॥ ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पादजस्य च ॥ १६ ॥ अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥ यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥ तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥ राजेंद्र वर्णाश्रित्वारभ्रित्वारभ्यापि चाभमा ॥ १८ ॥ स्वधर्मं येऽनुतिष्ठति ते याति परमां गतिम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको जो कर्म इसमें कहाई ॥ १६ ॥ उसके निश्चय बताने को करताई, वह जातिसे शीघ्रही पतित होजाताई, जो धर्म वर्णका कहाई वह उसी प्रकारका उस वर्णका है ॥ १७ ॥ इसकारण ब्राह्मण आप्तकाश्रमको छोड़कर अपने धर्मको करे, हे राजाओंके स्वामी ! धार वष और चारही आभम हैं ॥ १८ ॥ जो अपने धर्मको करतेई वह परम गतिको प्राप्त होतेई ।

स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥ न मुप्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदन ॥ अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमर्तद्वितः ॥ २० ॥ सहस्रानीक देवेश नरसिंहः स सालयम् ॥ २१ ॥

भगवान् नरसिंहदेव जिसप्रकारसे अपने धर्ममें स्थित मनुष्योंपर प्रसन्न होतेई ॥ १९ ॥ उसीभाँति अन्य कर्मसे प्रसन्न नहीं होते, इसकारण सर्वदा आश्रयरहित होकर समयपर कर्म करवाहुआ मनुष्य ॥ २० ॥ सहस्रों देवताओंके स्वामी समद्विर भगवान्को ॥ २१ ॥

उत्पन्नैरिन्द्रायसलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥ सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सर्वदा परब्रह्मको उत्तमरूप वैराग्यके बलसे क्रियावान् योगी जो ध्यान करताई वह देहको त्यागकर सत्य सुखरूप अनन्त विष्णुके पदको प्राप्त होताई ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे नागदीकार्यं सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता १

॥ श्रीः ॥

## औशनसी स्मृतिः ४.

भापाटीकासमेता ।



अथौशनसं धर्मशास्त्रम् ॥ उशना उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्ति-  
विधानकम् ॥ अनुलोमविधानं च प्रतिलोमविधि तथा ॥ १ ॥ सांतरालकसं-  
युक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते ॥

अब जाति और वृत्तिका विधान अनुलोम ( नीच जातिकी कन्यामें ऊँचे वर्णसे उत्पन्न )  
की विधि तथा प्रतिलोम ( ऊँचे वर्णकी कन्यामें नीच वर्णसे उत्पन्न ) की विधि कहताहूँ ॥  
॥ १ ॥ अतरालक ( जो इनके बीचमें उत्पन्न हुएहैं पुलिंदआदि ) उन करके सयुक्त सम्पूर्ण  
संक्षेपसे कहाजाताहै,

नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥ २ ॥ जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रति-  
लोमविधिर्द्विजः ॥ वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥ ३ ॥

क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें विवाह होनेपर जो उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥ वह सूत जाति  
कहानाहै, यह प्रतिलोमविधिका द्विज हीताहै, यह सूत वेदका अधिकारी नहीं होता; यह  
केवल उन वेदोंके वर्णोंका उपदेष्टा ( बतानेवाला ) होताहै ॥ ३ ॥

सूताद्विप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते ॥

नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥

सूतसे ब्राह्मणकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे वेणुक ( बाड ) कहतेहैं और क्षत्रीकी  
कन्यामें जो सूतसे पैदाहो उसे चमार कहतेहैं ॥ ४ ॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाञ्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ॥ वृत्तं च शूद्रवृत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषि-  
ध्यते ॥ ५ ॥ यानानां ये च वोढारस्तेषां च परिचारकाः ॥ शूद्रवृत्त्या तु जीवं-  
ति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें क्षत्रियसे चौर्यसे जो उत्पन्न हो उसे रथकार ( बढई ) कहते हैं इसका  
धर्म ब्राह्मणका धर्म नहीं होता है, जो यर्म शूद्रका है वही धर्म इसका होताहै ॥ ५ ॥ जो यान  
( सवारी ) के उठानेवाले हैं, अथवा जो उनके सेवक होकर शूद्रकी जीविकासे निर्वाह कर-  
तेहैं वहभी क्षत्रियके धर्मके आचरण न करें ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ॥ वैदित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां  
विशेषतः ॥ ७ ॥ प्रशंसावृत्तिको जीवैद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ॥

जो वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो उसे मागध ( भाट ) कहतेहैं, यह क्षत्री और ब्राह्मणोंका  
बंदी ( स्तुति करनेवाला ) होताहै ॥ ७ ॥ उसकी जीविका प्रशंसाही है या वैश्यका दास  
होकर रहे ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रससर्गात्मातश्चण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥ सीसमाभरणं तस्य काष्ण्यां  
यसमयापि वा ॥ बन्धी कठे समावद्धश्च शङ्खरी कस्तोपि वा ॥ ९ ॥ मल्लापक  
र्षणं ग्रामे पूर्वाह्ने परिशुद्धिकम् ॥ नापराह्ने प्रविष्टोपि वद्विर्ग्रामाच्च नैऋते ॥ १० ॥  
पिंडीभूता भवत्यत्र नो वेदप्या विशेषतः ॥

ब्राह्मणीसे उत्पन्नहुआ शूद्र चांबाल कहावादे ॥ ८ ॥ इसके आभूषण शीसे तथा ओहके  
होठेई, यह गलेमें बन्धी ( कमड़ेका पट्टा ) और कोखमें शालरी ( शान्कुटसिया ) बांधकर ।  
॥ ९ ॥ मध्याह्नकाखसे पहले गोबमें शुद्धिके लिय मल्लको चठावै और मध्याह्नके पीछे  
गोबमें प्रवेश न करे, परन्तु नैऋत दिशामें गोबसे बाहरही निवास करे ॥ १० ॥ और यह  
सब जने एकही स्थानपर रहें, और जो न रहें सो यह वचक बोध्य है,

चण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥

श्रमांसमक्षण तेषां श्वान एव च तद्वलम् ॥

चांबालसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहुआ श्वपच कहावादे ॥ ११ ॥ वह कुत्तेका मासही  
मक्षण करतेई और धनका बल कुत्ता ही है,

नृपायां वैश्यससर्गादायोगव इति स्मृतः ॥ १२ ॥ तंतुषाया भवत्येव यमुका  
स्योपजीविनः ॥ क्षीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न होवादे वह आयोगव ( जुसाहा वा कोरी ) कहावादे  
॥ १२ ॥ वह कुतकर और कांसीके व्यापारसे अपनी जीविका निर्वाह करे इन्हीमेंसे जो  
बख निर्माणकरने ( सूत रेशम आदिके कसीदे ) से जो जीविका करतेई, वह शीलक  
कहावे है ॥ १३ ॥

आयोगवेन विप्रयां जातास्ताश्चोपजीविनः ॥

आयोगवसे जा ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न हावेई वह आयोगजीवी ( ठठरे ) हावेई

तंस्तेषु नृपकन्यायां जातः स्निह उच्यते ॥ १४ ॥

और क्षत्रियकन्यामें आयोगवसे जो उत्पन्न हो वसे स्निह ( सोनी ) कहावेई ॥ १४ ॥

स्निहस्य नृपायां तु जाता उद्वेपकाः स्मृताः ॥

निर्णेजयेयुवस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवस्यत ॥ १५ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो स्निहसे उत्पन्न हो वसे उद्वेपक कहावेई, यह बकोंको हावेई और  
स्पर्श करने योग्य नहीं हावे ॥ १५ ॥

नृपायां वैश्यतश्चीयात्पुलिंदः परिकीर्तितः ॥

पशुशुक्तिर्भवेत्तस्य ह पुस्तान्पुष्टस्यकान् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणीसे जो वैश्यका क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह पुलिंद कहावेई, पुलिंद पुत्र  
जावैके मारसेबासे और पशुओंके मारकर मांसशुक्ति करते है ॥ १६ ॥

नृपायां शूद्रससर्गात्मातः पुन्यस उच्यते ॥ सुराशक्तिं समाकृत्य मनुषिकयकम्  
ण ॥ १७ ॥ कृतपानां सुराणां च विक्रता पाचको भवेत् ॥

शूद्रसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे पुलकस ( कलाल ) कहतेहैं, वह मद्यिसे जीविका करके मदिरा वा मीठा बेचते है ॥ १७ ॥ और यह मदिराको बनाताभी है और दर्ती बनाई मदिराकोभी बेचताहै,

पुलकसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥

इस पुलकससे वैश्यकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे रजक कहतेहैं ॥ १८ ॥

नृपायां शूद्रतश्चौर्याजातो रंजक उच्यते ॥

शूद्रद्वारा जारसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न होताहै उसे रंजक ( रगरेज ) कहतेहैं-

वैश्यायां रंजकाजातो नर्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥

वैश्यकी कन्यामें जो रजकसे उत्पन्नहो उसे नर्तक ( नट ) वा गायक ( कृत्यक ) कहतेहैं ॥ १९ ॥

वैश्यायां शूद्रसंसर्गाजातो वैदेहिकः स्मृतः ॥ अजानां पालनं कुर्यान्महिषीर्षीं गत्रामपि ॥ २० ॥ दधिकक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ॥

शूद्रसे जो वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहो उसे वैदेहिक ( गडारिया ) कहतेहैं, वह गाय, भैंस, बकरी इनको पाले ॥ २० ॥ और जीविका उसको दही, घी, मट्ठा, इनका बेचना है,

वैदेहिकान्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंमें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो वह चर्मोपजीवी होताहै, अर्थात् चाम बेचकर प्यारिष्ठा करताहै ॥ २१ ॥

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो उसे सूचिक ( दरजी ) अथवा पाचक ( रसोई बनानेवाला ) कहतेहैं,

वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याजातश्चक्री च उच्यते ॥ २२ ॥

तैलपिष्ट ऋजीवी तु लवणं भावयन्पुनः ॥

चोरीसे जो वैश्यकी कन्यामें शूद्रसे उत्पन्नहो, वह चक्री ( तेली ) कहाताहै ॥ २२ ॥ इसकी जीविका, तिल, खल, अथवा लवणसे है,

विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु सम्भ्रजकम् ॥ २३ ॥ जातः सुवर्ण इत्युक्तं सानुलोमद्विजः स्मृतः ॥ अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनौमित्तिकी क्रियाम् ॥ २४ ॥ अश्वं रथं हस्तिनं च वाहेयद्वा नृपाज्ञया ॥ सेनापत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवेच्च वृद्धिषु ॥ २५ ॥

जिस क्षत्रियकी कन्याका ब्राह्मणके साथ विधि विधान सहित विवाह हुआहै उस कन्यासे जो उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ उसे अनुलोम सुवर्णद्विज कहतेहैं, यह नित्य नैमित्तिक ( वस्त्र-कर्मादि ) क्रियाको करताहुआ ॥ २४ ॥ घोडा, रथ, हाथी इनको राजाकी आज्ञासे चला-वाह; और सेनापति बनकर अथवा औषधोंसे अपना निर्वाह करै ॥ २५ ॥

नृपायां विप्रतश्चौर्यात्सजातो यो भिषक्स्मृत ॥ अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपा  
त्येजु वैधकम् ॥ २६ ॥ आयुर्वेदमयाष्टो ग तत्रोक्तं धम्ममाचरेत् ॥ ज्योतिष  
गणितं चापि कार्याकीं वृद्धिमाचरेत् ॥ २७ ॥

हृदयिकी कन्यामें चोरीसे जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होता है वह भिषक कहलाता है वह राजाकी  
ब्याहारे वैधक करता है ॥ २६ ॥ यह अष्टांग आयुर्वेद अथवा तत्रोक्त धर्मोक्तों के और  
ज्योतिष अथवा गणितविद्यासे अपना निर्वाह करे ॥ २७ ॥

नृपायां विधिना विमाणातो नृप इति स्मृत ॥

हृदयिकी कन्यामें जो विधानपूर्वक ब्राह्मणसे उत्पन्न हो ( अर्थात् उसका विवाह यथाशक्य  
करके पश्चात् ) वह नृप होता है,

नृपायां नृपससर्गात्प्रमादाद्दृढजातकं ॥ २८ ॥ सोऽपि हृदयिक एव स्यादभिषेक  
श्च वर्जितः ॥ अभिषेक विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकं ॥ २९ ॥ सर्वं तु  
राजवृत्तस्य शस्यत पदवदनम् ॥ पुनश्चकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥

और इस राजास हृदयिकी कन्यामें प्रमादसे जो उत्पन्न हो, उसे गूढ कहते हैं ॥ २८ ॥  
और वहमी हृदयिक होता है परन्तु अभिषेक ( राजतिलक ) के योग्य नहीं होता, अभिषेककी  
अयोग्यतासे इसे गोज ( गोल ) कहते हैं ॥ २९ ॥ सब प्रकारस राजाके चरणोंकी चपला  
( समस्कार ) करनाही भेद है वह गोज राजाओंके पुनर्मुंकरणमें ( दूसरा विवाह करनेमें )  
राजाके समान है अर्थात् इसके गहरे राजा दूसरा विवाह करे ॥ ३० ॥

वैश्यायां विधिना विमाणातो वसुष्ठ उच्यते ॥ कुम्भ्याजीवी भवेत्सस्य तथैवामे-  
यवृत्तिकं ॥ ३१ ॥ ध्वजिनोजीविषा चापि भवत्ता शस्त्रजीविनः ॥

विधानसहित विवाहीद्वै वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होता है उसे वसुष्ठ कहते हैं,  
श्रेती अथवा व्याधव ( छहठी ) वही वसुष्ठी जीविषा है ॥ ३१ ॥ मंत्रियोंकी जीविषा सेन्य  
अथवा शस्त्रकी है,

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारं स उच्यते ॥ ३२ ॥ कुलाच्छ्रुत्या जीवित

और चोरीसे वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न हो उसे कुम्भकार कहते हैं ॥ ३२ ॥ इसकी  
जीविषा कुलाच्छ्रुति ( महीके पात्र पन्ननेसे ) होती है,

नापिता वा भवन्त्यतः ॥ सूतके प्रेतके चापि दीक्षाकालेऽप्य वापनम् ॥ ३३ ॥

नाभेक्ष्यं तु वपनं तस्मात्तापित उच्यते ॥ कायस्य इति जीवेषु विचरेच्च इत

स्ततः ॥ ३४ ॥ काकाद्धीत्य यमात्कीर्यं स्यपतेरयं कृतनम् ॥ आद्यक्षराणि

संगृह्य कायस्य इति कीर्तितः ॥ ३५ ॥

इयंसे नापित ( मर्दे ) उत्पन्न होते हैं जन्मसूत्रक अथवा मरणसूत्रकमें अथवा दीक्षा  
कालमें यह केशोंका छेदन करव है ॥ ३३ ॥ नामी ( दूरी ) के रूपक केशोंके  
काटनेसे उसे नापित कहते हैं और यह कायस्य नामसे इधर उधर विचरण  
करताहुआ जीविषा करता है ॥ ३४ ॥ काक ( कौम ) स पपछता, पमराजसे मृता,

स्थपति ( वढई ) से काटना इन तीनों अर्थके जतानेके लिये इन तीनों शब्दोंके पहले अक्षरको लेकर इसको कायस्थ कहाहै ॥ ३५ ॥

शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवो मतः ॥ भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयुः  
पूतकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥ शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथा मंडलवृत्तिभिः ॥

विधिसहित विवाहीहुई शूद्रकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै उसे पारवश ( पारधी ) कहतेहैं, यह भद्रक ( अच्छे ) पहाडो आदि पर रहकर जीविका करताहै और उसे पूतक कहातेहैं ॥ ३६ ॥ शिवादि आगम विद्या ( पचरात्र आदि ) ओंसे अथवा यह मंडलवृत्तिसे जीताहै, उसी जातिमें ( स्त्री पुरुष दोनों पारशव हों )

तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥ ३७ ॥

वने दुष्टमृगान्हत्वा जीवनं मांसविक्रयः ॥

उनके जो औरस पुत्र होताहै उसे निषाद कहतेहैं ॥ ३७ ॥ उसकी जीविका वनमें वनके दुष्ट मृगोंको मारकर उनके मांसका बेचना है,

नृपाज्जातोथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥

वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥

जो पुत्र विधिसहित विवाही हुई वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न होताहै, उसकी जीविका वैश्यकी वृत्तिसे है, और क्षत्रियके धर्मको वह न करै ॥ ३८ ॥

तस्यां तस्यैव चौर्येण मणिकारः प्रजायते ॥ मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां  
वेधनक्रियाम् ॥ ३९ ॥ प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् ॥

जो चोरीसे वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो वह मणिकार ( मीनाकार ) होताहै मणियोंका रगना वा मोतियोंका बीधनाही उसका काम है ॥ ३९ ॥ अथवा भूगोंकी माला या कड़े बनाताहै,

शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४० ॥

नृपस्य दंडधारः स्यादंडं दंडशेषु संचरेत् ॥

ब्राह्मणके संसर्गसे जो शूद्रके घर उत्पन्नहो उसे उग्र कहतेहैं ॥ ४० ॥ वह राजाका दंडधारी ( चोवदार ) होताहै और दंडके योग्योंको दंड देताहै,

तस्यैव चावसंवृत्त्या जातः शुंडिक उच्यते ॥ ४१ ॥

जातदुष्टान्समारोप्य शुंडाकर्मणि योजयेत् ॥

और जो चोरीसे ब्राह्मणसे शूद्रमें उत्पन्नहो वह शुंडिक ( करार ) कहाताहै ॥ ४१ ॥ उत्पन्न होतेही राजा दुष्टोंके ऊपर अधिपति बनाकर उस शुंडिकको शुंडाकर्म ( शूलीके देने ) में नियुक्त करै,

शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचिकः स्मृतः ॥ ४२ ॥

विधिसहित विवाही हुई शूद्रकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न हो उसे सूचिक ( दग्जी ) कहते हैं ॥ ४२ ॥

सूचिकादिप्रकन्यायां जातस्तस्यैक उच्यते ॥

शिल्पकर्माणि धान्यानि प्रासादलक्षण तथा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें सूचिकसे जो उत्पन्न हो वह तस्यैक ( बड़ई ) कहावाहै, शिल्पकर्म ( कारीगरी ) वा प्रासादलक्षण ( मकान बनानेका प्रकार ) कामको करताहै ॥ ४३ ॥

नृपायामेष तस्यैष जातो यो मत्स्यवंपथक ॥

सूचिकसे जो शत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह मत्स्यवंपथक ( धीवर ) कहावाहै,

शूद्रायां वैश्यतर्भोग्यां कटककार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥

जो चोरीसे शूद्रकी कन्यामें वैश्यसे उत्पन्न हो उसे कटककार कहातेहैं ॥ ४४ ॥

वशिष्टशापाभ्रेतायां केचित्पारशधास्तथा ॥ वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतेन

च ॥ ४५ ॥ वैदशास्त्रावलंघास्ते भविष्यति कलौ युगे ॥ कटककारास्ततः पश्चात्

त्रारायणगणा स्मृता ॥ ४६ ॥ शास्त्रा वैखानसेनोक्तास्तत्रमार्गविधिक्रिया ॥

निषेकाद्याः श्मशानार्ता क्रियाः पूजांगसूचिका ॥ ४७ ॥ पञ्चरात्रेण वा मार्त

प्रोक्तं धर्म समाचरेत् ॥

वशिष्टजीके शापसमी त्रेतायुगमें कोई एक पारश्व हूपसे, वे वैखानस ( हरिके गाने ) से अथवा परमेश्वरकी भक्तिसे ॥ ४५ ॥ वे शापघाटे पारश्व कसियुगमें वैदशास्त्रके जानने वाले होंगे, इसके उपरान्त वह कटककार नामके नारायणके गण कहावेंगे ॥ ४६ ॥ तंत्र मार्गकी विधिस जिनमें कर्म हैं वैखानस ऋषिये ऐसी शास्त्रा कहीहै और गर्भसे लेकर श्मशान तक १६ संस्कारसही इनके होतेहैं, इन्ही कारणसे यह सूचिक पृथक् ( अलग ) हैं ॥ ४७ ॥ ये नारदपांचरात्रमें कहेहुए धर्मको करें,

शूद्रादेव तु शूद्रायां जात शूद्र इति स्मृतः ॥ ४८ ॥ दिजशुभूषणपरः पाक

यज्ञपरान्वितः ॥ सञ्चूद त विजानीपादसञ्चूदस्ततोऽन्यथा ॥ ४९ ॥

शूद्रकी कन्यामें शूद्रसे शूद्रही होताहै ॥ ४८ ॥ जो शूद्र दिज ( ब्राह्मणजादि तीन ब्रह्म ) की

सेबामें पाकयज्ञ कर्ममें साधधान रहै, वह शूद्र उच्यते है, और जो न रहै उस शूद्रको असञ्चूद

( निम्नाके योग ) जानना ॥ ४९ ॥

वीपात्काकथञ्चो ज्ञेयश्चाश्वानां नृणवाहकः ॥ ५० ॥

शूद्रकी कन्यामें जो चोरीसे शूद्रसे उत्पन्न हो वह घोडोंकी पाठ जानेवाला वनवाहक

काकथन कहाताहै ॥ ५० ॥

पतसंसिपतः प्रोक्तः जातिपृथिविभागशः ॥

आत्यतराणि ह्यन्यते सशस्पादित एव तु ॥ ५१ ॥

शुशौशनस धर्मशास्त्र समाप्तम् ॥ ४ ॥

यह मैं भिन्न २ जाति और जातिशक्के अनुसार संक्षरसे क्या और जातिभी "ममंटी

मतक संक्षरस शीतरीहें ॥ ५१ ॥

इति श्रीशक्त्यै स्मृतिभाष्यटीका समाप्ता ॥ ४ ॥

श्रीशक्त्यै स्मृतिः समाप्ता ४

॥ श्रीः ॥

## आंगिरसस्मृतिः ५-

भापाटीकासमेता ।



श्रीगणेशाय नमः ॥ गृहाश्रमेष धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ॥ प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा  
अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥

महर्षि अंगिराजी चारों वर्णोंके गृहस्थ आश्रम आदि धर्मोंमें प्रायश्चित्तकी विधिको विचार-  
कर कहने लगे ॥ १ ॥

अंत्यानामपि सिद्धात्रं भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रं कृच्छ्रं तदर्धं तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥

चाडालके वनाये हुए सिद्ध अन्नको खाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमानुसार चां-  
द्रायण, कृच्छ्र, अथवा आवा कृच्छ्र करना चाहिये ॥ २ ॥

रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥

कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

रजक, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त, मेद, भील, यह सब जाति अंत्यज कही गई है ॥ ३ ॥

अंत्यजानां गृहे तोयं भांडे पर्युषितं च यत् ॥

यद्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण अंत्यजोंके घरका जल या उनके पात्रका वासी जल यदि अज्ञानसे पीले, तब  
शास्त्रमें कहेहुए प्रायश्चित्तको उसी समय करै ॥ ४ ॥

चण्डालकूपे भांडेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णं वर्णं वि-  
धीयते ॥ ५ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः

पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥

यदि अज्ञानसे चाडालके कुए अथवा पात्रका जल पीले, तब प्रत्येक वर्णके ( पीनेवालोंके  
बीचमें ) किस प्रकारका प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सांतपन करै, क्षत्रिय  
प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य करै, और शूद्र चौथाई प्राजापत्यको क्रमानुसार करै ॥ ६ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वंत्यजातिषु ॥

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानसे अत्यज जातिके यहांका जल पीले तब वह एकदिन उपवास करके  
दूसरे दिन पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ७ ॥

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ आचांत एव शुद्ध्येत अंगिरा मु-  
निरब्रवीत् ॥ ८ ॥ क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ पादं चापां न



कुर्वति दिनस्पाद्रेन शुद्धयति ॥ ९ ॥ धूपेन तु यदा स्पृष्टं शुना शुद्धेन,  
वा द्विज ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्धयति ॥ १० ॥ अनुच्छिद्येन  
सस्पृष्टं स्नानं येन विधीयते ॥ तेनैवोच्छिद्येन स्पृष्टं प्राजापत्य समाचरेत् ॥ ११ ॥

यदि प्राणायाम कदाचित् उच्छिद्य अवस्थामें अर्थात् भोजन करके विना आचमन किये  
प्राणायामको छोड़े तो आचमन करनेसे शुद्ध होताहै, यह अग्निपु मुनिका बचन है ॥ ८ ॥ जो  
कमी प्राणायामको उच्छिद्य अवस्थामें क्षत्रिय छोड़े तो स्नान और नप करनेसे व्याधेधिनमें शुद्ध  
होताहै ॥ ९ ॥ यदि प्राणायामको उच्छिद्य वैश्य, शूद्र, कुला यह छोड़े तो एकरात्रि उपवास  
करके पंचगव्यके पान करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ १० ॥ जिसके अनुच्छिद्यके स्वर्ण कर-  
नेसे ज्ञान कहाहै उसके उच्छिद्यको स्वर्ण करनेपर प्राजापत्य प्रत्यको करै ॥ ११ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्य धे विधिम् ॥ स्त्रीणां क्रीडार्थसभोगे क्षय  
नीये न वुष्यति ॥ १२ ॥ पालन विक्रमश्चैव तदस्या उपजीवनम् ॥ पतितस्तु  
भवेद्विप्रसिद्धिभिः कृच्छ्रैर्घ्न्यपोहति ॥ १३ ॥ स्नान दानं जपो होमः स्वाध्यायः  
पितृत्तर्पणम् ॥ स्पृष्ट्वा तस्य महापाप नीलीषस्त्रस्य धारणम् ॥ १४ ॥ नीली-  
रक्त यदा षस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति  
॥ १५ ॥ नीलीदारु यदा भिंघ्राद्वाह्नयो वै प्रमादतः ॥ शोणित इत्यते यत्र  
द्विजर्थाद्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥ नीलीवृक्षेण पक्वं तु अस्रमश्नाति चेद्विजः ॥  
आहारवमनं कृत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ १७ ॥ भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजा-  
तिस्त्वसमाहित ॥ त्रिषु वर्णेषु सामान्यं स्वाध्यायणमिति स्थितम् ॥ १८ ॥  
नीलीरक्तेन षस्त्रेण यदस्रमुपदीयते ॥ नोपतिष्ठति दातारं भोक्ताशुंके तु किल्बि-  
षम् ॥ १९ ॥ नीलीरक्तेन षस्त्रेण यस्याके अपित भवेत् ॥ तेन मुक्तेन विमार्णा  
दिनमेकमभोजनम् ॥ २० ॥ मृते भर्तारि या नारी नीलीषस्त्रं प्रधारयेत् ॥ भर्ता  
तु नरकं याति सा नारी सदनतरम् ॥ २१ ॥ नील्या चोपहृते क्षत्रे सस्यं यमु  
प्ररोहति ॥ अमोक्ष्य तद्विजातीनां मुक्ता स्वाध्यायणं चरेत् ॥ २२ ॥ वैश्वानरे  
पृपोरसर्गं यस्ते दाने तथैव च ॥ अत्र स्नानं न कर्तव्यं दृषिता च वसुंधरा ॥ २३ ॥  
घापिता यत्र नीली स्पात्ताषट्करशुचिर्भवेत् ॥ यावद्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं  
शुचिर्भवेत् ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त नीली ( नील ) के शौचकी विधि कहाहै; स्त्रीकी क्रीडाके छिये भोग  
करनेकी सम्पाप नीला षस्त्र दूषित नहींहै ॥ १२ ॥ जो प्राणायाम नीलको नैवताहै और  
जो नीलके व्यापारवालेसे अपनी कीदिका निवाह करताहै वह पापी होताहै, और तीन कु-  
च्छ्र करनेसे यह शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥ नीले अत्र धारणकर जो स्नान ध्यान, जप, होम,  
वेद्यान और पित्रोंको चर्पण करताहै, उसके छू सनेमें भी महापाप होताहै ॥ १४ ॥ यदि  
अज्ञानसे जो मनुष्य नील रंगे वस्त्रोंका पहनताहै वह एकरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे  
शुद्ध होताहै ॥ १५ ॥ प्राणायाम यदि प्रमादसे नीलक काठको भक्षण करै और उसमेंसे कथिरस

मानं उसका रस निकल आवै तौ वह चांद्रायण व्रतको करै ॥१६॥ जो ब्राह्मण नीलके वृक्षसे पकेहुए अन्नको खाताहै वह उस खायेहुए अन्नको वमन करके पंचगव्यके पानेसे शुद्ध होताहै ॥ ॥१७॥ यदि द्विजाति (तीनों वर्ण) असावधानी और अज्ञानसे नीलको खालें, तौ तीनों वर्णोंको चांद्रायण व्रत करना कर्तव्यहै ॥ १८ ॥ नीले रंगके वृक्षको पहरेहुए जो अन्न परोसताहै और उस परसे हुए अन्नको जो खाताहै उस अन्नदानका फल दाताको नहीं मिलता, और उस अन्नका भोजनकरनेवालाभी पापका भागी होताहै ॥ १९ ॥ नीले वृक्षको पहनकर जो पाक बनया जाताहै उसका भोजन करनेवाला ब्राह्मण एक दिन उपवास करै ॥ २० ॥ जो स्त्री पतिके मरजानेपर नीले वृक्षको पहरेतीहै, उसका पति नरकमें जाताहै, और फिर वह स्त्री भी नरकमें जातीहै ॥ २१ ॥ नील उत्पन्नहोनेके कारण जो खेत दूषित होगयाहो उसमें उत्पन्नहुआ अन्न द्विजातियोंके भक्षण करने योग्य नहीं, जो उस अन्नको खाताहै उदरे चांद्रायण व्रत करना उचित है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें नील उत्पन्न हुआहै उस देवद्रोणमें वृषोत्सर्ग, यज्ञ और दान कभी न करै स्नान भी न करै कारण कि ( नीलके प्रभावसे ) यह भूमि दूषित होगईहै ॥ २३ ॥ जिस खेतमें नील बोयागयाहै वह खेत बारह वर्षतक अशुद्ध रहताहै, इसके पीछे शुद्ध होताहै ॥ २४ ॥

भोजने चैव पाने च तथा चौषधभेषजैः ॥ एवं म्रियंते या गावः पादमेकं समाचरेत् ॥ २५ ॥ घंटाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपीड्यते ॥ चरेद्दूर्ध्वं व्रतं तेषां भूषणार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥ दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ॥ गवां प्रभवतां घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥ अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ॥ सपल्लवश्च साग्रश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥ दंडादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरंति गाम् ॥ द्विगुणं गोव्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥ शृंगभंगे त्वस्थिभंगे चर्मनिर्माणने तथा ॥ दशरात्रं चरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थो भवेत्तदा ॥ ३० ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं चोपजायते ॥ एतदेव हितं कृच्छ्रमित्थमंगिरसा स्मृतम् ॥ ३१ ॥ असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ॥ यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥ प्रायश्चित्ताद्धर्मर्हति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥ मूर्च्छिते पातिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ३४ ॥

यदि भोजन करानेसे या जल पिलानेसे तथा औषधी देनेसे गौ मरजाय तौ गौहत्याका चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ २५ ॥ जहा घंटा बाधनेके दोषसे गौ मरजाय वहाभी वही व्रत करै, यदि उनके भूषणके लिये घटा बाधाहो तब ॥ २६ ॥ सरलतासे गौ वशमें न होतीहो तौ उसे दमनकरने, रोकने और मारने पर गौओंके प्रवल आघातोंसे चौथाई व्रत करै ॥ २७ ॥ अंगुलपर जिसमें गाँठें हों और दो हाथका जिसका प्रमाण हो, पत्ते भी हों और अग्रभागभी हो उसे दंड कहतेहैं ॥ २८ ॥ यदि इस दंडसे अथवा और दंडसे गौको प्रहार करै अर्थात् मारै तौ दुगुने गोव्रत प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २९ ॥ यदि मारनेसे गायका सींग टूटजाय, खाल उघडजाय, हड्डी टूटजाय तौ दश रात्रितक कृच्छ्र व्रत करै;

जबतक उसके सींग आदि अच्छे हों ॥ ३० ॥ गोमूत्रसे मिछेहुए लौकाही छुप्य है, यह अगिराम्भयिका बचन है ॥ ३१ ॥ जो बालक असमर्थ हो उसके बड़े पिता अथवा शुभ जो प्रायश्चित्त करवे वह लड़का पापका मागी नहीं होता ॥ ३२ ॥ जिसकी अवस्था बस्ती बर्षकी हो, और जो बालक सोछ्छ वर्षकी अवस्थास कम हो, और जो स्त्री रोगी हो, वह आधे प्रायश्चित्तके अधिकाारी हैं ॥ ३३ ॥ छाठीके आपावसे गौको मूर्छा होमाय या वह गिर पड़े, तो वह आठ हजार गायत्रीका जपरूप प्रायश्चित्त करनेसे मुक्त होताहै ॥ ३४ ॥

जात्या रजस्वला चैव चतुर्थेऽह्नि विशुद्धयति ॥ कुर्याद्व्रजसि निर्वृत्तेऽनिर्वृत्ते न कथंचन ॥ ३५ ॥ रागेण यद्भ्रज\* स्त्रीणामत्यर्ष हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैफारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥ साध्याचारा न तावत्स्याद्भ्रजो यावत्प्रवर्तते ॥ वृत्ते रजासि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चोद्विये ॥ ३७ ॥ प्रथमेऽह्नि षण्ढाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽह्नि शुद्धयति ॥ ३८ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ॥ उपोष्य रजनीमेकां पचगम्येन शुद्धयति ॥ ३९ ॥ रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे मुक्त होतीहै, और वह रजोवर्द्धनकी निवृत्तिपरही स्नान करे, निवृत्तिके बिनाहुए स्नान न करे ॥ ३५ ॥ रोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त रज आताहै इससे वह अशुद्ध नहीं होती कारण कि वह रज स्वामा बिक नहीं है ॥ ३६ ॥ जबतक रज निकलताहै जबतक उत्तम आचरण ( पूजन पाठ आदिक ) न करे, और जब रज निवृत्त होमाय तब पुठपका संग और परका कामकाज करे ॥ ३७ ॥ रजोवर्द्धनके पहले दिन रजस्वला स्त्री बांढासी, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी ( घोबन ) होतीहै और चौथे दिन शुद्ध होतीहै ॥ ३८ ॥ यदि रजस्वला स्त्रीको कुण्ड वा शूद्र छूले तो वह एक रात्रितक उपवास करे भार पचगम्यको पीकर शुद्ध होती है ॥ ३९ ॥

द्राघेतावशुश्री स्यातां दंपती क्षयन गतौ ॥

क्षयनाशुश्रिता नारी शुश्रि\* स्यादशुश्रि पुमान् ॥ ४० ॥

जबतक स्त्री पुठप क्षयपापर क्षयनकरे जबतक दोनों अशुद्ध रहतहैं, इसके पीछे स्त्री को क्षयपासे बढतेही पवित्र हाजार्ताहै, परन्तु पुत्रप तथापि शुद्ध नहीं होता ॥ ४० ॥

गृहूप पादक्षीचं च न क्षुपारमस्यभाजन ॥

भस्मना शुद्धयते कांस्यं तास्रमम्लेन शुद्धयति ॥ ४१ ॥

कौन्तीके पात्रमें कभी कुत्ते न करे और पैरभी न धारे ( अब पात्रमुक्ति कहतहैं ) कौन्तीके पात्रकी शुद्धि मससे और लौहके पात्रकी शुद्धि खटारसे जाताहै ॥ ४१ ॥

रजसा शुद्धयते नारी नदी घगेन शुद्धयति ॥

भूमौ मि त्रिप्य पग्माममर्त्यतोपइतं शुश्रि ॥ ४२ ॥

\* पाण्ड्यामी आश्रितके परास अरुणः॥ बर्मका उपर्ये अठेरेच करते हैं अथवा उसके इत्य अथभाष्य अथे अस्युत्स होतीहै ।

खीकी शुद्धि रजोदर्शनसे होती है, नदी वेगसे शुद्ध होती है, अत्यन्त दूषित पात्रादि पृथ्वीमें छै महीनेतक रखनेसे शुद्ध होतें हैं ॥ ४२ ॥

गवात्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥

भस्मना दशभिः शुद्धयेत्काकेनोपहते तथा ॥ ४३ ॥

जिन काँसीके पात्रोंको गौने सूँवलिया हो, या जिनमें शूद्रने भोजन किया हो अथवा जिन्हें काकने स्पर्श करलिया हो उनकी शुद्धि दशदिनतक भस्मद्वारा साजनेसे होती है ॥ ४३ ॥

शौचं सौवर्णगोप्याणां वायुनाकैदुरश्मिभिः ॥

सुवर्ण और चादीके पात्र वायु और सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणोंके लगनेसेही शुद्ध होते हैं,

रजःरपृष्ठं श्वस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

अद्रिमृदा च यन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥

और जिस ऊनके वस्त्रमें खीका रज लगगया हो या जिससे मुरदेका स्पर्श होगया हो उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ ४४ ॥ ऊनके वस्त्रमें पूर्वोक्त अशुद्धता हुई हो तो उतनेही स्थानको मट्टी और जलसे धोवै तभी उसकी शुद्धि होती है,

शुष्कमन्नमाविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥ अन्न व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमा-

सेन शुद्ध्यति ॥ पयो दधि च मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥ तैलं संदत्स-

णैव को जीर्यति वा न वा ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणसे भिन्नके सूखे अन्नको खाकर सातदिनतक उपवास करै ॥ ४५ ॥ और व्यंजन-युक्त अन्नको खाकर एक पक्षतक उपवास करै और दूध दही खाकर एक महीनेतक उपवास करै और घीको खाकर छै महीनेतक उपवासकरने से शुद्ध होता है, मनुष्यके पेटमें तेल एक वर्ष में पचता है अथवा नहीं भी पचता ॥ ४६ ॥

यो भुंक्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा-

चाभिजायते ॥ ४७ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण च सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञाना-

गमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ४८ ॥ अप्रणामं गते शूद्रे स्वस्ति कुर्वति

ये द्विजाः ॥ शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैव च ॥ ४९ ॥

जो प्रतिदिन महीनेभरतक शूद्रके अन्नको खाता है; वह इसी जन्ममें शूद्र होजाता है, और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलती है ॥ ४७ ॥ शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल और शूद्रके संग एक आसनपर बैठना, शूद्रसे किसी विद्याका सीखना, यह प्रतापवान् मनुष्यकोभी पतित करदेना है ॥ ४८ ॥ शूद्रके विना प्रणाम किये हुए जो ब्राह्मण आशिर्वाद देते हैं वह ब्राह्मण और शूद्र दोनोंही नरकको जाते हैं ॥ ४९ ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥

पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

जन्मप्राणके सूतकसे ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होता है, क्षत्रिय चारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है ॥ ५० ॥

अभिहोत्री तु यो विभ' शूद्रान्न चैव भोजयेत् ॥

पच तस्य प्रणश्यंति चात्मा वेदास्त्रयोमय ॥ ५१ ॥

जो अभिहोत्री ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाताहै उसकी देह वेद और छीनों अग्नि यह पांचों नष्ट होजायेई ॥ ५१ ॥

शूत्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥

यस्यान्न तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवतते ॥ ५२ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाकर पुत्र उत्पन्न करताहै, वह पुत्र उत्तीके हैं जिसका वह अन्न था, कारण कि अन्नसेही बीजकी उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

शूदेण स्पृष्टमुच्छिष्ट प्रमादादथ पाणिना ॥

तद्विभ्यो न दातव्यमापस्तंबोऽश्वीन्मुनि' ॥ ५३ ॥

शूत्रने भिसे अपने हाथसे छुछियाहो वह उच्छिष्टको ब्राह्मणको न दे यह वचन आपस्तंब मुनिका है ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पशुसु ॥

वैश्येष्व्वापसु भुंजीत न शूद्रेपि कदाचन ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणका अन्न सर्वदा खानेके योग्य है, क्षत्रियके अन्नको पशु ( यहके ) समथमें खाके आपसिके आशानेपर वैश्यके अन्नको भोजन करै, परन्तु शूद्रके अन्नको कभी भोजन न करै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणांश्चे दरिद्रत्वं क्षत्रियांश्चे पशुस्तथा ॥ वैश्यान्नेन तु शूद्रत्व शूद्रान्ने नरक  
भुषम् ॥ ५५ ॥ अमृत ब्राह्मणस्यान्न क्षत्रियान्न पय' स्मृतम् ॥ वैश्यस्य घग्न्नेमे  
वास शूद्रान्नं रुधिर भुषम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मणके अन्नको भोजन करनेबाधा परित्री क्षत्रियके अन्नका भोजन करनेबाध्य पशु होताहै, और जो वैश्यके अन्नको खाताहै वह शूद्र होताहै और शूद्रके अन्नको खानेबाधा निम्नपदी नरकको खाताहै ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृतस्वरूप है, क्षत्रियका अन्न रूपकी सम्मान है, वैश्यका अन्न केवल अन्नही मात्र है; और शूद्रका अन्न निम्नपदी रुधिर है ॥ ५६ ॥

बुष्कृत हि मनुष्याणामन्नमाभिस्य तिष्ठति ॥

यो यस्यान्न समन्नाति स तस्यान्नाति क्लिष्विपम् ॥ ५७ ॥

मनुष्य जो पाप करताहै वह अन्नमें रहताहै इसकारण जो जिसका अन्न भोजन करताहै वह उसके पापका भोजन करताहै ॥ ५७ ॥

सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेंद्रिय' ॥ पिबेत्यानीयमद्धानाम्भुके भक्तमया-  
पि वा ॥ ५८ ॥ उद्यार्याषम्य उदकमवतीर्य उपसृशेत् ॥ एवं हि स मुषा-  
चारो वारुणेनाभिमत्रित' ॥ ५९ ॥

यदि जितेंद्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण अन्नपानसे सूतकेमें गळ पीछे जयवा मात खाके ॥ ५८ ॥ तो वमन करके आचमन करै, और भस्मीभाषिके वरुणके मन्त्रोंके पठेहुए गळसे सरीरको छिड़के ॥ ५९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ आचरेज्जपकाले च पादुकानां विस-  
र्जनम् ॥ ६० ॥ पादुकासनमारूढो गेहांत्पंचगृहं व्रजेत् ॥ छेदयेत्तस्य पादौ  
तु धार्मिकः पृथिवीगतिः ॥ ६१ ॥ अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥  
एते वै पादुकैर्याति शेषान्दंडेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥

अग्निहोत्रशाला, गोशाला, देव और ब्राह्मणोंके निकट जपके समयमें खडाऊंओंको त्यागदे  
॥ ६० ॥ जो मनुष्य खडाऊओ पर चढकर अपने घरसे पांचघरतक भी जाय तौ राजाको  
उचित है कि उसके पैरोंको कटवाडालै ॥ ६१ ॥ कारण कि अग्निहोत्री, तपस्वी, श्रोत्रिय  
( वेदोक्त कर्मोंका करनेवाला ) और वेदका पार जाननेवाला यही खडाऊंपर चढकर चल-  
नेके अधिकारी हैं, और पुरुष राजाके ताडन करने योग्यहै ॥ ६२ ॥

जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडाते भोजने नवे ॥

असपिंडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥

जन्मआदि संस्कारमें, चूडाकर्ममें, अन्नप्राशनमें अपने असपिंडके घर भोजन न करै, और  
चूडाकर्ममें तौ कदापि न करै ॥ ६३ ॥

याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ।

नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ६४ ॥

भिक्षुकका अन्न, नवश्राद्ध ( जो मरनेके ग्यारहवें दिन होताहै ) सूतकका अन्न, और  
स्त्रीके पहले गर्भाधानमें अन्नका खानेवाला चांद्रायणव्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ ६४ ॥

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥

तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीर्यते ॥ ६५ ॥

जो कन्या एकको देकर फिर दूसरेको दी गई हो उसका अन्नभी भोजन करना उचित  
नहीं, कारण कि यह कन्या पुनर्भू नामसे पुकारी गईहै ॥ ६५ ॥

पूर्वस्य श्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥ द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धि-  
र्विधीयते ॥ ६६ ॥ राजाद्यैर्दशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठति शुर्विणी ॥ तावद्रक्षा विधात-  
व्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥

यदि किसी स्त्रीको अन्यसे गर्भ रह गयाहै ऐसा सुनाजाय तौ उस गर्भके संस्कार नहीं करै  
और फिर दूसरे गर्भाधानके समय में संस्कार करनेसे उस स्त्रीकी शुद्धि होती है ॥ ६६ ॥  
इतने वह स्त्री गर्भवती रहै तबतक उस स्त्रीकी शुद्धि नहीं इसवास्ते उसके हाथ दैविककार्यका  
उपयोग नहीं ले परन्तु पुनः वह अपने पतिसे गर्भिणी होके उसके गर्भसंस्कार किये जाय  
तबतक उसकी रक्षा करनी फिर अन्य गर्भ होताहै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ ६७ ॥

भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥

तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥

जो स्त्री पतिकी आज्ञा उल्लंघन करके वतीव करतीहै उसके यहांका अन्नभी भोजन करना  
उचित नहीं, और उस स्त्रीको कामचारिणी जानना ॥ ६८ ॥

अनपत्या तु या नारी नाशनीयात्तद्वृद्धेऽपि धे ॥

अथ भुक्तिं तु यो मोहात्पर्यं स नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥

जो स्त्री बॉस हो उसके पढ़ांमी भोजन करना उचित नहीं, यदि कोई उसके पढ़ां 'मोहसे भोजन करछेताहै वह पूय ( राभके ) नरकमें जाताहै ॥ ६९ ॥

स्त्रिया घनं तु ये मोहाद्बुधजीवति मानवा\* ॥

स्त्रिया यानानि घासांसि ते पापा यात्यधोगतिम् ॥ ७० ॥

जो मनुष्य मोहितहो स्त्रीके घनको भोगतेहै, और स्त्रीकी सवारी या जो उसके बलोंको बर्तेहै वह पापी अधोगतिको प्राप्त होतेहै ॥ ७० ॥

राजासं हरते तेज\* शूद्रासं ब्रह्मवर्चसम् ॥

सूतकेषु च यो भुक्तिं स भुक्तिं पृथिवीमलम् ॥ ७१ ॥

इत्यगिच्छन्प्रीतिं धर्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

राजाका भज तेजको हरण करताहै, और शूद्रका भज ब्रह्मवर्चको हरताहै, और जो सूत कमें साताहै, वह पृथ्वीके मलको मक्षण करताहै ॥ ७१ ॥

इति भांगोरसस्मृतिभाष्यटीका समाप्ता ॥ ५ ॥

इत्याङ्गिरसस्मृति\* समाप्ता ॥ ५ ॥



श्रीः ।

## यमस्मृतिः ६.

भाषाटीकासमेताः ।



श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ॥

प्राब्रवीद्दक्षिभिः पृष्ठो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥

चारों वर्णोंके श्रुति और स्मृतिमें कहेहुए धर्मको ऋषियोंके पृछनेसे मुनियोंमें मुख्य यमने क्रमसे कहा ॥ १ ॥

यो भुंजानोऽशुचिर्वापि चंडालं पतितं स्पृशेत् ॥ क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य  
वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ २ ॥ षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ॥  
स्नात्वा त्रिषवणं विप्रः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

जो भोजनके समय अथवा उच्छिष्ट अवस्थामें चांडाल पतितको क्रोध अथवा अज्ञानसे छू ले उसका प्रायश्चित्त कहताहूं ॥ २ ॥ तीनरात्रि या छैरात्रि क्रमसे प्रायश्चित्त करै, त्रिकाल स्नानकरके पंचगव्यके पीनेसे ब्राह्मण शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥ उच्छिष्टत्वे शुचित्वे च तस्य शौचं  
विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ पूर्वं कृत्वा द्विजैः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रो  
षितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाद्दुतिम् ॥ ५ ॥ निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने  
कृते ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाद्दुतिम् ॥ ६ ॥ यदा भोजनकाले  
स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित् ॥ भूमौ निधाय तद्भासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्  
॥ ७ ॥ भक्षयित्वा तु तद्भासमुपवासेन शुद्ध्यति ॥ अशित्वा चैव तत्सर्वं  
त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥

भोजनके समय यदि ब्राह्मणको कभी अघोवायुके साथ मलत्याग होजाय तौ उच्छिष्ट और अशुद्धिके निवारणके निमित्त शौच ( शुद्धि ) करै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण पहले शौच करके पीछे जलसे आचमन करै, इसके पीछे अहोरात्र उपवास करै फिर पंचगव्यके पीनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥ भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करते समयमें यदि मूत्रत्याग होजाय तौ अहोरात्रि उपवास करके घीकी आहुतिसे होमकरै ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण भोजन करते हुए में अशुद्ध होजाय तौ उस ग्रासको उसी समय पृथ्वीपर रखदे फिर स्नान करै तब शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ यदि उस ग्रासको भी खालियाहो तौ उसकी शुद्धि एक उपवास करनेसे होतीहै, और जिसने सम्पूर्ण अन्न खालियाहो वह तीन रात्रितक अशुद्ध रहताहै ॥ ८ ॥

अश्नतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ॥

स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥ ९ ॥



भोजन करते समयमें यदि बमन होजाय तो अस्वस्थ (रोगी आदि) तो धीन तो गायत्री का अपकरी, और निरोगी मनुष्य धीनहजार गायत्रीका अप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥

घटाले श्वपचे स्पृष्टो विष्मृये च कृते द्विज ॥

त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टं पढाचरेत् ॥ १० ॥

विष्णामूत्रकरके पीछे ओ पांडाल अथवा श्वप द्विजका स्पर्श करके तो धीन रात्रिबक उपवास करनेसे और उनको छूनेके पीछे वैसेही भोजनभी करते तो छे रात्रि उपवास कर मेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

उदकया सूतिका वापि सस्युशेदंत्यजो यदि ॥

त्रिरात्रेण विशुद्धिं स्यादिति शातातपोध्रवीत् ॥ ११ ॥

यदि अस्वज रजस्वला अथवा सूतिका कीको छूके तो उसकी शुद्धि धीन रात्रिमें होती है, यह वचन शातातप अपिका है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु सस्पृष्टा श्वमातगादिवापये ॥ निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्कालज्ञानेन

शुद्धयति ॥ १२ ॥ रजस्वले यदा नायावन्योन्यं स्पृशत कश्चित् ॥ शुद्धयत

पचगम्येन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ॥ १३ ॥ उच्छिष्टेन च सस्पृष्टा कदाचित्की

रजस्वला ॥ कृच्छ्रेण शुद्धिमाप्नोति शूद्रा दिनापवासात् ॥ १४ ॥

कुशा, हाथी, काक, यदि रजस्वला की को छूके तो वह की उस समय अशुद्ध अवस्थामें भोजन न करे, और चौबोदिन स्नान करे तब शुद्ध होतीहै ॥ १२ ॥ यदि परस्परमें दो रजस्वला की छूजंय तो वह पचगम्यका पान करे और ब्रह्मकूर्च ( कुशाभोके मोटक ) से अपने क्षीरपर पचगम्यको छिड़के तब वह शुद्ध हातीहै ॥ १३ ॥ यदि किसी समय उच्छिष्टपुखप रजस्वलाको छूके तो ब्राह्मणकी की कृष्ण करे तब शुद्ध हातीहै और शूद्रकी कीकी शुद्धि धीन और उपवास करनेसे होतीहै ॥ १४ ॥

अनुच्छिष्टेन सस्पृष्टे ज्ञान येन विधीयते ॥

तेनैवोच्छिष्टसस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५ ॥

जिस अनुच्छिष्टके स्पर्श करनेसे ज्ञान करना कहाहै यदि वही उच्छिष्ट स्पर्शकरके तो प्राजापत्यका प्रापश्चित्त करना कहाहै ॥ १५ ॥

श्रुतौ तु गर्भं शक्तित्वा ज्ञानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥

अनृती तु स्त्रियं गत्वा शौचं सूत्रपुरीषवत् ॥ १६ ॥

श्रुतके समयमें जो मैथुन गर्भकी इच्छासे कहाहै, उस समय ज्ञान करना कर्तव्य है और अनृतेके अतिरिक्त समयमें कीका उत्सर्ग करनेसे मन्त्रमूत्रके समान शौच करना पडताहै ॥ १६ ॥

उभावाप्यशुची स्यातां श्वपती क्षयने गती ॥

क्षयनाहुत्पिता नारी शुचि स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७ ॥

श्वपक की पुरुष दोनोंकने एकशाम्पापर क्षयन करते हैं श्वपक दोनों अशुद्ध हैं और क्षयनासे क्षयणसे तब की शुद्ध और पुरुष अशुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ॥

दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥

दुष्टभावसे जो स्त्री अपने पतिके शरीरकी सेवा नहीं करे उस स्त्रीको चारहवर्षतक दंड करे अर्थात् उसके साथ चारहवर्षतक व्यवहार नहीं करे और उसके पास धन अलंकार कुछभी नहीं रखे ॥ १८ ॥

त्यजंतोऽपतितान्वंघ्रन्दंभ्या उत्तमसाहसम् ॥

पिता हि पतितः कामं न तु आता कदाचन ॥ १९ ॥

जो पातित्यदोषहीन बाधवको त्याग देतेहैं उनको राजा उत्तम साहस अत्यन्त दंड दे और जो पिता पतित होजाय तो उसे भले त्याग दे, परन्तु माताका कभी त्याग न करे यह त्यागने योग्य नहीं है ॥ १९ ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वाऽऽदिभिरुपक्रमैः ॥ मृतोऽभेद्येन लेप्तव्यो जीवतो  
द्विशतं दमः ॥ २० ॥ दंड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥ प्राय-  
श्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥ २१ ॥

जो मनुष्य रस्सीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे आत्महत्या करे तो उसे गोवरसे लीपदे, और जो वह वचजाय तो उसे दोसौ रुपये दंड कहाहै ॥ २० ॥ और एक पणिक ( सुद्राका ) दंड उसके पुत्रमित्रोंको भी कहाहै, इसके पीछे वह सब जने शास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करे ॥ २१ ॥

जलाद्युद्धं धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ॥ विषप्रपतनं प्रायः शस्त्रघातहताश्च  
ये ॥ २२ ॥ न चैत प्रत्यवसिताः सर्वलोकावहिष्कृताः ॥ चांद्रायणेन शुद्धयन्ति  
तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥ उभयावसितः पापः श्यामाच्छवलकाच्छ्युतः ॥  
चांद्रायणाभ्यां शुद्धयेत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥ २४ ॥

जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें डूबकर वचगयेहैं, या जो फाँसी खाकर वचगये हैं और जो मनुष्य संन्यास धर्मको नाश करनेवाले और जिन्होंने उसे त्यागदियाहै और जो विष भक्षण करके या ऊँचेपरसे गिरकर तथा जो शस्त्रके लगनेसे मरगयेहैं ॥ २२ ॥ उपरोक्त पापियोंके घरमें भोजन करनेवाला पापी वा वासकरनेवाला अघवान् मनुष्य उभयावसित कहाताहै उसको श्याम वा शवल ( कवरे ) रंगका बैल न मिले तो वह दो चांद्रायण व्रत करे, अथवा एक बछड़ेसहित गौका दान करनेसे शुद्ध होसक्ता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

श्वशृगालप्लवंगाद्यैर्मानुषैश्च रति विना ॥

दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु ॥ २५ ॥

कुत्ता, सियार, वानर, यदि मनुष्योंको विना क्रीडाके क्रिये ही काटरखाँय तो दिनमें संध्याकरने और रात्रिमें शीघ्र स्नानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

अज्ञानाद्ग्राहणो भुक्त्वा चंडालान्नं कदाचन ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥

यदि ब्राह्मण ब्रह्मन्वासे चांबालके यहाँ के ब्रह्मका भोजन करके चौ पत्रह दिनतक गोमूत्र और चौको ज्ञानसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २६ ॥

गोब्राह्मणहन दग्ध्या मृत चोद्धन्धनादिना ॥

पाशं छिन्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेक चरेद्भिज्ज ॥ २७ ॥

जिसने गौका बध कियाहो अथवा ब्राह्मणका बध कियाहो, और जिसने फँसी लगाकर प्राणत्यागो हो उसको जो ब्राह्मण फूँके अथवा उसकी फँसीको काटे तो वह ब्राह्मण एक कृच्छ्र करनेसे छुद्र होजाई ॥ २७ ॥

चंडालपुल्कसानां च मुक्ता गत्वा च योषितम् ॥

कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानार्दिदवद्वयम् ॥ २८ ॥

चांडाल और पुल्कस ( चांडालका भेद ) के यहाँ जानकर ज्ञानेवालय तथा इनकी क्षिप्रोंका संग करनेबाछा मनुष्य एक वर्षतक कृच्छ्र करे और ज्ञानकर उपरोक्त पातकोंका करनेबाछा हो इन्दुकृच्छ्र करे ॥ २८ ॥

कापालिकासभोक्तृणां तन्नारीगामिनां तथा ॥

कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानार्दिदवद्वयम् ॥ २९ ॥

जानकर कापालिक ( जापर छेकर मांगनेवाले ) के यहाँ जिसने ब्रह्म ज्ञायाई अथवा जिसने उनकी क्षिप्रोंके संग मोग कियाई वह एक वर्षतक कृच्छ्र करे, और ब्रह्मज्ञानसे करनेबाछा हो इन्दुकृच्छ्र करे ॥ २९ ॥

अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणो ॥

तसकृच्छ्रपरिशितो मौर्वीहोमेन शुद्धपति ॥ ३० ॥

जो भी गमनकरने योग्य नहीं है उसके साथ गमन करनेबाछा, और मदिरा और गोमांस का भक्षण करनेबाछा ब्राह्मण तसकृच्छ्र करके मौर्वी ( सूत्र ) के होमसे शुद्ध होताई ॥ ३० ॥

महापातककर्तारश्चत्वारोम विशेषतः ॥

आग्निं प्रविश्य शुद्धर्षति स्थित्वा वा महति क्रतौ ॥ ३१ ॥

चारों महापातक करनेवाले विशेषकरके तो अग्निमें प्रवेश करके अथवा बड़े यज्ञ ( अश्वमेध्यादि ) में टिकनेसे शुद्ध होतेई ॥ ३१ ॥

रहस्यकरणेऽप्येष मासमभ्यस्य पूरुषः ॥

अधमर्षणसुक्तं वा शुद्धघर्दंतजलि स्थितः ॥ ३२ ॥

इस भाँतिके छिपकर (ग्राम) पातक करनेबाछा मनुष्य अधमर्षण (जलत वा सत्यम् इत्यादि) सूक्तका एक महीने भरतक जलमें बैठकर जपकरनेसे शुद्ध होताई ॥ ३२ ॥

रजकश्मर्कश्चैव नटा घुरुह एष च ॥ फेदधर्मदभिल्लाष सर्वेते अभयना स्मृ

ता ॥ ३३ ॥ सुक्त्या चिपां क्षिप्यां गत्वा पीत्वाऽपि प्रतिगह्य च ॥ कृच्छ्राब्दमा

चरेज्ज्ञानादज्ञानार्दिदवद्वयम् ॥ ३४ ॥

घोषी, चमार मट, फेदधर्म, घुरुह, मेघ भीछ इन सारोंको अत्यन्त कड़ाई ॥ ३३ ॥ जानकर इनके यहाँ भाजन करनेबाछा, इनकी क्षिप्रोंमें गमन करनेबाछा, इनके परका लठ पीनेबाछा

इनका दान लेनेवाला पुरुष १ वर्षतक कृच्छ्र व्रत करे । और अज्ञानसे करनेवाला दो इन्दु-कृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥

मातरं गुरुपत्नी च स्वमृदुहितरं क्षुषाम् ॥

गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य माता, गुरुकी स्त्री, भगिनी, लडकी, पुत्रवधू, इनमे गमन करता है, वह अग्निमें प्रवेश करनेसे ( मरजानेसे ) शुद्ध होता है और किसी भांति उसकी शुद्धि नहीं है ॥ ३५ ॥

राज्ञी प्रव्रजितां धार्त्रां तथा वर्णोत्तमामपि ॥

कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य रानी, संन्यासिनी, धाय और उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ गमन करता है तथा अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ रमण करता है वह दो कृच्छ्र करे ॥ ३६ ॥

अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ॥

परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

इतर जो सव माता और पिता के गोत्रकी स्त्री हैं इन सबके साथ गमन करनेवाला सांतपन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३७ ॥

वेश्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजातयः ॥ पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंचरात्रं कु-  
शोदकम् ॥ ३८ ॥ गुरुतरुपव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ गोघ्नस्य केचिदि-  
च्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥ ३९ ॥

जिसने वेश्याके साथ गमन किया है उस पापको तीनों द्विजाति अत्यंत तपेहुए कुशाके जलको पांचरात्रितक प्रतिदिन एकवार पीकर दूर करसक्ते हैं ॥ ३८ ॥ कोई ऋषी गुरुकी शय्यामें गमन करनेके व्रतकी कोई ब्रह्महत्याके व्रतकी कोई गोहत्याके, प्रायश्चित्तकी और कोई अवकीर्णी ( अर्थात् ब्रह्मचर्यसे पतित हो उस ) के प्रायश्चित्त करनेकी आज्ञा देते हैं । अर्थात् वेश्यागामी पुरुष इनमेंसे कोई प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होसक्ता है ॥ ३९ ॥

दंडादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥ द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं वि-  
निर्दिशेत् ॥ ४० ॥ अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ॥ सार्द्धं च सपलाश  
श्च गोदंडः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥ गवां निपातने चैव गर्भोपि संपतेद्यदि ॥  
एकैकशश्वरेत्कृच्छ्रं यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ ४२ ॥ पादमुपव्रतमात्रे तु द्वौ पादौ गा-  
त्रसंभवे ॥ पादोनं कृच्छ्रमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥ अंगप्रत्यंगसंपू-  
र्णं गर्भं रेतःसमन्विते ॥ एकैकशश्वरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥

गोदंडसे ऊंचे अर्थात् उपरसे कठिन आघातसे जो गायको मारे उसे गौहत्याका दुगुना प्रायश्चित्त कहा है ॥ ४० ॥ गोदंड उसे कहते हैं अंगूठेके समान मोटा और जिसमें पत्तेलगे हैं गीला हो और दो हाथका जिसका प्रमाण हो ॥ ४१ ॥ जो गौओंके मारनेसे गर्भ गिर-जाय तौ तीनों द्विजाति क्रमसे एक २ कृच्छ्र करे ॥ ४२ ॥ यदि गर्भ रहनेपरही गर्भ गिरजाय तौ चौथाई कृच्छ्र करे, और जो गर्भके अंग प्रत्यंगके वनजानेपर गर्भ गिरजाय

तो भाषा कृच्छ्र करै, और अश्वतम गर्भका पाप होजाम तो पौन कृच्छ्र करै ॥ ४६ ॥ अंग प्रत्यंगसे पूरे और बीर्यसमेव गर्भपात होजानेसे तीनों वर्षोंको एक कृच्छ्र करना शिष्ट है यह प्रायश्चित्त गोहृत्पातोंका है ॥ ४४ ॥

बंधने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ॥

सपद्यते धेन्मरणं निमिती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥

यदि बांधनेसे, रोधने और पोषणकरनेसे रुग्ण होकर गौ मरजाय तो बांधनेबांधनेको पाप नहीं छगता ॥ ४५ ॥

मूर्च्छित पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ॥ उत्थाय पदपदं गच्छत्सप्त पञ्च द  
शापि वा ॥ ४६ ॥ ग्रासं वा यदि गृहीयाद्योय वापि पिवेद्यदि ॥ पूर्वम्याधि  
मनष्टानां प्रायश्चित्त न विद्यते ॥ ४७ ॥

यदि दंडके आघात छानेस जिस गौको मूर्छा आगई हो या गिर पड़ी हो, और फिर वह गौ वा बैल उठकर छै सास, पांश, अथवा वश कर्म बलहे और पास आधिक लाकर बाल पीछे पीछे से मरजाय तो पूर्व व्याधिसे मरेहुए उस बैल या गौका प्रायश्चित्त मनुष्य को नहीं कहाई ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गोषा शस्त्रैवा निहता यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे  
निगद्यते ॥ ४८ ॥ काष्ठे सातपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ तप्तकृच्छ्रं तु  
पापाणे शस्त्र चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥

( मन्त्र- ) सकडी, डला, पत्थर और शस्त्रसे यदि गौको मारहाले तो वहाँ प्रत्येकके प्रति किसप्रकार प्रायश्चित्त करना कहा है ॥ ४८ ॥ ( उत्तर- ) सकडीसे मारनेवाला पुष्टय सातपन करै, डलस मारनेवाला प्राजापत्य करै पत्थरसे मारनेवाला तप्तकृच्छ्र करै और शस्त्रसे मारनेवाला अतिकृच्छ्र करै ॥ ४९ ॥

औषधं ज्ञेहमाहारं दद्यात्प्रोष्णाक्षणेपु च ॥ दीपमाने विपत्तिं स्यात्प्रायश्चित्तं न  
विद्यते ॥ ५० ॥ तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥ निःशान्तकरणे धैव  
प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥

यदि गा और प्राणियोंको औषध, जेह ( पी आदिके ) पिछासे समयमें वा भोजन करावे समयमें यदि विपत्ति ( मरण वा कष्ट ) होजाय तो उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५० ॥ तैल पिछासे अथवा औषधी पिछानेके समयमें और कटाआदि निःशान्तके समयमें यदि गौको कष्ट दाजाय तो उसका भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५१ ॥

पत्सानां कंठप्रथं च क्रियया भेषजेन तु ॥

सार्धं संगोपनार्थं च न दोषो राषमपयो ॥ ५२ ॥

यदि बटुटका गला बांधनेको या औषधीक देनेके अथवा रक्षाक छिपे संघाको रोकत और बांधत समयमें मरजाय तो बांधनेवाला पापका भागी नहीं है ॥ ५२ ॥

पादे घ्न्यात्प रोमाणि टिपाद् इमंशु फेपलम् ॥

त्रिपाद् तु शिगायर्जं मूत्रे सार्धं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

चौथाई कृच्छ्रमें रोमोका मुंडन, अर्द्धकृच्छ्रमें दाढीका मुंडन, पौनकृच्छ्रमें चोटीके अतिरिक्त समस्त शिरका मुंडन और पूर्ण कृच्छ्रमें चोटीसहित सब केशोका मुंडन पुरुषको कराना उचित है ॥ ५३ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ एवमेव तु नारीणां मंडमुंडायनं स्मृतम् ॥ ५४ ॥ न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥ न च गोष्ठे निवासोस्ति न गच्छंतोमनुव्रजेत् ॥ ५५ ॥

स्त्रियोंका मुंड मुंडवाना यही कहना है कि, उनके सब बालोको ऊपरको उभारकर दो अंगुल काटदे ॥ ५४ ॥ स्त्रियोंका मुंडन और वीरासनसे बैठना कर्तव्य नहीं और गौशालामेभी बैठना उचित नहीं चलती हुई गौके पीछे स्त्रीको चलना उचित नहीं ॥ ५५ ॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥

अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६ ॥

राजा अथवा राजाका पुत्र या जिसने बहुत शास्त्र पढेहो वह ब्राह्मण इनका मुंडन न घटाकर केवल प्रायश्चित्त बतादे ॥ ५६ ॥

केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥ द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥ द्विगुणं चेन्न दत्तं हि केशांश्च परिरक्षयेत् ॥ पापं न क्षीयते हंतुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥

बालोंकी रक्षाके निमित्त दुगुना व्रत करावे और दुगुनाव्रत करनेपर दूनीही दक्षिणा दे ॥ ५७ ॥ यदि दूनी दक्षिणाके विनाश्रिये केशोंकी रक्षा करे तो मारनेवालेका पाप दूर नहीं होता और प्रायश्चित्तका दाता नरकमें जाताहै ॥ ५८ ॥

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥ तान्धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दंडेन पीडयेत् ॥ ५९ ॥ न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथांचित्काममोहितः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥

जो प्रायश्चित्त वेद और धर्मशास्त्रमें नहीं कहाहै यदि उस प्रायश्चित्तको जो पुरुष बतावै तो उस धर्ममें विघ्न करनेवाले पुरुषको राजा दंडसे पीडित करै ॥ ५९ ॥ यदि मोहके वश होकर राजा अपनी इच्छासे उसको पीडा न दे, तो उस राजाको सौगुना पाप लगताहै ॥ ६० ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

विशति गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥

फिर राजा प्रायश्चित्त करके बीस ब्राह्मणोंको जिमावै, और उन ब्राह्मणोंको बीस गाय और एक बैल दक्षिणामें दे ॥ ६१ ॥

कृमिभिर्व्रणसंभूतैर्मक्षिकाभिश्च पालितैः ॥ कृच्छ्राद्धं संप्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ सुवर्णमाषकं दद्यात्ततः शुद्धिचिंधीयते ॥ ६३ ॥

यदि किसी मनुष्यके शरीरमें मक्खी बैठनेके कारण घावमें कीड़े पडजाय तो अर्द्ध कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाभी दे ॥ ६२ ॥

प्रायश्चित्त कर ब्राह्मणोंको जिनमाय एक मासा मुक्कण देनेसे मुक्ति होतीहै ॥ ६३ ॥

चण्डालशपचैः स्यूष्टे निशि ज्ञान विधीयते ॥ न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः ज्ञानिनः  
शुद्धयति ॥ ६४ ॥ अथ वसेद्यदा रात्रौ अज्ञानादविषक्षण ॥ तदा तस्य तु  
तत्प्रायः शतधा परिषर्त्तते ॥ ६५ ॥

यदि रात्रिके समयमें चण्डाल अथवा शपच छूले तो ज्ञान करना उचित है और फिर  
वहाँ रात्रिमें निवास न करे शीघ्र ज्ञान करे ॥ ६४ ॥ जो मूर्ख अज्ञानतासे रात्रिमें वहाँ  
निवास करले तो वह पाप उसको सौ गुना बढ़ताहै ॥ ६५ ॥

उत्सृच्छन्ति हि नज्ञप्राप्युपरिष्ठाच्च ये ग्रहाः ॥

सस्यूष्टे रश्मिमिस्तेपामुदके ज्ञानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

यदि आकाशमें दूटे हुए तारे तथा ग्रहोंकी किरणोंका स्पर्श होजाय तो जलमें ज्ञान करनेसे  
शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥

कुडघातर्जलघस्मीकसूपिकोत्करवर्त्मसु ॥

श्मशाने क्षीचशेषे च न प्राज्ञाः सप्त मृत्तिकाः ॥ ६७ ॥

शीघारके भीतरकी, जलके बीचमें की, बैंगनकी, चुड़ोकी खाड़ी दुर्ग, मार्गमकी, श्मशाना  
मकी, धीर शीघसे बचीहुई इन सात स्थानोंकी मट्टीको महत्त्व न करे, क्योंकि यह महत्त्व  
करनेके योग्य नहीं है ॥ ६७ ॥

इष्टार्धतु कर्त्तव्यं घ्राणणेन प्रपन्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्णं मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥

इष्ट ( पक्ष आदि ) पूर्ण ( रूप आदि ) ब्राह्मणको बड़े बलसे करना उचित है; इष्टसे स्वर्ग  
की प्राप्ति होतीहै, और पूर्णसे मोक्ष मिळता है ॥ ६८ ॥

विज्ञापेक्षं भवेदिष्टं तद्भागं धर्तमुच्यते ॥

आरामश्च विशेषेण देवधोष्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥

इष्टके भेद जनेक है; इष्ट द्रव्यके अनुसार होताहै, और तादृश, विशेष करके भाग और  
देवधोषी ( धीम अथवा प्यार ) इन्हींको पूर्ण कहतेहैं ॥ ६९ ॥

षापीरूपतडागानि देवतायतनानि च ॥

पतितान्युद्वेष्टसु स धर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥

रूप, बाबड़ी, देवमन्दिर, तालाब इनके टूटफूट जानेपर जो इनका उद्धार क्योंकि या इनकी  
मरम्मत करताहै, वह भी धर्तके फलको पाताहै ॥ ७० ॥

शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तया ॥ साघ्रायाश्च पयोः प्रायं श्वेताया  
दधि चोच्यते ॥ ७१ ॥ कपिलाया पूतं प्रायं महापातकनाशनम् ॥ सूर्यतीर्थे  
नदीतोये कुशीर्दध्यं पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥ आहृत्य प्रणवेनैव उरयाप्य प्रणवेन  
च ॥ प्रणवेन समालोढ्य प्रणवेन तु संपिबेत् ॥ ७३ ॥ पालाशे मध्यमे पर्णे  
भङ्गि तादृमये तथा ॥ पिबेत्पुष्करपर्णं वा तादृ ॥ ७४ ॥

( पंचगव्यलक्षण ) सफेद गायका मूत्र, और काली गायका गोबर, लाल गायका दूध, और सफेद गायका दही ॥ ७१ ॥ और कपिला गायका घी ले, यह पंचगव्य महापातकोंका नाश करताहै, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा नदीके जलमें गोमूत्र इत्यादि द्रव्योंको पृथक् २ कुशाओंसे ॥ ७२ ॥ ॐकारको पढकर एकत्रित करै, और ॐकारको पढकर पीजाय ॥ ७३ ॥ ढाकके बीचके पत्तोंमें वा ताबेके पात्रमें, या कमलके पत्तोंमें तथा लाल मिट्टीके पात्रमें उस पंचगव्यका पान करै ॥ ७४ ॥

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥

द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥

एक सूतकके होतेही यदि दूसरा सूतक होजाय तौ दूसरे सूतकका दोष नहींहै पहलेके साथही वह भी शुद्ध होजाताहै ॥ ७५ ॥

जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥

जन्म सूतकके साथ जन्म सूतककी और मरणसूतकके साथ मरणसूतककी शुद्धि होतीहै,

गर्भे संस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥

महीनेके गर्भ पातमें तीन दिनका अशौच होताहै ॥ ७६ ॥ जितने महीनेका गर्भ पतितहो उतनीही रात्रियोंमें उसकी शुद्धि होतीहै,

रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥

और रजस्वला स्त्रीकी शुद्धि रजकी निवृत्ति होनेपर स्नानकरनेसे होतीहै ॥ ७७ ॥

स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ॥

स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्या. पिंडोदकक्रिया ॥ ७८ ॥

विवाह होजानेपर स्त्री सप्तपदी किये उपरान्त अपने ( मातापिताके ) गोत्रसे अलग होजातीहै, उसका पिंड और जलदान आदि कर्म पतिके गोत्रसे ही करना उचित है ॥ ७८ ॥

द्वे पितुः पिण्डदानं स्यात्पिंडे पिंडे द्विनामता ॥ पण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं

दाता न मुह्यति ॥ ७९ ॥ स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुक्त्वा सदैवतम् ॥

पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥ ८० ॥

पिताको दो पिंड दे प्रत्येक पिंडोंमें दो नाम ( सपत्नीक ) आतेहैं, छै.को तीन पिंड देवे, इस भांति करनेसे पिंडोंका दाता मोहित नहीं होताहै ॥ ७९ ॥ माता और पितामही ( दादी ) और प्रपितामही ( परदादी ) यह तीनों अपने पतियोंके साथ श्राद्धको भोगतीहैं ॥ ८० ॥

वर्षेवर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥

अद्वैवं भोजयेच्छ्राद्ध पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ ८१ ॥

प्रत्येक वर्षमें पिता माताका श्राद्ध करै, देवताके ( वैश्वदेवके ) विना श्राद्ध जिमावै और एक पिंड देना उचित है ॥ ८१ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ॥

पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पंचविधं बुधैः ॥ ८२ ॥



नित्य, वैभित्तिक, काम्य, वृद्धिभाण्ड, और पार्वण, यह पांच प्रकारके भाण्ड पंडितोंको जानना उचित है ॥ ८२ ॥

प्रहोपरागे सकांती पर्वोत्सवमहालयोः ॥

निर्वपेष्ठीन्नरं पिंडाने रुमेष मृतेहनि ॥ ८३ ॥

ग्रहणके दिन, संध्याधिक दिन, पर्वके दिन, उत्सवमें, महालय ( कन्यागर्भ ) में मनुष्यको तीन पिंड दे, और जिसदिन माता पिताकी मृत्यु हुईहो उसदिन एकही पिंड देना उचित है ॥ ८३ ॥

अनूठा न पृथक्कन्या पिंडे गोत्रे च सूतके ॥

पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्रादृच्छयते ततः ॥ ८४ ॥

जिस कन्याका विवाह न हुआहो उसका पिंड, गोत्र, सूतक, भक्षण नहीं है, विवाह होजा नेपर विवाहके मंत्रोंसे अपने गोत्रसे वह अलग हो जातीहै ॥ ८४ ॥

येनयेन नु षर्णेन या कन्या परिष्पीयते ॥ तस्मै सूतकं याति तथा पिंडोद  
केपि च ॥ ८५ ॥ विवाहं चैव सृष्टे चतुर्थेहनि रात्रिषु ॥ एकत्वं सा प्रजेन्वर्त  
पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ ८६ ॥

जिस वर्णके पुरुषके साथ कन्याका विवाह हुआहो उसी वर्णके समान सूतक पिंड और अन्नदान कन्याको मिलताहै ॥ ८५ ॥ विवाहके होजानेपर वह कन्या चौबे दिनोंके रात्रिमें पिंड, गोत्र, और सूतकमें पतिकी समानताको प्राप्त होजातीहै अर्थात्जिस वर्णके पतिके साथ उसका विवाह हुआहो उसी वर्णके अनुसार उसका पिंडमायिक होताहै ॥ ८६ ॥

प्रथमेहि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ॥ अस्थिसंचयनं कार्यं धंपुभिर्हितु  
द्विभिः ॥ ८७ ॥ चतुर्थे पचमे चैव सप्तमे नवमे तथा ॥ अस्थिसंचयनं प्राकं  
घर्णानामनुपवशः ॥ ८८ ॥

द्विचकारी बभु पहिंछे, दूसरे, तीसरे अथवा चौबे दिन अस्थियोंका संचय करे ( फूट-  
वीने ) ॥ ८७ ॥ अन्नानुसार आरण्य, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको चौबे, पांचवें, सातवें, और नवमेंदिन अस्थिसंचयन करना उचित है ॥ ८८ ॥

एकादशाहं प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृष ॥

सुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥

जिसके मरनेपर प्यारहमें दिन पुण्योत्सर्ग किया जाताहै वह प्रेत, प्रेतलोकमें नहीं जाता  
बसकी पूजा स्वर्गलोकमें होतीहै ॥ ८९ ॥

नामिमात्रे जले स्थात्वा हृदयं नानुचितयेत् ॥ आगच्छतु मे पितरो गृह्येता  
अर्लाजलीन् ॥ ९० ॥ हस्ती कृत्वा तु संपुत्की पूरयित्वा जलेन च ॥ गोशृगमा  
प्रमुद्गृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ ९१ ॥ आकाशे च क्षिपेद्दारि यारिष्यो दक्षि  
णामुत्तरं ॥ पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिपुत्रैश्च च ॥ ९२ ॥ आपो देय  
गणाः प्रोक्ता आपाः पितृगणास्तथा ॥ तन्मादप्सु जलं दय पितृणां हित  
मिच्छता ॥ ९३ ॥

मनुष्य नाभिपर्यन्त जलमे निमग्न होकर इसभांति स्मरण करै कि, मेरे पितर आकर जलकी अंजुलीको ग्रहण करै ॥ ९० ॥ दोनों हाथोंकी अंजुली बना उसमें जलको भर गायकी सींगकी समान ऊपरको हाथ ऊँचा उठाकर जलके बीचमेंही उस अंजुलीके जलको डालदे ॥ ९१ ॥ मनुष्य जलमे खडे होकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकर आकाशकी ओरको जलको फेंके, कारण कि पितरोंका स्थान आकाश और दक्षिण दिशा यह दोनों हैं ॥ ९२ ॥ देवता और पितरोंके गण जलरूपही हैं, इसकारण पितरोंकी इच्छा करनेवाला पुरुष जलमेही तर्पण करै ॥ ९३ ॥

दिवा सूर्याशुभिस्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ॥ संध्योरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९४ ॥ स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि ॥ भांडस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

जल दिनमें तौ सूर्यकी किरणोंके तपनेसे और रात्रिमें नक्षत्र और पवनसे, और सन्ध्याके समय इन दोनोंसे सर्वदा पवित्र रहताहै ॥ ९४ ॥ जिसमें अपवित्र वस्तु न मिळीहों वह स्वाभाविक जल सर्वदा पवित्र है, पात्रका जल अथवा भूमिपरका जलभी सदा पवित्र है ॥ ९५ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलीन् ॥ असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलांजलीन् ॥ ९६ ॥ श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ॥ उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीत धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ६ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजुली जलमेंही देनी उचित है, और जो बिना संस्कार हुए मरगये हों उनको स्थलमें देनी उचित है ॥ ९६ ॥ श्राद्ध और होमके समयमें तौ एक हाथसे अंजुली देनी उचित है और तर्पणके समयमें दोनों हाथोंसे अंजुली दे, यह धर्मकी रीति है ॥ ९७ ॥

इति धर्मस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।

इति यमस्मृतिः समाप्ता ६.



श्री ॥

## आपस्तंबस्मृति ७

मापाटीकासमेता ।

## प्रथमोऽध्यायः १

श्रीगणेशाय नमः ॥ आपस्तंब प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ॥  
 दूषितानां द्वितार्याय घर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥

कामानुसार कृपित घर्णों तथा पापियोंके द्विके छिपे आपस्तंब ऋषिके कहेहुए प्रायश्चित्त का निर्णय विशेषतासे करके कह्वाहूँ ॥ १ ॥

परेषां परिषादेषु निवृत्तमृपिसत्तमम् ॥ विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥ अनन्यमनसं श्लांत तस्वस्यं योगवित्तमम् ॥ आपस्तंबमृषिं सर्वे स मेत्य मुनयोत्तुवन् ॥ ३ ॥ भगन्मानवाः सर्वे असन्मार्गे स्थिता यदा ॥ चरे युर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥ यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादि परिपालनम् ॥ कृषिकर्मादिवपनं द्विजामश्रणमेष च ॥ ५ ॥ बालानां स्तन्यपानादि कार्यं च परिपालनम् ॥ देय चानायकेऽवश्यं विप्रादीनां च भेषजम् ॥ ६ ॥ एव कृते कथञ्चित्स्यात्प्रमादो यद्यकामतः ॥ गवादीनां ततोऽस्मार्कं भगवन्ब्रूहि निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

महाज्ञानमें उत्तर ऋषियोंमें उत्तम एकांशमें बैठे हुए, वृत्तोंकी निम्नासे रहित ॥ २ ॥ एकाम मनसे धैरेहुए श्लांतस्वरूप तस्वमें स्थित और आयन्व योगके जाननेवासे आपस्तंब ऋषिसे सम्पूर्ण मुनि कहने लगे ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जिस समय सम्पूर्ण मनुष्य धर्ममें स्थित होकर यदि किसी प्रकारका असत् कार्य करे, तो आप उनका प्रायश्चित्त कहिये ॥ ४ ॥ जिस कारण गृहस्थीको गौका पालन अवश्य करना, कृषिभादिका कर्म, अन्नका घोना, प्राणियोंको भोजन करना, अवश्य कर्तव्य है ॥ ५ ॥ बालकोंको दूध पिठाना, बालकोंका पालन करना, अनाथको धन देना, प्राणज आदिकी औपची करनी इतने कर्म अवश्य करने कथित हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस भाँति करनेपरभी यदि असाधवानीसे गौ आदिका अपराध होजाय तो घससे उद्धार होनेका प्रायश्चित्त आप हमसे कहिये ॥ ७ ॥

एवमुक्तः क्षण ध्यात्या मणिपातादुभोमुत्त ॥

इहा ऋषीनुयाचदमापस्तंबमुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

इस भाँति पूरे जानकर आपस्तंब मुनि क्षण काळ तक ध्यान करके प्रणामसे नीचेको शिर झुकाय ऋषियोंका बेगकर यह निर्दिष्ट वचन कहने लगे ॥ ८ ॥

यागानां स्तनपानादिकाय दापा न पिपेत ॥

विपसायपि विप्राणामामश्रणविवित्तने ॥ ९ ॥

यदि चालकोंको दूध पिलाते समयमें और ब्राह्मणोंको भोजन करते समयमें तथा उनकों औषधी सेवन कराते समयमें त्रिपत्ति ( मृत्यु ) होजाय तौ इसमें कुछ दोष नहीं है ॥ ९ ॥

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं तृणादिषु ॥ केचिदाहुर्न दोषोत्र स्नेहं लवणभेष-  
जे ॥ १० ॥ औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थं भोजनम् ॥ प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं  
प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥

यदि गौ आदि तृणादिसे मरजाय तौ उसके प्रायश्चित्तकी विधि कहताहू, अनेकोंका यह कथन है कि स्नेह, लवण, और औषधोके देनेके समयमें यदि गौ मरजाय तौ इसमें दोष नहीं है ॥ १० ॥ औषधी, लवण, तेल, पुष्टिके लिये भोजन यह प्राणियोंकी प्राणरक्षोके निमित्त है ( इस कारण इनके देनेमें यदि कोई मरजाय ) तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ११ ॥

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥

अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥

परन्तु यह भोजनसे अधिक न दे, परन्तु समयपर दे, यदि अधिक देनेके कारण कोई प्राणी मरजाय तौ उसको कृच्छ्र करना कहाहै ॥ १२ ॥

अहर्निरशनं पादः पादश्चायांचितं त्र्यहम् ॥ सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्त-  
था त्र्यहम् ॥ प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायवर्जितम् ॥ १३ ॥ प्रातः पादं  
चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥ अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य  
च ॥ १४ ॥ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ योजने पादहीनं च  
चरेत्सर्वं निपातने ॥ १५ ॥

तीन दिनतक भोजन न करै, यह पहला पाद है, और तीन दिन तक बिनामागे जो भोजन मिलै उसे खाय, यह दूसरा पाद है, और संध्याको तीन दिनतक न खाय यह तीसरा पाद है, और प्रातःकालमें तीन दिनतक न खाय यह कृच्छ्रका चौथा पादहै, प्रातः-काल और सायंकालको न खाय, इसे दिनार्द्ध कहतेहैं, और सायंकालको छोडकर केवल दिनमें एकही बार भोजन करै उसे पादोन कहतेहैं ॥ १३ ॥ इस विषयमें शूद्रको प्रातःपाद करना उचित है, और वैश्यको सायंपाद करना चाहिये, क्षत्रिय अयाचित करै, और ब्राह्मणको त्रिरात्र करना कर्तव्य है ॥ १४ ॥ यदि गौ रोकनेके समयमें, या बाध-नेके समयमें मरजाय तो एक पाद और दोपाद क्रमसे करे योजन ( जोडने वा काजीहोद आदि में कैदकरने ) से पादोन और निपातन ( गिराने ) में समस्त कृच्छ्र करना उचित है ॥ १५ ॥

घंटाभरणदोषेण गोस्तु यत्र विपद्भवेत् ॥ चरेदूर्ध्वतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि त-  
त् ॥ १६ ॥ दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥ स्तंभशृंगखलपाशैश्च  
मृते पादोनमाचरेत् ॥ १७ ॥ पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ॥  
निपातयति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते ॥ १८ ॥ प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं  
क्षत्रियस्तथा ॥ कृच्छ्राद्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १९ ॥

गौके गलेमें पटा बांधनेके समयमें गौको विपत्ति होजाय तो दिनाह्न कृच्छ्र करावे, कारण कि यह मूषणके छिये बांधाया ॥ १६ ॥ यदि दमन करने, राकन, याजनके छिये काष्ठपर्णटा ( जो छकड़ी गौके गलेमें बटका करतीहै ) बांधनेसे खुंटा, चांकड, रस्तीके बांधनेसे जो गाय मरजाय तो पादोन करै ॥ १७ ॥ जो पांशी मनुष्य पथर छाटी तथा अन्यान्य छत्रोंसे गौको मारताहै उसको सम्पूर्ण कृच्छ्र करना कर्षव्य है ॥ १८ ॥ ब्राह्मण सब प्रकारसे प्राजापत्य प्रवृत्तको करै, क्षत्रिय एक पावहीन प्राजापत्य प्रवृत्त करै वैश्यगण कृच्छ्रार्थ करै, और शूद्र पावकृच्छ्र करै ॥ १९ ॥

द्वौ मासौ पापपेदस्य द्वी मासौ द्वी स्तनी भुहेत् ॥

द्वौ मासावेकवेद्यायां क्षेपकाल ययारुचि ॥ २० ॥

ब्याई हुई गौका दूध उसके बछड़ेको दो महीनेतक पिळावे और दो महीनेतक केवल घोड़ी स्तनोंका दूध पकड़ी समय दुरै, इसके पीछे अपनी इच्छानुसार दुरै ॥ २० ॥

दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ॥

सशिश्रु घपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥

ब्यानेसे पशु या वृक्ष दिनेके बीचमेंही गौ मरजाय तो शिलासहित मुडन करकर प्राजापत्य करै ॥ २१ ॥

इहमष्टगर्षं धर्म्यं पद्मर्षं जीवितार्थिनाम् ॥

अतुर्गर्षं नृशंसानां द्विगर्षं हि गिषांसिनाम् ॥ २२ ॥

भाठ बैलोंका इह मा बछोटो है, यह धर्मार्थ है, और जो छ- बैलोंका इह मा बछोटो है, यह अपनी सीबिन्दके छिये करवेहै, चार बैलोंका इह मा बछोटो छिये है, और जो दो बैलों का इह मा बछोट है यह इत्यारे है ॥ २२ ॥

अतिषाहातिदोहान्यां नासिकाभेदेन वा ॥

नदीपर्वतसरोहे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २३ ॥

अधिक बोल बालनेसे, या अत्यन्त बूढ़नेके कारण या नासिकोके छेदनेसे, महीमें या पतलके बढनेपर यदि गौ मृतक होजाय तो पादोन कृच्छ्र करै ॥ २३ ॥

न नारिकेलवालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्मजा ॥ एभिर्गास्तु न धभीपादुका परशु शो भवेत् ॥ २४ ॥ कुशौ काशीश्च धभीपादुपर्म दक्षिणामुखम् ॥

मारियछड़ी रस्ती बास, मूज, और चमड़ा इनसे गौको न बांधै कारण कि इनके बांधनेसे गौ पतपीन होजाती है ॥ २४ ॥ परन्तु कुशा और काशीसे दक्षिण दिशाको मुखकर बिल को बांधै ॥

पादलमाहिदाहेषु प्रापञ्चितं न विद्यते ॥ २५ ॥

पैरमें कंकड़ लगाजाय, सर्वमें काटाहो, और बलकर जा गौ मरजाय उसका प्रापञ्चित नहीं है ॥ २५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेपि च ॥

भिषद्भिथ्योपचारैश्च द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ २६ ॥

घेरनेमें और वैद्यकी अन्वया चिकित्सासे यदि गौ मरजाय तौ गोहत्याका दुगुना प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥

शृंगभंगेऽस्थिभंगे च लांगूलस्य च कर्तने ॥ सप्तरात्रं पिवेद्वज्रं यावत्स्वस्थः पुन-  
र्भवेत् ॥ २७ ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद्विजः ॥ एतद्विमिश्रितं वज्र-  
मुक्तं चोशनसा स्वयम् ॥ २८ ॥

जो गायका सींग वा हाड टूटजाय, अथवा गौकी पूल कतरी जाय तौ सात रात्रितक वज्रपान करै जवतक गौ चगी न हो ॥ २७ ॥ द्विज गोमूत्रसे मिलाकर जौ भक्षण करै गोमूत्रसे मिलेहुए जौको उशना ऋषिने “वज्र” नाम कहाहै ॥ २८ ॥

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च ॥

एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २९ ॥

तीर्थ, वावडी और प्राचीन मंदिर इन स्थानोंमें यदि गौ मरजाय तौ प्रायश्चित्त नहींहै २९ ॥

एका कदा तु बहुभिर्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ३० ॥

यदि किसी समय एक गौको बहुतसे मनुष्य मारै, तौ उन सबको गोहत्याका पाद २ पृथक् २ प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३० ॥

यंत्रणे याश्चिकित्सार्थं सूठगर्भविमोचने ॥

यत्ने कृते विपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३१ ॥

गौ बांधने या उसकें उदरमेंसे मरेहुए गर्भको निकालनेके समयमें यदि यत्र करनेपरमां मरजाय, तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३१ ॥

सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुधारणम् ॥ १

तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निष्पातने ॥ ३२ ॥

पहले पादके प्रायश्चित्तमें रोमोंको, और द्विपाद प्रायश्चित्तमें डाढीका, और तीसरे पादमें चोटी मात्र रखकर और सब शिरका मुंडन है, गौके मारडालनेवाले पुरुषको शिखासमेत मुंडन कहाहै ॥ ३२ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥

एवमेव तु नारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

इत्यापस्तवीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

सम्पूर्ण केशोंको ऊपरको उभारकर दो दो अंगुल काटदे यह मुंडन स्त्रियोंके केशोंका कहाहै ॥ ३३ ॥

इति आपस्तवीये धर्मशास्त्रे भापाटीकाया प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २

कारुहस्तगतं पण्य यच्च पात्राष्टिनिःसृतम् ॥

स्त्रीवालवृद्धचरित सधमेतच्छुचि स्मृतम् ॥ १ ॥

घाटीगरके हाथकी धनाई हुई वस्तु, और जो वस्तु बेचने में योग्य हो; और जिसको पात्रसे बाहर निकाल लिया हो, स्त्री, बालक, वृद्ध, इनका आचरण सध शुद्ध है ॥ १ ॥

प्रपास्वरण्येषु जलेषु धि गिरी द्रोण्यां जल केशविनिःसृतं च ॥

श्वपाकचण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पचगम्येन शुद्धिः ॥ २ ॥

प्रपा, (प्याक) का जल धनका जल, पर्वतका जल, त्रोणी या मसकका जल, बालोंका निकुड़वा हुआ श्वपाक और बाँडालके परका जो मनुष्य जल पीता है वह पचगम्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २ ॥

न दुप्येत्सतता धारा घातोद्भूताश्च रेणवः ॥

स्त्रियो वृद्धाश्च घालाश्च न दुप्यंति कदाचन ॥ ३ ॥

निरन्तर निकलती हुई जलकी धारा, पवनसे उठी हुई धूलि, स्त्री, बालक, वृद्ध वह कभी दूषित नहीं होते ॥ ३ ॥

आत्मक्षम्या च धरत्र च मायापत्य कमडक्षुः ॥

आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ४ ॥

अपनी क्षम्या, अपनी स्त्री, अपने धरत्र, अपनी सन्तान और अपनेही पात्र पवित्र हैं, दूसरे मनुष्योंके कभी शुद्ध नहीं हैं ॥ ४ ॥

अन्यैस्तु स्नानिताः कृपास्तद्भागानि तथेष च ॥

एषु स्नात्वा च पीत्वा च पचगम्येन शुद्धयति ॥ ५ ॥

दूसरोंके बनबापेद्वारा कृप अथवा ताक्यबापिके जन्मसे स्नान करनेसे पचगम्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ५ ॥

उच्छिष्टमशुचित्वं च यच्च विष्टानुलेपनम् ॥ सर्वं शुद्धयति तोयेन ततोप केन

शुद्धयति ॥ ६ ॥ सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनिन च ॥ गर्वा सूत्रपुरीषेण

ततोप तेन शुद्धयति ॥ ७ ॥

( प्रश्न- ) उच्छिष्ट ( जूथ ) अशुद्धि और जिनमें मूत्र लगा हो इनकी शुद्धि केवल जलसे ही होती है, वह जल किसके द्वारा शुद्ध होता है? ॥ ६ ॥ ( उत्तर- ) सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अथवा पवनके सयोगसे पवित्र होता है, अथवा गोमूत्र और गोबरसे वह जल पवित्र होता है ॥ ७ ॥

अस्थिचर्मादियुक्तं तु खरश्वानोपहृषितम् ॥

दक्षरेडुदकं सर्वं क्षीपनं परिमार्जनम् ॥ ८ ॥

हड्डी और चमड़ेके पड़नेसे जो जल अपवित्र होगया हो वा गये तथा कुत्तेने जिसमें मूत्र लगाकर दूषित कर दिया हो; ती उस जलको पात्रमें से निकालकर पात्रको मछी माँदिले माँसे ॥ ८ ॥

कूपो मूत्रपुरीषेण यवनेनापि दूषितः ॥ श्वसृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः  
॥ ९ ॥ उड्ढृत्यैव च ततोयं सप्तपिडान्समुद्धरेत् ॥ पंचगव्यं मृदा पृतं कूपे  
तच्छोधनं स्मृतम् ॥ १० ॥

कुएका जलभी मूत्र, विष्ठा, पढनेसे और यवनके जलभरनेसे तथा कुत्ता, गधा, गीदड,  
ऊंट और मास खानेवालोंसे अपवित्र हो जाताहै ॥ ९ ॥ उस कुएके समस्त जलको निक-  
लवाडाले, पीछे सात मिट्टीके ( ढेले ) पिंड कुएमेंसे निकाले, और पंचगव्य तथा पवित्र  
मट्टीको कुएके भीतर डालदे तब वह कुआ पवित्र होताहै ॥ १० ॥

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥

कुंभानां शतमुड्ढृत्य पंचगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ११ ॥

यदि वावडी, कुए, तालाव, यह अपवित्र होजाय, तौ सौ घडे जल निकालकर पंचगव्यके  
डालनेसे इनकी शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

यच्च कूपात्पिवेतोयं ब्राह्मणः श्वदूषितात् ॥ कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे  
संशयो भवेत् ॥ १२ ॥ अक्लिन्नेन च भिन्नेन केवलं श्वदूषिते ॥ नीत्वा कूपा-  
दहोरात्रं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥ क्लिन्ने भिन्ने श्वे चैव तत्रस्थं यदि  
तत्पिवेत् ॥ शुद्धिश्चांद्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ १४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मुरदेसे स्पर्श हुए दूषित कुएके जलको पीकर ब्राह्मण किस प्रकारसे शुद्ध होताहै, यह  
इमें संदेह उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ जिस मुरदेका शरीर रुधिरसे भीगा न हो, और जिसका  
कोई अंगही टूटाहो, ऐसे मुरदेसे दूषितहुए कुएके अशुद्ध जलको पीनेवाला अहोरात्रि उप-  
वास करके पंचगव्यके पीनेसे पवित्र होताहै ॥ १३ ॥ यदि जिस कुएमें रुधिरसे भीगाहुआ  
और टूटे फूटे अगवाला मुरदा पडाहो उस कुएके जलको पीनेवाला चांद्रायण अथवा तप्त-  
कृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेदमनि ॥ तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः  
कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ १ ॥ चांद्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्राजा-  
पत्यं तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥ यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदा-  
पयेत् ॥ तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके घरमें विना जानेहुए अंत्यज जातिका मनुष्य निवास करै और कुछ काल  
पीछे वह जानलिया जाय, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह उस पर कृपाकर उसे दंड न  
दे ॥ १ ॥ तौ ब्राह्मणोंको चांद्रायण अथवा पराक व्रत करना उचित है; और शूद्र प्राजापत्य  
तथा अन्यजातियोंको अपनी २ जातिके अनुसार प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ २ ॥ जिन्हों-



ने वहाँ पञ्चम स्नायाहो उनके कृष्ण प्रव करना उचित है, और वहाँ पञ्चम स्नातेवालोंके वहाँ का अन्न जिन्होंने स्नायाहो उनके कृष्ण पाव करावे ॥ ३ ॥

कूपेकपानैर्दुष्टानां स्पर्शससर्गद्वेषणात् ॥

तेषामेकोपघासेन पचगव्येन शोधनम् ॥ ४ ॥

पचनके स्पर्शके दोपसे एक कुआका अन्न पीनेसे जो अशुद्ध हैं उनकी शुद्धि एकवार चप वास करने और पचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ४ ॥

घालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता ॥

तेषां नक्त प्रदातव्यं घालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥

वालक, वृद्ध, रोगी और वायुकी पीडावाली गर्भवती स्त्री इनको मच्छत्रव बटावे, और वालकोंको दो पहरका उपवास करावे ॥ ५ ॥

अक्षीतिर्यस्य वर्षाणि घालो वाष्पूनयोद्धशः ॥

प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति स्त्रियो म्याधित एव च ॥ ६ ॥

अस्ती वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध और छोछह वर्षकी अवस्थासे कम अवस्थाका वालक, रोगी, स्त्री, इन सबका प्रायश्चित्त आधा करावे ॥ ६ ॥

न्यूनेकादशवयस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च ॥ चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्त विशो-  
घनम् ॥ ७ ॥ अर्पतिः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते ॥ शेषसपादनाच्छु-  
द्धिर्धिपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥

ग्यारह वर्षसे कम और पांच वर्षसे अधिक अवस्थावाले वालककी शुद्धि गुरु अथवा मित्र करे ॥ ७ ॥ यदि यह वालकही अपना प्रायश्चित्त करे और इस बीचमें इनको कष्ट होजाय तो दोप प्रायश्चित्तको गुरुमादि करके अथवा जिस मांति ईर्ष्ये कष्ट न हो उसी मांति यह अपना प्रायश्चित्त करके ॥ ८ ॥

शुभाम्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ॥

येन रक्षति घत्तारस्तेषां तत्किल्बिष भवेत् ॥ ९ ॥

प्रायश्चित्ते करनेसे जिस रोगियोंको शुभासे पीडा होजाय, अथवा मरनेकी संका उपस्थित होजाय तो धर्मके उपदेश करनेवाले उनके प्राणोंकी रक्षा नहीं करते अर्थात् उन्हें कष्टिके अनुसार प्रायश्चित्त नहीं बताते तो उस पापके मागी बह उपदेशही करनेवाले होते हैं, ॥ ९ ॥

पूर्णेपि फालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ॥ अपूर्णेष्वपि फालेषु शोधयंति द्विजो-  
त्तमा ॥ १० ॥ समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचिद् ॥ विप्रसंपादन-  
कर्म उत्पन्ने प्राणसशये ॥ ११ ॥ सपादयति ये विप्राः खान तीर्थफलप्रदम् ॥  
सम्पकर्तुरपाय स्याद्भती च फलभामुयात् ॥ १२ ॥

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे पृथिवीऽप्याया ॥ ३ ॥

समयका नियम पूरा होजानेपरही ब्राह्मणोंके बिना उसकी शुद्धि नहीं होती, और वालका नियम बिना पूरा दुपरी ब्राह्मण सुद्ध करवतेहैं, अर्थात् ब्राह्मणोंके बचनमात्रमेंही शुद्धि है ॥ १० ॥

कारण कि जिस समय प्राणसकट उपस्थित होता है उससमय कर्मका सपादन ब्राह्मणही करसकता है, इसमें तीनों वर्ण ( क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ) के विषयमें कभी भी कोई पुरुष किसीके कर्मको समाप्त होगया ऐसा न कहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण स्नान और तीर्थके फल देने-वाले कर्मको किसी और की शुद्धिके लिये दूसरों से करवाते हैं, उन भलीभांतिसे करनेवालोंको पाप नहीं होता, और व्रती उसके फलको पाता है ॥ १२ ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

चंडालकूपभांडेषु योऽज्ञानात्पिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ॥ १ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्धं तु चरे-  
द्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २ ॥

( प्रश्न- ) चांडालके कुए अथवा उसके बरतनका अज्ञानसे जो मनुष्य जल पीता है उसका प्रायश्चित्त चारों वर्णोंमें किस प्रकारसे कहा है? ॥ १ ॥ ( उत्तर- ) ब्राह्मण सांतपन व्रत करे क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत करे, वैश्य आधा प्राजापत्य करे, और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतको करे ॥ २ ॥

भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥ प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्या-  
द्विशोधनम् ॥ ३ ॥ गायत्र्यष्टमहसं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ जपंस्त्रिरात्रमन-  
श्नन्पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

भोजन करनेके पीछे बिना आचमन किये यदि उच्छिष्ट अवस्थामें अज्ञानतासे ब्राह्मण श्वपचको छूले तो उसको प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३ ॥ आठहजारवार गायत्रीका जप करे या एकसौवार द्रुपदामंत्रको जपकर तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥

चंडालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे कुरुते द्विजः ॥

प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको विष्टा और मूत्र करनेके पीछे चांडाल छूले तो वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास करे, और भोजन करनेके उपरान्त उच्छिष्टको छूले तो छैः रात्रितक उपवास करे ॥ ५ ॥

पाने मैथुनसंपर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ संपर्के यदि गच्छेत्तु उदक्या चांत्यजै-  
स्तथा ॥ एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ भोजने च त्रिरात्रं  
स्यात्पाने तु त्र्यहमेव च ॥ मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ७ ॥  
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥ एकाहं तत्र निर्दिष्टं दंतधावन-  
भक्षणं ॥ ८ ॥

( प्रश्न- ) यदि ऋतुमती स्त्री, अंत्यजके साथ जलपान, मैथुन, मूत्र, विष्टा इनकास्पर्श हो जाय अथवा यह छूले तो इनका प्रायश्चित्त किसप्रकारसे होता है? ॥ ६ ॥ ( उत्तर- )

इनके पहाँका भोजन करनेमें तीन रात्रि उपवास करना कठम्य है, और जलका पीने  
 बाधा तीन दिन उपवास करे, मैथुनके समयमें स्पर्श होनेपर पाह कृच्छ्र करे इसी भाँति  
 विद्या मूत्र करनेके समयमें ॥ ७ ॥ क्रमसे एक दिन और तीन दिन उपवास कहाँ, एतौन  
 करनेमें एक दिन उपवास करे ॥ ८ ॥

वृक्षाकूटे तु खंडाले दिजस्तत्रैव तिष्ठति ॥ फलानि भक्षयस्तस्य कथं शुद्धिं विनि-  
 र्विदोत् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासां ज्ञानमाचरेत् ॥ एकरात्रोपितो  
 भूत्वा पंचगम्येन शुद्धयति ॥ १० ॥

( प्रश्न ) जिस वृक्षके ऊपर यदि खंडाल खडाहो उसी वृक्षके ऊपर ब्राह्मण बैठकर फल  
 खाके ही उसका प्रायश्चित किस प्रकारसे कहाँ? ॥ ९ ॥ ( उत्तर ) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर  
 बखौंसहित स्नान करे और एक रात्रि उपवास करके, पंचगम्यके पीनेसे उसकी शुद्धि  
 होतीहै ॥ १ ॥

येन केनचिदुच्छिष्टोऽप्यमेव्य स्पृशति दिज ॥  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगम्येन शुद्धयति ॥ ११ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे चतुर्वोऽध्याय ॥ ४ ॥

यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट अवस्थामे किंसा अपवित्र वस्तुको छूके वो अहोरात्रि उपवास कर  
 पंचगम्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे मायाटीकानां चतुर्वोऽध्याय ॥ ४ ॥

### पञ्चमोऽध्याय ५

खंडालेन यदा स्पृष्टो दिजवर्णं कदाचन ॥ अनभ्युक्ष्य विवेचोर्यं प्रायश्चित्तं कथं  
 भवेत् ॥ १ ॥ ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पंचगम्येन शुद्धयति ॥ क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु  
 पंचगम्येन शुद्धयति ॥ २ ॥ अहोरात्रं तु वैश्यस्य पंचगम्येन शुद्धयति ॥

( प्रश्न- ) यदि कदाचित् ब्राह्मण खंडालको छुकर बिना स्नान किंसे ही जलपीछे ही उसका  
 प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ १ ॥ ( उत्तर ) ब्राह्मण तीन रात्रि उपवास कर पंचग  
 म्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं, क्षत्री दो दिनतक उपवास कर पंचगम्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं  
 ॥ २ ॥ और वैश्यगण अहोरात्रि उपवास करके पंचगम्यके पीनेसे शुद्ध होतेहैं ॥

चतुर्थस्य तु वपस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥ व्रतं नास्ति तपो नास्ति  
 होमो नैष च विद्यते ॥ पंचगम्यं न दातव्यं तस्य मप्रविषर्जनम् ॥ न्यापयित्वा  
 दिजानां तु गूदो दानेन शुद्धयति ॥ ४ ॥

( प्रश्न ) चौथे वर्ण ( शूद्र ) का प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ ३ ॥ कारण कि  
 शूद्रजातिके व्रत नहीं होम नहीं, तप नहीं, पंचगम्यभी नहीं दिया जासकता, कारण कि  
 उसकी बहका अधिकार नहीं है ( उत्तर ) परन्तु शूद्र अपने अपराधको ब्राह्मणोंसे कहकर  
 वयाशुचित दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोस्य यदोच्छिष्टमभ्रात्यज्ञानतो द्विजः ॥ अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा  
विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥ उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥ शंखपुष्पी-  
पयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६ ॥

यदि ब्राह्मणने अज्ञानतासे ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खालिया है वह अहोरात्र उपवास  
करनेके पीछे गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे वैश्यकी  
उच्छिष्टको खाले तो त्रिरात्रि उपवास कर शंखपुष्पी ( औषधी विशेष ) के जलको पीकर  
शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्या सह योऽग्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥

न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण कदाचित् अपनी ब्राह्मणोंके साथ भोजन करले, तो विद्वान् मनुष्य उसमे दोष  
नहीं मानते ॥ ७ ॥

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामरनीयात्स्पृशतेऽपि वा ॥

प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानंगिराव्रवीत् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणोंके अतिरिक्त किसी अन्यजातिकी स्त्रियोंकी उच्छिष्ट खाने अथवा छूनेवालेको  
प्राजापत्य व्रतसे शुद्धि होतीहै यह भगवान् ( पंडित ऐश्वर्यवाले ) अगिरा कल्पिने कहाहै ॥ ८ ॥

अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रायणं तदर्थाय ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥ ९ ॥

अंत्यजोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करताहै वह चांद्रायणका एक  
पाद व्रत करै अर्द्धकृच्छ्र, पादकृच्छ्र, क्षत्रिय वैश्यदि व्रतानुसार करै ॥ ९ ॥

विष्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ १० ॥

विष्म और मूत्रके भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करै कुत्ता, काक और गौकी  
उच्छिष्टका भोजन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्य व्रतको करै ॥ १० ॥

उच्छिष्टं स्पृशते विप्रो यदि काश्चिदकामतः ॥ शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभांडं  
तथैव च ॥ ११ ॥ पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥ अहोरात्रोषितो  
भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण अज्ञानसे कुत्ते, मुरगे, शूद्र, मदिराके पात्र ॥ ११ ॥ और जिसपर  
पक्षी बैठाहो ऐसी अपवित्र वस्तुको छूले तो अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उस  
की शुद्धि होतीहै ॥ १२ ॥

वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥

स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्यांते विशुद्ध्यति ॥ १३ ॥

ब्राह्मणको यदि कोई उच्छिष्ट वैश्य छूले, तो त्रिकाल स्नान करके गायत्री मंत्रका जप  
करै, इस प्रायश्चित्तसे एकदिनके अन्तमें शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥

विप्रा विप्रेण सस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥

स्नानाति च विशुद्धिं स्यादापस्तंबोऽश्वीन्मुनिं ॥ १२ ॥

इत्यापस्तंबीये बर्गशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको अन्य उच्छिष्टग्रह ब्राह्मण छूटे तो स्नानके अन्तमें उसकी शुद्धि होती है यह आपस्तम्बमुनिका बचन है ॥ १४ ॥

इति आपस्तम्बीये बर्गशास्त्रे मायादीकारां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्याय ६

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीषस्य यो विधिः ॥ स्त्रीणां श्रीदार्पसंभोगे शयनीयेन  
दुप्यति ॥ १ ॥ पालने विक्रमे चैव तदृत्तेरुपजीवने ॥ पतितस्तु भवेद्विमस्त्रिमिं  
कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥ २ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ पचयन्ना  
यूया तस्य नीलीषस्य धारणात् ॥ ३ ॥ नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽपि धार  
येत् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पचगम्येन शुद्धयति ॥ ४ ॥ रोमकूर्पेयदा गच्छेत्प्रसो  
नीन्यास्तु कर्हिचित् ॥ पतितस्तु भवेद्विमस्त्रिमिं कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥ ५ ॥ नी  
लीदारु यदा मिथ्याद्ब्राह्मणस्य शरीरकम् ॥ शोणितं दृश्यते तत्र द्विजर्षाद्रायण  
चरेत् ॥ ६ ॥ नीलीमये यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मण कश्चित् ॥ अहोरात्रोपि  
तो भूत्वा पंचगम्येन शुद्धयति ॥ ७ ॥ नीलीरक्तेन घस्त्रेण यद्वन्नमुपनीयते ॥  
अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चाद्रायण चरेत् ॥ ८ ॥ मक्षयेद्यच्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्रा  
ह्मणः कश्चित् ॥ चाद्रायणेन शुद्धिं स्यादापस्तंबोऽश्वीन्मुनिं ॥ ९ ॥ यावत्स्यां  
यापिता नीली तावती वाशुचिमही ॥ प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्म  
वेत् ॥ १० ॥

इति आपस्तंबीये बर्गशास्त्रे मायादीकारां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इसके पीछे नीले बस्त्रके धारणकरनेकी विधि कहता हूँ, स्त्रियोंकी ब्रिहाके समय समोगके समय और ब्रह्मणके ऊपर नीले बस्त्रका धोप नहीं है ॥ १ ॥ जो ब्राह्मण मीढको पाकवादे, जो बेचता है और जो बससे अपनी जीविका निर्वाह करता है यह पतित होता है, इस कारण तीन कृष्ण अन्न करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २ ॥ जो नीले रक्तके बस्त्रको धारण कर स्नान, दान, तपस्या, होम, वेदका पाठ, पितरोंका तर्पण और पचयन्न करता है उसका वद सब निष्फळ होजाता है ॥ ३ ॥ यदि ब्राह्मण नीले रंगी दुपे बस्त्रोंको शरीरपर धारण करे तो अहोरात्रि उपवास करनेके पीछे पंचगम्य पीनेसे शुद्ध होवा है ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मणके रोमोंसे मीढका रंग आकर शरीरमें पहुंचजाय तो ब्राह्मण पतित होवा है, तब तीन कृष्ण अन्न करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ यदि नीलक काष्ठसे ब्राह्मणके शरीरमें पाव होजाय और उस पावसे रक्त निकलने लगे तो बाम्नायण अन्न करनेसे शुद्ध होवा है ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानसे मीढके रेतमें चलाजाय तो अहोरात्रि उपवास कर पंचगम्यके पीनेसे शुद्ध

होताहै ॥ ७ ॥ जो नीले वस्त्रको पहनकर अन्न परोसताहै वह खाने योग्य नहीं है, जो ब्राह्मण उसे भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानसे नीलको खाजाय तौ चांद्रायण व्रत करनेसे उसकी शुद्धि होनीहै, यह आपस्तंब मुनिका वचन है, ॥ ९ ॥ जहांतक पृथ्वीमें नील बोयागयाहो वहातककी पृथ्वी बारह वर्षतक अशुद्ध रहतीहै इसके पीछे शुद्ध होजातीहै ॥ १० ॥

इत्यापस्तवीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पद्योऽध्याय' ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते ॥

वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ॥ १ ॥

रजस्वला स्त्रीको चौथे दिन स्नान करना श्रेष्ठ है, स्त्रियें रजनिवृत्ति होजानेपर स्वामीके साथ संभोग करने योग्य होतीहैं, बिना रजकी निवृत्ति हुए नहीं होती ॥ १ ॥

रोगेण यद्दजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारि-  
को मदः ॥ २ ॥ साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते ॥ वृत्ते रजसि  
साध्वी स्याद्ब्रह्मकर्मणि चंद्रिये ॥ ३ ॥ प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघाति-  
नी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

यदि किसी रोगसे स्त्रियोंके रजकी निवृत्ति न हो तौ उम रजसे स्त्रियें अशुद्ध नहीं होतीं कारण कि उनका वह रज विकारयुक्त है ॥ २ ॥ जबतक रज रहै तब तक उत्तम आचरण ( पाठ पूजा आदिक ) न करै, कारण कि रजकी निवृत्ति होनेपर ही स्त्रियें घरके काम काज करने और पतिके संग करने योग्य होतीहैं ॥ ३ ॥ ऋतुमती होनेके पहले दिन स्त्री चांडालिनीकी समान है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोवन, और चौथे दिनमें पवित्र होती है ॥ ४ ॥

अंत्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ॥ अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं  
प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्यं विशोधनम् ॥ निशां प्राप्य तु  
तां योनि प्रजाकरां च कामयेत् ॥ ६ ॥ रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचे-  
न च ॥ त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ प्रथमेहनि षड्रात्रं  
द्वितीये तु त्र्यहस्तथा ॥ तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥

यदि रजस्वला स्त्रीको अन्त्यज और श्वपाक छूले, तौ रजोदर्शनके दिनको वितारकर प्रायश्चित्त करै ॥ ५ ॥ तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै फिर उसी शुद्ध होनेकी रात्रिमें पुरुषका ससर्ग करै ॥ ६ ॥ कुत्ता, अत्यज और श्वपच यदि रजस्वला स्त्रीको छूले तौ उसकी शुद्धि तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥ ७ ॥ यदि रजोदर्शनके पहलेही दिन अत्यज आदि छूलें तौ छैः रात्रि और दूसरे दिन छूलें तौ तीन दिनतक और तीसरे दिन छूलें तौ एक दिन उपवास करे, और चौथे दिन छूले तौ अग्निके देखनेसेही उसकी शुद्धि होती है ॥ ८ ॥

विवाहे वितते यज्ञे सस्कारे च कृते तथा ॥ रजस्वला भवेत्कन्या सस्कारस्तु  
कथं भवेत् ॥ ९ ॥ आपयित्वा तदा कन्यामन्वीर्षस्त्रिरलकृताम् ॥ पुनर्मैत्र्या  
हुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥

( मम ) विवाहके समयमें पद्म ( होम ) होताहो और कुछ संस्कार भी होयुका हो  
वही अवसरमें यदि कन्या मनुमयी होजाय तो शेष संस्कार किस मांति हारें ॥ ९ ॥  
( उत्तर ) उस कन्याका ज्ञान कराकर वही समय अन्य वस्त्रोंसे शोभायमान करे, और  
पीछे पवित्र आहुति देकर शेष कर्मको करे ॥ १० ॥

रजस्वला तु सस्पृष्टा पुषकुक्कुटवापसे ॥

सा त्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको वानर, मुरगा, कौमा इन्हे तो वह त्रिरात्र उपवास कर पञ्चगव्यके  
पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि ॥

तावत्त्रिभिराहारा घ्रात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि परस्परमें दो रजस्वला स्त्री इन्हे तो छत्रिके दिनवक उपवासी रहें और पीछे स्नान  
करनेसे शुद्ध होती है ॥ १२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥

कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विमा शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

कदाचित् उच्छिष्ट पुरुष रजस्वला स्त्रीको इन्हे तो ब्राह्मणी कृच्छ्रे करनेसे और धूर  
जातिकी स्त्री कबल दान करनेसेही शुद्ध होजाती है ॥ १३ ॥

एकज्ञासां समारूढमहालो वा रजस्वला ॥

ब्राह्मणश्च सम तत्र सवासां ज्ञानमाचरेत् ॥ १४ ॥

एकही वृक्षकी शाखाके ऊपर आबाक, रजस्वला, और ब्राह्मण बैठेहों तो यह तीनों एक  
वार वस्त्रोंसहित स्नान करें ॥ १४ ॥

रजस्वलाया सस्पृश कथञ्चिजायते शुना ॥ रजोदिनानां यच्छेपं तदुपोष्य  
विशुद्ध्यति ॥ १५ ॥ अशक्ता चापवासेन त्रान पश्चात्समाचरेत् ॥ तथाप्यशक्ता  
श्वेकेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि किसी मांतिसे रजस्वला स्त्रीका गुप्ता हुआ होजाय तो रजके क्षय दिनोंमें उपवास करनेसे  
ही वह शुद्ध होती है ॥ १५ ॥ सामर्थ्यके न होनेपर एक उपवास कर स्नान करने और  
सामर्थ्यवात् होनेपर एक उपवास और पञ्चगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ १६ ॥

उच्छिष्टेस्तु यदा विमं स्पृशन्मर्घं रजस्वलाम् ॥

मघ स्पृष्टा परेऽर्घ्यं तदर्धं तु रास्वलाम् ॥ १७ ॥

यदि मरिच तथा रजस्वला स्त्रीको उच्छिष्ट प्रादण इन्हे तो वह क्रमागुसार अर्घ्य  
अर्घ्य दृष्ट्य करे ॥ १७ ॥

उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ॥

कृच्छ्राद्धं तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ १८ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ऐसी रजस्वला को छूले जिसके बालक उत्पन्न हुआहो तौ ब्राह्मण कृच्छ्राद्ध करै, कारण कि प्रायश्चित्तसे ही शुद्धि होतीहै ॥ १८ ॥

चंडालः श्वपचो वापि आत्रेयी स्पृशते यदि ॥

शेषाद्वा फालकृष्टेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥

चांडाळ, श्वपच, रजस्वला को छूले तौ रजोदर्शनके शेष दिनमें पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १९ ॥

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रासुदक्यां स्पृशते यदि ॥ अहोरात्रोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २० ॥ एवं तु क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ॥ सचैलं प्लवनं कृत्वा दिनस्यांते वृतं पिबेत् ॥ २१ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी यदि शूद्रकी रजस्वला स्त्रीको छूले तौ अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २० ॥ ब्राह्मणी रजस्वला स्त्रीको क्षत्रिय अथवा वैश्यकी स्त्री छूले तौ वस्त्रोंसहित स्नानकर एक दिन उपवास कर सध्याको घीका भोजन करै ॥ २१ ॥

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ॥

एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्याय ॥ ३ ॥

अपने वर्णकी रजस्वला स्त्रीके छूजानेसे स्नान करनेसेही उसकी शुद्धि होतीहै यह आपस्तंब मुनिने कहाहै ॥ २२ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अष्टमोऽध्यायः ८.

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥ सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते ताप-  
लेखनैः ॥ १ ॥ गवात्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥ दश भस्मानि  
शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥ २ ॥

काँसीके पात्र अशुद्ध होजानेपर वह भस्मके माजनेसे ही शुद्ध होजाताहै, मदिरासे अशुद्ध हुआ पात्र भस्मसे शुद्ध नहीं होता, मदिरा और विष्टा मूत्रसे अशुद्धहुआ पात्र अग्निमें तपाने और रितवानेसे शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ गौके सूषे, और शूद्रके झूठे और कुत्ते या कौएने जि समें सुह डाला हो यह अपवित्र काँसीके पात्र दश बार भस्मके माजनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ २ ॥

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्येदुरग्निभिः ॥ रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं तु प्रदु-  
प्यति ॥ अद्रिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

सुवर्ण आर स्त्रीकी शुद्धि वायु सूर्य और चंद्रमाकी किरणोंसे होतीहै और शुक तथा शवके स्पर्श होजानेसे जो वस्त्र अशुद्ध होगयाहै उसकी शुद्धि जल रेत और मट्टीके माजने घोनेसे होती है ॥ ३ ॥



शुष्कमन्नमवेद्यस्य पचरात्रेण जीर्यति ॥ अत्र व्यंजनसयुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ॥ ४ ॥ पपस्तु दधि मासेन पण्मासेन घृत तथा ॥ सषस्त्रेण तैल तु कोष्ठे जीर्यति वा नवा ॥ ५ ॥

शुष्के यहाँका सुखा अन्न पांच दिनमें पचता है, और व्यंजनसहित अन्न पंद्रह दिनमें पचता है ॥ ४ ॥ दूध और दही एक महीनेमें पचता है, तैल एक वर्षमें पचे या नमी पचे इस बातका निश्चय नहीं है ॥ ५ ॥

भुंजते ये तु शूद्रान्नं मासमेक निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं जायते ते मृता शुनि ॥ ६ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसपर्कं शूद्रेणैव सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमं कश्चि ज्वलतमपि पातयेत् ॥ ७ ॥ आहितामिस्तु यो विप्रं शूद्राज्ज्ञानं निषर्तते ॥ तथा तस्य प्रणश्यति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽभयं ॥ ८ ॥ शूद्रात्नेन तु भुक्तेन भेषुन योऽपि गच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥ शूद्रात्नेनो दरस्थेन यः कश्चिन्निषर्तते द्विजः ॥ स भवेच्छूद्रोऽपि प्राप्स्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण एक महीनेतक बराबर शुष्के यहाँके अन्नको खाते है, वह इस जन्ममें ही शूद्र होजाते है, और मरनेके पीछे उनको कुलेकी योगि मिसरी है ॥ ६ ॥ शुष्के यहाँका अन्न भोजन, शुष्के साथ एक आसन पर बैठना शूद्रस विद्या पढ़ना, यह सम्पूर्ण कार्य तेजस्वी पुण्यको भी पतित करते है ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण नित्य होमके छिन्ने अग्नि स्थापन करता है, वह यदि शुष्के यहाँ अन्न भोजन करना न छोड़े तो उसकी आत्मा वेद और धर्मो अग्नि भट होजाती है ॥ ८ ॥ शुष्के अन्नको भोजन कर जो स्त्रीसगाकर उसमें पुत्रादि उत्पन्न करता है वह पुत्र शुष्क ही है, कारण कि अन्नसे ही शुक्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ शुष्का अन्न पेटमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाता है, वह उस जन्ममें गौबन्ध सूत्र होता है, अथवा उस शुष्केकी बुद्धिमें उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुक्ते क्षत्रियस्य तु पर्यणि ॥

वेश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोंका अन्न सर्वदा भोजन करनेयोग्य है; पबके सगापमें क्षत्रियोंका अन्न भोजनकर यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर वैश्यका अन्न भोजनकरे; और शूद्रका अन्न किसी समयमें भोजन करना कथित नहीं ॥ ११ ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ॥ पिश्यास्याप्यन्नमेयाद्यं शूद्रस्य रुषिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥ वैश्यदेवन हामेन देवताभ्यर्चनीमपि ॥ अमृतं तन विप्रात्तमृग्यशुभ्रसामससृत्तम् ॥ १३ ॥ प्यपद्वारानुरुपेण धर्मेण ऋत्विजमित्तम् ॥ क्षत्रियस्य पयस्तन भूतानां यद्य पालनम् ॥ १४ ॥ स्वकर्मणा च पृषभैरनुत्पाद्य शक्तितः ॥ रास्यसातिपियन वैश्यान्नं तन संसृत्तम् ॥ १५ ॥ अज्ञानतिमिरां घस्य मद्यपानरतस्य च ॥ रुषिरं तन शूद्रात्तं पिपियप्रपिषितम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है, क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है, वैश्यका अन्न अन्न मात्र है, और शूद्रका अन्न रुधिरकी समान है ॥ १२ ॥ वैश्वदेवके निमित्त दान, होम, देव-ताओंकी पूजा और जपसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्रोंसे, शुद्धहुआ ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है ॥ १३ ॥ व्यवहारके अनुकूल धर्मसे छलनारहित क्षत्रियका अन्न प्राणियोंका पालन करताहै, इस निमित्त क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिके अनु-सार अपने कर्मसे पशुओंकी रक्षासे और स्त्रियानके आतिथ्यसे शुद्धिको प्राप्तहुआ वैश्यका अन्न अन्नही है ॥ १५ ॥ अज्ञानरूपी अधकारसे अवेहुए और मदिरा पीनेमें तत्पर शूद्रके अन्न त्रिधि और मंत्रोंसे रहित है इसी कारण उसको रुधिरकी समान जानें ॥ १६ ॥

आममांसं मधु वृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥

गुडस्तक्रं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥

कच्चा मास, सहत, घी, अन्न और दूध, गुड, मट्टा, रस, यह सब वस्तुएं शूद्रके घरकी होनेपर भी मनुष्यको लेलेनेमें दोष नहींहै ॥ १७ ॥

शाकं मांसं मृणालानि तुंगुरुः सक्तवस्तिलाः ॥

रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या द्वि सर्वतः ॥ १८ ॥

शाक ( तरकारी ) मांस, कमलकी विस, तुंगी, सत्तू, तिल, रस, फल, पिण्याक (खल व अडके फल ) यह सम्पूर्ण द्रव्य सब जातियोंसे लेने योग्य हैं ॥ १८ ॥

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥

मनस्तापेन शुद्धयेत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ १९ ॥

विपत्तिके आजानेपर भी यदि ब्राह्मण शूद्रके यहाका अन्न भोजन करताहै तौ उसकी शुद्धि मनके पश्चात्तापसे तथा सौ बार "द्रुपदा" मंत्रके जपनेसे होतीहै ॥ १९ ॥

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ॥

तद्विजेन न भोक्तव्यमापस्तंबोऽग्निवीन्मुनिः ॥ २० ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मणके हाथमें किसी द्रव्यके स्थित होनेपर उच्छिष्ट शूद्र उस ब्राह्मणको छूले तौ वह वस्तु ब्राह्मण न खाय, यह आपस्तंब मुनिका वचन है ॥ २० ॥

इति आपस्तम्बीये वर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ९.

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्सवते गुदम् ॥ उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वं शौचं तु निर्वर्त्य ततः पश्चाद्द्रुपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रो-षितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥ २ ॥ अशित्वा सर्वमेवात्रमकृत्वा शौच-मात्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्धयति ॥ ३ ॥ प्रसृतं यव-सस्येन पलमेकं तु सर्पिषा ॥ पलानि पंच गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥

( प्रश्न ) कदाचित् प्राणायामके भोजन करते समयमें अघोवायु बचवा मछरयाग होजाय तो कश्चित् अवस्थामें उस अशुद्ध प्राणायामका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा? ॥ १ ॥ ( उत्तर ) प्रथम शौच करके पीछे आचमन करै, इसके अनन्तर अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्धि होती है ॥ २ ॥ देहको दिना शुद्ध किये यदि अज्ञानवासे जिसने समस्त भोजन आच्छिपाहो वो वह तीन रात्रि औको पीछर महीमांति शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ एक प्रसूति जो एक पख ( टके भर ) थी, पांच पख गोमूत्र, इन सबको मिठाकर पीसकता है इससे अधिक नहीं ॥ ४ ॥

अलेहानामपेयानामभस्याणां च भक्षणे ॥ रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्त कर्म भवेत् ॥ ५ ॥ पद्मोदुवरवित्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः ॥ एतेषामुदक पीत्वा पद्मरात्रेण विशुद्धयति ॥ ६ ॥ ये प्रत्यक्षसिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलादिषु ॥ अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्पत्य चिकीर्षिताः ॥ ७ ॥ चरेयुस्त्राणि कृष्यश्रुषि त्रीणि चांद्रायणानि वा ॥ जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारमागिनः ॥ तेषां सात पन कृष्यु चांद्रायणमयापि वा ॥ ८ ॥

( प्रश्न ) मद्यपके, चाटनेके, पीनेके, और छानेके अयोग्य बीरे, मूत्र, विद्या इनके भक्षण करनेपर किस प्रकार प्रायश्चित्त होता है? ॥ ५ ॥ ( उत्तर ) गूबर, बेड कुशा, डाक, इनके जलको छै- रात्रितक पीकर शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जो आश्रय गृहस्थ धर्मके त्यागकर संन्यास धर्मका आश्रय कर आदि और तर्पणको वेहत्याग करनेकी इच्छासे धर्मसे निवृत्त होकर फिर गृहस्थ धर्ममें रहना चाहते हैं ॥ ७ ॥ वह आश्रय तीन कृष्यु प्रथम अथवा तीन चांद्रायण प्रथम करै, और जातकर्मसे छेकर धनका संस्कार फिर कराना अधिक है अथवा धनको सातपन कृष्यु तथा चांद्रायण प्रथम कराना चाहिये ॥ ८ ॥

यदिष्ठित काकमलाकयोर्वा अमेध्यलित्त च भवेच्छरीरम् ॥

ओत्रे मुखे च प्रविशेद्यः सम्पक्त्वानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

जिसका शरीर कौय, बगलेसे युक्त हो अथवा ओ विद्यासे क्षिप्त हो कान या मुखमें अशुद्ध वस्तुने प्रवेश कियाहो और जिसके शरीरमें अपवित्र वस्तु छगी हो उसकी मूर्छा मांति छान करनेसे शुद्धि होती है ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं नाभेः करी मुक्ता यद्वगमुपहन्यते ॥

ऊर्ध्वं छानमथ शौचमात्रेणैव विशुद्धयति ॥ १० ॥

हाथोंके अतिरिक्त नाभसे ऊपर जो अशुद्ध वस्तु शरीर पर छग्याय, वो ऊपरके भागमें हो वो छान करनेसे और नाभसे नीचे धर्ममें हो वो शौचसे ही शुद्धि हो जाती है ॥ १० ॥

उपानहावमेर्ष्यं वा यस्य सस्पृशते मुखम् ॥

मृत्सिकाशौचनं छानं पंचगव्यं विशौचनम् ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके मुखमें सूते अथवा किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्शहोयाय वो वह मनुष्य शरीरपर मृत्ती मछकर स्नान करे और पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ११ ॥

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानो स्वयोनिषु ॥

षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥ १२ ॥

ब्राह्मण अपनी जातिके जन्म मरणके अशौचमें दश दिनमें शुद्ध होताहै, और क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रजातियोंमें क्रमानुसार अशौच छैः दिन, तीन दिन, और एक दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥

अपीतवत्समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १३ ॥

भोजनके निमित्त, भोजन करनेवालेके निमित्त जो अन्न रक्खाजाताहै, यदि उस अन्नको खानेवाला न खाकर वैसेही छोडदे तौ वह अन्न मृतकके अन्नकी समान है ॥ १३ ॥

अन्ने भोजनसंपन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ॥

अनंतरं स्पृशेदापस्तच्चात्र भस्मना स्पृशेत् ॥ १४ ॥

यदि भोजनके लिये घनायेहुए अन्नपर मक्खी पडजाय या बाल पडजाय तौ जलसे आचमन करके उस अन्नमें भस्म डालदे ॥ १४ ॥

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ॥

भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ १५ ॥

सूखा मांस अथवा बढई और शूद्रके यहाके अन्नको जो ब्राह्मण अज्ञानतासे खालेताहै वह एक कृच्छ्र करै, और जिसने जानकर खायाहो वह तीन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै १५ ॥

अभुक्तो मुच्यते यश्च भुक्तो यश्चापि मुच्यते ॥ भोक्ता च मोचकश्चैव पश्चाद्-  
रति दुष्कृतम् ॥ १६ ॥ यस्तु भुंजति भुक्तं वा दुष्टं वापि विशेषतः ॥ अहो-  
रात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

जो मनुष्य विना खायेही अथवा भोजन करके उठजाय, उस स्थानपर जो भोजन करताहै और जो भोजन कराताहै यह दोनों मनुष्य पापके भागी होतेहैं ॥ १६ ॥ जो मनुष्य खाईहुई वस्तुको भोजन करताहै वह अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ॥ पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्यो-  
भयतः शुचिः ॥ १८ ॥ उत्तीर्याचामेदुदकादवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ एवं तु श्रेयसा  
युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥ १९ ॥

जल और स्थलमें बैठाहुआ पुरुष शुद्ध है, और दोनों स्थानोंपर बैठाहुआ पुरुष दोनों स्थानोंपर पैर रखकर आचमन करनेमें ही शुद्ध होताहै ॥ १८ ॥ जलमें यदि पैर रक्खाहो तौ किनारा पर पैर निकालकर आचमन करै, ऐसे कल्याणकारी पुरुषकी पूजा वरुणभी करतेहैं ॥ १९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥

स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ २० ॥

अग्निशाखा, गोशाखा और ब्राह्मणोंके निकट, वेद पढ़नेके समय और भोजनके समयमें खड़ाकर्मोंका त्याग करवे ॥ २० ॥

जन्मप्रभृति संस्कारे स्मशानांति च भोजनम् ॥

असर्पिर्दैनं कर्तव्यं शूद्राकार्ये विशेषतः ॥ २१ ॥

जन्मआदि संस्कारोंमें, या प्रेतकार्यमें विशेष करके शूद्राकार्यके समयमें, असर्पिर्दैनं ब्राह्मण भोजन न करे ॥ २१ ॥

याजकाक्ष नवभाद्रं सग्रहे षैव भोजनम् ॥

स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥

याज्ञिक करनेवालेका अन्न, नवभाद्र समझमें भोजन [ जो मरनेपर म्यारहमें दिन होताहै ] और जो स्त्रियोंके पहले गर्भाधानमें भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतको करे ॥ २२ ॥

ब्रह्मौदनेवसाने च सीमतीक्ष्णयने तथा ॥

अन्नभादे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २३ ॥

ब्रह्मौदन ( जो भाव यज्ञोपवीतके समयमें होताहै ) अन्नदान ( जिस समय ब्राह्मण भोजन करचुकेहैं ) और सीमन्तोन्नयन, अन्नका आद्य, मरनेका आद्य, इनमें जो मनुष्य भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे मुक्त होताहै ॥ २३ ॥

अप्रजा या तु नारी स्यान्नाभीपादेव सद्गृहे ॥

अथ भुंजीत मोहाद्यं पूर्यं स नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥

जिस स्त्रीके सम्भान न होवी हो उसके घर भोजन न करे, इन स्त्रियोंके घरमें ब्रह्माग्नि जो मनुष्य खाताहै, वह मनुष्य पूय नामक नरकमें जाताहै ॥ २४ ॥

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥

रीरवे बहुवर्षाणि पुरीष मूत्रमश्नुते ॥ २५ ॥

जो पिता कुछ भी धन लेकर कन्याको दान करताहै वह मनुष्य बहुत वर्षोंतक रीरव नरकमें निवास करके विषा मूत्रका खाता रहताहै ॥ २५ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवति चांपथा ॥

स्वर्णं यानानि धस्त्राणि ते पापा मां त्यधोगतिम् ॥ २६ ॥

जो स्त्रीका धन है ऐसे सुवर्ण और बखोसे जो बंधु चांपथ छोड़ अपनी स्त्रीका निर्वाह करतेहैं वह सब पापी मनुष्य अपयोगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ २६ ॥

राजात्तमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्षसम् ॥

असंस्कृतं तु यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ २७ ॥

राजाका धन बखो नष्ट करताहै और शूद्रका धन मछलेजको इरव्य करताहै, जो मनुष्य अपवित्र वस्तुको भोजन करताहै, वह पृथ्वीका मल भोजन करताहै ॥ २७ ॥

मृतके सूतके षैव ग्रहणे शक्तिमास्करे ॥

हस्तिच्छायां तु यो भुंक्ते स पापं पुरुषो भवेत् ॥ २८ ॥

मरणसूतकमे और जन्मभूतकमें, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें और गजच्छा-  
यामे जो पुरुष भोजन करताहै वह पापी है ॥ २८ ॥

पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधाः कामचारिणी ॥

आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९ ॥

दो बार वियाही हुई पुनरेता और रेतोधा, जो जहां तहांसे वीर्यको धारण करतीरहै वह  
व्यभिचारिणी है, इन सब स्त्रियोंके यहाका अन्न पहिले गर्भाधानके संस्कारमे जो मनुष्य  
खाताहै वह चांद्रायण करै ॥ २९ ॥

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥

विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ३० ॥

माताका मारनेवाला, पिताका मारनेवाला, ब्राह्मणका मारनेवाला, और गुरुकी छीके संग  
रमण करनेवाला इनके यहाका जो मनुष्य अन्न खाताहै वह चान्द्रायणका प्रायश्चित्त करनेसे  
शुद्ध होताहै ॥ ३० ॥

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥

भुक्तैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥ ३१ ॥

घोबो, व्याध, नट, बास, और चामसे जीनेवाले इनके यहाँके अन्नका ब्राह्मण भोजन करता  
है, वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंपृष्टः कदाचिदुपजायते ॥ सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचि-  
र्भवेत् ॥ ३२ ॥ उच्छिष्टोच्छिष्टसंपृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥ उपोष्य  
रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३३ ॥

यदि उच्छिष्ट मनुष्यको उसी जातिका उच्छिष्ट छूले तौ उसी समय उठ केवल आचमन  
करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है ॥ ३२ ॥ यदि जिस ब्राह्मणको उच्छिष्टने छूलियाहो उसे  
कुत्ता अथवा शूद्र छूले तौ एक रात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥

भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणकी आज्ञाको पालन करनेवाले शूद्रको पृथ्वीपर ही अन्न खानेके लिये देना उचित  
है, कारण कि जिम भाँति कुत्ता है वैसा ही यह भी है ॥ ३४ ॥

अनुदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुले पथि ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं  
शुचिः ॥ ३५ ॥ भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः ॥ उत्संगे गृह्य प-

( १ ) जिस समय कृष्णपक्षकी त्रयोदशी हो और सूर्य हस्तनक्षत्र पर स्थित हों और चन्द्रमा मघा-  
नक्षत्रके ऊपर हो उसे गजच्छाया योग कहतेहैं ।

काम्रमुपस्वुश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥ सूत्रोच्चारं द्विजं कृत्वा अकृत्वा क्षीचमात्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्धयति ॥ ३७ ॥

( प्रश्न ) अच्छीन स्वानोमें, बभमें, चोर और सिंह किसमें हों उन मार्गोंमें भोजन हाबमें छियेहुए जा मनुष्य मळ सूत्र त्याग करताहै और उस वस्तुको खाछेवाहै उसधी शुद्धि किस प्रकार होतीहै? ॥ ३५ ॥ ( उत्तर ) वह मनुष्य पृथ्वीपर अन्नको रखकर और यथाध शौच करके गोदीमें पकाअ छेकर आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मूत्र करके बिना शौच किये हुए अज्ञानसे भोजन करछेवा है वह तीन रात तक मस्तीभाति पचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३७ ॥

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥

चांद्रायणेन शुद्धयेत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥

मदसे मोहितहुआ ब्राह्मण यदि रजत्वळा कीके साथ गमन करछे ती चांद्रायण प्रथम करे और बहुतसे ब्राह्मणोंके भोजन करानसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥

भुक्त्वोच्छिष्टेऽस्त्वनाचांतश्चक्षालिः शपचेन वा ॥ प्रमादाद्यदि सस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानबुधलः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा त्रिषणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥ स त्रिरात्रेषु तो भूत्वा पचगव्येन शुद्धयति ॥ ४० ॥

भोजनके उपरान्त बिना ही आचमन किये उच्छिष्ट अन्नखाते यदि ब्राह्मणको अज्ञानसे शपथ वा चांडाल सूछे ॥ ३९ ॥ ती त्रिकाळ स्नान और ब्रह्मचारी हो, नित्य पृथ्वीपर स्थान करताहो तो वह तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४० ॥

षडालेन तु सस्पृष्टो यथापः पिवति द्विजः ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा त्रिषणणेन शुद्धयति ॥ ४१ ॥ सायं प्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥ सायं प्रातस्त यैवैक दिनद्वयमपाचितम् ॥ ४२ ॥ दिनद्वयं च नाम्नीयात्कृच्छ्राद् तद्विधीयते ॥ मायश्चित्तं लघुष्वेतत्पापेषु तु यथाईत ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य चांडालको सूकर अळ पीताहै वह अहोरात्र उपवास करके त्रिकाळ स्नान कर सेसे शुद्ध होताहै ॥ ४१ ॥ अहोरात्र ( एक दिन ) सायंकाळ और प्रातःकाळ भोजन करे इसको पादकृच्छ्र कहतेहै; और एक दिन सायंकाळ अथवा प्रातःकाळमें भोजन न करे, और दो दिन बिना मांगे जो मिछे उसे भोजन करे ॥ ४२ ॥ और दो दिन उपवास करे उसे कृच्छ्रार्थ कहतेहै छमु पापोंमें यह मायश्चित्त उचित है ॥ ४३ ॥

कृष्णामिनतिलग्राही हृत्स्यभानां च विक्रयी ॥

प्रेतनिर्पातकश्चैव न सुयः पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥

हृत्पापस्त्वपीये चर्मणाके नवमोऽप्यायः ॥ ९ ॥

कासी सुगन्धका, और तिल इनका दान छेत्वाळा, दाधी और घोडेको देधेबाळा और मुतकरेदका मीसछेकर बजानेबाळा पुढय इनकी गणना पुरुषोंमें नहीं होती ॥ ४४ ॥

इति आपस्तम्बे चर्मणाके मायादीकार्यां नवमोऽप्यायः ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः १०.

आचांतोप्यशुचिस्तावद्यावन्नोद्धियते जलम् ॥ उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावद्भूमिर्न  
लिप्यते ॥ १ ॥ भूमावपि च लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ॥ आसनाद्-  
त्थितस्तस्माद्यावन्नाक्रमते महीम् ॥ २ ॥

आचमन करनेके पीछे मनुष्य तबतक अशुद्ध रहताहै जबतक पृथ्वीपर से वह जल न उठाया  
जाय, और पृथ्वी विना लिपे अशुद्ध रहती है ॥ १ ॥ पृथ्वीके लीपेजानेपरभी जबतक  
अशुद्ध रहताहै जबतक कि आचमनके आसनसे उठकर उस लीपीहुई पृथ्वीपर न बैठे ॥२॥

न यमं यममित्यादुरात्मा वै यम उच्यते ॥

आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥

यमराजको यम कहकर नहीं पुकारते परन्तु अपनी आत्माको ही यम कहतेहैं, जिस मनु-  
ष्यने मनको अपने वशमें कर लियाहै, यमराज उसका क्या कर सकताहै ॥ ३ ॥

न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥

यथा क्रोधो हि जंतूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥

खड्गभी ऐसा तीक्ष्ण नहीं है, और सर्पभी ऐसा भयंकर नहींहै जैसा कि प्राणियोंके शरी-  
रमें क्रोध उनका नाश करनेवाला है [ इस कारण सब भाँतिसे क्रोधको त्यागदे ] ॥ ४॥

क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः ॥ एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपप-  
द्यते ॥ यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ५ ॥

मनुष्योंमें क्षमाही एक गुण है, वह इस लोक और परलोकमें सुखकी देनेवालीहै क्षमावान्  
मनुष्योंमें एक दोषके अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता (वह दोष क्या है उसे कहतेहैं) क्षमा-  
शील मनुष्यको मूर्खजन असमर्थ विचारतेहैं ॥ ५ ॥

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥ न भोजनाच्छादन-  
तत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ६ ॥ एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवे-  
त्प्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यङ्मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य ॥ ७ ॥

व्याकरण शास्त्रमें जिसका मन लवलीन होजाय उसकी और जिसका ग्यारा रमणीक  
घर है उसकी और भोजन वस्त्रमें तत्पर हैं उनकी, और जो ससारके मनको वश करनेमें  
रत हैं उनकी मोक्ष नहीं होती ॥ ६ ॥ परन्तु जो एकान्तमें निवास करे और जो दृढ व्रतसे  
रहै और सबकी प्रीतिसँ दूर रहै, जो दूसरेकी हिंसा न करे, और जो अध्यात्मयोगमें तत्पर  
रहै ऐसे मनुष्यकी मोक्ष होजातीहै ॥ ७ ॥

क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥

सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥ ८ ॥

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करताहै, होम करताहै, जो पूजा करताहै वह कचे घडेकी समान नष्ट  
होजातेहैं अर्थात् जैसे कचे घडेमें जल नहीं ठहरता ॥ ८ ॥



अपमानात्तपाशुद्धिं समानात्तपस क्षयं ॥ अर्चितं पवित्रो विप्रो दुग्धा गीरिव  
सीवति ॥ ९ ॥ आप्यायते यथा धेनुस्वप्निरमृतमभवे ॥ एव जपैश्च हार्मैश्च  
पुनराप्यायते द्विज ॥ १० ॥

अपमानसे तपस्याकी वृद्धि होती है, और सम्मानस तपस्याका नाश होता है पूजित और  
सन्मानित ब्राह्मण अवसन्न होजाता है, जिस भाँति दुधारु गौ प्रतिदिन दुहनेसे क्षिप्त होजाती  
है ॥ ९ ॥ जिस भाँति वही गौ जलसे तपस्यहोई भासादिसे खाकर पुष्टा पाती है वही  
भाँति ब्राह्मण भी जप होम और पुण्य कार्यके करनेसे फिर उन्नतिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

मातृवत्परदारान्श्च परदृष्याणि लोष्टयत् ॥

आत्मवत्सवभूतानि य पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥

जो मनुष्य माताकी समान पराई स्त्रीको देखता, और पराये द्रव्यको छोट ( बछे ) की  
समान देखता है और जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी समान देखता है वह मनुष्यही यथाव  
देसनेवाला है ज्ञानवान् है ॥ ११ ॥

रजकथ्यायक्षैलूयधेषु चर्मोपजीविनाम् ॥

यो मुंक्ते मुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विस्रोधनम् ॥ १२ ॥

पापी, व्याध, घट और वाँस तथा जो चर्मसे जीविका निर्वाह करते हैं, जो मनुष्य इन-  
के यहाँके अन्नको मोसल करता है वह प्राजापत्यका प्रायश्चित्त करनेसे मुक्त होता है ॥ १२ ॥

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥

शुद्धिं चांद्रायणं कृत्वा अयधान्ते तथैव च ॥ १३ ॥

गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन, मद्यपन करने अयोग्य के अर्थात् जो बर्तने आदि  
के यहाँका अन्न खाता है उसकी शुद्धि चांद्रायण प्रवसे होती है ॥ १३ ॥

अभिदोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥

तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चांद्रायणाहते ॥ १४ ॥

जो मनुष्य अभिदोत्रको त्यागता है उस मनुष्यको वीरहत्याका पाप समता है, बिना चांद्रा  
यणके करनेसे उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ १४ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥ सद्यः शुद्धिं विजानीयात्सर्वसंकल्पित

श्च यत् ॥ १५ ॥ देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रतलेषु च ॥ कल्पित सिद्ध

मन्नाद्य नाक्षीश्च मृतसूतके ॥ १६ ॥

इत्यापस्तम्बो वै धर्मशास्त्रे दृश्यतेऽभ्यासः ॥ १० ॥ ॥

विवाह, उत्सव, यज्ञकार्यके होनेपर यदि अन्मसूतक व्यवसा मरणसूतक इत्याप तो उन्ही  
समय शुद्धि होजाती है, कारण कि उस यज्ञका सकस्य पक्षेही कर दिवाया ॥ १५ ॥  
देवद्रोणी विवाह और घटे यज्ञमें मरण और अन्मसूतकमें मनाया हुआ पक्षान्न  
अमुक्त नहीं होता ॥ १६ ॥

इति आपस्तम्बो वै धर्मशास्त्रे मातृवत्सवभूतानि दृश्यतेऽभ्यासः ॥ १ ॥

आपस्तम्बस्मृति समाप्ता ७

श्रीः ॥

## अथ संवर्त्तस्मृतिः ८.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ संवर्त्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम् ॥ ऋषयस्तसुपागम्य  
पप्रच्छुर्धर्मकांक्षिणः ॥ १ ॥ भगवच्छ्रोतुमिच्छामो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥  
यथावद्भर्ममाचक्ष्व शुभाशुभाविवेचनम् ॥ २ ॥ वामदेवादयः सर्वे तं पृच्छन्ति  
महौजसम् ॥ तानब्रवीन्मुनीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

इकले बैठेहुए, सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंके पारको जाननेवाले संवर्त्तमुनिके निकट  
आकर धर्मके सुननेकी अभिलाषा करनेवाले मुनि पूछने लगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! ब्राह्म-  
णोंके धर्मके साधनको हम सुननेकी इच्छा करतेहैं, जिससे शुभ और अशुभका पृथक् २  
ज्ञान हमें हांजाय ऐसे यथार्थ धर्मको विचारकर कहिये ॥ २ ॥ इस भाति वामदेवादि ऋ-  
षियोंके कहनेपर महातेजस्वी ऋषिश्रेष्ठ संवर्त्तमुनि प्रसन्नहोकर बोले कि, तुम श्रवण  
करो ॥ ३ ॥

स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः ॥

धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥

काला मृग जिस देशमें सदा अपनी इच्छानुसार विचरण करै वह देश धर्मदेश है, और  
ब्राह्मणोंके धर्मसाधनके लिये योग्य स्थान है ॥ ४ ॥

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितभाचरेत् ॥ स्रग्ंधमद्युमांसांनि ब्रह्मचारी विवर्ज-  
येत् ॥ ५ ॥ संध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ सादित्यां पश्चिमां संध्या-  
मर्द्धास्तमितभास्करे ॥ ६ ॥ तिष्ठन्पूर्व जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ आ-  
सीनः पश्चिमां संध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥ अग्निकार्यं च कुर्वीत मेधावी  
तदनंतरम् ॥ ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥ प्रणवं प्राक्  
प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥ गायत्री चालुपूर्व्येण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥  
हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जालुभ्यामुपरि स्थितौ ॥ गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमति-  
र्भवेत् ॥ १० ॥ सायं प्रातरु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥ निवेद्य गुरवेऽग्नी-  
यात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥

यज्ञोपवीत होजाने पर ब्राह्मण प्रतिदिन गुरुदेवका हितकारी कार्य करै, ब्रह्मचारी माला,  
गण, मद्य, मांस, इनका त्याग करदे ॥ ५ ॥ नक्षत्रोंके विना छिपेहुए प्रात कालकी संध्या करै;  
और सूर्यदेवके आधे अस्त होजाने पर सायंकालकी संध्या करै ॥ ६ ॥ जबतक सूर्यका  
दर्शन भली भाँतिसे न होजाय तबतक खड़ा होकर दरावर गायत्रीका जप करनारहै, और

जबतक नक्षत्र मन्त्री भ्रंतिसे उदय न होजायें तबतक सायंकालमें बैठकर जप करता रहै ॥७॥ इसके पीछे ज्ञानवान् पुरुष अग्निहोत्रको करै, फिर होमकार्यके समाप्त होनेपर गुदरेवके मुखको बलता हुआ वेदको पढ़ै, ॥ ८ ॥ सबसे आगे ओंकारका उच्चारण करै, इसके अनन्तर सात व्याहृति पढ़ै, इसके उपरान्त गायत्रीको पठकर पीछे वेदका पठना प्रारम्भ करै ॥ ९ ॥ दोनों गोर्भोंके ऊपर सावधानी से हाथ रखकर एकाम भनसे अग्न्यवुद्धि हो गुदरेवकी आशा-अनुसार वेदको पढ़ै, पहले समय बुद्धिको बृद्धी और न क्षमायै ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंका नियम अथवा भवनपूर्वक प्रातःकाल और सायंकालमें भिक्षा मांगे; इसके उपरान्त उस भिक्षाको गुदरेवको निवेदन कर पूर्वमुख हो मौनको धारणकर पवित्रमापसे भोजन करै ॥ ११ ॥

सायमातर्दिजातीनामश्न सुतिनोदितम् ॥

नातरा भोजन कुर्यादग्निहोत्री समाहित ॥ १२ ॥

ब्राह्मणोंको सायंकाल और प्रातःकाल दिनमें दो समय भोजन करना वेदने कहा है, इसमें सावधान मनुष्य बीचमें भोजन नहीं करै ॥ १२ ॥

आचम्येष तु मुञ्जीत मुक्त्वा चोपस्पृशेद्विज ॥ अनाथांतस्तु योऽग्नीयात्प्रापधि  
तीयते तु स ॥ १३ ॥ अनाथांतं पिवेषस्तु योऽपि वा भक्षयेद्विज ॥ गाय  
त्र्यष्टसहस्र तु जपं कुर्यान्विशुद्धयति ॥ १४ ॥ अकृत्वा पादसौत्रं तु तिष्ठन्मुक्त-  
शिक्षोऽपि वा ॥ विना यज्ञोपवीतेन स्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥

भोजनके पहले आचमन करै, भोजनके पीछे आचमन करै, और जो आचमन के बिना किये हुए भोजन करेवेह, तनको प्रायश्चित्त करना होगा ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण बिना आचमन किये हुए भोजन करता है वा खल पीताहै वह मनुष्य आठ हजार गायत्रीका जप करने से मुक्त होता है ॥ १४ ॥ पैरोंके बिना घोरे, अथवा चोटी में बिना गाँठबन्धे यज्ञोपवीतके बिना जो मनुष्य आचमन करताहै वह अशुद्ध रहताहै ॥ १५ ॥

आधामेद्भ्रतृतीयेन चोपवीती शुद्धः सुस्व ॥ उपवीती द्विजो नित्यं मादसुस्वो  
वाग्यतं शुचि ॥ १६ ॥ जले अलस्यथाचांतं स्पलाचांतो वहिं शुचि ॥  
वहिरतस्य आचांतं एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ आमणिवंधादस्तौ च पादा-  
वद्विर्षिशोधयत् ॥ परिमृज्य दिरास्यं तु द्वादशांगानि च स्पृशेत् ॥ १८ ॥  
घ्रात्वा पीत्वा तथा क्षुत्वा मुक्त्वा स्पृष्ट्वा द्विजोऽथम ॥ अनेन विधिना सम्य-  
गाचांतं शुचितामियात् ॥ १९ ॥ शुद्धं शुद्धयति हस्तेन वैश्यो वृत्तिषु वारिभिः ॥  
कठाम्गैः सत्रियस्तु आचांतं शुचितामियात् ॥ २० ॥

उत्तरकी ओरको मुख करके यज्ञोपवीतको धारणकर ब्रह्मवीर्यसे ( यह भंगुटेकी जड़में होताहै ) आचमन करै; पूर्वकी ओरका मुख करके बैठा हुआ यज्ञोपवीतको धरे हुए मौन-धारी ब्राह्मण नित्य प्रद्व होताहै ॥ १६ ॥ जलमें शिवपुत्रका पुरुष जलमें आचमनकरै; और स्वयंमें बैठाहुआ पुरुष स्वयंमें बैठकर आचमन करनेसे मुक्त होताहै, उस भाँवि बाहिरे और जलमें आचमन करनेसे अग्नि प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ मणिवंधवक हाथ पैरको जलसे धोवे,

पीछे दोवार मुखको पोंछकर बारह अंगोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ स्नानके अनन्तर जलपान, छींक, भोजन और अपवित्र वस्तुका स्पर्श करके ब्राह्मण इस भाँति आचमन करनेसे शुद्ध होवाहै ॥ १९ ॥ शूद्र जलसे हाथ धोनेसे शुद्ध होताहै, और वैश्य दांतोंतक जलजानेसे शुद्ध होताहै, क्षत्रिय कंठतक जलके जानेसे ( आचमनसे ) शुद्ध होताहै ॥ २० ॥

आसनारूढपादस्तु कृतावसक्थिकस्तथा ॥

आरूढपादुको वापि न शुद्ध्यति कदाचन ॥ २१ ॥

आसनपर पैर रखकर, घुटनोंको उठाये हुए, जो खड़ाऊँपर चढकर आचमन करताहै, उसकी कभी शुद्धि नहीं होती ॥ २१ ॥

उपासीत न चेत्सध्यामभिकार्यं न वा कृतम् ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यने सध्या और अभिहोत्र न कियाहो; वह सावधान होकर अष्टोत्तरसहस्र बार गायत्रीका जप करै ॥ २२ ॥

सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीयात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३ ॥

जो ब्रह्मचारी सूतकका अन्न, नवश्राद्ध और मासिक श्राद्धका अन्न खाता है उसकी शुद्धि त्रिरात्रमें होतीहै ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्त्रियं कामप्रपीडितः ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयंत्रितः ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी कामदेवसे मोहित होकर स्त्रीका संग करताहै, वह सावधान होकर एक प्राजापत्य कृच्छ्र करै ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥

प्राजापत्यं तु कृत्वासौ मौजी होमेन शुद्ध्यति ॥ २५ ॥

कदाचित् किसी ब्रह्माचारीने मद्य और मांसको खालिया हो तौ वह प्राजापत्यव्रत करके मौजी ( मूजकी कौंधनी ) के पहरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

निर्वपेत्तु पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि ॥

मंत्रैः शाकलहोमांगैरभावाज्यं च होमयेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी पर्वके दिन पुरोडाश दे, और शाकल होमके अंगभूत मंत्रोंसे घृतका हवन करै ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्रमात्मनः ॥

अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्ध्येदकामतः ॥ २७ ॥

१ यह यज्ञोपवीतके समान प्रवर अर्थसहित यज्ञोपवीतके समय पहराई जातीहै, कहीं २ इसे गलेमें जनेऊकी तरह पहरातेहैं सो भूलसे, कारण कि “कटिप्रदेशे त्रिवृतम्” इस गृह्यसूत्रमें कौंधनी करकेही उसका पहरना लिखाहै; भूलका कारण यज्ञोपवीतके समान होनाही है ।

जो मद्यपारी जानकर अपने वीर्यको निकाले तो अवधीर्गिनामक ( मद्यपर्यवृत मद्य होजानेपर के ) प्रायश्चित्तसे शुद्ध होताई; और यदि अज्ञान ( स्वप्रायिक ) से वीर्य निकल-  
जाय तो स्नान करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २७ ॥

मिहाटनमाटित्वा तु स्वस्यो देकास्रमश्नुते ॥

अत्रात्वा वैश यो मुक्ते गायत्र्यष्टशत जपेत् ॥ २८ ॥

जो मिहा मांगकर अपनी स्वस्य ( भारोग्य ) अवस्थामें पकड़ीके महोका अन्न खाताहै,  
या जो बिना स्नानही किये खाताहै वह आठसौ गायत्रीके अपनसे शुद्ध होताहै ॥ २८ ॥

शुद्धहस्तेन योभ्रीयात्पानीय वा विबेत्कषित् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पच

गभ्येन शुद्धघति ॥ २९ ॥ मुक्त पर्युषितोच्छिष्ट भुक्त्वात्र फेस्रवूषितम् ॥

अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धघति ॥ ३० ॥ शूद्राणां भाजने मुक्ता

भुक्ता वा भिन्नभाजने ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पचगभ्येन शुद्धघति ॥ ३१ ॥

जो कमी भी धूत्रके हाथसे भोजन करताहै, या उसके हाथसे पानी पीताहै, उसकी शुद्धि  
अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥२९॥ बासी, चच्छिष्ट और जिसमें बाळभ्यदि  
पड़ेहो ऐसे अन्नको खानेबाखाने मनुष्य अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होत  
है ॥ ३ ॥ जिसने धूत्रके यहाँके बरतनमें अथवा टूटेहुए बरतनमें भोजन कियाहै उसकी  
शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ३१ ॥

दिवा स्वपिति यः स्वस्यो ब्रह्मचारी कथञ्चन ॥

ज्वात्वा सूर्य समीक्षेत गायत्र्यष्टशत जपेत् ॥ ३२ ॥

कदाचित् ब्रह्मचारी दिनके समयमें सोजाय घी जानकरनेके उपरंत स्वर्बदकको बसन्तकर  
आठसौ गायत्रीके अपनसे शुद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥

एष संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥

प्रथमआश्रमवासियोंका ( ब्रह्मचारियोंका ) यह धर्म कशागवा को इसके अनुसार पठाव  
करताहै वह परम गतिको पाताहै ॥ ३३ ॥

अतो द्विजः समापृष्टः सवर्णा स्त्रियमुद्रहेत् ॥ कुल मदति संभूतां लक्ष्मिस्तु

समन्विताम् ॥ ३४ ॥ ब्राह्मेणैव विवाहेन क्षीलरूपगुणान्विताम् ॥

जो ब्राह्मण इस ब्रह्मचर्य आश्रमसे विमुक्त होगया हो वह एसी स्त्रीके साथ अपनी विवाह  
करे जो अपने कर्णकी और अच्छे कुलमें बरपन हुईहो और शुभ लक्षणवाली हो ॥ ३४ ॥  
और रूप हीछ, गुण सबभी सम्पूर्ण अथवा उसमें विद्यमान हों ऐसी स्त्रीके साथ ब्राह्मण  
विवाह करे,

१ उच्यते यत्र और अमुपपन्न पढ़नाकर विद्वान् और शुद्धीक लच्छेकी पुष्पकर को कथादीजानी है  
उठे ब्राह्मण विवाह करतेहैं ।

अतः पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्दिजः ॥ ३५ ॥ न हापयेत्तु ताञ्छक्तः श्रेय-  
स्कामः कदाचन ॥ हानि तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥

इसके उपरांत ब्राह्मण प्रतिदिन पंच महायज्ञ करे ॥ ३५ ॥ कल्याणकी इच्छा करनेवाला  
ब्राह्मण उनका त्याग कभी न करे, परन्तु जिस समय जन्म मरणका सूतक होजाय उससमय  
उनको न करे ॥ ३६ ॥

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ॥ क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पशुद-  
शैव तु ॥ ३७ ॥ शूद्रः शुद्ध्यति मासेन संवत्तवचनं यथा ॥ प्रेतायान्नं जलं  
देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥

उस सूतकमें ब्राह्मण दान और पढ़नेसे रहित दश दिनतक, क्षत्रिय बारह दिनतक, और  
वैश्य पंद्रह दिनतक रहें ॥ ३७ ॥ और शूद्रकी शुद्धि संवत् ऋषिके वचनके अनुसार एकही  
महीने में होतीहै सम्पूर्ण सगोत्री मिलकर प्रेतको अन्न और जल दे ॥ ३८ ॥

प्रथमेहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥ चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः  
॥ ३९ ॥ ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै  
क्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥ अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥

ब्राह्मण पहले, तीसरे, सातवें, नवमें अथवा चौथे दिन अस्थिसंचयन करे ॥ ३९ ॥ अस्थि-  
संचयनके उपरान्त देहका किसीके साथ स्पर्श न करे, अर्थात् पहले किसीको न छुए, ब्राह्मण  
का चौथे दिन में और क्षत्रियका छठे दिनमें ॥ ४० ॥ वैश्यका आठवें दिनमें और शूद्रका  
दसवें दिनमें स्पर्शकरना कहा है

जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥

जन्मके सूतकमें बड़े २ ऋषियोंने यही विधि देखी है ॥ ४१ ॥

दशरात्रेण शुद्ध्येत विप्रो वेदविवर्जितः ॥

जिस ब्राह्मणने वेद न पढाहों वह दशरात्रिमें शुद्ध होताहै,

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥ माता शुद्ध्येदशोद्देन स्ना-  
नात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ४३ ॥ पंचयज्ञ-  
विधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥ दशाहास्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्म-  
वित् ॥ ४४ ॥

जिस समय पुत्र पैदाहो उस समय पिताको बख्खसाहित स्नान करना कहाहै ॥ ४२ ॥ मा-  
ताकी शुद्धि दशदिन में होतीहै, और पिताका स्पर्श स्नानकरनेसे भी उचित है, सूके अन्न वा  
फलसे जन्मसूतकमें हवन करे ॥ ४३ ॥ पंच यज्ञ को जन्म और मरणसूतक में न करे, दश-  
दिनके उपरान्त धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण भली भांतिसे पढे ॥ ४४ ॥

दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् ॥ यद्यादिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं  
भवेत् ॥ ४५ ॥ तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयश्चिच्छ्रुता ॥ नानाविधानि द्रव्याणि

धान्यानि सुवहूनि च ॥ ४६ ॥ समुद्रे यानि रत्नानि नरा विगतकल्मष ॥  
 दत्त्वा गुणाढ्यविधाय महती भियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ गधमाभरणं माल्य य  
 प्रयच्छति धर्मवित् ॥ समुगध सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥ ४८ ॥ भोत्रि  
 याय कुलीनायाम्यर्धिने हि विशेषतः ॥ यद्दान दीयते मत्स्या तद्रवेत्सुमहत्क  
 ल्म ॥ ४९ ॥ आहूय शीलसपन्न भुतेनाभिमानेन च ॥ शुचिं विप्रं महाप्राज्ञ  
 हृष्यकष्यैस्तु पूजयेत् ॥ ५० ॥ नानाविधानि द्रव्याणि रसवतीप्सितानि च ॥  
 भेषकामेन देयानि तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥

पापोंका नाशकरनेहार अनेक मांठिका दान दे और संसारमें इस मनुष्यको जो २ इष्ट  
 और प्यारा है अपने अक्षय पुण्यकी इच्छा करनेवाला पुरुष बड़ी वह वस्तु विद्यावान् मनु-  
 ष्यको दे; अनेक मांठिके द्रव्य और बहुतसे जन्न, मुद्रा और रत्न जो पापरहित मनुष्य इन्हें  
 गुणवान् ब्राह्मणको देताहै, उसको महाकल्मी प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य गेध,  
 भूषण, पूछ इनको देताहै, वह सुगंधसहित सर्वदा प्रसन्न हो बड़ा ठहरा उत्पन्न होताहै ॥ ४८ ॥  
 वेद पढ़नेवाले कुलवान् और विशेष करके अम्यागवोंको जो दान दियामाणा है, वह महाकल  
 का देनेवाला होताहै ॥ ४९ ॥ शीलवान्, कुलवान्, देवके ज्ञाननेवाले हृष्ट और जन्त  
 बुद्धिमान् ब्राह्मणकी इच्छा ( देवताओंके जन्न ) से और कर्म ( पितरोंके जन्न ) से पुरुष  
 पूजा करे ॥ ५० ॥ उत्तम रसयुक्त ऐस नाना प्रकारके सम्पूर्णद्रव्य अक्षय स्वर्गकी कामना  
 करनेवाले मग्न्यार्थी मनुष्यको दान करनाउचित है ॥ ५१ ॥

वत्सदाता सुवेष स्यादुष्यदो रूपमेव च ॥ हिरण्यदं समृद्धिं च तेजसायुध विदति  
 ॥ ५२ ॥ भूताभयप्रदानेन सर्वा कामानवाप्नुयात् ॥ दीर्घमायुश्च लभते सुखी  
 चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥ धन्योदकप्रदायी च सर्षिदं सुखमेभते ॥ अलंकृत  
 स्थलकार दातामोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥ फलमूळानि विप्राय शाकानि विधि  
 धानि च ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥ तांपूलं दैव  
 या दद्याद्वाह्मणेभ्यो विचक्षण ॥ मेधावी सुभग प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ ५६ ॥  
 पादुकोपानही छत्र शयनान्पासनानि च ॥ विविधानि च यानानि द्रव्या द्रव्यपति  
 भवेत् ॥ ५७ ॥ दद्याद्य शिशिरे पङ्क्तिं पद्भ्यास्तं प्रयत्नत ॥ कायामिदीति प्रा  
 णस्य रूप सीभाग्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ औषध खेदमाहार रागिणां रोगशांतये ॥  
 दद्यात्स्याद्वागरदितं सुरी दीपायुरेव च ॥ ५९ ॥ इयनानि च यो दद्याद्विप्र  
 भ्यः शिशिरागमे ॥ नित्यं जपति सप्रामे भिषा पुत्रस्तु दीप्यते ॥ ६० ॥

जो मनुष्य वत्सदान करताहै, वह सुन्दर धरतीसे दोभावमान हाताटे चांदीका देनेवाला  
 मनुष्य रूपवान् होताहै, सुवर्ण देनेवालेकी बड़ी आयु होतीहै और धनार्थ बुद्धि होतीहै  
 ॥ ५२ ॥ प्राणियोंके अमयदान देनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होवे अथवा शैषाणु और सुरी  
 हाताहै ॥ ५३ ॥ जन्न, जल और पीके दान करनेसे मनुष्य सुख भाग्यार्थ और भूषणों  
 के दान करनेसे भूषणवाला बटे कच्छो प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य १०० मूल तथा

नाना प्रकारके शाक और सुगंधवाले फूल इनको दान करताहै वह पंडित होताहै ॥ ५५ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणको ताम्बूल ( पान ) का दान करताहै वह विद्वान् और दर्शनीय तथा भाग्यवान् होताहै ॥ ५६ ॥ खडाऊ, जूता, छत्री, शय्या आसन और अनेक भांतिकी सवारी इनका दानेवाला धनवान् होताहै ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य शीतकालमें अग्नि और बडे यत्नसे काष्ठ देताहै, वह जठराग्निकी समान कांतिवाला, पंडित तथा रूपवान् और भाग्य-शाली होताहै ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य रोगियोंके रोगको दूर करनेके लिये औषधी, स्नेह ( घृत ) इनको मिलाकर भोजन देताहै, वह रोगरहित होकर सुखी और चिरंजीवी होताहै ॥ ५९ ॥ शीतकालमें मनुष्य ब्राह्मणको काष्ठ ( ईंधन ) देताहै, वह मनुष्य युद्धके समय शत्रुओको जी-तताहै, और लक्ष्मीवान् होकर दीप्तिमान् होताहै ॥ ६० ॥

अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ॥ ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तां तु  
सुपूजिताम् ॥ ६१ ॥ स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विदति पुष्कलम् ॥ साधुवा-  
दं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ६२ ॥ ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं  
शतगुणीकृतम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममंत्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥ तां दत्त्वा  
तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ॥ पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु  
॥ ६४ ॥ रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्तेऽथ कन्यकाम् ॥ रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वाः कुचौ  
दृष्ट्वा तु पावकः ॥ ६५ ॥ अष्टवर्षा भवेद्रौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा  
भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव  
च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥ तस्माद्विवाहयेत्कन्यां  
यावन्नर्तुमती भवेत् ॥ विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य भूषण वस्त्रादि पहराकर भली भातिसे पूजितहुई कन्याको योग्य वरके हाथमें ब्राह्म विवाहकी रीतिके अनुसार देताहै ॥ ६१ ॥ वह कन्याके दानकरनेसे महाकल्याणको प्राप्त होताहै, और सज्जनोमें बडाई पाकर उत्तम कीर्तिमान् होताहै ॥ ६२ ॥ होमके मंत्रोंसे सस्कार कीहुई कन्याके दानकरनेपर मनुष्य दश सदस्र ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ वस्त्र, अलकारोंसे जो मनुष्य कन्याकी पूजा, उत्सव और वृद्धि (पुत्रादिके जन्मसमयमें) करता है वह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ (अविवाहित कन्याके ) रोमोंके निकल आनेके समयमें कन्याको चद्रमा भोग करतेहैं और ऋतुमती होनेके समयमें गंधर्व भोगतेहैं, दोनों स्तनोंके ऊंचे होनेपर अग्नि भोगताहै ॥ ६५ ॥ आठवर्षतक कन्या गौरी है नवमें वर्षमें रोहिणी और दसवर्षमें कन्याको कन्या कहाहै, इसके उपरान्त कन्याकी संज्ञा रजस्वला होजातीहै ॥ ६६ ॥ कन्याको ऋतुमती हुआ देखकर बडा भाई, माता, पिता यह तीनों नरकमें जातेहैं ॥ ६७ ॥ इस कारण रजोदर्शनके विनाहुएही कन्याका विवाह करना श्रेष्ठ है, और आठ वर्षकी कन्याका विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥

तैलामलकदाता च स्नानाभ्यंगप्रदायकः ॥

नरः प्रहृष्टश्चासीत् सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥



वैद्य, आंघोषे, स्नानके निमित्त अन्न, और वस्त्रन इनका दान जा मनुष्य करताहै, वह सर्वदा भानन्विद्य होकर भाग्यवान् होताहै ॥ ६९ ॥

अनन्दाही तु यो दद्याद्विजे सीरेण सप्तुती ॥ अल्लकृत्य यथाशक्त्या पूर्वद्दो शुभ  
लक्षणा ॥ ७० ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वित ॥ वपाणि वसते स्व  
र्गे रोमसक्याप्रमाणत ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य उत्तम सभ्रणवाले, जोवन चाय दो पैसोंको अल्लकृत कर इसके साथ ब्राह्मणको देताहै ॥ ७० ॥ वह सम्पूर्ण पापोंसे वृद्धर सत्र कामनाओंके साथ मिलने रोम पैसोंके धरीरपर हैं वचनेही यथोक्त स्वर्गमें वासकरताहै ॥ ७१ ॥

धेनु च यो द्विजे दद्यादल्लकृत्य पयस्विनीम् ॥

कांस्यषष्ठादिभिर्गुक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥

कौंसीके पात्र और षष्ठीसे अल्लकृतकर दूध देनेवाली गौको जो मनुष्य माछणको दान करताहै, वह स्वर्गलोकेमें पूजित होताहै ॥ ७२ ॥

भूमिं सस्यवर्ता श्रेष्ठां ब्राह्मणे वंदपारगे ॥ गां दस्वद्वमसूतां च स्वर्गलोके मही  
यते ॥ ७३ ॥ यावति सस्यमूलानि गोरामाणि च सर्वश ॥ नरस्तावंति वर्षा  
णि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥ यो वदाति क्षत्रे रीर्ष्येहैमशृगीमरोगिणीम् ॥  
सवत्सां याससा पीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५ ॥ तस्यां यावति रोमा  
णि सवत्सायां दिव गत ॥ तावति वत्सरांतानि स नरो ब्रह्मणोतिके ॥ ७६ ॥

अन्न उत्पन्नहुई पृथ्वी और माची म्प्यई गौ इन्हें बेरके पार जाननेवाले माछणको देनेस  
मनुष्य स्वर्ग लोकेमें पूजित होताहै ॥ ७३ ॥ जितने अन्नके पौत्रोंकी उब दान की है और  
जितने गौके धरीरपर रोम हैं वचनेही वर्षोक्त वह मनुष्य स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७४ ॥  
बांकीके सुरोवासी, सुवर्णके सीरणासी, बछेके लबवा वछिपावासी रोगरहित, बछसे  
बकीहुई, दूध देतीहुई सुशीला गौको जो दान करताहै ॥ ७५ ॥ उस गौ और बछेके धरी  
रपर जितने रोम हैं वचनेही वर्षोक्त वह मनुष्य ब्रह्मके निकट निवास करताहै ॥ ७६ ॥

यो वदाति बलीवर्दमुक्तेन विधिना शुभम् ॥

अव्यंगगोमदानेन दस दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥

पूर्वोक्त विधिके अनुसार जो मनुष्य बलिवा दान करताहै वह सविधान गौके दानसे दस  
गुने फलसे प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥

अमेरपत्स्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्ध्वष्णावी सूर्यसुताश्च गाव ॥ लांकास्त्रयस्तेन भर्षति  
दद्या यः कायनं गां च महीं च दद्यात् ॥ ७८ ॥ सर्वपापेष दानानामेकजन्मा  
नुर्गं फलम् ॥ हाटकक्षितिर्गीरीणां सप्तजन्मानुग फलम् ॥ ७९ ॥

प्रथम पुत्र अतिथा सुवर्ण है और पृथ्वी वैष्णवी ( विष्णुकी पुत्री ) है, और सुवर्ण पुत्री  
गौ है, दसकारण जो मनुष्य सुवर्ण गौ पृथ्वी इन्को दान करताहै, वह जिन्कोके दानके  
फलसे पाताहै ॥ ७८ ॥ सम्पूर्ण वार्त्तिका फल वी केवल दूधरे जन्ममेंही मिलताहै और  
सुवर्ण पृथ्वी, गौ इनका फल मात्र जन्मवत् मिलताहै ॥ ७९ ॥

अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुवृत्तो निभृतः सदा ॥ अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥ सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥ यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजन्प्रभुः ॥ तस्मादन्नात्परं दानं विद्यते न हि किञ्चन ॥ अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवाति च न संशयः ॥ ८२ ॥

जो मनुष्य अन्नका दान करताहै वह नित्य पुष्ट और तृप्त रहताहै, जलका दान करनेवाला सुखी और सम्पूर्ण कर्मोंसे युक्त रहताहै ॥ ८० ॥ सम्पूर्ण दानोंमें अन्नका दानही श्रेष्ठ है; कारण कि सब प्राणियोंका जीवन अन्नसेही है ॥ ८१ ॥ इसी कारणसे ब्रह्माजीने कल्प २ में सम्पूर्ण प्रजा अन्नसेही रचोहै, इससे उत्तम और कोई दान नहीं है, कारण कि अन्नसेही प्राणि-योंकी उत्पत्ति है और अन्नसेही उत्तका जीवन है इसमें किञ्चित्भी सन्देह नहीं ॥ ८२ ॥

मृत्तिकागोशकृद्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥

दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥ ८३ ॥

मिट्टी, गोबर, कुशा और यज्ञोपवीत उत्तम है इनको जो मनुष्य बहुतसे गुणवान् ब्राह्मणको दान करताहै वह बड़े कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ ८३ ॥

सुखवासं तु यो दद्यादंतथावनमेव च ॥

शुचिगंधसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् ॥ ८४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको सुखवास ( पानसुपारी इलायची ) देताहै, या दत्तौन देताहै, वह शुद्ध गंधवाला होताहै, और कभी भी वाग्दुष्ट ( तोतला ) नहीं होता ॥ ८४ ॥

पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदलिगयोः ॥

यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत् ॥ ८५ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको पैर, गुदा और लिंग इनके शौचके लिये जठ देताहै उसकी बुद्धि सर्वदा शुद्ध होतीहै ॥ ८५ ॥

औषधं पथ्यमाहारं क्षेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ॥

यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्ब्याधिवाजितः ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य रोगियोंको औषधी, पथ्य, भोजन, तेलका उबटन, गहनेके लिये स्थान देताहै, वह रोगरहित रहताहै, अर्थात् उसे कभी कोई रोग नहीं होता ॥ ८६ ॥

गुडमिक्षरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥

सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ ८७ ॥

गन्नेका रस, गुड, लवण और व्यंजन, वा सुगंधित पान इनका दान जो मनुष्य करताहै वह अत्यन्त सुखी रहताहै ॥ ८७ ॥

दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ॥

यह अनेक प्रकारके दानोंका फल कहा,

विद्यादानेन सुमतिब्रह्मलाके महीयते ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य विद्याका दान करताहै, वह श्रेष्ठ बुद्धिवाला प्ररुष ब्रह्मलोकमें पजनीय होता है ॥ ८८ ॥

अन्यान्यान्नमदा विमा अन्योन्यप्रतिपूजका ॥

अन्योन्य प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति वरति च ॥ ८९ ॥

परस्परमें अन्नके देनेवाले, और परस्परमें पूजाके करनेवाले, और परस्परमें दान देनेवाले  
ब्राह्मण बृशरोको प्यार करतेहैं और आपसी पार हो जातेहैं ॥ ८९ ॥

दानान्येतानि देयानि तयान्यानि विशषत ॥

दानार्द्धं कृपणार्थिभ्यः भेषस्कामेन धीमता ॥ ९० ॥

यह दान पूर्वोक्त ( रीतिसे ) देना उचित है और विशेष करके अन्य दानभी दे, हीन और  
अभ्यागतोंको कृपाणकी अभिप्राय करनेवाला मनुष्य अन्न ( शास्त्रमें कहेसे माया ) दे ॥ ९० ॥

ब्रह्मधारयतिभ्यस्तु धनं यस्तु कारयत् ॥

नस्त्रकमादिक चैव क्षुप्माञ्जायते नरः ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी और सन्वासीका मुहान करवाताहै, या इनके नसोंको कटवाताहै, वह  
मनुष्य नेत्रोंवाला होजाए ॥ ९१ ॥

देवागारे द्विजातीनां दीप दद्याच्चतुष्पथे ॥

मेधावी ज्ञानसपन्नश्चक्षुष्मांस सदा भवेत् ॥ ९२ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिरमें दीपक देताहै, जो ब्राह्मणोंके मंदिर तथा चौखोंमें दीपक  
देताहै, वह ज्ञानवान् बुद्धिमान् तथा नेत्रोंवाला होजाए ॥ ९२ ॥

नित्ये नेमिषिके काम्ये तिलान्दत्त्वा स्वशक्तिः ॥

प्रजाधान्यशुभांश्चैव धनघाञ्जायते नरः ॥ ९३ ॥

जो मनुष्य नित्य, नेमिषिक और काम्य कर्ममें धनकी छत्तिके अनुसार तिनोंका दान कर  
ताहै, वह मनुष्य प्रजा, पशुवाला और धनवान् होता है ॥ ९३ ॥

यो यदान्यर्थितो धिमैर्यद्यत्सप्रतिपादयेत् ॥

तृणकाष्ठादिक चैव गोमदानसमं भवेत् ॥ ९४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मांगनेपर जिस समय जो वस्तु देताहै, तृण वा काष्ठ इत्यादि उसके  
वह सभी गोदानकी समान होतेहैं ॥ ९४ ॥

न वै क्षयीत तमसा न यज्ञे नानृत वदेत् ॥

अपघवेन्न विमस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥ ९५ ॥

अंधकारमें छपन करे यज्ञमें झूठ न बोले ब्राह्मणकी किन्ता न करे और देकर बसे  
कहे भी नहीं ॥ ९५ ॥

यज्ञोभ्रूतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥

आयुर्धिमपघादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ ९६ ॥

झूठ बोलेसे यज्ञ नष्ट होताहै अधिमानसे तपस्या नष्ट होतीहै, ब्राह्मणकी किन्ता करनेसे  
अवस्थाका नाश होजाताहै, और कहेसे दान नष्ट होजातेहैं ॥ ९६ ॥

चत्वार्येतानि कर्माणि सध्यायां यमैप्युद्य ॥

आहार भियुनं निद्रां तथा सपाठमेव च ॥ ९७ ॥

आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्र मैथुनात् ॥

निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९८ ॥

ज्ञानी मनुष्य संध्याके समयमें इन चार कामोंको न करै, भोजन, मैथुन, शयन और पढना ॥ ९७ ॥ भोजन करनेसे रोग उत्पन्न होताहै, मैथुनसे भयंकर गर्भ रहताहै, शयन करनेसे दरिद्रता आतीहै, और पढनेसे अवस्थाका नाश हो जाताहै ॥ ९८ ॥

ऋतुमती तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति ॥

तस्या रजसि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ ९९ ॥

जो मनुष्य ऋतुवाली स्त्रीके समीप नहीं जाताहै उस मनुष्यके पितर उस महीनेमें ही उस स्त्रीके रजमे शयन करतेहैं ॥ ९९ ॥

कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे रतः ॥

ऋतुकालाभिगामी च प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १०० ॥

जो मनुष्य गृहस्थके कर्मोंके करतेहुए अपनी स्त्रीका पोषण भली भाँतिसे करतेहैं, और ऋतुके समयमें स्त्रीके सग गमन करतेहैं, उनको परम गति मिलतीहै ॥ १०० ॥

उषित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात्परम् ॥

वलीपलितसंयुक्तस्त्वृतीयं तु सभाश्रयेत् ॥ १०१ ॥

इस भाँति दूसरे आश्रममें तत्पर हुआ पुरुष घरमें निवास कर बली ( देहके चर्म लटक आनेपर ) और पलित ( सफेद बालोंके होनेपर ) तीसरे आश्रम ( वानप्रस्थ ) का आश्रय ग्रहण करै ॥ १०१ ॥

वनं गच्छेत्ततः प्राज्ञः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥ गृहीत्वा चाग्निहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् ॥ १०२ ॥ कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्भैर्यैर्यथाविधि ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥ १०३ ॥ कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥ इष्टिं पार्वीयणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ॥ १०४ ॥

फिर इकला या स्त्रीके साथ वनको चलाजाय, और वनमें जाकर अग्निहोत्रको ग्रहण कर हवनका त्याग न करै ॥ १०२ ॥ और वनमें विधिसहित वनके कंदमूलोंसे पुरोडाशको चनाकर शाक मूल और फलादिकी भिक्षा भिखारीको दे ॥ १०३ ॥ निरन्तर हवन करनेमें रत होकर नित्य अध्ययन करै सब पर्वोंमें ( पर्व अमावस आदि ) में करने योग्य इष्टि ( यज्ञ वा श्राद्ध ) करै ॥ १०४ ॥

उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेज्जितक्रोधो जितोद्विजः ॥ १०५ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंकी विधिको जाननेवाला ब्राह्मण इसभाँति वनमें निवास करके क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर चौथे आश्रम ( संन्यास ) को ग्रहण करै ॥ १०५ ॥

अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥ वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ १०६ ॥ अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पंच वा ॥ अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भंजीत सुसमाहितः ॥ १०७ ॥ अरण्ये निर्जने तत्र पठ-

रासीत मुक्तवत् ॥ एकाकी त्रितयोनित्य मनोवाक्कायकामि ॥ १०८ ॥ मृ-  
स्युं च नाभिनदेत जीवित वा कथंचन ॥ फालमेघ प्रतीक्षेत यावदायुः समा-  
प्यते ॥ १०९ ॥ संसेष्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेंद्रिय ॥ ब्रह्मलोक-  
मयामोति वेदशास्त्रार्थविद्विज ॥ ११० ॥

आत्मामें अभिज्ञो स्थापित करके सम्प्राप्ती हो जाय, सदा बड़े अम्यास और आत्म-  
विषामें उत्तर रहे ॥ १०६ ॥ विचारवाम् सम्प्राप्ती आठ वा सात वा पाँच मिश्राओं का  
ग्रहण करे, और फिर उस मिश्रापर जल छिड़ककर सावधानीस भोजन करे ॥ १०७ ॥ फिर  
मिर्गन वनमें मुच्छकी समान सम्प्राप्ती बैठे, और फिर मन बचन, कर्मसे इच्छाही  
नित्य ब्रह्मका विचार करता रहे ॥ १०८ ॥ मरने और जीनेकी प्रसंसा कमी न करे,  
इस भाँतिसे इतनी बबस्या समाप्त हो जाय, इस कारण सम्यकी प्रतीक्षा करता रहे ॥ १०९ ॥  
जितेन्द्रिय हो क्रोधको जीतकर चारों आश्रमोंका सेवन करके वेद और शास्त्रके अर्थको  
जाननेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ११० ॥

आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्तोऽयं प्रारिणिको विधिः ॥

यद् चारौ आश्रमोंके मन्त्र ( जो सुमने पूछे थे ) वनकी विधि कही,

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १११ ॥

इसके आगे प्रायश्चित्तकी शुभ विधि कहता हूँ ( भव्य करो ) ॥ १११ ॥

ब्रह्मभक्ष्य सुरापक्ष स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महापातकिनस्त्वेते तत्सयोगी च पचम ॥ ११२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोर, गुरुकी श्रद्धा ( की ) में गमन करने  
वाला यह चारों महापातकी होते हैं और जो इनका संगी है वह भी महापातकी  
होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मभक्ष्य वनं गच्छेद्बल्कवासा जटी ध्वजी ॥ वन्यान्वेष फलान्यश्वत्सर्वकामविष-  
जित् ॥ ११३ ॥ मिश्रायीं विचरेद्भ्रामं वन्मिर्षदि न जीवति ॥ चातुर्वर्ष्यं चरे-  
द्भैक्ष्यं वद्गङ्गी सपत् सदा ॥ ११४ ॥ मिश्रास्त्वेषं समादाय वन गच्छेत्त-  
पुनः ॥ वनवासी स पापः स्यात्सदाकालयतंद्रितः ॥ ११५ ॥ क्यापयन्मुच्य-  
ते पापाद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥ अनेन तु विधानेन द्वादशाम्दशत धरेत् ॥ ११६ ॥  
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं संवभूतहितं रतः ॥ ब्रह्महत्यापनोवाप ततो मुच्येत किञ्चि-  
पात् ॥ ११७ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला महापातकी मनुष्य बल्कलकी धारण करके क्षिरपर जटा धारण  
कर पञ्चा ( एक हत्यारेका बिहू इस ) को छेकर वनको चला जाय और सम्पूर्ण काम  
मात्रों को त्यागकरके वनके पल्ल मूलकाही भोजन करे ॥ ११३ ॥ यदि वनफलोंस  
जीविका निर्वाह न हो वी मिश्रा मार्गनेके लिये गाँवमें विचरन करे यह मनुष्य हत्याके  
बिद्वेषा धारण पर चारों वर्णमें मिश्रा मार्ग और अपने मनको सबशा बचमें करे ॥ ११४ ॥

फिर भिक्षाको लेकर वनमें चला जाय, और वह पापी सर्वदा आलस्यको छोड़कर सर्वदा वनमें निवास करै ॥ ११५ ॥ महापापी भी अपने पापको प्रलिद्ध करताहुआ पापोंसे छूटजाताहै, इस भांति वारह वर्षतक व्रत करै ॥ ११६ ॥ इन्द्रियोंको रोककर सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहै ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये पूर्वोक्त आचरण करै, तब पापसे मुक्त होजाता है ॥ ११७ ॥

अतः परं सुरापस्य निष्कृति श्रोतुमर्हथ ॥ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया  
त्रिविधा सुरा ॥ ११८ ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ सुराप-  
स्तु सुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ॥ ११९ ॥ गोमूत्रमभिवर्णं वा गोमयं वा त-  
थाविधम् ॥ घृतं वा त्रीणि पेयानि सुरापो व्रतमाचरेत् ॥ १२० ॥ मुच्यते  
तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ अरण्ये वा वसेत्सम्यक्सर्वकामविवर्जितः  
॥ १२१ ॥ चांद्रायणानि वा त्रीणि सुरापव्रतमाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः सुरापस्य  
भवेदिति न संशयः ॥ १२२ ॥

इसके उपरान्त मदिरापीनेवालेका प्रायश्चित्त श्रवण करो, मदिरा तीनप्रकारकी होती है, गौडी ( गुडकी ) माध्वी ( सहत या महुएकी ) तीसरी पैष्टी ( पिसी दवा तथा चून आदिकी होती है ) ॥ ११८ ॥ गौडी सुराके पीनेसे जो पाप होता है अन्य सुराओंके पीनेसेभी वैसाही प्राप होता है, इसकारण ब्राह्मण कभी भी किसी मदिराको न पियै, यदि मदिरा पीकर ब्राह्मण उसके पापसे छूटनेकी इच्छा करै ॥ ११९ ॥ तौ तपाईहुई मदिराको पियै वा अग्निसे तपाये गोमूत्र या गोवरको पीवै, या गरम घीको पियै यह तीन वस्तुही पानेके योग्य हैं, इसके पीछे फिर मदिरा पीनेका व्रत करै ॥ १२० ॥ मनुष्य इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त पापसे छूटजाता है अथवा भली भांतिसे सब कामोंको छोड़कर वनमें निवास करै, ॥ १२१ ॥ अथवा मदिरा पीनेके तीन चांद्रायण व्रत से प्रायश्चित्त करै, मदिरा पीनेवालेकी शुद्धि इस प्रकारसे होती है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं ॥ १२२ ॥

मद्यभांडोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

जो मनुष्य मदिराके पात्रमें जल पीता है वह फिर संस्कारके योग्य होता है,  
स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत् ॥ १२३ ॥ ततो मुशलमादाय स्ते-  
नं हन्यात्सकृन्नुपः ॥ यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ १२४ ॥  
अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तवचने  
यथा ॥ १२५ ॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य उस चुराई हुई वस्तुको राजाको दे दे ॥ १२३ ॥ राजा मुशल लेकर उस चोरको एकवारही मारै, यदि वह चोर उस आघातसे जीवित रह जाय तौ अपने पापसे छूट जाता है ॥ १२४ ॥ या वनमें जाकर बल्कल पहरकर ब्रह्महत्याका व्रत करै, संवर्त ऋषिके वचनानुसार इस प्रकारसे इनकी शुद्धि कही है ॥ १२५ ॥

गुरुतल्पे क्षयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ समालिंगित्स्त्रिय वापि दीप्तां काष्णां  
यसीकृताम् ॥ १२६ ॥ चांदायणानि कुर्याच्च चत्वारि त्रीणि वा द्विज ॥ मुख्य  
ते च तत् पापाध्यायधित्ते कृते सति ॥ १२७ ॥

गुरुकी क्षय्यापर गमन करनेवाला मनुष्य तथायेहुए छोड़ेके क्षय्यामें क्षयन करे या छोड़ेकी  
की बना उसे क्षयमें तथाकर स्पर्श करे ॥ १२६ ॥ और ब्राह्मण तीन भबबा चार चांदायन  
करे, इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त इस पापसे छूट जाता है ॥ १२७ ॥

पमिः संपर्कमायाति यः कश्चित्पापमोहितः ॥

तत्तत्पापविशुद्धयर्थं तस्य तस्य व्रत चरेत् ॥ १२८ ॥

जो मनुष्य पापसे मोहित होकर इनका संबंध करता है, वह भी वही २ पापकी शुद्धिके  
छिये वही २ पापका प्रायश्चित्त करे ॥ १२८ ॥

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥ कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृ  
च्छ्राणि सयत ॥ १२९ ॥ वैश्यहत्यां तु समाप्तं कर्मवित्काममोहितः ॥ कृ  
च्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्यात् स नरो वैश्यघातकः ॥ १३० ॥ कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्तप्त  
कृच्छ्रं यथाविधि ॥ एव शुद्धिमवाप्नोति सर्वसंघवन यथा ॥ १३१ ॥

जो ब्राह्मण क्षत्रियको मारताहै वह तीनों कृच्छ्रोंके करनेसे भली भांति शुद्ध होताहै, और  
क्षयानुसार तीन कृच्छ्रोंको मनुष्य साधमान होकर करे ॥ १२९ ॥ जो मनुष्य कामसे मोहित  
होकर यदि वैश्यकी हत्याकरे तो वह तीनकृच्छ्र और मतिकृच्छ्र व्रतके करनेसे शुद्ध होता है  
॥ १३० ॥ शूद्रके मारनेवाला ब्राह्मण विधिमोहित छत्र कृच्छ्र करे, तब संबंध मुक्तिके बचनके  
अनुसार इस प्रकारसे शुद्ध होता है ॥ १३१ ॥

गोमस्यातः भवक्षयामि निष्कृतिं तस्वत शुभाम् ॥ १३२ ॥ गोमः कुर्यात्  
सस्कार गाष्टे गोरूपसन्निधी ॥ तत्रैव क्षितिशापी स्यान्मासार्द्धं संपूर्तद्विप  
॥ १३३ ॥ स्नान त्रिपयण कुर्यान्नखलोमाविवर्जितः ॥ सक्तुयावकभिक्षाशी पयोद  
विशकृष्णरः ॥ १३४ ॥ एतानि क्रमशोऽभीपाद्विजस्तत्पापमोक्षकः ॥ गायत्री च  
अपेक्षित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ १३५ ॥ पूर्णं धैवार्द्धमासे च स विभाम्मोज  
येद्विजः ॥ भुक्तवन्तु च विप्रेषु गां च दद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥ ध्यापन्नानां घटुर्ना  
स्तु रोपनेचपनेऽपि वा ॥ भिपद्मिध्योपचारे च द्विगुण व्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥

अब गोहत्याके करनेवालेका यथाथं व्रतम प्रायश्चित्त करता हूँ ॥ १३२ ॥ गौका मारने  
वाला मनुष्य गौकाका और गौके समीप रहकर अपना सस्कार करे और पंद्रहदिनतक इन्दि  
योका वशमें करके गौसाक्षरमेधो धयन करे ॥ १३३ ॥ इसके पीछे तीन समयमें स्नान करे,  
और नख, घेस इनका न रचले सप्त जी, दूध बही, गोबर ॥ १३४ ॥ क्रमानुसार इनको  
गोहत्याके पापसे छुटानेकी इच्छा करकेवाला ब्राह्मण मोजन करे; और अपनी सत्तिके अनुसार  
गायत्री आदि पवित्र मंत्रोंको निरंतर जपताहै ॥ १३५ ॥ आधे महिनेके समाप्त होनेपर वह

ब्राह्मण ब्राह्मणोंको भोजन करावै, जिस समय ब्राह्मण भोजन करते हैं उस समय गोदान भी करना उचित है ॥ १३६ ॥ रोकने, बांधने, या उलटी चिकित्सा करनेसे यदि बहुतसी गौ मरजायें तो हत्याका दूना व्रत करै ॥ १३७ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥

यदि कभी एक गौको बहुतसे मनुष्योंने मारडालाहो तो वह पृथक् २ गोहत्याके चौथाई प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होंगे ॥ १३८ ॥

यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥ यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥ औषधं ज्ञेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥ दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ १४० ॥

चिकित्साके निमित्त व्रत करनेके समयमें अथवा अरेट्टुए गर्भ निकालनेके समयमें यदि किसीसे गौ मरजाय, तो उसको पाप नहीं लगता ॥ १३९ ॥ यदि गौ और ब्राह्मण इनकी चिकित्सा करते समय औषधी, तथा घीको दे और वह तो उस औषधादिसे न बचै किंतु मरजाय तो उसका पाप नहीं होता वरन औषधादि चिकित्सा करनेसे पुण्यही होताहै ॥ १४० ॥

प्रायश्चित्तस्य पापं तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ॥ द्वौ पादौ बंधने चैव पादोनं यंत्रणे तथा ॥ १४१ ॥ पापाणैर्लगुडैर्दंडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ॥ निपातने चरेत्सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ १४२ ॥

यदि गौ रोकनेसे मरजाय तो चौथाई प्रायश्चित्त करे, और बांधनेसे मरजाय तो आधा करै, और व्रतमें करनेसे मरजाय तो पौन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १४१ ॥ यदि पत्थर, सोंटा, दड और शस्त्र इनसे गौ मरजाय तो तीन दिनतक पूरा प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४२ ॥

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपीस्तथा ॥

एषां त्रये द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥

जो ब्राह्मण हाथी, घोडा, भैंस, ऊट, वानर इनको मारताहै वह सातादिनतक भोजन न करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १४३ ॥

व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च ॥

एतान्हत्वा द्विजो मोहाधिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यने अज्ञानतासे व्याघ्र, कुत्ता, गधा, सिंह, रीछ, सूकर इनको माराहै वह तीन रात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १४४ ॥

सर्वासामेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४५ ॥

जो मनुष्य वनमें विचरण करते हुए सम्पूर्ण जातिके मृगोंको मारताहै वह अहोरात्र उपवास करै और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप स्थित रहै ॥ १४५ ॥



हंसं काकं बलाकां च बर्हिंकारुडवांषपि ॥ सारसं चापभासी च हत्वा त्रिदिशसं  
क्षिपेत् ॥ १४६ ॥ चक्रवाकं तथा कौचं सारिकाशुकतिचिरीन् ॥ श्येनगृध्रानु  
लूकांश्च पारावतमयापि वा ॥ १४७ ॥ टिट्ठिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं  
तथा ॥ एषां षधे नरः कुर्यादिकरात्रजभोजनम् ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां  
हंसादीनामशेषतः ॥ अहोरात्रोपितस्तिष्ठेज्जपन्त्यै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥

जो मनुष्य हंस, कौमा मोर, कारुडव, सारस, चाप, भास इनका मारताहै वह तीनदिन  
उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४६ ॥ जो मनुष्य चक्रवा, कूच, मैना, तोता, तीतर,  
शिल्लर, गीब उल्ल, कपूर, ॥ १४७ ॥ टटीरी, जालपाद ( हंसभेद ) कोयल, मुरग,  
इतको मारताहै वह मनुष्य एक रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्त करे  
हुए सम्पूर्ण जीव और विशेष करके हंसआदिके मारनेवाला अहोरात्र उपवास कर 'जातवेदसे'  
मंत्रका जप करता हुआ स्थित रहे ॥ १४९ ॥

महूकं षधे हत्वा च सपमार्जारभूपकान् ॥

त्रिरात्रोपोपितस्तिष्ठेत्कुयाद्वाज्ञपभोजनम् ॥ १५० ॥

जो मनुष्य महूक, सांप बिछाव, मूसा, इनको मारताहै वह तीन उपवास कर ब्राह्मण  
भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५० ॥

अनसो ब्राह्मणो हस्या प्राणायामेन शुद्धयति ॥

अस्थिमतां षधे विमं किंश्चिद्वादिचक्षण ॥ १५१ ॥

बिना हड्डीके जीवोंको मारनेवाला ब्राह्मण प्राणायामके करनेसेही शुद्ध होताहै; और हड्डी  
बाड़े छोट २ जीवोंका मारनेवाला कुछ एक दान करनेसेही शुद्ध होताहै ॥ १५१ ॥

यश्चण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथयित्वा ममोहितः ॥ त्रिभिः कूर्च्छैस्तु शूद्रयेत प्राजा  
पत्यानुषूकैः ॥ १५२ ॥ पुश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोपि वा ॥ कूर्च्छ  
चोद्गायणे तस्य पावनं परमं स्मृतम् ॥ १५३ ॥ शीलूर्पां रजर्कां चैव येणुचर्मो-  
पजीयिनीम् ॥ एतां गत्वा द्विजा मोहाक्षेरश्चाद्गायणं प्रथमम् ॥ १५४ ॥ क्षत्रिया  
मथ षड्यां वा गच्छेद्यः काममाहितः ॥ तस्य सातपनं कूर्च्छो भवेत्पापापनो  
दन ॥ १५५ ॥ शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासाद्धैम्यं वा ॥ गोमूत्रपाय  
वाद्द्वारो मासाद्धैनं विशुद्धयति ॥ १५६ ॥ विप्रामस्यजनां गत्वा प्राजापत्येन  
शुद्धयति ॥ स्यजनां तु द्विजा गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५७ ॥ क्षत्रिया  
क्षत्रियो गत्वा तदेव प्रथमाचरेत् ॥ नरा गोगमनं कृत्वा कुर्यात्साद्गायणं प्रथमम् ॥ १५८ ॥  
मातुर्गर्भा तथा श्वभूं सुनां वेमातुर्गस्य च ॥ एतां गत्वा त्रियो मोहात्पराशरणं  
विशुद्धयति ॥ १५९ ॥ गुणोद्दितरं गत्वा स्यसारं पितुरेव च ॥ तस्या दुदितर  
चैव परंसाद्गायणं प्रथमम् ॥ १६० ॥ पितृप्यदारगमने भ्रातृभार्यागमं तथा ॥  
शुद्धयन्तप्रतं पुयादिष्कृतिनाम्यथा भवेत् ॥ १६१ ॥ पितृभार्या समाहृत्य मातृ

वर्जा नराधमः ॥ भगिनी मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६२ ॥  
 एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ कुमारीगमने चैतद्भ्रतमेतत्समा-  
 चरेत् ॥ १६३ ॥ पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ सखिभार्या समारुह्य  
 श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६४ ॥ मातरं योधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ॥  
 न तस्य निष्कृतिर्गच्छेस्त्वां चैव तनुजां तथा ॥ १६५ ॥ नियमस्थां व्रतस्थां  
 वा योभिगच्छेत्स्त्रियं द्विजः ॥ स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ १६६ ॥  
 रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा ॥ तस्य पापविशुद्धयर्थं मतिकृच्छ्रो  
 विधीयते ॥ १६७ ॥ वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः  
 समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥

जो ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो चांडालीके संग गमन करताहै वह क्रमानुसार प्राजाप-  
 त्यभादि तीन कृच्छ्रोंके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५२ ॥ जो मनुष्य जानकर या विना जाने-  
 हुए व्यभिचारिणी स्त्रीके संग संभोग करताहै वह कृच्छ्र और चांद्रायण इन दोनोंके भली-  
 भांति करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५३ ॥ जो ब्राह्मण मोहित होकर, नदनी, धोबिन, वांस और चमड़ेसे  
 जीविका करनेवाली स्त्रियोंके संग गमन करताहै, वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५४ ॥  
 जो ब्राह्मण क्षत्रियकी अथवा वैश्यकी स्त्रीके संग कामदेवसे मोहित होकर गमन करताहै;  
 वह सांतपन कृच्छ्रके करनेसे उसके पापसे छूटसकताहै ॥ १५५ ॥ जो मनुष्य एक महीने  
 अथवा पंद्रह दिनतक शूद्रकी स्त्रीके साथ गमन करताहै, वह पंद्रह दिनतक गोमूत्र और जौ-  
 को खानेसे शुद्ध होताहै ॥ १५६ ॥ जो मनुष्य अन्य कुटुम्बकी ब्राह्मणीके साथ गमन  
 करता है वह प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है, और अपने कुटुम्बकी स्त्रीके साथ गमन  
 करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्यके करनेसे ही शुद्ध होता है ॥ १५७ ॥ क्षत्रिय क्षत्री स्त्रीके  
 साथ गमन करनेसे प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है, जो मनुष्य गौके साथ गमन करता  
 है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै, ॥ १५८ ॥ मामाकी स्त्री, ( माई ) सास,  
 मामाकी पुत्री, जो मनुष्य अज्ञानसे इनके साथ गमन करताहै वह पराक व्रतके करनेसे भली  
 भांति शुद्ध होताहै ॥ १५९ ॥ जो मनुष्य गुरुकी पुत्री, बुआके साथ, और बुआकी बेटी के  
 साथ गमन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६० ॥ चाचा, और  
 भाईकी बहूके साथ गमन करनेवाला मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साथ गमनका प्रायश्चित्त करै ॥  
 इसके अतिरिक्त उसके पापकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १६१ ॥ माताके अतिरिक्त पिताकी  
 अन्य स्त्री और माताकी शीलवती वहिन, और दूसरी मातामें उत्पन्न हुई सौतेली  
 वहिन ॥ १६२ ॥ इन तीनों स्त्रियोंके साथ जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य गमन करताहै वह  
 तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै, और जो कुमारी ( विना विवाही हुई ) के साथ गमन  
 करनेवाला मनुष्य यही तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १६३ ॥ जो मनुष्य पशु और  
 वैश्याके साथ गमन करताहै वह प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होताहै, मित्रकी स्त्री, सास, सालेकी  
 स्त्री ॥ १६४ ॥ माता, बहन, और अपनी लहकी, जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य इनके साथ गमन  
 करताहै उसका प्रायश्चित्तही नहीं है ॥ १६५ ॥ जो ब्राह्मण नियम व्रतमें स्थित हुई स्त्रीके

साय गमन करवाहै वह प्राकृत कृष्णके करनेसे और धूप देतीहुई गौक धान करनेसे शुद्ध होवाहै ॥ १६६ ॥ जो मनुष्य रजस्वला, गर्भवती और पतित स्त्रीके साथ गमन करवाहै वह अतिकृष्णके करनेसे अपने पापसे मुक्त होवाहै ॥ १६७ ॥ वैश्यकी कन्याके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण पण्ड कृष्णके करनेसे सर्वर्ष मुनिके बचनके अनुसार शुद्ध होवाहै ॥ १६८ ॥

कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ॥

गोमूत्रपाषकाहारो मासेनैकेन शुद्धयति ॥ १६९ ॥

कदाचित् क्षत्रिय, और वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करै, तो एक महीनेतक गोमूत्र और स्त्रीके खानेसे शुद्ध होतेहैं ॥ १६९ ॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥

गोमूत्रपाषकाहारो मासेनैकेन शुद्धयति ॥ १७० ॥

यदि शूद्र कामवेषसे मोहित हो कदाचित् ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ गमन करै तो गोमूत्र और स्त्रीके खानेसे एकमहीनेमें शुद्ध होवाहै ॥ १७० ॥

ब्राह्मणीं शूद्रसपर्के कदाचित्समुपागते ॥ कृच्छ्रखाद्रायण तस्या पावन परम स्मृतम् ॥ १७१ ॥ चण्डालं पुलकसं चैव श्वपाकं पतितं तथा ॥ एताधूष्णस्त्रियो गत्वा कुर्युर्भाद्रायणप्रयम् ॥ १७२ ॥

यदि ब्राह्मणकी स्त्री कदाचित् शूद्रका संग करै तो उस ब्राह्मणकी स्त्रीकी शुद्धि कृष्ण खाद्रायणके करनेसे होतीहै ॥ १७१ ॥ और जो भेड़ ब्राह्मण यदि उत्तम जातिकी स्त्री चांडाल, पुस्तक, श्वपाक इनके साथ गमन करै तो वह भी ब्राह्मणके करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १७२ ॥

अतः पर प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥ सन्यस्य दुर्मतिं कश्चिदपत्यार्थं क्रिय प्रमेत् ॥ १७३ ॥ कुर्यात्कृच्छ्रं समान तस्यप्मासांस्तदनंतरम् ॥ विषामिश्यामस्र वल्लास्तेषामेष विनिर्दिक्षेत् ॥ १७४ ॥ स्त्रीणां तथा चै चरणे ह्यधिमासगमे तथा ॥ पतनेष्वप्ययं दृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७५ ॥ नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनं प्रेक्ष्य चह च ॥

इससे आगे अत्यन्त दुष्टोंका प्रायश्चित्त भवण करो, यदि कोई दुष्टबुद्धि पुरुष संन्यास लेकर संतानके निमित्त स्त्रीका संग करताहै ॥ १७३ ॥ वह निरन्तर छः महीनेतक कृष्ण खात करै, और बिज, और अदिके जो काठे और कबरे हो जाय वहभी पूर्वोक्त कृष्ण खातके करनेसेही शुद्ध होतेहैं ॥ १७४ ॥ स्त्रियों भी संन्यास लेकर यदि संतानकी इच्छासे फिर पुरुषकी इच्छामें रत होजाय तो वहभी एक महीनेसे अधिक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै ॥ १७५ ॥ मनुष्योंकी सम्पूर्ण विपत्तियोंमें पूर्वोक्त कृष्णही इसलोक और परलोकमें पवित्र करने वाझाहै,

गोविप्रमहते चैव तथा विघातमपातिनि ॥ १७६ ॥

नेवाभ्युपतनं कार्यं सत्रिं भेयामिकासिभिः ॥

जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणसे मराहो, या जो आत्मघातसे मराहो ॥ १७६ ॥ इनके मरवानेपर अपने कस्याजकी इच्छा करनेवाले पुरुष न रोवें;

एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७७ ॥ कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रा-  
यणव्रतम् ॥ तच्छुभं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पार्तितं यदि ॥ १७८ ॥ पूर्वकेष्वप्य-  
कारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥ महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥  
॥ १७९ ॥ उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥ नोपतिष्ठति तत्सर्वं  
राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८० ॥

और यदि कोई मनुष्य प्रेमके वश होकर श्मशानमें प्रेतको लेजाय अथवा जलादे ॥ १७७ ॥  
तौ वह जलदान करके चांद्रायणव्रत करे, और केवल इन्हीं श्रावणोंका स्पर्श करे जिनको कोई  
न रोयाहो ॥ १७८ ॥ और यदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ हो तो एकदिन उपवास  
करे, महापातकी और आत्मघाती ॥ १७९ ॥ इन मनुष्योंको जो जलदान पिंडदान और  
जो श्राद्ध किया जाताहै, वह सब इनको नहीं मिलता, वरन उसे राक्षस नष्ट करदेतेहैं ॥ १८० ॥

चण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ॥ श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदंडहता  
श्च ये ॥ १८१ ॥ कृत्वा सूत्रपुरीषे तु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥ श्वादिस्पृष्टो  
जपेदेव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥

जो ब्राह्मण कुत्तेके काटनेसे मराहो, या जो सर्पके काटनेसे मराहो अथवा जो  
ब्राह्मणके शापसे मराहो उसके लिये श्राद्धकरना उचित नहीं ॥ १८१ ॥ यदि भोजनसे  
उच्छिष्ट ब्राह्मणको, और जिसने लघुगंडा और मलका त्याग कियाहो उसको यदि कुत्ता  
आदि छूजाय तौ वह स्नान कर एक हजार बार गायत्रीका जप करे ॥ १८२ ॥

चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा श्वमंत्यजमेव च ॥

उदक्यां सूतिकां नारी सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥

जो मनुष्य चांडाल, पतित, श्व, अत्यज, रजस्वला और सूतिका स्त्रीका स्पर्श करताहै  
वह वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८३ ॥

स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥

ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ १८४ ॥

इनके स्पर्श करनेवालेने यदि जिसका स्पर्श कियाहो वह स्नानही करके फिर आचमन  
करे, और सम्पूर्ण वस्त्रादिकोंको जलसे छिडकदे ॥ १८४ ॥

चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्विजोत्तमः ॥

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥

यदि चांडाल आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणको छुलें तौ गोमूत्र और जौके खानेसे तीन रात्रिमें  
चसकी शुद्धि होतीहै ॥ १८५ ॥

शुना पुष्पवती स्पृष्ट्वा पुष्पवत्यान्यया तथा ॥

शेषाण्यहान्युपवसेत्स्नात्वा शुद्धयेद्दृताशनात् ॥ १८६ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्तेका अथवा अन्य रजस्वला स्त्रीका स्पर्श हुवाहो वह बाकी रहे  
रजोदर्शनके दिनोंतक उपवास करे और स्नानकर घीके खानेसेही शुद्ध होतीहै ॥ १८६ ॥

चण्डालमांडसस्पृष्ट पिषेत्कूपगत जलम् ॥

गोमूत्रपापकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्धयति ॥ १८७ ॥

जिस कुएमें चांडालके पात्रका स्पर्श हुआ हो उस कुएके जलको जो मनुष्य पीता है वह गोमूत्र, और औंको खाकर तीनरात्रिमें शुद्ध होता है ॥ १८७ ॥

अत्यजे\* स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ॥ शुद्धयते पचगम्येन पीत्वा तोयम  
कामत\* ॥ १८८ ॥ सुरापटमपातोर्थं पीत्वा नालीजल तथा ॥ अहोरात्रोपितो  
भूत्वा पचगम्य पिषेद्विज\* ॥ १८९ ॥ कूपे विष्मूत्रसंसृष्टा\* प्राश्य चापो दिजा  
सय\* ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धयति कुभे सातपन स्मृतम् ॥ १९० ॥

जो मनुष्य मजानसे अस्थजोंके स्वीकृत किये तीर्थ, तालाब, नदी इनके जलको पीता है वह पचगम्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १८८ ॥ मरिचके पड़े प्याज इनका और मालीसे जो ब्राह्मण जलको पीता है, वह अहोरात्र उपवास कर पचगम्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १८९ ॥ जो ब्राह्मण विद्या, अथवा मूत्र मिलेहुए कुए अथवा पड़ेके जलको पीता है वह क्रमानुसार तीन दिन उपवास कर सातपन कृष्णके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९० ॥

घापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् ॥

अपां घटशतोद्धार\* पंचगम्य च निक्षिपेत् ॥ १९१ ॥

कुए, तालाब याबड़ी यदि इनका जल अशुद्ध होजाय तो उनमेंसे सौ बड़े घट निकाल कर उनमें पचगम्य डाल दे तब जलकी शुद्धि होती है ॥ १९१ ॥

स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा संविन्याश्चैव गो\* पय\* ॥

तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षण ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य स्त्री के दूध और संधिनी ( जो गर्भवती गौ दूध देनेवाली हो ) गौ इनके दूधको पीता है वह त्रिरात्र उपवास कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १९२ ॥

विष्मूत्रमक्षये चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ शकाकेच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु ष्यर्ह  
द्विज ॥ १९३ ॥ विडालमूषिकोच्छिष्टे पंचगम्य पिषेद्विज\* ॥ गूदोच्छिष्टं तथा  
सुक्ता त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ॥ १९४ ॥

जो मनुष्य विद्या और मूत्रका भक्षण करता है वह प्राजापत्य ब्रत करे; और कुत्ता, बौमा गौ इनकी उच्छिष्ट जिस ब्राह्मणने खाई हो वह तीन दिनतक उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९३ ॥ जो ब्राह्मण विडाल, गूदे इनकी उच्छिष्ट खाता है वह पंचगम्यके पीनेसे शुद्ध होता है और गूदकी उच्छिष्ट खानेवाला तीन रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९४ ॥

पलाहं लशुन जग्ध्या तथैव प्रामकुमकुटम् ॥

उत्पार्कं विद्वयराहं च चरेत्सातपनं द्विज\* ॥ १९५ ॥

जो ब्राह्मण प्याज, लहसुन और प्राममेका मुरगा, उत्री, और विद्या खानेवाले सूकर को भी खाता है वह सातपन करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९५ ॥

श्वविडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः ॥

प्राश्य मूत्रपुरीषे वा चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य कुत्ता, बिलवा, गधा, ऊंट, वानर, गीदड, कौआ इनके मूत्र व विष्टाको खाताहै वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९६ ॥

अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ॥

पतितैः प्रेक्षितं वापि पंचगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९७ ॥

जो ब्राह्मण वासी अन्न, बालपडे हों, अथवा जिसे पतितोंने देखाहो उस अन्नको खाने चाला पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९७ ॥

अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदकयाभाजने तथा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥

जो मनुष्य अत्यज छोके या रजस्वलाके पात्रमें खाताहै वह गोमूत्र और जौके खानेसे पंद्रह दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १९८ ॥

गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहृतम् ॥

अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥

जो मनुष्य गौका मांस और मनुष्यका मांस तथा कुत्तेके द्वारा आयेहुए ऐसे अभक्षणीय मांसको खाता है वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १९९ ॥

चंडाले संकरे द्विप्रः श्वपाके पुलकसेपि वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥

जो मनुष्य चंडाल, वर्णसंकर, श्वपाक, और पुलकस इनके यहांका भोजन करताहै उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०० ॥

पतितेन तु संपर्कं मांसं मासार्द्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥

जो मनुष्य पंद्रह दिन या एक महीनेतक पतितका ससर्ग करै तो गोमूत्र और जौको खाकर उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होताहै ॥ २०१ ॥

पतिताद्रव्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥

कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्विजः ॥ २०२ ॥

पतितके द्रव्यको जो ब्राह्मण लेताहै अथवा उसके यहां जो भोजन खाता है वह वमन करके अतिकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०२ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥ तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥ एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥

ब्राह्मण जिन २ कर्मोंमें अपने को पतित विचारै तौ वह उन्हीं २ कर्मोंमें गायत्री और तिलोंसे प्रतिदिन हवन करताहै ॥ २०३ ॥ मैंने यह प्रायश्चित्तकी उत्तम विधि सुनाई,



अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥

अब जो पाप शास्त्रमें नहीं कहे हैं उनका प्रायश्चित्तभी नहीं कहा है ॥ २०४ ॥

दानैर्होमिर्जर्पनित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥ पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदान्यासात्  
संशयः ॥ २०५ ॥ सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥ नाशयत्याशु

पापानि ह्यन्यज-मकृतान्यपि ॥ २०६ ॥ तिलं धेनुं च यो दद्यात्सयताय द्विजा  
तये ॥ ब्राह्मणस्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

ब्राह्मण दान, हवन, जप, प्राणायाम और वेदपाठ इनके करनेसे सर्वथा पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २०५ ॥ सुवर्ण, गौ पृथ्वी, इनके दान करनेसे दूसरे जन्मके किये हुए पापभी शीघ्र नष्ट हो जातेहैं ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्राह्मणको तिल वा गौदान करताहै वह ब्राह्मणस्या भावि पापोंसे निःसन्देह छूटजाताहै ॥ २०७ ॥

माघमासे तु सप्राप्ते पीर्णमास्यामुपोषितः ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तिष्ठान्दत्त्वा सर्वपापैः  
प्रमुच्यते ॥ २०८ ॥ उपवासी नरो भूत्वा पीर्णमास्यां तु कार्तिके ॥ हिरण्य

वस्त्रमथ च दद्यात्तरति दुष्कृतम् ॥ २०९ ॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिन  
क्षये ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥ २१० ॥ अमावास्यां द्वादश्यां

च सक्रांती च विशेषतः ॥ पतां प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥ २११ ॥  
तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ उपवासस्तथा दानभेदकं

पाषयेधरम् ॥ २१२ ॥

माघके महीनेकी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके तिलदान करताहै; वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २०८ ॥ कार्तिककी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके सुवर्ण वस्त्र और भस्म इनका दान करताहै, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जातेहैं ॥ २०९ ॥ उत्तरायण, और दक्षिणायन और विषुव ( गुला मय ) की संक्रान्ति, व्यतीपात विधिकी हानि, चन्द्रमा और सूर्यग्रहणके समयमें जो मनुष्य दान करताहै उसका वह दान अक्षय होजाताहै ॥ २१० ॥ अमावस्या, द्वादशी, संक्रान्ति रविवार विशेष करके यह तिथिही अति उत्तम हैं ॥ २११ ॥ इनमें जो जप हवन, स्नान, ब्राह्मणोंका भोजन, उपवास और दान कियाजाय वही मनुष्यको पवित्रताका देनेवाला है ॥ २१२ ॥

स्नातः शुचिर्धौतयासां शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥ सार्विकं माघमास्याय दानं  
दद्याद्विशेषणः ॥ २१३ ॥ सप्तव्याहृतिभिः फार्यो द्विर्होमा जितात्मभिः ॥

उपपातषु शुद्धार्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१४ ॥ महापातकसंयुक्तो लक्षद्वयं  
सदा दिनः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१५ ॥

स्नानपात्र मनुष्य स्नान करके शुद्ध हो शुद्ध हुए सप्रेर बत्नोंको दहन कर शुद्धमन दा इन्द्रियोंको जीत शीलबान् होकर दान करे ॥ २१३ ॥ मनुष्यो अतीतेशे ब्राह्मण वर पातकी शुद्धिके निमित्त एक हजार सात व्याहृतिवर्षोंके हवन करे ॥ २१४ ॥ और महापातकी ब्राह्मण एक हजार गायत्रीसं दहन करे, कारण कि गायत्रीतोही पवित्र होकर धर्म्य पापोंसे छूट जाता है ॥ २१५ ॥

अभ्यसेन्न तथा पुण्यां गायत्री वेदमातरम् ॥ गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशु-  
द्धये ॥ २१६ ॥ स्नात्वा आचम्य विधिवत्ततः प्राणान्समापयेत् ॥ प्राणायामै-  
स्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेद्विजः ॥ २१७ ॥ अङ्घ्रिन्नवासाः स्थलगः शुचौ  
देशे समाहितः ॥ पवित्रपाणिराचांतो गायत्र्या जपमाचरेत् ॥ २१८ ॥ ऐहि-  
काम्बुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः ॥ पंचरात्रेण गायत्री जपमानो व्यपोहति  
॥ २१९ ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥ महाव्याहृतिसंयुक्तां  
प्रणवेन च संजपेत् ॥ २२० ॥ ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ॥ गाय-  
त्र्या लक्षजप्येन सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ २२१ ॥ अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा  
चान्नं विगर्हितम् ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२२ ॥ अह-  
न्यहनि योऽधीते गायत्री वै द्विजोत्तमः ॥ मासेन मुच्यते पापादुरगः कंचुका-  
द्यथा ॥ २२३ ॥ गायत्री यस्तु विप्रो वै जपेत् नियतः सदा ॥ स याति परमं  
स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥

मनुष्य वनमे जाकर सम्पूर्ण पापोंकी शुद्धिके लिये वेदोंकी माता और पवित्र गायत्रीका  
जप नदीके किनारेपर करै ॥ २१६ ॥ ब्राह्मण स्नान और आचमन करके प्राणोंको स्थिर  
करै पहले तीन प्राणायाम करके पवित्र हो गायत्रीका जप करै ॥ २१७ ॥ गीले वस्त्रोंको  
न पहरे और पवित्र स्थानमें बैठे, इसके पीछे सावधान होकर कुशाधोंकी पवित्री पहनकर  
आचमनके उपरान्त गायत्रीको जपै ॥ २१८ ॥ जो मनुष्य पांच रात्रियों तक बराबर गायत्री  
को जपता रहताहै, उसके इस जन्म और दूसरे जन्मके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ २१९ ॥  
गायत्रीसे परे पापियोंकी शुद्धि नहीं है, इसी कारण महाव्याहृति और अकारके साथ गायत्री  
का जप करता रहै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी भोजनको त्याग कर सबके कल्याणके हितके  
निमित्त गायत्रीको एक लाख जपताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ २२१ ॥ जो मनुष्य  
यज्ञकराने अयोग्य पुरुषको यज्ञकराता है अथवा जो निन्दित अन्नको खाताहै उसकी शुद्धि  
आठ हजार गायत्री के जपकरनेसे होतीहै ॥ २२२ ॥ जो ब्राह्मण प्रतिदिन गायत्रीका जप  
करता रहताहै, वह पापोंसे साँपसे छोडी हुई कैंचलीकी समान छूटजाताहै ॥ २२३ ॥ जो  
ब्राह्मण जितेन्द्रिय होकर सर्वदा गायत्रीका जप करताहै वह वायु और आकाशरूपहो वैकु-  
ण्ठको जाताहै ॥ २२४ ॥

प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥ गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः  
पिवेद्विजः ॥ २२५ ॥ निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥ प्राणायाम-  
मत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥ मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च  
यत्कृतम् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ब्राह्मण अकार सहित सात व्याहृति और शिरस मंत्रके साथ गायत्रीको तीनवार सर्वदा  
पढे वायु पीवै ॥ २२५ ॥ प्राणोंको बशमें करनेहीका नाम प्राणायाम है, इसकारण मनुष्य  
सावधान होकर प्रतिदिन तीन प्राणायाम करै ॥ २२६ ॥ मन, वाणी और देहसे किये हुए  
सम्पूर्ण पाप प्राणायामके प्रभावसे नष्ट होजातेहैं ॥ २२७ ॥



ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजु शास्त्रामयापि वा ॥ सामानि सरइस्यानि सर्वपापै  
प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥ पाषमानी तथा कौत्सी पौरुष सूक्तमेष च ॥ जप्त्वा पापै  
प्रमुच्येत सपिष्य माधुच्छेदसम् ॥ २२९ ॥ मण्डल ब्राह्मण रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृह  
थया ॥ वामदेव्य बृहत्साम सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ २३० ॥

जो मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेदकी शास्त्रा और रहस्यसहित सामवेदका पाठ करताहै वह सब  
पापोंसे छूटजाता है ॥ २२८ ॥ जो मनुष्य पाषमानी और कौत्सी ऋचा, पुरुषसूक्त, पितरों  
के मंत्र, माधुच्छेदस मंत्र इनका जप करताहै वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २२९ ॥  
मंडल ब्राह्मण, रुद्रसूक्तकी ऋचा, बृहत् वामदेवके बृहत्सामवेदका जप करनेवाला मनुष्यभी  
सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ॥ २३० ॥

चांद्रायण तु सर्वेषां पापानां पावन परम् ॥ कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परम स्थानमेष  
च ॥ २३१ ॥ घमसास्त्रमिदं पुण्यं सर्वतैतं तु भाषितम् ॥ अधीत्य ब्राह्मणो  
गच्छेद्ब्रह्मण सप्त क्षाश्वतम् ॥ २३२ ॥

इति संवर्तप्रणीतं घर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र करनेवाले उत्तम चांद्रायणमंत्रको करताहै, उसको उत्तम  
स्थान प्राप्त होताहै ॥ २३१ ॥ जो ब्राह्मण सर्वत ऋषिके कथेहुए घर्मशास्त्रको पढताहै वह  
सनातन ब्रह्मलोके जाताहै ॥ २३२ ॥

इति संवर्तस्मृतिमाषाढीका समाप्ता ।

संवर्तस्मृति समाप्ता ॥ ८ ॥



॥ श्रीः ॥

# कात्यायनस्मृतिः ६.

## भापाटीकासमेता ।

प्रथमखंडः १.

श्रीगणेशायनमः ॥ अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥  
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ १ ॥

इसके पीछे गोभिल ऋषिकी कहीहुई अन्यान्य कर्मोंकी विधि दीपकके समान प्रकाशमान्  
मलीभाति से दिखाताहूँ ॥ १ ॥

त्रिवृदूर्ध्ववृत्तं कार्यं तंतुत्रयमधोवृत्तम् ॥ त्रिवृत्तं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथि-  
रिष्यते ॥ २ ॥ पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विंदते कटिम् ॥ तद्धार्यमुपवीतं  
स्यान्नातो लंबं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥ सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ॥  
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥

त्रिवृत् तीनवार एक डोरेके ऊपरको और तीनों त्रिवृत् नीचेको बनावै, तब यह यज्ञो-  
पवीत होताहै और फिर उसमें एक ग्रंथि लगावै ॥ २ ॥ जनेऊ न बहुत लम्बा और न बहुत  
छोटा हो इतना लम्बा हो जो कि पीठके दास और नाभिपर रक्खाहुआ कमरतक आजाय,  
ऐसा जनेऊ पहरना उचित है ॥ ३ ॥ सर्वदा यज्ञोपवीतको पहरे रहै, और चोटीमें गांठ  
लगी रहै, जो ( ब्राह्मण ) विना यज्ञोपवीत पहरे, या चोटीमें विना गांठ लगाये हुए जो  
कार्य करताहै, उसके वह कार्य न कियेकी समान होते जातेहै ॥ ४ ॥

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥ आस्पनासाक्षिकर्णाश्च नाभि-  
वक्षःशिरोंसकान् ॥ ५ ॥ संहताभिरुयंगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठेन  
प्रदेशिन्यां घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः  
पुनः ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभि हृदयं तु तलेन वै ॥ ७ ॥ सर्वाभिस्तु शिरः पश्चा-  
द्बाह्व चात्रेण संस्पृशेत् ॥

तीनवार आचमनकर दोवार मुख पोंछकर मुख नासिका, दोनों नेत्र, कान, नाभि, हृदय,  
शिर, और कंधे इनका स्पर्श करै ॥ ५ ॥ बीचकी तीनों मीलीहुई अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श  
करै, इसी भाति अगूठे और प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्श करै ॥ ६ ॥ अंगूठे और अना-  
मिकासे वारवार नेत्र और कानोंका स्पर्श करै, कनिष्ठा और अंगूठेसे नाभिका स्पर्श करै  
और हथेलीसे हृदयका स्पर्श करै ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण अंगुलियोंसे शिरका स्पर्श करै, इसके  
उपरान्त हाथोंके अग्रभागसे दोनों मुजाओंका स्पर्श करना उचित है, १

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते ॥ ८ ॥

दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

मिस स्थानपर कर्म खासकी आज्ञा हो, और करनेवालेका भंग न कहाहो ॥ ८ ॥ इस स्थानपर दहिना हाथ जो सम्पूर्ण कर्मोंको पूर्य करताहै इसको आनता उचित है,

यत्र दिङ्नियमो न स्यात्प्रहोमादिकर्मसु ॥ ९ ॥

तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्रीसौम्यापराजिता ॥

जिस स्थानपर जप हवन आदि कर्मोंमें दिशाका नियम न हो ॥ ९ ॥ उस स्थानपर तीन दिशा कहीहैं, पूर्व, उत्तर, पश्चिम,

तिष्ठन्नासीनः प्रहो वा नियमो यत्र नेहशः ॥

तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रहेण न तिष्ठता ॥ १० ॥

और फिर यह नियमभी नहींहै कि खडाहुआ, या बैठकर या झुककर बैठके इस कर्मको करे वहां उस कर्मको बैठकर करे, लडे होकर या नीचेको झिरकर बैठकर न करना ॥ १० ॥

गौरी पद्मा क्षत्री मेधा सावित्री विजया जया ॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरौ लोकांतरः ॥ ११ ॥ धृति पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥ गणेशेना

धिका ह्येता पूर्यी पूज्याश्च पोडश ॥ १२ ॥ कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सग

णाविपा ॥ १३ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयति ताः ॥ प्रतिमासु च

शुभ्रासु लिखित्वा या परादिषु ॥ अपि वास्ततपुजेषु नैवेद्यैश्च पूजयिष्यैः ॥ १४ ॥

कुम्भलम्बा वसोर्द्वारा सप्तधारां पूतेन तु ॥ कारयेत्पञ्चधारां वा नातिनीचां नयोच्छ्रिताम् ॥ १५ ॥ आयुष्याणि च शौत्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥

पह्म्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥ १६ ॥

गौरी, पद्मा, क्षत्री मेधा, सावित्री विजया जया देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातर, लोकांतर ॥ ११ ॥ धृति, पुष्टि, तुष्टि, और आत्मदेवता जिनमें अधिक गणेश हैं इन सोढह मातृकामोंको धृष्टि ( नांशुमुलभाद्र ) जो पुत्रके जन्म आदिकमें किया जाताहै उसमें पूजे ॥ १२ ॥ और यमपूर्वक सम्पूज कर्मोंमें इन मातृकामोंकी पूजा करे,

कारण कि यह पूजाको प्राप्त होकर स्वयं पूजनेवालेकी पूजा करवातीहै ॥ १३ ॥ इनकी पूजा सफेद मूर्तियोंमें या पट्टपर किलपर अङ्गुठोंसे, और पूजक नैवेद्यसे करे ॥ १४ ॥

बीवारपर छगीहुइ पाँसे सात धारा या पाँच धारा करवावे बह धारा न बहुत लीची और न बहुत लीची हो ॥ १५ ॥ इन कर्मोंकी शान्तिके लिये सायणानीसे शायक पढानेवाले मंत्रोंको जैसे इच्छे उपरान्त भक्तिपूर्वक छः पितरोंके उद्देश से श्राद्ध प्रारंभ करे ॥ १६ ॥

अनिष्टा तु पितृभ्यश्च न पुण्याक्रमं वैदिकम् ॥ तत्रापि मातरः पूर्वा पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ पसिद्योसा विधिः कृत्वा द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥ अत्र पर

प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीकारवापनगृही प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

श्राद्धमें पितरोंकी विना पूजा किये हुए वेदोक्त कर्मको न करै, यहांभी यत्नसहित सबसे प्रथम माता ( षोडश मातृका ) पूजनीया हैं ॥ १७ ॥ इस ( श्राद्धमें ) वशिष्ठ ऋषिकी कही-हुई ( अर्थात् वशिष्ठस्मृत्युक्त ) सम्पूर्ण विधि जानलेनेपर आभिष ( मास ) को वर्जदेवै, इसके उपरान्त इसके विषयमें जो विशेष होगा उसे ( दूसरे खंडमें ) कहूंगा ॥ १८ ॥  
इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

### द्वितीयखण्डः २.

प्रातरामन्त्रितान्विघ्नान्युग्मानुभयतस्तथा ॥ उपवेश्ये कुशान्दद्याद्भुजैव हि पा-  
णिना ॥ १ ॥ हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ॥ समूलाः पितृदै-  
वत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥ २ ॥ हरिता वै सपिञ्जलाः शुष्काः स्निग्धाः  
समाहिताः ॥ रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तुताः ॥ ३ ॥ पिंडार्थं ये स्तुता  
दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ॥ धृतैः कृते च विष्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयते ॥ ४ ॥

प्रातःकालही निमंत्रण दियेहुए दो दो ब्राह्मणोंको दोनों पक्ष ( पिता आदिक तीन, माता-  
मह आदिक तीन ) में बैठालकर कोमल हाथोंसे कुशाओंको देवै ॥ १ ॥ हरे रंगकी कुशा  
सामान्य यज्ञमें, पीले वर्णकी कुशा पाकयज्ञमें, पितर और देवताओंके लिये जडसहित  
कुशा होनी उचित है, और विश्वदेवताओंके निमित्त काली कुशा होनी ॥ २ ॥ हरी, पीली,  
शुकी, चिकनी, सावधानतासे रक्खीहुई रत्नि ( मुट्टी वधे हाथ ) के बराबर और पितृतीर्थ-  
से ( अंगुष्ठ तर्जनीके मध्यमें होकर ) रक्खीहुई ॥ ३ ॥ पिंड और तर्पणके निमित्त कुशाओंको  
रखकर यदि विष्टा और लघुशका करै तौ उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४ ॥

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ॥ पातयेदितरं जानुं पितृन्परिचरन्नपि  
॥ ५ ॥ निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित् ॥ सदा परिचरेद्भक्त्या  
पितृन्प्यत्र देववत् ॥ ६ ॥

देवताओंकी पूजा करनेके समयमें मनुष्य दाहिनी जंवाको नचावै, और पितरोंकी पूजा  
करनेके समयमें बाईं जांघको झुकावै ॥ ५ ॥ परन्तु वाम जंवाका झुकाना कहींभी नहीं है  
श्रुत. पितरोंकाभी देवताओंकीही समान पूजन करै ॥ ६ ॥

पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ॥ गोत्रनामभिरामंभ्य पितृन्ध्वं प्रदा-  
पयेत् ॥ ७ ॥ नात्रापसव्यकरणं न पिड्यं तीर्थमिष्यते ॥ पात्राणां पूरणादीनि  
दैवेनैव हि कारयेत् ॥ ८ ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रयविक्रान् ॥ कृत्वाध्वं  
संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ ९ ॥

“पितृभ्य इदं कुशासन स्वधा” इस मंत्रसे दीहुई कुशाओं पर बैठकर नाम और गोत्रसे  
जुलाकर पितरोंके निमित्त अर्घ दे ॥ ७ ॥ पात्रोंके पूरण आदि कर्म देवतीर्थके द्वाराही  
करै, इनमें अपसव्य करना नहीं है, और पितृतीर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ दाहिना हाथ आगेकर  
और दोनों हाथ तथा हाथोंके आगे पवित्री करके अर्घ दे, एक हाथसे अर्घ देना उचित  
नहीं ॥ ९ ॥

अनतर्गमिणं साग्र कौश द्विदलमेष च ॥ प्रादेशमात्र विज्ञेयं पवित्र यत्र कुत्र-  
चित् ॥ १० ॥ एतदेव हि पिंजूल्या लक्षण समुदाहृतम् ॥ आज्यस्योत्पन्नार्थ  
यत्तदप्येतावदेव तु ॥ ११ ॥ एतत्प्रमाणामेवैके कौशीमेवार्द्रमजरीम् ॥ शुष्का  
वा शीणकुसुमां पिंजूलीं परिचक्षते ॥ १२ ॥

बिना गर्मबाष्पी कुशा, और अन्न भागवाली दो बूँदी कुशा बनी हुई केवल बिल्व मरकी  
पवित्रीका अनेक कर्मोंमें व्यवहार करे ॥ १० ॥ पिंजूली कुशाकी भी यही पहचान है  
और घृतको पवित्र करनेवाली कुशाकी भी यही पहचान है ॥ ११ ॥ कोई २ अपि कहते  
कि इतनेही प्रमाणकी कुशाओंकी पवित्री होती है, कुशा गीली हो या सूखी हो, परन्तु उनके  
कण गिरगये हों, उसकोही पिंजूली कहा है ॥ १२ ॥

पिष्यमत्रानुदवण आत्मात्मभेदधमेक्षणे ॥ अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभापणे  
॥ १३ ॥ मार्जारसूपकस्पर्शे आकुप्टे क्रोधसभवे ॥ निमित्तेष्वेपु सर्वत्र कर्म  
कुर्वन्तपः स्पृशेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीय खण्ड ॥ २ ॥

पित्तरोके अत्रोसे अनुदवण ( जिन अत्रोंको सुनकर पितर मग्न न हों ) आत्मात्मन श-  
वा कोई नीच देखे, अथवा अधोवायु हाजाय या झूठी बोखे ॥ १३ ॥ बिल्व, पूषा,  
यही घृते, या कोई गाळी कहीजाय या क्रोधही आजाय यदि यह उपद्रव होजाय तो सब  
स्वान्तोंमें कर्मोंको करनेवाला मनुष्य जलका स्पर्श करे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मायादीकानां द्वितीयखण्डः समाप्तः ॥ २ ॥

### तृतीयखण्डः ३

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्विन् कर्मकारिणाम् ॥

अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चापयाक्रिया ॥ १ ॥

बिद्वानोंने कर्म करनेवालोंकी अक्रिया तीन प्रकारकी कही है, पहली अक्रिया ( कर्मका न  
करना ) दूसरी परोक्ष ( किसीके कहनेसे कर्म करना ) ३ तीसरी अपयाक्रिया ( जिसप्रकार  
हानी उचितहो उसभावि न करना ) ॥ १ ॥

स्यशास्त्राभयमुत्सृज्य परशास्त्राभयं च य ॥

कतमिच्छति दुर्मेघा मोघ तदस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥

जो दुष्टदि मनुष्य अपनी शास्त्राके कहे हुए कर्मोंको छोड़कर दूसरेकी शास्त्राके कर्मोंको  
करनेमें प्रवृत्त होता है, उसके सम्पूर्ण काम निष्फल हो जाते हैं ॥ २ ॥

यन्नास्त्रातं स्यशास्त्रायां परोक्तमयिरोधि च ॥

विद्विस्तदनुष्ठेयमभिदोशादिकर्मयत् ॥ ३ ॥

जो अपनी शास्त्रातं न कहाइये और जो अपने कर्मका विरोधी न हो, हानी मनुष्य दूस-  
रेकी शास्त्रातं कहे हुए उस कर्मको अभिदोषादिके सामान करे ॥ ३ ॥

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन ॥ यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समाप-  
येत् ॥ ४ ॥ समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ॥ तावदेव पुनः कुर्या-  
न्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥ ५ ॥ प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः ॥  
तदंगस्याक्रियायां च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥ ६ ॥

यदि जिस कर्मको प्रारंभ कियाहो और बिना पूराहुएही बीचमें अन्यथा होजाय तौ जिस  
स्थानसे वह कर्म अन्यथा हुआहै वहांसेही फिर उस कार्यको आरंभ करके समाप्त करै ॥ ४ ॥  
यदि कार्यके समाप्त होजानेपर यह विदित होजायकि यह कार्य मैंने अन्यथाही कियाथा, तौ  
उतनाही उस कार्यको फिर करदे किन्तु सम्पूर्ण कार्यको फिर न करै ॥ ५ ॥ जहा प्रधान  
कर्म नहीं कियाहो, वहां फिर सांग ( सब ) कर्मको करना उचित है, यदि उस कर्मका कोई  
अंग न कियाहो तौ वहां सम्पूर्ण कार्य का प्रारंभ न करै ॥ ६ ॥

मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ॥

गायत्र्यनंतरं सोऽत्र मधुमंत्रविवर्जितः ॥ ७ ॥

मधु, मधु, मधु, यह भोजन करनेवालोंका जो तीनवार जप है वह यहा ( श्राद्धमें )  
गायत्रीके पीछे 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्रके बिना करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

न चाश्रत्सु जपेदत्र कदाचित्पितृसंहिताम् ॥

अन्य एव जपः कार्य्यः सोमसामादिकः शुभः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें, श्राद्धके समयमें पितृसंहिताका जप न करै, अर्थात्  
उसका पाठ न करै, अन्यकाही सोम और सामआदिका शुभ पाठ करै ॥ ८ ॥

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यवतथा ॥

उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृषु विपरीतकः ॥ ९ ॥

तिल और जौके समान जो अन्नका प्रकर ( विकिरपिंड ) है वह उच्छिष्टके समीप दे, और  
ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर जहा उच्छिष्ट नहो उस स्थानपर देना उचित है ॥ ९ ॥

संपन्नमिति तृप्ताःस्थ प्रभ्रस्थाने विधीयते ॥

सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ १० ॥

सम्पन्न, ( भली भांतिसे किया ) तृप्तहुए यह तौ यजमानके पूछनेके समय कहें, जब  
ब्राह्मण ( मर्लीभाति तृप्तहुए ) कहदे, तौ शेष अन्नको यजमान दे दे ॥ १० ॥

प्राग्नेष्वथ दर्भेषु आद्यमामंत्र्य पूर्ववत् ॥ अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति पा-

त्रतः ॥ ११ ॥ द्वितीयं च तृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोः ॥ मातामहप्रभृतीस्त्रो-

नेतेषामेव वामतः ॥ १२ ॥ सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यंजनैरुपपिच्य च ॥ संयोज्य

यवकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥ अवनेजनवात्पिण्डान्दत्त्वा विल्वप्र-

माणकान् ॥ तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ तृतीय. सङ् ॥ ३ ॥

पूर्वकी ओरको अग्रभागवाली कुशाओंके ऊपर आप ( पिता ) का पूर्वके समान आमंत्रण करके पात्रमें 'अबनेन्स्व' इस मंत्रसे कुशाओंकी जड़में जड़ बाँधे ॥ ११ ॥ पितामहको कुशाओंके मध्यमें खड़े, और भवितामहको कुशाओंके अग्र भागमें खड़े । मातामह ( नाना ) आदि धीनोंको भी इनकी चाँई ओर खड़ दे ॥ १२ ॥ सत्र अन्नमेंसे निकालकर ध्यंजनसे युक्त कर, औ, बेर, इही मिलाकर, पीछे पूर्व की ओर को मुख करके ॥ १३ ॥ बेलकी समान प्रमाणवाले पिंडोंको जवनेजन जहाँ २ दियाया वहाँ २ देकर अबनेजनके पात्रको धाकर प्रत्यबनेजन दे ॥ १४ ॥

इति काल्याणनस्मृतौ मायाटीकायां तृतीयखण्ड उच्यते ॥ ३ ॥

### चतुर्थ खण्ड ४

उत्तरोत्तरदानेन विद्वानामुत्तरोत्तर ॥ भवेदधश्चापराणामधर आदिकर्मणि ॥ १ ॥  
तस्माच्छूद्रेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ॥ मूलमध्याग्रदेशेषु ईपत्सक्तुश्च नि  
र्षेपेत् ॥ २ ॥ गघादीनिक्षिपेत्तूर्णानि तत आचामयेद्विजान् ॥ अन्यत्राप्येष  
स्वाधवादिरहितो विधि ॥ ३ ॥ दक्षिणाच्छयने देशे दक्षिणामिसुस्य च ॥  
दक्षिणाग्रेषु दधेपु एयोऽन्यत्र विधिः स्मृत ॥ ४ ॥

क्रमानुसार उत्तर २ पिंडोंके देनेसे पिछसा, नीचेको पठित होताहै, इस कारण आदिकर्ममें निचखोंको नीचे २ स्थानोंपर पिंड देने लखित हैं ॥ १ ॥ इस कारण वृद्धिके आदिक या इतर आदिकमें कुशाकी जड़के अग्रभागमें कुण्डलक छोड़कर पिंड दे ॥ २ ॥ मंत्रोंके बिनाही गघ अपदि व और इसक पीछे प्राज्ञोंको आपमन करावै इतर आदिक ( पार्षणमादि ) में औके बिना यही विधि होतीहै ॥ ३ ॥ जो देश दक्षिणकी ओरको नीचाहो उस देशमें यजमानमी दक्षिणको मुख करके बैठे और दक्षिणाग्रही कुशाओंके ऊपर पिंड आदि दे वह विधि इतर आदिकमें कही गई है ॥ ४ ॥

अपाम्नीभिमार्सिषेत्सुसंपोक्षितमस्त्विति ॥ शिषा आप सन्धिति च युग्मा  
नेषोदकेन च ॥ ५ ॥ सीमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥ अक्षत चा  
रिष्ट चास्त्विष्यभता प्रतिपादयेत् ॥ ६ ॥ अक्षम्योदकदानं तु अभ्यदानवदि-  
प्यते ॥ पृष्ठेषु नित्य तत्कूर्प्यान्न चतुर्भ्या कदाचन ॥ ७ ॥ अभ्यक्षप्योदके  
येषु पिण्डदानेऽनेनेने ॥ तत्रस्य तु निवृत्तिः स्वास्त्यप्राप्त्यन एव च ॥ ८ ॥  
प्रार्थनासु प्रतिशोके सम्वास्थ्येय द्विमोक्षमे ॥ पविशतर्हिस्तान्पिडांसिधेदुस्तान  
पात्रकृत् ॥ ९ ॥ यग्मानेष स्वस्तियाप्यमहृष्टाग्रमह मह ॥ कृत्वा पुष्पस्य  
विप्रस्य प्रणम्यानुवनेतत ॥ १० ॥

छिद्र यजमान अपने जागनेकेपूछीको जड़से 'सुसंपोक्षितमस्तु' इस आर "पिता आप सस्तु" इस मंत्रसे सीच और बार २ प्राज्ञोंको ॥ ५ ॥ 'सामनस्यमस्तु' इस मंत्रसे पुष्प दे ॥ 'अक्षत चारिष्टमस्तु' इस मंत्रसे अक्षत द ॥ ६ ॥ अर्प देनेके समान अक्षय जलकर देना कदाहै, और इस अक्षप्योदकको कष्टी ( विष्णु आदि ) विमलि होकर दे, और चतु-

र्थी ( पित्रे ) बोलकर कभी न दे ॥७॥ अर्घ, अक्षय्योदक, पिंडदान, अग्नेजन, और स्वधाके वचन इन कर्मोंमें तन्त्र ( एक सकल्पमें सबको अर्घ आदि देने ) को त्याग दे ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंने जो यजमानकी प्रार्थनाका उत्तर दियाहै उसके उपरान्त अर्घके पात्रोंको सीधा करके पवित्रियोंसे ढके हुए पिंडोंको सींचे ॥ ९ ॥ दो दो पिंडोंको सींचकर स्वस्तिवाचन करे और अगूठोंका ग्रहण कर प्रथम मुख्य ब्राह्मणका करे, इसके अनंतर नमस्कार करके ब्राह्मणोंके पीछे चले ॥ १० ॥

एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ॥ ये विन्दन्ति न मुह्यन्ति श्राद्धकर्म-  
सु ते क्वचित् ॥ ११ ॥ इदं शास्त्रं च गुह्यं च परिसंख्यानमेव च ॥ वसिष्ठोक्तं  
च यो वेद स श्राद्धं वेद नेतरः ॥ १२ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

यह श्राद्धकी सम्पूर्ण विधि मैंने संक्षेपसे तुमसे कही, जो मनुष्य इस विधिको जानतहै, वह कभीभी श्राद्धके कर्ममें मोहित नहीं होते ॥ ११ ॥ इस शास्त्रको और शास्त्रकी गुप्त विधिको तथा वशिष्ठजीके कहे शास्त्रको जो जानताहै वह श्राद्धको जानताहै दूसरा नहीं ॥ १२ ॥  
इति कात्यायनस्मृतिभाषाटीकाया चतुर्थखण्ड समाप्त ॥ ४ ॥

### पञ्चमः खण्डः ५.

असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥ प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्रा-  
द्ध मेव च ॥ १ ॥ आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ॥ बालिकर्माणि दर्शं  
च पौर्णमासे तथैव च ॥ २ ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एक-  
मेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे  
श्राद्धमिष्यते ॥ न सोष्यन्तीजातकर्म प्रोषितागतकर्मसु ॥ ४ ॥

कर्म करनेवाले जिन कर्मोंको बारबार करतेहैं, उन प्रत्येक कर्मोंके समयमें यह षोडश मातृका और श्राद्ध ( नादीमुख ) यह नहीं होता ॥ १ ॥ गर्भाधान, होम, बलिवैश्वदेव, बालिके देनेमें तथा अमावस और पूर्णमासीके कर्ममें ॥ २ ॥ और नवयज्ञमें यज्ञके जाननेवाले पंडित कहतेहैं कि एकही श्राद्ध होताहै, पृथक् २ नहीं होता ॥ ३ ॥ अष्टकाओंके समयमें एक और श्राद्धकेसमयमें दूसरा श्राद्ध नहीं होता, जो परदेशमें सोष्यन्ती ( जिसके बालक उत्पन्न हुआहो ) रहतीहो तो उसे जातकर्म करना उचित नहीं, पूर्व होआए कर्मोंमेंभी न करे ॥ ४ ॥

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ॥

विवाहादाविकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥५॥

विवाह आदि कर्मोंका जो समूह कहाहै उसे और गर्भाधान इसको हमने सुना, इसके उपरान्त विवाहकी आदिमें एकही श्राद्ध होताहै प्रतिकर्मकी आदिमें नहीं होता ॥ ५ ॥

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद्रोनिष्कामप्रवेशयोः ॥ न श्राद्धे युज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिक-  
र्माणि ॥ ६ ॥ हलाभियोगादिषु षट्सु कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥ प्रतिप्रयोगमप्येषा-  
मादावेकं तु कारयेत् ॥ ७ ॥



एकही भाद्र प्रयोगमें होताहै; और गौक निकाहने और प्रवेश करनेके समयमें भी प्रथम पुष्टिके छिये जो कर्म किया जाताहै उसमें भाद्र न करे ॥ ६ ॥ इसके जोतने आवि छे कर्ममें प्रवृत् २ भाद्र होताहै, इसकारण प्रत्येक कर्मकी आविमें एक भाद्र करावै ॥ ७ ॥

घृह्यत्पशुद्वयपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतो ॥ सूर्य्येदो कर्मणी ये तु तयो भाद्र न विद्यते ॥ ८ ॥ न दशाम्रिषिके षेष विषवदष्टकर्मणि ॥ कृमिदष्टविक्रिस्ता यां नैष क्षेपेषु विद्यते ॥ ९ ॥

बड़े २ पक्षी, और छोटे २ पशु इनके कस्याजके निमित्त कियेहुए, और सूर्य तथा पशु माके परिवेषके समयमें किये हुए कर्ममें भाद्र न करे ॥ ८ ॥ दशा प्रविक कर्ममें, विषके जन्तुके बसनेपर जो कर्म होताहै उसमें अथवा कौहेके बसेकी चिकित्सामें जो कर्म क्षेपणों में भाद्र नहीं है ॥ ९ ॥

गणश क्रियमाणेषु मातृम्यं पूजन सकृत् ॥ सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादी न पृथ गादिषु ॥ १० ॥ यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरं ॥

एकवारही बहुवसे किये हुए कर्ममें पोबदा मातृकाओंका पूजन और कर्मकी आविमें एकवारही भाद्र होताहै प्रवृत् २ कर्मोंकी आविमें नहीं होता जिस स्थानपर भाद्र होताहै उस स्थानपर सोबदा मातृकायें होतीहैं,

प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतं प्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चमं खण्डं ॥ ५ ॥

यहांतक तो प्रसंगमें आयाहुमा फल, और अब प्रकृत अर्थात् जिसका प्रकरण था बडे कहते हैं ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मातृकीकार्या पञ्चमं खण्डं समाप्तं ॥ ५ ॥

### पष्ठ खण्ड ६

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाभियोनयं ॥

तदाभयोरभिमादध्यादभिमानग्रजो यदि ॥ १ ॥

जा अभिके आधानके समय हैं, और जा अभिके कारण हैं उन्हींमें अभिहारी बडा भार्द अभिहोत्रको मह्य करे ॥ १ ॥

दायदिगमनाधानं यं सूर्यादग्रनामिम ॥ परिवेत्ता स विज्ञेय परिविचिस्तु पूर्वजं ॥ २ ॥ परिविचित्परिवेत्तारी नरकं गच्छतो ध्रुवम् ॥ अपि चीनमाय धिष्ठी पादोनफलभागिनी ॥ ३ ॥

बडे भार्दसे पहले जा छोटा भाद्र विवाह और अभिहोत्र करताहै बडे परिवेत्ता होताहै, और बडा भार्द परिविचित् करताहै ॥ २ ॥ परिविचित् और परिवेत्ता यह दोनों निशपही नरकमें जातेहैं; यदि यह दोनों जमे प्राविष्ट करते तो पाधान ( चीनमाग ) पत्रके भागी होतेहैं ॥ ३ ॥

देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान् ॥ वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः  
 ॥ ४ ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुंडकान् ॥ अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिस-  
 क्तान्पस्य च ॥५ ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ॥ कुलटोन्मत्त-  
 चोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥ ६ ॥

यदि बड़ा भाई परदेशमें चलागयाहो, अथवा नपुसक हो या जिसके एकही वृषण ( अंड-  
 कोश ) हो, या अपना सगाभाई न हो, वेश्यामें गमन करता हो, पतित हो, शूद्रके समान हो,  
 अत्यन्त रोगी हो ॥४॥ महाअज्ञानी हो, गूगा हो, अघा हो, बहिरा हो, कुबडा हो, वामन (बिलं-  
 दिया ) हो वा कुडक ( पिताके जीतेहुए जारसे उत्पन्न हुआहो, ) वा अत्यन्त वृद्ध हो, जिसके  
 स्त्री न हो, या जो राजाकी खेती करताहो ॥५॥ धनके बढ़ानेमें जो तत्पर हो, अपनी इच्छा-  
 नुसार कर्म करनेवाला वा कुलट ( घर २ में फिरनेवाला ) वा उन्मत्त तथा चोर हो, ऐसे  
 बड़े भाईके होते हुए परिवेदन ( प्रथम अपना विवाह करनेमें या अग्निहोत्र ग्रहण करनेमें )  
 छोटे भाईको दोष नहीं लगता ॥ ६ ॥

धनवार्धुषिकं राजसेवकं कर्मकं तथा ॥ प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन्  
 ॥ ७ ॥ प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत् ॥ आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं  
 तच्छुद्ध्ये चरेत् ॥ ८ ॥

यदि बड़ाभाई व्याजके द्वारा धनके बढ़ानेमें रतहो राजाका सेवक हो, अथवा परदेशमें  
 रहताहो तो विवाहके लिये शीघ्रता करनेवालाभी छोटाभाई ऐसे भाईकी तीन वर्षतक प्रतीक्षा  
 करतारहै ॥ ७ ॥ यदि बड़े भाईके परदेशमें रहने पर उसका कुछ समाचार न मिलताहो  
 तौ छोटाभाई एक वर्षके उपरान्त विवाह आदि करसकताहै, और फिर यदि बड़ाभाई आजाय  
 तौ उस पापके लिये चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ ८ ॥

लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशांगुलम् ॥ तन्मूलसक्ता योदीची तस्या  
 एतन्नवोत्तरम् ॥ ९ ॥ उदग्गतायाः संलम्नाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः ॥ सप्तस-  
 ष्ठांगुलांस्त्यक्त्वा कुशैनेव समुल्लिखेत् ॥ १० ॥

पूर्व कह आयेहैं कुशाओंके लक्षणोंको इसकी परीक्षामें वारह अंगुलका प्रमाण है, और  
 कुशाओंकी जडमें फटी उदीची जो उत्तरकी ओर कुशा है उसका प्रमाण अधिकसे अधिक  
 नौ अंगुलका है ॥ ९ ॥ उस उदीचीसे लगीहुई जो और शेष कुशा हैं उनका प्रमाण प्रादेश  
 तक हो, सात अंगुलकी कुशाओंके अतिरिक्त कुशासे उल्लेखन करना उचित है ॥ १० ॥

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ॥

मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥ ११ ॥

जहा क्रियाका प्रमाण कहाहो, और प्रमाणके करनेवालेको न कहाहो, उस स्थानपर  
 विद्वानोंका यह कथन है कि प्रमाणका कर्ता तौ यजमानही होता है इसकारण यजमानकी  
 अंगुलियोंसे कुशाको नापले ॥ ११ ॥

पुण्यवानादधीताग्निं सहि सर्वैः प्रशस्यते ॥

अनर्द्धकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥ १२ ॥

पवित्र पुरुष अग्निमें हवन करे, कारण कि सभी अग्निही प्रशसा करते हैं, और उस अग्निके अनर्बकताको ( सपूर्णताको ) कामनाके समस्त क्रमोंसे ज्ञात किया जाता है ॥ १२ ॥

यस्य दत्ता भवेत्कन्या याचा सत्येन येनचित् ॥ सोऽन्यां समिधमाधास्पन्नाद्  
धीतेष नान्यया ॥ १३ ॥ अनूठेय तु सा कन्या पञ्चत्व यदि गच्छति ॥ न  
तया ध्रतलोपोऽस्य तेनेषान्यां समुदहेत् ॥ १४ ॥ अथ चेन्न लभेतान्यां याच  
मानोऽपि कन्यकाम् ॥ सममिमात्मसाकृत्वा सिम स्यादुधराभमी ॥ १५ ॥

इति कल्याणस्मृतौ पठः षण्डः ॥ ६ ॥

यदि किसी मनुष्यने सत्यवचनसे किसीको कन्या दानकी हो अथात् उसके साथ सगाई करवा दी हो, और फिर वही ( वर ) पिछली समिधोंका आधान ( विवाहके हवन ) करनेकी इच्छा करे तो वह दूसरी स्त्रीके साथ नहीं करसकता क्योंकि जिसके साथ सगाई हुई थी उसी स्त्रीके साथ हवन कर सकता है ॥ १३ ॥ यदि वह कन्या विवाह होनेके पहलेही मरजाय, तो इस पुरुषका व्रत छेप नहीं हो सकता वह उसी अग्निही सहायतासे दूसरी स्त्रीके साथ विवाह करसकता है ॥ १४ ॥ यदि मांगनेपरमी दूसरी कन्या न मिले तो उस अग्नि-को आत्माने छीनकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करे ॥ १५ ॥

इति कल्याणस्मृतौ भगवतीकायां पठः षण्डः समाप्तः ॥ ६ ॥

### सप्तमः खण्ड ७

अश्वत्थो यः शमीगर्मः प्रशस्तोर्ध्वीसमुद्रघः ॥ तस्य या प्राङ्मुखी शाखा  
वोदीची बोद्धगापि वा ॥ १ ॥ अरणिस्तन्मयी मोक्षा तन्मय्येषोऽधरारणिः ॥  
सारथदारथ श्वानमोविली च प्रशस्यते ॥ २ ॥ संसक्तमूली यः शम्याः स शमी  
गर्म उच्यते ॥ अलाभे त्वशमीगर्माद्दुःखरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिरगुष्ठ  
दूर्ध्वं पृथपि पार्थिवम् ॥ पत्वार उच्छ्रये मानमरण्याः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥  
अष्टांगुलं प्रमथ्यं स्याच्चक्रं स्याद्वादशांगुलम् ॥ ओविली द्वादशैव स्यादेतन्म  
यनपत्रफलम् ॥ ५ ॥ अगुष्ठांगुलमानं तु यत्र पत्रोपदिश्यते ॥ तत्र तत्र बृहत्पत्र  
त्रयिभिर्मनुपात्सदा ॥ ६ ॥ गोघालैः क्षणसंभिमैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ॥  
भ्यामप्रमाण नेत्र स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥

पवित्र मृगिमें उत्पन्न हुए अश्वत्थ ( पीपल ) शमीके गर्भसे पुच्छ वसन्ती जो पूर्व उत्तरकी ओरको गर्भद्वारे शाखा है ॥ १ ॥ उसकी नीचली और ऊपरकी अरणी ( जिसमें दरमेंको वृषा कर बरमा फेरते हैं सो ) होती है, और इहकाछका भाग और ओविली, पत्ती भेद करते हैं ॥ २ ॥ पीपलमें छमीद्वारे शमी ( अट ) की मूळ ( अट ) है उसे शमी गर्भ कहते हैं कदाचित् शमी-गर्म न मिले तो बिना शमीगर्भके पीपलमेंसे अरणीके निमित्त शाखाको क्षीम ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥ दोनों अरणिषोंका प्रमाण चौबीसअंगुलका अन्धा और छे या चारअंगुलका मोटा कहा है ॥ ४ ॥ 'प्रमथ' ( बर्सा ) आठअंगुलका "पात्र" बारहअंगुलका और ओविलीमी बारहअंगुलकी होती है, इस सबके मिलनेसे मयपेका पत्र होता है ॥ ५ ॥ जिस जिस

स्थानपर अगूठे और अंगुलका प्रमाण कहा है, उसी स्थानको वृहत्पर्वसे सर्वदा नापले ॥ ६ ॥  
शणभिलेहुए गौके बालोंसे त्रिघृत्त करके निर्मल स्वरूप व्याम ( ३ हाथ ) प्रमाणवाले नेत्र  
( नतना ) बनावै इसीसे अग्निको मथै ॥ ७ ॥

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ॥ अंगुष्ठमात्राण्येताति व्यंगुष्ठं वक्ष  
उच्यते ॥ ८ ॥ अंगुष्ठमात्रं हृदयं व्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् ॥ एकांगुष्ठा कटिर्ज्ञेया  
द्वौ वास्तिर्द्वे च गुह्यके ॥ ९ ॥ ऊरू जंघे च पादौ च चतस्र्यैकैर्यथाक्रमम् ॥  
अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥ यत्तद्गुह्यामिति प्रोक्तं देवयो-  
निस्तु सोच्यते ॥ अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृद्उच्यते ॥ ११ ॥

शिर. नेत्र, कान, मुख, कंधरा ( नाड ) यह पांचो अगूठेकी समान हो, और दो अंगूठेकी  
बराबर छातीहो ॥८॥ एक अगूठेके बराबर हृदय, तीन अंगूठेकी बराबर उदर, एक अंगूठेकी  
बराबर कमर, दो अगूठेकी बराबर वस्ति और गुह्य ( उपरथ और गुदा ) होनी उचित हैं ॥९॥  
ऊरू, जघा, पाद, यह तीनों क्रमानुसार चार, तीन या एक अगुलभरके होतेहैं इन सबको  
यज्ञकर्त्ताओंने अरणीके अवयव कहा है ॥ १० ॥ जो पूर्व गुह्य(उपस्य ) कहा है उसे अग्निकी  
योनि ( कारण ) कहते हैं इसमें जो अग्नि है उसीको कल्याण करनेवाला कहा है ॥ ११ ॥

अन्येषु ये तु मथन्ति ते रोगभयप्राप्तयुः ॥ प्रथमे मन्यने त्वेष नियमो नोत्त-  
रेषु च ॥ १२ ॥ उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमथः सर्वदा भवेत् ॥ योनिसंकरदोषेण  
युज्यते ह्यन्यमन्यकृत् ॥ १३ ॥

अन्य स्थानपर जो मनुष्य अग्निका मथन करते हैं उनको रोग और भयकी प्राप्ति होती  
है, इनमे पहले मथनेकाही नियम है, वह चाहे जैसा क्यों न हो, दूसरीबार मथनेका नियम  
नहीं है ॥ १२ ॥ प्रमथ सर्वदाही ऊपरकी अरणासे उत्पन्नहुएका वनता है, जो अन्य प्रमथसे  
करता है उसे योनिसकरके दोषसे दूषित होना पडता है ॥ १३ ॥

आर्द्रा ससुषिरा चैव घूर्णांगी पाटिता तथा ॥

न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

गौली ससुषिरा ( छिद्रसहित ) घुनी घूर्णांगी ( गठीली ) पाटिता ( फटी ) यह दोनों ( पूर्व  
और उत्तर ) अर्थात् नीचे और ऊपरकी अरणी इनकी यजमान बनावै, तौ यह उसके  
हितकारी नहीं होती ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तमः खण्डः समाप्त ॥ ७ ॥

### अष्टमः खंडः ८.

परिधायाहतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ॥ विभृयाःप्राड्मुखो यंत्रमावृता  
वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥ चात्रबुध्रे प्रमन्याग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ॥ कृत्वोत्तरा-  
त्रामरणिं तद्बुध्मुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥ चक्राधः कीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्र-

काम ॥ विष्टभाद्धारयेद्यत्र निर्ष्कम्प प्रयत्न शुचि ॥ ३ ॥ विरुद्रेष्टघाय नेत्रेण  
चक्रं पत्न्योहताशुका ॥ पूर्व मर्मस्यरप्यन्ता\* माध्यमे\* स्थाद्यया च्युति\* ॥ ४ ॥

नवीन वस्त्रोंको पहनकर यथाविधि यत्रकी प्रवृत्तिणाकर पूर्वकी ओरको मुखा करके, सिसका  
बगनें लाग करैगे सही बाहुतसे यत्रको धारण करै, ॥ १ ॥ चाय ओरें बुध्न तथा प्रथम  
का अग्रभाग इन सबको ओरसे पकड़कर ऊपरको अग्रभागबाजा धरणीको उस करके उस  
बुध्नके ऊपर रखवे ॥ २ ॥ चात्रके नीचेकी कीलके अग्रभागमें स्थित ऊपरका अग्रभागबाजी  
ओविछीको रखलै, इसके अनन्तर साबधानहोकर यजमान यत्नपूर्वक निर्ष्कपित हो यत्रको  
पकड़े ॥ ३ ॥ नवीन वस्त्रोंको पहनकर ( यजमानकी ) श्री चात्रको तीनबार मंत्र ( मंत्र )  
से स्वेदकर जिससे अर्थाके अग्रभागसे पूर्वदिशामें अग्निगिरै इसमांदि यजमानसे  
प्रथम मथै ॥ ४ ॥

नैक्यापि विना कार्प्यमाधान भार्प्यया दिग् ॥ अकृत तद्विजानीयात्सर्धान्वा  
वारमन्ति यत् ॥ ५ ॥ वर्णस्यैष्टपेन बह्वीभि\* स्रवर्णाभिश्च अ\*मत\* ॥ काय  
मभिष्युतरामि\* साध्वीभिर्मयन पुन\* ॥ ६ ॥ नात्र शूर्वी प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेष  
कारिणीम् ॥ न वैषाम्रतस्यां नान्यर्पुसा च सह संगताम् ॥ ७ ॥  
तत\* शक्ततरा पश्चादासाम्पतरापि वा ॥ उपेतानां धान्यतमा मन्येवामि  
निकामत\* ॥ ८ ॥

यदि आहुतके एकमी श्री नहो वी वह अग्निका आधान न करे, और यदि करे वी वह  
करेकी समान है, जिस कारणसे श्री स्रव मनुष्योंको अपनी जापीसेही बसनें करतेही है  
॥ ५ ॥ आहुतकी यदि स्रवर्णा और अस्रवर्णा बहुवृत्ती किर्षदा वी ओ अवस्थामें बड़ीहो  
वही अग्निका आधान करै, यदि समनकरवे समभमें अग्नि मष्ट होलाय, वी साधुत्वमात्रबाजी  
शिरां फिर बसका मयन करै ॥ ६ ॥ शूर्वी, बिंसा और द्रोहकरनेबाजी, अन्यपुरुषके साथ  
सगनकरनेबाजी अतमें कुछ न हो इन क्षियोंकी अग्निके समनमें निमुक्त न करै ॥ ७ ॥ इसके  
अनन्तर क्षियोंमें अन्यन्त सामप्येववी श्री चाई कोईही हो, पत्रमें मातहुई वह श्री श्रेष्ठानुसार  
अग्निको मथे ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिन्ध्र च ॥

आधाय समिर्ध वैश्च आहुतर्णं चापवैशयेत् ॥ ९ ॥

इत्यनुहुई अग्निके लक्षण प्रगटकर उसे अग्निशास्त्रमें छात्र इसकेपीछे प्रवृत्त करके और  
समिन्ध्र ( चाककी छत्रो ) रखकर वहां आहुतोंको वैशाकवे ॥ ९ ॥

ततः पूणाहुतं हुत्वा सर्व्वमैत्रसमन्विताम् ॥

गौ वृथायज्ञघानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण मंत्रोंका पाठ करके पूर्णाहुति देकर यज्ञके अन्तमें आहुतकों गौ  
और दो वस्त्र ( वृथामें ) दे ॥ १० ॥

होमपात्रमनादेशे प्रवृत्तये सुव\* स्मृत\* ॥

पाण्डुरेयतरस्मिन्सु सुषेवात्र वृ ह्यते ॥ ११ ॥

जहां कोई पात्र न कहाहो वहां होमका जहां घी आदि द्रव्य कहेहों तौ वहांपर सुव समझना, और इतर साकल्यमे हाथसे होमकरना ऐसा समझलेना और यज्ञमें होम सुक् ( सुचि ) सेही होताह ॥ ११ ॥

खादिरो वाय पालाशो द्विवितस्तिः सुवः स्मृतः ॥ सुग्वाहुमात्रा विज्ञेया वृत्त-  
स्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥ सुवाग्रे घ्राणवत्खातं द्यंगुष्टपरिमंडलम् ॥ जुह्वाः  
शराववत्खातं सनिर्वाहं पडंगुलम् ॥ १३ ॥ तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्र-  
मार्गो जुह्वता ॥ प्रतापनं च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणां ॥ १४ ॥ प्राञ्चं  
प्राञ्चमुद्गन्सेरुद्गग्रं समीपतः ॥ तत्तथाऽऽसादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥

दो विलस्त्रका सुव खैर अथवा ढाकका कहा है, और एकभुजाकी सुक् होती है, इन दोनोंके पकडनेका स्थान गोल होता है ॥ १२ ॥ सुवके अग्रभागमें नासिकाकी समान गड्ढा अंगूठेकी बराबर करना और होमके पात्रके अग्रभाग मे शराव ( शरवे ) के समान सनिर्वाह ( पतनालेके समान ) छै' अगुलका गड्ढा करना उचित है ॥ १३ ॥ उनके पहिलेभागमें कुशाओंसे प्रमार्ग (साफ) हवन करनेवाला करै, यदि यह तीनों घृत्नआदिसे लिपे हों तो उष्णजलसे वोकर इनको तपाले ॥ १४ ॥ अग्निके समीप उत्तरदिशामें पूर्व २ द्रव्यको इस भातिसे रखै कि जिस २ क्रमसे वह द्रव्य नियुक्त किया जायगा ॥ १५ ॥

आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥

मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥

यदि सम्पूर्ण होमोंमे जहा किसी हव्य ( हवन करनेके ) द्रव्यका नाम नहीं कहाहै, वहां घृतकोही हव्य कहाहै, जहा किसी मंत्रका देवता नहीं कहा, वहा प्रजापतिको ही समझना उचितहै यही सर्यादा है ॥ १६ ॥

नांगुष्ठादधिका ग्राह्या समिस्थूलतया क्वचित् ॥ न वियुक्ता त्वचा चैव न सक्रीटा  
न पाटिता ॥ १७ ॥ प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशिखिका ॥ न स-  
पर्णा न निर्वाय्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥ प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं  
परिकीर्तितम् ॥ एवाविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥

होमके कार्यमें अंगूठेसे अधिक मोटी और जिसपर त्वचा नहो, कीडे हों, फटी हो ऐसी समिधको लेना उचित नहीं ॥ १७ ॥ जो अंगूठे और तर्जनीके प्रमाणसे अधिक वा न्यून हो, और जिसकी डाली न हो, और जिसके पत्ते हों और जो घुनीहो, ज्ञानवान् मनुष्य ऐसी समिधको हवनमें न ले ॥ १८ ॥ दो एक प्रादेश ईधनका प्रमाण कहाहै, सब कर्मोंमें ऐसीही समिधें होतीहैं ॥ १९ ॥

समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ दर्शं च पौर्णमासे च क्रियास्वन्या-  
सु विशातिः ॥ २० ॥ समिदादिषु होमेषु मंत्रदैवतवर्जिता ॥ पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च  
हीन्धनार्थं समिद्रवेत् ॥ २१ ॥

विद्वान् मनुष्य अमावस और पूर्णमासीके होममें ( इध्म ईधन ) की अठारह समिध कहतेहैं और अन्यकर्मोंमें बीसको कहाहै ॥ २० ॥ जो होम समिधोंसे किया जाताहै

घनके पहले अथवा पीछे ईंधनके छिन्ने जो समिध जातीहै उसका मत्र और देवता कोई भी नहीं होता ॥ २१ ॥

इध्मोऽप्येधार्यमाचार्य्यैर्हविराहुतिषु स्मृत\* ॥

ईंधनके छिन्ने इध्म ( अठारह समिध ) को भी आचार्यने कहा है कि यहभी आहुतिषोमिं हवि ( साकस्य ) है ॥

यत्र चास्य निवृत्तिं स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥ अगहोमसमित्तप्रसो  
प्यन्त्याश्रयेषु कर्मसु ॥ येषां वैतदुपर्युक्त तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥ अस्त-  
भगादिविपदि जलहोमादिकर्मणि ॥ सोमादितिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधी-  
यते ॥ २४ ॥

इति कल्याणनरमतारण्यः खण्ड ॥ ८ ॥

और जिस कर्ममें यह इध्म नहीं है उसको भी स्पष्ट करताहूँ ॥ २२ ॥ अगहोम (यह यज्ञमें कर्षण्य छोटा यज्ञ जो होताहै ) समिधशनामक कर्म गर्भाधान आदि संस्कार, प्रथम कह आये हुए कर्मोंमें, और घनके समान कर्मोंमें ॥ २३ ॥ नेत्रके भग ( फूटना ) आदि विषयोंमें जल ( वृष्टि ) क निमित्त जो दाम किया जाताहै इसमें और सम्पूर्ण सोम (सोमलवासे साध्य ) और अश्रितियोंमें इध्म नहीं कहाहै ॥ २४ ॥

इति कल्याणनरमतो मापायीकापामहमः खण्ड समस्तः ॥ ८ ॥

### नवमखण्डः ९

सूयन्तशील्ममाप्ते पद्विंशतिं सदांगुलैः ॥ प्रादुःकरणमग्नीनां प्रातभासां च  
दशनात् ॥ १ ॥ हस्तादूर्ध्वं रथियावद् गिरिं दित्या न गच्छति ॥ ताषट्काम  
विधिं पुष्यो नात्येत्यदितहोमिनाम् ॥ २ ॥ यायस्तस्यद्भन भाष्यते नभस्पृ-  
क्षाणि सवत\* ॥ नय ह्योदियमापिती तायत्साय च ह्यते ॥ ३ ॥

सूर्यके अस्तापछ जानके समयमें जिस समय सूर्य उठीस अंगुल ऊपरहो उस समय संध्याको आर प्रातःकालका किरणोंक दीगनवर ( दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, इत्यादीन अग्निषोको प्रव्यञ्जित करे ॥ १ ॥ सूर्योपर होकरनेवालोंकी दामविधि जवतक भट नहीं जाती कि जबतक उदयापछम हाथसे ऊपर सूर्य न पदुपर्याय, अथवा पृच्छ म सूर्यके पदनेवरती उदयकाली रहताहै ॥ २ ॥ आकाशमें गद्यप्र जबतक महीभांतिता न दीर्घ और जबतक आकाशकी छाडी दूर न हो जबतक सन्ध्याका दाम करे ॥ ३ ॥

रजानीदारपूमाध्वृक्षाप्रातरिति रथो ॥

संध्यामुदित्य जुहुपादुतमस्य न ह्युप्यन ॥ ४ ॥

यदि सूर्य पूर्वोदय भूम मय वृध इनका हक रहाहै तो जा मनुष्य गगना गगना कर हवन करेगा, वया करेगाकेका हवन मष्ट मही होगा ॥ ४ ॥

न जुपाग्निसदामपु दिम परिमसूदनम् ॥

वेरुपार्ता च न जपप्यद न विपजयेत् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण क्षिप्र ( शीघ्रताकी ) होमोंमें परिसमूहन ( कुशाओंसे वेदीकी स्वच्छता ) न करै; और विरूपाक्ष मन्त्रका जप न करै, और प्रारंभभी न करै, अर्थात् उत्तनी आहुतिमात्रही अग्निमें देदेवै ॥ ५ ॥

पर्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽन्विति ॥

अंते च वामदेव्यस्य गानं कुर्यादृचस्त्रिधा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण होमोंकी आदिमें “ओं अदितेनु०” इत्यादि मंत्रसे पर्युक्षण (होमकी वस्तुओंको कुशा-ओंसे छिडके) और अंतमें “ओंकयानश्चित्र०” इत्यादिसे वामदेव ऋचाका तीनवार ग न होताहै ६ अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चंद्रदर्शनम् ॥ वामदैव्यं गणेष्वन्ते जल्पन्ते वैश्वेद-विके ॥ ७ ॥ यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ॥ एककार्यार्थसाध्य-त्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥ बर्हिःपर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ॥ कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकर्म तन्न विद्यते ॥ ९ ॥

जिन पूर्णिमाओंमें हवन नहीं होता उनमें चंद्रमाओंका दर्शन जिस भांति होताहै इसी भांति सब यज्ञोंके अंतमें और वलि वैश्वदेवके अंतमें वामदेवसूक्त ( सामवेदके मंत्रों ) का जप होताहै ॥७॥ अधस्तरणके अंततक जितने कर्म हैं उनमें स्मरण नहीं होता, एक कार्यके होनेसे परिधियों ( जो कुंडके चारों तरफ मर्यादा की जातीहै उस ) को भी उन कर्मोंमें न करै ॥८॥ बर्हिः ( १६ कुशा ) पर्युक्षण और वामदेव्यका जप, यह तीन कर्म सम्पूर्ण यज्ञोंकी आहुति में नहींहोते, अर्थात् कहीं होतेहैं कहीं नहीं होते ॥ ९ ॥

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृताः ॥

माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभेऽभिवर्जयेत् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण हविष्यों में जौ मुख्यहैं यदि वह न मिले तौ ब्रीहि ( सट्टी के धान ) होतेहै यदि यह भी न मिले तौ उद्धद, कोदो, गेहूँ इनको वर्जदे और तिलआदिकी आहुति देदे ॥ १० ॥

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका कंसादिना चैस्त्रुवमात्रपूरिका ॥

दैवेन तीर्थेन च ह्यते हविः स्वंगारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके ॥ ११ ॥

हाथसे आहुति दे जिससे बारहपर्व चारों अंगुलियोंके भरजांय इस भांतिसे आहुतिका द्रव्य ले, यदि पात्रसे आहुतिको दे तौ सुवेको भरकर दे, और उस साकल्यको दैवतीर्थ ( जो उगलियोंके अग्रभागमें होताहै उस ) से अग्निमें इस भांति आहुति दे, जिसमें अगारे और ज्वाला भलीभांतिसे होजाय ॥ ११ ॥

योऽनर्चिषि जुहोत्यभौ व्यंगारिणि च मानवः ॥ मन्दाभिरामयावी च दरिद्र-श्च स जायते ॥ १२ ॥ तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥ आरोग्य-मिच्छतायुश्च श्रियमात्यंतिकी पराम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य ज्वाला और अगारोंसे हीन अग्निमें हवन करताहै, वह मदाग्नि, रोगी, और दरिद्री होताहै ॥१२॥ इसकारण, आरोग्य, अवस्था और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी इच्छाकरने-वाला पुरुष भलीभांतिसे जलती हुई अग्निमें हवन करै, और बिना जलती हुई अग्निमें हवन कभी न करै ॥ १३ ॥



होतम्ये च हुते चैव पाणिश्वपस्वपदारुभि ॥ न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा  
व्यजनादिना ॥ १४ ॥ मुखेनैके धमन्त्याग्निं मुखाद्दधेपोऽभ्यजापत ॥ नाग्निं  
मुखेनेति च यल्लीङ्गिके योजयन्ति तम् ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

जिस अग्निमें इधन करनाहो वा कियाहो, उसको हाथ-सूय, स्त्रया, ( औरका खड़ाकर  
इस परिमित पेदीमें रेखाकरनेके अर्थ होताहै ) काठ इनसे अग्निको प्रव्यक्षित न करे धरन  
वीजने आदिसेही करे ॥ १४ ॥ काई २ मुखसेही अग्निको प्रव्यक्षित करतेहैं फारण कि वह  
अग्नि मुखसेही धरन हीहै, और कोई २ यहभी कहतेहैं कि मुखसे अग्निको न जलावै, उन  
का यह कहना लौकिक अग्निके नियममें है, यज्ञकी अग्निके नियममें नहीं ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ माषादीकामां नवमःखण्ड समाप्तः ॥९॥

### दशम खण्ड १०

यथाहनि तथा प्रातर्क्षित्य छापादनादुरः ॥

दन्तान्मक्षाल्य नद्यादी गृहे वेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥

जिस मांसिसे रोगरहित मनुष्य बिन ( मध्याह्न ) में खान करे उसी मांसिसे प्रातःकरके  
भी करे, नदी आदिमें दाँतोंको धोकर और जो घरमें खान करे वही बिना मन्त्रोंके करे ॥१॥

नारदाद्युक्तवार्श्वी यदष्टांगुलमपादितम् ॥ सत्वच दन्तफाष्ठ स्यात्तदमेण प्रधाव -  
येत् ॥ २ ॥ तस्याप नेत्रे प्रशाल्य शुचिर्मूत्वा समाहितः ॥ परिजप्य च मन्त्रे -

ण भक्षयेद्वतपावनम् ॥ १ ॥ आयुषल यशो वशः प्रजाः पशुन्वसुनि च ॥  
ब्रह्म प्रजां च मेघां च त्वं नो देहि घनस्पते ॥ ४ ॥

द्वतौनके काष्ठका नारदादि अपियोंने ( अपनी २ स्त्रियोंमें ) जिस वृक्षका फलहै उन  
पृथुकी आठ अंगुली बिना पृथी त्वचासहित दतौन धमावै; और उसके अग्रभागमें मन्त्री  
मांसि दाँतोंको धावै ॥ २ ॥ उठकर नेत्रोंके मन्त्रसे धोकर सावधानीसे गृह हो मात्रको जप-  
कर दतौन करे ॥ ३ ॥ दतौनका मन्त्र यह है कि "दे वृक्ष ! तू मुझे आयु, यश, यश,  
वेज, प्रजा ( सन्तान ), पशु, धन, वेद और उत्तम पुत्रि आदिको दे" ॥ ४ ॥

मासद्वयं भाषणादि सर्वां नद्यो रजस्वलाः ॥ ताम्ना ध्यान न कुर्वीत वर्जयित्वा  
समुद्रगाः ॥ ५ ॥ धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ॥ न ता नदीशब्दवहा  
गतास्तां परिकीर्तिता ॥ ६ ॥

भाषण, माशी इन मदीनोंमें सम्पूर्ण नदियें रजस्वला होजायाहैं, इसकारण समुद्रमें मिल्के  
बाड़ी नदियोंके अविरिक्त जन्म रजस्वला नदियोंमें ध्यान न करे ॥ ५ ॥ जा मदीयें आठ  
हजार धनुपतक नहीं जातीहैं यह नदी शत्रुसे बहनेवाली मदीहैं इस कारण वह नदी नहीं कटा  
ती, धरन नहीं गर्च ( गड़बा ) कहतीहैं ॥ ६ ॥

उपायकर्मणि चोत्सर्गं प्रेतछाने तथैव च ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदापो न वि-  
द्यते ॥ ७ ॥ वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवीकृतः ॥ जलार्थिनोऽपि वि

तरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ ८ ॥ उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ॥  
पिपासुननुगच्छन्ति संतुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥ समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्या-  
दयो मलाः ॥ नूनं सर्व्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥

उपाकर्म, और उत्सर्ग में प्रेतके निमित्त स्नानकरनेमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें नदीका रजस्वलाहोना दोष नहीं है ॥ ७ ॥ वेद, सम्पूर्णछंद, ब्रह्मादि देवता, और जलकी इच्छा करनेवाले पितरगण और मरीचि आदि ऋषि ॥ ८ ॥ ये सब उससमय उनके पीछे चलतेहैं जिस समय सन्तोपी ब्रह्मके ज्ञाता देहके धारणकरनेवाले उपाकर्म और उत्सर्गके स्नानकरनेके लिये जातेहैं ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें इन वेदादिकोंका समागम है, उस स्थानमें ब्रह्महत्या इत्यादि सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं फिर नदीका रजदोष क्यों न नष्ट होगा ॥ १० ॥

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ॥ संपिवेद्यः शरीरेण पर्षन्मुक्तज-  
लच्छटाः ॥ ११ ॥ विद्यादीन्ब्राह्मणः कामान्वरादीन्कन्यका ध्रुवम् ॥ आमु-  
ष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात्स न संशयः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य सींचे जाते ( हुए ) ऋषियोंके मध्यमें स्थित अपने शरीरके द्वारा पर्षद् छुटीहुई जलकी छटाओंको पीताहै ॥ ११ ॥ वह यदि ब्राह्मण होय तो विद्या आदि सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होताहै और कन्या वरको पातीहै, और मनुष्य निश्चयही परलोकके सुखोंको प्राप्त होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्नं जलादिना ॥

अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३ ॥

( किसी सर्पिंड वा सगोत्र ) के मरनेके उपरान्त दशदिनके भीतर अशुद्ध ( उसके सर्पिंड वा सगोत्र ) पुरुषसे दियाहुआ आम ( अपक चावल आदिकभी ) अन्न औद जलादि हैं, वह अशुद्धही होते हैं, इसी कारण उसको प्रेत और राक्षस भोगतेहैं ॥ १३ ॥

स्वर्धुन्यंभःसमानि स्युः सर्व्वान्यम्भांसि भूतले ॥

कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

इति कर्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

चंद्रमा और सूर्य ग्रहणके समयमें सम्पूर्ण पृथ्वीपरके कुओंका जल गंगाजलकी समान् हो जाताहै ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया दशमः खण्डः समाप्तः ॥ १० ॥

इति कात्यायनके निर्माण किये हुये कर्मप्रदीपमें प्रथम प्रपाठ पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

एकादशः खंडः ११.

अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि संध्योपासनकं विधिम् ॥

अनर्हः कर्मणां विप्रः संध्याहीनो यतः स्मृतः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त संप्र्यासदनकी विधि कहवाहूँ, जिसकारण ब्राह्मणोंको संप्र्याहीन होनेपर सम्पूर्ण कर्मोंका अनधिकारी कहाहै ॥ १ ॥

सव्ये पाणौ कुशान्कृत्वा कुर्प्यादाचमनक्रियाम् ॥ ह्रस्वा\* प्रचरणीया\* स्यु\* कुशा  
दीपास्तु र्वाह्विप ॥ २ ॥ दर्भा\* पवित्रमित्युक्तमत\* सध्यादिकम्मणि ॥ सध्या\*  
सोपग्रह\* काप्यो दक्षिण\* सपवित्रक\* ॥ ३ ॥

बाँये हाथमें कुशाओंको छेकर आचमन करै, छोटी कुशा होनी चाहिये, यही २ कुशाओंको र्वाह्वि कहवै ( वो यथासम्भव त्याग्य है ) ॥२॥ इसकारण संप्र्यासादि कर्ममें कुशाओंको पवित्र कहाहै, बाँये हाथमें उपग्रह ( सामवेदीको ९ कुशाका यजुर्वेदीको ३ कुशाका वेधीस्प उपयमनकुश होताहै उसे ) ले, और र्वाहिने हाथमें पवित्री पारे ॥ ३ ॥

रक्षयेदारिणात्मान परिक्षिप्य सभतत\* ॥ शिरसो मार्जनं कुर्प्यात्कुशी\* सोदक-  
विन्दुमि\* ॥ ४ ॥ प्रणवो भूर्भुव\*स्वश्च सावित्री च तृतीयका ॥ अर्ध्ववत्यष्ट्युर्ध्वं  
श्वेष चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥

घाँँओरको जल फेंककर अपन शरीरकी रक्षाकरै, और जलको छेकर कुशाओंसे ( गायत्रीको अभिमंत्रितकर ) शिर का मार्जन करै ॥४॥ छेकर, भू भुव स्व कीसरी गायत्री जल है देवता जिनका ऐसी तीन मन्त्रा ( आपोहिष्मामादि ) यह चौथा मार्जन है ॥ ५ ॥

भूराज्यास्तिस्र एवैता महाभ्याहृतयोऽभ्यया\* ॥ महर्जनस्तप\* सत्य गायत्री च  
शिरस्तया ॥ ६ ॥ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुव स्व रिति शिर\* ॥ प्रतिप्रती-  
क प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरस ॥ ७ ॥ एता एतां सहानेन तथेभिर्दक्षमि\*  
सह ॥ त्रिर्जपेदायतप्राण प्राणायाम\* स उच्यते ॥ ८ ॥

भू भुव स्व ये तीन अभ्यय ( नष्ट न हो ) महाभ्याहृती हैं महा जन तपः, सत्य, और गायत्री और शिरः ॥ ६ ॥ आपो ब्याती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव स्व यह शिरमंत्र है, प्रत्येक मन्त्रके आगे और शिरः मन्त्रके पीछे छेकारका उच्चारण करै ॥ ७ ॥ यह सात ब्याहृति और गायत्री यह शिरःमन्त्र है छेकारको और इन दशोंको प्राणोंको रोककर जो जप किया जाताहै उसे प्राणायाम कहवैहै ॥ ८ ॥

करेणोद्धृत्य सलिल प्राणमासज्य तत्र च ॥

जपेदनापतासुर्वा त्रि सकृद्वापमथनम् ॥ ९ ॥

हाथस जल छेकर और नासिकास छगाकर तीनबार या एकबार प्राणोंको रोककर वा न रोककर अपमथन ( जल च सत्यम् इत्यादि ) मन्त्रको जपे ॥ ९ ॥

उत्थायार्क प्रतिप्राहेभिःपेणाग्निनाम्भस\* ॥

इतच्छर्षित उठकर जलही भंजलिने सुषक समुद्र बहादो अयान् भंजुर्वा अप्य दे,

१ यह पार मार्जन सामवेदीक अनुकार कियाहै; यजुर्वेदीका तीन यह और छेकार हि हा मथन मुन छे तीन ऊँचे इत्यत न, इत बरते ९ मिनकर १२ मार्जन होहै उजये ११ बाँ मुधिये और शिरः मन्त्र ॥

ओं चित्रमृगद्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥ संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहु-  
र्मनीषिणः ॥ मध्ये त्वह् उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥ तदसंसक्त-  
पार्णिवां एकपादद्द्विपादपि ॥ कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ॥ १२ ॥  
यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ॥ भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रे-  
यो ह्यवाप्यते ॥ १३ ॥

फिर ॐ चित्रं इत्यादि दो ऋचाओंसे सूय भगवान्की स्तुति करै ॥ १० ॥ दोनों संध्या-  
ओंके समयमें यही सूर्यका उपस्थान ( स्तुति ) है यह मनीषी ( ज्ञानवान् ) कहतेहैं, और  
मध्याह्नके समयमें इस स्तुतिके उपरान्त अपनी इच्छानुसार विभ्राड् इत्यादिकी जपै ॥ ११ ॥ इस  
स्तुतिके समयमें पृथ्वीपर ऐडी न लगने पावै अथवा एकही पैरसे खडा रहै, या अर्द्धचरणसे  
खडा रहै इसके पीछे हाथ जोडकर ऊपरको दोनों मुजा उठाय सूर्यकी स्तुतिकरै ॥ १२ ॥  
जिस कर्मके करनेमें अधिक कष्ट होताहै, उस कर्ममें कल्याणभी अधिक होताहै ॥ १३ ॥

तिष्ठेदुदयनात्पूर्वा मध्यमामपि शक्तिः ॥

आसीन उद्गमाञ्चान्त्यां संध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥ १४ ॥

प्रातःकालकी संध्या उदयसे पूर्व, और मध्याह्नकी संध्या अपनी शक्तिके अनुसार करै,  
अर्थात् मध्याह्नमें अथवा प्रातःकाल खडा होकर और सायंकालकी सूर्यास्त होनेपर बैठके तीनों  
सूर्यकी स्तुतिके मन्त्रको जपताहुआ करै ॥ १४ ॥

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति ॥

यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥

यह तीन संध्या कहीं, ब्राह्मण्य इन्हींमें स्थित है, जिनका इनमें आदर नहींहै वह ब्राह्मण  
नहीं कहा जा सकता ॥ १५ ॥

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ॥

तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥

जो संध्याके न करनेसे भय करतेहैं और जो सदा नियमित स्नान करतेहैं सर्प जिस  
आति गरुडके सामने नहीं जाते, उसी भाँति सम्पूर्ण दोष इनके समीप नहीं आते ॥ १६ ॥

वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ॥ उपतिष्ठेत्ततो रुद्रं सर्वाद्वा वैदिकाज-  
पात् ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतवेकादश खण्डः ॥ ११ ॥

प्रतिदिन प्रथमसे आरंभ करके यथाशक्ति वेदका विचार करै; उसके पीछे वा पहिले  
सहादेवजीकी स्तुति करै ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकादश खंड समाप्त ॥ ११ ॥

द्वादशःखंडः १२.

अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितृनपि ॥

नमस्ते तर्पयाभीति आराधोमिति च ब्रह्म ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आदिमें ॐ और अतमें नमस्तपयामि ( ॐ ब्रह्मणे नमस्तपयामि इत्यादि )  
कहता हुआ मनुष्य जलसे देवताओंका तर्पण करे, और दिव्यसदित जलसे पितरोंका  
तर्पण करे ॥ १ ॥

ब्रह्माणं विष्णु रुद्र प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दांस्युपीन् पुराणाचार्यान् गण  
धानितरान्मासं सयसर साषयष वैधीरप्सरसो देवानुगात्रागान् सागरान्वर्ष  
तान् सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरान्मनुष्यान् यक्षाप्रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान्  
पृथिवीभोपथीं पशून्वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्विधमित्युपवीत्यय प्राचीनाधीती  
यमं यमपुरुषान् कष्यवाहमनलं सोम यममर्ष्यमणमग्निष्वात्तान् सोमपीयान्  
वर्हिपदोऽथ स्वान् पितृन् सकृत् सकृत्मातामहंश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्वेज्येष्ट  
श्चात्स्वशुरपितृष्यमातुलाश्च पितृवंशमातृषशौ ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति  
तांस्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोका ॥ २ ॥

क्रम तसका यह है—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, वेद, देव, छन्द, ऋषि, पुराणाचार्य, गणर्व,  
इतर, मास, साषयष, संपसर, वैधी, अप्सरा, देवानुग, नाग, सागर, पर्वत, सरित्,  
दिव्यमनुष्य, इतरमनुष्य यक्ष रक्षः, सुपर्ण, पिशाच, पृष्ठी, औपथी, पशु, वनस्पति मूत्र  
ग्राम, चतुर्विध, इनका तर्पण सम्य होकर ( सीधे वाने कन्धेपर जनेऊ रखकर ) करे; फिर  
अपसठ्य हो ( वहीने कंधेपर जनेऊ रख ) कर यम, यमपुरुष, कष्यवाह, अनल, सोम,  
यम, अभ्यमा, अग्निष्वात्ता, सोमपीय, वर्हिपद इन्के अर्नवर अपने पितरों ( पिता पितामह  
प्रपितामह ) का और मातामहों ( मातामहों, प्रमातामह, पुत्रप्रमातामह ) का एक २ बार  
तर्पण करे और पितरोंका नामले ज्येष्ठभावा, श्वशुर पितृष्य, ( यथा ) मातुल ( मामा )  
फिर जो पिता माताके वक्षमें छल्पमहुए हैं अथवा जो मृत्युको प्राप्तहोकर जलकी इच्छा  
करते हैं उनको दत्तकरताह, यह कहकर सबसे पीछेकी जगुडी बे, इसके उपरान्त जब  
श्लोक कहते हैं ॥ २ ॥

छायां यथेच्छच्छरदातपार्त पयः पिपासुं क्षुभितोऽलमघ्नम् ॥ घालो जनिर्षी  
जननी च बाल यापिष्टुर्मास पुरुषश्च योषाम् ॥ ३ ॥ तथा सवाणि भूतानि  
स्थावरानि चराणि च ॥ विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्भि स ॥ ४ ॥  
तस्मारसदीव कर्त्तव्यमकुवन्महर्त्तनसा ॥ युज्यते ब्राह्मण कुम्बन्विश्वमेतदिभ  
सि हि ॥ ५ ॥

मिस भांति अरवभ्रतु ( अरवकारिक ) में यह मनुष्य धूपसे कुम्भितरो छायाकी इच्छा  
करताहै वही भांति दयाबास्य मनुष्य जलकी सुखावासा मनुष्य अन्नकी बाछक माताकी,  
और माता बाछककी, स्त्री पुरुषकी और पुरुष स्त्रीकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥ इसी प्रकार  
स्थावर और अगम यत् मर्ष्य्य प्राणी ब्राह्मणसे बाछकी इच्छा करतेहैं; कारण कि ब्राह्मण  
समीक अभ्युदयकरन ( यज्ञान ) बाछे हैं ॥ ४ ॥ इसकारण ब्राह्मण सबका तर्पण करे, जो  
तर्पण नहीं करताहै वह महापापका भागी होताहै; और जो करताहै, वह इष्ट जगत् को  
पावन करताह ॥ ५ ॥

अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥

प्रातर्न तनुयात्स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

हवनका समय बहुत थोडा है, और स्नानका कर्म अधिक है, इसकारण होमके पहले प्रातःकालमें विस्तार भावसे स्नान न करे कारण कि होमका लोप होना निर्दिष्ट है ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया द्वादशः खंडः समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः खंडः १३.

पञ्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ॥

यैरिष्टा सततं विप्रः प्राप्नुयात्सन्न शाश्वतम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त उत्तम पाच यज्ञोंकी विधि कहताहूँ, जिनके निरन्तर करनेसे ब्राह्मण सनातन ( वैकुण्ठ ) स्थानको जाताहै ॥ १ ॥

देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ॥

महासत्राणि जानीयात् एवेह महाप्रखाः ॥ २ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ, क्रमानुसार इन पांच यज्ञोंको महासत्र जानना उचित है, और यही पाच इस गृहस्थआश्रममें महायज्ञ कहें ॥ २ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि-

पूजनम् ॥ ३ ॥ श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिस्थायि वा ॥ यश्च श्रुति-

जपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥ स चार्वाकतर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा

प्रातराहुतेः ॥ वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रतो निमित्तिकात् ॥ ५ ॥ अप्येकमा-

शयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥ अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा

॥ ६ ॥ अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किंचिदन्नं यथाविधि ॥ पितृभ्योऽथ मनुष्ये-

भ्यो दद्यादहरर्हर्दिजे ॥ ७ ॥ पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ॥

हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्धं निनयेदपः ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञ पढाना है, पितृयज्ञ तर्पण है, देवयज्ञ हवन है, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और मनुष्ययज्ञ

अतिथिका पूजन है ॥ ३ ॥ अथवा श्राद्धकी वा पितरोंकी बलिको पितृयज्ञ कहाहै, और जो

कि श्रुतिका जप कहा है उसको ब्रह्मयज्ञ कहतेहैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मयज्ञको तर्पणसे पहले करे, अथवा

प्रातःकालके हवनसे और वैश्वदेवके पीछे करे, किसी विशेषकारणके विना अन्यसमयमें न

करे ॥ ५ ॥ यदि ( एकसे ) अन्यमी ( द्वितीयादिक ब्राह्मण ) श्राद्धान्नका भोजनकर्ता वा

भोजनकी सामग्रीही न मिले तौ विश्वेदेवोंके विनाही एक ब्राह्मणको पितृयज्ञकी सिद्धिके

निमित्त अवश्य भोजन करावै ॥ ६ ॥ ( यदि इतनाभी न होसकै तौ ) तो अपनी शक्तिके अनु-

सार थोडासामी अन्न निकालकर विधिसहित पितर और मनुष्योंके निमित्त ब्राह्मणको प्रति-

दिन दे ॥ ७ ॥ "पितृभ्य इदम्" यह कहकर "स्वधा" शब्दका प्रयोगकरे, फिर उस अन्नमेंसे

मुनिभिर्द्विरशनमुक्त विमाणां मर्त्यवासिनां नित्यम् ॥ अहनि च तथा तमस्विन्यां  
सार्द्धं प्रथमपामान्तं ॥ ९ ॥ सायमातर्धैश्वदेव\* कर्तव्यो बलिः कर्म च ॥ अन  
श्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १० ॥

मुनियोंने भूखोचबासी ब्राह्मणोंको दो समय ( दिन और रात्रिमें ) भोजन करना कहा है,  
एक बार ठीक देहपहर दिन चढ़े एक दिनमें, और एकबार षडपहर रात गयेतक ॥ ९ ॥  
यदि भोजन न करे तो भी सायंकाल और प्रातःकालको बलिवैश्वदेव करे, जो इसभांति नहीं  
करवाहे वह महापापका भागी होवाहे ॥ १० ॥

अमुष्मै नम इत्येव बलिदानं विधीयते ॥ बलिदानप्रदानार्थं नमस्कार कृतो  
यतः ॥ ११ ॥ स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकस्ताम् ॥ स्वधाकार\* पि  
तृणां च इन्तफारो नृणां कृतः ॥ १२ ॥ स्वधाकारेण निनयेत्पिब्य बलिमतं  
सदा ॥ तदप्येके नमस्कार कुर्वन्ते नेति गौतमः ॥ १३ ॥

“अमुष्मै” ( जिसको दान दिया जाताहै उसके नामका बलि है ) नाम करकर बलि  
देनेकी विधि कहीहै, कारणकि बलिके लिये नमस्कार किया गयाहै ॥ ११ ॥ देवताओंको  
( देनेके समयमें ) स्वाहा, वषट्, नमस्कार, और पितरोंको ( देते समय ) स्वधा और मनु  
ष्योंको ( देते समय ) में इन्तकार करना कहाहै ॥ १२ ॥ इस कारण स्वधा करकर पित  
रोंको सर्वथा बलिदे उसके पीछे नमस्कार करे कोई ऋषि तो यह कहतेहैं, और गौतम ऋषि  
यह कहतेहैं कि न करें ॥ १३ ॥

नाशराद्धर्षा बल्लयो भवति महामार्जारभ्रवणप्रमाणात् ॥

एकत्र चेद्विकृष्टा भवतीतरेतरससक्ताश्च ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ प्रबोदश\* अण्ड\* ॥ १३ ॥

बलि अपनी ऋषिसे कम नहीं होती, समावन मार्गका जो भ्रवण ( मुक्ति ) है, इसमें  
वही प्रमाण है यदि बिना व्यवधान हुए भयबा परस्पर सम्बन्ध हो तो एक स्थानपरही  
बलि देदे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मायावीकृतां प्रबोदश\* संज्ञा\* अण्ड\* ॥ १३ ॥

### चतुर्विंश स्वड १४

अतस्तदिम्यासो वृद्धिपिंडानिषोत्तरांश्चतुरो षष्ठीसिद्ध्यात् ॥ पुचिर्ध्वं वायवे  
विश्वेभ्यो वैश्वेभ्य\* प्रजापतय इति सभ्यत एतेपामकैकमत्र ओपधिषनस्य  
तिम्य आकाशाय कामायेत्येतेपामपि मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येते  
पामपि रक्षोजनेम्य इति सर्वेषां दक्षिणत\* पितृभ्य इति चतुर्विंश नित्या आश  
स्यप्रभृतय\* काम्या\* सर्वेषामुभयतोऽग्नि\* परियेकः पिंडवच्च पश्चिमाम-  
तिपत्ति ॥ १ ॥

इसके उपरान्त बलि देनेके क्रमको कहतेहैं; मांहीमुखके पिंडोंके समान चार बलि उत्तर  
दिशामें दे पृथ्वी, वायु, विश्वेदेवा, प्रजापति ४ इनके दक्षिणमें अन्न, मौषधि, वनस्पति,

आकाश, काम, और अन्न, इन्द्र, वासुकि, ब्रह्मा और रक्षोजन, और सबसे दक्षिणदिशामें पितरोंके लिये यह १४ सबही बलि नित्य ( आवश्यक ) है, और आकाश इत्यादि चल् इच्छाकी देनेवाली हैं सम्पूर्ण बलियोंके दोनों पार्श्वोंको जलसे सींचे इससे पिछले कर्मको पिंडकी समान जानें ॥ १ ॥

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्मणी ॥ पूर्व नित्यविशेषोक्तं जुहोति-  
बलिकर्मणोः ॥ २ ॥ काममंते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ॥ नैकस्मि-  
न्कर्मणि तते कर्म्यान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥ अग्न्यादिर्गोतमाद्युक्तो होमः शाकल  
एव च ॥ अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥ ४ ॥

हवन और बलिकर्म यह सामान्य कर्ममें नहीं होते, कारण कि हवन और बलिकर्म को नित्यकर्मसे विशेष कहा है ॥ २ ॥ यदि इच्छा हो तो इन्हें मनुष्य कर्मके अंतमें कर सकता है, परन्तु बीचमें कभी नहीं कर सकता, कारण कि एक कर्मके प्रारंभ होनेपर दूसरे कर्मको प्रारंभ करनेकी विधि नहीं है ॥ ३ ॥ गौतमआदि ऋषिका कहा अग्नि, और शाकलऋषिका कहा हवन और बलि वैश्वदेव इनको जो ब्राह्मण अग्निहोत्री न हो तो वहभी कर सकता है ॥ ४ ॥

स्पृष्ट्वा यो वक्ष्यमाणोऽग्निं कृतांजलिपुटस्ततः ॥ वामदेव्यजपात्पूर्वं प्रार्थयेद्द्र-  
विणोदयम् ॥ ५ ॥ आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ॥ ओजो वर्चः  
पशून्वीर्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च ॥ ६ ॥ सौभाग्यं कर्मासिद्धिश्च कुलज्यैष्ठ्यं  
सुकर्तुताम् ॥ सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोदरिरीहि नः ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त आचमनकर अग्निका दर्शन करता हुआ हाथ जोडकर वामदेवके सूक्तके जपसे प्रथम ऐश्वर्यकी वृद्धिकी प्रार्थना करै ॥ ५ ॥ “आरोग्य, ऐश्वर्य, आयु, बुद्धि, धैर्य, मंगल, बल, यश, ओज, तेज, पशु, वीर्य, वेद, ब्राह्मणत्व ॥ ६ ॥ सौभाग्य, कर्मकी सिद्धि, उत्तमकुल, उत्तमकर्तव्यता यह सम्पूर्ण पदार्थ सबके साक्षी कुबेर हमें दे” ॥ ७ ॥

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्प्रदानात्परमस्ति दानम् ॥

सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदाना नान्तो दृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञसे अधिक यज्ञ नहीं है और उसके दानसे अधिक दान नहीं है, इसकारणसे इन दोनोंके अतको किसीने भी नहीं देखा ॥ ८ ॥

ऋचः पठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ॥ घृतामृतौचकुल्याभिर्यजूंष्यापि पठ-  
न्सदा ॥ ९ ॥ सामान्यपि पठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ॥ मेदःकुल्याभिरपि  
च अथर्वागिरसः पठन् ॥ १० ॥

नित्य ऋग्वेदका पाठकर शहत और दूधकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करता है यजुर्वेदके पढ़नेसे घृत और अमृतकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करता है ॥ ९ ॥ प्रतिदिन सामवेदके पढ़नेसे सोम और घृतकी कुल्याओंसे अथर्वागिरसके पढ़नेसे मेदाकी कुल्याओंसे ॥ १० ॥  
सांक्षीरोदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ॥ वाकोवाक्यपुराणानि इतिहासानि  
चान्वहम् ॥ ११ ॥



ज्यकुल्याभिः पितृनपि च तर्पयेत् ॥ १२ ॥ ते वृक्षास्तर्पयत्येनं जीवतं भेतमेव  
च ॥ कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसभसु ॥ १३ ॥ दुर्बल्येनो न तं सुशेत्य  
किं चिष पुनाति सः ॥ य य ऋषु च पठति फलमाक्तस्य तस्य च ॥ १४ ॥  
धमुपूर्णाधमुमतीत्रिर्दानफलमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मपत्तादपि ब्रह्मदानमेवातिरि-  
च्यते ॥ १५ ॥

इति काल्याणनस्मृतौ चतुर्दशः खण्डः ॥ १५ ॥

प्रतिदिन वाफोवोक्य पुराण और इतिहास इनके पढ़नेसे मांस, दूध, और ओदन, मधु इनकी  
कुस्याओंसे मनुष्य देवताओंको पूज करताहै ॥ ११ ॥ ऋग्वेद इत्यादि इन सबके बीचमें  
प्रतिदिन यथाशक्ति जो कोई श्राद्धके पढ़नेसे सद्यः पीकी कुस्याओंसे पितरोंको भी पूज करता  
है ॥ १२ ॥ उससे देवता और पितृगण इस मांति पूज होकर पूज करमेवाके मनुष्यको  
जीवित अवस्थामें और मृतक अवस्थामेंभी पूज करतेहैं, और वह मनुष्य अपनी इच्छानुसार  
सम्पूर्ण देवताओंके ( स्वर्गों ) में जानेवाला होताहै ॥ १३ ॥ इसको कोई महापापभी स्वर्ग  
नहीं करसकता, और जिस पदमें बैठताहै उसको भी पवित्र करेताहै, और जिस रथको  
वह पढ़ताहै वह पाठकारी मनुष्य उसी २ यज्ञके करनेका फल प्राप्त करताहै ॥ १४ ॥  
अन्तसे मरी हुई पृथ्वीके तीनवार दानकरनेके फलको पावाहै, महायज्ञसे व्यक्ति एक मह्य  
( शिवा ) काही दान है ॥ १५ ॥

इति काल्याणनस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥ १५ ॥

### पंचदशः खण्ड १५

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता ॥ कर्मतिश्रुच्यर्मानापि पूर्णपात्रादिका  
भवेत् ॥ १ ॥ यावता यद्भूमोऽस्तु वृत्तिः पूर्णेन विद्यते ॥ नाधराद्धर्मतः कुर्या-  
त्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ २ ॥

जिस कर्ममें जो दक्षिणा करी गईहै, कर्मके अन्तमें ब्रह्मको वही दक्षिणा दे, यदि किसी  
कर्मके अन्तमें ममी हो ती वह दक्षिणा पूर्णपात्रकी होतीहै ॥ १ ॥ जिसने अन्तसे बहुत  
दानेवाले मनुष्यकी वृत्ति हो उठनेकी अन्तसे पात्रको पूर्णकरे, इससे कर्म न करे यह  
नियम है ॥ २ ॥

विदध्यादीन्मन्यधोदक्षिणाद्धरो भवेत् ॥

स्वयं खेदुमयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥

यदि वह समझा जाय कि आपी दक्षिणा ब्रह्म देगा, और आपी होताकी होगी तो होय-  
को ही ब्रह्म, ब्रह्मके यदि होता और ब्रह्मका कर्म स्वयंही करके ती किसी औरको दक्षि-  
णात्म पूर्णपात्र देवे ॥ ३ ॥

१ श्रुतिमें "किंश्चिदात्मनं महत्" ( स्वयं कौनवा बड़ा है ) 'भूमिगुणनं महत्' ( भूमि बड़ा एतन्न  
है ) इत प्रकार प्रसोचर है उक्त प्रथका कर्म वाचोवाच्य है ॥

कुलं त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ॥

नातिक्रमेत्सदा दिक्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥

अपने हितकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वेदपाठी कुलपुरोहित और वारे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तो कुलगुरुको त्यागकर दूसरेको दान न दे, अर्थात् इन्हींको दे ॥ ४ ॥

अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ॥ नैतावपृष्टा ददतः पात्रेऽपि फलम-

स्ति हि ॥ ५ ॥ दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ॥ इतरेभ्यस्ततो

देयादेप दानविधिः परः ॥ ६ ॥  
दान देनेके समयमें "मैं इनको देताहूँ" यह कहकर दान दिया जाताहै इन (पूर्वोक्त) दोनोंके विनापूछे हुए जो दान सुपात्रकोभी दियाजाय तो उसका फल दाताको नहीं होता ॥ ५ ॥ इन दोनोंके परदेशमें रहने पर उत्तम वस्तुको मनही मनमें इन दोनोंको अर्पणकरके पीछे दूसरे मनुष्यको दान करदे यह श्रेष्ठ दानकी विधि है ॥ ६ ॥

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणो यो व्यतिक्रमेत् ॥

यद्दाति तमुल्लंघ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥

पढ़नेमें चतुर वारे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तो ऐसे ब्राह्मणको त्यागकर जो मनुष्य दूसरेको दान देताहै, उस द्रव्यको जितना दियाहै उतनेही द्रव्यको चोरीके फलको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

यस्य त्वेकगृहे सूखीं दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥ गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मू-  
खं व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणाभिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तम-  
ग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि ह्यते ॥ ९ ॥

मूर्ख जिसके घरमें है, और गुणी पुरुष दूर देशमें है, तो वह गुणवान् मनुष्यकोही दान करै, कारण कि मूर्खके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं कहा है ॥ ८ ॥ वेदसे रहित ब्राह्मणके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं है, कारण कि प्रज्वलित अग्निको छोड़कर कोईभी भस्ममें आहुति नहीं देता ॥ ९ ॥

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसंभवा ॥ महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वा-  
ज्याहुतीषु च ॥ १० ॥ आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥ सु-  
दृढामत्राणां भद्रामाज्यस्थाली प्रचक्षते ॥ ११ ॥

घृतकी सम्पूर्ण आहुतियोंमें तैजस द्रव्य (सुवर्ण आदि) की वा मिट्टीकी आज्यस्थाली (धीका पात्र) करना चाहिये ॥ १० ॥ आज्यस्थालीका प्रमाण अपनी इच्छानुसार करले परन्तु जो छिद्रहीन दृढ है उसेही विद्वान् आज्यस्थाली कहतेहैं ॥ ११ ॥

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिवृहन्मुखी ॥ मृन्मयौदुंबरी वापि चरुस्थाली  
प्रशस्यते ॥ १२ ॥ स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः ॥ नचाति-  
शिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥

जो तिरछी और ऊँची समिधकी समानहो और दृढ हो, और मुख चौड़ा न हो वह चरुस्थाली (साकल्यपात्र) श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जिसे अपनी शाखा में कहा है;

विषमं लक्ष न टपकैः, अन्ना न हो, कन्ना न हो, देखनेमें सुन्दर हो, चतुर्वर्गीय न हो, और रक्षमुक्त हो, ऐसे चतको पकावै ॥ १३ ॥

इध्मजातीयमिध्मार्यप्रमाणं भक्षण भवेत् ॥ वृत्त चांगुष्ठपृष्वप्रमवदानक्रियासं  
मम् ॥ १४ ॥ एवैव दूर्ध्वा यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ॥ दूर्ध्वा अंगुल-  
पृष्वप्रादुरीयोन तु भक्षणम् ॥ १५ ॥

जिस काष्ठका इध्म हो उसी काष्ठक इध्मकी परावर गाळ और अंगुठकी समान मोटे अथ  
मामाकाष्ठ चतके चखनेमें सामर्थ्यवान् हो ऐसा भक्षण ( कन्ना ) होती है ॥ १४ ॥ इध्मको  
दूर्ध्वा कहते हैं, जो दूर्ध्वामें विशेष है उसीमें भक्षण कहते हैं, दूर्ध्वाका अग्रभाग हो अंगुठ मोटा हो  
ता है, और भक्षण उससे मुटाईमें आधा अंगुठ कम होता है ॥ १५ ॥

मुसलोलूखले धासं स्थापते सुहृते तथा ॥ इच्छाममाणे भवतः शूर्प धेणवमेव  
च ॥ १६ ॥ दक्षिण धामतो वासमात्मानमिमुस्त्वमेव च ॥ कर करस्य कुर्यात्  
करणेन्यत्र कर्मणः ॥ १७ ॥

काठके मुसल और ओखल हाते हैं, इन्हें बाँडा और दंड अपनी इच्छानुसार प्रमाणका  
बनाके, और सूय बाँसका होता है ॥ १६ ॥ वहिने हाथको बाँधे हाथसे आगे अपने समुत्तर  
रक्षते, इध्मको फर्ममें करना चाहिये ॥ १७ ॥

कृत्वाग्न्यामिमुखी पाणी स्वस्थानस्थी सुसंयती ॥ प्रदक्षिणं तथासीनः कुयात्  
रिसमूहनम् ॥ १८ ॥ धाहुमात्रा परिधयः फ्रजवः सत्वचोऽप्रणा ॥ त्रयो भव  
न्ति शीर्णाग्रा एकेषां तु चतुर्दिशम् ॥ १९ ॥ प्रागप्रावलिभिः पश्चाद्दुदगप्रमथा  
परम् ॥ न्यसेत्परिधिमन्य चेद्दुदगप्र सपूर्वत ॥ २० ॥

पूर्वाक रीतिके अनुसार यथावत् स्थित द्रुप सावधान हा दोनोंहाथ अग्निके समुत्तर करके  
दक्षिण दिशामें बैठकर परिधमूहन करे ( पुरार ) ॥ १८ ॥ मुनाकी परावर, मरुत्तसहित  
विनापुनी हुइ आगेसे फटी कोमल तीन परिधि होती है; किन्तु २ परिधियोंके मतके अनुसार  
चारों दिशामें चार होती है ॥ १९ ॥ एक पत्रिते पीछे एकी परिधि होती है जिसका अग्रभाग  
पूर्वदिशामें हो; और उत्तरको दूसरीका अग्रभाग होता है; और तीसरी परिधि का अग्रभा  
गमी उत्तरकी ओर को होता है, और चतुर्दिशामें रक्ती जाती है; अथात् दक्षिणदिशामें  
नदी होती ॥ २० ॥

ययोत्तपस्वसपत्नी प्राग्न तदनुफारि यत् ॥

यवानामिय गोधुमा प्रीक्षीणामिय क्षालय ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचदशः पटलः ॥ १५ ॥

यदि पादमें कटीद्रु वस्तु न मिले तो उसके समानकोही प्रदण करे, तो कि पाद  
समान गेहूँ ह, और पादके समान कोकर चापल हाते हैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मातृपितामहविरचितायां अष्टावक्र- ॥ १५ ॥

## षोडशः खंडः १६.

पिडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥

वासरस्य तृतीयांशे नातिसंध्यासमीपतः ॥ १ ॥

पिडान्वाहार्यक ( जो अमावस्यके दिन होता है ) क्षीणचंद्रमाके दिन और दिनके तीसरे पहरमें होता है अति संध्याके समीप कालमें न करे ॥ १ ॥

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ॥ अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥ यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ॥ अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ ३ ॥ यच्चोक्तं दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ॥ अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत् ॥ ४ ॥

जिसदिन चतुर्दशी तीनपहर वा तीन पहरसे कुछ अधिककालतक स्थित रहै, और अमावस्याकी हानि हो, उसीदिन श्राद्धकरना कहा है ॥ २ ॥ जिसदिन चंद्रमा न दीखे इसी ( पूर्वोक्त ) चतुर्दशीके दिन अमावसके अनुरोधसे क्षीण चन्द्रमाके दिन श्राद्धकरना उचिन है, यह भी जानना कर्तव्य है ॥ ३ ॥ और किसीने ऐसाभी कहा है कि जिसदिन चन्द्रमा दिखाई न दे तौभी श्राद्धकरे, यह अनुरोध चतुर्दशीके अनुरोधसे है, परन्तु अमावसकी प्रतीक्षा देखे, अथवा चतुर्दशीके अंतमेंही पिंडदे ॥ ४ ॥

अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ॥

अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥ ५ ॥

जिस समय चतुर्दशीका आठवा भाग होता है उसी समय चन्द्रमा क्षीण होता है, और अमावस्याके आठमें भागमें अणु ( सूक्ष्म ) रूप होजाता है ॥ ५ ॥

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥ विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ ६ ॥ अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो न कलावशिष्टः ॥ तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ॥ ७ ॥ यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्तास्मिस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते ॥ एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ॥ ८ ॥

चंद्रमाकी गतिके जाननेवाले कहते हैं कि अगहन और ज्येष्ठकी अमावस इन दोनोंमें चंद्रमाकी गति विशेष होती है ॥ ६ ॥ ( परन्तु ) इन दोनों ( अमावसों ) में पहलेपहरमें तौ चंद्रमा रहता है, और एककलाका चौथा भाग रहता है, इसके उपरान्त सम्पूर्णक्षय होजाता है, ऐसा ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तेरहमहीने जिस संवत् में हों उसमें तीसरे पहरके उपरान्त चौदसके दिन चंद्रमा दिखाई न दे तब इसभाति चंद्रमाकी गति जानकर क्षीण चंद्रमाके समयमें मध्याह्नके उपरान्त पिंड दे ॥ ८ ॥

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत्कचित् ॥ खर्वितां तां विदुः केचिद्गताध्वामिति चापरे ॥ ९ ॥ वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चैदपरेऽहनि ॥ यामांस्त्रीन-

धिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥ पक्षादावेय कुर्वीत सदा पक्षादिक  
चरुम् ॥ पूर्वाह्न एव कुर्वन्ति विद्वेष्यन्त्ये मनीषिणः ॥ ११ ॥

यदि कदाचित् अमावस में चतुर्दशीका मेळ होजाय तो वसे कोई तो राखिता और कोई  
गताया कहावेई ॥ ९ ॥ यदि दूसरे दिन तीन पहर या उससे भी अधिक अमावस हो, तो  
उस दिन पितृयज्ञ ( मास ) होवाई ॥ १ ॥ पक्षकी आदिका चरु ( गोदुग्धमें पक्षाया  
सदृशका थाबळ ) पक्षकी आदि में मध्याह्नके समयमें पूजविद्यमें करै, यह किन्ही मतस्वी  
अपिका कथन दे ॥ ११ ॥

सपितृ पितृकृत्येषु प्राधिकारो न विद्यते ॥

न जीवन्तमतिक्रम्य किंचिदद्यादिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

वेदमें ऐसा लिखाई कि मनुष्य पिताके जीवित रहतेहुए पितृकर्ममें अधिकारी नहीं दे  
जीवित पिताको अन्नादि दान छोडके अन्य कुछभी पितृकर्म न करे ॥ १२ ॥

पितामहे जीवति च पितु मेतस्य निष्येत् ॥ पितृस्तस्य च वृत्तस्य जीयेथे  
प्रपितामहः ॥ १३ ॥ पितुः पितुः पितृभ्यश्च तस्यापि पितुरेव च ॥ पुर्ष्यात्पि  
ण्डशय यस्य सस्थितः प्रपितामहः ॥ १४ ॥

पिता, पितामह, प्रपितामह इनतीनोंको तीन पिंड देने उचित है; और यदि पिताकी मृत्यु  
होगई तो और प्रपितामह जीवितहो ॥ १३ ॥ तो वृद्धपितामह और पितामह, तथा अपना  
पिता इनके छिपे यह मनुष्य तीन पिंड दान करे कि जिसका प्रपितामह मरणवाहो ॥ १४ ॥

जीवन्तमतिक्रम्य दद्यात्प्राज्ञोदके दिन ॥

पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितृत्परा श्रुतिः ॥ १५ ॥

यह दूसरी श्रुति है कि जीवतेहुए या उपवनकर प्राज्ञ मरतुपको अन्न और गन्ध, और  
जीवितपितृपुत्र्य अपन पिताके पितुरोका द, फारज कि व मरतुपभी उसके पिता ( दद्यात्परा-  
पाठ ) दे ॥ १५ ॥

पितामहः पितुः पश्चात्पुत्र्यं यदि गच्छति ॥ पीश्रणैश्चादशाहादि फलस्य  
आद्यपोडशाम् ॥ १६ ॥ नेतृत्वीश्रण फलस्य पुत्र्यांशतिपितामहः ॥

यदि पितामह पिता॥ पीठे मर गी पाता एकाहादि आदि गोडह आदिकर, ॥ १६ ॥  
परन्तु पितामह यदि काई और पुत्र हा या पाता नहीं कर,

पितृसापिण्डानं शृया पुष्याग्मागानुमामिहम् ॥ १७ ॥

पिताकी वसिष्ठिकरक पुत्रही मरक मरीन ३ में माहित आदिकर ॥ १७ ॥

जमैश्रुती न संशयार्थी पूर्णोपीश्रमरीश्रुतेः ॥ पितर तत्र मरुयादिति ज्ञाया  
पनात्प्रपीठ ॥ १८ ॥ पाणिष्ठमपि पुष्टेन शुद्ध पापश्रुतादि वा ॥ पिताम  
हेन पितर मरुयादिति निधय ॥ १९ ॥

यदि पितामह आदि श्रुतवादीने ही या या मरुत चरक मरुत मरुत यदि पिता  
मरुतमरीन हो या पुत्रका मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत यदि दे या या मरुत मरुत मरुत मरुत  
॥ १८ ॥ या तो मरुतमरी दे कि मरुतमरी मरुतमरी मरुतमरी, मरुतमरुत मरुत

पितामह पापीभी होंय तौ उनके सगही पिताका संस्कार ( श्राद्धआदि ) करना पुत्रको उचित है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते ॥

व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ २० ॥

यदि पिता ब्राह्मण आदिसे मराहो, पतित हो वा संगसे हीन हो, या फाँसीखाकर मराहो तौभी उन्हें और जिनको यह देतेहों उन्ही सबको दे ॥ २० ॥

मातुः सर्पिंडीकरणं पितामह्या सहोदितम् ॥

यथोक्तैर्नैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत्सुतः ॥ २१ ॥

माताकी सर्पिंडी शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दादीके साथही करनी उचित है, यदि कन्याका ( जो कि इस प्रतिज्ञासे विवाही जातीहै कि इसके जो लडका होगा उसे मैं लूंगा ) उसका पुत्र नहो ॥ २१ ॥

न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते ॥

स्वभर्तृपिंडमात्राभ्यस्त्वप्तिरासां यतः स्मृता ॥ २२ ॥

मृत्युके अतिरिक्त स्त्रियोंको पतिसे पृथक् ( पिंडादि ) न दे कारण कि अपने २ पतिके भागसेही उनकी वृत्ति होतीहै ॥ २२ ॥

मातुःप्रथमतः पिंडं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥

द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्वृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्ड ॥ १६ ॥

पुत्रिकापुत्र पहिल्ला पिंड माताको दूसरा नानाको और तीसरा पिंड पडनानाको दे ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया षोडशःखण्ड समाप्तः ॥ १६ ॥

### सप्तदशः खंडः १७.

पुरतो यात्मनः कुर्यात्सा पूर्वा परिकीर्यते ॥ मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तदक्षिणत उत्तमा ॥ १ ॥ वाय्वग्निदिदिसुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धांगुलान्तराः ॥ तीक्ष्णा-न्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥ २ ॥

अपने सन्मुख जो कुशा रक्खी जातीहै उसे पूर्वा कुशा कहतेहैं, और जो पूर्वासे दक्षिणकी ओरको रक्खी जातीहै उसे मध्यमा कहतेहैं, और जो मध्यमासे दक्षिणकी तरफ रक्खी जाती है उन्हें उत्तमा कहतेहैं ॥ १ ॥ इन तीनोंको इसभाति क्रमानुसार रक्खै, वायव्यदिशामें जड, और अग्निदिशामें अग्रभाग हो; और डेढ अंगुलका बीच रहै, अग्रभाग तौ इन तीनोंका पैना, और बीचका भाग जौके समान हो, जिसभाति नावका आकार होताहै ॥ २ ॥

शंकुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ॥

शंकुश्चैवोपवेशश्च द्वादशांगुल इष्यते ॥ ३ ॥

शैरका शंकु बनावै, फिर उसे चादीसे भूषित करै, शंकु और उपवेश ( पितृवेश पितरोंके बैठनेकी कुशा ) का प्रमाण वारह अंगुलका है ॥ ३ ॥

अग्न्याशाम्रैः कुशी कार्प्यं कर्पूणां स्तरणं घनी ॥

दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृपते परिस्तरेत् ॥ ४ ॥

कुशाओंका अग्रभाग अप्रिविशाकी ओर करके कुशाओंसे कर्पुओंको बिछावे और दक्षिणको अग्रभागवाली कुशाओंका कर्पु ( कुशाओंका बिछौना ) पितरोंके आग्रसे बिछावे ॥ ४ ॥

स्वगर सुरभि ज्ञेय चदनादिविलेपनम् ॥

सौवीरांजनमित्युक्तं पिंजलीनां यदंजनम् ॥ ५ ॥

सुरगंधित चन्दन आदिका छेपन अगर और पिंजलियोंके अंजनको सौवीरांजन करते हैं ॥ ५ ॥

स्वस्तरे सर्वमासाद्य यथाषट्पयुज्यते ॥

देवपूर्व्यं ततः श्राद्धमत्वरं शुधिरारभेत् ॥ ६ ॥

जो षट्पु श्राद्धमें उपयुक्त हैं उन सम्पूर्ण षट्पुओंको अच्छे आसनपर रखकर शीघ्रताका बिना कियेहुए देवघाओंका पूजनआदि शुद्धतापूर्वक कर आग्रका प्रारंभ करे ॥ ६ ॥

आसनाद्यर्षपर्यन्तं दक्षिष्ठेन यथेरितम् ॥ कृत्वा क्रमाद्य पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥ तूर्ण्णां पुष्यगपो दस्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ॥ गन्धोदकं च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥ ८ ॥

दक्षिष्ठकी कहीहुई बिधिसे अनुसार आसनआदि अल्पपर्यन्त क्रमोंको करके पात्रोंमें प्रथम तिलोदक दे ॥ ७ ॥ प्रथम मौन धारणकर पूष्य २ जन्म दे फिर तिल और उदक दे, इसके पीछे समीपताके क्रमसे फिर गन्धोदक दे ॥ ८ ॥

आसुरेण तु पात्रेषु यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ॥ पितरस्तस्य नाभन्ति दक्षवर्षाणि पंच च ॥ ९ ॥ कुडालषक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम् ॥ तदेव हस्तघटितं स्यात्पादिवि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥

जो मनुष्य आसुर पात्रमें करके तिलोदक देताहै, पितृगण उसके यहां पंद्रहवर्षतक मोहन नहीं करते ॥ ९ ॥ कुडालके चाकसे बनायेहुए मिट्टीके पात्रका नामही आसुरपात्र है; और हाथसे बनायेहुए मिट्टीके पात्र स्याद्विआदिका नाम दैविकपात्र है ॥ १० ॥

गघान्नाङ्गणसात्कृत्वा पुष्पाप्पुतुमयानि च ॥ घूपं सैवानुपूर्व्येण ह्यमौ कुर्याद नन्तरम् ॥ ११ ॥ अन्नौकरणहोमश्च कर्तव्यं उपवीतिना ॥ प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो नृहोतीति श्रुतिः श्रुता ॥ १२ ॥ अपसव्येन वा कार्यं दक्षिणाभिमुखेन च ॥ निरूप्य हविरन्यस्मा अम्यस्त्रे नहि ह्यते ॥ १३ ॥ स्वाहाकुर्यान्न चाश्रान्ते म शैव जुहुयाद् वि ॥ स्याद्वाकारेण हुत्वामी पश्चामंत्रं समापयेत् ॥ १४ ॥ पिब्ये यं पंक्तिं उर्ध्वन्यस्तस्य पाप्मावनाग्निमान् ॥ हुत्वा मप्रषदस्येपां तूर्ण्णां पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ १५ ॥ नो कुर्याद्वोममंत्राणां पुष्यगादिषु कुप्रवित् ॥ अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाद्यमनादिना ॥ १६ ॥

क्रमानुसार गन्ध और ऋतुमें उत्पन्नहुए फलपुष्प और घृणादि श्राद्धोंको देकर इसके उपरान्त "अमीकरण" ( एक अग्निहोत्र ) करे ॥ ११ ॥ अमीकरण होम सव्य होकर करे

और पूर्वकी ओरको मुख करके देवताओंके निमित्त हवन करै, यही वेदकी श्रुति है ॥ १२ ॥  
अथवा दक्षिणको मुख करके अपसव्य होकर करै, और साकल्य एकके निमित्त देकर  
दूसरेको न दे ॥ १३ ॥ इस स्थानमें मन्त्रके अंतमें स्वाहा शब्दका प्रयोग न करै, और  
हविः का होम न करै केवल प्रथम स्वाहा कहकर पीछे मंत्रको पढ़ै ॥ १४ ॥ पितरोंके कर्ममें जो  
मनुष्य पंक्तिमें मुख्य है, उसके हाथमें मंत्र पढ़कर आहुति दे, और जो मनुष्य अग्निहोत्री न हो  
वह शेषोंके पात्रोंमें विना मन्त्रके हविकी रक्खै ॥ १५ ॥ कहीं २ होमके मंत्रोंकी आदिमें  
पृथक् ॐ न कहै, और अन्यान्यमनुष्य जो समीपमें हों उनके आचमनआदिसे ॥ १६ ॥

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ॥ परिग्रहणमात्रं तत्सव्यस्यादिशति ब्र-  
तम् ॥ १७ ॥ पिंजल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ॥ अन्वारभ्य च सव्ये-  
न कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥ यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ॥ च-  
रुणा सह सत्रीय पिंडान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥ पितुरुत्तरकर्ष्वशे मध्यमे मध्य-  
मस्य तु ॥ दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणि निर्वपेत् ॥ २० ॥ वामभावर्तनं  
केचिदुदगतं प्रचक्षते ॥ सर्वं गौतमशांडिल्यौ शांडिल्यायन एव च ॥ २१ ॥  
आवृत्य प्राणमायम्य पितृन्ध्यायन्यथार्थतः ॥ जपस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं  
प्रमोचयेत् ॥ २२ ॥

जो सव्य हाथसे कर्मकरना यहां कहाहै उसे दक्षिणहाथसे ग्रहण करके वह कर्म करै, यही  
निश्चय है ॥ १७ ॥ पिंजलीआदि कुशाओंको दहिनेहाथसे पकड़कर, फिर बायेहाथसे पकड़कर  
उल्लेखनकरै ( वेदीपर झुबेसे कुछ लकीरें खेंचे ) ॥ १८ ॥ प्रयोजनके अनुसार थोड़ी २ सी  
हविकी लेकर उसे चरुके साथ मिलाकर पिंडदेना प्रारंभ करै ॥ १९ ॥ पर्वके दिनोंमें उत्तर  
कर्षुमें पिताको और मध्यम कर्षुमें पितामहको, और दक्षिणकर्षुमें प्रापितामहको पिंडदान  
करै ॥ २० ॥ वामावर्तको उत्तरदिशातक करना ( दक्षिणदिशासे प्राणोंको रोककर उत्तरतक  
लेजाना ) यह गौतम शांडिल्य और शांडिल्यायन आदि सम्पूर्ण ऋषि कहतेहैं ॥ २१ ॥  
प्रदक्षिणा करके पितरोंका ध्यान करताहुआ प्राणायाम और मनही मनमें प्राणायामके मंत्रको  
जपताहुआ फिर उस मार्गसे लौटकर श्वासको त्यागै ॥ २२ ॥

शाकं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत् ॥ यस्तु शाकादिको होमः का-  
र्योऽपूपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥ अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ ॥ वा-  
र्कखंडिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेष्टकासु च ॥ २४ ॥

फाल्गुन मासकी अष्टमीके दिन स्वयं वा स्त्रीभी शाकको पकावै, और जो शाकआदिका हवन  
है उसे अपूपाष्टका श्राद्धमें करै ॥ २३ ॥ गौतम और गोभिलने मध्यम अष्टकामें अन्वष्टका  
श्राद्ध करनेके लिये कहाहै, और वार्कखण्डि तथा कौत्सऋषिका यह मत है कि सब अष्ट-  
काओंमें करै ॥ २४ ॥

स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ॥

श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोपयस्यतु ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खंडः ॥ १७ ॥



और जिस स्थानपर पशुका लेख है वहाँ पशुके स्थानपर स्वाधीपाक ( माषमादि ) करे और बछड़ेबाही नई गौके दूधमें सिद्ध करे ॥ २५ ॥

इति कल्याणनरमूर्तो माषादीकानां षतदशः खण्डः समाप्तः ॥ १७ ॥

### अष्टादश खंड १८.

सायमादिप्रातरंतमेक कर्म प्रचक्षते ॥ दर्शात पीर्णमास्याद्यमेकमेव मनीषिण ॥ १ ॥ ऊर्ध्व पूर्णाहुतेर्दर्श पीर्णमासोऽपि धाम्निमः ॥ य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुति ॥ २ ॥ ऊर्ध्व पूर्णाहुते कुर्यात्सायं होमादनंतरम् ॥ वैश्वदेवं तु पाकाति षलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणान्मोजयेत्पश्चादभिरूपा-  
न्स्वशक्तितः ॥ यजमानस्ततोऽभीयादिति कात्यायनोऽश्रीत् ॥ ४ ॥

बुद्धिमानोंने सायंकाळसे प्रातःकाळतक कर्मोंको एकही कहाई, और पूजमासीसे अमावस्य  
यंत्रके जो कर्म हैं उन्हें भी कोई २ एकही कहतेहैं ॥ १ ॥ विवाहकी पूर्णमाहुतिके उपरान्त  
जो अमावस्य या पूर्णिमा आवै उसीमें हवन करे, कारण कि वेधमें इसीको आदि कहाई ॥२॥  
अब सायंकाळके हवनसे पीछे पूर्णाहुति दे चुके तो पाक होनेपर षलिवैश्वदेव करे ॥ ३ ॥  
फिर अपनी शक्तिके अनुसार पबित ब्राह्मणोंको मोजन करावै, इसके पीछे यजमान स्वयं  
मोजन करे, यह कात्यायन अपिष्ठा मत है ॥ ४ ॥

वैवाहिकामी कुर्वीत सायंमातस्त्वसंत्रित ॥

चतुर्थीकर्म कृत्वीतदेतच्छाटघायनेर्मतम् ॥ ५ ॥

विवाहकी अभिमे चतुर्थी कर्मको करके शाटस्वरहित हो षलिवैश्वदेव करे, यह शाटघायन  
अपिष्ठा मत है ॥ ५ ॥

ऊर्ध्व पूर्णाहुते प्रातर्हृत्वा तां सायमाहुतिम् ॥

प्रातर्होमस्तदैव स्यादेव एवोत्तरो विधिः ॥ ६ ॥

जब सायंकाळकी आहुति देनेके उपरान्त प्रातःकाळकी पूर्णाहुतिसे पीछे षलिवैश्वदेव करे  
वही प्रातःहवन होताहै; प्रतिदिन यही विधि जाननी चाहिए ॥ ६ ॥

पीर्णमास्यत्यये हृष्यं हीता वा यदहर्भवेत् ॥ तदहर्हृत्पादेवममावास्यास्ययेऽपि  
च ॥ ७ ॥ अहूयमानेऽनसंश्लेषेत्काळ समाहितः ॥ सम्पन्ने तु यथा तत्र हृत्येते  
यद्विहोच्यते ॥ ८ ॥

अमावस्य पीर्णमासीके पीछे जिस दिन हृष्य द्रव्य वा वचन होता सिद्धे उसीदिन हवन  
करे ॥ ७ ॥ यदि होम होनेसे पहले मनुष्य उपवासी रहाहो, अर्थात् कतने समयको बिना  
मोजन करे विवायाहो तब ऐसा करे, और जो मोजनकर लियाहो, तो वसकी विधि  
करवाहै ॥ ८ ॥

आहुत्यः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ॥

त्रैत्रेण विधिवद्भुत्वाधिकमेवापरा अपि ॥ ९ ॥

जितनी आहुति दीगई हैं, उतनीही गिनकर पात्रमे रखें और पीछे मन्त्रद्वारा विधिपूर्वक देकर और आहुति दे ॥ ९ ॥

यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ॥ चतसस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणि-  
ग्रहणे यथा ॥ १० ॥ अप्यनाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि वाहुतिः ॥ होतव्यात्र  
विकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

जहां प्रायश्चित्तके निमित्त हवन व्याहृतियोंसे हो वहां और विवाहके समयमें चार आहुतिये देनी उचितहैं, ऐसा जानना ॥ १० ॥ अथवा “अनाज्ञातं” इस मन्त्रसे आहुति दे वा प्रजापतिके मन्त्रसे आहुति प्रदान करे, यहा इतनाही भेद है, और प्रायश्चित्तकी विधिभी यही कहीहै ॥ ११ ॥

यद्यग्निभिर्नान्येन संभवेदाहितः क्वचित् ॥ अग्नये त्वविचय इति जुहुयाद्वा  
घृताहुतिम् ॥ १२ ॥ अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्वै घृतेन चैत् ॥ अग्नये शुचये  
चैव जुहुयाच्च दुरग्निना ॥ १३ ॥

यदि हवनकी अग्नि कभी दूसरी अग्निके साथ मिलजाय तौ “अग्नये त्वविचये” इस मंत्रसे या केवल घृतसेही आहुति दे ॥ १२ ॥ यदि घृतसेही अग्नि बुझजाय तौ “अग्नयेऽप्सुमते” इस मन्त्रसे आहुति दे, और दूसरी बुरी अग्निसे ढकीजाय तौ “अग्नये शुचये” इस मंत्रसे हवन करे ॥ १३ ॥

गृहदारामिनामिन्तु यष्टव्यः क्षमामवान्द्रिजैः ॥ दावाग्निना च संसर्गं हृदयं यदि  
तप्यते ॥ १४ ॥ द्विर्भूतो यदि संसृज्येत्संसृष्टमुपशामयेत् ॥ असंसृष्टं जागर-  
येद्गिरिशर्मैवसुक्तवान् ॥ १५ ॥

घरमें अग्निके लगजानेपर शांत होजाय तौ ब्राह्मण अग्निका पूजन करे, और यदि दावा-  
ग्निसे अग्निका संसर्ग होजाय और उससे हृदय दुःखी हो तौ ॥ १४ ॥ दो बार संसर्ग करके  
अग्निकी शांति करादे, और यदि संसर्ग न हुआ हो तौ अग्निको जगाले, यह गिरिशर्माका  
वचन है ॥ १५ ॥

न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् ॥

स्वर्गवासक्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥ १६ ॥

अपनी अग्निमें अन्यका केवल एक समिधके अतिरिक्त हवन नहीं होता जितने दिनोंतक  
अपने स्वर्गवास योग्य सत्कर्म अग्निमें न हों ॥ १६ ॥

अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ॥

नहि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥ १७ ॥

सर्वत्र नामकरण आदि संस्कारोंमें लौकिक अग्नि होतीहै, और जिस अग्निको पिता लावे  
वह पुत्रकी नहीं होसकती ॥ १७ ॥

यस्याग्नाधन्यहोमं स्यात्स धिश्चानरदैर्वितम् ॥

चरु निरुप्य जुहुयात्प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥ १८ ॥

यदि किस अग्निहोत्रीकी अग्निमें बूझते मनुष्यका हवन होनाय तो उस अग्निमें देवयजे पठको बनाकर हवन करे इसका यही प्रायश्चित्त है ॥ १८ ॥

परेणामी हुते स्वार्थ परस्यामी हुते स्वयम् ॥ पितृयज्ञात्पये चिष विश्वेदेवद्  
यस्य च ॥ १९ ॥ अनिद्वा नवयज्ञेन नषान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितास्य  
शर्यैश्चानरो भवेत् ॥ २० ॥

दसरेका अग्निहोत्र आपकरै अथवा दूसरा अपना अग्निहोत्र करते, या पितृयज्ञका नाश हो जाय अथवा दौनो विश्वेदेवामोंका यज्ञ नष्ट होनाय ॥ १९ ॥ जो नवयज्ञ नहींन अन्नप्राशनमें न करे, या का पठितके अन्नका भोजन करते इन कर्मोंमें वैश्वानर चढ होनाहै, अर्थात् उससे हवन करे ॥ २० ॥

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु ॥

पिंडनोद्वहनात्पैा तस्यामाये तु तत्कृमात् ॥ २१ ॥

पिता अपने पुत्रके नामकरणआदि कर्मोंमें अपने पितरोंको पिंड दे, कारण कि वह उनके पिंडोंका पाठाहै, यदि पिता न हो तो पिताके कर्मसे जो अग्निकारी हों वही पिंड रहे ॥ २१ ॥

भूतिप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत् ॥ रजोरोगादिना तत्र कर्म कुर्वति  
याज्ञिष्ठा ॥ २२ ॥ महानसेज्ज या कुर्यात्सवर्णा तां प्रवाचयेत् ॥ प्रणवाद्यपि  
वा कुर्यात्कात्यायनवचो यया ॥ २३ ॥

( प्रश्न ) यदि भूतिप्रवाचन ( भक्तिजैसे आशिर्वादआदि कर्मों ) में यदि स्त्री कतुमती वा रोगग्रस्त होनेके कारण समीप न आसके तो बहकरनेबाछे मनुष्य किसमांति यज्ञकरे ॥ २२ ॥

( उत्तर ) जो स्त्री रजोमें अन्नपकावे, और वह अपनी आठिकी हो तो उससे भूतिप्रवाचन कराछे, या कात्यायनमुनिके वचनके अनुसार छंकारआदि करछे ॥ २३ ॥

यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तंभे दर्भशटौ यया ॥

दर्भसुम्प्या न विदिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृत्यावष्टावैश्वं सप्तमं ॥ १८ ॥

यज्ञके परमें छुसमुष्टिमें, स्तंभमें दर्भके षट्ठों और विष्टरके आठारणमें कुशाजोंकी गिनती बरिहै ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृता माषाटीकायानावष्टावैश्वं सप्तमं ॥ १८ ॥

### एकोनविंशः खंड १९

निक्षिप्यामि स्वदारेषु परिकल्प्यस्त्रिजं तथा ॥ प्रवसेत्कार्प्यवान्विमो वृषिव न  
चिर कश्चिद् ॥ १ ॥ मनसा नैत्यर्कं कर्म प्रवसन्नप्यतत्रितः ॥ उपविश्य शुचिं  
सर्वं यथाकालमनुव्रजेत् ॥ २ ॥

साग्निक ब्राह्मण विशेष प्रयोजनके होनेपर अपनी स्त्रीको अग्नि सौंपकर एक ऋत्विज निय-  
त्तकर प्रवास ( परदेश ) को जाय, परन्तु वृथा चिरकाल कहीं भी नहीं रहै ॥ १ ॥ (परंतु)  
प्रवासमेंभी यह आलस्य रहितहो यह अपने नित्यकर्मको करनेके निमित्त शुद्धहोकर स्थित-  
रहै, और ठीक समयपर सम्पूर्ण कर्म मानस करै ॥ २ ॥

पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ॥ सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया  
भर्तृभक्त्या ॥ ३ ॥ या वा स्याद्दीरसूरासाम्राज्ञासंपादिनी प्रिया ॥ दक्षा प्रियं-  
वदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

पतिमें भक्ति करनेवाली, स्त्रीभी सौभाग्य और धन सम्पत्तिकी और पतिसे अवियोगको  
चाहनेवाली नम्रभावसे अग्निकी सेवाकरै ॥ ३ ॥ बहुतसी स्त्रीवाला पुरुष जो वीरसू  
( पुत्रवाली ) आज्ञाकारिणी, प्यारी, प्रिय वचन कहनेवाली, चतुर और पवित्र ऐसी स्त्रीको  
अग्निकी सेवामें नियुक्त करै ॥ ४ ॥

दिनत्रयेण वा कर्म्म यथाज्यैष्ठं स्वशक्तितः ॥ विभज्य सह वा कुम्भुर्यथाज्ञानं  
च शास्त्रवत् ॥ ५ ॥ स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ॥ नहि  
ख्यात्या न तपसा भर्ता तुष्यति योपिताम् ॥ ६ ॥ भर्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमा  
बहुभिर्त्रतैः ॥ अग्निश्च तौपितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ विन-  
यावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत् ॥ अमुत्रोमाग्निभर्तृणामवज्ञातिः कृता  
तया ॥ ८ ॥

अथवा सब स्त्री तीन २ दिनमें बड़ी स्त्रीके क्रमसे अपनी शक्तिके अनुसार विभाग कर  
या एकही साथ ( मिलकर ) अग्निकी सेवा करलें, या जैसा उनको शास्त्रका ज्ञानहो उसीभांति  
सब करलें ॥ ५ ॥ सौभाग्यसेही स्त्रियोंकी बडाई है, विद्याके द्वारा ब्राह्मणोंकी बडाईहै, कारण  
कि केवल लोकप्रतिद्धि और तपसेही स्वामी स्त्रियोंपर प्रसन्न नहीं होते ॥ ६ ॥ जिस पत्तिकी  
आज्ञाकारिणी स्त्रीने बहुतसे व्रतकरके पार्वती और अग्निको प्रसन्न कियाहै वही स्त्री परलोकमें  
सौभाग्यको प्राप्त करतीहै ॥ ७ ॥ जो स्त्री प्रेमसहित पतिमें नवतीहै, और देखनेमें पतिको  
सुन्दर नहींहै उसने निश्चयही पूर्वजन्ममें वा परलोकमें पार्वती, अग्नि और अपने पतिका  
विरस्कार कियाहै ॥ ८ ॥

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येदापञ्चः स प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

जो मनुष्य प्रातःकालही उठकर वेदपाठी, सुहागिनीस्त्री, गौ अग्निहोत्र इनका दर्शन करताहै,  
वह सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥

पापिष्ठं दुर्भगामन्यं नम्रमुत्कृत्तनासिकम् ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलैरुपयुज्यते ॥ १० ॥

और जो मनुष्य प्रातःकालही उठकर पापी, दुर्भागिनी (विधवा) अन्य नम्रपुरुष, या नकटे-  
को देखताहै, वह कलहको प्रातः होताहै ॥ १० ॥

पतिमुच्छ्रय्य मोहास्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ॥

कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥

स्त्री अज्ञानवासे पतिका लक्षण करके किस २ नरकमें नहीं जाती, इसके पीछे यह कष्टोंको पाकर मनुष्य योनि मिलतोहै उसमें वह किस २ दुःखको नहीं भोगती ॥ ११ ॥

पतिशुभूपयैव स्त्री कात्र लोकान्समश्नुते ॥

दिवं पुनरिहायाता सुस्त्रानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥

स्त्री केवल पतिकी शुभूपा करकेही सम्पूर्ण स्वर्गके सुखोंको भोगतीहै, और स्वर्गसे पुनर्वात् मूलोक्तमें आकर सुखोंका समुद्र होजातीहै ॥ १२ ॥

सदारोऽन्यान्पुनर्दारान्कथञ्चित्कारणांतरात् ॥ य इच्छेदपिमान्कर्तुं क होमोऽ

स्य विधीयते ॥ १३ ॥ स्वेप्मावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ न ह्यहि

तामः स्व कर्माँलौकिकेभ्यो विधीयते ॥ १४ ॥ पढाहुतिकमन्येन जुहुयाद्बुध

र्षनात् ॥ न ह्यात्मनोऽर्थं स्वात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥ १५ ॥

यदि सांनििक मनुष्य किसी कारणसे अन्य स्त्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छाकरके लौकिक होकर स्वर्गमें अधिकार नहीं रहता ॥ १३ ॥ अपनी अग्निमेंही होम होताहै, कदापि लौकिक अग्निमें होम नहीं होता, कारण कि अग्निहोत्रीका निजकर्म लौकिक अग्निमें नहीं होताहै ॥ १४ ॥ भुवके वर्धन होनेपर जबतक छै आवश्यक माहुति अन्य अग्निमें भी द, और जप-तक विवाह न करे जबतक अपने छिये न दे ॥ १५ ॥

पुरस्ताद्विविकल्प यज्मायधित्तमुदाहृतम् ॥

ततः पढाहुतिक शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृत्याश्वेकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्ममदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

पहिले जो त्रिविकल्प प्रायश्चित्त कहाहै उसकोही पहले के ज्ञानमेपाछे पढाहुतिक कहतेहैं ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाग्यदीकायामेकोनविंशः खण्डः समाप्तः ॥ १९ ॥

( कात्यायनके निमाण किय हुए कर्ममदीपमें दूसरा प्रपाठक पूर्ववृत्ता ) ॥ २ ॥

### विंश खण्ड २०

असमक्ष तु दपत्योर्होतस्य नर्त्विगादिना ॥

द्वोरप्यसमक्ष द्वि भवेद्भुतमनयकम् ॥ १ ॥

स्त्री और पुरुषके समक्ष ( उपस्थितरूप ) क विना अग्निवद् आदि होम न करें, कारण कि उन दोनोंके विना होम निश्चय होताहै ॥ १ ॥

विहायामि सभार्यंभास्तीमामुर्द्रंष्य गच्छति ॥

होमकालात्यये तस्य पुनरापानमिष्यते ॥ २ ॥

यदि अग्निको छोडकर स्त्रीसहित अग्निहोत्री पुरुष ग्रामकी सीमाको लांघकर चलाजाय और जो उसके हवनका समय वीतजाग तौ वह फिर अग्निका आधान करै ॥ २ ॥

अरण्योः क्षयनाशाग्निदाहेष्वग्नि समाहितः ॥

पालयेदुपशान्तिंस्मिन्पुनराधानमिष्यते ॥ ३ ॥

अरणियोंके नाश और अग्निके दाहमें सावधान होकर अग्निकी रक्षाकरै, यदि अग्नि शांत होजाय तौ अग्निका आधान फिर करले ॥ ३ ॥

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति ॥

पुनराधानमत्रैरु इच्छन्ति न तु गौतमः ॥ ४ ॥

जिसके बहुतसी स्त्री हं यदि वह मनुष्य सबसे बड़ी स्त्रीको उल्लघनकर गमन करै, तौ उस मनुष्यको कोई २ पुनर्वार अग्निका आधान करनेके लिये कहते हैं, और गौतम ऋषि नहीं कहते ॥ ४ ॥

दाहयित्वाग्निभिर्भार्य्या सदृशी पृथ्वसंस्थिताम् ॥ पात्रैश्चाथामिषादध्यात्कृतदारोऽविलंबितः ॥ ५ ॥ एवंवृतां सवर्णा स्त्री द्विजातिः पूर्वमारणीयु ॥ दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥

अपने समानवर्णकी स्त्रीके पहले मरजाने पर उसको अग्निमें दग्ध करै पीछे शीघ्रही विवाह करके अग्निका आधान करै ॥ ५ ॥ ऐसे आचरणवाली अपनी जातिकी स्त्री और पहले मरीहुईको धर्मज्ञ पुरुष अग्निहोत्रकी अग्निसे और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करे ॥ ६ ॥

द्वितीयां चैव यः पत्नी दहेद्वैतानिकाग्निभिः ॥

जीवन्त्यां प्रथमायां तु ब्रह्मत्रेण सभं हि तत् ॥ ७ ॥

जो पुरुष दूसरी स्त्रीको भी हवनकी अग्निसे दग्धकरताहै, अथवा प्रथमस्त्रीके जीतेहुए दूसरी को होमकी अग्निमें जलाताहै, वह ब्रह्महत्याके समान है ॥ ७ ॥

मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ॥

ब्रह्मोज्झितं विजानीयाद्यश्च कामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

दूसरी स्त्रीके मरजानेपर जो मनुष्य अग्निहोत्रका त्याग करताहै उसको वेदका त्यागनेवाला जानों ॥ ८ ॥

मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकाग्नि नहि त्यजेत् ॥ उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥ ९ ॥ रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नी यशस्विनीम् ॥ ईजे यज्ञैर्वहुविवैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ १० ॥ यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्या कथंचन ॥ सा स्त्री संपद्यते तेन भार्या वास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥

भार्याके मरजानेपर भी वैदिकाग्निका त्याग न करै, अपने जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र कर्मको पूरा करै ॥ ९ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजीने भी यशस्विनी सीताजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनाकर भाइयों सहित बडे २ यज्ञोंसे भगवान्की पूजा कीथी ॥ १० ॥ जो मनुष्य अपने हवनकी अग्निसे कभी भी अपनी स्त्रीको दग्ध करताहै, वह, स्त्री उसकीस्त्री-होतीहै, और वह स्त्री उसका दहन करै तौ वह जन्मातरमें पुरुष होतीहै ॥ ११ ॥

भाष्या मरणमात्रा दशांतरगतावि या ॥

अधिरारी भवेद्युत्रो मद्गनातरिनि डिम ॥ १२ ॥

यदि मी मरणाद् द्वा या परदेगका चर्वागद् द्वा, जयथा अमिश्री मी द्वा और उगे मद्गनातर लगगवा द्वा तो उसका पुत्र जमि । प्रदा अधिकारी द्वादि ॥ १२ ॥

मान्या चेन्मियत पृथ भाषा पतियिमानिता ॥

श्रीणि जमानि स्य पुत्र्य पुरुष स्त्रित्यमदति ॥ १३ ॥

यदि निशेष मानताया स्त्री म्गमीय भगमानि हो मत्त्राय तो यद् स्त्री तीन जन्म  
पुत्र्य हर्ता और प पुत्र्य स्त्री द्वादि ॥ १३ ॥

पुत्र्य रीनि पद्याहनुनराशनफर्मणि ॥ विशवाशान्युपरधानमान्याहृषष्ट  
तया ॥ २ ॥ मृत्वा स्यात्तदामातमुपातिष्ठत पायसम् ॥ अयाप पयस्य

मनय पम्नजाभिरमानम ॥ १' ॥ अमिमीडे अन्वधापापमभाषादिरीतया  
निष्ठाग्निपातिगित्यामि दतमममदति च ॥ १६ ॥ इत्यष्टादशस्मृत्या यथा

दुतायां सायमाहुत्यां दुर्वलश्चेद्गृही भवेत् ॥

प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चन्द्रः पुनर्न वा ॥ २ ॥

यदि मार्चकालके एवम होजानेके उपरान्त गृहस्थी दुर्वल ( मरनेके समान ) होजाय  
तो प्रातःकालका एवम उसी समय होगा कि जब वह जीवित होजायगा, नहीं तो नहीं होगा ॥ २ ॥

दुर्वलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ॥ दक्षिणाशिरसं भूमौ वहिष्मत्यां नि-  
वेशयेत् ॥ ३ ॥ पृथेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपशीतिनम् ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं  
सुमनोधिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥ हिरण्यशकटान्यस्य क्षिप्त्वा चिच्छेपु सप्तसु ॥  
सुशेष्वथापिवायेनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ ५ ॥ आमवात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्नि-  
पुरःसरम् ॥ एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पर्युत्सृजेद्भवि ॥ ६ ॥ अर्द्धमाद-  
हनं प्रात आसीनो दक्षिणामुखः ॥ सव्यं जान्वाच्य शनैः सतिल पि-  
ण्डदानवत् ॥ ७ ॥

दुर्वल ( जो मरनेके समीपहो उस ) को स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनादे, इसके  
उपरान्त लुश धिसरे हुए पृ. ३में दक्षिण दिशाकी ओर शिर करके ॥ ३ ॥ घीका उवटन कर  
स्नान करावे, और वस्त्र जनेऊ पहरावे, सब अंगपर चन्दन छिड़क कर उसको पुष्पोसे  
जोभात्रमान करे ॥ ४ ॥ और सातों छिट्टोंमें सुवर्णके टुकड़े डाल कर उन नदके सुखको  
टककर पुत्रआदि इमशान भूमिमें लेजाय ॥ ५ ॥ एक मनुष्य भिष्टीके वस्त्रे पात्रमें अन्न  
लेकर पीछे २ चले, और अन्नको आगे करके प्रेतको पीछे ले जाय, और उन अन्नमेंसे आवे  
अन्नको पुत्र मार्गके अर्ध भागमें पृथ्वीपर डालदे ॥ ६ ॥ जिन समय शा इमशानभूमिके  
जाधे भागमें पहुच जाय तब ( पुत्र ) दक्षिणको मुग्न करके बैठे, और बाये घुटनेको पृ. ३में  
देक कर धरे २ तिल सहित उस अन्नको पिंडदानकी विधिसे दे ॥ ७ ॥

अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुट्यांद्धारुचयं महत् ॥ भूपदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादि-  
लक्षणे ॥ ८ ॥ तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णां सुच दद्या-  
दक्षिणाग्रां नसि सुवम् ॥ ९ ॥ पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्व-  
योः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥ मुसलेन सहत्युब्जमन्तरुर्वो-  
रुलूखलम् ॥ चात्रे विलीकयत्रैवमनश्चुनयनो विभीः ॥ ११ ॥ अपसव्येन कृत्वै-  
तद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ॥ अथाग्नि सव्यजान्वाक्तो दद्यादक्षिणतः शनैः  
॥ १२ ॥ अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥ असौ स्वर्गाय लो-  
काय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥ एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥  
यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

जो चिता बनानेके योग्यहो उस शुद्ध पृथ्वीमें इसके उपरान्त पुत्रआदि स्नान करके  
चिता बनावे ॥ ८ ॥ उस चितामें दक्षिणकी ओरको शिर करके अग्निहोत्रीको सीधा रखे,  
और दक्षिणको अग्रभागवाली घीसे भरकर सुकको मुखमें और सुवको नासिकामें रखदे  
॥ ९ ॥ पैरोंमें नीचेकी अरणीको और छातीपर ऊपरकी अरणीको, और सूप और चमसको



बायें बायें करवटमें रखदे ॥ १० ॥ और निर्भयहो रोदनको त्यागकर पुत्र मूढाञ्च और जोलख गया अथ और ओबिबीको जंपाभाके पीचमें रटाये ॥ ११ ॥ मौन धारण कर दक्षिणकी औरको मुख करके भयसम्ब्य हो पूर्वाञ्च कमोंको कर पांये पुढेको नवाकर विषामें दक्षिण दिशाकी ओर धीरे २ भासि जकावे ॥ १२ ॥ और उस समय इस यजुर्वेदके मन्त्रको पवे कि हे भगि ! तू इस देहसे छरपन्न हुआया, और हे भगि ! तप तुहासेदी यह देहभाषि फिर कल्पप्रदो; इस कारण इस मन्त्रश्रित भगिमें इस प्राणीको स्वामीको प्राणिके निमित्त यह म्पाह है ॥ १३ ॥ गृहस्थीके इस भाषि करमेपर यह सम्पूर्ण पापोंसे पून जावाहै, और जो मनुष्य उसे वाह करवाहै वह अन्न संतानको पावाहै ॥ १४ ॥

यथा स्वामुघधृक् पाथो ह्यरण्यान्यपि निभय\* ॥ अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थान मिष्टे च विन्दति ॥ १५ ॥ एवमेपोऽग्निमान्यज्ञपात्रामुघविभ्युपित\* ॥ लोकां न्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकविंशतिसप्त पत्र ॥ २१ ॥

जिस भाषि पत्रिक अपने मुखोंको सायम डेकर निर्भय हो वनोंको छाँफकर अपने अग्नि उपिष्ठ स्थानपर पहुँचजावाहै ॥ १५ ॥ वही भाषि यह सात्त्विक मनुष्यमी अपने यज्ञपात्र रूप शस्त्रोंसे शोभायमान हो स्वर्ग आदि छोकोंका छाँफ कर परमज्ञको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृती मायादीकामाकेकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

### द्वाविंश भव २२

अधानवेक्ष्य च चित्तां सयं पथ क्षयस्पृश ॥ ज्ञात्वा सखेलमायस्य दक्षुरस्यो दक स्थले ॥ १ ॥ गोत्रनामानुषादान्ते तर्पयामीत्यनंतरम् ॥ दक्षिणाप्राप्तुना स्मृत्वा सतिलं तु पूषकपूषक ॥ २ ॥ एष कृतोवकान्सम्पत्सर्षाञ्छादलस स्थितान् ॥ आप्लुत्य पुनराचान्तान्वदेयुस्तेऽनुयायिन\* ॥ ३ ॥

इसके उपरान्त पिताको न देकर हाथके तर्पण करनेवाले सभी जन वहाँसे बचकर वक सखिल ज्ञान कर आचमन करै, प्रेवको स्थल ( जहाँ जल नु हो उस पृथ्वीपर ) लखे ॥ १ ॥ प्रेवके गोत्र और नामके अंतमें "तर्पयामि" कहै और दक्षिणको कुशाओंका अग्रभाग करके विच्छदित लख पूषक २ हें ॥ २ ॥ सब जने इस भाँति तर्पण करके फिर ज्ञान और ज्ञापन करनेके उपरान्त पासवासी पृथ्वीपर बैठकर प्रेवके सब कुटुम्बी जो वनजातमें गयेये वह पसा कहै कि ॥ ३ ॥

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्षस्तिन्माजधर्माणि ॥ धर्मं कुरुत यत्नेन यो यः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥ मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम् ॥ य करोति

१ इति २२ पञ्चमखण्डितक गृहस्थी नियमि भाषि कात्यायनके विषयमें स्वच्छता करनेके भाषिमें या कुछ नियम है वह कर चुकेहैं उत्तरी सूचना रात्रप्रतिपत्तर्ष अग्नि २१ तथातर्पण करने, "एवमेवोऽग्निमान्यज्ञपात्रामुघविभ्युपित" इत्यादि श्लोकवि ॥

स संसूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥ गंत्री वसुमती नाशमुदधिर्देवतानि च ॥  
 केन प्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥ पंचधा संभृतः कायो  
 यदि पंचत्वमागतः ॥ कर्माभिः स्वशरीरोत्थैरतत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥  
 सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥ संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं  
 हि जीवितम् ॥ ८ ॥ श्लेष्याश्रु वां ववैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥ अतो न  
 रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

“सम्पूर्ण प्राणी अनित्य है” इस कारण तुम शोक मत करो, यत्नपूर्वक धर्म कार्यको  
 करो, यह धर्मही तुम्हारे साथ चलेगा ॥ ४ ॥ केलेके पिंटीके समान असार और जलके  
 चुल्लुलेकी समान मनुष्यलोकमें जो मनुष्य सार हूँदनाहै वह अत्यन्त मूर्ख है ॥ ५ ॥ पृथ्वी,  
 समुद्र, देवता, सभीका नाश है, तौ इस मृत्युलोकमें किसका नाश न होगा ॥ ६ ॥ पाच  
 भूतोंसे बनाहुआ यह देह यदि देहधारण जनित कर्मोंके फलमें पंचत्वको प्राप्त होजाय, तौ  
 इसमें शोक क्या है ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण संचयोंका अंतमे क्षय है, उन्नतिका शेष पतन है,  
 संयोगका शेष वियोग है, और जीवन्तका शेष मरण है ॥ ८ ॥ जो “बंधु बाधव” रोदनके  
 समय नेत्रोंसे आंसू डालतेहैं, प्रेत अवश होकर उनका भोजन करताहै, इस कारण रोदन  
 करना उचित नहीं वरन यत्नपूर्वक कर्म करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा ब्रजैरुत्ते गृहल्लघुपुरःसराः ॥

स्नानाभिस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरेतरैः ॥ १० ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥

इस प्रकार कहकर वह छोटे २ को आगे करके घरको चले, और बंधु बांधवोंसे अल्प  
 मनुष्य स्नान और अभिके स्पर्शसे और आज्य ( घृत ) प्राशन करनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ १० ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः खंडः २३.

एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ॥

कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥ १ ॥

इसी भांति आहिताग्नि ( अग्निहोत्री ) काभी सब काम होताहै, केवल इसमें पात्र ( सुक्-  
 सुव ) आदिका रखना, और सूत्रमें कहींहुई काली मृगछाला आदिक इस ( अग्निहोत्रीके  
 बाह ) में अधिक होतीहै ॥ १ ॥

विदेशमरणेऽस्थानि ह्याहुत्याभ्यज्य सर्पिषा ॥ दाहयेदूर्णयाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासा-  
 दि पूर्ववत् ॥ २ ॥ अस्थामलाभे पर्णानि सकलान्पुक्तयावृता ॥ भर्जयेदस्थिसं-  
 ख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ३ ॥

यदि कोई विदेशमें मरजाय तौ उसकी अस्थियोंको लाकर धीसे छिडक ढककर दाह  
 करै, और उसपर होमके पात्रोंको पूर्वकी समान रखदे ॥ २ ॥ यदि कदाचित् अस्थि न मिले

सौ अस्थियोंकी समान पक्षे छेकर पूर्वोक्तरीतिसे अर्थात् नराकृति बनाकर उद्युंजकावे, अर्थात् पुच्छलेखन करे, बर्सादिनसे सुतकका आरम्भ होताहै ॥ ६ ॥

महापातकसंयुक्तो देवात्स्यादमिमान्यादि ॥

पुत्रादि पालयेदमीभ्युक्त आदोपसंक्षयात् ॥ ४ ॥

यदि अग्निहोत्री मनुष्यको देववस्त्रसे महापातक छगनाय सौ वसका पुत्र जबसक वसके पापका नाश न होमाय समस्त सावधान होकर अग्निकी रक्षा करवाये ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्तं न कुर्याद्य' कुर्वन्त्या धियते यदि ॥ गृह्य निर्यापयेच्छ्रीतमप्यस्ये  
त्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥ सादयेदुभय घाप्सु इन्द्रघोर्गमिरभवधत' ॥ पात्राणि  
दद्याद्विप्राय दहेदप्सवेव वा क्षिपेत् ॥ ६ ॥

जो महापातकी मनुष्य प्रायश्चित्त न करे अथवा करते २ ही मग्नाय ती गृह्य गार्हप  
त्याग्निको निषांय करे, और भुविमें करी सफससाममीसहित अग्निहोत्रको जलमें डूबने  
॥ ५ ॥ अथवा अग्नि और पात्र दोनोंहीको जलमें सिरावे, कारण कि अग्नि गलसेही  
उत्पन्न हुआहै, और सम्पूर्ण पात्र प्राणियोंको वेदे, या जलावे, या जलमेंही गेरवे ॥ ६ ॥

अनयैषावृता नारी दग्धप्राया भ्यवस्थिता ॥

अग्निप्रदानमत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थिति ॥ ७ ॥

इसी रीतिसे अग्निहोत्रीकी स्त्रीके मरजानेपरभी उसका दाहकरे, केवल अग्निहोत्रके समर्थमें  
संभ्र न पड़े, यही मर्मादा है ॥ ७ ॥

अग्निनेष दहेद्भार्या स्वतत्रा पतिता न चेत ॥

तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगतिके ॥ ८ ॥

स्त्री यदि स्वर्गीन हो और पतिव्रत न हो तो अग्निहोत्रकी अग्निसेही उसका दाहकरे इसके  
उपरान्त इसके सम्पूर्ण पात्र उस स्त्रीके समीप उत्तरदिशामें दण्ड रखवे ॥ ८ ॥

अपरेष्टुस्तृतीये वा अस्मा संचयन भयेत् ॥ यस्तत्र विधिराविष्ट क्रपिमिः सो  
ऽधुनोच्यते ॥ ९ ॥ खानांतं पूर्वघत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः ॥ सिंचेदस्थानि  
सर्वाणि प्राचीनाधीत्यभापयन् ॥ १० ॥ शमीपलाशशास्ताम्यामुद्धृत्योद्धृत्य  
भस्मन ॥ आज्येनाम्यज्य गव्येन सेचयेद्ब्रधवारिणा ॥ ११ ॥ मृत्याप्रसृष्ट  
कृया सूत्रेण परिवेष्ट्य च ॥ श्वध स्वात्वा शुची भूमौ निखनेदक्षिणामुख'  
॥ १२ ॥ पूरयित्वाषट पकर्विंशतीयाल्लसयुतम् ॥ दस्वोपरि सर्ग क्षेप कुर्या  
सर्वाहफर्मणा ॥ १३ ॥

बूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचयन ( अस्थीका इकट्ठा करना ) होताहै; अस्थियोंमें इस  
कार्यमें जो विधि वर्जित कीहै उसे अथ कहतेहैं ॥ ९ ॥ पूर्वकी समान स्नानवक कर्मकरके  
दक्षिणको मुखकर अपसम्भ हो गौन धारणकर गायके बूंस सम्पूर्ण अस्थियोंको छिड़के १० ॥

१ इलीको पूर्वमरदाहनी कहतेहैं इतमें पक्षेकी लज्जा अन्वय किलोरे कित २ अगमें कितने पक्षे  
क्याना धारिये ।

शमी और ढाककी शाखाकी भस्ममे अस्थियोंको निकालकर गौके घी और सुगंधित जलसे उन्हें छिड़कै ॥ ११ ॥ मिट्टीके पात्रको संपुट ( एकनीचे १ ऊपर बीचमें अस्थि ) करके उसमें अस्थियोंको रखकर सूतसे लपेटदे फिर पवित्रभूमिमें गढा खोदकर दक्षिणको मुखकर उन्हें गाडदे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त उम् गढेको पाट उसपर पद्म-शैवाल रखकर उसको एकसार करदे यहाका सब कार्य पूर्वाह्नमें करै ॥ १३ ॥

एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ॥

स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोविंशतितम खण्डः ॥ २३ ॥

अग्निहोत्रसे हीन मनुष्यकी वहविधिभी इसी प्रकार है, स्त्रियोंकी समान उसको अग्नि दीजातीहै इसके उपरान्त न कहीहुई विधिको कहतेहैं ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः खण्डः २४ .

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥ होमः श्रौते तु कर्तव्यः गुणकान्तेना-  
पि वा फलैः ॥ १ ॥ अकृतं होमयेत्समार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥ कृतं वा  
होमयेदन्नान्वारभविधानतः ॥ २ ॥

सूतके होजानेपर संध्या इत्यादि नित्यकर्मोंको न करै, यह नियम है और सूके अन्न या फलसे वेदमें कहेहुए हवनको करै ॥ १ ॥ स्मृतिमें कहेहुए कर्ममें अकृतकी, और यदि अकृत न मिलै तो कृताकृतकी, अथवा कृतअन्नकी आहुतिदे परन्तु अन्वारभ ( ब्रह्मासे मिलकर ) यह विधिसे करै ॥ २ ॥

कृतभोदनसक्त्वादि तंडुलादि कृताकृतम् ॥

ब्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥

ओदन ( भात ) सत्तू आदिको कृत कहतेहैं, और तंडुल आदिको कृताकृत कहाहै, और ब्रीहिआदिको अकृत कहतेहैं विद्वानोंने यह तीनप्रकारका हव्य कहाहै ॥ ३ ॥

सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥

एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति योजयेत् ॥ ४ ॥

सूतकमें, परदेशमें, असामर्थ्यमें, और श्राद्धके भोजनमें इन तीनों हव्योंसे आहुति दे ॥ ४ ॥ न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ॥ न दीक्षणात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ ५ ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥ अशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्स्यहं वा ब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥

अष्टादशी सूत्रमें भी कभी अपने कर्मोंको न छोड़े, और धीमाहैनेसे प्रथम यज्ञमें और छुट्टूमादि उपस्थानमें भी न छोड़े ॥ ५ ॥ पिताके मरवाने परती इनको कदापि दोष नहीं होता, अष्टादशीको कमके अन्तमें तीनदिन अशौच होवाहै ॥ ६ ॥

भाद्रमभिमत\* कार्य द्वादशैकादशोऽहनि ॥ मत्यान्विक तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्व्वदा ॥ ७ ॥ द्वादश प्रतिमास्यानि आद्य पाण्मासिके तथा ॥ सपिंडीकरणे चैव एतद्दे आद्यपोडशम् ॥ ८ ॥

अभिधानी मनुष्यका भाद्र माहसे ग्यारहवें दिन करना कर्तव्य है, और फिर प्रत्येक वर्षमें भी मरनेके दिन सर्व्वदा भाद्र करे ॥ ७ ॥ और प्रत्येक महीनेके बारह ( मासिक ) भाद्र और आष माद्र ( एकादशमाह भाद्र ) दो पाण्मासिक ( छमासी ) और सपिंडी करण यह सोलह भाद्र हावें ॥ ८ ॥

एफाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि षा त्रिभि ॥ 'यून' संपत्सरश्चैव स्यातां पाण्मासिके तदा ॥ ९ ॥ यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ॥ एकस्मिन्नहि देयानि सपुत्रस्यैव सर्व्वदा ॥ १० ॥ न योषामा\* पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥ न पुत्रस्य पिता दद्यान्मानुजस्य तथाऽग्रज ॥ ११ ॥

यह दो पाण्मासिक भाद्र इस समय होतेहैं अथ कि छे महीने वा एक वर्षमें एक वा तीनदिन कर्मही तब छडे महीनेमें दो भाद्र करने कथित हैं ॥ ९ ॥ पुत्रहीन मनुष्यके छिबे प्रथम-काहे ओ पंद्रह भाद्र हैं उनको एकही दिनमें करने, और पुत्रबाम् मनुष्यके भाद्र सर्व्वदा ( पूव कु २ प्रतिमास विधिसे ) करे ॥ १० ॥ पुत्रहीन स्त्रीका स्वामी कभी भाद्र में इसे पिंड न दे, और पिता पुत्रको न दे, यथा माह छाटे भाईको न दे ॥ ११ ॥

एकादशोऽहि निवर्त्यं स्वर्गाग्दर्शाद्ययाविधि ॥ प्रकुर्वीतामिमा\*पुत्रो मातापित्रा\* सपिंडताम् ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् ॥ एकोद्विष्टेन विधिना दद्यादित्याह गीतम\* ॥ १३ ॥ कर्षूसमन्वित सुकृत्वा तयार्चं भाद्रपोडशम् ॥ प्रयाग्निक च शेषेषु पिंडा\*स्यु\* पाठिति स्थितिः ॥ १४ ॥

ग्यारहवें दिन अग्निहोत्रीपुत्र यथाविधि भाद्र करके अनावससे पदस कर्मको निवृत्तकर मातापिताकी सपिंडीकरणकरे ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणके उपरान्त एकोद्विष्टकी विधिके अनुसार प्रत्येक महीनेमें पिंड न दे यह गीतमकथिकाभी कथनह कि भाद्र न करे ॥ १३ ॥ कर्षु ( अथा ) मद्दित भाद्र और साष्टह भाद्र और प्रयाग्निक ( शयी ) इतने भाद्रोंके अतिरिक्त शेष भाद्रोंमें छे पिंड हातहै यह मयाश है ॥ १४ ॥

अर्थेऽप्यपोदके त्रैव विद्वदानेऽग्नेऽग्ने ॥ तंत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्यधावायन एव च ॥ १५ ॥ द्वादशैकादशपुत्तानां येषां नास्त्वमित्सम्प्रिया ॥ भाद्रादिसत्प्रिया भाजा न भयन्तीह त क्वचित् ॥ १६ ॥

इति का\*शापायनासुनौ चतुर्विंशतितमः पाठः ॥ १७ ॥

१ इनको जनकसमिक और जननीक करतेहैं पाण्मासिक और पारह ही बारहमेंही अनावादे है १४ एकादश और बारहो विकर पारय अथ हातेहैं उलीको पोडशी करतेहैं ।

अर्घ्य, अक्षय्योदक, पिउदान, आनेजन, और स्वभावाचन इतने काम तंत्र ( अर्घ्य सभिको एकवार अर्घ्यादि देना इखविधि ) से नकरें अर्घ्यात् प्रत्येक २ दे ॥ १५ ॥ जिन मनुष्योंका ब्रह्मदंड ( शाप ) आदिसे युक्त होनेके कारण संस्कार नहीं कियागया, वह श्राद्धआदि संस्कारके भागी इसलोकमें कभी नहीं होसकते ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकाया चतुर्विंशतितमखण्डः समाप्तः ॥ २४ ॥

### पञ्चविंशः खण्डः २५.

मंत्रान्नायेऽग्न इत्येतत्पंचकं लाघवार्थिभिः ॥ पठ्यते तत्प्रयोगे स्यान्मंत्राणामेव विशतिः ॥ १ ॥ अग्नेः स्थानं वायुन्द्रसूर्या बहुवदूह्य च ॥ समस्य पंचमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥ २ ॥ प्रथमे पंचके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ॥ अपि पंचसु मंत्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥ ३ ॥ द्वितीये तु पतिव्री स्यादपुत्रेति तृतीयके ॥ चतुर्थे त्वपस्येति इदमाहुतिविशकम् ॥ ४ ॥ धृतिहोम न प्रयुज्याद्गोनामसु तथाष्टसु ॥ चतुर्थ्यामप्य इत्येतद्गोनामसु हि ह्यते ॥ ५ ॥

वेदके मंत्रोंमें जो अग्निइत्यादि पाच मंत्र लाघवकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंने पढे है, उन मंत्रोंके प्रयोगमें बीस मंत्र होतेहैं ॥ १ ॥ कारण कि “अग्ने” इस पदके स्थानमें वायु, चंद्रमा, सूर्य इनको पढकर पंचमी सूत्रमें सब स्थान चार २ पर आहुति हुई इस श्रुतिसे ॥ २ ॥ प्रथम पंचकमें पापी लक्ष्मी पद पाचों मंत्रोंमें होताहै यज्ञके जाननेवाले ऐसा जानतेहैं ॥ ३ ॥ दूसरे पंचकमें “पतिव्री”पद और तीसरे पंचकमें “अपुत्रा” और चौथे पंचकमें “अपस्य” पद होताहै, यही बीस आहुति हैं ॥ ४ ॥ घृतके होममें और आठो गोनामके होमोंमें इमका प्रयोग नहीं होता चौथे और गोनामोंमें “अप्ये” इस मंत्रसे आहुति दीजातीहै ॥ ५ ॥

लताप्रपल्लवो गूढः शृंगेति परिकीर्त्यते ॥ पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मवंशुरतथाऽश्रुतः ॥ ६ ॥ शलाटुनीलमित्युक्तं ग्रंथः स्तवक उच्यते ॥ कपुष्पिकाभितः केशा सूक्ष्मि पश्चात्कपुच्छलम् ॥ ७ ॥ श्वावच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ॥ तिलतंडुलसम्पकः कृसरः सोऽभिधीयते ॥ ८ ॥

लताके आगका जो गुप्त पत्ताहै उसे शुगा कहतेहैं, और पतिव्रताको व्रतवती और जिसने वेद न पढाहो उसे ब्रह्मवंशु कहतेहैं ॥ ६ ॥ नीलकी शलाटु और गुच्छेको ग्रंथ कहते हैं, स्त्रीके शिरपरके दोनों ओरके केशोंको कपुष्पिका और पीछेके केशके जूठेको कपुच्छल कहतेहैं ॥ ७ ॥ सेहीको श्वावित् और शलाका और वाणको वीरतर कहतेहैं इकट्ठे पके तिल और चावलोंको कृसर कहते हैं ॥ ८ ॥

नामधेये सुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा ॥ यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यातिथिदेवता ॥ ९ ॥ अभियाद्येऽथ सर्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ॥ आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥ १० ॥ इंद्रान्येतानि बहुवदक्षणां जुहुयात्सदा ॥

ब्रह्मद्वय द्वियच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ॥ ११ ॥ देवतास्वपि ह्यन्ते बहुवचसार्थं  
पित्तय ॥ देवाश्च वसवश्चैव द्वियद्वेषादिवनी सदा ॥ १२ ॥

मुनि, वसु, पिशाच, यज्ञ, पितर, देव, और अतिथि देवता इनका पूजन बहुवचनांश नाम  
लेकर करे ( जैसे मुनिभ्यो नम इति ) ॥ ९ ॥ कृषिका आश्लेषा, विद्यासा, पूर्वापादा, और  
अश्विनी ॥ १० ॥ यह सब नमनग्रन्थ ( दो २ ) हैं इनको सर्वथा बहुवचन पढ़से ( यथा कृ-  
षिकाभ्य स्वाहा इत्यादि ) आहुति दे, और शेष दो ग्रन्थोंको द्विवचनांश पढ़से और बाकी  
नमनग्रन्थोंका एकवचनांश पढ़से आहुति दे ॥ ११ ॥ देवताओंमेंभी सत्रापितर और देव, वसु,  
द्विपदेव अश्विनीकुमार इनको बहुवचनांश पढ़से ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ॥

घाटमोमिति वा झुपात्तथैवानूपपाळयेत् ॥ १३ ॥

गुरु जिस व्रतके कर्ममें ब्रह्मचारी को आज्ञा व उसमें ' सत्य है' अथवा ' श्रु' ( ज्ञीकार  
दे ) इस भांति कहे और वैदेही करके आज्ञाका पालनभी करे ॥ १३ ॥

सशिस्र वपन फार्यमाजानाद्ब्रह्मचारिणा ॥ आशरीराविमासाय ब्रह्मचर्य्यं न वे-  
द्भवेत् ॥ १४ ॥ न गात्रोत्सादन कुयोदनापदि कदाचन ॥ जलकीडाभमलकारा-  
न्व्रती दढ इवाधुषेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिका स्नान जबतक न करे तबतक शौरके समय सिखा  
सहित मुडन करावे, यह मुण्डन आदि जप करे जबकि शरीरक मरणपर्यन्त उसका  
ब्रह्मचर्य्यं न हो ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी विना आपत्तिके आधे कदापि शरीरपर लकटना न  
करे, और जलकीडा वा मूषण इत्यादिकोभी धारण न करे और मुसलवत् ( गाता-मारकर )  
स्नान करे ॥ १५ ॥

वेषतानां विपर्यासे जुहोतिषु कथं भवेत् ॥

सर्वं प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥

यदि किसी समय हवनमें वेषताओंका विपर्यास ( भागका पीछे पीछेका भाग ) होजाय तो  
प्रायश्चित्तकी सब आहुति देकर फिर क्रमसे हवन करे ॥ १६ ॥

सस्पारा अतिपत्येरन्स्वफालाद्येत्कथंचन ॥

हुत्वा तद्वै कर्तव्या ये नूपनयनादधः ॥ १७ ॥

यदि पत्नोपवीतसे पहले सस्कारोंकी अतिपत्ति होजाय तो प्रायश्चित्तकी सब आहुति  
द्वर करे ॥ १७ ॥

अनिष्ठा नवयज्ञेन नयान्नं योऽस्यकामतः ॥

यैश्यानरश्नुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृती पञ्चविंशतितमः पर्वः ॥ २५ ॥

जो मनुष्य नवयज्ञके विना क्रिय हुए अज्ञानतासे नवान्नका भाजन करताद वमका प्राय  
श्चित्त वैश्वानरं ( अग्निरा ) करे है, यथात् उसमें हवन करे ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृती पञ्चविंशतौ पट्टविंशः पर्वः ॥ २५ ॥

षड्विंशः खण्डः २६.

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि ॥ वृषभोत्सर्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥ १ ॥ श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृप्यारंभे तथैव च ॥ कथमेतेषु निर्वापाः कथं चैव जुहोतयः ॥ २ ॥ देवतासंख्यया ग्राह्या निर्वापास्तु पृथक्पृथक् ॥ तूष्णीं द्विरिव गृह्णीयाद्दोमश्चापि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्वा यत्र कीर्तिता ॥ शेषं चैव भवेत्किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥ चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ यथा ॥ होतव्यं मेक्षणे वान्य उपरतीर्याभिधारितम् ॥ ५ ॥ कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ॥ वृषोत्सर्गो यतो नात्र गोभिलेन तु ऋषितः ॥ ६ ॥

( प्रश्न ) जो समशनीय ( खानेयोग्य ) चरु है, गोयज्ञकर्ममें, वृषोत्सर्गमें, अश्वमेधमें ॥ १ ॥ और श्रावणमें, प्रदोषमें, कृपिके आरंभमें इतने स्थानोंपर निर्वाप आहुति किस भाँति होतीहै ? ॥ २ ॥ ( उत्तर ) देवताओंकी संख्याके अनुसार उतनेही निर्वाप पृथक् २ ग्रहण करै, और आहुतिभी तूष्णीं ( मन्त्रके बिना ) दो पृथक् २ लैनी ॥ ३ ॥ जहाँ जितने होमको कहाहो, अथवा जितनेसे हवन होसकै और उसमेंसे कुछ शेष रहजाय तो उननाही चरु बनावे ॥ ४ ॥ समशनीय चरुमें और होमके चरुमें तो मेक्षणसे हवन करै, और अन्य चरुमें घीसे सयुक्तकरकै उपस्तीर्णकिये ( एकत्रकिये ) से हवन करै ॥ ५ ॥ कात्यायन ऋषिने काल और विधि सक्षेपसे कहीहै, वृषोत्सर्गमें गोभिल ऋषिने नहीं कही ॥ ६ ॥

पारिभाषिक एव स्यात्कालो गोवाजियज्ञयोः ॥ अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपाल्येऽह्नि कालो गोयज्ञकर्मणः ॥ नीराजनेऽह्नि वाश्वानामिति तंत्रातरे विधिः ॥ ८ ॥ शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ॥ धान्यपाकवशादन्ये श्यामाक्रो वनिनः स्मृतः ॥ ९ ॥ आश्वयुज्यां तथा कृप्यां वास्तुकर्मणि याज्ञिकाः ॥ यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥ १० ॥

गौ और अश्वके यज्ञमें वही समय है जो पारिभाषिक हो ( अर्थात् जिसका समय स्वयं नियत कियाहो ) यह स्वस्तर और आरोहणमेंभी अन्यऋषिके उपदेशसे होताहै ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपालीदिनमें गोयज्ञकर्म और नीराजनके दिनमें अश्वमेधका काल होताहै, यह शास्त्रान्तरोंकी विधि है ॥ ८ ॥ कोई २ ऋषि शरद और वसन्तऋतुमें नवयज्ञ कहतेहैं, और कोई अन्नके पकनेपर कहतेहैं, और वानप्रस्थको श्यामाक्र ( समा ) पकनेपर कहाहै ॥ ९ ॥ आश्विनकी पूर्णिमा, कृपि, और वास्तुकर्म इनमें यज्ञके तत्त्वके जाननेवाले ऋषि इसप्रकारके होम करनेको कहतेहैं ॥ १० ॥

द्वे पंच द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ॥

शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

दो २, पाच ५ फिर दो २ क्रमानुसार इतनीही आहुति हविकी और शेष आहुति घीकी दैनी, यह कात्यायनऋषिका वचन है ॥ ११ ॥



पयो यदाज्यसयुक्तं तच्छपातकमुच्यते ॥

दध्यैके तदुपासाद्य कर्त्तव्यं पापसञ्चरं ॥ १२ ॥

पीमितेद्रुप दूधको सुपाचक कहतेहैं, और किसीका यहमी कथन है कि उसमें दधि मिला कर पायसचक्र बनाके ॥ १२ ॥

घ्रीहयं शालयो मुद्गा गोधूमा सर्पपास्तिला ॥

यथाश्वोपधय सप्त विपदं प्रति धारिताः ॥ १३ ॥

घ्रीहि, वा साहि, मूंग गेहूँ, धरसों, विल, औ यह सात औषधी घस्रण करनेसे सम्पूर्ण विपत्ति दूर होजातीहै ॥ १३ ॥

सस्कारा पुरुषस्यैते स्मर्यन्ते गौतमादिभिः ॥

अतोष्टकादय काह्या सर्षकालप्रमोदिनाम् ॥ १४ ॥

गौतमभावि ऋषिगोत्रे पुरुषके सस्कार इसर्माति कहेहैं, इसकारण अष्टका भादि सम्पूर्ण कर्म भित्त समयमें कहेहैं उसीमें करने उचित है ॥ १४ ॥

सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणि यो द्विजः ॥

स पंक्तिपायनो भूत्वा लोकाप्रेतिं घृतश्च्युत ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण अष्टका भादिकर्मोंको एकवारभी करताहै, वह पंक्तिका पवित्र करनेवाला हो कर घृतसे सीपेद्रुप ओकों ( स्यर्गादिकों ) को प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

एकाहमपि कर्मस्यो योऽग्निशुभ्रपकं शुचि ॥

नयत्यत्र तद्देशस्य शताहं दिवि जायते ॥ १६ ॥

जो मनुष्य कर्ममें स्वितरोकर एकदिनभी पवित्रहोकर अग्निकी सेवा करताहै, वह एक समयसे एकसौ दिनतक स्वर्गमें मुक्त भोगताहै ॥ १६ ॥

यस्त्वाध्यायामिमाशास्य देवादीन्निर्मिरष्टयान् ॥

निराकृतामरादीनां स विघ्नयो निराकृतिः ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चनिशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य अधिका भाषानपूर्वक देवताओंके आशीर्वाकी आशासे इन यज्ञोंमें उनका पूज करताहै, और फिर देवताओंका विरकार करताहै उस मनुष्यको निर्विघ्न जानना ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाग्यवीर्यानां पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥ २६ ॥

सप्तविंश खण्ड २७,

यच्छ्राद्धं फर्मणामादीं या चान्ते दक्षिणा भवेत् ॥

अमायास्यां द्वितीयं यद्व्याहार्यं तदुच्यते ॥ १ ॥

जो श्राद्धकामरी भादिमें दोताहै और जो दक्षिणाकर्मके अगमें होताहै और अमावस्यसे न चूतरा भाद्य हातादि वसे अन्वाहार्य कहतेहैं ॥ १ ॥

एकसाप्येषु षोडश पु न स्यात्परिसम्पन्नम् ॥

नादगासादां धीव तिमशेमा दि ते मताः ॥ २ ॥

एक दिनके हवनमें बर्हि और भिन्न २ कुशाओमें परिसमूहन और उत्तर २ पात्रोंका रखना नहीं होता, कारणकि इसको क्षिप्रहोम कहतेहैं ॥ २ ॥

अभावे व्रीहियवयोर्दधा वा पयसापि वा ॥

तदभावे यवाग्वा वा जुहुयाद्दुदकेन वा ॥ ३ ॥

व्रीहि और जौके अभावमें दही और दूधसे, और उनकेभी न मिलनेपर लपशी वा जलसेही हवन करै ॥ ३ ॥

रौद्रं तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिसारिकम् ॥

उक्ता मंत्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥ ४ ॥

भयंकर मन्त्र, राक्षसोंके मन्त्र, पितरोंके मन्त्र, असुरोंके मन्त्र, अभिचारके मन्त्र, मनको नका उच्चारण करके आचमन करै ॥ ४ ॥

यजनीयेऽग्नि सोमश्चेद्धारुण्यां दिशि दृश्यते ॥

तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्विजातये ॥ ५ ॥

॥ वा अमृतवल्ली यदि यज्ञके दिन वरुण दिशामे दीखजाय तौ वहा व्याहृति ( भूः ) योंसे हवनकरके द्विजातियोंको दंडदे अर्थात् प्रायश्चित्त करावै ॥ ५ ॥

लवणं मधु मांसं च सारांशो येन हूयते ॥

उपवासेन भुञ्जीत नोरु रात्रौ न क्रिवन ॥ ६ ॥

1-सहत, मास, सारका भाग इनका जो हवन करताहै वह दिनमें उपवास करै और न खाय, ॥ ६ ॥

अमाहुत्या अप्राप्तौ होद्दहव्ययोः ॥ प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते

७ ॥ प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ॥ प्राक्पौर्णमासा-  
भागदर्शादितरस्य तु ॥ ८ ॥ वैश्वदेवे त्वर्तिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ॥

चमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद्भ्रतम् ॥ ९ ॥ होमद्वयात्पथे दर्शपौर्णमा-

भा ॥ पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥ १० ॥

और हव्य सायंकालको समयपर न मिलै तौ प्रातःकालही प्रायश्चित्तकी आहुति दे ॥ ७ ॥ और सायंकालकी आहुतिसे पहलेभी प्रायश्चित्तकी आहुति दे, इससे हवनका समय उलघन नहीं होता, पूर्णमासीसे प्रथम और अमावससे पहले ॥ ८ ॥ वलि वैश्वदेवका उलघन होजाय तौ अहोरात्र भोजन न करै फिर प्रायश्चित्त देकर व्रतका प्रारंभ करै ॥ ९ ॥ यदि दो हवनका उलघन होजाय या पूर्णमासीका उलघन होजाय तौ फिर अग्निका आधान करै, यह शिक्षा भार्ग-

अनृचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः ॥

रुरुगौरमृगः प्रोक्ततंबलः शोण उच्यते ॥ ११ ॥

अनृच माणवको कहते हैं एण काले मगको और गोरुको नर और नरको ल कहतेहैं ॥ ११ ॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य वृद्ध कार्यं प्रमाणतः ॥ छलाटसंमितो राज्ञः स्यात्  
नासांतिको विशः ॥ १२ ॥ ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरग्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥  
अनुद्गैकरा नृणां सत्वचोऽग्निद्रुपिताः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणका केशोंतक, ऋजवका मस्तकवक, नासिकातक वैश्यका वृद्ध प्रमाणसे होताहै ॥  
॥ १२ ॥ और वह वृद्ध ऐसेही कि सीधेईखनेमें अच्छे और घुने न हों, और मनुष्योंको डरा-  
नेवाले न हों ॥ १३ ॥

गीर्वांशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥ न ततोऽन्यद्द्वर यस्मात्तस्मात्प्रीर्वर  
उच्यते ॥ १४ ॥ येषां प्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥ यरस्तत्र भवे  
हानमपि वाऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंने गौका वेशोंमें मी उद्यम कहाहै इसी कारण गौसे भेद्य और कोई नहीं है, इसी  
से गौको घर ऋतेहै ॥ १४ ॥ सिन प्रवोंके अन्तमें दक्षिणा नहीं कहाहै वहां घर ( गौ )  
दक्षिणा दे, अथवा गुरुको वस्त्रोंसे ढकवे ॥ १५ ॥

अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥ प्रमादिकं श्रुतौ यत्स्याघात  
यामन्यकारि तत् ॥ १६ ॥ प्रत्यब्दं यदुपाकर्म्म सौरसर्गं विधियद्दिने ॥ क्रिय  
ते छन्दसां तेन पुनराध्यायन भवेत् ॥ १७ ॥ अपातयामीश्रुत्त्वोभिर्यत्कर्म  
क्रियते दिने ॥ श्रीह्रमानेरपि सदा तत्रेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥ गाय  
श्रीञ्च सगायत्रां वार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥ शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुप्या-  
त्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥

इनमें वेद अथावयाम ( जिसमें सार न हो ऐसा ) होजातेहैं वह यह है कि अस्थान ( जिस  
स्थानसे धोखना चाहिये उससे वर्णका नहीं धोखना ) ऊँसे आससे धोखना, विच्छेदसे धोखना,  
घोषे दाडसे धोखना, यदि वह प्रमादसे होमांस तो सारहीन होताहै ॥ १६ ॥ प्रतिवर्षमें जो  
उपाकर्म वा उत्सर्ग ( जो आयजमि होताहै ) इनको यादग्य करतेहैं, उससे फिर वेदोंकी  
आध्यायन ( सारवा ) होतीहै ॥ १७ ॥ ब्राह्मण जो कर्म ऋषिसहित अथावयाम वेदोंसे कर  
तेहैं वह कर्म वनकी सिद्धि करनेवाले होतेहैं ॥ १८ ॥ तीनों व्याहृतिसहित गायत्री और  
गायत्र ( परमानसूक्त ) और वार्हस्पत्य ( गृहस्थविका सूक्त इन तीनोंकी साक्षके अनुसार  
शिष्योंको उपदेश देकर फिर वेदका उपाकर्म करे ॥ १९ ॥

छन्दसामेकविंशानां संहितायां ययाक्रमम् ॥ तच्छ्रुत्त्वस्याभिरैर्विभ्रराद्याभिर्हो  
म इष्यते ॥ २० ॥ पर्यभिर्भिय गानेषु ब्राह्मणेपूत्ररादिभिः ॥ अङ्गेषु चर्चान-  
म्ब्रेषु इति पष्टिर्जुहोतय ॥ २१ ॥

इति काल्याणनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

संहिताके क्रमसे इतनेस प्रकारके छत्र हैं छन्दों छत्रोंकी अथाओंके मन्त्रोंके दोम करनेकी  
विधि है ॥ २ ॥ गानभाग, ( सामवेद ) गायत्री भाग अंग और चर्चामन्त्रोंके अथरादि चर्चों  
से इषतकरे, उपाकर्ममें यह छत्र इषत किये जाते हैं ॥ २१ ॥ -

इति काल्याणनस्मृतौ भाषाटीकायां तत्तर्विद्याः खण्डः समाप्तः ॥ २७ ॥

## अष्टाविंशः खंडः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥

भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥

जौका नाम अक्षतहै व भुनेहुए जौके हौनेपर उसे धाना कहतेहैं और भुने व्रीहियोंको लाजा कहतेहैं और घडोंका नाम खाण्डिक है ॥ १ ॥

नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥ तत्रोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षि-  
णायनान् ॥ २ ॥ उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्मवित् ॥ उत्सर्गश्चैक एवैषां  
तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य व्यवधान ( दूर बैठकर ) रहस्यों और उपनिषदोंको न पढे और छैः महीनेतक दक्षिणायनमेंभी इनको न पढे ॥ २ ॥ धर्मका जाननेवाला मनुष्य उपाकर्मको करके उत्तरायणमें वेदोंको पढे, और इनके उत्सर्ग कर्ममें ब्राह्मणोंके लिये तैषी ( पौषी पूर्णिमा ) में वा भाद्रपदमें एकही कहाहै ॥ ३ ॥

अजातव्यञ्जनाऽलोम्नी न तथा सह संविशेत् ॥

अयुगूः काकवन्ध्याया जाता तां न विवाहयेत् ॥ ४ ॥

जिसको यौवसका चिह्न उत्पन्न नहीं हुआ हो और जिसके शरीर गुह्यस्थानमें लोम उत्पन्न नहीं हुए हों उस स्त्रीके साथ भोग न करे, और जो स्त्री अयुगू हो अथवा जिसकी माता काकवन्ध्या हो, अर्थात् उसको वही एक कन्या सन्तान हुई हो और उसके पीठपर दूसरी सन्तान उत्पन्न हुई न हो तौ ऐसे उस काकवन्ध्या माताकी कन्याके साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥

संस्कृपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ॥

रमाते कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥ ५ ॥

मिले हुए पदोंका उच्चारण यह त्रिपद प्रक्रम ( प्रारभ ) जो सब स्मृतिमें कहेहैं उनमें होताहै और जो कर्म श्रुतिमें कहेहैं उनमें अध्वर्युके कथनके अनुसार होताहै ॥ ५ ॥

यस्यां दिशि बलि दद्यात्तामेवाभिमुखो विशेत् ॥ श्रवणाकर्मणि भवेद्यच्च  
कर्म न सर्वदा ॥ ६ ॥ बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ॥ प्रत्यहं न भवे-  
यातामुल्मुकन्तु भवेत्सदा ॥ ७ ॥

जिस दिशामें बलि दे उसी दिशाकी ओरको मुख करके बैठे, और जो कर्म सर्वदा नहीं होते ऐसे कर्मोंको श्रावणीमेंही करले ॥ ६ ॥ बलिके शेषका हवन और अग्निका प्रणयन ( स्थापन ) यह प्रतिदिन नहीं होते परन्तु उल्मुक ( उल्का ) तौ प्रतिदिनही होताहै ॥ ७ ॥

१ जिसके एक बार सन्तान होगई हो, और फिर गर्भ न रहाहो उसे काकवन्ध्या कहतेहैं ।

२ यह निषेध जिन जातियोंमें परपूर्वा ( अर्थात् पुनर्विवाह कराना धर्म शास्त्रसे अनुमत होताहै उन )के अर्थ है, कन्यासे यहा अत्यन्त बालक ५।६। वर्षकी लेना, कारणकि आठवें वर्ष गर्भमुखा विवाहके योग्य माना गयाहै ।

पृषातकभ्रैयणयानंषस्य हविषस्तया ॥ शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिण ॥ ८ ॥ ब्राह्मणानाममाम्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ॥ अवेक्षेद्दविष क्षेपं नषयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥ ९ ॥

पृषातक और भ्रैयणमें, नवीन हविमें और हविके क्षेपके भोजनमें मंत्रोच्चारणके सभी अधिकारी हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मणके समीप न होनेपर स्वयही पृषातकका दर्शन करे, और नषयज्ञमें क्षेप हविषको भी भक्षण करे ॥ ९ ॥

सफला वदरीशास्त्रा फलवन्त्यभिधीयते ॥ घना विसिक्ताशंका स्मृता जात-  
शिलास्त ता ॥ १० ॥ नष्टो विनष्टो मणिक शिलानाशे तथैव च ॥ तदेषा  
हृत्य सस्कार्यो नापेक्षेदाग्रहायणीम् ॥ ११ ॥

जिस घेरीकी शास्त्रापर फल लगेहों उस फलवती कहते हैं, और जिन घन, और जिन पर रेतका सदेहभी न हो उन घेरकी शास्त्राको जातशिला कहते हैं ( ? ) ॥ १० ॥ जो मणिक ( पूर्णक पात्र-मटका ) नष्ट ( अवर्षण ) हो गयाहो अर्थात् नहीं मिलताहो अथवा विनष्ट ( फूटा ) हो गयाहो या वैसही शिलाका नाश हो गयाहो तो उसी समय उसे संस्कार करे, आमहायणी ( अग्रहण घुड़ी १५ ) की प्रतीक्षा न करे ॥ ११ ॥

अयणाकर्म लुप्तयेत्कथञ्चित्सूतकादिना ॥

आग्रहायणिकं कुर्याद्दल्लिषर्जमक्षेपत ॥ १२ ॥

यदि किसी प्रकार सूतक भाषिसे आग्रहायणीका कर्म न हुआ हो तो बलिर्जमको छोड़कर सम्पूर्ण कर्म आमहायणीको करे ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वस्वस्तरशायी स्यान्मासमर्द्धमयाऽपि वा ॥ सप्तरात्र त्रिरात्रं वा एकां वा  
सद्य एव वा ॥ १३ ॥ नेर्द्धं मंत्रप्रयोग स्यान्नाम्यगारं नियम्यते ॥ नाहतास्त  
रण चैव न पार्श्वं चापि वक्षिणम् ॥ १४ ॥ दृढभेदाग्रहायण्यामावृत्त्या वापि  
कर्मण ॥ कुंभ मंत्रवदार्सिषेत्प्रतिकुममृचं पठेत् ॥ १५ ॥

इसके पीछे एकमहीना, या पन्द्रहदिन या सातरात्रि या तीनरात्रि वा एक दिन अथवा उसी समय अपनी क्षत्रिके अनुसार साफ विस्तर पर शयन करे ॥ १३ ॥ विस्तर पर सोनेके बपरान्त मन्त्रका प्रयोग अमिषाका नियम मेष बिछौना और बहिनी करवत नहीं खेगो चाहिये ॥ १४ ॥ यदि अनुप्यने दृढहोकर भी आमहायणीके दिन कर्मको न करा हो तो दो पक्षे मन्त्रसे सीधै और प्रत्येक पक्षे पर ऋचाको पढ़े ॥ १५ ॥

अल्पानां यो विघातः स्यात्स घापो वहुभिः स्मृतः ॥ प्राणासम्मित इत्यादि यासि-  
ष्टघोषित यथा ॥ १६ ॥ विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूपसाम् ॥ मुख्य  
प्रमाणकरये तु म्याय एवं प्रकीर्तित ॥ १७ ॥

छाटे कर्मोंके विघातको बहुतसे ऋषि 'ना५ कहतेहैं, जिस भाँति प्राणसमित ( शक्तिके अनुसार ) इत्यादि बहिष्ठ ऋषिका कहा थापिठ ( वाप ) है ॥ १६ ॥ जिस स्थानपर बप नोटा परस्परमें विरोध हो, वहाँ बहुतसे ऋषियोंका बचन प्रामाणिक होवै, और जहाँ दोनोंमें समान प्रमाण हो वहाँ यह म्याय कहादे ॥ १७ ॥

त्रैयंबकं करतलमपूपा मंडकाः स्मृताः ॥ पालाशगोलकाश्चैव लोहचूर्णं च चीवरम् ॥ १८ ॥ स्पृशन्ननामिकाप्रेण क्वचिदालोकयन्नपि ॥ अनुमंत्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमंत्रयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः ॥ २८ ॥

किं त्रैयंबक हाथके तलको, और मंडक अपूपोंको, और गोलक टाक्योंको और लोहके चूर्णको चीवर कहतेहैं ॥ १८ ॥ किसी स्थानमें अनामिकाके अग्रभागसे स्पर्श करके वा किसी कर्ममें इनको देखकरही सम्पूर्ण कर्मोंमें मन्त्र पढ़ै और इसी भांतिसे सर्वदा पढ़ै ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशः खंडः ॥ २८ ॥

### एकोनत्रिंशः खंडः २९.

शालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ॥

तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्ये प्राणदारुणि ॥ १ ॥

पशुके स्रोतोंको दर्भ ( कुशा ) के कूर्च ( कूची ) से धोवै और मौन धारणकर बिना मन्त्रके अपनी इच्छानुसार क्रमसे अर्थात् चाहें जिस स्रोतको पहले धोले, वपाके लिये जो वपा प्राणोंका काठ है ( ? ) ॥ १ ॥

सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ॥

नाभिः श्रोणिरपानं च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥ २ ॥

गौके चौदह स्रोत हैं सात तौ ऊपरके और चार थन नाभी ( डोंडी ) योनी और गुदाके ॥ २ ॥

क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ॥

वपामादाय जुहुयात्तत्र मंत्रं सभापयेत् ॥ ३ ॥

मासके निकालनेका जो छुरा होता है उसको कृत्स्ना स्विष्टकृत् और आवृत्त कहतेहैं उस आवृत्तसे वपाको लेकर हवन करै, और उस समय मन्त्रको समाप्त करै अर्थात् फिर न पढ़ै ॥ ३ ॥

हजिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृद्दृक्कौ गुदं स्तनाः ॥ श्रोणिस्कंधसटापार्श्वपश्र्वंगानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥ एकादशानामंगानामवदानानि संख्यया ॥ पार्श्वस्य वृक्कसक्थनोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥ ५ ॥

हृदय, जिह्वा, छाती, हाड, यकृत्, वृषण, गुदा, स्तन, श्रोणी, स्कंध और सटा ( ठाट ) के दोनों पार्श्व यह पशुके अंग हैं ॥ ४ ॥ इन ग्यारह अंगोंकी संख्यासे ग्यारह अवदान होतेहैं, और पार्श्व वृषण ( अंडकोश ) और सक्थि ( जाघ ) यह दो २ होतेहैं इसीकारणसे पशुके चौदह अंग कहेहैं ॥ ५ ॥

चरितार्था श्रुतिः काय्या यस्मादप्यनुकरपशः ॥

अतोऽष्टर्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥

कस्य २ में जिसमें बुद्धिको चरितार्थ करना है, वही छागकी चरमें भी माठ भ्रूषाभोले हवन होवा है ॥ ६ ॥

अवदानानि यावति क्रियेरप्रस्तरे पशोः ॥ तावत् पायसान्निधान्यश्मभवेऽपि कारयेत् ॥ ७ ॥ ऊहनव्यंजनार्थं तु पशुभावेऽपि पायसम् ॥ सद्रव्य अपयेत्तद्द्वन्द्वकृत्वेऽपि कर्मणि ॥ ८ ॥

पशुका यज्ञमें जितने अवदान क्रिये जायें, यदि पशु न होय वही चरनेही पायस करके पिंड देवे ॥ ७ ॥ पशुके न होनेपर ऊहन व्यंजनके अर्थ पायस चरको करे और अन्वष्टकाके कर्ममें वही पायसको द्रव्यसहित डीला पकावे ॥ ८ ॥

प्राधान्यं पिंडदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ गयादीं पिंडमात्रस्य दीयमानत्वं दर्शनात् ॥ ९ ॥ भोजनस्य प्रधानत्वं चर्दंत्यन्ये महर्षयः ॥ ब्राह्मणस्य परीक्षायां महायज्ञप्रदर्शनात् ॥ १० ॥ आमभाद्रविधानस्य विना पिंडं क्रियायि विं ॥ तदालम्बाप्यनध्यायविधानश्रवणात्पि ॥ ११ ॥ विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्भूति स्मितम् ॥ प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्सस्मादेष समुच्चयः ॥ १२ ॥

कोई २ पक्षित पिंडदानकोही प्रधान कहते हैं, कारण कि गयामादि तीर्थोंमें पिण्डही दिया जाता है ॥ ९ ॥ कोई २ पक्षि भोजनकोही प्रधान कहते हैं, कारण कि ब्राह्मणकी परीक्षाके नियममें शास्त्रमें अनेक यज्ञ देखे गये हैं ॥ १० ॥ आमभाद्रकी विधि का अनुष्ठान विना पिण्डसे होवा है कारण कि यदि ब्राह्मण मिळभी जाय वही भी अनध्यायकी विधि शास्त्रसे सुनी है ॥ ११ ॥ विद्वानोंके मतको संभ्रम करके मैंने यह स्थिर किया है कि दोनों कार्यही प्रधान कहे जाय जिससे यह समुच्चय अर्थात् भोजन और अष्ट ब्राह्मण यह दोनों ही होमे उचित हैं ॥ १२ ॥

प्राचीनाधीतिना कार्म्यं पित्र्येषु भोजनं पशोः ॥ दक्षिणोद्गासनामन्तं च चरोर्निषण्णादिकम् ॥ १३ ॥ सन्नपशुभावदानानां प्रधानार्थं नहीतरः ॥ प्रधानं ह्यर्धं चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥ १४ ॥

पितरोंके कर्ममें पशुका भोजन ( मंत्रोंसे छिड़कना ) उपसम्य होकर ( दक्षिण कंधेपर जोठ रखकर ) करे ॥ १३ ॥ अवदानोंका संनय भी और प्रधान होय वही दोनों प्रधान प्रधान कर्मके सिधे हैं अस्य नहीं हैं, और शेष कर्म प्रकृति वस्तुके समान होवा है ॥ १४ ॥

दीपमुद्गतमाभ्युपार्तं शादा धियेष्टका स्मृता ॥

पीलिन सजल प्रोक्त दूरस्तातोदको मरुः ॥ १५ ॥

ऊँचे स्थानका नाम दीप है, और इष्टका इंटोंका सादा टि, और जलसहित स्वामका नाम पीलिन है; और जहां दूरतक रोवनेसे जल निकलवा है उसे मरु ( मारवाड ) कहते हैं ॥ १५ ॥

द्वारे गवाक्षस्तम्भं फर्द्धमभिस्यस्तकोणवधेषु ॥

नेष्टं पास्तुद्वारं पिद्धमनामार्तमार्य्येषु ॥ १६ ॥

यश गमाविति प्रीर्हीश्वस्नश्चेति यवास्तया ॥

असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात्क्षिप्रदोमवत् ॥ १७ ॥

जिसमें गवाक्ष खिडकी हों और जिसकी दीवारें कर्दम गारेकी हों और कोनोंमें जिस के वेध हो, और जिसमें सज्जनोंका निवास नहो उस घरका वह दरवाजा अच्छा नहीं होता ॥ १६ ॥ “वशगमौ” इस मंत्रसे व्रीहि और “शंखश्च” इस मंत्रसे जौ का क्षिप्रहवनके समान होम करै, परन्तु जो मंत्रमें ‘असौ’ पद है वहां जो नामहो उसे कहै ॥ १७ ॥

साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ॥ अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्कौ विधी-  
यते ॥ १८ ॥ कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेद्वर्षमंजलौ ॥ कांस्यापिधानं कांस्यस्थं  
- मधुपर्कं समर्पयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनत्रिंशत्तमः खण्डः ॥ २९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः समाप्तः ॥ ३ ॥

समाप्त्यं कात्यायनसंहिता ॥ ९ ॥

अष्टत, फल, जल, दही यह जिसमें हों वह अर्घ होताहै, और जिसमें दही दूध हों उसे मधुपर्क कहतेहैं ॥ १८ ॥ जिसमें अपने पूजनीयको अर्घ देना हो उसकी अंजुलीमें कासीके पात्रसे अर्घ देना उचित है, और मधुपर्कको कांसीके पात्रसे ढककर कासीके पात्रमें रखकर दे ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनत्रिंशः खण्डः समाप्तः ॥ २९ ॥

( कर्मप्रदीपके परिशिष्ट वा तीसरा प्रपाठ समाप्त हुआ )

इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥ ९ ॥





॥ श्रीं ॥

## अथ बृहस्पतिस्मृतिः १०

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारम्भः ॥ इहा ऋगुशत राज्ञी समाप्त  
वरदक्षिणम् ॥ भगवतं गुरुं भेष्ट पर्यपृच्छद्बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ भगवत्केन दानेन  
सर्वत सुखमेघते ॥ यदक्षय महार्थं च तमे ब्रूहि महत्तम ॥ २ ॥ एषामिद्रेण  
पुष्टोऽसी देवदेवपुरोहितः ॥ वावस्पतिर्महामाज्ञो बृहस्पतिरुवाच ॥ ३ ॥

ववराज इत्यने जिनकी मष्ट इधिणा हुई है ऐसे सौ यज्ञोंको समाप्त करके भगवान् वच  
मगुरु बृहस्पतिजीसे पूछा ॥ १ ॥ कि हे भगवान् ! किस २ वस्तुके दान करनेसे सर्वेश  
सुखकी वृद्धि होतीहै और किस वस्तुके दानका अक्षय और महान्फल है वच दानकोभी हे  
तपोधन ! सुनसे कहिये ॥ २ ॥ इत्यसे इस प्रकार पूछेजाकर ववराज पुरोहित पवित्रभेष्ट,  
वाणीके पवि बृहस्पति बोले कि ॥ ३ ॥

सुवर्णदानं भूदान गोदान चैव वासव ॥

एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापे प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

इत्यन्त्र ! सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदानका करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त  
जानाहै ॥ ४ ॥

सुवर्णं रजत वस्त्र मणि रत्न च वासव ॥ सर्वमेव भवेत्तु वसुधां य प्रप  
च्छति ॥ ५ ॥ फाल्गुणां महीं दत्त्वा सर्वाजां सस्यमालिनीम् ॥ यावत्सूर्यकृता  
श्लोकास्तावत्सर्वे महीयते ॥ ६ ॥ यत्किञ्चिदुच्यते पाप पुरुषो वृत्तिकर्षितः ॥  
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्धयति ॥ ७ ॥ दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दण्डा-  
न्निवर्त्तनम् ॥ दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥ सप्त गोस  
हस्रं तु यत्र तिष्ठस्यतद्रितम् ॥ बालवत्साप्सुतानां तत्रोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥  
पिपाय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ॥ यावमही तिष्ठति  
सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनन्तम् ॥ १० ॥ यथा धीजानि रोहति प्रकी  
र्णानि महीतले ॥ एषं कामा प्ररोहति भूमिदानममर्जिता ॥ ११ ॥ यथाप्सु  
पतितं शक्र तैलविंदुः प्रसर्पति ॥ एषं भूम्यां कृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति  
॥ १२ ॥ अन्नदां सुखिना निर्व्यं घट्टदधीय रूपयान् ॥ म नरः सर्वदी भूप या  
ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥ यथा गोर्मरतं वासं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥ स्यस्यं  
दत्ता सहस्राक्षं भूमिभरति भूमिदम् ॥ १४ ॥ शंखं भद्रामनं छत्रं चरत्पापरया  
रंजा ॥ भूमिदानस्य पुण्यानि पण्डं स्वर्गं पुरंदर ॥ १५ ॥ आदित्या परुणो

वेद्विर्ब्रह्मा सोमो हुताशिनः ॥ शूलपाणिश्च भगवानभिनंदंति भूमिदम् ॥ १६ ॥  
आस्फोटयन्ति पितरः प्रवल्गन्ति पितामहाः ॥ भूमिदाता कुले जातः स च त्राता  
भविष्यान्ते ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान कियाहै मानों उसने सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, मणि, रत्न इन सबका दान करलिया ॥ ५ ॥ हलसे जुती वीजयुक्त और जिसमें खेत शोभायमान हो ऐसी पृथ्वीके दान करनेवाला मनुष्य जबतक सूर्यका प्रकाश त्रिलोकी में रहैगा तबतक वह स्वर्गमें निवास करैगा ॥ ६ ॥ जो मनुष्य आजीविकासे दुःखी होकर कोईसा पाप करता है वह गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ दश हाथ के दंडसे तीस दंडभर लंबी और चौड़ी पृथ्वीको गोचर्म कहाहै, यह महान् फलकी देनेवाली होतीहै ॥ ८ ॥ जहां हजार गौ और बैल आनंदसहित स्थित हों उन गौओंमें जो प्रसूता हो उसके बछिया बल्लेभी ठहरें, उसे गोचर्म कहते हैं ॥ ९ ॥ जो इस पृथ्वीको गुणवान्, तपस्वी, जितेन्द्रिय, ऐसे ब्राह्मणको दान करताहै, उस पुरुषपर यह ससागरा पृथ्वी जबतक स्थित रहैगी ऐसे ब्राह्मणको दानका अनंत फल तबतक भोग करना होगा ॥ १० ॥ पृथ्वीके तलपर बोंयहुए बीज जिसभांति जम आतेहैं, उसी प्रकार पृथ्वी दानके द्वारा संचय कियेहुए सम्पूर्ण काम ( इच्छा ) जमतेहैं ॥ ११ ॥ हेइन्द्र ! जिसभांति जलमें पडतेही तेलकी बूंद उसी समय फैल जातीहै, उसीभांति भूमि दान खेत २ में जम जाताहै ॥ १२ ॥ अन्नका दान करनेवाला मनुष्य सर्वदा सुखी रहताहै, वस्त्रका दान करनेवाला रूपवान् होताहै और जो मनुष्य पृथ्वी दान करताहै वह सर्वदा राजा होता है ॥ १३ ॥ जिसभांति दूधवाली गौ दूध को छोडकर बच्चेका पालन करतीहै उसी प्रकारसे हेइन्द्र ! अपने हाथसे दीहुई पृथ्वीभी अपने दाताको पुष्ट करतीहै ॥ १४ ॥ हेइन्द्र ! पृथ्वी दान करनेवालेको शंख, भद्रासन, ( राजगद्दी ) छत्र, चमर, श्रेष्ठहाथी यह पृथ्वीदानके पुण्यसे प्राप्त होते हैं और फल स्वर्ग है ॥ १५ ॥ सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, होमकी अग्नि, शिव और विष्णु यह पृथ्वीके देनेवालेकी प्रशंसा करतेहैं ॥ १६ ॥ पितर अपने हाथोंसे अपनी भुजाओंको मझोंकी समान बजातेहैं, और पितामह भली भांति आनंदित हो कहतेहैं कि हमारे कुलमें पृथ्वीका देनेवाला उत्पन्न हुआहै वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ १७ ॥

त्रीण्यादुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥

तारयन्तीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥

गोदान, भूमिदान और विद्यादान इन तीन दानोंकोही श्रेष्ठ कहाहै, यह तीनोंदान दाताको क्रमानुसार दुहना, बोना, और जप करना, इनमें तार देतेहैं ॥ १८ ॥

प्रावृता वस्त्रदा यांति नग्ना यांति त्ववस्त्रदाः ॥

वृता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यन्नदाः ॥ १९ ॥

वस्त्रका दाता वस्त्रोंसे आच्छादित होकर ( परलोकमें जाताहै ) जिसने वस्त्रदान नहीं किये वह मनुष्य नगा रहताहै, अन्नका देनेवाला वृम होताहै, और जिसने अन्नदान नहीं किया वह क्षुधित होकर जाताहै ॥ १९ ॥

कांक्षति पितरं सर्वे नरकाद्गपभीरव ॥ गणां यास्पति य पुत्र स नस्त्राता भ  
विष्यति ॥ २० ॥ पृष्टव्या घृह्य पुत्रा यद्येकोऽपि गणां प्रजेत् ॥ यजेत वाक्च  
मेधेन नीलं वा पृथमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥

नरकस भयभीत हुए पितर सर्वदा यह अभिजापा करते रहते हैं कि जो पुत्र गणामें जा-  
पगा यही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ २० ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छाकरै, यद्यपि  
उनमेंसे एक ही अत्रश्व गयाको जाय वा एक अश्वमेव यज्ञको करै वा नीलं वैरसे वृषो-  
त्सर्ग करै ॥ २१ ॥

लोहितो यस्तु षण्णेन पुच्छाग्ने यस्तु पांडुरः ॥ श्वेत सुरुविषाणाम्नां स नीला  
नृष उच्यते ॥ २२ ॥ नीलः पांडुरलांगूलस्तुपमुदरते तु यः ॥ पष्टिर्षपुद्वस्त्रा  
णि पितरस्तेन तर्पिता ॥ २३ ॥ यस्य शृगगतं पंकं कलाचिद्यति शोभतम् ॥  
पितरस्तस्य श्वाभति सोमलोक महाभुतिम् ॥ २४ ॥ पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृग  
स्य नहुषस्य च ॥ अन्येषां च नरेन्द्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥ २५ ॥

जिसका रंग लाल वर्ण हो, और पूँछका अग्रभाग पीला हो, दोनों सींग सफ़र हों वसे नील  
बैल कहते हैं ॥ २२ ॥ जिसका रंग नीला हो, पूँछ पीली हो, और जो दुनोंको उखाड़के  
पसे बैलके धान करनेसे पितर साठ हजार वर्षतक दत्त होते हैं ॥ २३ ॥ जिस बैलके सीं  
गपर मसीबूँछसे उखाड़ा हुआ पंरु ( कीचड़ ) स्थित रहै ऐसे बैलके धान करनेवालेके पितर  
महासमान अन्नमाके ओकको भोगते हैं ॥ २४ ॥ पृष्ठ, पदु, विहीप, नृग, नहुष, और अन्यास्य  
राजाओंमें फिरकर मरनेके उपरान्त अन्यही राजा होता है ॥ २५ ॥

बहुभिर्षुषा वृत्ता राजभिः सगरादिभि ॥ यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य  
तथा फलम् ॥ २६ ॥ यस्तु ब्रह्मज्ञः स्त्रीभो वा यस्तु वै पितृपातकः ॥ गर्वा  
शतसहस्राणां हता भवति दुष्कृती ॥ २७ ॥

बहुतसे सगर आदि राजाओंमें पृष्ठीको भोगा जिस २ की जैसी २ पृष्ठीद्वार उस २ को  
बैसाही फल हुआ ॥ २६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मज्ञा करनेवाला और स्त्रीकी हत्या करनेवाला है  
यह पापी ज्ञान गौर्भो को मारनेवाला होता है ॥ २७ ॥

स्यदसां परवृत्तां वा यो हरेत षसुंपराम् ॥ श्वविहायां कुमिसूखा पितृभिः सह  
पश्यते ॥ २८ ॥ आश्लेषा शानुमता च तमेव नरकं प्रजेत् ॥ भूमिदो भूमिह  
र्ता च नापर पुण्यपापयो ॥ ऊर्ध्व चाधोऽशतिष्ठत यावदाभूतसङ्गमम् ॥ २९ ॥

जो मनुष्य अपनी हीदुई, अथवा दूसरेकी हीदुई पृष्ठीको छीनलेगा है वह छेदकी विद्यामें  
कोडा होकर अपने पितरों सहित पकया जाता है ॥ २८ ॥ मारनेवाला और अनुमति देने-  
वाला यह दोनों पकड़ी मरकमें जाते हैं, पृष्ठीका दाया और पृष्ठीका इरनेवाला अपने २  
पुण्य वा पापसे क्रमानुसार स्वर्ग और मरकमें प्रथमपर्यन्त स्थित होते हैं ॥ २९ ॥

१ 'लोहितो यस्तु षण्णेन पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः सुरुविषाणाम्नां स नीलो इव उच्यते ॥  
जिसका रंग लाल हो, पूँछ और पाँजवर्ण हों और सुरु तथा श्वेत सींग दोनोंके हों उहेही नील-  
द्वय ( बैल ) कहते हैं । ऐसा मनुष्यनरका जात है ।

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्विष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥

लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च मही च दद्यात् ॥ ३० ॥

अग्नि का प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी विष्णु की पुत्री है और गौ सूर्य की पुत्री है, जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, मही इनका दान करता है उसने मानों तीनों लोक दान करलिये ॥ ३० ॥

पडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥

स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यने छयासी ( ८६ ) हजार योजन पृथ्वी स्वयं दान की है वह पृथ्वी उसके सब मनोरथ पूर्ण करती है ॥ ३१ ॥

भूमि यः प्रतिगृह्णाति भूमि यश्च प्रयच्छति ॥

उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियत स्वर्गगामिनौ ॥ ३२ ॥

जो पृथ्वी का दान लेता है, और जो पृथ्वी को देता है वह दोनों पुण्यात्मा निरन्तर स्वर्ग में जाते हैं ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥

एक ही जन्म में सम्पूर्ण दानों का फल मिलता है और सात जन्म तक सुवर्ण, पृथ्वी, गौरी इनका फल मिलता है ॥ ३३ ॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भतग्रामं चतुर्विधम् ॥

तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य "मैं सबका आत्मा हूँ" यह जानकर, अंडज, स्वदज, उद्भिज्ज, जरायुज, इन चार प्रकारके भूतोंको दुःख नहीं देता उस जीवात्माको देहसे पृथक् होनेपर भी कभी भय नहीं होता ॥ ३४ ॥

अन्यायेन हता भूमिर्नैरैरपहारिता ॥ हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमं कुलम् ॥ ३५ ॥

हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोवृतः ॥ स बद्धो वारुणैः पार्श्वैस्तिर्यग्गोनिषु जायते ॥ ३६ ॥ असुभिः पतितैस्तेषां दानानामवकीर्तनम् ॥

ब्राह्मणस्य हते क्षेत्रे हंति त्रिपुरुपं कुलम् ॥ ३७ ॥ वापीकूपसहस्रेण अश्वमे-

धशतेन च ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ गाप्रेकां

स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमगुलम् ॥ हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥

हुतं दत्तं तपोधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंचितम् ॥ अर्धागुलस्य सीमायां

हरणेन प्रजश्यति ॥ ४० ॥ गोवीथी ग्रामरथ्यां च श्मशानं गोपेतं तथा ॥

संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४१ ॥

जिन मनुष्योंने अन्याय करके पृथ्वी छीनली है, या भूमिके छीननेकी जिमने अनुमति दी है, वह छीननेवाले और अनुमति देनेवाले दोनोंही अपने सात कुलोंको नष्ट करते हैं ॥ ३५ ॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य भूमिको छीनत

व नम होत है ॥ ३६ ॥ कारण कि, उनके भौंछू गिरनेसे सप दान भी नष्ट होजाते हैं ।  
 ब्राह्मणके खेतकी हरण करनेवाले मनुष्यकी धीन पीड़ी नष्ट होजाती हैं ॥ ३७ ॥ पूष्यकी  
 हरनेवाला ह्वार बावड़ी और कुमोंको बनाकर, सौ अश्वमेध पश करके एक करोड़ गौके  
 दान करनेसेभी मुक्त नहीं होता ॥ ३८ ॥ एक गौ, एक अश्वरथ, और अर्ध अंगुल पूष्यी  
 इनका हरनेवाला मनुष्य मछलतक मरफमें जाता है ॥ ३९ ॥ हवन, दान, तपस्या, पढ़ना,  
 और धर्मसे इकट्ठा कियाहुमा वह सभी बाध अंगुलकी सीमा हरनेसे नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥  
 गौभोंका मार्ग, प्रामकी गली, नमस्मान और गोपिथ ( गुप्त रक्त्ताहुमा ) इनके छोड़नेसे  
 मनुष्य मछलतक मरफमें जाता है ॥ ४१ ॥

ऊपरे निर्जले स्याने प्रास्तं सस्यं विवर्जयेत् ॥

जलाधारस्य कर्तव्यो घ्यासस्य वचन यथा ॥ ४२ ॥

ऊपर और जलहीन पूष्यीमें खेतको न बोवै, और जलधारी पूष्यीमें घ्यासजीके वचनके  
 अनुसार खेत करना उचित है ॥ ४२ ॥

पच क.पानृत इति दश इति गधानृतम् ॥ शतमश्वानृत इति सहस्र पुरुषानृ  
 तम् ॥ ४३ ॥ इति जातानजाताश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृत इति  
 मास्म भूम्यनृतं वदी ॥ ४४ ॥

कन्याके सन्वन्धमें शूट बोलनेसे पाँचको, गौके सन्वन्धमें शूट बोलनेसे दसको घोड़ेके,  
 भिमिच शूट बोलनेसे सौको और पुरुषके भिमिच शूट बोलनेमें हजारको मारनेवाला होता है  
 ॥ ४३ ॥ सुवर्णके सन्वन्धमें जो शूट बोलता है, उसके कुलमें आ उत्पन्न हैं और जो उत्पन्न  
 होगा वह उन सबको नष्ट करवेगा; और पूष्यीके भिमिच शूट बोलनेमें सबका मारता है  
 भवपय पूष्यीके विषयमें शूट बोलना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥

ब्रह्मस्वे न रतिं क्षुर्वाव्याणैः कठगतेरपि ॥ अनौपधममैपज्यं विपमेतद्ब्रह्मा  
 ह्म ॥ ४५ ॥ न विप विपमित्याहुर्ब्रह्मस्यं विपमुच्यते ॥ विपमेकाकिनं इति  
 ब्रह्मस्व पुत्रपीत्रकम् ॥ ४६ ॥ लोहक्षुर्वाश्मक्षुर्णं च विप च जरयेन्नरः ॥ ४७ ॥  
 ब्रह्मस्यं त्रिषु लोकेषु कं पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ४८ ॥

चाँई माणसी कंठतक भार्जाय परन्तु ब्राह्मणके धनकी इच्छा कभी न करे अर्थात् उसको  
 देनेकी इच्छा न करे, ब्राह्मणका धन इच्छाहू विपकी समान है इसकी न विक्रिसा है और  
 न औपधी है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमानोंका कथन है कि विप विप नहीं है परन्तु ब्राह्मणका धन  
 ही विप है कारणकि विपको त्याकर तो एकही मनुष्य मरता है परन्तु ब्राह्मणके धनको त्याकर  
 वेद पोदेतक मरतक होजाते हैं ॥ ४६ ॥ लोहेका क्षुर्ण परस्परका क्षुर्ण और विप करावित  
 इनको तो मनुष्य पड़वार पचासी सकता है परन्तु त्रिजोकीके पीचमें ऐसा कोई पुरुषमी सा  
 मध्यवाला नहीं जोकि ब्राह्मणके धनको पचा सके ॥ ४७ ॥

मन्युमहरणा विमा राजानं शस्त्रपाणयः ॥ शस्त्रमेवकिन इति ब्रह्ममन्यु  
 फुन्त्रयम् ॥ ४८ ॥ मन्युमहरणा विमाश्चक्रमहरणो हरिः ॥ यत्रासी  
 प्रसरा म'पुस्तस्मादिर्म न कोपयेत् ॥ ४९ ॥ अमिदग्पाः प्ररोहति सूर्यदग्पास्त

थैव च ॥ मनुद्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ॥ ५० ॥ तेजसाग्निश्च दहति  
सूर्यो दहति रश्मिना ॥ राजा दहति दंडेन विप्रो दहति मनुयुना ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणोंका क्रोध अस्त्र है, राजाओंके शस्त्र खड्ग इत्यादि हैं, इन दोनोंमें खड्ग तौ एकही मनुष्यको मारता है और ब्राह्मणका क्रोध तीनों कुलोंको नष्ट कर देता है ॥ ४८ ॥ क्रोध ब्राह्मणोंका प्रहरण है, चक्र विष्णुका प्रहरण है, चक्रसे क्रोध बड़ा तीक्ष्ण है, इस कारण ब्राह्मणको क्रोध न उत्पन्न करावै ॥ ४९ ॥ (वृक्षादि) कदाचित् अग्निसे दग्ध होकर या सूर्यकी किरणोंसे भस्म होकर जम आतेहैं, परन्तु ब्राह्मणोंके क्रोधसे दग्धहुए ( मनुष्यों ) का अंकुरतकभी नहीं जमता ॥ ५० ॥ अग्नि अपने तेजसे दग्ध करतेहैं, और सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके द्वारा दग्ध करतेहैं, राजा दंडसे दग्ध करतेहैं और ब्राह्मण केवल अपने क्रोध के द्वाराही दग्ध करते हैं ॥ ५१ ॥

ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥ तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मवि-  
नाशनम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥ गुरुमित्रहिरण्यं  
च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥  
प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥ ५४ ॥ ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साध-  
नानि बलानि च ॥ संग्रामे तानि लीयंते सिकतासु यथोदकम् ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणके धनसे जो सुख होताहै, और देवताके धनसे जो रति होती है, वह धन कुल और आत्माको नष्ट करदेता है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणका धन हरण करनेसे ब्रह्महत्या लगतीहै, दरिद्र और गुरुका धन हरण करनेसे, मित्रका धन हरण करनेसे और सुवर्णके चुरानेसे स्वर्गमें वास करनेवालाभी दुःख भोगताहै ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणके धन हरण करनेमें जो दोष है, वह किसी भाति नहीं मिटता, उसको जो किसी भांति छिपाभी ले तौभी वह प्रगट होजाताहै ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणके धनसे पुष्ट हुए साधन ( कारण ) और सेना यह संग्राम में इस भांति नष्ट हो जाते हैं, जिसभांति रेतमें जल लीन होजाताहै ॥ ५५ ॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥ संतुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय  
च ॥ ५६ ॥ वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ ईदृशाय सुरश्रेष्ठ  
यदत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५७ ॥

हेइन्द्र ! कुलवान् और दरिद्री वेदपाठी ब्राह्मणको तथा संतोषी, विनयी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हितकारीभी हो ॥ ५६ ॥ जो वेदका अभ्यास करनेवाला हो, तपस्या करताहो, और जितने इन्द्रियोंको रोक लिया है हेसुरश्रेष्ठ ! ऐसे मनुष्यको जो कुछ दान किया जायगा वह अक्षय होगा ॥ ५७ ॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्येत्पात्रदौर्वल्यात्तच्च पात्रं  
विनश्यति ॥ ५८ ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं मही तिलान् ॥ अविद्या-  
न्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ५९ ॥

जिस भांति कच्चे पात्रमें रक्खा हुआ दूध, दही, घी, सहत यह पात्रकी दुर्बलताके कारण नष्ट होजातेहैं और वह पात्रभी नष्ट होजाताहै ॥ ५८ ॥ उसी भांति गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी तिल, इनको जो मूर्ख

यस्य वैष गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रत ॥

बहुभुताप दातव्य नास्ति मूर्खे व्यतिक्रम ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यके घरमें मूर्ख निवास करताहै और दूरपर बिद्वान्का निवास है, तो पंडित मनुष्यको दान देनेके अर्थ मूर्खके उच्छेदन करनेमें दोष नहीं होता, अर्थात् वह मूर्खको दान न देकर पंडितकोही दान दे ॥ ६० ॥

कल तारयते धीरं सप्तसप्त च षासव ॥ ६१ ॥ यस्तद्भाग नवं दुर्याधुराण चापि

स्नानयेत् ॥ स सर्वं कुलमुद्भूय स्वर्गलोके महीपते ॥ ६२ ॥ वापीकूपतडा

गानि उद्यानोपवनानि च ॥ पुनः सस्कारकर्ता च लभते मौक्तिक फटम् ॥ ६३ ॥

हे इन्द्र ! वह पंडितको देकर अपने इक्ष्वाकु कुञ्जका उद्धार करताहै ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य नये छायाणको बनावाहै या प्राचीनको सुदवावताहै वह मनुष्य सम्पूर्ण कुञ्जका उद्धार कर स्वर्ग लोकमें पूजित होताहै ॥ ६२ ॥ ( प्राचीन ) वावही, कूप, तडाग, बाग, और उपवन ( छोटाबाग ) इनको जो मनुष्य फिरसे बनवाताहै, उस मनुष्यको नये बनवानेका फल मिलताहै ॥ ६३ ॥

निदाणकाले पानीयं यस्य तिष्ठति षासव ॥ स दुर्गविवम कृत्स्नं न कदाचिदेषा

मुपात् ॥ ६४ ॥ एकाह तु स्थित तोय पूयिष्वा राजसत्तम ॥ कुलानि तारये

सस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥

हे इन्द्र ! जिसके यहाँ भीष्म कालमें भी जल रहताहै वह मनुष्य किसी दुर्गजनक दुर्क-स्थाको नहीं भागता ॥ ६४ ॥ हे राजसत्तम ! जिसकी खाशीदुई पृथ्वीमें एक दिनभी जल स्थित रहताहै वह सब उसके अगले भी साठ कुञ्जोंमें तारताहै ॥ ६५ ॥

वीपालोकमदानेन षण्डुष्माम्भ भवेन्नर ॥

भैक्षणीयमदानेन स्मृतिं मर्धा च विदति ॥ ६६ ॥

वीपकके दान करनेपर मनुष्यका शरीर उत्तम हाताहै और जलके दान करनेसे स्मरण और बुद्धिमत् हाताहै ॥ ६६ ॥

कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्षिने ॥

ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

बहुतसे विहित कर्मके बरमेपरभी यदि ब्राह्मण मनुष्य मिष्ठुकको और विशेष करके ब्राह्मणको अथ दान करताहै वह मनुष्य पापसे छिन्न नहीं होता ॥ ६७ ॥

भूमिर्गायस्तथा दाराः प्रतद्वा ह्यियते यदा ॥

न चाषेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मपातकम् ॥ ६८ ॥

जिस मनुष्यने ब्रह्मरक्षे पृथ्वी, गौ और खी इनको दरण कियाहै पर मजदरगाय कदावाहै ॥ ६८ ॥

निषेदितश्च राजा वै ब्राह्मणीर्मन्युदीविते ॥

न निवारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मपातकम् ॥ ६९ ॥

क्रोधसे दीपितहुए ब्राह्मणोंकी प्रार्थनासे जो राजा उस हरेनेवालेको निषेध नहीं करता उस राजाको ब्रह्मवाती कहतेहैं ॥ ६९ ॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥

मोहाच्चरति विभ्रं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य उपस्थितहुए, विवाह, यज्ञ, इनमें मोहवश हो विभ्रन करताहै वह मरनेके उपरान्त कीड़ेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ७० ॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवश्रक्षणात् ॥

रूपमारोग्यभैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥

दानद्वारा धन सफल होताहै, जीवकी रक्षा करनेसे आयुकी वृद्धि होतीहै, जो मनुष्य हिंसा नहीं करता वह ऐश्वर्य और आरोग्यरूप अहिंसाके फलको भोगताहै ॥ ७१ ॥

फलमूलाशनात्पूजा स्वर्गसत्येन लभ्यते ॥

प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वं च सुखमश्नुते ॥ ७२ ॥

नियमी होकर जो मनुष्य फल मूलका भोजन करताहै वह निश्चयही स्वर्गको प्राप्त होताहै और मरनेके निमित्त तीर्थआदिपर बैठनेसे राज्य और सम्पूर्ण सुखोंको भोगताहै ॥ ७२ ॥

गवाह्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥

स्त्रियस्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ ७३ ॥

हेइन्द्र ! जो मनुष्य नन्त्रका उपदेश लेताहै वह गौओंसे युक्त होताहै, और जो मनुष्य तृणोंको खाताहै वह स्वर्गमें जाताहै, तीन कालमें स्नान करनेवाला बहुत स्त्रीवाला होताहै; और वायुको पीनेवाला यज्ञके फलको पाताहै ॥ ७३ ॥

नित्यस्नायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्दिजः ॥

नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान करताहै, और जो दोनो संध्याओंमें जपकरताहै, वह सूर्यरूप होता है, और अनशन व्रत करताहै उसे नवीन राज्य और सर्वदा स्वर्गमें निवास प्राप्त हाताहै ॥ ७४ ॥

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥

रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विदति ॥ ७५ ॥

अग्निमें प्रवेश करनेवाला ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै और जो अपनी जिह्वाको वशमें रखताहै वह पशु और पुत्रोंको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ॥

सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करता है वह बहुत कालतक स्वर्गमें निवास करता है, और जो मनुष्य निरन्तर एकही शय्यापर जयन करताहै अर्थात् एकही स्त्रीके साथ भोग करताहै, उसको अभिलषित गति प्राप्त होतीहै ॥ ७६ ॥



धीरासन धीरश्यां धीरस्यानमुपाभित ॥

अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्पुस्सर्वकामागमास्तया ॥ ७७ ॥ -

जो मनुष्य धीरभासन, धीरश्या, और धीरस्यानमें निश्चय रहता है वतक सखलोक और सम्पूर्णकाम अक्षय्य होजाते हैं ॥ ७७ ॥

उपवास च दीक्षां च अभिवेक च धासय ॥

कृत्वा द्वादशवर्षाणि धीरस्यानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥

हे बासव ! जो मनुष्य द्वादशवर्षक उपवास, दीक्षा, और अभिवेक इनको करती है वह स्वर्गमें उत्तम होता है ॥ ७८ ॥

अधीत्य स्रषयेदान्वै सधो दुःस्वात्प्रमुच्यते ॥

पावनं चरते धर्म स्वर्गलोके महीयते ॥ ७९ ॥

सम्पूर्ण वेदोंका पढ़नेबाछा अधीनही दुःस्वोसे छूटजाता है, और पवित्र धर्मका करनेबाछा स्वर्गलोकमें महीयत होता है ॥ ७९ ॥

वृहस्पतिमत पुण्यं ये पृठति द्विजातयः ॥

यत्पारि तेषां पठते आयुर्विधा यशो वल्लम् ॥ ८० ॥

इति भीष्मवृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण वृहस्पतिके पवित्र मतको पढ़ते हैं, वनही आयु, विद्या, यश, वल इन चारोंका पृथि होता है ॥ ८० ॥

इति वृहस्पतिस्मृतौ मातृटीका संक्षेपः ॥ १ ॥



॥ श्रीः ॥

## पाराशरस्मृतिः ११.

भाषाटीकासमेता ।



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पाराशरस्मृतिप्रारंभः ॥ अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुव-  
नालये ॥ व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥ मानुषाणां हितं धर्म-  
वर्तमाने कलौ युगे ॥ शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

एकसमय पूर्वकालमें हिमाचलपर्वतके ऊपर देवदारोके वृक्षोंसे अलंकृत वनके आश्रममें श्रीव्यासजी महाराज एकाग्रचित्तसे बैठे थे उससमय ऋषियोंने उनसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ कि-  
हे सत्यवतीनंदन! कलियुगके समयमें जो धर्म, शौच, तथा आचार, मनुष्यों के हितका करने-  
वाला है वह हमसे विधिपूर्वक कहिये ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः श्रुति-  
स्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥ न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्म वदाम्प्रहम् ॥ अस्मत्पितै-  
र्व प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त प्रञ्चलित अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी श्रुति और स्मृति शास्त्रमें पंडित  
श्रीव्यासजी ऋषियोंके ऐसे वचन सुनकर बोले ॥ ३ ॥ कि मैं तो सब तत्त्वोंको नहीं जानता  
किस प्रकार धर्मको कहूँ, इसकारण मेरे पिता (पराशर) से पूछना उचित है, ऐसा उत्तर  
व्यासजीने दिया ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकांक्षिणः ॥ ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरि-  
काश्रमम् ॥ ५ ॥ नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम् ॥ नदीप्रसवणोपेतं  
पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥ मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायनावृतम् ॥ यक्षगंध-  
र्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ॥  
सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा व्यास-  
स्तु ऋषिभिः सह ॥ प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपृजयत् ॥ ९ ॥

तब धर्मके तत्त्वकी अभिलाषा करनेवाले वह सम्पूर्ण ऋषि यह सुनकर श्रीव्यासजीको आगे  
कर वदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ यह आश्रम अनेक भाति पुष्पोंकी लताओंसे पूर्ण फल पुष्पों-  
से शोभायमान नदी और झरनोंसे विभूषित पवित्र तीर्थोंसे शोभायमान ॥ ६ ॥ मृग और  
पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान, देवमंदिरोंसे आवृत, यक्ष और गंधर्वोंके नृत्यगानसे शोभायमा-  
न और सिद्धगणों से अलंकृत था ॥ ७ ॥ उस आश्रममें शक्तिऋषिके पुत्र मुनिवर पराशरजी  
प्रधान २ मुनियों से युक्त होकर ऋषियोंकी सभामें सुखपूर्वक बैठे थे इस समय में ॥ ८ ॥  
व्यासजीने ऋषियोंके साथ जाकर हाथ जोड़कर उनकी प्रदक्षिणाकर प्रणामपूर्वक स्तुति करके  
पूजन किया ॥ ९ ॥

अथ सतुष्टद्वयं पराशरमहामुनिः ॥

आह सुस्वागतं बृहद्व्यासीनो मुनिपुंगव ॥ १० ॥

इसके उपरान्त महामुनि पराशरजीने सतुष्ट मन होकर पूछा कि तुम मनी प्रकार कुशल-  
पूछ आये कुशल कहो ॥ १० ॥

कुशल सम्पगित्युक्त्वा व्यासं पुरुञ्छत्यनतरम् ॥ यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहा  
द्वा भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ धर्मं कथय मे तात अनुब्राह्मो ब्रह्म तव ॥ श्रुता मे  
मानवा धर्मा वासिष्ठा काश्यपास्तथा ॥ १२ ॥ गार्गीया गीतमीपाथ तथा  
शौशनसा स्मृता ॥ अत्रेर्विष्णोश्च सवर्ताक्षदादगिरसस्तथा ॥ १३ ॥ शाता  
तपाश्च हारीताद्याङ्गवन्क्यात्तथैव च ॥ आपस्तम्बकृता धर्मा शस्त्रस्य लिखित  
स्य च ॥ १४ ॥ कात्यायनकृताभैष तथा प्राथेतसान्मुन ॥ श्रुता ह्यते भवन्मो  
क्ता श्रौतार्या मे न विस्मृता ॥ १५ ॥ अस्मि मन्वतरे धर्मा कृतश्रेताविके  
युगे ॥ सर्वे धर्मा कृते जाता सव नष्टा कश्चि युगे ॥ १६ ॥ चातुर्वर्ष्यसमा  
चारं किञ्चित्साधारणं वद ॥ चतुर्णांमपि वर्णानां कर्तव्य धर्मकोविदे ॥ १७ ॥  
बृहदि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्म स्थूल च विस्तरात् ॥

कुशलप्रश्नके उपरान्त सवर्मांति कुशल है ऐसा कहकर ब्राह्मजीने पूछा कि हे भक्तव-  
त्सल ! आपके ऊपर मेरी कैसी भक्ति है यदि आप इस बातको जानते हैं भववा मेरे ऊपर  
यदि आपका स्नेह है ॥ ११ ॥ तो हे पिता ! मुझसे स्नेहपूर्वक धर्मका वर्णन कीजिये, कारण  
कि मैं आपकी कृपाका पात्र हूँ, इस कारण मुझपर भक्तवर्षी कृपा करनी चाहिये, कारण  
कि मैंने स्थापयुक्तमनु, बशिष्ठ काश्यप ॥ १२ ॥ तथा गंगाचार्य, गीतम, गुह्यचार्य, अत्रि,  
तमा विष्णुश्रुति, सवर्त, दत्त अगिरा ॥ १३ ॥ शातातप, हारीत, पाप्तरस्य, आपस्तम्ब,  
तथा द्यौत, लिखित ॥ १४ ॥ कात्यायन, वास्मीकि इत्यादि ऋषिओंके कहेहुए धर्मशास्त्र  
और आपके कहेहुए विशेष धर्म भक्षण किये हैं और वह मुझे स्मरणभी हैं ॥ १५ ॥ परन्तु इस  
मन्वन्तरके विषय कृतयुग और त्रेतादि युगोंके का २ धर्म थे उन २ युगोंमें दक्षिणी विशेषता  
होनेके कारण यह धर्म स्थित रहे और अब कालयुगमें दक्षिणी ज्ञानि दोगई है इस कारण  
यह सम्पूर्ण धर्म छेप दोगये ॥ १६ ॥ इस कारण चारोंवर्णोंका पृथक् २ मुख्य धर्म तथा  
चारोंवर्णोंका मिश्रित धर्म वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ हे धर्मस्वरूपके जाननेवाले ! चारोंवर्णोंमें जो  
धर्म धर्मके जाननेवालोंका करने योग्य सूक्ष्म और स्थूल है उनका वर्णन विस्तारसहित कीजिये

व्यासवाक्यावसानेपु मुनिमुख्यं पराशर ॥ १८ ॥

धर्मस्य निर्वयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥

व्यासजीके समा के नेपर मुनिभक्त पराशरजी ॥ १८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों धर्मोंका  
निरव्य विस्तारसहित कहनेवाले ॥

पक्ष्यमाणधर्मतरुमद्गणाय भोजसाधधानता विधत्ते ।

शृणु पुत्र मयक्षयामि शृण्वन्तु मुनयस्तथा ॥ १९ ॥

इत धर्मोंको सुननेके लिये श्रोताओंको सावधान होना उचित है । इसवास्ते प्रथमतः कहतेहैं कि, हे पुत्र ! तथा हे मुनियों ! श्रवण करो ॥ १९ ॥

कल्पे कल्पे क्षये सत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥

श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥

कल्प २ में प्रलय होनेपर भी ब्रह्म, विष्णु, और महेश यह तीनों विद्यमान रहतेहैं ॥२०॥ और वह सर्वदा श्रुति, स्मृति और सदाचारका निर्णय करतेहैं

न कश्चिद्देवकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ॥ २१ ॥

तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरेऽतरे ॥

कोई वेदका कर्ता नहींहै कल्पकी आदिमें पूर्णको सगान वेदको स्मरणकर ब्रह्माजी चतुर्मुखके द्वारा प्रकाशित करतेहैं ॥ २१ ॥ और जो मनु कल्प २ में हांतेहैं वह भी उसी प्रकार श्रथमकी समान धर्मोंको स्मरण कर प्रवृत्त करतेहैं,

अन्य कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ॥ २२ ॥

अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः ॥

शक्तिकी वृद्धि और हानि युगोके अनुमारही है उसीकारणसे कृतयुगमें मनुष्योंका धर्म और प्रकारका रहा, त्रेतामें और प्रकारका और द्वापरमें और प्रकारका रहा ॥ २२ ॥ इस समय कलियुगमें ऋषियोंने मनुष्योंकी शक्तिके अनुमारही और प्रकारके धर्म वर्णन कियेहैं ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥

कृतयुगमें शक्ति विशेष थी इसकारण उसमें तप श्रेष्ठ रहा, त्रेतामें ज्ञान रहा ॥ २३ ॥ द्वापरमें यज्ञ अधिक रहा, और अब कलियुगमें जारौरिक शक्ति न्यून है इस कारण इसमें दानकीही अधिकता है ॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥

द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥

सतयुगमें तौ मनुजीके धर्म मुख्य थे त्रेतामें गौतमके ॥ २४ ॥ शंख और लिखित ऋषियोंके धर्म द्वापरमें मुख्य रहे, और इससमय कलियुगमें मुनि पाराशरजीके कहेहुए धर्म अत्यन्तही उपयोगी हैं ॥

त्यजेदेशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥

द्वापरे कुलभेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥

सतयुगमें ससर्गके दोष लगनेके कारण पाप करनेवालेके देशकोभी त्याग देतेथे, ग्रामको त्रेतामें ॥ २५ ॥ और द्वापरमें पाप करनेवालेके कुलतककोभी छोड देतेथे, अब कलियुगमें केवल पापकर्त्ताकोही छोड देतेहैं ॥

कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥ २६ ॥

द्वापरे त्वन्नमानस्य कलौ पत्रनि कर्त्तव्यम् ॥

सठयुगमें लौ मनुष्य पापीके साथ बार्तालाप करनेसेही पठित होजाताया, और त्रेतामें स्वर्गसे पठित होताया ॥ २६ ॥ अन्नके करनेसे द्वापरमें पठित होताया, और कलियुगमें कर्म करनेसे पठित होताहै ॥

कृते तात्क्षानिकं क्षापत्रेतायां दशमिर्दिने ॥ २७ ॥

द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥

सठयुगमें क्षाप एकमासी फलताया, दशदिनमें त्रेतामें ॥ २७ ॥ और द्वापरमें एकमाहीनि क्षाप फलीभूत होताया, और अब कलियुगमें एकवर्षमें क्षापका फल होताहै ॥

अभिगम्य कृते दान त्रेतास्वाहूय दीयते ॥ २८ ॥ द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥ अभिगम्योत्तम दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥ अघर्मं याच मानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

कलियुगमें अज्ञा अघिक भी इसकारण दान आप जाकर वृत्तमें, अज्ञासहित बुझाकर त्रेतामें देतेये ॥ २८ ॥ पाचना करनेवालेको द्वापरमें अज्ञायुक्त हो देनेये, और अब कलियुगमें दान सेवा कराकर देतेहैं । जो दान आप जाकर दिया जाताहै वह अघर्म है, बुझाकर जो दान दियाजाताहै वह मध्यम है ॥ २९ ॥ और जो दान याचना करनेपर दिया जाताहै वह निष्फल है, और जो सेवा कराकर दान दिया जाताहै वह निष्फल है ॥

जितो धर्मो द्वाघर्मेण सत्यं धैवानृतेन च ॥ ३० ॥ जिताश्चोरैश्च राजान' स्त्री भिक्षु पुरुषा जिता' ॥ सीदति चाग्निहोत्राग्नि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥ ३१ ॥ कुमार्यैश्च प्रसूयते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥

कलियुगमें धर्मकी पराजय अघर्मसे होजातीहै, और सत्यकी पराजय झूठसे होतीहै ॥ ३० ॥ बहूना राजाकी पराजय चोरोंसे होजातीहै और क्षत्रिय पुरुषोंका तिरस्कार करती हैं, कलियुगमें अग्निहोत्र और गुरुपूजा वह नष्टहूय जातेहैं ॥ ३१ ॥ कुमारीकन्यामी कसिके प्रभावसे सन्तान उत्पन्न करतीहैं ॥

कृते त्वस्धिगता' माणास्त्रेतायां मांसमाभिता' ॥ ३२ ॥

द्वापरे रुचिरं वैश कलौ त्वन्नादिपु स्थिता' ॥

सठयुगमें प्राण अस्थिगत थे, मांसके आश्रयसे त्रेतायुगमें रहे ॥ ३२ ॥ द्वापरमें दधिरमें प्राण रहतेहैं और कलियुगमें अन्नाधिकमेंही प्राण स्थिति करतेहैं, अघात अन्नके विनामिछे प्राण मर जातेहैं ॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजा' ॥ ३३ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजा' ॥

जो २ धर्म प्रत्येक युगमें हैं और इन युगोंमें जो २ जाटण युगात्पुत्र हैं ॥ ३३ ॥ इनकी निंदा करनी उचित नहीं कारण कि आचरण करनेवाले वह जाटण युगकेही अनुसार हैं ॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ३४ ॥ पराशरेण चाप्सुर्कः प्रायश्चित्त विधीयते ॥ अहमधीय तरसर्वमनुस्मृत्य प्रथमि षः ॥ ३५ ॥

जैसी २ सामर्थ्य जिस २ युगमें रही वैसै २ ही प्रायश्चित्तादि धर्मोंका वर्णन मनु गौत-  
मादि मुनीश्वरोंने किया ॥ ३४ ॥ मैं अब पराशरजीके कहेहुए सम्पूर्ण प्रायश्चित्तआदि धर्मोंको  
स्मरणकर तुमसे कहताहूँ ॥ ३५ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वंतु ऋषिपुंगवाः ॥ पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्  
॥ ३६ ॥ चितितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥

हे मुनीश्वरो ! परमपवित्र सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला मुनि पराशरजीका मत चारों  
वर्णोंका आचार जो ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त तथा धर्मको स्थापन करनेके लिये चितवन  
किया गयाहै, उसीको श्रवण करो ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥ ३७ ॥

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

आचारही चारों वर्णोंके धर्मोंका पालन करनेहारा है. कारण कि आचारके बिना किये  
केवल धर्मके कथनमात्रेही धर्मका पालन नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य आचारसे भ्रष्ट  
है, और जिन्होंने धर्माचरण करना छोडकिया उनसे धर्म विमुख होजाताहै ॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥

हुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥

और जो ब्राह्मण षट्कर्ममें निरत और नित्य देवता अतिथियोंकी पूजा करता और हवनक  
शेषका भोजन करताहै उसको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ ३८ ॥

संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ॥

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिनेदिने ॥ ३९ ॥

प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, हवन, वेदाध्ययन, देवताओंका पूजन, अतिथिसेवा और  
चलित्वैश्वदेव यह छै प्रकारके कर्म करने उचित हैं ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ॥ संप्राप्तो वैश्वदेवांते सोऽतिथिः

स्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥ दूराच्चोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपास्थितम् ॥ अतिथि तं विजा-

नीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥ नैकग्रामीणमतिथि संगृह्णीत कदाचन ॥

अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥ अतिथि तत्र संप्राप्तं पूजये-

त्स्वागतादिना ॥ तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥ श्रद्धया चान्नदा-

नेन प्रियप्रभोत्तरेण च ॥ गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिसुत्पादयेद्गृही ॥ ४४ ॥ अति-

थिर्यस्य भग्नाशो गृहाभ्रतिनिवर्तते ॥ पितरस्तस्य नाश्रंति दश वर्षाणि पंच

च ॥ ४५ ॥ काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य

होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥ सुक्षेत्रे वापयद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च

सुपात्रे च हुप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाध्यायं श्रुत

तथा ॥ हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥ अपूर्वः सुव्रती विप्रो

ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ॥ देवतायाः पूजनेन चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं ॥ ४९ ॥ देव-

देवे तु समाप्ते भिक्षुके गृहमागत ॥ उच्यते वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

मित्र हो या शत्रु हो, पवित्र हो या मूर्ख हो अतिथिके लक्षणोंसे युक्त जो पुरुष पश्चिमेश्वर के अंतमें आश्रय उसकी सेवाके करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ दूरसे आया हुआ और यकित हुआ जो पुरुष अतिथिवशसे समयमें आश्रय, उसको अतिथिही जानना, जो कभी पहले भी आया हो वह अतिथि नहीं है ॥ ४१ ॥ एक प्रामके रहनेवालेको अतिथ्यमें ग्रहण कभी न करे कारण कि, पहले जिसका दर्शन कभी नहीं हुआ, इसीसे उसे अतिथि कहते हैं ॥ ४२ ॥ जो अतिथि अपने स्थानपर आये तो उसकी कुशल पूछकर आसन से उतर कर पूजन करे ॥ ४३ ॥ जिस समय अतिथि अपने स्थानको जानेवागे तो गृहस्वको उचित है कि, अन्नसहित भोजन देकर प्रेमसहित कुशल प्रश्न करे और कुछ वस्तु पहुँचा आकर प्रीति उत्पन्न करे ॥ ४४ ॥ जिसके यहाँसे अतिथि निराश होकर जाता है उसके पितर पशु चरितक उसके दिये हुए आश्रमस्थानीय भोजनको ग्रहण नहीं करते ॥ ४५ ॥ जिसके यहाँसे अतिथि निराश होकर जाता है उसका सहस्रवार काष्ठ और सौ कसस्र पृथसे हवन करना निरर्थक है ॥ ४६ ॥ अच्छे क्षेत्रमें जो भोजन दिया जाता है और सुपात्रको घन दान करे, अच्छे क्षेत्रमें जो भोजन दिया जाता है और सुपात्रको जो दान दिया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतिथिसे गोत्र आचरण तथा आपने किन २ शास्त्रोंको पढ़ा या भवण किया है इत्यादि बातें न पूछे, कारण कि अतिथि देवस्वरूप है उसे देवताकी समान जानकर उसका सम्मान करना उचित है ॥ ४८ ॥ प्रथम रत्न आश्रम, और नित्य वेदाभ्यासी आश्रम और अतिथि यह तीनों दिन २ अणु घंटी हैं अर्थात् इन तीनोंका सम्मान नित्य करना उचित है ॥ ४९ ॥ वैश्वदेवके आरंभ करनेके समयमें यदि कोई भिक्षुक संन्यासी, ब्रह्मचारी और अतिथि आश्रय तो पश्चिमेश्वर के सिमित भोजनको भक्षण करके क्षेप अन्नमेंसे भिक्षुको भिक्षा देकर विशाकरे ॥ ५० ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पफालस्वामिनायुभी ॥ तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥ दद्याच्च भिक्षात्रितयं परित्राद्ब्रह्मचारिणाम् ॥ इच्छया च ततो दद्याद्भिभये सत्यपारितम् ॥ ५२ ॥

यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पफालकी भिक्षाक अधिकारी हैं इनको भिना भोजन दिये हुए जो भोजन करता है उसकी शुद्ध आश्रयण प्रतिके करनेसे होती है ॥ ५१ ॥ तीन भिक्षा संन्यासी और ब्रह्मचारियोंको अवश्य देनी उचित है, यदि अधिक पशुपान्य हो तो निरंतर दद्यात्सुसार भिक्षा दे ॥ ५२ ॥

यतिदस्ते जलं दद्याद्भिक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तद्भिक्षं मेरुणां सुस्यं तजलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥ यस्य चक्षुष इयधीय पुंजराराहमृद्धिमत् ॥ पंद्रस्थानमुपासीत तस्मात् न विचारयत् ॥ ५४ ॥

प्रथम यतिके हाथमें जल दे इसके पीठ भिक्षा व फिर जल दे, वह क्रम दे, वह भिक्षाका भोजन सुमेव पर्यंत नित्य होजाता है और वह जल अनुप्रासे समान होजाता है ॥ ५३ ॥

जिस संन्यासीके पास छत्र हाथी घोडा आदि वाहन हों और वह बुद्धिमान् इन्द्रके स्थानका अनुभव करताहो ऐसाभी संन्यासी हो तौ भी उसका संमान करनेयोग्यही है ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥

वलि वैश्वदेवके सम्बन्धमें जो पाप हुआहो उसको वह दूर करसकताहै, भिक्षुकके सन्मान करनेसे वलिवैश्वदेवकी विधिमें यदि कुछ त्रुटि रहजाय तौ वह पाप भिक्षुकके सन्मान करनेसे शांत होजाताहै, परन्तु यदि वलि वैश्वदेवके कारण भिक्षुकका सन्मान न होसकै तौ उस दोषको वलिवैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ५५ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुञ्जते द्विजातयः ॥ तेषामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजन्ति ते ॥ ५६ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजाधमाः ॥ सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेशुचौ ॥ ५७ ॥ वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन वहिष्कृताः ॥ सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजन्ति च ॥ ५८ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विना वलिवैश्वदेवके किये भोजन करतेहैं उनको काककी योनि मिलतीहै, इसी कारण उनके अन्नका भोजन करना उचित नहीं है ॥ ५६ ॥ जो अधम ब्राह्मण वलिवैश्वदेवके विना किये भोजन करतेहैं उनके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं, और वह अशुचिनामक नरकमें जाकर पडतेहैं ॥ ५७ ॥ जो वलिवैश्वदेवको नहीं करते, जो अतिथिकी सेवा नहीं करते वह सम्पूर्ण मनुष्य नरकगामी होतेहैं, और इसके पश्चात् उनको कौये की योनि मिलतीहै ॥ ५८ ॥

शिरो वेष्ट्य तु यो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥

वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य बस्त्रादिसे शिरको ढककर तथा बाँये चरण पर हाथ धरकर दक्षिण दिशाको मुख करके भोजन करते वह राक्षसी भोजन है, अर्थात् वह भोजन तामसी होजाताहै ॥ ५९ ॥

यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ॥

चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

जो दाता संन्यासीको सुवर्णआदिक धन दान करताहै, तथा ब्रह्मचारीको ताम्बूल और चोरोंको अभय देताहै वह नरक को जाताहै ॥ ६० ॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च ॥

प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥

जो संन्यासी श्वेत वस्त्र, वाहन, ताम्बूल तथा धन आदिका प्रतिग्रह लेते हैं, तो जिससे प्रतिग्रह लेते है उसके भी कुलका नाश करतेहैं ॥ ६१ ॥

चोरो वा यदि चंडालः शत्रुर्वा पितृघातकः ॥

वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥

चोर वा चाडाल, शत्रु या पितृघातीहो जो भी वलिवैश्वदेवके समयमें आजाय तौ वह अतिथि स्वर्ग प्राप्ति करानेवाला है ॥ ६२ ॥



हृय हों या जिन्हें अपने परिग्रामसे संभय किया हो; उन धान्योंसे पक्षयज्ञोंको करे, और विक्षिप यज्ञाधिकोंकोभी करे ॥ ६ ॥

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समा ॥

विप्रस्यैर्विधा वृचिस्तृणकाष्ठादिविक्रय ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंको वचिदई कि तिल सम्पूर्ण प्रकारके रस तथा, खैर, अखादिक, फल, पुष्प, मीठ वा रत्नार्थके वस्तुओंको न बेचे ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कार्ष कुर्वात्सन्महादोषमाप्नुयात् ॥ अष्टागवं धमहर्लं पञ्च वृचिलक्ष-  
णम् ॥ ८ ॥ चतुर्गवं नृशंसानी द्विगवं गोजिपासुषत् ॥ द्विगवं वाहयेत्पावं म  
ध्यात्ते तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥ पञ्च तु त्रियामाहेष्टमि' पूर्णं तु वाहयेत् ॥ न  
याति नरकेष्वेव वर्तमानस्तु वै द्विज ॥ १० ॥ दान दद्याच्च वै तेषां प्रसृप्तं  
स्वर्गसाधनम् ॥

ब्राह्मणको खेरी करनेसे बड़ा पाप होताहै, परन्तु आठ बैलोंवाला हठ धर्मपूर्वक वचन है,  
छे' बैलोंका हठ मध्यम है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य चार बैलोंको हठमें जोतसे है वह ब्याहीन है,  
और जो दो बैलोंका हठ जोतसे है वह गोहिसक है, दो बैलोंवाले हठको पहरभर दिन  
चढ़ेवक जोतना उचित है, और चार बैलवाले हठको सप्ताहवक जोते ॥ ९ ॥ हठमें छे  
बैलोंको जोतकर तीसरे पहरवक कार्यले, और आठ बैलवाले हठको सार्यकाहवक जोते,  
इस भांति ध्याकरण करनेसे ब्राह्मण नरकमें नहींजाता ॥ १० ॥ इस ब्राह्मणको दियाहुआ  
दान प्रसंसनीय और स्वर्गका देनेवाला है ॥

सप्तसरेण यत्पार्पं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥ अयोमुखेन काष्ठेन तदका  
हेन छागली ॥ पाशको मत्स्यघाती च व्याघ्रं शाकुनिकस्त्वया ॥ १२ ॥ अ  
दाता कर्पकश्चैव पक्षिते समभागिनः ॥

जो पाप वर्षदिनमें मत्स्यघात करनेसे होताहै ॥ ११ ॥ बही पाप एकही दिनमें हठके  
काष्ठके अत्रमागमें छोहा छागकर जोतनेस होताहै । जो बिना अस्त्राय फंसी देताहै, जो  
मत्स्यघाती मृगादिकोंकी हिंसा करताहै तथा पक्षियोंको मारताहै ॥ १२ ॥ और जो गेहूँ  
करनेवाला ब्राह्मण दान न करताहो, वह पांचोंजने पापकरनेमें मग्नरहै ॥

कंहनी पेपनी सुल्ली उदकुमी च मार्जनी ॥ १३ ॥ पय सूता गृहस्यस्य मह  
न्यहनि वसति ॥ वैश्वदेवो वलिर्भिक्षा गोप्रासो दत्तकारकः ॥ १४ ॥ गृहस्य  
प्रस्यहं कुर्वात्सूनादोपेर्न स्तिप्यते ॥

खोखड़ी, चर्खी, चूल्हा, तथा अगले अरेहृय पात्रोंके स्थान गृहारी ॥ १३ ॥ इन लंके  
बस्तुओंसे नित्यप्रति हिंसा होताहै, यदि गृहस्त्री, नित्य नेत्रसे वलिबैश्वदेव और वैश्वशा पूर्य  
करता रहे, अतिथियोंको भिक्षा दे और भोजन करमेसे पहले रसाईमेंके सम्पूर्ण पात्रोंकी  
खोजा २ गोप्रासभी आदरसहित देताहै, तथा वैश्वदेवोंके नियमभी सातह पात्रोंकी  
कार निकालकर सुपात्र ब्राह्मण तथा गोप्रादिकोंके दे ॥ १४ ॥ जो हम गृहस्थों उपा  
हिंसाओंके होप नहीं लगते ॥

वृक्षं छित्त्वा मही भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥

कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

खेतीकरनेसे वृक्षोका छेदन और पृथ्वीका भेदन होताहै, और हलसे कृमिआदिक असख्यों जीव मरतेहैं ॥ १५ ॥ इन पापोंसे मुक्त होनेके निमित्त खेतीकरनेवालेको खलयज्ञआदि अवश्य करने चाहिये ॥

यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपूगतः ॥ १६ ॥

स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥

जो खेतीकरनेवाला मनुष्य अन्नके ढेरमेसे प्रथम भाग सुपात्र ब्राह्मणको नहीं देता ॥ १६ ॥ वह चोर, पापी, और ब्रह्महत्या करनेवालेकी समान है ॥

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

राजाको छठा भाग, और देवताओंको इक्कीसवा भाग खेती करनेवालेको देना उचित है ॥ १७ ॥ और ब्राह्मणको तीसवा भाग दे, तौ वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥

क्षत्रियोऽपि कृषि कृत्वा देवान्विप्रांश्च पृजयेत् ॥ १८ ॥

वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥

यदि खेतीकरनेवाला क्षत्रिय हो तौ वहभी इसी भाति करै, अर्थात् देवता ब्राह्मणादिको भाग दे ॥ १८ ॥ वैश्य और शूद्रभी खेती वाणिज्य और शिल्प कर्मको करै ॥

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोऽङ्गिताः ॥ १९ ॥

भवंत्यल्पायुषस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥

जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी सेवाको छोडकर निषिद्ध कर्म करतेहैं ॥ १९ ॥ उनकी अवस्था अल्प होतीहै, और वह नि सन्देह नरकको जातेहैं ॥

चतुर्णांमपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चारो वर्णोंको सनातन धर्म यही है ॥ २० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥ दिनत्रयेण शुद्धयंति ब्राह्मणाः  
प्रेतसूतके ॥ १ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥ शूद्रः शुद्धयति  
मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

इसके उपरान्त जन्ममरणके अशौचकी शुद्धि कहते हैं, मृतक आशौच में ब्राह्मण तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ वारहदिन में क्षत्रिय शुद्ध होते हैं, वैश्य पंद्रह दिन से शुद्ध होताहै, और शूद्र एकमास से शुद्ध होता है ॥ २ ॥

उपासने तु विप्राणामर्गशुद्धिश्च जायते ॥

ब्राह्मणानां प्रसूती तु देहस्पर्शा विधीयते ॥ ३ ॥

आशौचकालमें ब्राह्मणोंकी अभि उपासनाके समयतक अगुद्धी होमाती है, और जननाशौचमें ब्राह्मणोंके देहका स्पर्श कहा है, ( वह अत्यश्लील नहीं होता ) ॥ ३ ॥

जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिप' ॥

धिय' पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ॥ ४ ॥

एकाहाच्छुद्धयते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वित' ॥ ष्यहात्वेषलवेदस्तु दिहीनो दशभिर्दिने ॥ ५ ॥ जन्मकर्मपरिभ्रष्ट' उन्वयोपासनवर्जित ॥ नामभारक विप्रस्तु दशाह सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥ ॥

जननाशौचमें ब्राह्मण द्वादशदिन से शुद्ध होमाता है, क्षत्रिय बारहदिनसे शुद्धहोता है; वैश्य पंद्रह दिनसे शुद्ध होता है, और शूद्र एकमाहीनेमें शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ वैष्णवी ब्राह्मण और जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाला है वह एकदिनमेंही शुद्ध होजाता है, और जो केवल वेदकरकेही पुण्य है वह तीन दिनमें शुद्ध होते हैं, और जो वेद तथा अग्निहोत्र इन दोनोंको नहीं करते वह द्वादशदिनतक अशुद्ध रहते हैं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण जन्मसेही नित्य वैमिथिक कर्मोंको नहीं करते, और संप्रबन्धनी नहीं करते वह नाममात्रके ब्राह्मण हैं, वह द्वादशदिनतक अशुद्ध रहते हैं ॥ ६ ॥

धजा गाथो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ॥

दशरात्रेण सशुद्धयेद्भूमिष्ठ च नवोदकम् ॥ ७ ॥

धरती, गाय, महिष तथा प्रसूता स्त्री; और भूमिपर स्थित वर्षाका जल इनकी शुद्धि दस दिनमें होती है ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दापादा पृथग्दारनिकेतना ॥ जन्मन्यपि विपत्ती च तेषां तस्य तपं भवेत् ॥ ८ ॥ तापसस्तसूतक गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥ दापाद्विच्छेदमा प्राति पचमो धात्मवशज ॥ ९ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्स्वप्निज्ञा' पुंसि पचमे ॥ पष्ठे चतुरहाच्छुद्धि सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥

सर्विद हाथाह अथात् बैठे पाठे घनादिवा भागसेभवाले होवें, चाहे वह पृथक् २ भी रहते हों परन्तु वाही उनको जन्मगरणमें अश्लील होवै ॥ ८ ॥ गोत्रमें द्वादशदिनतकही सूतक रहता है, चौथी पीढ़ीतककी सतान अथात् एक प्रवितासदतककी संतान एकगोत्र में कहाजाती है और पांचवी पीढ़ीका मनुष्य घनादिके मागका अधिकारी नहीं होता; इसकारण उसे दश दिनतक सूतक मही होता कारणकि चौथी पीढ़ीके अन्ततः दस संता होती है ॥ ९ ॥ चौथी पीढ़ीवाला पुण्य द्वादशदिनमें, छे दिनमें पांचवी पीढ़ीवाला, छठी पीढ़ीका पुण्य चार दिनमें और सातवी पीढ़ीवाला मनुष्य तीन दिनमें शुद्ध होता है ॥ १० ॥

भृग्यभिमारणे धिय देहातिरमृते तथा ॥

घाते प्रेते च संन्यरत सद्य शौच विधीयते ॥ ११ ॥

जो पुरुष पर्वतसे गिरकर या अग्नि में गिरकर मरजाय या जो परदेश में मरगयाहो उसके सूतक में और बालक या संन्यासीकी मृत्यु होजानेपर शीघ्रही शुद्धि होजातीहै ॥ ११ ॥

देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ॥

— न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥

यदि कोई गोत्रकर्ही परदेशमें मरजाय तौ तीनदिनका अशौच नहा होता, परन्तु जब मृत्युका समाचार सुनले तब शीघ्र स्नान करनेसे एक दिनरातमेंही शुद्धि होजाती है ॥ १२ ॥

देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥ देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥ कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥

यदि जो ब्राह्मण परदेशमें जाकर कालवश मृत्युको प्राप्त होगया हो और उसके मृत्युकी तिथि ज्ञात न हो ॥ १३ ॥ तौ कृष्णपक्षकी अष्टमी वा अमावस्या तथा कृष्णपक्षकी एकादशीको उसके निमित्त जलदान पिंडदान और श्राद्ध करना उचित है ॥ १४ ॥

अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्दिनिःमृताः ॥

— न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥

जिन बालकोंके दांत न निकले हों और जो गर्भमें से उत्पन्न होतेही मरजाय उनका अग्नि-संस्कार और अशौच तथा जलदान नहीं होता ॥ १५ ॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ॥ यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥ आचतुर्थाद्भवेत्स्त्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

यदि गर्भस्त्राव तथा गर्भपात होजाय तौ जितने महीनेका गर्भ गिरैगा उतनेही दिनोका सूतक होगा ॥ १६ ॥ चार महीनेका गर्भ गिरजानेपर उसे गर्भस्त्राव कहतेहै, और पाच या छठेमहीनेमें गर्भ गिरनेको "गर्भपात" कहतेहैं । इसके पीछे छठे या दशमें महीनेतक प्रसव कहाताहै, प्रसवकालमें दशदिनका सूतक मानना उचित है ॥ १७ ॥

दंतजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ॥ अग्निसंस्कारणं तेषां त्रिरात्रमशुचि-र्भवेत् ॥ १८ ॥ आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडात्रैशिकी रमृता ॥ त्रिरात्रमात्रता-देशादशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥

दात जमनेपर - या चूडार्कर्म होजानेपर यदि बालक मरजाय तौ उसका अग्निसंस्कार करना चाहिये और तीनदिनतक आशौच मानना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ और विना दातोंके जमेही यदि बालक मरजाय तौ स्नान करनेसेही शीघ्र शुद्धि होजातीहै, चूडाकरणसे प्रथमही बालक मरजाय, तौ एक दिनरातमें शुद्धि होतीहै । यज्ञोपवीत विनाहुए जिसकी मृत्यु होजाय तौ तीन दिनतक आशौच रहताहै । इसके पीछे यज्ञोपवीत होजानेपर दशदिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी गृहे येषां हृतं च हुताशनं ॥ सपर्कं चेन्न कुर्वति न तेषां सूतकं भवेत् ॥ २० ॥ सपर्काद्बुध्यते विभो जनने मरणे तथा ॥ संपर्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥

असके घरमें कोई मनुष्य महाबायी हो और अग्निहोत्र करताहो, और वह प्रसूता स्त्रीसे स्पर्श न करताहो तो उसे अशौच नहीं होता ॥ २० ॥ ब्राह्मणको जन्म मरणमें स्पर्श करनेसे सूतक छगवाहै, और जो स्पर्श नहीं करता उसे जन्म वा मरणका सूतक नहीं होता ॥ २१ ॥

शिल्पिन काठका वैद्या दासीदासाश्च नापिता ॥

राजानं भोत्रियाश्चैव सद्यःशौचा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

( शिल्प कार्य करनेवाले काठक, हलवाई इत्यादि ) वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा और बेहपाठी इन सबकी शुद्धि शीघ्र होजातीहै ॥ २२ ॥

सप्ततो मश्रुतश्च आहिताभिश्च यो द्विजः ॥

राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ २३ ॥

जो ब्राह्मण पवित्रमाचसे व्रत और यज्ञ करताहै, और जिस अग्निहोत्र करताहै उस ब्राह्मणको, राजाको तथा राजा चाहे उसको सूतक नहीं छगवा वह ज्ञानमात्रसेही शुद्ध होजातेहै ॥ २३ ॥

उद्यतो निघने दाने आर्तो विभो निर्मंत्रितः ॥

तदेव ऋषिभिर्दृष्टं यथा फालेन शुद्धयति ॥ २४ ॥

मृत्यु और दानमें नियुक्त, दुःखात होकर किसीसे निमग्न किया हुआ ब्राह्मण समयमें अनुसार शुद्ध होताहै ऐसा ऋषियोंका वचन है ॥ २४ ॥

प्रसये गृहमेधी तु न पुण्यात्सकर यदि ॥

दशाहाच्छुद्धयते माता स्वयगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥

गृहमेधी ब्राह्मण अपने बच्चा सम्मान पैदाहोनेमें मेल ( सकर ) न करे अर्थात् विजातीय स्त्रीको छोड़कर स्वजातीय स्त्रीसेही सम्मान उत्पन्न हानमें उस उत्पन्नहुए बाळककी माता ती दशदिनमें शुद्ध होती है और उस सम्मानका पिता केवल स्नान करने मात्रसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २५ ॥

सर्षेपां शायमाशीचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥

सूतकं मानुरय स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २६ ॥

मृतकका अशौच ती तारे कुटुम्बको होताहै; और जन्म सूतकका अशौच माता पिता दोनोंको होताहै; इसमें मृतक केवल माताकोही छगवाते, कारण कि पिता ती कबल आप्त मन करनेमेंही शुद्ध होजाताहै ॥ २६ ॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां संपर्कं पुरुते द्विजः ॥ सूतकं तु भयसरय यदि विप्र षष्ठंगवित् ॥ २७ ॥ सपत्न्यायापत दोषो नान्या दापास्ति धे द्विजः ॥ तस्मात्सपत्न्यायापत संपर्कं यजोघ्नम् ॥ २८ ॥

प्रसूता स्त्रीका संसर्ग होनेसे ब्राह्मणको अवश्य सूतक लगताहै, चाहे वह ब्राह्मण वेदोंका जाननेवालाभी हो ॥ २७ ॥ ब्राह्मणको संसर्गमात्रसे ही दोष लगताहै, संसर्गके बिनाहुए दोष नहीं लगता, इसकारण सम्पूर्ण यत्नसहित विद्वानोंको संसर्गकाही त्यागकरना उचितहै ॥ २८ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरा मृतसूतके ॥

पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥

यदि विवाह, उत्सव, और यज्ञादिके समय किसी सर्पिडादिकी मृत्यु होनेके कारण सूतक होजाय; तौ प्रथम संकल्प कियाहुआ जो द्रव्य किसीको देनेके निमित्त रक्खाहै वह दूषित नहीं होता ॥ २९ ॥

अंतरा तु दशाहस्य पुनर्भरणजन्मनी ॥

तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥

यदि दशदिनके बीचमेंही किसी दूसरे मनुष्यका जन्म वा मृत्यु होजाय तौ ब्राह्मण उसी समयतक अशुद्ध रहताहै कि जिस समयतक पहले मनुष्यके जन्ममृत्युसे अशुद्धि रहतीहै ॥ ३० ॥

ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बंदीगोग्रहणे तथा ॥

आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥

जिसकी मृत्यु गौब्राह्मणके निमित्त हुईहो अथवा जो संग्राममें मराहो उनको अशौच एक दिनरातमें होताहै ॥ ३१ ॥

द्राविणौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ ॥

परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥

संसारमें यह दो मनुष्यही सूर्य मंडलको भेदकर ब्रह्मलोकको जातेहैं, एक तौ योगी संन्यासी और दूसरा रणभूमिमें सन्मुख होकर जो मराहो ॥ ३२ ॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥

अक्षयौलभते लोकान्यदि क्लीबं न भाषते ॥ ३३ ॥

शत्रुओंसे घेरे जानेपरभी जो शूरवीर नपुंसकताके वचन नहीं कहते, उनकी मृत्यु चाहे जिस स्थानमें हुईहो परन्तु वह निश्चयही अक्षय लोकोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ॥

एष मे मंडलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥

सूर्य भगवान् भी संन्यासी ब्राह्मणको देखकर अपने स्थानसे चलायमान होजातेहैं, वह यह विचारतेहैं कि, यह मेरे मण्डलको भेदन करके परमपदको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥

यस्तु भक्षेषु सैन्येषु चिद्रवस्तु समंततः ॥

परित्राता यदा गच्छेत्स च ऋतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥

जो रणमें भागतीहुई सेनाकी रक्षा करताहै, वह यज्ञके फलको पाताहै ॥ ३५ ॥

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ॥ देवकन्यास्तु तं वीरं हरंति रमयंति

च ॥ ३६ ॥ देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् ॥ त्वरमाणाः प्रधावंति

मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥ च विप्राः स्वर्गेषिणो वात्र

यथैव याति ॥ क्षणेन यात्येव हि तत्र धीरा प्राणासुप्नुदेन परित्यजन्ति ॥ ३८ ॥

नितेन लम्पते लक्ष्मीर्मुतेनापि धरांगना ॥ सणध्वंसिनि कायेऽस्मिन्का विता मरणे रणे ॥ ३९ ॥ छल्लददेशे रुधिर स्रवश्च यस्याद्द्वेषे तु प्रविशित वक्रम् ॥

तत्सोमपानेन क्लिष्टास्य दुस्त्य सग्रामयज्ञो विधिवच्च वृष्टम् ॥ ४० ॥

जिसका शरीर रणस्थानमें छुड़, सुहर, और लार्क आदिकोंसे भव हुआहो उस बीरको देखकन्या छेजातीहै ॥ ३६ ॥ जिसकी संभाममें सुत्पु होतीहै उस धीरको देखकर सखों सेनाना "यह मेरा पति हो" ऐसा कहतीहुई क्षीप्र उसके पासको जातीहै ॥ ३७ ॥ स्वर्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण बनेक यह और उपकरके जिस भांति जिस स्थानको प्राप्त होतेहैं, वही प्रकार उस स्थानको रणमें प्राणत्यागन करनेवाले धीर क्षयमात्रमें प्राप्त होना चाहै ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीकी प्राप्ति रणमें विजय प्राप्त होनेसे होतीहै, और देवागताओंकी प्राप्ति सुत्पु होनेसे होतीहै फिर यदि यह शरीर युद्धमें प्राप्त होजाय तो इसकी पिन्ताही क्या है कारण कि यह क्षणमें भग होनेवाला है ॥ ३९ ॥ समाममूमिमें जिस वीरपुरुषके मस्तकसे रुधिर बहकर मुखमें पलाजाय, उसके निमित्त वह हंभिरका पान संभामरूपी यज्ञमें विधिपूर्वक सोमपान करनेकी समान है इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥

अनाथ ब्राह्मण प्रेतं ये षहन्ति दिजातय ॥ पदं पदे यज्ञफलमानुषूष्माङ्गमन्ति ते ॥ ४१ ॥ न तेपामशुभ किञ्चित्पार्ष वा शुभकर्मणाम् ॥ जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौच विधीयते ॥ ४२ ॥ असगोत्रमवधु च प्रेतीभूतं दिजातमम् ॥

षहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेष वा ॥ ज्ञात्वा सत्रेण स्पृशामिं धृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अनाथ ब्राह्मणके मरजाते पर उसे अपने कंभेपर छेजातीहै; उनको एक २ पगपर एक २ यज्ञना फल मिलताहै ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य मृतक हुए अनाथ-ब्राह्मणको अपने कंभेपर रखकर स्मशानमें छेजाते हैं उन भेदकर्मकरनेवाले मनुष्योंको कुछ पाप या अमगल नहीं हाता, केवल अर्थमें जानकरनेसेही उनकी शुद्धि होजातीहै ॥ ४२ ॥ अपने गोत्रसे पूषक अथ ब्राह्मणके मरजातेपर जो उसे कंभेपर छेजाकर वाह करतेहैं उनकी शुद्धि केवल प्राणायामसेही होजातीहै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपनी इच्छामुसार मृतक मनुष्यके पीछे जाय, वह अपनी जातिका हो वा अन्यजातिका हो तो उसके पीछे जानेसे वज्रसहित जानकर अमिठा स्वर्ग कर दूतक बालनेसेही उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४४ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योनुगच्छति ॥

एकाहमशुचिर्भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४५ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानवासे क्षत्रियके मृतक शरीरके पीछे जाय, ही उसको एक दिन बहोच रूखाहै और पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४५ ॥

क्षत्रियं च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो योनुगच्छति ॥

कृषा शीर्षं दिरात्रं च प्राणायामान्पडाचरेत् ॥ ४६ ॥

वैश्यके पीछे ब्राह्मणवासे जानेपर तीनपद मशीच रूखाहै और छे प्राणायाम करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४६ ॥

प्रेतोभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अद्गच्छेन्नोयमानं त्रिरात्रमशुचि-  
र्भवेत् ॥ ४७ ॥ त्रिरात्रे तु ततः पूर्णं नदी गत्वा समुद्रगाम् ॥ प्राणायामशतं  
कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥ ४८ ॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रके मृतक देहके पीछे जाताहै वह तीन दिनतक अशुद्ध रहताहै  
॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त समुद्रगामिनी नदीके किनारे जाकर सौ प्राणायामकर घृतका भो-  
जन करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥

विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥ द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः स-  
नातनः ॥ ४९ ॥ तस्माद्भिजो मृतं शूद्रं न स्पृशन्न च दाहयेत् ॥ दृष्टे सूर्याव-  
लोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ५० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जिससमय इमशानसे लौटकर शूद्र जलके निकट आवे उस समय ब्राह्मण उनके समीप  
जाय यही सनातन धर्म है ॥ ४९ ॥ इसकारण ब्राह्मण मृतक शूद्रका स्पर्श तथा उसकी दाह  
क्रिया न करै । जो मृतक शूद्रका दर्शन करताहै उसकी शुद्धि सूर्य नारायणके दर्शन करनेसे  
होतीहै यही पुरातन शुद्धि है ॥ ५० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भापाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

अतिमानादतिक्रोधात्त्रेहाद्वा यदि वा भयात् ॥ उद्धभीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा  
विधीयते ॥ १ ॥ पूयशोणितसंपूर्णं त्वंवे तमासि मज्जति ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि  
नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत् ॥ वो-  
ढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयंतीत्येषमाह  
प्रजापतिः ॥

जो स्त्री पुरुष अत्यन्त क्रोध, द्वेष वा लोकभयादिके कारण अपनेको फाँसी खाकर मार-  
डालै तौ उसकी गति इसप्रकार होतीहै ॥ १ ॥ दह मनुष्य रुधिर और पीवसे भरे हुए  
अंबतामिखनामक नरकमें डूबता है और फिर साठमहस्र वर्षतक निवास करताहै ॥ २ ॥  
उसका अशौच न माने अग्निस्कार न करै, उसको जलदान न करै, वरन उसके लिये  
आसुओंका जलभी न डालै, जो मनुष्य उस मृतकको लेजातेहैं, या जो दाह करतेहै, या  
जो पाश छेदन करतेहैं ॥ ३ ॥ उनकी शुद्धि तप्तकृच्छ्रेके करनेसे होतीहै, यह प्रजापति  
ब्रह्मानीने कहाहै ॥

गोभिर्हतं तथोद्धृद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥ संस्पृशंति तु ये विप्रा वोढा-  
रश्चाग्निदाश्च ये ॥ अन्ये ये चारगंतारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥ तप्तकृच्छ्रेण  
शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनडुत्सहितां गां च दशुर्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥

जिसको गौने या ब्राह्मणेने माराहै अथवा जो फाँसी खाकर मरा है ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण  
उस मृतकका स्पर्श करतेहैं वा इमशानमें लेजाते हैं, वे उसका दाह करते हैं, या जो उसके



पीछे जावेहैं वा उसकी पास छेदन करवेहैं ॥ ५ ॥ धनकी बुद्धि वसकृष्ण प्रथ कर सुपात्र  
ब्राह्मणको भोजन कराकर एक बैठ और गौ दक्षिणामें बनेसे होतीहै ॥ ६ ॥

अथ ह्यहमुष्ण पिबेद्वारि अथहमुष्ण पयः पिबेत् ॥ अथहमुष्ण पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो  
दिनप्रथम् ॥ ७ ॥ पदपल तु पिबेदंभस्त्रिपल तु पयः पिबेत् ॥ पलमेक पिबे  
त्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥

अथ वसकृष्णप्रवकी विधि कहवेहैं, वसकृष्ण करनेवाला पुरुष तीन दिनतक छे' पल उष्ण  
मद्यको पियै; इसके पीछे तीन दिनतक प्रतिदिन चार २ पल उष्ण दुग्ध पान करै, उसके  
पीछे तीन दिनतक एक पल उष्ण घृत पान करै; और तीन दिनतक वायु मद्यन करै अर्थात्  
निर्जल प्रथ करै यह वसकृष्णका विधान है ॥ ७ ॥ ८ ॥

यो धे समाचरेद्रिम पतितादिष्वकामतः ॥ पंचाहं वा दशाह वा द्वादशाहम  
यापि वा ॥ ९ ॥ मासाद्मासमेक वा मासद्वयमयापि वा ॥ अष्टाहमहमेक  
वा भवेदूर्ध्वं हि तरसम ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण विना इच्छाके पतितादिकोंसे ५ दिन १ दिन १२ दिन ॥ ९ ॥ अथवा १५  
दिन तथा एक महीना वा दो महीना, वा चार महीने तथा एक वर्ष संसर्ग करवाहै, यह  
ब्राह्मण उसीके समान पवित्र होजावाहै ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ॥ तृतीये चिथ पक्षे तु कृच्छ्रं सात  
पनं चरेत् ॥ ११ ॥ चतुर्थे दशरात्र स्यात्पराक् पचमे मतः ॥ कुर्यात्त्राद्रायण  
पष्ठे सप्तमे र्षेदथद्वयम् ॥ १२ ॥ शुद्धययमष्टमे चैथ पण्मासात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥  
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दासिणा ॥ १३ ॥

यदि पांच दिनतक पतिवोंका संसर्ग क्रियाहो वी उसकी बुद्धि तीन दिनतक उपवास कर-  
मेसे होतीहै; और जो दसदिन संसर्ग करवाहै उसकी बुद्धि कृष्णप्रवके करनेसे होतीहै, और  
जो चारद दिन ससग करवाहै वह वसकृष्ण करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११ ॥ पंद्रह दिन संसर्ग  
करनेसे द्वादशदिनतक उपवास करै, और एक महीनेतक संसर्ग होनेसे पराकप्रवकरै दोमहीने  
संसर्ग होनेपर चांद्रायणप्रव करै; और चार महीने ससग होनेसे दो चांद्रायणप्रव करै ॥ १२ ॥  
यदि एक वर्षतक संसर्ग रहाहो वी छे' महीनेतक कृष्णप्रव करै; और त्रिवने पक्षतक संसर्ग  
रहाहो उवनीही सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे बुद्धि होतीहै, पूर्वोक्त प्रकारसे पहला पक्ष ५ दिनका  
है धेसेही १ । १२ । १५ दिन । १ मास । २ मास । ४ मास । और एक वर्षके क्रमसे ८  
पक्षका जानना ॥ १३ ॥

ऋतुव्राता तु या नारी भर्तार नोपसपत्ति ॥

सा मृता नरक याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

जा ऋतुव्राता होनेके पीछे स्नान करके श्री अग्ने स्वामीके समीप गयी वद मृत्युके  
धरणाव गण्डको जातीहै, और नरक भोगनेके उपरान्त बारंबार विधवा होतीहै ॥ १४ ॥

ऋतुव्राता तु यो भार्या मसिधी नोपगच्छति ॥

पोराया भूगह्याया युज्यत नात्र सशयः ॥ १५ ॥

और जो मनुष्य अपनी ऋतुस्नाता स्त्रीके समीप नहीं जाता वह घोर गर्भहिसाके पापसे युक्त होताहै इसमें किंचित्भी संदेह नहीं ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते ॥ सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥ पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥ अपृष्टा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतस्य ॥ सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुब्रवीत् ॥ १८ ॥ बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ॥ गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्कचित् ॥ १९ ॥ यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ॥ प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी, वा धूर्त पतिके होने पर उसका तिरस्कार करती है वह मृत्युके उपरान्त बारबार कूकरी वा शूकरीकी शूनिको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो स्त्री अपने पतिके जीवित रहते हुए निराहार व्रत करतीहै, वह पतिकी आयु हरण करतीहै, और मरनेके उपरान्त नरकको जातीहै ॥ १७ ॥ जो स्त्री बिना पतिकी आज्ञाके व्रतकरतीहै उसका फल राक्षस लेजातेहैं, और वह व्रत निष्फल होजाताहै मनुजीका यह वचन है ॥ १८ ॥ जो स्त्री अपने बंधुबांधवोंसे अथवा अपनी जातिवालोंसे दुराचरण करतीहै, या जो गर्भपात करती है उस स्त्रीसे कभी वार्तालाप न करै ॥ १९ ॥ जो पाप ब्रह्महिसामें होताहै उससे दुगना पाप गर्भ गिरानेमें होताहै उसका प्रायश्चित्त नहीं है इस कारण उस स्त्रीका त्यागही करना उचित है ॥ २० ॥

न कार्यमावसथ्येन नाभिहोत्रेण वा पुनः ॥

स भवेत्कर्मचांडालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य गृहस्थीके कर्मोंको नहीं करताहै अथवा जो अभिहोत्र नहीं करताहै या जो धर्म से विमुख रहकर कर्म करताहै वह चांडाल होताहै ॥ २१ ॥

ओषवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ स क्षेत्री लभते बीजं न बीजीं भागमर्हति ॥ २२ ॥ तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तारि गोलकः ॥ २३ ॥

यदि जल और पवनके वेगसे किसी मनुष्यका बीज दूसरे मनुष्यके खेतमें जाकर उत्पन्न होजाय तो उस बीजके फलका भागी खेतवाला ही होताहै, बीजवालेको भाग नहीं मिलता ॥ २२ ॥ इसी भांति कुंड और गोलक दो पुत्र जो परस्त्रीसे उत्पन्न होते हैं वह स्त्रीकेही पुत्र हैं, बीर्य देनेवालेके नहीं पतिके जीवित रहतेहुए जाकरसे उत्पन्न हुए पुत्रको कुंड कहतेहैं और पतिकी मृत्यु होनेके पीछे उत्पन्न हुए पुत्रको गोलक कहते हैं ॥ २३ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥

दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

औरस, क्षेत्रज, तथा दत्तक और कृत्रिम पुत्र हैं, जो पुत्र माता और पिताने किसी को दियाहो वह दत्तक कहलाताहै ॥ २४ ॥

परिविधि परिवेत्ता यथा च परिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं याति दातृयाजक  
पेषमा ॥ २५ ॥ द्वी कृच्छ्री परिवितेस्तु कन्याया कृच्छ एव च ॥ कृच्छ्राति  
कृच्छ्री दातुस्तु होता चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥ कुञ्जघामनपठेषु गण्डेषु  
अठेषु च ॥ जात्यधे षधिरे मूके न द्रोपः परिविदत ॥ २७ ॥ पितृम्यपुत्र  
सापत्न परनारीसुतस्तथा ॥ दारामिहोत्रसंयोगे न द्रोप परिवेदने ॥ २८ ॥  
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधान नैष कारयेत् ॥ अनुज्ञातस्तु कुर्वीत क्षत्रस्य  
यचनं यथा ॥ २९ ॥

परिविध, और परिवेत्ता, उभा जो कन्या परिवेत्तासे विवाही जाय, कन्यादान करने-  
वाला और याजक वह पापों मरकमें जायें, यदि वह भाईसे पहले छोटे भाईका विवाह  
होगयाहो, तो वह दोमों माह दो कृच्छ्रव्रत करे उत्र उनकी शुद्धि होतीहै, और  
विवाहिता कन्या एक कृच्छ्रव्रत करे, और कन्यादान करनेवाला कृच्छ्र और अति  
कृच्छ्र व्रतकरे; और होता (इपनका करनेवाला) चांद्रायण व्रतके करनेसे छुट्ट होजाई  
॥ २५ ॥ २६ ॥ जो बड़ा भाई, कुपडा, मौला, नपुंसक अथवा चोतडा, मूर्ख,  
जन्मसे भंगा, पहिरा वा गुंगा हो तो वह छोटा भाई परिवेदनके दोषका भागी नहींहै  
॥ २७ ॥ यदि अचेरा व अचेरा भाई अथवा सपत्नीका पुत्र या बूसरी स्त्रीसे उत्तरम दुभा  
पुत्र बडाभाई हो तो सन्तान उत्पत्ति वा अग्निहोत्रके क्रिये विवाह करनेमें कुछ दोष नहींहै  
॥ २८ ॥ पहले भाईके हाथेहुए छोटाभाई अग्निहोत्रको ग्रहण न करे वरन क्षत्रके बपनानुसार  
उसकी आज्ञा लेकर अग्निहोत्रके ग्रहणकरनेका अधिकारी है ॥ २९ ॥

नष्टे मृते प्रवर्जिते क्लीबे च पतिते पत्नी ॥

पचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयत ॥ ३० ॥

जिस कन्याका पागवान होगयाहो और विवाह न हुआहो यदि इसी समयमें उसका पति  
मरजाय, या नष्ट होजाय अथवा सं पाठी या नपुंसक होजाय तो उस कन्याका विवाह  
बूझरे पतिके साथ करनेना पाठिये ॥ ३० ॥

मृते भर्तारि या नारी ब्रह्मन्यमते स्थिता ॥ सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते  
ब्रह्मचारिण ॥ ३१ ॥ तिस्र फोटयोऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानव ॥  
सायत्फलं षष्टेस्वर्गं भर्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥ म्यालप्राही यथा म्याल  
पलादुद्धरते बिलात् ॥ एष स्त्री पतिमुञ्चय तैमैय सह मोदत ॥ ३३ ॥

॥ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे अनुषोऽध्याय ॥ ४ ॥

पतिक मरजानेपर जा स्त्री ब्रह्मपण नियममें स्थित हा, वह मरनेके उपरान्त ब्रह्मचारीकी  
समान रज्जमें जातीहै ॥ ३१ ॥ और रज्जमीके मरनेके उपरान्त जो स्त्री अपने पतिके साथ  
सही दाजादीद बह स्त्री मनुष्यके शरीरमें जितन रोम हैं इतनेही वर्षतक रज्जमें निवास  
करतीहै; अर्थात् सही स्त्री साडे तीन फराह बपनक रज्जमें बांध करतीहै ॥ ३२ ॥ गपडा  
पहनेनेगए जितमति सपत्नी मनुष्यसे बचपूबक निजाछादि स्त्री प्रकार वह स्त्री अपने  
पतिका पापोंसे उदार कर उसके साथ भागद करतीहै ॥ ३३ ॥

इति भीष्मपर्वणि धर्मशास्त्रे भाष्यटीकायां अनुषोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

वृकश्वानशृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ॥

स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥

जिस ब्राह्मणको भेडिये, कुत्ते, तथा गीदह आदिने काटाहो वह स्नानकर गायत्रीका जप करै, कारण कि गायत्री परम पवित्र और वेदोंकी माता है ॥ १ ॥

गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे ॥ समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः  
शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टां द्विजो यदि ॥ सहिरण्योदके  
स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपाव-  
सेत् ॥ घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥ अव्रतः सव्रतो वापि  
शुना दष्टो भवेद्विजः ॥ प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥ शुना  
व्राताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ॥ अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोप-  
चूलनम् ॥ ६ ॥

जिसको श्वानआदिकोंने काटा हो वह गोशृंगसे शुद्ध कियेहुए जलसे स्नान करनेसे तथा पवित्र नदियोंके संगममें स्नान करनेसे अथवा समुद्रका दर्शन करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥ यदि व्रतानुष्ठायी ब्राह्मणको कुत्तेने काटा हो, तौ वह सुवर्णसे शुद्ध किये जलसे स्नान करै और घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण तीन दिनका व्रत कर रहाहो यदि उसको कुत्ता काटै तौ वह घृत और कुशोदकके पानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ जिस ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो वह व्रती हो या व्रतहीन हो परन्तु ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उनकी दृष्टिमात्रसेही शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥ जिसको श्वानने चाटाहो या सूंघा हो वा नखोंसे आघात कियाहो तो उसको जलसे धोकर अग्निसे तप्त करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ६ ॥

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः  
शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ॥ यां दिशं  
व्रजते सोमस्तां दिशं चाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥

जिस ब्राह्मणीको श्वान, शृगाल तथा वृकादिने काटाहो तौ वह उदय होते हुए सूर्य-चन्द्रमादि ग्रह और नक्षत्रोंका दर्शन करै तब उसकी शुद्धि होजातीहै ॥ ७ ॥ कदाचित् कृष्णमाका दर्शन कृष्णपक्षमें न भी हो तौ उस दिन जिस दिशामें चन्द्रमा उदयहो उस दिशाकाही दर्शन करले ॥ ८ ॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ॥

वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण जिस ग्राममें न हो और किसी ब्राह्मणको कुत्ता काटै तौ वह स्नानकरके वृषमकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रही शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥

चंहालेन शपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ॥ आहिताभिर्मुतो विप्रो विषेणात्मा  
हतो यदि ॥ १० ॥ दहेत् ब्राह्मणं विप्रो लोकानी मंत्रवर्जितम् ॥ स्पृहा चोद्य  
श्च दग्ध्वा च सर्पिदिपु च सर्वदा ॥ ११ ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्दिशामनु  
शासनात् ॥ दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरं मक्षालयेद्भिजं ॥ १२ ॥ स्वनाप्रतिना  
स्वमधेन पृथगेतापुनर्दहेत् ॥

जिस अभिहोत्री ब्राह्मणको चांडाल वा श्वपचने मारहाछाहो वा उसे गौ वा ब्राह्मणोंनि  
माराहो; वा स्वयं बिय जाकर मरगयाहो ॥ १ ॥ ठी वसका सर्पिडी पुरूप जो वसकी  
क्रिया करे वह उस ब्राह्मणको विना मन्त्रके छोकिके जग्गिमें बाह करे; और वसे स्पर्श करके  
तथा वसके बिमानको चठाकर वसे बाह करे ठी ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्य प्रथ  
करके और बाह करनेके उपरान्त वसकी अस्थियोंको रूपमें बोनै ॥ १२ ॥ फिर इसके  
पौषे वन अस्थियोंको मंत्रपूर्वक जग्गिमें दूबकू बाह करे ॥

आहिताभिर्द्भिजं कश्चिद्व्यवसन्कालचोदितः ॥ १३ ॥ देहनाशमनुमात्तस्तस्याऽ-  
ग्निर्वसते गृहे ॥ प्रेताग्निहोत्रसस्कारं श्रूयतां मुनिपुंगवाः ॥ १४ ॥ कृष्णा  
जिन समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुपाकृतिम् ॥ पदशतानि शतं चैव पलाशानां च  
कृततः ॥ १५ ॥ चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत् ॥ बाहुभ्यां  
दशक दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥ शतं तु जघने दद्याद्विशतं मूदरे तथा ॥  
दद्यादष्टौ वृषणयो पंच मेद्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥ एकविंशतिमूठभ्यां द्विस्रतं  
जामुजघयो ॥ पादांगुष्ठेषु दद्यात्पद यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥ १८ ॥ क्षम्यां  
शिथे विनिसिप्य अरणिं मुष्कयोरपि ॥ शुद्धं च वक्षिणे इस्ते वामे रूपमूर्तं  
न्यसेत् ॥ १९ ॥ पृष्ठे मूलखलं दद्यात्पृष्ठे च मुक्षलं न्यसेत् ॥ टरसि सिप्य हृषवं संकु  
लाव्यतिलान्मुसे ॥ २० ॥ श्रोत्रे च मोक्षणीं दद्यादाज्यस्पालीं च चक्षुषीं ॥ कर्णे  
नेत्रे मुखे प्राणे हिरण्यशकळं न्यसेत् ॥ २१ ॥ अभिहोत्रीपकरणमशेषं तत्र वि  
न्यसेत् ॥ अक्षौ स्वर्गाय लोकत्रय स्वाहेत्येकाह्वतिं सकृत् ॥ २२ ॥ दद्यात्पुत्रोऽथवा  
भ्राताऽप्यन्यो वापि च धाघव ॥ यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः  
॥ २३ ॥ ईदृशां तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोके गतिः स्मृता ॥ वहति ये दिजास्तं तु से  
याति परमां गतिम् ॥ २४ ॥ अम्यया कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः ॥  
अर्वात्यन्वापुपस्ते वि पतति नरकेऽशुधी ॥ २५ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! जो अभिहोत्री ब्राह्मण परदेहको काळके बरासे ॥ १३ ॥ मरजाव और  
वसकी अभिहोत्रकी जग्गि वसके घरपर स्थित हो, ठी वसका जग्गिसंस्कार जिस मांति होमा  
कर्तव्य है उसे मरण करो ॥ १४ ॥ शिताकी भूमिपर काठी मगधका पिठाकर वसके  
ऊपर पुरुषके जाकारकी मांति कुसानीको बिठाने और वस कुशके पुरुषके ऊपर स्यतसी

दाककी डालिये इस प्रकार स्थापित करै ॥ १५ ॥ चालीस तौ शिरपर रक्खै, सौ कंठमें, दश सुजाओमें और दश अंगुलियोंपर रक्खै ॥ १६ ॥ सौ नाभिपर, दोसौ उदरपर और आठ डालियें दोनों वृषणोंपर, और पांच लिंगपर स्थापित करै ॥ १७ ॥ इक्कीस ऊरुके ऊपर दो सौ जानु और जंघाओके ऊपर और छैः पैरोंके अंगूठेके ऊपर रक्खै, इसके पीछे अग्निहोत्र के पात्रोंको स्थापित करै ॥ १८ ॥ शमीको शिश्नके ऊपर, और अंडकोशके ऊपर अरणि-को स्थापित करै, दहिने हाथमें लुवा, बांये हाथमें उपभृत्को स्थापित करै ॥ १९ ॥ पीठके नीचे ऊखल और मूशाल रक्खै, हृदयमें सिल, मुखमें चावल, घृत और तिल ॥ २० ॥ कानमें प्रोक्षणी, आंखोंमें आज्यस्थाली, कान और नेत्र और मुखमें सुवर्णके टुकड़े रक्खै ॥ २१ ॥ इसप्रकार अग्निहोत्रकी सम्पूर्ण वस्तुएँ स्थापित कर मृतक अग्निहोत्रीका पुत्र वा भ्राता तथा जो कोई उसका बांधव हो वह "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इस मंत्रसे एक आहुति दे इसके उपरान्त दाहसंस्कारकी विधिके अनुसार दाहक्रिया करै ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस भाति विधिके अनुसार करनेसे उस मृतकको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै, और जो ब्राह्मण इस मृतक-का दाह करते हैं वहभी परम गतिको पातेहैं ॥ २४ ॥ और जो अपनी बुद्धिके अनुसार इस-के विपरीत करतेहैं वह अल्पायु होतेहैं, और अन्तमें अशुचिनामक नरकको जातेहैं ॥ २५ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ॥

पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण प्राणियोंकी हिंसाका प्रायश्चित्त वर्णन करतेहैं; पराशरजीने जो पहले वर्णन कियाहै, और मनुने भी विस्तारसहित वर्णन कियाहै ॥ १ ॥

क्रौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ॥ जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥ बलाकाटिट्टिभौ वापि शुक्रपारावतावपि ॥ अटीनवकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥ वृककाकपोतानां सारीतिस्त्रिघातकः ॥ अंतर्जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥ गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ॥ अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥ बल्युलीटिट्टिभानां च कोकिलासंजरीटके ॥ लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥ कारंडवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ॥ भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ भेरुंडचाषभासांश्च पारावतकर्पिजलौ ॥ पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥

कुंज, सारस, हंस, चक्रवा, कुक्कुट और जालपाद, तथा जिन पक्षियोंके चरण जुड़े हैं, जिनके हड्डी हो इनका मारनेवाला एकदिनरातके उपवास करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥ वगली, टटीरी, तोता तथा पारावत, मछली, और बगला इनका मारनेवाला नक्तभोजन ब्रतके करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ३ ॥ भेरुंडचाक, कचूर, मैना, वीतर इनका मारनेवाला

घोनों संख्याओंके समय जलमें स्थित होकर प्राणायामकरनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ जिस मनुष्यने गिद्ध, बाक, खरगोश तथा उत्स्र इन जीवोंकी हिंसा की हो वह सारेदिन कुछ न खाये केवल वायुमक्षण करकेही रहे ॥ ५ ॥ चटका, मोर, कोकिला, मनोव्रज, तथा बटेर और साठ पक्षबाछे पक्षियोंकी हिंसा करनेवाला मनुष्य नक्तमोजनप्रत्येसे शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ मुर्गावी, चकोर, चिमगाबर, टटीरी, पपीहा इनमें किसीकी भी हिंसा हुई हो तो वह शिवजीका पूजन करनेसेही शुद्धहोजाताहै ॥ ७ ॥ भेड़, नीलकण्ठ, मास, और पारावत तथा कफिकुल इन समस्त पक्षियोंमें से जिस किसीने एककीभी हिंसा कीहो उसकी शुद्धि एक दिनरात निराहार प्रवृत्त करनेसे होतीहै ॥ ८ ॥

इत्वा मूषकमाज्जरसर्पाञ्जगरबुद्धुमान् ॥ कृसरं भोजयेद्विभ्रौल्लोहदंडं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥ शिशुमारं तथा गोधां इत्वा कूर्मं च शालकम् ॥ घृताकफळमक्षी चाप्यहोरात्रेण शुद्धयति ॥ १० ॥

पूषा, बिस्वी, सर्प, अजगर तथा जलसर्प इनकी हिंसाकरनेवाला मनुष्य सुपात्र माछपकी शिखरीका भोजन करने और लोहदंडकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥ शिशुमार, गोहा, तथा कच्छप, और शिखर सर्प इनकी हिंसा करनेवाला मनुष्य और बैंगनके फलसे खानेवाला अहोरात्र प्रवृत्तकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

वृकजंबुककृष्णक्षणां तरसूपां च घातकं ॥ तिलप्रसृत्य दिजे दद्यादायुमक्षो दिनत्रयम् ॥ ११ ॥ गजस्य च तुरंगस्य महिषोद्भूनिपातने ॥ प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमघगाहनम् ॥ १२ ॥ कुरगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ॥ शुद्धयति स त्रिरात्रेण विमाणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥ मृगरोहिद्राहाणामवेषस्तस्य घातकः ॥ अफळकृष्टमभीयादहोरात्रमुपोष्य स ॥ १४ ॥

मेढिया, गावृ, रीछ तथा व्याघ्रको मारनेवाला सुपात्र आछपको एकप्रसृत ( १ सेर छ सोले ) तिल देकर तीन दिनतक निर्मल प्रवृत्तकरनेसे शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ हाथी, घोडा, बैसा तथा कंटकी हिंसाकरनेवाला अहोरात्र प्रवृत्त करने घीनों संख्याओंमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ मृग, वानर, तथा सिंह, चीता और व्याघ्रकी हिंसा करनेवाला मनुष्य तीन दिनतक उपवासकर सुपात्र आछपोंको भोजन क्रियाहै ॥ १३ ॥ मृग, रीछ, सुकर, तथा मेढ और बकरीकी हिंसा करनेवाला अहोरात्र उपवास कर बिनाहलसे जुष्टेष्टव्रत भ्रमको पारकर शुद्ध होता है ॥ १४ ॥

पर्वं चतुष्यदानां च सर्वेषां धनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोपितस्तिग्रेऽपन्थे जातवेदसम् ॥ १५ ॥

इसी भांति चौपाये और धनकर जन्तुओंकी हिंसा करनेवाला गावृकी जप करवा हुआ अहोरात्र प्रवृत्त करे ॥ १५ ॥

शिशिर्न कारुक शूद्रं क्षियं वा यस्तु घातयेत् ॥ प्राजापत्यद्वयं कृत्या दृषेकादश दक्षिणा ॥ १६ ॥ धैर्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिपातयेत् ॥ सोति

कृच्छ्रद्वयं कुर्याद्गोविंशदक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥ वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं  
द्विजोत्तमम् ॥ हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिंशद्वाश्रैव दक्षिणा ॥ १८ ॥ चंडालं  
हतवान्कश्चिद्ब्राह्मणो यदि कंचन ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां  
ददेत् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य, शिल्पी, कारीगर, शूद्र, तथा स्त्रीको मारताहै वह दो प्राजापत्य करके ग्यारह  
वैलोका दान करै तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १६ ॥ निरपराधी वैश्य वा क्षत्रियकी हिंसा  
करनेवाला मनुष्य दो अतिकृच्छ्रव्रतकर बीस गौ दक्षिणा में देनेसे शुद्ध होता है ॥ १७ ॥  
और जो मनुष्य अपने धर्मकी क्रियाओं आसक्त हुए वैश्य वा शूद्रको तथा कुकर्मी ब्राह्मणको  
मारता है उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतके करने और तीस गौयें दान करनेसे होती है ॥ १८ ॥  
जिस ब्राह्मणने चांडालकी हिंसा की हो तो वह कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रतकर दो गौयें दक्षि-  
णामें दे तब शुद्ध होता है ॥ १९ ॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च ॥

चंडालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्राद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तथा किसी अन्यजातिने यदि चांडालकी हिंसा की हो तो वह अर्द्ध-  
कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २० ॥

चोरः श्वपाकश्चंडालो विप्रेणाभिहतो यदि ॥

अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २१ ॥

यदि चोरीकरनेवाले श्वपच या चांडालकी हिंसा ब्राह्मणने की हो तो वह अहोरात्र व्रत  
कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २१ ॥

श्वपाकं चापि चंडालं विप्रः संभाषते यदि ॥ द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्री च  
सकृज्जपेत् ॥ २२ ॥ चंडालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ चंडाल-  
कपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥ चंडालदर्शने सद्य आदित्यमवलोक-  
येत् ॥ चंडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ चंडालखात-  
वापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः ॥ अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति  
॥ २५ ॥ चंडालभांडं संस्पृष्ट्वा पीत्वा कूपगतं जलम् ॥ गोमूत्रयावका-  
हारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ चंडालघटसंस्थं तु यतोयं पिबते  
द्विजः ॥ तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥ यदि न  
क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ॥ प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥  
॥ २८ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं  
शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥ भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ॥  
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजा-  
तीनां तु निष्कृतिः ॥ शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तिः ॥ ३१ ॥



सुकैः श्वानादिजभेष्टभङ्गालान् कथञ्चन ॥ गोमूत्रपावकाहारो दशरात्रेण  
शुद्धयति ॥ ३२ ॥ एकैकं प्रासमयनीपाद्गोमूत्रे पावकस्य च ॥ दशाह नियम  
स्यस्य व्रत तज्ज विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

१. यदि श्वपच वा चाँडाळ से प्राण्यन बावाँडाप करे ती वह दूसरे प्राण्यनसे वावाँडापकर  
एकबारही गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य चाँडाळको स्याम  
एकस्याम वा एकपुष्पकी छयामें शयन करवा है तो उसकी शुद्धि एक दिनरात उपवास करने  
से होती है, और जो चाँडाळके साथ मार्ग चलावा है और स्नानकरता है वह विघने पर  
बहाहो बचने गायत्री मंत्रोंका स्मरण करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २३ ॥ चाँडाळका दर्शन  
करनेवाला सूर्यभगवानका शीमही दर्शन करछे, और चाँडाळको सूस्वाज्ज मनुष्य बल्लोंसहित  
स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ यदि प्राण्यन, क्षत्री, वैश्य यह भ्रजानतासे चाँडाळकी  
बनाई हुई पावडी में जल पीछे तो सातेदिन निराहार रहकर एकदिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ २५ ॥  
जिस कुरमें चाँडाळके पात्रका जल गिरगयाहो उस कुरके जलको पीनेसे तीनदिन तक गो-  
मूत्र पिये और जौका भोजन करनेसे शीम शुद्ध होता है, यदि कोई प्राण्यन बिना जानेहुए  
चाँडाळके पडेका जल पीछेता है, यदि बचने जल पीकर उसी समय उगळदिया वा बमनकर  
दीहै तो वह प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्धि प्राप्त करसकता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ परन्तु उस  
जलको न उगळकर वह जल छरीरमेंही पचसाय तो प्राजापत्यव्रतके करनेसे उसकी शुद्धि  
नहीं होगी वह सातपनव्रतके करनेसे शुद्ध होगा ॥ २८ ॥ प्राण्यन सातपन व्रत करै, क्षत्रिय  
प्राजापत्य व्रत करै, वैश्य अर्धप्राजापत्य करै और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध हो  
जाताहै ॥ २९ ॥ यदि प्राण्यन, क्षत्रिय, वैश्य, वा शूद्र यह बिनजानेहुए अल्पजोकि पात्रका  
जल, दही, दूध यह पीछे ॥ ३० ॥ तो मरकटचर्मके उपवास करनेसे बगकी शुद्धि होती है,  
और शूद्र एक दिन उपवास करनेसे और पयाप्लिष्ठ प्राण्यनों को दान देनेसे शुद्ध  
होता है ॥ ३१ ॥ जिस प्राण्यनने ब्रह्ममतासे चाँडाळके पराँका भ्रम भोजन कियाहो,  
उसकी शुद्धि दस दिन गोमूत्र और पचका योजन करनेसे होतीहै ॥ ३२ ॥ वह प्रतिदिन  
दसदिनतक गोमूत्र और पचका एक २ मास मद्यप्यकर नियमसहित व्रत करै तब दसदिनमें  
शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्य चंडालो यत्र वेदमनि तिष्ठति ॥ विज्ञात उपसंन्यस्य द्विजा  
कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥ मुनिवक्रो व्रतान्बर्मान्गापतो वेदपारगा ॥ पततमुद्ग-  
रेयुस्तं धर्मज्ञा पापसंकरात् ॥ ३५ ॥ दग्ना च सर्पिषा वैष क्षीरगोमूत्रपार्थि  
कम् ॥ भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥ अ्यहं भुंजीत दग्ना  
च अ्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥ अ्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकित्तिनप्रयम् ॥ ३७ ॥  
माषकुष्टं च भुंजीत भोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥ दपि क्षीरस्य त्रिपल पलमेकं  
भृतस्य तु ॥ ३८ ॥

यदि किसी प्राण्यनके पर चाँडाळ बिना जाने रहजाय, और इसके उपरान्त वह परबाळ  
उस निकालने, तो जिसके पर चाँडाळ रहा वा उसपर प्राण्यन हुआ करै ॥ ३४ ॥ जयंत

पारंगत धर्मज्ञ ब्राह्मण मुनियोंके मुखसे कहे हुए धर्मोंको गाकर उस पतित होतेहुए पुरुषका उद्धार करें ॥ ३५ ॥ अब उस पतितहुएका प्रायश्चित्त कहते हैं, वह पुरुष अपने कुटुम्ब और सेवकोंके साथ दही, घृत और दूधके साथ यवान्नका भोजन करै; और गोमूत्रका पान करै, तथा त्रिकालमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥ तीन दिनतक दहीसे खाय, और तीन दिनतक घृतके साथ भोजन करै, और तीन दिनतक दुग्धके साथ भोजन करै इसी भांति एक २ वस्तुसे एक २ दिन भोजन करै ॥ ३७ ॥ जिस मनुष्यका अंतःकरण दुष्ट हो उसका अन्न, उच्छिष्ट अन्न, और जो कृमिआदिकोसे दूषित होगयाहो ऐसे अन्नका भोजन न करै, तीनपल दही और दूध और एकपल घृत इसभांति भोजन करै ॥ ३८ ॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यताम्रयोः ॥ जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृन्मयम् ॥ ३९ ॥ कुसुंभगुडकार्पासलवणं तैलसार्पिणी ॥ द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्देश्मनि पाचकम् ॥ ४० ॥ एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ त्रिशतं गा वृषं चैकं दद्याद्दिग्दिशेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥ पुनर्लपनखातेन होमजाप्येन शुद्धयति ॥ आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥

अब जिस स्थानमें चांडालने निवास कियाहो उस स्थानकी तथा उस स्थानमें स्थित द्रव्योंकी शुद्धि कहतेहैं । काँसीके पात्र और ताँबेके पात्रोंकी शुद्धि भस्मद्वारा माँजनेसे ही होजाती है, और मिट्टीके पात्रोंका त्याग करना उचित है; और वस्त्रोंको जलसे धोडालै ॥ ३९ ॥ कुसुंभ, गुड, कपास, लवण, तेल तथा धान्यादिकोंको घरमेंसे बाहर निकालकर घरमें अग्नि लगादे, अर्थात् घरकी सम्पूर्ण भूमिको अग्निसे तपावै ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त घरको गोमयादिसे शुद्ध करके आप पूर्वोक्त व्रतोंसे शुद्ध हो उस घरमें सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन करावै, पीछे तीनसौ गौ और एक बैल उनको दक्षिणामें दे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त उस घरको लीपपोतकर उसमें हवन करै तब उस पृथ्वीकी शुद्धि होती है, ब्राह्मणोंके आघारसे भूमिदोष नहीं होता, अर्थात् लिपीहुई पृथ्वीके ऊपर ब्राह्मण बैठजाय तब वह पृथ्वी अशुद्ध नहीं रहती, अन्य जातिके बैठनेसे पृथ्वी अशुद्ध होजाती है, इसकारण उसे फिर शुद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

चंडालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्धयति ॥ ४३ ॥

यदि चांडालके साथ एक महीने या एकपक्षतक संसर्ग रहाहो तो पंद्रह दिनतक गोमूत्र पान करै और यवका भोजन करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ॥ चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥ ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥ गृहदाहं न कुर्वति शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रके घरमें धोवन, चमारी, लुब्धकी, अथवा वांसका कार्य करनेवाली अज्ञानतासे रहजाय ॥ ४४ ॥ तब जाननेके उपरान्त जो प्रायश्चित्त चांडाल-

छड़ी स्थिति करनेपर पहले कह आये हैं उससे आधा प्रायश्चित्त करे, सात प्रायश्चित्त और केवल गृहवाह न करे ॥ ४५ ॥

गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चङ्गालो यदि कस्यचित् ॥ तमागारादग्निं सार्यं मृद्गांढं  
तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥ रसपूर्णं तु मृद्गांढं न त्यजेत्तु कदाचन ॥ गोमयेन  
तु समिधैर्जले प्रोक्षेद्ब्रह्मं तथा ॥ ४७ ॥

यदि किसीके घरमें चाँडाल चलाजाय, तो उसे घरसे बाहर निकालकर मिट्टीके पात्रोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ किन्तु मिट्टीके पात्रोंमें घृतादि रस मराहो इनको न त्यागै । इसके ऊपर गोबरसे परको छीपवाले ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य घ्रणद्वारे पृथगोणितसमवे ॥ कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कर्म  
भवेत् ॥ ४८ ॥ गवां मूत्रपुरीषेण दधिर्क्षारेण सर्पिषा ॥ व्यहृत्वा च पीत्वा  
च कृमिदष्टं शुचिर्मथेत् ॥ ४९ ॥ क्षत्रियोपि मुषर्णस्य पशु मापान्प्रदाय तु ॥  
गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥ शूद्राणां नोपवासं  
स्याच्छूद्रो दानेन मुञ्चयति ॥

( प्रश्न ) यदि ब्राह्मणके घ्रणमें पीव और दधिर होकर घ्रणमें कृमी होनाय तो उसका प्रायश्चित्त क्या है ? ॥ ४८ ॥ ( उत्तर ) जिस ब्राह्मणको घ्रण में कृमि हो वह गौके मूत्र, गोबर, दही, दूध और घृतमें तीन दिनतक स्नान करे और इन्हीं पाँचों वस्तुओंको मिलाकर पीनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ४९ ॥ क्षत्रियके घ्रणमें यदि कृमी पडगये हों तो सुपात्र ब्राह्मणको पाँच मासे मुषर्ण दान दे तथा वैश्य गोदान और उपवास करनेसे मुक्त होता है ॥ ५० ॥ शूद्रको उपवास करनेकी आज्ञा नहीं है उसकी मुक्ति केवल दान देनेसेही होजाती है ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं षदति क्षितिदिवता ॥ ५१ ॥ प्रणम्य शिरसा ब्राह्मण  
मिष्टोमफलं हि तत् ॥ अपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥ ५२ ॥  
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥

जब ब्राह्मण "अच्छिद्रमस्तु" यह वचन उच्चारण करे ॥ ५१ ॥ तब मन्त्रक नवाव प्रणाम कर उस वचनको मह्य करनेसे अमिष्टोम यज्ञका फल मिळवा है । यदि किसी जयमें छिद्र हो भयवा तपमें छिद्र हो भयवा तो कुछ यज्ञकर्ममें छिद्र हो ॥ ५२ ॥ तथापि यदि ब्राह्मण उसे "अच्छिद्रमस्तु" ऐसा कह दे तो वह सम्पूर्ण कर्म निश्छिद्र होजायँ ॥

ध्याधिष्यसानिनि भाति दुर्भिन्ने ङामरे तथा ॥ ५३ ॥ उपवासो ऋतं होमो  
द्विजसंपादितानि वा ॥ अथ वा ब्राह्मणास्तुष्टां सर्वे कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ ५४ ॥  
सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ॥

यदि ध्याधि ष्यसन् यज्ञावत् तथा दुर्भिन्ना या किसीका भय हो तो ॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उपवास, ऋत तथा इतन इत्यादिक किये जाय और वह विधिसहित न होसके तो समस्त ब्राह्मण उपवास करनेवालेके ऊपरः अनुग्रहकर प्रसन्नहो "अच्छिद्रमस्तु" ऐसा वचन करे ॥ ५४ ॥ तो उन उपवासादिकोंसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्ति होजाती है;

दुर्वलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः ॥ ५५ ॥ ततोऽन्यथा भवेदोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥ स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्वायादज्ञानतोऽपि वा ॥ ५६ ॥ कुर्वत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥

दुर्वल तथा बालक और वृद्धके ऊपर कृपा करनी योग्य है ॥ ५५ ॥ इसके अतिरिक्त अन्यपुरुषके व्रत होम आदिकमें कृपाकरनेसे दोष होता है; स्नेह, लोभ, अथवा भय तथा अज्ञानसे ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य अनुग्रह करते हैं वह पाप उन्हींको हीतो है,

शरीरस्याऽस्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५७ ॥ महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाचन ॥ स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५८ ॥ ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

अब शरीरके नाश प्राप्त होनेपर जो नियम कहते हैं ॥५७॥ महत्कार्यके अपराधसे स्वस्थको भी नियम कहते हैं और जो मंदबुद्धि पुरुष स्वस्थों के निमित्त नियमका उपदेश नहीं करते ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य उनके प्रायश्चित्तमें विघ्नकरते हैं वह अशुचिनामक नरक में जातेहैं,

स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥ ५९ ॥

वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणकी विना आज्ञालिये स्वयंही प्रायश्चित्तके निमित्त व्रत करते हैं ॥ ५९ ॥ उनका वह व्रत निष्फल होजाता है, उनको व्रत करनेका पुण्य नहीं होता,

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद्विजः ॥ ६० ॥

कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु अन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥

एक ब्राह्मणभी जिस नियमकरनेके लिये आज्ञा देदे ॥ ६० ॥ तौ वह नियम करना योग्य है, जो इनका वचन उल्लंघनकरता है उसको भ्रूणहिसाका पाप होता है,

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥ ६१ ॥ तेषां वाक्योदकेनैव

शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥

॥ ६२ ॥ सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ उपवासो व्रतं चैव स्नानं

तीर्थं जपस्तपः ॥ ६३ ॥ विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥

ब्राह्मण जंगमतीर्थस्वरूप है और साधुभी तीर्थस्वरूप है ॥ ६१ ॥ पापी पुरुष उन ब्राह्मणोंके वचनरूपी जलसे शुद्ध होजाते हैं, उत्तम ब्राह्मणोंके वचनको देवताभी मानते हैं ॥६२॥ ब्रह्माभ्यासी सदाचारयुक्त सर्वदेवमय हैं, उनका वचन निष्फल नहींहोता, ब्राह्मण जिसके उपवास व्रत तथा स्नान तीर्थ अथवा जप तप आदिको ॥ ६३ ॥ यह समाप्त होजाय इसभांति कहदे उन उपवासादिके करनेवालेको पूर्णफल प्राप्त होता है,

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥ ६४ ॥

तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥

कृमि, और मक्खीआदिसे जो अन्न दूषित होजाय या जिसमें बाल पडजाय तौ ॥ ६४ ॥ जलसे हाथ धो डालै, और अन्नपर किंचित्मात्रही भस्म डालदे तब शुद्धि होजाती है,

भुजानश्चैव यो विप्रः पाद हस्तेन सस्युशेत् ॥ ६५ ॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुक्ते यो भुक्ते भुक्तभाजने ॥

जो ब्राह्मण भोजन करतेसमयमें अपने पैरोंको छुए तो ॥ ६५ ॥ और उच्छिष्ट पात्रमें जो भोजन करता है, वह अपने उच्छिष्ट को खाता है,

पातुकास्यो न मुंजीत पर्यकस्य स्थितोऽपि वा ॥ ६६ ॥

भानभण्डालहृदयैश्च भोजनं परिषर्जयेत् ॥

कढाई पहरकर या पछापर बैठकर भोजन न करे ॥ ६६ ॥ कुत्ते और चोंडाछको देख-  
वाहुमा भोजन न करे,

यदन्न प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैषाहं वदामि ध' ॥

जो अन्न निषिद्ध है उसकी शुद्धि ॥ ६७ ॥ जिसमांति पराशरजीने कही है उसीमांति मैं तुमसे कह रहा हूँ;

शृत द्रोणाडकस्यान्नं काकभानोपधातितम् ॥ ६८ ॥ केनेद् शुद्धयते चेति

ब्राह्मणेभ्यो निषिदयेत् ॥ काकभानावलीढं तु द्रोणार्धं न परित्यजेत् ॥ ६९ ॥

वेदवेदांगविद्विषैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥ प्रस्थादा त्रिस्रतिद्रोणं स्मृतो विप्रस्य

आडक' ॥ ७० ॥ ततो द्रोणाऽऽडकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिषिदो विदुः ॥ काकभानावलीढं

तु गवाप्राप्तं क्षरेण वा ॥ ७१ ॥ स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाडके भवेत् ॥

अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्र यद्य छालाहृतं भवेत् ॥ ७२ ॥ सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुता

शनिश्च तापयेत् ॥ हुताशनेन सस्युष्टं सुवर्णसल्लिखेन च ॥ ७३ ॥ विभाजां

ब्रह्मघोषेण भीर्ज्यं भवति तक्षणात् ॥

श्रेणकी बराबर अन्न और आडकभर शृत ( पकायेहुए ) अन्नको यदि काक भान रूपित  
करनाय ॥ ६८ ॥ ही उस अन्नको ब्राह्मणोंके आगे भर उनसे पूछे कि इसकी शुद्धि किसमांति

होगी, फिर जिसमांति वह बतलावे उसीमांति करके और उस अन्नको न छेड़े ॥ ६९ ॥ वेद  
वेदांगके ज्ञानमेवाले, और धर्मशास्त्रके अनुकूल जो ब्राह्मण भाचरण करते हैं, उनका कथन है

कि वहीस प्रस्थका एक श्रेण होता है, और वहीस प्रस्थका एक आडक कहावाही ॥ ७० ॥  
इसमांति श्रेण और आडक अन्नकी श्रुति और स्मृति के ज्ञावाही आगते हैं श्रेण और आडक

भर अन्नको यदि कौये और कुत्तेन खाटाही या गौ या गधेने सूं खा हो ॥ ७१ ॥ ही  
इसकी शुद्धि उसमेंसे किंचित् अन्नके निकालनेसेही होवाती है, जितने अन्नमें वनकी राख

दपकी है इतने अन्नको निकालकर भेषको ॥ ७२ ॥ सुवर्णके जलसे छिडकर अग्निमें तपावे,  
कारण कि अग्निमें तपाने और सुवर्णका जल छिडकनेसे ॥ ७३ ॥ तथा ब्राह्मणोंके वेदमंत्र

पठनेसे वह अन्न पानेके योग्य होजाता है,  
खेदो या गोरसो वापि तत्र शुद्धि' कर्म भवेत् ॥ ७४ ॥ अल्प परित्यजेत्तत्र  
खेहृसीत्यधनेन च ॥ अनलज्वालाया शुद्धिर्गौरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पञ्चोऽध्यायः ॥ ६ ॥

( प्रश्न ) स्नेह ( घृतआदि ) गोरस अन्न ( दुग्ध आदि ) वह यदि अशुद्ध होजाँय तौ इनकी शुद्धि किसभाँति होती है ॥ ७४ ॥ ( उत्तर ) उनमें से थोडासा भलग निकालकर स्नेहादिक को उछालकर शुद्ध करले; और गोरसकी आग्नि में तप्तकरने से शुद्धि होजाती है ॥ ७५ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा ॥

दारवाणां तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अब पराशरजीके वचनके अनुसार द्रव्योंकी शुद्धिका विधान कहते हैं, काठके बनायेहुए पात्रोंको छोल डालनेसेही शुद्धि होजाती है ॥ १ ॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥ चरूणां सुक्स्तुवाणां च शुद्धिरूपेण वारिणा ॥ भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

और यज्ञके कर्ममें यज्ञपात्रोंकी केवल हाथके मांजनेसेही शुद्धि होजाती है, तथा चमस और ग्रहके पात्रोंकी शुद्धि जलसे धोनेपर होजाती है ॥ २ ॥ चरु, सुक्, और सुवेकी शुद्धि केवल गरम जलसेही होजाती है काँसीके पात्र भस्मसे और ताँबेके पात्र खटाईसे पवित्र होजाते हैं ॥ ३ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ॥

नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥

यदि जो स्त्री नीचजातिके साथ संगति न करे तो वह ऋतुमती होनेपर शुद्ध होजाती है; यदि नदीमें कोई अशुद्ध वस्तु नदीखती हो तौ वह प्रवाहसे पवित्र होजाती है ॥ ४ ॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन ॥

उद्धृत्य वै कुंभशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

वापी, कूप, तडागादि यदि यह किसी भाँति अशुद्ध होगये हों, तो उनमेंसे सौ घडे जल निकालकर उनमें पंचगव्यके डालनेसे उनकी शुद्धि होजाती है ॥ ५ ॥

अष्टवर्षा भवेद्गैरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥ प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ॥ मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरोऽनिशम् ॥ ७ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं याति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥ यस्तां समुद्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ असंभाष्यो ह्यपांक्तयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥ यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥ स भैक्ष्यभुग्जपत्रित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

आठ वर्षकी कन्याको गौरी और नौ वर्षकी कन्याको रोहिणी कहते है, और दशवर्षकी कन्या कन्याही कहाती है उसके उपरान्त रजस्वला होजाती है ॥ ६ ॥ कन्याके वरह

पप होनेपर यदि कन्याका दाम न क्रियाजाय तो उस मनुष्यके विरर प्रत्येक महीनेके  
घसके रजसा पान करतेहैं ॥ ७ ॥ कन्याको ( जिसका विवाह न हुआहो ) रजस्वलाहूँ  
देकरकर माता, पिता, और पढाभाई यह चीनों नरकको जाते हैं ॥ ८ ॥ जो मासम अज्ञ-  
नगासे मोहित होकर उस कन्याके साथ विवाह करताई यह रूपस्त्रीपति कहाता है, इससे  
संभाषण करना उचित नहीं, और पंछिसे याहर कर देना योग्य है ॥ ९ ॥ जो मासम एक-  
रात्रिमी वृषडीका सेवन करता है तो यह तीनवर्षक भिक्षात्मका भोगन करताहुआ पापत्री  
सम्प्रदे अपनेसे शुद्ध होता है ॥ १० ॥

अस्तगते यदा सूर्ये शंढालं पतित स्त्रिय ॥ सूतिकां स्पृशते शैव कर्म शुद्धि  
विधीयते ॥ ११ ॥ जातयेवं सुवर्ण च सोममार्गं विलोक्य च ॥ ब्राह्मणात्  
मतर्भियं ज्ञानं कृत्वा विमुद्घति ॥ १२ ॥

( मत्र ) सूर्यके अस्तहोनेपर जो ब्राह्मण पंथित मनुष्यका वा सूतिका स्त्रीका स्पर्श करे  
तो उसकी शुद्धि किसप्रकार होगी ॥ ११ ॥ ( उत्तर ) ब्राह्मणकी ब्राह्मणसे ज्ञानके उपरान्त  
अग्नि, सुवर्ण और चन्द्रमाका दर्शन करे; यदि उचसमय चन्द्रमा उदय न हुआहो तो जिस  
विज्ञानमें चन्द्रमा हो उसी विज्ञानका वर्धन करके तब शुद्ध होवाई ॥ १२ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा ॥ तावचिष्टेन्निराहारा त्रिरात्रे  
णीय मुद्घति ॥ १३ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ॥ अर्द्ध  
कृच्छ्रं चरेत्पूर्वां पादमेकं त्यनन्तरा ॥ १४ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी  
वैश्यजां तथा ॥ पादहीनं चरेत्पूर्वां पादमेकमनन्तरा ॥ १५ ॥ स्पृष्ट्वा रजस्व  
लान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ॥ कृच्छ्रेण शुद्घति पूर्वां शूद्रा दानेन  
शुद्घति ॥ १६ ॥

यदि जो ब्राह्मणी रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करे तो प्रत्येक स्त्री तीन २ दिन अथ करे  
तब शुद्ध होगी ॥ १३ ॥ यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया यह दोनों रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श  
करे तो ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ्र करे और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १४ ॥  
यदि ब्राह्मणी और वैश्यकी स्त्री इन दोनोंके अलगमें होनेपर आपसमें एक दूसरीका स्पर्श करे,  
तो ब्राह्मणी पादोन ( पौन ) कृच्छ्र अथ करे, और वैश्यकी स्त्री चौथाई कृच्छ्र अथ करनेसे शुद्ध  
होतीहै ॥ १५ ॥ यदि ब्राह्मणी और शूद्रकी पुत्री रजस्वला होकर परस्परमें एक दूसरेका स्पर्श  
करे तो ब्राह्मणी पूर्ण कृच्छ्र अथ करे शुद्ध होतीहै और शूद्रकी पुत्री दान करनेसे ही  
शुद्ध होजातीहै ॥ १६ ॥

घाता रजस्वला या तु चतुर्थेहनि शुद्घति ॥

कर्पादमोनिपृती तु वैश्विष्यादिकर्म च ॥ १७ ॥

पद्यपि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होजातीहै परन्तु रजस्वी निवृत्ति होने  
परही वैश्वकर्म तथा पितृकर्म करसकती है ॥ १७ ॥

रोगेण यद्गजः स्त्रीणामन्वह तु प्रवर्तते ॥

नाऽशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥



जिस स्त्रीको रोगके कारण प्रतिदिन रजःस्राव हो वह स्त्री उस रजसे अशुद्ध नहीं होती, कारण कि वह रज स्वाभाविक नहीं है ॥ १८ ॥

साध्वाचारा न तावत्स्यादजो यावत्प्रवर्तते ॥

रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥ १९ ॥

जबतक स्त्रीको रजकी प्रवृत्ति रहती है तबतक उसका अधिकार सत्कर्ममें नहीं है; और पतिके साथ सहवास करने योग्य और घरके कामकाज करनेयोग्य भी नहीं होती ॥ १९ ॥

प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥

तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥

स्त्री रजस्वला होनेपर पहले दिन चांडाली और दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी तीसरे दिन धोविन्धि की समान होती है और चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है ॥ २० ॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥

स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥ २१ ॥

पुरुष अथवा स्त्री रोगी होजाय और उसी अवस्था में उसको स्नानकी आवश्यकता हो तब निरोग मनुष्य क्रमानुसार दशवार स्नान करके उस रोगीको स्पर्श करले तब वह रोग युक्त पुरुष अथवा स्त्री शुद्ध होजाते हैं ॥ २१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥

उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥

यदि किसी उच्छिष्ट शूद्र अथवा श्वानसे कोई पुरुष स्पर्श करके ब्राह्मणको स्पर्श करले तब वह ब्राह्मण एक रात्रि उपवास कर पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥

तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥

अनुच्छिष्ट शूद्रके स्पर्श होजानेसे ब्राह्मणको स्नानकरना उचित है यदि कोई उच्छिष्ट पुरुष स्पर्शकरले तब प्राजापत्य व्रत करे ॥ २३ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ॥ सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्यु-

पलेपनैः ॥ २४ ॥ गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥ शुद्ध्यन्ति

दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥ गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै

कांस्यभाजने ॥ षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥

जिस कांसीके पात्रमें सुराका स्पर्श न हुआहो वह भस्मसे मार्जन करनेपर शुद्ध होजाता है और यदि जिसमें मदिराका स्पर्शभी होगयाहै वह वारंवार अग्नि डालकर भाजने से ही शुद्ध हो जाताहै ॥ २४ ॥ गौके सूँघेहुए, काकके चोंचलगाये हुए, कुत्तेके चाटेहुए तथा शूद्रके उच्छिष्ट कांसीके पात्र दशवार खटाईं आदि क्षार पदार्थसे रगड़कर धोवै तब उनकी शुद्धि हो जातीहै ॥ २५ ॥ यदि कांसीके पात्रमें किसीने कुल्ला करदियाहो तब उस पात्रको छैः महीनेतक पृथ्वीमें गाढवे इसके पीछे उखाड़ कर व्यवहारमें लावै ॥ २६ ॥



आयसेष्वापसानां च सीसस्यामौ विशोधनम् ॥ दत्तमस्थि तथा शृंग रीप्यं  
सीवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥ मणिपात्राणि शंस्रक्षेत्पेतान्प्रसालयेच्च ॥

छोहके पात्रको सागनेसे और शीशोके पात्रको तपानेसे तथा हाथ, अस्थि, सींग, चांदी  
और सुवर्णका पात्र ॥ २७ ॥ मणि, रत्नोंके पात्र और शंस्रको जलसे धो छेनेपर इनकी  
शुद्धि होजातीहै,

पाषाणे तु पुनर्घर्ष एषा शुद्धिरुदाहता ॥ २८ ॥

और पत्थरके पात्रको जलसे धोनेके उपरान्त मार्ग बाढना और घर्षणकरना भी उचित है  
तब इसकी शुद्धि होतीहै ॥ २८ ॥

मृन्मये दहनान्छुद्धिर्घाम्यानां मार्गनादपि ॥

मृत्के पात्रकी शुद्धि जलसे होतीहै, और घाम्योंको मज्जीमांति मलकर घोंबे तब शुद्ध  
होजायेहै,

वेणुवल्कलवीरानां क्षीमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥

और्णनेत्रपटानां च मोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥

पांस बल्कल, फटेबख, रेसमी बख, सूतीबख ॥ २९ ॥ ऊनी बख, नेत्रपटः (समके बख)  
यह घोंबेसेही शुद्ध होजायेहै ॥ ३० ॥

मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलवर्मेणाम् ॥

तृणकाष्ठस्य रज्जुमासुदकाम्पुक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥

मूज, उपस्कर, शूर्प, (छाज) सन, फल, बर, तृण, काठ, रस्सी इनकी शुद्धि केवल  
जल छिड़कनेसेही होजातीहै ॥ ३१ ॥

सूलिकाशुपधानामि रक्तवस्त्रादिकामि च ॥

शोपपित्तवार्कतापेन मोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥

सोसक, तकिया, शय्या, छादबख, इन्हें मूषमें सुखाकर जल छिड़कनेसे इनकी शुद्धि  
होजाती है ॥ ३२ ॥

मार्गारमसिकाफीटपतगकृमिदुर्मुः ॥

मेघ्यामेघ्यं स्पृशंतो ये नोच्छिष्टं मनुजप्रधीत् ॥ ३३ ॥

बिडास, मज्जीका फीट, पतंग, कीड़े, ईडक यह सब शुद्ध मज्जी बस्तुओंका स्पर्श करते  
रहतेहैं, इसकारण इनके स्पर्शसे कोई बस्तु अपवित्र नहीं होती, यह मनुजीका कथन है ॥ ३३ ॥

महीं स्पृष्टा गतं तोषं याश्चाप्यन्योन्यविमुप ॥

भुक्तोच्छिष्टं तथा खेहं नोच्छिष्टं मनुजप्रधीत् ॥ ३४ ॥

जो जल पृथ्वीकी सारी दरके अन्वय लक्षमें मिश्रणपादे और जो एकसे बज्जकर दूसरेके  
ऊपर छीटे गये हैं, यदि मुच्छिष्ट शोष ती भी अपवित्र नहीं होया, इसी भांति मुच्छिष्ट  
देखभी मज्जी नहीं दाया, यह मनुजीका मत है ॥ ३४ ॥

तांबूलेक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने ॥

मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥

तांबूल, इक्षु, फल, तेल, अनुलेपन, मधुपर्क तथा सोमरस इनमे उच्छिष्टता नहीं होती यह मनुजीका कथन है ॥ ३५ ॥

रथ्याकर्द्धमतोयानि नावः पंथास्तृणानि च ॥

मारुताकेण शुद्ध्यन्ति पकेष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥

मार्गकी कीच, और जल, नाव, मार्ग, तृण, तथा पकी ईंटोंकी चिनाई यह सब वायु और सूर्यके संयोगसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३६ ॥

अदुष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ ३७ ॥

पवनसे उड़ीहुई धूरि, और चारों ओर फैली हुई निर्मल धारा वृद्ध स्त्री और बालक यह कदापि दूषित नहीं होते ॥ ३७ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥

पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥

छीकनेपर, थूकनेपर, दांतोंसे किसी अंगके उच्छिष्ट होजानेपर, मिथ्या बोलने पर या पतितोंके साथ सम्भाषण करनेपर अपने दहिने कानका स्पर्श करै ॥ ३८ ॥

अमिरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥ एते सर्वेपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३९ ॥ प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥ विप्रस्य दक्षिणे

कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥

कारण कि, अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य, पवन, यह सब ब्राह्मणोंके दहिने कानमें निवास करतेहैं ॥ ३९ ॥ प्रभासआदि तीर्थ और गंगा इत्यादि नदियें यह ब्राह्मणोंके दहिने कानमें स्थिति करतीहैं, यह वचन मनुजीका है ॥ ४० ॥

देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥ रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्म समाचरेत् ॥ ४१ ॥ येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥ उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥ आपत्काले तु निस्तीर्णं शौचाऽऽचारं न चिन्तयेत् ॥ शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७ ॥

देशका नाश होनेके समय, परदेशमें रोगयुक्त होनेपर और आपत्तियोंके आनेपर पहले सब प्रकारसे अपने शरीरकी रक्षा करनी उचित है इसके उपरान्त धर्माचरण करै ॥ ४१ ॥ अपने ऊपर विपत्ति आनेपर क्रोमल वा कठोर वा जिसकिसी उपायसे होसके अपने दीन आत्माका उद्धार करै, इसके पीछे सामर्थ्ययुक्त होकर धर्मका अनुष्ठान करै ॥ ४२ ॥ आपत्तिकाल उपस्थित होनेपर शौचाचारका विचार न करै, पहले अपना उद्धार करै, इसके पीछे स्वस्थ होकर धर्माचरण करै ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ८

गवां बंधनयोक्तेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥ अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं फल  
भवेत् ॥ १ ॥ वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥ स्वकर्मरतविप्राणां  
स्वकं पाप निवेदयेत् ॥ २ ॥

( प्रश्न ) यदि कोई गौ छूटने में बैधी हुई अकामतः मृत्युको प्राप्त होगी तो उस अकाम-  
कृत पापका प्रायश्चित्त किसमांति होना उचित है? ॥ १ ॥ ( उत्तर ) जो वेद वेदांगके ज्ञान-  
नेवाले धर्मशास्त्रके पारदर्शी और सर्वथा अपने कर्तव्य कर्ममें निरत ऐसे ब्राह्मणोंसे वह पापी  
पुरुष अपनी पाप निवेदन करे ॥ २ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य वृक्षणम् ॥ उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं  
समर्हति ॥ ३ ॥ सद्यो निःसंशये पापे न मुंजीतानुपस्थितः ॥ मुजानो वद्व्ये  
त्यापं पर्यधत्र न विद्यते ॥ ४ ॥ संस्रये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ॥  
प्रमादस्तु न कर्त्तव्यो यथैषासंक्षयस्तथा ॥ ५ ॥ कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं  
यिवद्वेति ॥ स्वल्पं वाप प्रभूत वा धर्मविज्ञो निवेदयेत् ॥ ६ ॥ तेषु पाप  
कृतां वैद्या हतारश्चैव पाप्मनाम् ॥ व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजा  
पहा ॥ ७ ॥

उस पापीको किस अवस्थासे उन ब्राह्मणोंके पास जाना होगा सो कहते हैं, व्याधमांति  
अपने पास आये हुए उस पापीको ब्राह्मण व्रतकरमेकी आज्ञा है ॥ ३ ॥ यदि निष्प्रयत्नी पाप  
छिपावे, वह विदित होजाय तो उस पापको धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके ऊर्ध्व निवेदन किये बिना  
भोजन न करे; यदि बिना परिपक्वके निकट गये भोजन करले तो पापकी बुद्धि होतीही ॥ ४ ॥  
यदि पाप करनेमें सन्देह होजाय तो उसका निष्प्रयत्न बिना हुए भोजन न करे; और जबतक  
उसका निष्प्रयत्न न होजाय जबतक असावधानगी रहना उचित नहीं ॥ ५ ॥ किये हुए पापको  
कभी न छिपावे, कारण कि छिपानेसे पापकी बुद्धि होतीही, पाप बोझ हो पाई बहुत हो  
उसे धर्मके ज्ञानेवाले ब्राह्मणोंके व्यागे निवेदन करे ॥ ६ ॥ कारण कि उसके पापोंका जानकर  
जिसमांति बुद्धिमान वैद्य रोगीकी पीडाको दूरकरताई, उसी प्रकार ब्राह्मण उसके पापको  
मष्ट करनेका उपाम करेगा ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने द्वीमान्सत्यपरायणः ॥ सुदुर्जवसंपन्नः शुद्धिं गच्छेत्  
मानवः ॥ ८ ॥ सचैलं वाग्यतः आत्वा क्षिप्रवासा समाहितः ॥ क्षत्रियो वाय  
वेद्यो वा ततः पर्यदमायमेत् ॥ ९ ॥ उपस्थाय ततः क्षीयमार्तिमान्धरणि  
व्रजेत् ॥ गात्रिश्च क्षिरसा धैव मघ किंचिदुदाहरेत् ॥ १० ॥

( इसमांति परिपक्वकी आज्ञानुसार ) पापका प्रायश्चित्त करनेपर कजाक्षीर, सत्यपरायण  
सरसस्वभाव पुरुष क्षीप्रही शुद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ यदि क्षत्रिय हो चाहे वैश्य हो  
पापका समाप्त होवेही मीन पारजकर बर्छोसहित स्नानकरे, और गीले बर्छोंको पहरे हुएही  
सावधानीसे परिपक्वके निकट जाय ॥ ९ ॥ पापी इसमांति क्षीप्रवाके साथ परिपक्वके समीप  
जाकर दिनपूर्वक साष्टांग प्रणामकरे, और कुछ न चाहे ॥ १० ॥

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः संध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ॥ अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणा  
नामधारकाः ॥ ११ ॥ अब्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः  
समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १२ ॥ यद्ब्रदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममत-  
द्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥ १३ ॥ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि  
प्रायश्चित्तं ददाति यः ॥ प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदि ब्रजेत् ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण वेद और गायत्रीको नहीं जानते, और सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र नहीं  
करतेहैं, सर्वदा खेतीके कार्यमेंही लगे रहतेहैं वह केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं ॥ ११ ॥ ऐसे  
व्रतमन्त्रसे रहित और जातिके नाममात्रसे जीविका करनेवाले इकट्ठेहुए सहस्रों ब्राह्मणोंको  
परिषद् नहीं कहा जासकता ॥ १२ ॥ अज्ञानरूपी अन्धकारसे ढके मूढ धर्मशास्त्रको न  
जाननेवाले मूर्ख ब्राह्मण यदि प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करदे तौ वह पापी पापसे छूट ती  
जाताहै, परन्तु वह पाप सौगुना होकर उन व्यवस्था देनेवालोंके शरीरमें प्रवेश करताहै  
॥ १३ ॥ जो विना धर्मशास्त्रके जानेहुए प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देतेहैं पापी पुरुष तौ उस  
व्यवस्थाके अनुसार शुद्ध होजाताहै, परन्तु वह पाप व्यवस्था देनेवाले परिषद्के शरीरमें  
प्रवेश करताहै ॥ १४ ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु  
सहस्रशः ॥ १५ ॥ प्रमाणमार्गं मार्गतो येऽधर्मं प्रवदन्ति वै ॥ तेषामु-  
द्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥ यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुता-  
र्केण शुद्ध्यति ॥ एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तत्र दुष्कृतम् ॥ १७ ॥ नैव  
गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ॥ मारुतार्कादिसंयोगत्पापं नश्यति  
तोयवत् ॥ १८ ॥ चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवंतोऽग्निहोत्रिणः ॥ ब्राह्मणानां  
समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९ ॥ अनाहितामयो येन्ये वेदवेदांगपा-  
रगाः ॥ पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥ मुनीनामा-  
न्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ॥ वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भ-  
वेत् ॥ २१ ॥

चारजने या तीन जने वेदके जाननेवाले ब्राह्मण जो व्यवस्था देतेहैं उसीको यथार्थ धर्म  
जानै, अन्य सहस्रों मनुष्योंका वचनभी धर्मस्वरूप नहीं होसकता ॥ १५ ॥ जो प्रमाणके  
मार्गको ढूँढकर अर्थात् सम्पूर्ण वचनोंका प्रमाण सग्रहकर धर्मशास्त्रकी व्यवस्था देतेहैं उनसे  
पाप भयभीत होताहै, वास्तवमें वही धर्मके कहनेवाले हैं ॥ १६ ॥ जिसभाति पत्थरके ऊपर  
रक्खा हुआ जल वायु और सूर्यके उच्चापसे सूखजाताहै, उसी भाति परिषद्की आज्ञासे  
सम्पूर्ण पापोंका नाश होजाताहै ॥ १७ ॥ और न वह पापकर्ताके शरीरमें रहतेहैं और  
परिषद्के शरीरमेंभी प्रवेश नहीं करते वायु और सूर्यके संयोगसे सूखेहुए जलकी समान नष्ट  
हो जातेहैं ॥ १८ ॥ वेदवेत्ता अग्निहोत्री ब्राह्मण तीन अथवा चार होनेसे परिषद् होतीहै ॥ १९ ॥

जो ब्राह्मण वेद वेदांगके पारगामी धर्मज्ञ हैं और अभिद्वेष करनेवाले नहीं हैं, वी इन पाँच वा तीन पुरुषोंके समूहकोभी परिपद् कहाँ ॥ २० ॥ श्रान्तधारणादि द्वारा आत्मतत्त्वको जानने वाले मुनि, यह करनेवाले तथा सावक इनमेंका एक पुरुषभी परिपद् हो सकता है ॥ २१ ॥

पञ्च पूर्व मया प्रोक्तास्तेषां चासमभे प्रयाः ॥

स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिपत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

ऊपर कह भायेहैं कि पाप वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी एकत्रित होनेपर परिपद् होती है परन्तु यदि ऐसे पाँच ब्राह्मण न मिलें वी शास्त्रोक्त निम्न वृत्तिमें संतुष्ट बनके मिलनेपर परिपद् होसकती है ॥ २२ ॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्रा केवलं नामधारकाः ॥ परिपत्स्व न तेष्वस्ति सहस्र

गुणितेष्वपि ॥ २३ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा धर्ममयो मृगः ॥ ब्राह्मण-

स्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥ ग्रामस्थानं यथा धूर्त्वं यथा

फूपस्तु निर्जलं ॥ यथा हुतमनभौ च अमंत्रो-ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥

यथा पटोऽफलं श्रीपु यथा गीरुपराऽफला ॥ यथा शतोऽफलं दानं तथा

धिप्रोञ्जुचोऽफलः ॥ २६ ॥ चित्रकर्म यथानेके रगीरुमीत्यते शनैः ॥ ब्राह्म-

प्यमपि तद्विद्धि संस्कारिर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥

इसके अतिरिक्त जो केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं वह सहस्रों एकत्रित होनेपरभी परिपद्

नहीं होसकती ॥ २३ ॥ जिसमांति फलका हाथी, जैसा धर्म का मृग, वेदको न जानने-

वाला ब्राह्मणभी वहीप्रकार है, यह तीनों केवल नाममात्रके धारण करनेवाले हैं ॥ २४ ॥

जिसमांति क्षुद्र मम, निर्जल रूप, और अभिहीन मरुतके डेरमें रहन करना निष्फल है वही

मांति विनामंत्रोंका जाननेवाला ब्राह्मणभी निष्फल है ॥ २५ ॥ जिसमांति नपुंसकका लीके

साथ सन्धेग निष्फल होजाताहै जिसमांति ऊपर भूमि निष्फल है, जिसमांति मूर्खको दान

देना निष्फल है वहीमांति बेच मंत्रोंको न जाननेवाला ब्राह्मण निषिद्ध है ॥ २६ ॥ चित्र-

कारीके काम में जानामांतिके रंग शनैः २ भरे जातेहैं वहीमांति अनेक सत्कारोंसे मन्त्रोंके

द्वारा ब्राह्मणत्व होताहै ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ॥

ते द्विजाः पापफमाणः सभेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥

नाममात्रके ब्राह्मण प्रायश्चित्तकी व्यवस्था वेपेहैं बद् पायी हैं और उनको नरककी प्राप्ति

होतीहै ॥ २८ ॥

यं पठति द्विजा येद् पञ्चयज्ञरत्नाभ्यं ये ॥ श्रेलोक्य तारयत्येष षड्विंशतिरता

अपि ॥ २९ ॥ समणीत इमशानेषु दीतोऽपि सर्वमक्षयः ॥ तथा च येद-

पिद्विमं मर्यमक्षाऽपि देयतम् ॥ ३० ॥ भमेष्पानि तु सयाणि प्रक्षिप्येते

यथादेव ॥ तथैव किञ्चिदं सर्वं प्रक्षिपेथ द्विजानले ॥ ३१ ॥

जो म क्षय वेदको पठत है और जो निम्न पचया करनेमें तारक रहत है ये यद्यपि षडे िष्टपरायण हो तथापि विनामीको धारण करत है ॥ २९ ॥ समानमें मर्त्य तु हैं मभि

मंत्रोंसे संस्कार होनेके कारण जिसभांति सर्वभोक्ता है उसीभांति ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर संस्कारको प्राप्तहुआ ब्राह्मण सर्वभुक् और देवरूप है ॥ ३० ॥ जिसभांति सम्पूर्ण अपवित्र वस्तुओंको जलमें डालदिया जाताहै, उसीप्रकार सम्पूर्ण पापोंको निर्मल ब्राह्मणोंके ऊपर डालदेना उचित है ॥ ३१ ॥

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ॥

गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यंते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥

गायत्रीहीन ब्राह्मण शूद्रसेभी अधिक अपवित्र है, और जो ब्राह्मण गायत्रीनिष्ठ और ब्रह्मतत्त्वको जानतेहैं वह श्रेष्ठ और पूजनीय हैं ॥ ३२ ॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ॥

कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥ ३३ ॥

दुःशील होनेपरभी ब्राह्मण पूजनीय हैं, और शूद्र जितेन्द्रिय होनेपरभी पूजनीय नहीं होसकता, ऐसा कौन मनुष्य है जो देख भाल करेभी दूषित अग गोको त्यागकर शीलवती गधैयाको दुहैगा ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ३३ ॥

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ॥

क्रीडार्थमपि यद्व्यूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥

जो ब्राह्मण धर्म शास्त्ररूपी रथपर चढकर वेदरूपी खड्गको धारण करतेहैं वह यदि हँसी खेभी जोकुछ कहदे उसकोही परम धर्म जानना ॥ ३४ ॥

चातुर्वेद्योऽविकल्पो च अंगविद्धर्मपाठकः ॥

त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेपा दशावरा ॥ ३५ ॥

चारों वेदोंका जाननेवाला, निश्चिन्त ज्ञानयुक्त वेदके अंगोंका पारदर्शी और धर्मशास्त्र पढानेवाला इकलाही श्रेष्ठ परिपद् होसकताहै, प्रधान आश्रमोंके दश होनेपरभी वह मध्यमही परिपद् होती है ॥ ३५ ॥

राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥

इसकारण ब्राह्मण राजाकी आज्ञानुसारही प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दे; अपने आपसे कदापि न दे ॥ ३६ ॥ यदि ब्राह्मणकी बिना सम्मतिके लिये राजा कोई व्यवस्था देदे तो उस पापीका पाप सौगुना बढ़कर राजाके शरीरमें प्रवेश करजाताहै ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ॥ आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्दे वेदमातरम् ॥ ३८ ॥ सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुब्रजेत् ॥ ३९ ॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ४० ॥ आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेण्य सखले ॥ अक्षयंती न कथयेत्पिबंतं

सैव यत्सकम् ॥ २१ ॥ विश्वतीपु विविक्तोय सविशंतीपु सविशेव ॥ पतितां  
पकळमां वा सर्वमाणै समुद्धरेत् ॥ २२ ॥

यदि ब्राह्मण देवमदिरके सन्मुख बैठकर व्यवस्था दे दे तो वेदमाता गायत्रीका जप करनेसे मुद्ध होताहै ॥ २८ ॥ प्रायश्चित्त करनेके समयमें पहले सिखासहित सिखा मुंडन कपाने, त्रिकासमें स्नान करे और दिनमें गौके पीछे २ फीरे और रात्रिके समय गोशाळमें शयन करे ॥ ३९ ॥ चाहे गरम पवन चले; चाहे ठंडी दशा चले चाहे आंधी बसतीहो, चाहे वर्षा होतीहो परन्तु अपनी रक्षाकी ओर ध्यान न देकर अपनी शक्तिसे अनुसार गौकी रक्षा करनी अवश्य कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अपने या दूसरेके घरमें अन्नवा सेतमें वा लक्षमें यदि गौ कुछ धान्यादिक खातीहो तो कुछ न चोखे, और जो बछड़ा गौका वृष पीताहो तो भी कुछ न कहे ॥ ४१ ॥ गौके जखपान करनेपर पीछे आप जखपिसे, गौके शयन करनेपर पीछे आप शयन करे, और यदि मौ किसी भांति गिरपड़े वा कौचइमें कैसजाय तो, यथा-शक्ति उसको उठावे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थं वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥

सुरूपते ब्रह्महत्याया गोसा गोब्राह्मणस्य च ॥ २३ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और गौके निमित्त अपने प्राण त्याग करताहै वह और ब्राह्मण और गौकी रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे घूट जाताहै ॥ ४३ ॥

गोयधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥ प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत्  
चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥ एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजन ॥ अयाचिता  
इयमेकहरेकाह मारुताशनः ॥ ४५ ॥ दिनद्वयं चैकभक्तौ द्विदिन नक्तभोजनः ॥  
दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताशनः ॥ ४६ ॥ त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं  
नक्तभोजनः ॥ दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥ ४७ ॥ चतुरहं  
स्येकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजन ॥ चतुर्विनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः  
॥ ४८ ॥ प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ विप्राणां दक्षिणां दद्यात्प-  
विश्राणि जपेद्विनः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोमं शुद्धचम्रं सशयः ॥ ५० ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे अष्टमाध्यायः ॥ ८ ॥

गोयधक प्रायश्चित्तके निमित्त प्राजापत्यके प्रतकी व्यवस्थाकरे और प्राजापत्यनामक कृच्छ्रप्रवको चारमासोंमें विभक्त करे ॥ ४४ ॥ एक दिन एक रात्रिमें एकमुक्त भोजन करे, अयाचित पदार्थका भोजन करे, और एक दिन केवल चापुडाही सेवन करे ॥ ४५ ॥ दूसरे प्राजापत्यकी यह विधि है; दो दिन एकमुक्त रहे; वा दिनरात्रिमें भोजन करे, वा दिन अयाचित वस्तुका भोजन करे, और वा दिन केवल चापुडा भक्षण करे ॥ ४६ ॥ तीसरे प्रकारके प्राजापत्यका नियम यह है कि तीन दिन एकमुक्त रहे, तीन दिन रात्रिमें भोजन करे; तीन दिन अयाचित पदार्थका भोजन करे; और तीन दिनतक केवल चापुडा सेवन करे ॥ ४७ ॥ चौथे प्रकारका प्राजापत्य यह है कि चार दिनतक रात्रिमें भोजन करे और चार दिनतक अयाचित वस्तुका भोजन करता रहे, और चार दिन केवल पवनदी सेवन करे

वहै ॥ ४८ ॥ इस भांति चार प्रकारके प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और दक्षिणा देकर ब्राह्मण पवित्र मंत्रोंका जप करता रहै ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसेही गो वधकरनेवाला शुद्ध होजायगा इसमें किंचित्भी संदेह नहीं है ॥ ५० ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्यायः ९.

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥

तद्वयं तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥

मलाईभांति रक्षा करनेकी इच्छासे गौको बांधने या रोकनेमें यदि गोहत्या होजाय तौ इसमें दोष नहीं है और उस अवस्थामें वह कामकृत वा अकामकृत गोवध नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥

दंडादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् ॥

प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥

इस दंडके अतिरिक्त जो पुरुष अन्य दंडसे गौको मारताहै उसको प्रायश्चित्त करना उचित है और यदि इस प्रहारसे गौकी मृत्यु होजाय तौ दुगुना प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २ ॥

रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ॥ एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ ३ ॥ योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥ गोघाटे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥ नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ॥ दग्धदेशे मृता गावःस्तंभनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥ योक्त्रदामकरारैश्च कंठाभरणभूषणैः ॥ गृहे चापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥ ६ ॥ तदेव बंधनं विद्यात्कामा-

कामकृतं च यत् ॥ हले वा शकटे पंतौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥ ७ ॥ गोपति-मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः ॥ मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥ कामाकामकृतक्रोधो दंडैर्हन्यादथोपलैः ॥ प्रहता वा मृता वापि तद्वि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

रोध, बन्धन, जोत और घात इन चारप्रकारसे गौको पीडा देनेपर प्रायश्चित्त करै, रोकनेपर एकपाद प्रायश्चित्त करै, बांधनेपर दो पाद प्रायश्चित्त करै, जोतनेमें तीचपाद प्रायश्चित्त करै, और प्रहारसे प्राण नाश करनेपर समस्त चतुष्पाद प्रायश्चित्त करै । यदि गौकी मृत्यु गौओके चरानेके स्थानमें, गृहमें, घरमें, दुर्गम स्थानमें, नदीमें, गडहमें, गुहामुखमें और जलतेहुए स्थानमें स्थित गौके रोकनेसे गोवध होजाय, तौ उसको रोध कहतेहैं ॥३॥४॥५॥ यदि रस्सी, जोतकी रस्सी आर और घंटे आदि कंठके भूषण वाधनेसे गौ या बैलकी मृत्यु घरमें अथवा वनमें होजाय तौ ॥ ६ ॥ उसे बंधन कहतेहैं, यह बंधन दो भांतिका होताहै, एकतौ कामकृत दूसरा अकामकृत हलमें चलानेसे वा गाडीमें जोतनेसे अथवा पंक्तिमें, पीठमें मनुष्योंद्वारा पीडाभोगे प्राप्तहोकर ॥७ ॥ यदि बैल

वधको योक्त्र कहतेहैं यदि मत्त, प्रमत्त,

वधको योक्त्र कहतेहैं यदि मत्त, प्रमत्त,



उन्मत्त, चेतन, वा अचेतन होकर कामकृत वा अकामकृत क्रोभित हो बंध या पत्थरसे गौके ऊपर प्रहार करवाहै, उससे अत्यन्त पीडित होनेके कारण यदि गौकी मृत्यु होजाय तो उसको निपातन वा प्रहारके द्वारा गोवध कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अंगुष्ठमात्रस्यूलस्तु बाहुमात्र प्रमाणात् ॥

आर्द्रस्तु सपलाशश्च दह इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

अंगुष्ठी समान मोटी एकहाथकी छन्वी और गीली तथा पत्तोंसे युक्त बुराही धाकाको दह कहतेहैं ॥ १ ॥

मूर्च्छित पतितो वापि दबेनाभिहत स तु ॥ उत्पितस्तु यदा गच्छेत्पंच सप्त दशाथ वा ॥ ११ ॥ प्रास वा यदि गृहीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥ पूर्वभ्याम्यु पसृष्टभेद्यामभितं न विद्यते ॥ १२ ॥

दहके प्रहारसे पीडित होकर यदि गौ मूर्च्छित होजाय वा गिरवड़े और वह गौ फिर गूछोंसे जागकर पांच या सात पग चलसके ॥ ११ ॥ अथवा ठठकर एकमात्र खा ले वा जल पीके वा प्रथम बसे कोई रोग हो तो उसका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ॥ १२ ॥

पिंडस्ये पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसमिते ॥ पादोनं व्रतमुद्दिष्ट इत्या गर्भमचे तनम् ॥ १३ ॥ पार्श्वगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ॥ त्रिपादे तु शिखा- वर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥ पादे यस्त्रयुगं वैष द्विपादे कांस्यभाजनम् ॥ त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥ निष्पन्नसर्वगान्नेषु दश्यते वा संचेतन ॥ अंगमत्यगसंपूर्णो द्विगुण गोव्रतं शरेत् ॥ १६ ॥

पिंडकी समान गौका गर्भ नष्ट करनेपर एकपाद, गर्भमें स्थित बछड़े आदिके यदि अंग प्रत्यग बन गये हों उसके नष्ट करनेपर दोपाद, और बैलखरीन पूरे गर्भके बचेको नष्ट कर नेपर मनुष्यको तीनपाद व्रतका अनुष्ठान करना कर्त्तव्यहै ॥ १३ ॥ एकपादके प्रथमे तो खसी- रके रोम दूर करदे, दोपादके प्रायश्चित्तमें डाढी मुछलफको मुडावे और पादोन प्रायश्चित्तमें शिखाके अतिरिक्त समस्त मुंडन करावै और निपातन अर्थात् चतुष्पादके प्रायश्चित्तमें शिखा सहित सम्पूर्ण मुंडन कराना चाहिये ॥ १४ ॥ वलका जोडा एकपादके प्रायश्चित्तमें और कांसीका पात्र दो पादके प्रायश्चित्तमें, एक बैल पादोन प्रायश्चित्तमें और सम्पूर्ण चतुष्पाद प्रायश्चित्तमें दो गौओंको दे ॥ १५ ॥ जो मनुष्य अंग प्रत्यगयुक्त गौके सम्पूर्ण चेतनयुक्त गर्भ को निपातौद वह मनुष्य दोबन्धसे दूना प्रायश्चित्त करे ॥ १६ ॥

पापापनेष दंडेन गावो येनाभिपातिता ॥ शृंगभंगे शरेस्पादं द्वौ पादौ नेत्रपा- तने ॥ १७ ॥ छांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभंजने ॥ त्रिपादं वैष कर्णे तु शरेत्सर्वं निपातने ॥ १८ ॥ शृंगभंगे स्थिभंगे च कटिभंगे तथैव च ॥ यदि जीवति पण्मासाभ्यामभितं न विद्यते ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यने पत्थरसे वा दंडके प्रहारसे गौके सींगोंको टाड दियाहै वह एकपाद व्रतकरे और नेत्रको पीडनेवाला दोपाद व्रत करे ॥ १७ ॥ वहीं प्रहारस पूंछ तोडनेवाला

एकपाद कृच्छ्र व्रत करै, हड्डी तोडनेवाला दोपाद कृच्छ्र व्रत करै, कानके दूटनेपर तीनपाद कृच्छ्र व्रत करै, और यदि समस्त शरीरही भग्न होजाय तौ पूर्ण चतुष्पाद व्रत करै ॥ १८ ॥ सींग दूटने, हड्डी दूटने या कमरके दूटनेपर उसके उपरान्त यदि गौ छैः महीनेतक जीवित रहजाय तौ प्रायश्चित्त नहीं होताहै ॥ १९ ॥

व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना ॥ यवसश्वोपहर्तव्यो यावदृढबलो भवेत् ॥ २० ॥ यावत्संपूर्णसर्वांगस्तावत्तं पोषयेन्नरः ॥ गोरूपं ब्राह्मणस्याग्ने नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥ यद्यसंपूर्णसर्वांगो हीनदेहो भवेत्तदा ॥ गोधा- तकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

यदि प्रहारसे गौके शरीरमें घाव होजाय तौ जबतक वह अच्छा नहो तबतक उस व्रणमें स्वयं अपने हाथसे घृत तेलादि लगाता रहै, जबतक वह गौ भली भांतिसे चंगी और बल-वती न होजाय, तबतक उसके निमित्त हरी २ घास लाला कर खिलाना कर्तव्य है ॥ २० ॥ जबतक गौ निरोगता प्राप्त न करे तबतक उसका भली भांतिसे पोषण करतारहै, इसके उपरान्त ब्राह्मणको नमस्कार कर उस नीरोग गौ को छोडदे ॥ २१ ॥ यदि वह गौ पहलेकी समान चंगी भली न हुई हो, शरीरके किसी अंगमें हानिहो तौ उस मनुष्यको गोहत्याके प्रायश्चित्तसे आधा प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २२ ॥

काष्ठलोष्टकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ॥ व्यापादयति यो गां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥ चरेत्सांतपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ तप्त- कृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥ पंच सांतपने गावः प्राजा- पत्ये तथा त्रयः ॥ तप्तकृच्छ्रे भवंत्यष्टावातिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

यदि जो उद्धत पुरुष लकडी, लोष्ट, पत्थर अथवा शस्त्रसे बल करके गौको मारताहै तौ उसकी शुद्धि किसप्रकार होती है, उसे कहते हैं ॥ २३ ॥ लकडीसे हत्याकरनेवाला मनुष्य सांतपन व्रत करै, लोष्टसे हत्या करनेवाला मनुष्य प्राजापत्य व्रत करै, पत्थरसे हत्या करने-वाला मनुष्य तप्तकृच्छ्र करै, और शस्त्रसे गोहत्या करनेवाला मनुष्य अतिकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ सान्तपन व्रतमें पांच गौ दान करनी, तीन गौ प्राजा-पत्य व्रतमें दान करनी, आठ गौ तप्तकृच्छ्र में दान करनी उचित हैं, और अतिकृच्छ्र व्रतमें तेरह गौओंका दान करना कर्तव्य है ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ॥

तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

गौआदिके प्रायश्चित्तके परिमाणके अनुसार उसकेही अनुरूप गौ आदिकोंको दान करै अथवा उसका मूल्य दे दे यह मनुजीका कथन है ॥ २६ ॥

अन्यत्रांकनलक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा ॥

च न दुष्पेद्रोधबंधयोः ॥ २७ ॥

भार वा गाढी आविष्को छेबन्नेके छिये चरनके छिये छोडनेके निमित्त और संभ्राको रक्षाके निमित्त यदि गौके शरीरमें कोई विशेष चिह्न करनेको रोष अथवा बंधन कियाजाव तौ उसमें कोई दोष नहीं होताहै ॥ २७ ॥

अतिदाहेऽतिषाहे च नासिकाभेदने तथा ॥ नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्त विनिर्दि-  
शेत् ॥ २८ ॥ अतिदाहे श्वरेत्पादं द्वी पादौ वाहने चरेत् ॥ नासिक्ये पाद्  
हीनं तु चरेत्सर्ष निपातने ॥ २९ ॥ दहनात्तु विपद्येत अतद्दाम्योऽक्रयंश्रितं ॥  
उक्त पराशरेणैव होकपादं यथाविधि ॥ ३० ॥

वागते समयमें यदि अधिक दग्ध होजाय, या अधिक बोझ छेजानेके निमित्त छाडा जाव,  
नायाजाव, या कष्ट देनेबाडे नदी पर्वतके मार्गसे छेजाया जाव तौ प्रायश्चित्त करना उचित है  
॥ २८ ॥ अधिक दग्ध करनेपर एकपाव प्रायश्चित्त करे बोझा अधिक छाडनेपर दोपाव प्रायश्चित्त  
करे नासिकाके छेडनेपर तीनपाव, और मारनेमें पूर्ण अनुष्णात्का प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥  
॥ २९ ॥ यदि सोतमें बसा बैठ अग्निसे भरबाय तौ विधिसहित एकपाव प्रायश्चित्त करनेसे  
शुद्ध होताहै, यह पराशर मुनिका वचन है ॥ ३० ॥

रोधनं बंधनं चैव भारग्रहरण तथा ॥

दुर्गमिरणयोऽङ्गं च निमित्तानि वधस्य पद ॥ ३१ ॥

जोत, बंधन, रोष, अधिक बोझा छाडना, प्रहार और जोतकर नदी पर्वत इत्यादि दुर्गम  
मार्गमें छेजामा, यह छैं हीं, प्रत्येक वधका मूल है ॥ ३१ ॥

बंधपाशसुगुप्तांगो ज्ञियते यदि गोपशु ॥

भुवने तस्य पापी स्यात्प्रायश्चित्तार्द्रमईति ॥ ३२ ॥

यदि रस्सीमें बंधनेके कारण जो गौ मरजाय तौ शूद्रस्त्रीको अन्नछप्पू प्रत करना  
उचित है ॥ ३२ ॥

न नारिकेलीर्न च शाप्याल्लेर्न चापि भींजीर्न च घत्कागृसल्ले ॥

पतैस्तु गाधो न निर्बंधनीया यद्वा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ ३३ ॥

नारियलकी रस्सी, समकी रस्सी, मूखकी रस्सी, अथवा छोडेकी बंजीरसे गौ और  
बैलको कडापि न बधि, भार जो यदि पांच भी दे तौ परसे को हाथमें छेकर सर्वथा इनके  
सामुख नैठा रहै ॥ ३३ ॥

कुशीं फाशीश्च धत्रीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ॥

पाशालमामिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥

गौ अथवा अन्य पशुको दक्षिणकी ओरको मुखकर कुदा अथवा कातासे बांधे यदि दिसी  
कारणसे बसमें अग्नि छगाकर पशुका शरीर जलजाय; तौ इन ग्यातपर प्रायश्चित्त करनेकी  
विधि नहींहै ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भयेत्फाष्टं प्रायश्चित्तं तत्र भवेत् ॥ -

जपियाया पावर्नी र्ध्वं मुच्यते तत्र त्रिन्विपात् ॥ ३५ ॥

यदि उस स्थानके काष्ठमे वृणोके रस्सीकी अग्नि लगकर पशुके प्राणोंका नाश करदे तौ पवित्र करनेवाली गायत्रीका जप करनेसे पापसे छूट सकताहै ॥ ३५ ॥

प्रेरणकूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ॥

गवाशनेषु विकीर्णस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥

कूप या बावडी या तालाबमें गौको प्रेरण करनेपर, या वृक्षोंको काटकर गौके ऊपर डालनेपर, या किसी गोभक्षणकारी मनुष्यके हाथ गौको बेचनेपर पूरा गौहत्याका पाप होताहै ॥ ३६ ॥

आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ॥ श्रवणं हृदयं भिन्नं मनो वा कूपसंकटे ॥ ३७ ॥ कूपादुत्क्रमणे चैव भयो वा ग्रीवपादयोः ॥ स एव म्रियते तत्र त्रीन्पादांस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥

यदि इस अवस्थामें गौको विपत्तिसे उद्धार करनेके लिये पूर्वोक्त किसी कारणसे वक्षःस्थल, कान, अथवा हृदयका कोई भाग भग्न होजाय या गौ कुण्डआदिमें गिरपड़े और उसको कुण्डमेंसे निकालनेके समयमें, उस गौके पैर, गरदन आदि टूटजायँ इस विपत्तिमें उसी समय या कुछ समय उपरान्त उसकी मृत्यु होजाय तौ उस पापसे छूटनेके लिये तीनपाद प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कूपखाते तटाबंधे नदीबंधे प्रपासु च ॥ पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥ कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ॥ स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥

कुण्डके निकटके चौबन्धमें, सरोवरमें, नदीके बंधेहुए घाटपर पौके ऊपर यदि गौ जलपीनेके लिये गई हो और उसी स्थानपर उसकी मृत्यु होजाय तौ किसी भांतिका प्रायश्चित्त करना उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ यदि कुण्डके निकटके चौबन्धमे नदी या जलाशयके निकटके गड्ढेमें दीर्घखात वा साधारण जल पीनेके गड्ढेमें गिरकर यदि गौ मरजाय तौ उसके निमित्त कुछ प्रायश्चित्त न करै ॥ ४० ॥

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ॥

स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥

जिसने अपने घरके द्वारपर गड्ढा खोदाहै या घरके भीतर खोदाहै, या अपने कार्यके लिये वा साधारणके निमित्त तथा स्थान बंधानेके लिये खोदाहै उसी गड्ढेमें यदि गौ गिरकर मरजाय तब अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१ ॥

निशि बंधनिरुद्धेषु सर्पव्याव्रहतेषु च ॥ अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥ ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभंगनिपातने ॥ अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥ संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च ॥ दावाम्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥ यंत्रिता गौश्विकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥ यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४५ ॥

यदि रात्रिके समय रोक कर बाँधनेपर, वा सर्पके काटनेसे या मणि तथा मिस्रकीके गिरनेसे गौकी मृत्यु होजाय ती प्रायश्चित्त करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥ यदि प्राण बाणोंसे पीड़ित होजाय, या घर दूतकर गिरपड़े तथा अल्पन्व बर्पाहो इन तीनों में यदि किसी कारणसे गौकी मृत्यु होजाय, ती इस समयमें प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४३ ॥ सामाममें, घरमें अग्नि लगानेके समय किसी प्राणवाहीके घेर डेनेपर वा दावाभिसे जो गौ मरना होकर मरजाय ती उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ यदि चिकित्सा करनेके समय में गौको पीडा हीजाय अथवा घृषित गर्भके गिरनेपर अनेक ब्रह्म करनेपरभी गौकी मृत्यु हो जाय ती उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४५ ॥

ध्यापत्राणां बहूनां च रोधने भघनेऽपि वा ॥

मिषद्भूमिध्यापचारेण प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

बहुवही गौ और बैलोंको एकसाथ बांधकर रोकनेपर उनही अनभिन्न चिकित्सकसे चिकित्सा करनेमें यदि गौ वा बैलकी मृत्यु हो जाय ती गोबधका प्रायश्चित्त करना कथित है ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तीं च यावत् प्रेक्षिका जना ॥

अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

गौ अथवा बैलकी अकाञ्क्षुको अपने नेत्रोंसे देखकर भी उसको उस भासत्र मृत्युसे छुटानेकी जो मनुष्य चेष्टा नहीं करवे वह गोहत्या पापके भागी होतेहैं ॥ ४७ ॥

एको हतो येषद्भूमि समेतिर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् ॥

दिग्भ्येन तेषामुपलभ्य हता निवर्त्तनीयो नृपसन्निपुक्ते ॥ ४८ ॥

यदि किसी गौ या बैलको बहुतसे पुरुष इकट्ठे होकर ईट पत्थर मारकर उसको पीड़ित करे ती उससे पशुकी कदाचित् मृत्यु होजाय और वह निश्चय न होसके कि किस पुरुषके प्रहारसे गौकी मृत्यु हुई ती राजाको कथित है कि वह अपने कर्मचारियोंके द्वारा प्रत्येक पुरुषको खोजकर उस पशुकी हत्याकरनेवालेका निश्चय करले ॥ ४८ ॥

एका चेद्भूमिः काचिद्देषाद्यापादिता काचित् ॥

पाद पाद तु हस्यापाधरियुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥

यदि एक गौ बहुतसे पुरुषोंके आपातसे मरगई हो ती उन प्रहार करनेवालोंमें प्रत्येकको गोबधका अनुबन्ध प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं द्रव्यं ध्याधिप्रस्तं कृशो भवेत् ॥ छाला भयति दंष्ट्रेषु एयमन्वे

पर्णं भवेत् ॥ ५० ॥ प्रासार्थं चोदितो यापि अभ्यार्त्तं नैव गच्छति ॥ मनुना

सैवमप्येन सर्वशास्त्राणि जानता ॥ प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोमहाद्विपण

धरेत् ॥ ५१ ॥

गौके मारनेपर उसके रुधिर, चिह्नसे हत्या करनेवालेको जानले, या धन सभमेंसे जा योगी होजाय, दुर्बल होजाय या जिसके दाढ़ोंमेंसे छार गिरनेसगे, जो भेरणा करनेपरभी प्रासके निमित्त परसे बाहर न जाय ऐसी हत्या करनेवालेकी रोज करले, समुद्र हाथोंके

जाननेवाले अद्वितीय भगवान् मनुजीने गोहत्यामात्रं चंद्रायण व्रतको ] करनेकी व्यवस्था दी है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥ ५२ ॥ राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥ अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥ यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥ तत्पापं तस्य तिष्ठेत् त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

गोहत्याके प्रायश्चित्तके समयमे जो केश रखने चाहें उसको दुगना प्रायश्चित्त करना उचित है और दुगने प्रायश्चित्तकी दुगनीही दक्षिणा देनी चाहिये ॥ ५२ ॥ राजा, राजपुत्र अथवा वेदोका जाननेवाला ब्राह्मण केशोका मुंडन न कराकरभी प्रायश्चित्त कर सकता है ॥ ५३ ॥ जिस पुरुषने केशोंकी रक्षा की है और दुगना प्रायश्चित्त वा दुगनी दक्षिणा नहीं दी है उसका पाप पहलेकी समान होगा वह अपने पापसे मुक्त नहीं होगा और जो इस भाँति व्यवस्था करनेकी अनुमति देगा वहभी नरकको जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

यत्किञ्चिक्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगु- लिद्वयम् ॥ ५५ ॥ एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥ ५६ ॥

प्राणिमात्रके सम्पूर्ण किये हुए पाप केशोंमेही निवास करतेहैं इस कारण वालोंको हाथमें पकडकर उनके अग्रभागके भागको दो २ अंगुल कटावे ॥ ५५ ॥ यह रीति केवल कुमारी कन्या और सुहागिन स्त्रियोंके लिये है, कारण कि, इन स्त्रियोंको मुंडन और स्वतंत्र शयन अथवा स्वतंत्र भोजनका विधान नहीं है ॥ ५६ ॥

न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥ नदीषु संगमे चैव अरण्येषु वि- शेषतः ॥ ५७ ॥ न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥ त्रिसंध्यं स्नान- मित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥ ५८ ॥ बंधुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रां चंद्रायणा- दिकम् ॥ गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥

इन स्त्रियोंको रात्रिके समय गोशालामें शयन और दिनके समय गौके पीछे २ जाना उचित नहीं, और विशेष करके नदीके ऊपर, जनसमूहके स्थानमें और जंगलमेंभी इनके जानेका निषेध है ॥ ५७ ॥ स्त्रियोंको मृगचर्म ओढनेकी आवश्यकता नहीं वह तीनों कालमें स्नान कर देवताओका पूजन करती रहें ॥ ५८ ॥ स्त्रियोंको कृच्छ्र चांद्रायण व्रत अपने बंधु बांधवोंके बीचमें ही करना उचित है वह अपने घरमें स्थित रह कर सर्वदा पवित्र नियमोंका पालन करती रहें ॥ ५९ ॥

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ॥ स याति नरकं घोरं कालसूत्रम- संशयम् ॥ ६० ॥ विमुक्तो नरकात्स्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥ क्लीवो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥ तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥ स्त्रीवालभृत्यरोगार्तेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें गोबध करके उस पापको छिपानेकी इच्छा करता है वह निश्चयही फाससूत्रनामक घोर नरकमें आताहै ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त उस भवानक नरकसे छूटकर फिर इसी मृत्यु लोकमें मनुष्ययोनिमें जन्म लेताहै और फिर जन्म लेकर बहिरा, दुःखी, कोढ़ी होकर क्रमानुसार सातवन्म उसको बर्षाव करने पड़तेहैं ॥ ६१ ॥ इस कारण पाप करके उसको छिपानेकी चेष्टा कदापि न करै प्रकाश करदे, और स्त्री, पाछक, सेवक, गौ तथा इनके ऊपर क्रोध कदापि न करै ॥ ६२ ॥

इति श्रीपराशरिणे धर्मशास्त्रे माघटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### दशमोऽध्याय १०

चातुर्वर्ष्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥

अगम्यागमने चैव शुद्धी चांश्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंके पापसे छूटनेका उपाय करते हैं, अगम्य स्त्रीमें गमन करनेसे जो पाप होताहै वह चांश्रायणप्रवचके करनेसे मुक्त होताहै ॥ १ ॥

एकैक द्वासयेद्वास कृष्णे शुद्धे च वक्ष्येत् ॥ अमावस्यां न भुञ्जीत श्लेष चांश्रायणो विधिः ॥ २ ॥ कुक्कुटांडममाणं तु प्रास वै परिकल्पयेत् ॥ अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्धयते ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मण भोजनम् ॥ गोद्वयं वस्त्रमुग्मं च दद्यादग्निषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक प्रास कमठी करता रहे और शुद्ध पक्षमें प्रतिदिन एकप्रासको चढावे और अमावस्याके दिन कुच्छमी न खाये यह चांश्रायण प्रवचकी विधि है ॥ २ ॥ एक २ प्रासको मुरलीके बंधोंकी समान बजा बनावे इसके अगम्या करनेसे न धर्म है और न शुद्धि होतीहै ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तका अनुष्ठान शेष होजातेपर ब्राह्मणभोजन करवे, और दो गौ और एक जोडा बक ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे ॥ ४ ॥

चबालीं वा श्वपार्कीं वा अनुगच्छति यो द्विजः ॥ भिरात्रमुपवासी च विम्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥ सक्षिख घपन कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ब्रह्महृषं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥ गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्यात्त्रिमिथुन द्वयम् ॥ विम्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्त्यसप्तयम् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥

जो ब्राह्मण चांबाली वा श्वपरीमें गमन करताहै वह ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार शीघ्रगति उपवास करै ॥ ५ ॥ इसके पीछे क्षिखासहित सम्पूर्ण केशोंका छुटन करवे और दो प्राजापत्य प्रव करे, इसके पीछे ब्रह्महृषंका पाठ करके भोजनादिद्वारा ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै ॥ ६ ॥ इसपीछे वह निरन्तर गायत्रीका जपकरता रहे, फिर एक गौ और एक बैल ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे, गौ वह निरन्तरहै शुद्धि प्राप्त कर सकताहै ॥ ७ ॥ यह पाराशरजीका बचन है कि दो गौ दक्षिणामें देनेसे शुद्धि होतीहै,

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥ ८ ॥

प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्द्याद्वोमिथुनद्वयम् ॥

यदि कोई क्षत्रिय वा वैश्य किसी चाडालीमे गमन करै तौ ॥ ८ ॥ वह दो प्राजापत्य व्रत करै और ब्राह्मणोंको एक गौ और एक बैल दक्षिणामें दे,

श्वपाकी वाथ चण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

यदि शूद्र श्वपाकी और चाडालीके साथ गमन करै तौ ॥ ९ ॥ एक प्राजापत्य व्रतकर ब्राह्मणोंको चार गोमिथुन दक्षिणामें दे ॥ १० ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनी रवसुतां तथा ॥ एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि

कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥ चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिरच्छेदेन शुद्ध्यति ॥

अपनी माता, बहन और पुत्रीमें जो मनुष्य अज्ञानतासे गमन करताहै वह तीन कृच्छ्रव्रत करै ॥ ११ ॥ वा तीन चांद्रायण करै पीछे शिर छेदन करनेसे शुद्धि होतीहै,

मातृष्वसृगमे चैव आत्मभेदनिःकृतनम् ॥ १२ ॥ अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्या-

चांद्रायणद्वयम् ॥ दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत् ॥ १३ ॥

और माताकी बहनके साथ गमन करनेवाला अपनी लिङ्गेन्द्रिय काटनेपरही शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥ यदि जो पुरुष अज्ञानतासे मौसीके विषय गमन करताहै वह दो चांद्रायण व्रत करै, और दस गौ और दश बैल ब्राह्मणोंको दान करै तब शुद्ध होताहै, यह पाराशरजीकक कथन है ॥ १३ ॥

पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥ गुरुपत्नीं स्तुषां चैव भ्रातृभार्यां

तथैव च ॥ १४ ॥ मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ गोद्वयं

दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

जो पुरुष सातेली मातामें, माताकी सखीमें, भाईकी लडकीमें, गुरुकी स्त्रीमें, पुत्रकी स्त्रीमें, भ्राताकी स्त्रीमें ॥ १४ ॥ मामाकी स्त्रीमें या अपने गोत्रकी कन्याके साथ गमन करताहै वह तीन प्राजापत्यव्रत कर दो गौ दक्षिणामें देनेसे निःसन्देह शुद्ध हो जाताहै ॥ १५ ॥

पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रयौ कर्षी तथा ॥

खरी च शूकरां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥

पशु, वेश्या, महिषी ( भैंस ) ऊंटनी, वानरी, गर्दभी, शूकराके साथ गमन करनेवाला प्राजापत्यव्रत करै ॥ १६ ॥

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥

महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

गौके साथ गमन करनेवाला तीनरात्रि उपवास कर ब्राह्मणोंको एक गौ दान करै । महिषी, ऊंटनी और गर्दभीके साथ गमन करनेवाला एक रात्रिदिन उपवास करनेसे शुद्ध हो जाताहै ॥ १७ ॥



हामरे समरे वापि दुर्मिक्षे वा जनक्षये ॥

यदिग्राहे भयार्तो वा सदा स्वर्क्षा निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥

मारुमारो वा काटाकाटीके समयमें, युद्धके समय, दुर्मिक्षके समय, जनक्षयके समय, मय प्राप्त होनेके समय, कोई आक्रमण करनेवाला यदि पकड़कर या पत्नी करके लेनाप तो उस समय सर्वथा अपनी खीकी ओर दृष्टि रखनी उचित है ॥ १८ ॥

चण्डालिं सह सपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥ विमान्दशषरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥ आकठसंमितं कूपे गोमयोदककक्षमे ॥ तत्र स्थित्वा निरा द्वारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥ सशिस्रं वपनं कृत्वा भुजीयाद्यावर्षाद्द- नम् ॥ त्रिंशत्प्रमुषासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ॥ २१ ॥ शंखपुष्पीकृतामूळं पत्रं वा क्लृप्तं फलम् ॥ सुवर्षं पंचगव्यं च काययित्वा पिबेज्जलम् ॥ २२ ॥ एक- भक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥ व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते वहिः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्वाह्यभोजनम् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्यात् क्लृप्तिं पाराशरोऽश्वीत् ॥ २४ ॥

जो स्त्री चाण्डालके साथ सहास करे, तो वह अपने पापको भेष्ट इस ब्राह्मणोंके निकट प्रकाशित करे ॥ १९ ॥ गोबरके बाल व कीचसे मरे हुए कूपमें गले तक मग्न होकर सिद्ध भोजन करे एक रातदिन रहकर निकल आवे ॥ २० ॥ फिर शिलासहित सारे शिरका मुंडन कराकर जपके हुए सबका भोजन करे इसके उपरान्त तीन रात्रि उपवास करे एक रात्रि बालमें निवास करे ॥ २१ ॥ पीछे शंखपुष्पी औषधीकी बड़, पत्ते, फूल फल और सुवर्ष तथा पंचगव्य इन सबको एकत्र पीसके जीटकर उसका लक्षण करे ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त जब तक अतृप्त हो जब तक पके हुए अन्नका भोजन दिनमें एक बार करे, जब तक यह व्रत समाप्त न होनाय जब तक परकृत्यसे बाहर रहे ॥ २३ ॥ इस मांति प्रायश्चित्तके समाप्त होमानेपर ब्राह्मण भोजन करकर दो नौ दक्षिणामें दो वन शुद्धि होवी है यह पाराशरबीका वचन है ॥ २४ ॥

खातुर्वर्ष्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चांद्रायणव्रतम् ॥

यथा सुमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दृपयेत् ॥ २५ ॥

यदि चारों बर्षोंकी किर्ये होपमुक्त होमाई तो कृच्छ्र चांद्रायण व्रत करे, दूष्णी और खी होनेकी समाप्त है इसकारण उनको दूषित न करे ॥ २५ ॥

यदिग्राहेण या भुक्ता हत्या बद्धा बलान्नयात् ॥ कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं मुद्घयेत् पाराशरोऽश्वीत् ॥ २६ ॥ सकृद्भुक्ता तु या मारी नेच्छती पापकर्माणि ॥

प्राजापत्येन मुद्घयेत् ऋतुमस्रवणेन च ॥ २७ ॥

जिस स्त्रीको बंदी करके अन्न पुरुष भोगते हैं, मरवा जिस स्त्रीको प्रहार कर के मरनेके समय विशाकर बलात्कार करके भोगा है पराशरबीका कथन है कि, वह स्त्री कृच्छ्र सांतपन व्रतके करनेसे छद्म होवी है ॥ २६ ॥ जिस स्त्रीकी बिना इच्छाके पापी पुरुषोंने बलपूर्वक पकड़ारथी भोगा है वह मानापत्य व्रत करके ऋतुमती होनेपर मुद्घ होमावी है ॥ २७ ॥

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥ पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न  
विधीयते ॥ २८ ॥ गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥  
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं  
स्मृतम् ॥ ३० ॥

जो स्त्री मदिरा पान करतीहै उसका आधा शरीर पतित होजाताहै, इस प्रकारसे जिसका  
शरीर पतित होगयाहै उसकी शुद्धि नहीं है, वह नरकको जाती है इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥  
कृच्छ्र सांतपन व्रतके आचरण करनेके समय निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ २९ ॥  
गोमूत्र, गौका गोधैर, दूध, दही, घृत, और कुशका जल, यह पंचगव्य पानकर एकरात्रि  
उपवास करै, यह सांतपन कहाताहै ॥ ३० ॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ॥

तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥

पतिके त्याग करनेसे या पतिके मरजानेसे स्त्री अन्य पुरुषके सयोगसे गर्भवती होजाय तो  
उस पापिनी पतित स्त्रीको अन्याराज्यमे छोड आवै ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता ॥ सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या  
गमनं पुनः ॥ ३२ ॥ कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बंधून्सुतान्पतिम् ॥  
सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी पर पुरुषके साथ निकलजाय तो उसको नष्ट हुई जानो, उसको किसी  
प्रकारभी घरमें रखना उचित नहीं ॥ ३२ ॥ यदि कोई स्त्री काम या मोहके वशीभूत होकर  
पति, पुत्र, तथा बंधु बांधवोंको त्याग कर घरसे चलीजाय, तो वह परलोकमें तथा मनुष्य  
समाजमें नष्ट होजातीहै ॥ ३३ ॥

मदमोहगता नारी क्रोधादंडादिताडिता ॥

अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥

जो स्त्री मद वा मोहसे अथवा क्रोधसे दंडके ताडन करनेसे बिना किसीके पास गये घर  
छौट आवै ॥ ३४ ॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेद्वृष्टुतां  
तथा ॥ ३५ ॥ भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बांधवाः ॥ तेषां भुक्त्वा  
च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥

यदि उस स्त्रीको गये हुए घरसे दश दिन वीत जायँ तो प्रायश्चित्त नहीं वह पतितही  
होती है कारण कि, दश दिनतक स्त्रीका त्याग न करै, परन्तु यदि उसको नष्टा सुनाजाय  
तो उसका त्याग करदे ॥ ३५ ॥ और उसके पतिको कृच्छ्र व्रत और उसके बंधु बांधवोंको  
अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना चाहिये, और उनके घरका जिसने भोजन कियाहो वा जलपान किया  
हो वह अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता ॥

गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी नियम करनेपर भी परपुरुषके संग नहीं जाय वह स्त्री यदि वृत्ते पुत्र  
पक्षा संग करके क्षीय अपने पतिके निकट नहीं आवै तो सगोत्रियोंको उसके त्यागनेका  
उचित है ॥ ३७ ॥

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥ पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु  
तद्गृहम् ॥ ३८ ॥ उच्छिष्य तद्गृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत् ॥ त्यजेच्च मृन्मय  
पात्रं चरुं काष्ठं च क्षोषयेत् ॥ ३९ ॥ संभाराञ्छोषयेत्सर्वाङ्गोक्तेषु फलो-  
द्भवात् ॥ ताघ्राणि पंचगव्येन कांस्यानि दशभस्मभिः ॥ ४० ॥ प्रायश्चित्तं चरे-  
द्विभो ब्राह्मणिरुपपादयेत् ॥ गाद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥  
इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च क्षोषनम् ॥ उपवासैर्मते पुण्यं ज्ञानसध्याचर्ना-  
दिभिः ॥ ४२ ॥ अपहोमदयादानैः शुद्धयन्ते ब्राह्मणादयः ॥ आकार्षां वामुरमि-  
ष्य मेध्य भूमिगतं जलम् ॥ ४३ ॥ न दुष्पति यः दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा  
यया ॥ ४४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यादे वह स्त्री आरपुरुषके घरमेंसे नहीं आवै तो पतिका घर और उस स्त्रीके पिता और  
माताका घर अशुद्ध होजावै ॥ ३८ ॥ उस घरको खोदकर पीछे पंचगव्यको छिड़क, और  
मिट्टीके पात्रोंको फैकने और बरु तथा काष्ठके पात्रोंकी छुट्टि करे ॥ ३९ ॥ फलकी सान  
त्रियोंको ही गौके चेंचरासे शुद्ध करे और घोंबेकी बस्तुओंको पंचगव्यसे शुद्ध करे और  
कौंसीकी बस्तुको दशवार भस्मसे मांसकर शुद्ध करना उचित है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंके कड़े  
हुए प्रायश्चित्तको वह प्राण्य करे, और दो गौ दक्षिणामें दे और दो प्राजापत्यप्रव करे  
॥ ४१ ॥ और उसके अस्यान्य कषु महोरात्र प्रवकर पंचगव्य पान करके तथा, उपवास,  
प्रव, पुण्य, ज्ञान, सन्ध्या, पूजनमादिसे ॥ ४२ ॥ और जप होम दया दान इत्से ब्राह्मण  
जादि शुद्ध होजावै ॥ आकार्ष, पचम, जमि, और पृथ्वीमें पक्षा हुआ जल ॥ ४३ ॥ तथा  
कुसा यह किसी मांति अशुद्ध नहीं होवे मिस मांति यज्ञमें चमसा अशुद्ध नहीं होवै ॥ ४४ ॥

इति भीमराशरीये धर्मशास्त्रे माषादीकषां दशमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### एकादशोऽध्यायः ११

अमेध्यरेतो गोमांसं चंडलात्प्रमयापि वा ॥ यदि शुकं तु विभेण कृच्छ्रं च  
द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥ क्षत्रियो घाम धैश्यभेद्वर्षकृच्छ्रं च कापिकम् ॥ २ ॥  
पंचगव्यं विधेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं विवेदिजः ॥ एकद्वित्रिचतुर्गणो दद्यादिमाय  
नुक्रमत् ॥ ३ ॥

यदि मांसजने अशुद्ध पदार्थ, शीर्य, गौका मांस, और चांडालके वहांका अन्न भक्षण कर  
लियाहो तो चांडालप्रव करके करनेसे उसकी शुद्धि हावै ॥ १ ॥ और यदि क्षत्रीने इन  
बस्तुओंको खा लिया हो तो वह अशुद्ध चंद्रायण प्रव करनेसे शुद्ध होवै; और वैश्य इन  
बस्तुओंके तानसे प्राजापत्य प्रवके करनेसे शुद्ध होवै ॥ २ ॥ और शूद्र ही पंचगव्यका पात्र

करै, और ब्राह्मण ब्रह्मकूर्चको पीले, फिर ब्राह्मणआदि चारोंवर्ण क्रमानुसार एक, दो, तीन और चार गौओंका दान करै ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकान्नं च अभोज्यस्यान्नमेव च ॥ शंकितं प्रतिषिद्धान्नं, पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥ यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥ ज्ञात्वा समाचरे-  
त्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

शूद्रकी अन्न, सूतकका अन्न, अभोज्यका अन्न, शंकित अन्न, निषिद्ध अन्न, उच्छिष्ट अन्न ॥ ४ ॥ इन अन्नोको यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे या विपत्ति आनेके समय खाले तौ उसको जानकर कृच्छ्रव्रत करै और पवित्र करनेवाले ब्रह्मकूर्चका पान करै ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ॥

तिलदमोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

जिसे सर्प, नौला, तिलावआदिने जूठा करदिया हो वह तिलें और कुशाका जल छिड़कनेसे निःसन्देह उस अन्नकी शुद्धि होजातीहै ॥ ६ ॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्तान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

अभोज्य अन्नको खानेवाला शूद्रभी पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै; यदि अभोज्य अन्नको क्षत्रिय तथा वैश्य खाले तौ वह प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ७ ॥

एकपंत्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥ यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ॥ प्रायश्चित्तं चरे-  
द्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पंक्तिमें एकसाथ भोजन करते हुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि कोई ब्राह्मण भोजन करनेसे खडा होजाय तौ उस शेष अन्नको कोई ब्राह्मण भी न खाय ॥ ८ ॥ यदि इस अवस्थामें कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे उस पंक्तिमें उच्छिष्टको खाले, तौ उस ब्राह्मणको सांतपन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ९ ॥

पीयूषं श्वेतलगुनं वृताकफलगृजने ॥ पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥ उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्ये-  
न शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पेवची, श्वेतलहसन, वैंगन, गाजर, प्याज, वृक्षका गोंद, देवताका द्रव्य, कवक ( पृथ्वीकी ढाल ) ॥ १० ॥ ऊंटनी, तथा भेडका दूध, जो ब्राह्मण इन वस्तुओंको अज्ञानतासे खाता है वह तीनरात्रि उपवासकर पंचगव्यक पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ११ ॥

मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥

ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण जानबूझ कर मंडक और मूसेके मांसको खाताहै वह अहोरात्रमें जौके खानेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावतौ शुचिव्रतौ ॥

तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी निषेध करनेपर भी परपुरुषके सग बलीजाय वह स्त्री यदि दूसरे पुरुषका संग करके क्षीम अपने पतिके निकट बढी जावे तो सगोत्रियोंको उसका त्यागदेना उचित है ॥ ३७ ॥

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥ पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्वगृहम् ॥ ३८ ॥ उल्लिख्य तद्वगृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत् ॥ त्यजेच्च मृन्मय पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥ संभाराच्छोधयेत्सर्वांगोकेर्द्वीथ फलोद्भवान् ॥ ताघ्राणि पञ्चगव्येन कांस्यानि दक्षभस्मभिः ॥ ४० ॥ प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादयेत् ॥ गाक्ष्यं दक्षिणां दद्यात्माजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥ इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च शोधनम् ॥ उपवासैर्धृते पुण्यं ज्ञानसंघ्यार्चनादिभिः ॥ ४२ ॥ जपहोमदयादानैः शुद्धयन्ते ब्राह्मणादयः ॥ आकाशं वायुरग्निश्च मेघ्य भूमिगत जलम् ॥ ४३ ॥ न दुष्यति च दर्भाश्च पक्षेपु चमसा यया ॥ ४४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यादि वह स्त्री जारपुरुषके घरमेंसे बढी जावे तो पतिके घर और उस स्त्रीके पिता और माताका घर अशुद्ध होजावादे ॥ ३८ ॥ उस घरको खोदकर पीछे पञ्चगव्यको छिड़के, और मिट्टीके पात्रोंको फैकवे और वस्त्र तथा काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि करे ॥ ३९ ॥ फलकी साम मियोंको तो गौके चबरासे शुद्ध करे और तौबेकी बस्तुओंको पंचगव्यसे शुद्ध करे और कौंसीकी बस्तुको दशवार भस्मसे सांजकर शुद्ध करना उचित है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंके कड़े हुए प्रायश्चित्तको यह प्राण्य करे, और वो गौ दक्षिणामें वे और वो प्राजापत्यप्रथ करे ॥ ४१ ॥ और उसके अन्यान्य क्षु अहोरात्र प्रथकर पंचगव्य पात करके तथा, उपवास, प्रथ, पुण्य ज्ञान, संघ्या, पूजनभारिसे ॥ ४२ ॥ और जप होम दया दान इनस ब्राह्मण आदि शुद्ध होजावे ॥ आकाश, पवन अग्नि, और पृथ्वीमें पहा हुआ जल ॥ ४३ ॥ तथा कुशा यह किसी भीति अशुद्ध नहीं हावे जिस मांति पक्षमें चमसा अशुद्ध नहीं होवादे ॥ ४४ ॥

इति भीमवर्षादे पञ्चशास्त्रे भाषादीश्रमां दशमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### एकादशोऽध्यायः ११

अमेघ्येरेतो गोमांसं चडलान्नमयापि वा ॥ यदि मुत्र द्रापणं चरेत् ॥ १ ॥ क्षत्रियो वाथ विश्यभेद्वर्षकृत्, पञ्चगव्यं पिवेच्छुद्धो ब्रह्मकूर्यं पिवेद्विना ॥ २ ॥ नुक्नमात् ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मणने अशुद्ध पशु, बीय, गौका मांस, और डियासे वो चाश्रावण प्रथक करवते उसकी शुद्धि हावादे बस्तुओंको रात्रिया हा वो यह अशुद्ध चाश्रावण प्रथ बस्तुओंके लागेसे प्राजापत्य प्रथके करनेस शुद्ध हावादे ॥

ग कृष्णं ॥ १

अथ भक्षणं ॥ यदि क्षत्रीये और वैश्य

करै, और ब्राह्मण ब्रह्मकूर्चको पीले, फिर ब्राह्मणआदि चारोंवर्ण क्रमानुसार एक, दो, तीन और चार गौओंका दान करें ॥ ३ ॥

शुद्धान्नं सूतकान्नं च अभोज्यस्यान्नमेव च ॥ शंकितं प्रतिषिद्धान्नं, पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥ यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥ ज्ञात्वा समाचरे-  
त्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

शुद्धकौं अन्न, सूतकका अन्न, अभोज्यका अन्न, शंकित अन्न, निषिद्ध अन्न, उच्छिष्ट अन्न ॥ ४ ॥ इन अन्नोंको यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे या विपत्ति आनेके समय खाले तौ उसको जानकर कृच्छ्रव्रत करै और पवित्र करनेवाले ब्रह्मकूर्चका पान करै ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ॥

तिलदभौदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

जिसे सर्प, नौला, विलावआदिने जूठा करदिया हो वह तिल और कुशाँका जल छिड़कनेसे निःसन्देह उस अन्नकी शुद्धि होजातीहै ॥ ६ ॥

शुद्धोऽप्यभोज्यं भुक्तान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

अभोज्य अन्नको खानेवाला शुद्धभी पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै; यदि अभोज्य अन्नको क्षत्रिय तथा वैश्य खाले तौ वह प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होजातेहै ॥ ७ ॥

एकपंत्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥ यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ॥ प्रायश्चित्तं चरे-  
द्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पंक्तिमें एकसाथ भोजन करते हुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि कोई ब्राह्मण भोजन करनेसे खडा होजाय तौ उस शेष अन्नको कोई ब्राह्मण भी न खाय ॥ ८ ॥ यदि इस अवस्थामें कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे उस पंक्तिमें उच्छिष्टको खाले, तौ उस ब्राह्मणको सांतपन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ९ ॥

पीयूषं श्वेतलशुनं वृताकफलगृजने ॥ पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥ उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्ये-  
न शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पेवची, श्वेतलहसन, वैगन, गाजर, प्याज, वृक्षका गोंद, देवताका द्रव्य, कवक ( पृथ्वीकी ढाल ) ॥ १० ॥ ऊटनी, तथा भेडका दूध, जो ब्राह्मण इन वस्तुओंको अज्ञानतासे खाता है वह तीनरात्रि उपवासकर पंचगव्यक पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ११ ॥

मंडूकं भक्षयित्वा तु सूषिकामांसमेव च ॥

ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण जानबूझ कर भेडक और मूसेके मांसको खाताहै वह अहोरात्रमें जौके खानेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ ॥

तद्दृहेषु द्विजैर्भोज्यं पु नित्यशः ॥ १३ ॥

सुत्री हो या वैश्य हो जय कि वह क्रिया करनेवाले धर्माचरणकारी और पवित्रात्मा हैं  
उप उनके यहां ह्यभ्य कर्ममें सर्वथा भोजन करसकता है ॥ १३ ॥

घृत क्षीर तथा तैल गुडं तैलेन पाचितम् ॥ गत्वा नदीतटे विप्रो संजीयाच्छु-  
द्रमोजने ॥ १४ ॥ मद्यमांसरत नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥ तं शूद्र वर्जयेद्विमं  
श्वपाकमिव दूरत ॥ १५ ॥ द्विजशुभ्रूपणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ॥ स्वक-  
र्मनिरतान्नित्यं ताच्छूद्रान्न त्यजेद्विज ॥ १६ ॥

ब्राह्मण नदीके किनारे जाकर शूद्रके पात्रमें घी, दूध, तेल, और तैलेसे पके हुए गुडको  
खाके ॥ १४ ॥ जो शूद्र मरिचा मांस खाता, नीचकर्म करताहो उस शूद्रको श्वपाककी समान  
दूरसेही त्यागदे ॥ १५ ॥ जो शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा करताहो, मरिचा मांसको न खानेवाला  
अपने कर्ममें उत्पर हो उस शूद्रका ब्राह्मणोंको त्याग करना उचित नहीं ॥ १६ ॥

अज्ञानाद्भ्रजते विप्रा सूतके मृतकेऽपि वा ॥ प्रायश्चित्त फय तेषां वर्णं वर्णे वि  
निर्दिक्षेत् ॥ १७ ॥ गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिं स्याच्छूद्रसूतके ॥ धेइये पंचस  
हस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मणस्य यदा मुंके दिसहस्रं तु वापयेत् ॥  
अथवा वामदेव्येन साक्षा चैकेन शुद्धयति ॥ १९ ॥

( प्रश्न ) यदि जो ब्राह्मण अज्ञानवासे सूतक वा सूतकमें भोजन करतेहैं तो धर्म वर्णके प्रति  
उनका किस प्रकारसे प्रायश्चित्त कहाई? ॥ १७ ॥ ( उत्तर ) शूद्रके यहां सूतकमें भोजन करनेसे  
आठहजार गायत्री जपकरनेसे शुद्धि होतीहै, वैश्यके यहां सूतकमें भोजन करनेसे पांचहजार  
गायत्रीका जपकरे, और क्षत्रियके यहां सूतकमें भोजन करनेसे तिनहजार गायत्रीका जपकर-  
नेसे शुद्धि होजातीहै ॥ १८ ॥ परन्तु ब्राह्मणके यहां सूतकमें खानेसे दोहजार गायत्रीका जप  
करे अथवा वामदेव्येन अधिकके कहेहुए साममंत्रसेही शुद्धि होजातीहै ॥ १९ ॥

शुष्कान्नं गोरसं जेहं शूद्रवेपेज आहृतम् ॥ पक्वं विप्रगृहे मुंके भोज्यं तं मनुर-  
क्षयीत् ॥ २० ॥ आपत्काले तु विभेज मुंके शूद्रगृहे यदि ॥ ममस्तापेन शुद्धये-  
त धूपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥

शूद्रके यहांका अन्न, गोरस, और जेह ( पीसादि ) यह यदि शूद्रके यहांसे खाकर ब्राह्मण  
पर पकाकर खाके ती वह भोजनके योग्य है, यह मनुजीका वचन है ॥ २० ॥ यदि  
आपत्तिके समयमें ब्राह्मणने शूद्रके यहां भोजन करछिया हो ती वह मनके पश्चात्तापसेही  
शुद्ध होजावाहै, और फिर एकबार धूपवा मन्त्रका जप करे ॥ २१ ॥

वासनापित्तगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिजः ॥

पते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मान विधीयते ॥ २२ ॥

वास, नाई, गोपाल कुलका मित्र अर्द्धसीरी इन सबके यहांका और अपने आप स्वर्ब इस  
वांति कहे कि मैं आपका हुं, इसके यहांका अन्न भोजन करनेके योग्य है ॥ २२ ॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृत ॥ अस्ंस्काराद्भवेद्वासं संस्कारादेव  
नापितः ॥ २३ ॥ क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्य यं सुतः ॥ स गोपाल इति  
ख्यातो भोज्यो विभेर्न संशय ॥ २४ ॥ धेइयकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु सं-  
स्कृत ॥ स शार्दिक इति ज्ञेयो भोज्यो विभेर्न संशय ॥ २५ ॥

जो सन्तान ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हो यदि उसका संस्कार न हो तो वह दास कहाता है, और जो यदि संस्कार होजाय तो वह नाई होताहै ॥ २३ ॥ जो पुत्र शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो, वह गोपाल कहाताहै, उसके यहा ब्राह्मण निम्संदेह भोजन करे ॥ २४ ॥ जो पुत्र ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न हो और उसका संस्कार होजाय उसे आँटिक कहते हैं, उसके यहांभी ब्राह्मणको भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ २५ ॥

भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ॥ अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति ॥ ब्रह्मकूर्चो-पवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७ ॥ शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ २८ ॥

( प्रश्न ) जिनके यहांका भोजनकरना अनुचित है उनके पात्रमें रक्खा जल, दही, घी, दूध इनको जो मनुष्य खाता है उसका प्रायश्चित्त किस भांति से हो ? ॥ २६ ॥ ( उत्तर ) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यदि यह खाले तो यन्के योग्य तीनों वर्णोंका प्रायश्चित्त ब्रह्मकूर्च उपवास करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥ शूद्रको उपवास करना उचित नहीं शूद्र तो दान करनेसेही शुद्ध होजाता है श्वपाक अहोरात्रका उपवास करनेसेही शुद्ध होसकता है ॥ २८ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥ गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥ पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कपिल-मेव वा ॥ मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥ क्षीरं सप्तपलं दद्या-दधि त्रिपलमुच्यते ॥ घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥ गायत्र्या-दाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रावणस्तथा दधि ॥ ३३ ॥ तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥ पंचगव्यमुच्चा-युतं स्थापयेदभिसन्निधौ ॥ ३४ ॥ आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मंत्रयेत् ॥ सप्तावरांसु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुक्रं त्विषः ॥ ३५ ॥ एतेरुद्धृत्य होतव्यं पंच-गव्यं यथाविधि ॥ इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥ ३६ ॥ एताभि-श्चैव होतव्यं हुतशेषं पिवेद्विजः ॥ आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ ३७ ॥ उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच्च प्रणवेन तु ॥ यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाभिरिवंधनम् ॥ पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवता-भिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥ वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये ह्युपवाहनः ॥ दधि वायुः समुद्दिष्टः सीमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

गोमूत्र, गोवर, दूध, दही, घी, कुशाका जल यही सम्पूर्ण पापोंका नाशकारी पवित्र पंच-गव्य कहाता है ॥ २९ ॥ काली गौका मूत्र, सफेद गौका गोवर, तावके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही, ॥ ३० ॥ कपिला गौका घी, अथवा सम्पूर्ण वस्तुएँ कपिलाहीकी लेले; एक पल गोमूत्र, अधि अंगुठेभर गोमय, ॥ ३१ ॥ सात पल दूध, तीन पल दही, एक पल घी और एक पल कुशाका जल हो ॥ ३२ ॥ गायत्री पढकर गोमूत्र ग्रहण करे, "गंधद्वारां" इस मंत्रसे गोवर "आप्यायस्व" इस मंत्रसे दूध "दधिक्रावण" इससे दही ले ॥ ३३ ॥ "तेजोसिशुक्रं" इस मंत्रसे घी ले "देवस्य त्वा" इस मंत्रसे कुशाका जल ले इसभांति ऋचाद्वारा पवित्रकिये



पंचगव्यको अग्नि के सम्मुख रखै ॥ ३४ ॥ "मापोहिष्ठा" इस मंत्रसे पछावे "मामस्तोके" इस मंत्रसे मयै, कमसे कम सात, और चौथेके समान रंगवाली अणुमाग्युक्त ॥ ३५ ॥ उन कुशाओंसे विधिसहित छठाकर पंचगव्यका हवन करै "इरावती" "इदुविष्णु" "मामस्तोके" "संबती" ॥ ३६ ॥ इन ऋचाओंसे हवन करै और शेषको ब्राह्मण पान करै, ओंकारसेही चढाकर और ओंकारसेही मसकर ॥ ३७ ॥ ओंकारसेही छठावे और ओंकारसेही पिपे । ओ त्वचा और अस्थियोंमें देहवारियोंका पाप स्थित है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्च उसको इस मांति वृक्ष करदेता है जिसमांति ईपनको अग्नि मस करवेती है; यह पंचगव्य तीनों ओकोंको पवित्र करनेवाला और देवताओंसे अभिहित है कारण कि ॥ ३९ ॥ बरुण गोमूत्रमें, अग्नि गोबरमें, प्रबत वहीमें, चंद्रमा वृषमें, और सूर्य भीमें निवास करते हैं ॥ ४० ॥

पिषत पतित तोय भाजने मुखनिःसृतम् ॥

अपेय तद्विजानीयाद्ब्रुक्त्वा चांद्रायणं श्वरेत् ॥ ४१ ॥

यदि मनुष्यके जल पीतेहुए समयमें मुँहमेंसे जल निकलकर पात्रमें गिरपड़े तो वह जल पीने योग्य नहीं रहता, और जो यदि इसे पीभी ले तो वह चांद्रायण प्रव करनेसे शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वसृगास्त्री च मर्कटम् ॥ अस्थिचर्मादिपतितं पीत्याग्नेभ्या अपो द्विजं ॥ ४२ ॥ नारं तु कुणपं काकं विद्वराह खरोष्ट्रकम् ॥ गावयं सीम तीकं च मायूरं स्रङ्गक तथा ॥ ४३ ॥ यैयाग्रमाक्षं सिंहं वा कूपे यदि निमज्जति ॥ तद्वागस्याप्युष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥ प्रायाश्चित्तं भवेत्सुस- क्रमे णितेन सर्वशः ॥ विप्रं शुष्येभिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनदयात् ॥ ४५ ॥ एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्धयति ॥

जिस कूपमें कुत्ता, गीबड़, बंदर, अस्थि, चर्म यह गिराई हो उस कूपके अपवित्र जलको पीनेवाला ब्राह्मण ॥ ४२ ॥ और मनुष्यका शरीर, कौआ, बिछा घानेवाला सूकर, गधा, खंड, गाय ( नीलगाय ) हाथी मोर, गैंडा, ॥ ४३ ॥ भेड़िया, रीछ, सिंह, यदि यह कूपमें बूबजायें, और निपिय छाछावके जलको पीनेवाला मनुष्य ॥ ४४ ॥ इन सबका क्रमातुसार प्रायश्चित्त इस मांति है, ब्राह्मण वीमरात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, क्षत्रिय दो दिनके उपवास करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४५ ॥ वैश्य एकही दिन उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, शूद्र मच्छरवके करनेसे शुद्ध होजाता है ॥

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥ अपचस्य च भुक्त्याग्निं द्विजश्चां द्रायणं श्वरेत् ॥ अपचस्य तु यद्दानं दातुरस्य पुत्रं फलम् ॥ ४७ ॥ दाता प्रति- गृहीता च द्वौ ती निरयगामिनी ॥

जो परपाकनिवृत्त ( इसका ब्रह्मण आगे करेंगे ) दो बरका अन्न, और जल परपाकरत ( इसका ब्रह्मण आगे करेंगे ) दो उसका अन्न ॥ ४६ ॥ और अपच ( ब्रह्मण आगे करेंगे ) का अन्न श्वरानैरेमाह्वणको चांद्रायण प्रव करना अहित है जो मनुष्य अपचको हान बतादे इसका पत्र दाताको नहीं दाता ॥ ४७ ॥ उसका भेजेवाला भार लेनेवाला यह दानी मरकटको जायें

गृहीत्याग्निं समारोप्य पत्रयज्ञात्तं निषेत् ॥ ४८ ॥ परपाकनिवृत्तोऽसी मुनिभिः पारिपीतितं ॥ पचपज्ञान्तर्यं पृ या पराग्रनोपजीयति ॥ ४९ ॥ सततं प्रातः उथाय परपापरतस्तु सः ॥ गृहस्थधर्मा या पिभो ददाति परिपयित ॥ ५० ॥ ऋषिभिपमतश्चक्षीरपगं परिपीतितं ॥

अग्निहोत्रका नियम करकै पंचयज्ञ न करै ॥ ४८ ॥ दूसरेके पकायेहुए अन्नको भोजन करै, सुनियोंने इसे परपाकनिवृत्त कहाहै, और जो स्वयं पंचयज्ञ करकै पराये अन्नसे जीवन व्यतीत करतेहैं ॥ ४९ ॥ और नित्य प्रति प्रभातकालको उठकर परपाकमें रत हो उसको परपाकरत कहते हैं गृहस्थ धर्ममें जो ब्राह्मण हो और-दान न देता हो ॥ ५० ॥ धर्म तत्त्वके जाननेवाले ऋषियोंने उसे अपच कहाहै,

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥ ५१ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

जो धर्म युग २ में स्थित हैं, और जो ब्राह्मण युग २ में हैं ॥ ५१ ॥ उनकी निन्दाकरनी उचित नहीं कारण कि वह ब्राह्मण युगकेही अनुरूप हैं,

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥ ५२ ॥ ज्ञात्वा तिष्ठन्नहःशेषम-

भिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्धापि वाससा ॥ ५३ ॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षिति-

पातने ॥ ५४ ॥ अतिकृच्छ्रं च रुधिरं कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥

अत्यन्त बड़े ब्राह्मणको हुंकार और त्वंकार कहकर ॥ ५२ ॥ जितना दिन शेष हो उतने दिन स्नानकरकै बैठारहै, और उन्हें नमस्कार कर प्रसन्न करै, यदि कोई तिनुकेसे ब्राह्मणको ताडन करै, या उसके गलेमें बख बाँधे ॥ ५३ ॥ अथवा विद्याके द्वारा उसको पराजित कर दे तो प्रणामादि द्वारा उस ब्राह्मणको प्रसन्न करना उचित है; और यदि ब्राह्मणको झटकदे तब अहोरात्र उपवास करै, और पृथ्वीपर गिरानेसे तीनरात्रि उपवासकरना उचित है ॥ ५४ ॥ रुधिर निकालनेपर अतिकृच्छ्र व्रत करै और रुधिरके न निकलनेपर कृच्छ्र करना उचित है ॥

नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥ ५५ ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥

एक अंजुलीभर अन्नको नौ दिन तक खाय वह अतिकृच्छ्र कहाताहै ॥ ५५ ॥ और तीन-रात्रि उपवास करै उसे कृच्छ्र कहतेहैं ॥

सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥

दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥ ५६ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यदि एकहीसमय सम्पूर्ण पापोंका सम्मिलन होजाय तौ॥दश हजार गायत्रीका जप करनेसे परमशुद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ५६ ॥इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु चांते वा क्षुरकर्मणि ॥

मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

घमन, क्षौरकर्म, मैथुन, प्रेतका हुंआ, इनके स्वप्न देखनेके उपरान्त स्नान करना कहाहै ॥ १ ॥

अज्ञानात्पाश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेवच ॥ पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा

द्विजातयः ॥ २ ॥ अजिनं भेखला दंडो भैक्षचर्या व्रतानि च॥निवर्त्तते द्विजा-

तीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मण भ्रजान्वासे विष्टा, मूत्र, और जिसमें मद्य मिश्रीहो इनको खाते तो तीनों वर्ष फिर संस्कारके योग्य होजाते हैं ॥ २ ॥ द्विजादिभोंको पुनर्बार संस्कारके कर्ममें सुगन्धा, कौषणी, बंड, मिष्टाका मांगना यह सम्पूर्ण निवृत्त होजाते हैं ॥ ३ ॥

विष्णुप्रस्य च शुद्धर्ष्यं प्राजापत्य समाचरेत् ॥

पंचगव्यं च कुर्वीत खात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

विष्टा मूत्रका खानेबाछा प्राजापत्य करे, और पंचगव्य बनाकर खान करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ४ ॥

अलाभिपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ॥ प्रत्यषसितवर्णानां फय शुद्धिर्विधी-  
यते ॥ ५ ॥ प्राजापत्यद्वयैव तीर्थाभिगमनेन च ॥ वृषैकादक्षदानेन वर्णा  
शुद्धयति ते प्रयः ॥ ६ ॥

(प्रभ) कछ और अग्निमें पड़कर संव्यास धर्मको मट्टकरनेवाले इन धर्मसे पठितरूप वर्णाको शुद्धि किसमोति होती है? ॥ ५ ॥ ( उचर ) दो प्राजापत्यके करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे ग्याय वेदोंका दानकरनेसे क्रमस्तुसार तीनोंवर्ण शुद्ध होजाते हैं ॥ ६ ॥

ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि धर्मं गत्वा चतुष्पथे ॥ ससिखं धपन कृत्वा प्राजापत्यद्वयं  
चरेत् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दासिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोश्रवीत् ॥ मुच्यते तेन  
पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

अब ब्राह्मणका प्रायश्चित्त कहते हैं वह ब्राह्मण धर्ममें जाकर चौराहेमें सिखासमेव मुंडन कराकर दो प्राजापत्य प्रवचरे ॥ ७ ॥ और दक्षिणामें दो गौ वे तब शुद्ध होता है यह पराशरमुनिका वचन है और उस पापसे छूटकर फिर ब्राह्मणही होजाता है ॥ ८ ॥

ज्ञानानि पच पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ॥ आमेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं  
दिम्बमेव च ॥ ९ ॥ आमेय भस्मना ज्ञानमवगाह्य तु वारुणम् ॥ आपोहि  
द्येति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ १० ॥ यत्र सातपथर्षेण ज्ञानं तदि-  
म्यमुच्यते ॥ तत्र ज्ञात्वा तु गंगायां ज्ञातो भवति मानवः ॥ ११ ॥

दुष्टिमानोंने पांच ज्ञानोंको पवित्र कहा है १ आमेय २ वारुण, ३ ब्राह्म, ४ वायव्य, ५ दिम्ब ॥ ९ ॥ जो भस्मसे मार्जम कियाजाता है वह आमेय ज्ञान कहाता है, मछसे जो ज्ञान किया जाता है वह वारुण कहाता है, 'आपो हिष्टा' इन तीन ऋषामोंसे जो स्नान है उसे ब्राह्म कहते हैं, और जो गौर्भोंकी रससे स्नान कियाजाता है उसे वायव्य कहते हैं ॥ १० ॥ वृषके निक-  
खमेपर भी जो वर्षा होतीहो उस मेर्षोंकी वृषोंसे जो स्नान कियाजाता है उसे दिम्ब स्नान कहते हैं इस दिम्ब स्नानसे मनुष्य गंगास्नानके फलको पाता है ॥ ११ ॥

ज्ञातुं यातं द्विज सर्वं देवाः पितृगणैः सह ॥ यापुभूतास्तु गच्छन्ति द्वापार्ताः  
सलिलार्थिनः ॥ १२ ॥ निराशास्ते निवर्तते वस्त्रनिष्पीडने कृते ॥ तस्मान्न  
पीडयेद्रस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥

जिस समय ब्राह्मण स्नान करतेके द्विये जाता है, उस समय पितर और देवता वृष्यासे आशु हो जलपीनेके द्विये बापुसुख धारणकर उसके संगसंग जाते हैं ॥ १२ ॥ यदि वह ब्राह्मण भ्रजानकर बिना वर्पन कियेही वस्त्र निचोड़ खाके तब वह भिराण होकर छोट भाते है, इसका रण पितरोंका तपय पिता किये बचको पहले कमी न निबाडे ॥ १३ ॥

रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिष्ठैस्तर्पयेत्पितृन् ॥ तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च ॥ १४ ॥ अवधूनोति यः केशान्त्रात्वा प्रस्रवतो द्विजः ॥ आचामेद्वा जल-स्थोपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य रोमोंके छिद्रोंको पोंछकर पितरोंका तर्पण करताहै उसनें मानो रुधिर और मलसे पितरोंको तृप्तकिया ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण स्नान करनेके पीछे केशोंको झाडताहै या उनमेंसे जल टपकाताहै, या जो जलमें बैठकर वा खड़े होकर आचमन करताहै, वह मनुष्य पितर और देवताओंके कर्म करने योग्य नहींहै ॥ १५ ॥

शिरः प्रावृत्य कंठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा ॥

विना यज्ञोपवीतेन आर्चातोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य शिर वा कंठको फेरकर और लम्बी शिखाको खोलकर, या जनेऊके विना आचमन करता है वह आचमन करकैभी शुद्ध नहीं होता, अर्थात् अशुद्धही रहताहै ॥ १६ ॥

जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्चेद्बहिः स्थले ॥

उभे स्पृष्ट्वा समाचामेद्दुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥

मनुष्य स्थलमें बैठकर जल में और जलमें बैठकर स्थलमें आचमन न करै परन्तु दोनों जगह बैठा दोनों जगहही आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

ज्ञात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ॥

आर्चातः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥ १८ ॥

आचमनकरनेके पीछे, स्नानकरनेके उपरान्त जलपीनेके पीछे, छींकेनेके उपरान्त सो कर चठनेके पीछे, खानेके पीछे, या गलीमें चलनेके पीछे वा बख पहननेके पीछे फिर आचमन करले ॥ १८ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥

पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥

छींकना, थूकना, दांतोंका उच्छिष्ट, अथवा झूठ बोलना, व पतितोंके साथ संभाषणकरना इन कर्मोंके करनेसे दाहिने कानका स्पर्श करले ॥ १९ ॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ॥

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥

दिनका स्नान सूर्यकी किरणोंसे पवित्र है, और राहुके दर्शनोंको छोडकर रात्रिका स्नान अधम कहाता है ॥ २० ॥

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः ॥

सर्वे सोमे प्रलीयंते तस्मादानं तु संग्रहे ॥ २१ ॥

मरुत, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और वारह सूर्य और देवता यह ग्रहणके समयमें सब चंद्रमा में लीन होजाते हैं, इससे ग्रहणके समय में दानदेना अवश्य कर्तव्य है ॥ २१ ॥

खलयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे तथा ॥ शर्वर्या दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥ पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ॥ राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥ महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवृत्तानमाचरेत् ॥ २४ ॥

लक्षणाग, विवाह, सञ्चयि और ग्रहण इन अवसरोंमें रात्रिके समय में दानकरे, अन्यसमय में न करे ॥ २२ ॥ पुत्रका जन्म, पण, सूतकका कर्म, राहुका वर्णन इनमें रात्रिके समय में दान उत्तम कहाहै, और कर्मों में नहीं कहा ॥ २३ ॥ रात्रिके बीचमें दो पहारोंको महानिश्च कहते हैं, इसकारण सूर्यास्तके और पिछले पहारमें विनकी समान स्नानकरे ॥ २४ ॥

चैत्यशुद्धिः पूषभठाल सोमविक्रयी ॥

एतांस्तु ब्राह्मण स्पृष्ट्वा सयासा जलमाविशेत् ॥ २५ ॥

चैत्यका शुद्ध ( इसकी पूजा बौद्धमतवाले करतेहैं ) विदारोप, चांडाल, सोमकटाक्ष बेचने-वाला, इन सबका स्पर्शकरनेसे ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करे ॥ २५ ॥

अस्त्रिसंचयनार्थं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ॥

अंतर्देशाहो विप्रस्य शूर्ध्वमाचमन स्मृतम् ॥ २६ ॥

अस्त्रिसंचयनके पहले रुदनकरके स्नानकरना उचित है और ब्राह्मणोंको मलनेसे बचाने के लिये आचमनकरना उचित है ॥ २६ ॥

सर्वं गंगासमं तोयं राहुमस्ते दिवाकरे ॥

सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥

सूर्य या चंद्रमाको जिससमय राहु ग्रहसे छससमय सनी लक्ष, स्नान, दान आदि कर्मोंमें गंगाकी समान होजाये है ॥ २७ ॥

कुशीं पूत भवेत्स्नान कुशेनोपस्पृशद्विजः ॥

कुशेन चोद्धृत तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥ २८ ॥

कुशसे पवित्रद्रव्य लक्षसे स्नानकरे, और कुशामेंसेही ब्राह्मण आचमनकरे, कारण कि कुशासे छठायाहुमा गज अमृतपानकरनेकी समान होजाताहै ॥ २८ ॥

अमिकार्यात्परिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ॥ वेदं शिवानधीयानां सर्वे ते  
पृथगा स्मृताः ॥ २९ ॥ तस्माद्गुप्यभित्तिं ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ अध्येत  
व्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥ शूद्राभ्ररसपुष्टस्याधीयमानस्य  
नित्यशः ॥ जपतो शुद्धतो वापि गतिरूप्या न विद्यते ॥ ३१ ॥

जो ब्राह्मण अभिहोत्रसे भ्रष्ट होगये हैं और जो संभ्रातृपासनासे वर्जित हैं; जो वेदको नहीं पढ़ते उनको शूद्र कहाहै ॥ २९ ॥ इसकारण शूद्रहोनेके भयसे यदि ब्राह्मण सब वेदोंको न पढ़सके तो एक वेदको ही अवश्यही पड़े ॥ ३० ॥ शूद्रके भयसे पुष्टकोर जा; ब्राह्मण नित्य वेदपाठ करने और जप करता है परंतु तीभी बसकी सज्जगति नहीं प्राप्तहोती ॥ ३१ ॥

शूद्रानं शूद्रसर्पकं शूद्रेण तु सदासनम् ॥ शूद्राग्नानागमश्चापि ज्वलंतमपि  
पातयेत् ॥ ३२ ॥ यः शूद्रया पाचयन्निर्यं शूद्री च गृहमेधिनी ॥ वर्जितः  
विद्वद्भ्यम्पो रीर्यं याति स द्विजः ॥ ३३ ॥ मृतसुतकपुष्टांगं द्विजं शूद्राप्रमो-  
गिनम् ॥ अहं स न विजानामि कां पां योनिं गमिष्यति ॥ ३४ ॥ गृध्री दाद-  
शाममानि दशममानि सुकरः ॥ शपोनी सप्तममानि इत्येवं मनुरभवीत् ॥ ३५ ॥

शूद्रका जन्म, शूद्रके गाय मेष, शूद्रके साथ पकजगद बैठना, शूद्रमें स्नान करना, यह प्रथा पुराने मनुष्यकोभी पवित्र करतेहैं ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रसे भोजन करनेवालाहै, या मिट्टी की घुंटीया व आसन पितर और बेचनाभोगे वर्जित है, और अन्तमें शूद्रमरकडो जायाहै ॥ ३३ ॥

॥ ३३ ॥ मृतकके सूतकमे खानेसे जिसका अंग पुष्टहुआहो, और जो शूद्रके यहाँका अन्न भोजन करता हो वह न जाने किस २ योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३४ ॥ परन्तु मनुने इस भाँति कहाहै कि बाहर जन्मोत्तक गीध, दश जन्मोत्तक सूकर खात जन्मतक वह मनुष्य हुत्तकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३५ ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥

ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविका हवन करताहै, वह ब्राह्मण शूद्र होताहै; और वह शूद्र ब्राह्मण होताहै ॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्विजः ॥ भुंजानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परि-  
चरयेत् ॥ ३७ ॥ अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥ हतं देवं  
च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥ भुंजानेषु तु विप्रेषु योऽप्रे पात्रं  
विमुंचति ॥ स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥ भाजनेषु  
च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वति ये द्विजाः ॥ न देवास्तुस्तिमायांति निराशाः पितर-  
स्तथा ॥ ४० ॥ अस्नात्वा वै न भुंजीत तथैवाभिमपूज्य च ॥ न पर्णपृष्ठे  
भुंजीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥

मौन व्रतको धारणकर जो ब्राह्मण बैठे वह न बोले, और जो भोजन करतेमें बोले तो उस अन्न को त्याग दे ॥ ३७ ॥ आधा भोजन करनेके उपरान्त जो ब्राह्मण उसी भोजनके पात्रमें जल पीताहै, उसके देवता और पितरोंके किये हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट होजाते हैं, और वह स्वयं अपनी आत्माकोभी नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें पहले पात्र छोड़कर खड़ा होजाताहै, वह मूढ महापापी और ब्रह्महत्यारा कहाताहै ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण भोजन करते समयमें स्वस्ति कहते हैं उनपर देवता वृत्त नहीं होते, और उसके पितरभी निराश होजातेहैं ॥ ४० ॥ स्नान विना किये, और विना अभिषेका पूजन किये भोजन करना उचित नहीं और रात्रिके समयमें पत्तेकी पीठपर दीपक के विना भोजन न करै ॥ ४१ ॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिंतयेत् ॥ पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती स  
बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥ न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥ अन्यायेन तु  
यो जीवेत्सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥ ४३ ॥ अभिचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदयिः ॥  
दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥ अरणि कृष्णमार्जारं  
चन्दनं सुमणि घृतम् ॥ तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥

दयावान् गृहस्थ सर्वदा धर्मकी चिन्ताकरै, और अपने पुत्र वा भृत्यआदिके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये बुद्धिमान् सर्वदा न्यायका वर्ताव करता रहै ॥ ४२ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे अपनी रक्षाकरै, जो अन्यायसे जीवन व्यतीत करताहै, वह धर्मसे रहित है ॥ ४३ ॥ अभिषेक हवन करनेवाला, कपिलागौ, यज्ञकरनेवाला, राजा, भिक्षुक, समुद्र, यह देखनेसेही पवित्र करतेहैं, इसकारण इनका दर्शन सर्वदा करै ॥ ४४ ॥ अरणि, काला विलाव, चन्दन; उत्तम मणि, घी, तिल, काली मृगछाला, बकरी इनकी रक्षा अपने घरमें करै ॥ ४५ ॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययंत्रितम् ॥ तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकी-  
र्तितम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिर्मर्यायां मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ एतद्रोचर्मदानेन  
मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥ कुडुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥

यद्दान दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥ वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेय  
शतेर्मखैः ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्धयति ॥ ४९ ॥

जिस स्थानपर सौ गौ और एक बैल यह दक्षगुने ज्योंत दक्षज्वार गौ और सौ बैल  
यह किया बाँचे टिके उस क्षेत्रको गोधर्म कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य इस गोधर्ममात्र  
पृथ्वीका दानकरताहै वह मनुष्य मन बचन बेह और कर्मोंके कियेहुए ब्रह्महत्याइत्यादि पापोंके  
पूटजाताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य कुटुंबी, बरित्री विधेय करके बेवपाठी इनको दान देताहै, वह  
शुभका करनेवाला है ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीकरण करताहै वह वाषडी, कूप तडागा और  
सौरे नामपेय यज्ञोंके करनेसे और कोटि गौओंके दान करनेसे भी शुद्ध नहीं होता ॥ ४९ ॥

अष्टादशदिनादर्धावज्ञानमेष रजस्वला ॥ अत ऊर्ध्व त्रिरात्रं स्यादुशाना मुनि-  
रध्ववीथ ॥ ५० ॥ युगं युगद्वयं श्वेष त्रियुगं च चतुर्युगम् ॥ चण्डालसूतिकेद-  
क्यापतितानामपः क्रमात् ॥ ५१ ॥ ततः सन्निधिमात्रेण सशैलं ज्ञानमाच-  
रेत् ॥ आत्वायलोक्येत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि ॥ ५२ ॥

यदि जो रजस्वला की रजोवर्धनसे अठारहदिन पहले पूर्व कहे हुए चाँडाळभयविका स्पर्श  
करले तो स्नानही करे; अगर अठारह दिनसे आगे तीनरात उपवास करे यह ब्रह्मन् मुनिका  
वचनहै ॥ ५० ॥ यदि क्रमानुसार चार दिन, आठदिन बारह दिन सोलहदिन चाँडाळ सूतिका  
रजस्वला पठित इनके ॥ ५१ ॥ निकट रहनाम ही उसको वक्रोंसहित स्नानकरना उचित  
है, और यदि अज्ञानसे स्पर्शभी करलियाहो तो स्नान करके सूर्यका दर्शन करे ॥ ५२ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः ॥

तोर्यं पिबति यन्नेण श्वयोनी जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

जो ब्राह्मण हाथोंके होठेहुएभी पात्रमें सुकळगाकर अठ पीठाहै उसको अन्नइसी कुत्तेकी  
पोनि मिळतीहै ॥ ५३ ॥

यस्तु क्रुद्धः पुमाश्रूयाणायापास्तु भगम्यताम् ॥ पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु  
भाषयेत् ॥ ५४ ॥ अत क्रुद्धस्तर्मोऽधो वा क्षुरिपासाभयार्दितः ॥ दानं पुण्यं  
मकृत्वा या प्रायश्चित्तं दिनप्रथमम् ॥ ५५ ॥ उपस्पृशोश्चिपवण महानद्युपसंगमे ॥  
चीणति श्वे गं दद्याद्ब्राह्मणाभोजयेद्दश ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य क्रोधित होकर अपनी कीछे इसमार्ति कहताहै कि तू मेरे गमनकरने योग्य नहीं  
है और फिर किसी समय उस कीकी इच्छा करे, तो वह अपनी यह बात ब्राह्मणोंके निकट  
प्रकाश करे ॥ ५४ ॥ बका, या क्रोधी, अथवा अज्ञानवास अंधा; हुभायुष्मासे सुखी उस  
ब्राह्मणको दान पुण्यकरना उचित नहीं वह केवल तीनदिनतकही प्रायश्चित्त करे ॥ ५५ ॥  
और तीनों सन्धयमें महानदीके संगममें स्नानकर आचमन करे, और प्रायश्चित्त करके  
उपरान्त यिकाळ गोदान करे, और दश ब्राह्मणोंको भिक्षा ॥ ५६ ॥

दुराधारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ॥

अन्नं भुजस्या द्विजः पुयादिनमकमभांगनम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण दुराचार्य और निषिद्ध अचरण करनेवाले ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह  
एकदिन भोजन न करे ॥ ५७ ॥

सदापारस्य विप्रस्य तथा यदांगवेदिनः ॥

भुक्त्वात्र मुच्यत पापाद्द्वेरात्रांतरात् ॥ ५८ ॥

और जो मनुष्य उत्तम आचरण करनेवाले वेद वेदांतके जाननेमें निपुण ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह मनुष्य अहोरात्रके उपरान्त सम्पूर्ण पापसे मुक्त होजाताहै ॥ ५८ ॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमंतरिक्षमृतौ तथा ॥ कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणं  
तथा ॥ ५९ ॥ कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ॥ पुण्यतीर्थं नार्दशिराः

ज्ञानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥ द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् ॥  
यदि कोई ऊर्ध्वोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अधोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अन्त-  
रिक्षमें मरजाय उसके अशौचके अन्नको और मृतकके अशौचके भोजनको जो मनुष्य खाताहै  
वह तीनकृच्छ्र व्रतकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५९ ॥ दशहजार गायत्री, दोसौ प्राणायाम, और  
पवित्र तीर्थमें बारहवार शिर भिगोकर स्नान, यह एककृच्छ्रका फल देतेहैं ॥ ६० ॥ और  
दो योजनतक तीर्थकी यात्राकोभी एक कृच्छ्र कहाहै,

गृहस्थः कामतः कुर्याद्व्रतसः स्वलनं यदि ॥ ६१ ॥

सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥

जो गृहस्थी पुरुष अपने वीर्यको जानकर गिराताहै ॥ ६१ ॥ वह तीन प्राणायामकर एक-  
हजार गायत्रीका जप करे.

चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥ समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समा-  
दिशेत् ॥ सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥ ६३ ॥ वर्जयित्वा विकर्म-

स्थांश्छत्रोपानहवर्जितः ॥ अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥ ६४ ॥ गृह-  
द्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥ गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च  
॥ ६५ ॥ तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रसवणेषु च ॥ एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं

गत्वा तु सागरम् ॥ ६६ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ रामचंद्र-  
समादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥ ६७ ॥ सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥ ६८ ॥ यजेत वाश्वमेधेन राजा  
तु पृथिवीपतिः ॥ पुनः प्रत्यागतो वेदम वासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥ सपुत्रः स-  
हभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गाश्वैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥

॥ ७० ॥ ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥

जो चारों विद्याओंसे युक्त हो यदि उसने ब्रह्महत्या की हो ॥ ६२ ॥ उसे सेतुबंध रामेश्वर  
जानेका प्रायश्चित्त बताना कर्तव्य है, और वह सेतुबंध जानेके समय चारों वर्णोंसे भिक्षा मांगे  
॥ ६३ ॥ केवल कुर्म करनेवाले मनुष्योंसे भिक्षा न मांगे, उससमय जूता और छत्रीको  
न रखे और वह भिक्षाके समयमें यह कहै कि मैंने अत्यन्त दुष्कर्म कियाहै, मैं महापापी  
हूँ ॥ ६४ ॥ मैंने ब्रह्महत्या कीहै भिक्षाके निमित्त "तुम्हारे द्वारपर खडाहूँ" और गोशाला,  
ग्राम, नगर इनमें निवास करे ॥ ६५ ॥ तपोवनके तीर्थोंमें वसे, और जहा नदीके प्रवाह हैं  
वहा इनसे अपने पापोंको प्रगट करताहुआ पवित्र समुद्रपर जाय ॥ ६६ ॥ दश योजन चौड़े  
और सौ योजन लम्बे श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे नल वानरके बनायेहुए ॥ ६७ ॥ समुद्रके  
दर्शनकरै तब उसीसमय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होजाता है इसके उपरान्त समुद्रके पुलका-  
दर्शनकर पवित्रमन हो स्नानकरै ॥ ६८ ॥ और यदि पृथ्वीपति राजाही ब्रह्महत्या करै तो वह  
अश्वमेध यज्ञको करै, इसके उपरान्त घर लौटकर आवे और निवासकरै ॥ ६९ ॥ इसके पीछे  
पुत्र और भृत्योंसमेत ब्राह्मणोंको भोजन करावे, और चारों विद्याओंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको  
सौ गौ दक्षिणामें दे ॥ ७० ॥ ब्राह्मणोंके प्रसादसेही मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाताहै.



विंध्यादुत्तरतो यस्य संघास परिकीर्तितः ॥ ७१ ॥

पराशरमतं तस्य सेतुर्धंस्य दर्शनात् ॥

जो विंध्यापर्वतसे उत्तरमें निवास करता है ॥ ७१ ॥ उसे पराशर ऋषिसे सेतुबंधका दर्शन करना चाहै,

सघनस्यां श्रियं वृत्त्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य प्रसूता स्त्रीको मारता है; वह ब्रह्महत्यामें कहे हुए व्रतका आचरण करे ॥ ७२ ॥

सुरापथं द्विजाः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ चांद्रायणं ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मण-  
मोममम् ॥ ७३ ॥ अनहुत्सहितां गौं च दद्याद्विधेयु क्षत्रियाम् ॥

जो ब्राह्मण मंदिरा पीता है वह समुद्रगामिनी नदीके उत्तर जाकर चांद्रायण व्रतकर ब्राह्मणोंको मोमन करावे ॥ ७३ ॥ और एक बैल और एक गौ ब्राह्मणोंको दक्षिणावे दे,

सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निषर्णां सुरां पिबेत् ॥ ७४ ॥

स पाशयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च ॥

एकबार मंदिराको पीकर, अग्निके समान रंगवाली मंदिराका जो पान करता है ॥ ७४ ॥ वह इस लोक और परलोकमें अपने आत्माको पवित्रकरवावे।

अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥ ७५ ॥ गच्छेन्मृगशालमादाय

राजाने स्वधधाय तु ॥ इतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽपी मुक्त एव च ॥ ७६ ॥

कामतस्तु कृत यत्स्यान्नान्यया पथमर्हति ॥

ब्राह्मणके सुवर्णको चुरानेबाधा स्वधी ॥ ७५ ॥ मृगशालको अपने मारनेके छिपे छेकर राजाके निकट जाय, फिर राजासे प्रहार जाकर वह मुक्त होजाता है, और इसके बचपान बचनी मुक्ति भी होजाती है ॥ ७६ ॥ यदि जानकर अपराध किया है तब ही वह मारनेके योग्य है, इसके आविरेछ नहीं,

आसनाच्छपनाद्यामात्सभापात्सहभोजनात् ॥ ७७ ॥ सक्कामंतीह पापानि तैल

विंदुरिवांसि ॥ चांद्रायणं यावत्कं च तुळापुरुष एव च ॥ ७८ ॥ गवांश्चैवा

नुगमनं सर्वपापमणाशनम् ॥

एक आसनापर बैठनेसे, खोलेसे, गमन करनेसे सोलनेसे, भोजनसे ॥ ७७ ॥ पाप इस-  
मांति क्षिप्त होतेहैं जिसमांति जटमें पत्नीदुई तैलकी पूजा; चांद्रायण, यावत्कमोहन, तुळापुरु-  
षव्रत ॥ ७८ ॥ और गौमोंके पीछे जाना, इससे सम्पूर्ण पाप नाश होजाता है।

पतत्पाराशर शार्खं श्लोकानां पातपत्रकम् ॥ ७९ ॥ दिनवत्या समायुक्त धर्म-

शास्त्रस्य समग्रहः ॥ यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ॥ ८० ॥ अध्येत

व्य प्रयत्नेन नियत स्वर्गकामिना ॥

इति भीमपाशरवै धर्मशास्त्रे सक्कामपापविघ्ननिर्णयो नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वह पांचसौ बानसे श्लोकयुक्त पाराशर मुनिके कहे हुए धर्मशास्त्रका संग्रह है ॥ ७९ ॥ जिस-  
मांति मनुष्यनके काम हैं उसी मांति यह धर्मशास्त्र है ॥ ८० ॥ स्वर्गकी अभिधाया करनेवाले  
पुरुषोंको इसका पाठ पद्यछहित करना कर्तव्य है ॥

इति पद्यछरी धर्मशास्त्रे सक्कामपापविघ्ननिर्णये प शकामनुग्रहस्यनिरादिहृत

भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

पाराशरस्मृति समाप्ता ॥ ११ ॥

॥ श्रीः ॥

## व्यासस्मृतिः १२.

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ व्यासस्मृतिः ॥ वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यासं तपो-  
निधिम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान्वर्णव्यवस्थितान् ॥ १ ॥ स स्पृष्टः  
स्मृतिमास्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ॥ उवाचाथ प्रसन्नात्मा . मुनयः  
श्रूयतामिति ॥ २ ॥

काशीक्षेत्रमें श्रीवेदव्यासजी सुखसहित बैठे थे इससमय मुनियोंने उनके समीप जाकर  
चारोवर्णोंके धर्मको पूछा ॥ १ ॥ सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् वह वेदव्यासमुनि मुनियोंके इसभांति  
पूछनेपर सम्पूर्ण वेदका अर्थ और स्मृति शास्त्रको स्मरणकर प्रसन्न हो कहने लगे ॥ २ ॥

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ॥

चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति ॥ ३ ॥

जिन २ देशोंमें इच्छानुसार काला मृग सर्वदा विचरण करे उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें वेदोक्त  
धर्मका आचरण करना उचित है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥

तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वेषे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥

जहां श्रुति, स्मृति, और पुराणोका विरोध हो वहां वेदोक्त कर्मही प्रधानहैं, और जहां स्मृति  
और पुराणमें विरोध देखाजाय वहां स्मृतिके विषयही चलवान हैं, अर्थात् स्मृतिके कहेहुए  
कर्मको करना चाहिये ॥ ४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु  
नेतरे ॥ ५ ॥ शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ वेदमंत्रस्वधास्वाहावष-  
ट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजातिहैं, यह तीनों वर्णही श्रुति स्मृति और  
पुराणमें कहेहुए धर्मके अधिकारी हैं, दूसरा नहीं ॥ ५ ॥ शूद्रजाति चौथा वर्ण है, इसीकारण  
अधिकारी है परन्तु वेदमंत्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कारादि शब्दोंके उच्चारणका  
व्यवहार नहीं है ॥ ६ ॥

द्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ॥ जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु  
॥ ७ ॥ वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥

द्विप्रके साथ विधिपूर्वक जो ब्राह्मणकन्या विवाही गईहै उसकी सन्तानके जातकर्म  
कार ब्राह्मणोंके समान हैं, और क्षत्रियके कुलसे जो विवाही गईहै उसकी सन्तानके

सस्कार क्षत्रियोंकी समान हैं, और जो दूधकुण्डसे विवाहीगर्ह है उसकी सन्तानके उत्तर दूधकी समान होतेहैं ॥ ७ ॥ जिस वैश्यका ब्राह्मण या क्षत्रियने विवाह कियाहै, और वैश्यने दूधकी साथ विवाह कियाहै इन दोनोंकी सन्तानके कर्म दूधकी समान होतेहैं,

अथमादुत्तमायां तु जातं दूधायमं स्मृतं ॥ ८ ॥

नीचे वर्णसे उत्तम वर्णकी कन्यामें जो सन्तान उत्पन्नहो वह दूधसेभी नीचे कहावीहै ॥ ८ ॥

ब्राह्मण्यां दूधजनितश्वंडालो धर्मवर्जित ॥ ९ ॥ कुमारीसमवस्त्वेकं सगो

त्रायां द्वितीयकं ॥ ब्राह्मण्यां दूधजनितश्वण्डालस्त्रिविधं स्मृतं ॥ १० ॥

ब्राह्मणीमें जो दूधसे उत्पन्नहो वह चांडाल होताहै, उसके किसी धर्मका अधिकार नहीं ॥ ९ ॥ वह चांडाल तीन प्रकारका है, एक तो वह जो कि कुमारीसे उत्पन्नहो और दूसरा यह जो कि सगोत्र पुरुषद्वारा विवाहिता सगोत्राक्षीमें ( अविचारधर्मसे ) उत्पन्नहो; और तीसरा वह जो कि ब्राह्मणीमें दूधसे उत्पन्नहो ॥ १० ॥

घट्टकिर्नापितो गोप आशायं कुंभकारकः ॥ षण्णिकिरातकायस्पमालाकारकुट्ट-

विधं ॥ बरटो मेदघडालदासश्वपचकोलका ॥ ११ ॥ एतेऽप्यजा समाख्याता

ये शाम्ये च गवाशनां ॥ एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादकर्षीक्षणम् ॥ १२ ॥

बर्तकी ( बडही ) नापित ( गार्ह ) और गोप ( गवाळ ) कुंभकार षण्णिक ( जो छेनेन करे और निपट्ट जाति हो ) किरात, कायरम माक्षी, बरट, मेघ, चांडाल, कैवर्त, श्वपच, कोलक कुट्टम्बी ( कुट्टामाक्षी ) ॥ ११ ॥ और जो गोमांस भक्षण करतेहैं वह सभी अत्यम हैं, इन सबके साथ संभाषण करनेसे स्नानकरना अधिक है; और इनके देखनेसे सूर्यमगवान्क वर्शन करे ॥ १२ ॥

गमाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च ॥ नामक्रियानिष्कमणेऽप्राशनं वपन

क्रिया ॥ १३ ॥ कर्णवेधो घृतादेशो घेदारभक्रियाधिधिः ॥ केशांतः स्नानमु-

द्वाहो विवाहान्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥ त्रेतामिसंग्रहश्चेति सस्कारा पोडश स्मृताः ॥

नवेता कर्णवेधांता मंत्रवर्ज क्रिया स्त्रियाः ॥ १५ ॥ विवाहो मंत्रतस्तस्या

दूधस्यामंत्रतो दश ॥

१ गमाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंत, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्कमण, ७ अप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० पशोपवीत, ११ घेदारम, १२ केशांत ( ब्रह्मचर्य समाप्त होनेपर १६ वै वर्षमें और ) १३ स्नान ( समावर्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके पयाशास्त्र स्नान करना ), १४ विवाह, १५ विवाहकी भूमिका ग्रहण, ॥ १४ ॥ १५ त्रेता ( दक्षिणामि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन ) मंत्रि ( अग्निहोत्र ) का ग्रहण यह गमाधानादि सोलह संस्कार कहें, कर्णवेधतक जो जो संस्कार हैं वह स्त्रीके विनामंत्र

१ प्रथममें ( ९ अंकेमें ) हठीको लपटे निहट्टनेके कारण उत्तम चांडाल कहकर फिर उठीके साथ और दोनद्वारके चांडालद्वारके दिशादेके उन दोनोंमें पशुभक्षण ( पुंसव ) कियाकर फिर लोपोपन करतेहैं वैश्वके आगेके १२ अंकेमें ११ एकोकोल किरात अथपट्ट मराष्ट्रको शरपादि-कोके साथ पाठ कियाहै उत्तमभी उनमें मियावपोपन करनेहीमें कारण जानेना ।

तेहैं ॥ १५ ॥ ( ब्राह्मणी ) स्त्रीकाभी विवाह मन्त्रोंसे होताहै और शूद्रोंके यह दशो  
वेनामंत्र होतेहैं,

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥ १६ ॥ सीमंतश्चाष्टमे मासि जाते  
जातक्रिया भवेत् ॥ एकादशेऽग्नि नामार्कस्थेक्षा मासि चतुर्थके ॥ १७ ॥ षष्ठे  
मास्यन्नमश्रीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥ कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधी-  
यते ॥ १८ ॥ विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥ द्वादशे वैश्यजातिस्तु  
व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥ तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्विगुणाधिकः ॥ वेदव्र-  
तच्युतो ब्राह्म्यः स ब्राह्म्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥

गर्भाधान प्रथम रजोदर्शनमे होताहै, जब तीनमहीनेका गर्भ होजाय तब पुंसवन संस्कार  
होताहै ॥ १६ ॥ सीमंत आठवें महीनेमें होताहै, और पुत्र उत्पन्न होनेपर जातकर्म, ग्यार-  
हवें दिन नामकरण, चौथे महीनें घरसे बाहरें निकालकर बालकको सूर्यदेवका दर्शन कराना  
होताहै ॥ १७ ॥ और छठेमहीने अन्नप्राशन होना, और मुंडन अपने कुलकी रीतिके अनु-  
सार करना उचित है; बालकका जब मुंडन होजाय तब कर्णवेध करना उचित है ॥ १८ ॥  
ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष करना, क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें, और वैश्यका बारहवें  
वर्षमें यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ १९ ॥ यदि यज्ञोपवीत होनेकी नियत कीहुई अवस्था  
निकलजाय वरन उससे दूनी अवस्था वीतजाय और यज्ञोपवीत न हुआहो तो यह वेदके  
व्रतसे पतित होजातेहैं उनको “ब्राह्म्यस्तोम” यज्ञकरना उचित है ॥ २० ॥

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥ द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणा-  
द्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥ एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः ॥ श्रुतिस्मृति-  
पुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीनों जातियोंके जन्म दो होतेहैं, पहला जन्म माताके गर्भसे,  
दूसराजन्म गुरुके निकट विधिसहित वेदमाता ( गायत्री ) को ग्रहण करनेसे ॥ २१ ॥  
इस भातिमे यह द्विजत्वको प्राप्तहोकर अन्यदोषोंसे रहित होकर श्रुति स्मृति और पुराण  
इनके पढने योग्य होताहै ॥ २२ ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥ विभृयाद्दंडकौपीनोपवीताजिनमेख-  
लाः ॥ २३ ॥ पुण्येद्भिर्गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिक्रियः ॥ स्मृत्वोंकारं च गाय-  
त्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २४ ॥ शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ॥  
पठेत गुरुतः सम्यक्कर्म तदिष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥ ततोऽभिवाद्य स्थविरान्गुरुं  
चैव समाश्रेयेत् ॥ स्वाध्यायार्थं तदापन्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥ २६ ॥ नाप-  
क्षितोऽपि भाषेत नात्रजेत्ताडितोऽपि वा ॥ विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं  
चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥ तौर्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ॥ अज्ञनो-  
द्धर्तनादर्शस्रग्विलेपनयोपितः ॥ २८ ॥ वृथाटनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥

इंपञ्चलितमभ्याङ्गेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥ अलोलुपश्चरेद्भैक्षं वृत्ति-  
 पूसमवृत्तिषु ॥ सद्यो भिक्षान्नमादाय विचवत्तदुपस्युशेत् ॥ ३० ॥  
 कृतमाध्याह्निकोऽभीयादनुज्ञातो यथाविधि ॥ नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं मुक्ता  
 चाचामितामियात् ॥ ३१ ॥ नाम्यद्विसितमादद्यादापन्नो भविषादिकम् ॥  
 अनिद्यामप्रितं शस्त्रे वैश्रेऽद्याद्गुरुद्योदितं ॥ ३२ ॥ एकामन्नप्यविरोधे व्रतानां  
 प्रथमाश्रमी ॥ मुक्ता गुरुमुपासीत कृत्वा सधुक्षणवादिकम् ॥ ३३ ॥ समिधो-  
 ऽग्नावाद्धीत ततः परिवरेद्गुरुम् ॥ शयीत गुर्वनुज्ञातं प्रहृष्य मयम गुरो  
 ॥ ३४ ॥ एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतं चरेत् ॥ हितोपवादं प्रियवा  
 कसम्पग्गुर्वर्धसाधकः ॥ ३५ ॥

यज्ञोपवीत होनेपर सावधान होकर गुरुके कृष्णमें निवास करे, और ईश, कौपीन,  
 यज्ञोपवीत, मूमछाया और मेखला इनको धारण करे ॥ २३ ॥ इसके पीछे पवित्रदिग्में  
 गुरुकी आज्ञा लेकर मन्त्रोंसे हवन करे, पहले "ॐकार" को उच्चारण करता हुआ गायत्रीका  
 स्मरणकर वेदका प्रारंभ करे ॥ २४ ॥ शीघ्र और आचारेके जाननेके निमित्त परमेश्वरकोभी  
 पूजे, और गुरुदेवके कर्मको महीप्रकारसे करे ॥ २५ ॥ इसके पीछे दूधोंको नमस्कारकर  
 महीमांदिसे सावधानहो पड़े, और सर्वदा गुरुके हितके निमित्त आचरण करना रहे ॥ २६ ॥  
 यदि किसीसमय गुरुदेव तिरस्कारमें करें तो उनके सम्मुख कुछ न बोले; और गुरुकी  
 राहना करनेपरमी बहानेसे न मागे, वैर ( किसीके साथ अनुता ), पैशुन्य ( बुगलपन ),  
 ईसा सूर्यका दर्शन ॥ २७ ॥ वीर्यांत्रिक ( गान्धर्वशाना ) झूठ, चन्माद, निहा, भूषण,  
 अंजन, पबटन ( आपर्ण, शीघ्रेका ) देसना, माता चन्दनभादिका लगाना, और बीसह  
 ॥ २८ ॥ वृथा फिरना, असतोप इनका ब्रह्मचारी त्यागकरे; और मध्याह्न समक उप  
 स्थित होनेपर स्वयंही गुरुकी आज्ञासे ॥ २९ ॥ अपसताको छेदकर उत्तम आचरण करने  
 वाली आविधोंमें भिक्षामांगे; और शीघ्रही भिक्षाको लेकर पन्नकी समान वसता उपसर्क  
 ( रथा ) करे ॥ ३० ॥ इसके पीछे मध्याह्न कार्यको समाप्तकर गुरुकी आज्ञानुसार विधि  
 सहित मोजन करे; एक मनुष्यके पहलेके भ्रम और बच्छिष्ट इनका मोहन न करे, और  
 जो यदि खाछे तो आचमन करे ॥ ३१ ॥ आपत्ति आज्ञाकेपरमी भिक्षाके भ्रमके अतिरिक्त  
 दूसरेका भ्रम न छे; और अनिध ( दुष्ट ) के निमन्त्रण देनेपर गुरुकी आज्ञानुसार पितरोंके  
 आश्रमें मोजन करे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारीके प्रथमें जो एक मनुष्यके पहलेका निपिद्ध भ्रमही  
 उसको जानेसे सन्पुक्षण ( मार्जन ) आवि करके गुरुकी सेवा करता रहे ॥ ३३ ॥ पहले  
 आग्निमें समिधें रखे, पीछे गुरुकी सेवाकरे और ( रात्रिकाळ होनेपर ) गुरुको नमस्कारकर  
 उसकी आज्ञासे शयन करे ॥ ३४ ॥ इस भांति प्रतिदिन अभ्यास करणा हुआ ब्रह्मचारी  
 प्रतीको करे और मपुरवाजीसे बार्ताछाप करे; और महीमांदिसे गुरुके कार्यको साधन  
 करता रहे ॥ ३५ ॥

नित्यमाराधयेदेनमासमातः श्रुतिप्रदात् ॥ अनेन विधिनापीतो वेदमग्नो द्विज  
 नपेत् ॥ ३६ ॥ शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणां च सलोकताम् ॥ पयोऽमृताभ्यां

मधुभिः साज्यैः प्रीणांति देवताः ॥ ३७ ॥ तस्माद्दहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ॥  
यदंगं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमादसंपूर्णमनहंकृतिरा-  
चरेत् ॥ परब्रेह च तद्ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम् ॥ ३९ ॥

वेदके समाप्त होनेतक सर्वदा गुरुकी सेवा करतारहै, जो ब्राह्मण इसभातिसे वेदमत्र पढ-  
ताहै ॥ ३६ ॥ वह शापदेनेमें और अनुग्रह करनेमें सामर्थ्यवान् और ऋषियोंके लोकमें  
जानेयोग्य होताहै, दूध, अमृत, सहत, घृत इनसे देवता प्रसन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ इसका-  
रण अनध्यायतिथिको छोडकर प्रतिदिन वेद पढ़े, और गुरुके वचनोंको मानकर वेदके  
सम्पूर्ण अंगोंको अनध्यायोंमें पढता रहै ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमकरने ( उलट पुलट करने ) से  
असंपूर्णही रहताहै, इसकारण अहंकारसे रहित हो गुरुके वचनके अनुसार कार्य करै, वह  
ब्राह्मण चाहै वेदको न भी पढ़े, परन्तु तौभी इसलोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३९ ॥

यस्तूपनयनादेतदामृत्यं व्रतमाचरेत् ॥

स नैष्टिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

जो ब्रह्मचारी यज्ञोपवीतसे लेकर मृत्युपर्यन्त इस व्रतको करताहै वह नैष्टिक ब्रह्मचारी  
ब्रह्मसायुज्य सुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

उपकुर्वाणको यस्तु द्विजः पङ्क्तिशार्षिकः ॥

केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥ ४१ ॥

जो छव्चीस वर्षका ब्राह्मण केशान्त कर्मतक शास्त्रोक्त व्रतको करताहै उसे उपकुर्वाणक  
कहतेहैं ॥ ४१ ॥

समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥

स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इसप्रकार चारों वेद या दो वेद तथा एकही वेदको समाप्तकर गुरुकी आज्ञासे अपनी  
शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर स्नान ( जो गृहस्थमें आनेके समावर्तन कर्ममें है उसे )  
करै ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

एवं स्नातकर्ता प्राप्तो द्वितीयाश्रमकांक्षया ॥

प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवाम् ॥ १ ॥

इसप्रकार वेदको पढकर गुरुकी आज्ञासे स्नातकर्ताको प्राप्त होकर गृहस्थआश्रमकी अभि-  
लाषा करनेवाला ब्राह्मण पवित्रव्रतमें उत्पन्नहुई कन्याके साथ विवाह करनेकी चेष्टाकरै ॥ १ ॥

अरोगादुष्टवृंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ॥ सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम्

॥ २ ॥ अनन्यपूर्विकां लघ्वी शुभलक्षणसंयुताम् ॥ धृताधोवसनां गौरां विख्यात-

दशपुरुषाम् ॥ ३ ॥ स्यात्तनाम्न पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ॥ दातुमिच्छोर्बुद्धितर प्राप्य धर्मेण चोदहेत् ॥ ४ ॥

जिस कन्याको कोई रोग न हो और बंझमी उत्तम हो, जिसका पिता कुछ रुपया न ले जो मरने बर्षकी हो और मातापिताके गोत्रकी न हो ॥ २ ॥ पहले जिसकी सगाई न हुई हो छोटी और पतली हो, और शुभरुक्षणोंसे युक्त मधोवक्त्र ( छद्गा ) पहनती हो, गौरी ( जाठ-बर्षकी अबस्थावाली ) हो और जिसके बड़े दण्डपुरुषवत् विख्यात हो ॥ ३ ॥ और प्रसिद्ध नामवाले पुत्रवाम् अच्छे आचरण करनेवाले और जो कन्या देनेकी इच्छा करता हो उसकी पुत्रीके साथ धर्मसहित विवाह करके ॥ ४ ॥

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावे परो विधिः ॥

दातव्यया सद्भाय वयोविधान्वयादिभिः ॥ ५ ॥

और ब्राह्म विवाहकी रीतिसे विवाह ब्राह्मविवाहके अभावमें दूसरी ( वैवर्षादि विवाहोंकी) विधि करी है और यह कन्या उसे देनी जो अबस्था विद्या और बंझमें सत्ताम हो ॥ ५ ॥

पितृतत्पितृभ्रातृपु पितृभ्यश्चातिमावपु ॥

पूर्वाभावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥

पिता, पितामह, भाई, चाचा जातिके मनुष्य, माता, इनमें प्रथम २ के अभावमें अपर २ के यदि इनमें कोई न हो तो कन्या आपही पतिके यहां बछीजाय ॥ ६ ॥

यदि सा दारुषिकल्याद्भ्रमं पश्येत्कुमारिका ॥

भ्रूणहत्याश्च यावस्य पतितः स्याद्यदप्रदं ॥ ७ ॥

यदि वह कन्या देनेवालेकी असाधपानतासे रसको देखके ती; सै वार वह भ्रूणमर्ता हो बचनीही भ्रूणहत्या करनेवालेका छातीहै; इसकारण ऐसी कन्याका विवाह न करे विवाह करनेसे वह पवित्र होजाताहै ॥ ७ ॥

तुभ्यं दास्याम्यहमिति गृहीष्यामीति यस्तयो ॥

कृत्वा समयमप्योन्यं भजते न स वैवर्षाक् ॥ ८ ॥

“मैं तुझे कन्या दूंगा” और “ मैं ग्रहण करूंगा” इस भांति छेनेवाले और देनेवाले प्रतिज्ञा करते और फिर यदि उस प्रतिज्ञापर दोनोंमेंसे कोई न रद्द करे वैवर्षा मागी है ॥ ८ ॥

स्पजन्नदुष्टां वैवर्षां स्याद्वदुपयश्चाप्यद्वृपिताम् ॥ ऊडायां हि सवर्णापामन्यां वा

कामसुदहेत् ॥ ९ ॥ तस्यामुत्पादितं पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥

जो मनुष्य निर्वोप स्त्रीका त्यागकरताहै, और जो निर्वोपको द्रोप छागावाहै यह दोनों वैवर्षाके मागी हैं; यदि अपने बर्षकी एक स्त्रीसे विवाह करसिवाहो तो दूसरे बर्षकी अन्य स्त्रीसेभी इच्छानुसार विवाह करके ॥ ९ ॥ उस अन्य बर्षकी स्त्रीसे जो पुत्र होवाहै वह सवर्षही होवाहै।

१ पुत्रपद करनेसे पुत्रिकापमकी संज्ञाको पूरकरके अर्थात् कन्यापदको करि पुत्र न होय तो वह “भार्या” यो रूपसे पुत्रा व मे पुत्रो भविष्यति’ इत्य विधिते प्रथम पुत्ररूपविद्यं प्रादक हो ज्ञान्या ।

उद्धहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥ १० ॥

न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥

ब्राह्मण क्षत्रिया और वैश्याको विवाहै, और क्षत्रिय वैश्याको विवाहै ॥ १० ॥ और ब्राह्मण शूद्राको, और नीच वर्ण उत्तम वर्णकी कन्याको न विवाहै,

नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥ ११ ॥

धर्माधर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥

अनेक वर्ण की स्त्रियोंमें जो सवर्णा है वही सहचारिणी है ॥ ११ ॥ धर्म वा अधर्मेमें है परन्तु वह धर्मिष्ठा है वही अपनी जातिमें बड़ीभी है;

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥ पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्यो-

ऽभूवन्निति श्रुतिः ॥ यावन्न विदते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥

नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥ गुर्वीं सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥ यतस्ततोन्वहं भूत्वा स्ववशो विभृयाच्च ताम् ॥

हे ब्राह्मणों ! यह एक देह पहले ब्रह्मनें फाडाहै ॥ १२ ॥ आधे देहसे पति और आधेसे स्त्री हुईहै यह श्रुतिमें प्रमाण है, जबतक पुरुषका विवाह नहीं होताहै तबतक वह असम्पूर्ण है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे कुछ सम्पूर्ण पुरुषही आधे नहीं होते, यहभी श्रुति है। वह स्त्री धर्म अर्थ कामकी बड़ी भारी पृथ्वी है, उसे पतिके अतिरिक्त दूसरा नहीं विवाह सकता ॥ १४ ॥ जिस स्त्रीको दूसरा न विवाहसकै इसकारण प्रतिदिन स्वतंत्र होकर उस स्त्रीकी पालना करतारहै;

कृतदारोऽपिपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥ स्वकृतं वित्तमासाद्य

वैतानामिं न हापयेत् ॥ स्मार्तं वैवाहिके वद्वौ श्रौतं वैतानिकामिषु ॥ १६ ॥

कर्म कुर्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रातिपूर्वकः ॥

इसके पीछे विवाह करके आग्नि और स्त्रीके साथ पुरुष घरको निर्माणकर घरमें निवास करै ॥ १५ ॥ अपने उपार्जन कियेहुए धनको पाकर वैतानामिको न त्यागै, स्मृतिमें कहेहुए कर्म विवाहकी अग्निमें और वेदोक्तकर्म वैतानामिमें ॥ १६ ॥ प्रतिदिन विधिसहित उक्त कर्मोंको करतारहै;

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥ एकचित्ततया भाव्यं समा-

नव्रतवृत्तितः ॥ न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गाविधिसाधनम् ॥ १८ ॥ भावतो

ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥

स्त्री पुरुष धर्म अर्थ कामोंमें रातदिन भलीभाति ॥ १७ ॥ एकमन, एकव्रत, और एक-वृत्तिसे रहै, स्त्रियोंको त्रिवर्ग विधिसाधन अर्थात् धर्म अर्थ काम प्रदायक अनुष्ठान स्वामीसे पृथक् न करना चाहिये ॥ १८ ॥ भावसे वा आज्ञासे यही शास्त्रकी उत्तम विधि है,

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥ उत्थाप्य शयनाद्यानि

कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥ मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सामिशालं स्वमंगणम् ॥ २० ॥

शोधयेदधिकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥ प्रोक्षणैरिति तान्येव यथा-

स्थानं प्रकरपयेत् ॥ २१ ॥ द्वंद्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥



शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥ महानसस्य पात्राणि  
 षड्भिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥ मुद्भिश्च शोधयेच्चुर्ली तत्राग्निं विन्यसेत्त ॥ २३ ॥  
 स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥ कृतपूर्वाह्नकार्यां च स्वयङ्कन-  
 मिवाद्देत् ॥ २४ ॥ ताम्यां भर्तृपितृभ्यां वा चात्मातृलुषांघवैः ॥ षड्मालका-  
 ररत्नानि प्रदत्तान्येष धारयेत् ॥ २५ ॥ मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेज्ञानुव-  
 र्तिनी ॥ उषेवातुगता स्वच्छा सस्त्रीष हितकर्मसु ॥ २६ ॥ दासीवादिष्टका  
 र्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥ ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेश्य तद् ॥  
 ॥ २७ ॥ वैश्वदेवकृतैरक्षिभोजनीयांश्च भोजयेत् ॥ पतिं विद्याम्पनुज्ञाता सिद्ध  
 मन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥ भुक्त्वा नयेदहःशेषमापश्यपविषितया ॥ पुनः साप  
 पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥ २९ ॥ कृतान्नसाधना साध्वी सुमृच्छं भोजये  
 त्यतिम् ॥ नातिवृष्या स्वयंभुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥ ३० ॥ आस्तीर्य  
 साधु शयनं ततः परिवरेत्पतिम् ॥ सुप्ते पती तदम्प्राशे स्वपेक्षतमानसा ॥  
 ॥ ३१ ॥ अनन्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेंद्रिया ॥ नोऽश्वदेव परुषं न  
 बहुन्त्यसुरप्रियम् ॥ ३२ ॥ न केनचिद्विषदेःश्च अमलापविष्ठापिनी ॥ न चापि  
 व्यपशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥ प्रमादोन्मादरोषेभ्यर्षचनं चाति  
 मानिताम् ॥ पैशुन्यहिंसाविद्वेषमदारहंकारधूर्तता ॥ ३४ ॥ नास्तिर्ष्यं साहसं  
 स्तेयं दंभान्साध्वी विषर्जयेत् ॥ पृथं परिचरंती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥  
 यथा शमिह यात्येष परत्र च सलोकताम् ॥ योषितो नित्यकर्मोक्त नैमिषि  
 कमयोष्यते ॥ ३६ ॥

श्री पतिसे प्रथम बैठकर देहकी शुद्धिको करके ॥ १९ ॥ शय्यामारिको उठाय घरका शोषण  
 कर, मार्जन और छीपनेसे अग्निही शास्त्र और अपने आंगनको ॥ २० ॥ पवित्र करे;  
 इसके उपरान्त गरमजलसे अग्निके उपयुक्त पात्रोंको प्रोक्षणियों से जोकर पयास्थानपर रखदे  
 ॥ २१ ॥ शोभेके पात्रोंको कभी धुवक न रखे, इसके पीछे पात्रोंको धुवकर सज्जमा  
 विसे मरकर रखदे ॥ २२ ॥ इसके पीछे चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्र जोकर मिट्टीके  
 बूत्तेको छीप बसमें अग्निको रखदे ॥ २३ ॥ बैठनेके पात्रोंको और रसके द्रव्यको स्मरण  
 करके पूर्वाह्नका कामकरके अपने माठा पिताभोंको नमस्कार करे ॥ २४ ॥ माया, पिता,  
 पति, श्वशुर, माई, मामा, बापव इनके दिये हुए वस्त्रोंको और आमूपर्जोंको धारण करे ॥ २५ ॥  
 यह पतिव्रता श्री पतिकी आज्ञानुवर्तिनी होकर मन वचन और कायसे पवित्र स्वभाव प्रका-  
 शकर छायाकी समान पतिके पीछे चले निर्मल चित्तवासी राखीकी समान पतिका हित  
 करे ॥ २६ ॥ स्वामीकी आज्ञापावन करनेके विषयमें दासीकी समान व्यवहार करे  
 इसके उपरान्त भोजन बनाकर पतिको भिक्षुम करे ॥ २७ ॥ पतिवैश्वदेवादि कार्यके  
 समाप्त करनेपर उस भस्मसे जिमार्थके योग्य ( पुत्रमादिकों ) को भोजन करा-  
 कर फिर पतिको जिमावे, और फिर स्वामीकी आज्ञासे शप बने हुए भस्मको भव दाय

॥ २८ ॥ भोजन करनेके उपरान्त शेष दिनको आमदनी और खर्चकी चिन्तासे व्यतीत करै, इसके उपरान्त फिर सन्ध्यासमय और प्रातःकाल घरकी शुद्धिकरके ॥ २९ ॥ इसके पीछे व्यंजनादि बनाकर साध्वी स्त्री अत्यन्त प्रीतिसे पतिको भोजन करावै; और फिर स्वयं भी तृप्तिके बिना आप खाकर गृहस्थकी नीतिको करके ॥ ३० ॥ उत्तम शय्याको बिछाकर पतिकी सेवाकरै । पतिके रोजानेपर पतिमेंही चित्तवाली वह स्त्री पतिके निकट सोजाय ॥ ३१ ॥ निद्राके समयमें नंगी न हो, प्रमत्त न होकर इन्द्रियोंको जीते रहै, ऊँची और कठोर वाणी न करै, पतिको अप्रिय वचन न करै ॥ ३२ ॥ किसीके साथ लडाई झगडा न करै, अनर्थकारी और वृथा न बोलै, व्यय ( खर्च ) में अपना मनलगाये रखै, धर्म और अर्थका विरोध न करै ॥ ३३ ॥ असावधानी, घनाद, क्रोध, ईर्ष्या, ठगई, अत्यन्तमान, चुगलपन, हिंसा, वैर, मद, अहंकार, धूर्तपन ॥ ३४ ॥ नास्तिकपन, साहस, चोरी, दंभ, साध्वी स्त्री इन सबका त्याग करदे, इसप्रकार परमदेवस्वरूप पतिकी सेवाकरनेसे वह स्त्री ॥ ३५ ॥ इसलोकमें कीर्ति और यश तथा सुखको भोगकर परलोकमें पतिके लोकको प्राप्त होतीहै; स्त्रियोंके इसप्रकार नित्यकर्म कहेहैं, इसके आगे नैमित्तिक कर्म कहतेहैं ॥ ३६ ॥

रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥ सर्वैरलक्षिता शत्रिं लज्जितांतगृहे वसेत् ॥ ३७ ॥ एकांबरावृता दीना खानालंकारवर्जिता ॥ मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्मि रचंचला ॥ ३८ ॥ अशनीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥ स्वपेद्भूभावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥ स्नायीत च त्रिरात्रांते सचैलमुदिते रवी ॥ विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥ कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥

ऋतुमती होनेपर दोषके भयसे सबको त्यागदे, जहा कोई न देखसकै लज्जावती होकर इसभांति निर्जन घरमें निवास करै ॥ ३७ ॥ एक वस्त्रको पहरकर स्नान और आभूषणोंको त्यागकर, दीनकी समान मौन धारणकर नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावै ॥ ३८ ॥ रात्रिके समयमें एक अन्नका मट्टीके पात्रमें भोजन करै, अप्रमत्ता हो पृथ्वीपर शयनकरै इसभांति तीनदिन वित्तवै ॥ ३९ ॥ इसभांति तीनदिनके उपरान्त चौथेदिन सूर्यदेवके उदय होनेपर वस्त्रोंसहित स्नानकरै, इसके पीछे पतिका दर्शनकर धर्मसे शुद्ध होतीहै ॥ ४० ॥ शौचजनक कार्योंको समाप्तकर वह स्त्री पहलेकी समान सम्पूर्ण कार्योंको करै;

रजोदर्शनतो याः रयू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥ ततः पुंवीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥ चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥ गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्रक्षराक्षसान् ॥

रजोदर्शनसे लेकर सोलहरात्रियोंतक ऋतुकाल रहताहै ॥ ४१ ॥ इन रात्रियोंमें पुरुषका बीज बिनाक्लिष्ट शुद्ध क्षेत्रमें जमतहै, इसभांति पर्वके चार दिनोंमें गमनकरना निषिद्ध है ॥ ४२ ॥ युग्म ( सम ) रात्रियोंमें रेवती, मघा, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें गमन करै,

प्रच्छादितादित्यपथे पुष्यांग्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥ क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं षजितलक्षणम् ॥ ऋतुकालेभिगम्यैव ब्रह्मचर्यं व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत ॥

और अपनी स्त्रीके संग जिस स्थानमें सूर्यकी किरण न आतीहो ऐसे स्थानमें गमन करे ॥ ४३ ॥ तब वह पुरुष शुभकर्मण्युक्त प्रसंसा करने योग्य पुत्रको प्राप्त करताहै पूर्वोक्ती-  
विके अनुसार स्त्रीमें गमन करनेसे मङ्गलादीही रहता है ॥ ४४ ॥ दुष्ट नहीं होता यदि वह  
निवृत्तकर्म आदि न करे;

धूणहृत्यामघामोति ऋती भार्यापराद्भुक्त्वा ॥ ४५ ॥ सा स्वयाप्यान्यतो गर्भ  
स्याज्या भवति पापिनी ॥ महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ ४६ ॥

और जो पुरुष ऋतुके समय अपनी स्त्रीके साथ गमन नहीं करताहै वह धूणहृत्याके  
पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ जो ऋतुमती स्त्री यदि अन्यपुरुषसे गर्भधारण करे तो वह  
पापिनी त्यागनेके योग्यहै ॥ ४६ ॥

सङ्कतचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥

महापातकदुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्यस्तया पति ॥ ४७ ॥

यदि कोई पुरुष उत्तमचरित्रवाली स्त्रीको त्यागताहै वह महापातकके पापमें क्षिप्त होताहै,  
और महापातकसे दुष्ट पतिकी शुद्धितकमी वह स्त्री प्रतीक्षा करतीरहै ॥ ४७ ॥

अशुद्धे क्षयमाहुर स्थितायामनुचिन्तया ॥ ध्यमिचारेण दुष्टानां पतीनां वर्शना  
इते ॥ ४८ ॥ धिक्कृतायामवाख्यायामन्यत्र वासयेत्पति ॥ पुनस्तामार्तर्षणा  
तां पूर्ववन्व्यवहारयेत् ॥ ४९ ॥ धूर्ता च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥  
सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ॥ ५० ॥ अधिविन्नामपि विशु स्त्रीणां  
तु समतामियात् ॥

महापातककी शुद्धिपर्यन्त ध्यमिचारी जो दुष्ट पति है उसके वर्शनाको छोड़कर बुरा  
गमने चिन्तासे टिकी स्त्रीको ॥ ४८ ॥ या जिसे विचार बेसीहो, या जिसके साथ बोलना  
छेड़ दियाहो उसे दूसरे स्थानमें रखदे, और जब वह ऋतुमती हो तब पूर्वके समान वर्ताव  
करे ॥ ४९ ॥ जो स्त्री धूर्त हो जो धर्म और कामको नष्ट करनेवाली हो और जिसके पुत्र  
न हो, जिसे कोई रोग हो, जो मर्यन्त दुष्ट हो, जिसे कुछ व्यसनमी हो जो अपना हित  
न चाहतीहो, इत किबौका अधिवास न करे, अर्थात् इनके ऊपर दूसरा विवाह करे ॥ ५० ॥  
वह अधिविन्ना स्त्री जिसपर दूसरा विवाह भी किनागयाहै पतिकी अन्य किबौकीकी  
समाम होतीहै;

विवर्णां दीनवदना देहसस्कारधर्मिता ॥ ५१ ॥

पतिव्रता निराहारा शोभ्यते प्रोपिते पती ॥

वह अधिविन्ना स्त्रीमी मङ्गलकर्म दीनमुख देहके संस्कार कठगता आदिको त्यागदे ॥ ५१ ॥  
और पतिमें प्रवृत्त रहकर शोभती रहै, पतिके परदेस चलेजायेपर शरीरको सुखादे,

मृत भर्तारमादाय द्वाङ्गणी वक्षिमाविक्षेत् ॥ ५२ ॥

जीवती धैर्यकक्षेप्ता वपसा शोभयेद्गुः ॥

और पतिके मरजानेपर वह ब्राह्मणी पतिके साथ अग्निमें प्रवेशकरै अर्थात् सती होजाय ॥ ५२ ॥ यदि जीवित रहै तो वालोंको मुडादे, और नपस्या करके शरीरको शुद्धकरै,

सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥

तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥

स्त्रियोंकी सभी अवस्थाओमे रक्षा नहीं करना योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥ इसकारण क्रमानुसार तीनों अवस्थाओमे पिता, पति, पुत्रआदि स्त्रियोंकी रक्षाकरै;

जाताः सुरक्षिताः पापात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥ ५४ ॥

ये यजन्ति पितृन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥

पापसे जिन स्त्रियोंकी रक्षा कीजाय उनसे उत्पन्न हुए जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र हैं ॥ ५४ ॥ वे मोक्ष देनेवाले बडा उदय देनेवाले यज्ञोंकरके पितरोंकी पूजा करतेहैं;

मृतानामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥

दाहयेद्विलंबेन भार्या चात्र व्रजेत सा ॥ ५५ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मरेहुए पतिके अग्निहोत्र करके उसकी स्त्रीको भी विधिसहित दग्धकरै, और जिस स्त्रीको इसी अग्निहोत्रकी अग्निमें दाह किया जाताहै वह भी स्वर्गमे निवास करतीहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ॥

त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥ १ ॥

गृहस्थमात्रको नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह तीन प्रकारके कर्म कहेहैं. उन तीनों कर्मोंको कहताहूं तुम श्रवणकरो ॥ १ ॥

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरि स्मरेत् ॥

आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥

रात्रिके पीछले पहरमें उठकर विष्णुका स्मरणकरै, इसके पीछे मंगल द्रव्योंको देखकर आवश्यकीय कर्मोंको करै ॥ २ ॥

कृतशौचो निषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा ॥

स्नात्वोपास्य द्विजः संध्यां देवादीश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥

इसके पीछे शौचक्रियाको करके अग्निकी सेवाकरै, इसके उपरान्त जलसे दांतोंको धोकर स्नानकर ब्राह्मण सन्ध्या करनेके उपरान्त देवता और पितरोंका तर्पण करै ॥ ३ ॥

वेदवेदांगशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ॥ अध्यापयेच्च सच्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥ अलब्धं प्रापयेत्तुल्यैश्च क्षणमात्रं समापयेत् ॥ समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः कचिद्रसेत् ॥ ५ ॥

इसके पीछे वेद वेदाङ्ग शास्त्र और इतिहास इनका अभ्यासकरै, फिर अच्छे शिष्य और उत्तम ब्राह्मणको पढावै ॥ ४ ॥ फिर अच्छे वस्तुकी प्राप्तिका उपायकरै, और उस वस्तुके निम्नोपर कृष्णकाष्ठके मिश्रित पढानेको समाप्त करदे, और सामर्थ्यवान् होकर किसीकी सामर्थ्यके बिनामाने निवास न करै, अर्थात् जिस जगह अपनेको कोई न जानताहो उस स्थानपर निवास न करै ॥ ५ ॥

सरिस्सर सु धापीपु गर्तप्रस्रवणादिषु ॥ स्त्रायीत यावद्दुष्टस्य पंचर्षिभानि वा  
रिणा ॥ ६ ॥ तीर्याभावेऽप्यशक्तो वा स्नायात्सौम्यैः समाहृते ॥ गृहांगणगत  
स्तत्र यावदंबरपीडनम् ॥ ७ ॥

मही, सरोवर, बावडी, कुण्ड, झरने इनमें स्नान जय करै जब कि पहाड़े पाँच पिट्ट मिट्टीके बाहर निकालदे ॥ ६ ॥ तीर्यके न होने या जानेकी सामर्थ्य न होनेपर कुएँसे जलको निकालकर स्नान करले, और घरके आँगनमें शिवने जलसे वस्त्र भीजजाय उब मेही जलसे ॥ ७ ॥

छानमव्यैद्यतैः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् ॥

मंत्रैः प्राणास्त्रिराचम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

अबही है वेष्टा जिनका ऐसे मन्त्रोंसे स्नानकरै, इसके उपरान्त पवित्र करतेबाडे मंत्रोंसे मार्जन करै और मन्त्रोंसे तीन प्राणायामकर सूर्यके मन्त्रोंसे सूर्यका वंदन करै ॥ ८ ॥

तिष्ठन्निस्पृत्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥ श्रुत्वा च यज्ञुषां साम्नाम  
थर्षागिरसामपि ॥ ९ ॥ इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ॥ शक्त्या  
सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥ स यज्ञदानतपसामखिल फलं  
माप्नुयात् ॥ तस्मादहरत्पूर्वं द्विजोऽधीपीत वाग्यत ॥ ११ ॥

इसके पीछे कडा होकर वेष्टमाता गायत्रीका और वेष्टका अभ्यासकरै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ॥ ९ ॥ इति एष पुराण वेद और उपनिषद् इनके अल्पभागकोभी समाप्ति होनेतक जो ब्राह्मण अपनी शक्तिके अनुसार मछीमाँतिसे पढताहै ॥ १० ॥ वह यह बान और तप इनके सम्पूर्ण फलको पाताहै इसकारण ब्राह्मण प्रतिदिन मौनधारणकर वेष्टका पाठकरै ॥ ११ ॥

धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्ति पठेत् ॥ कृतस्त्राभ्याय प्रथमं तर्पयेच्चाय  
देवता ॥ १२ ॥ जान्वाच्य दक्षिणां वर्धे प्राग्निं सयवेस्तिष्ठे ॥ एकैकांज  
छिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥ समजानुदयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः ॥  
तिर्यग्दर्भेऽथ वामाग्नेर्यथैस्तिष्ठविभिर्भित्ति ॥ १४ ॥ अंभोभिरुत्तरक्षिते कनिष्ठा  
मूलनिर्गतेः ॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यामंजलिभ्यां मनुष्यास्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥ दक्षिणा  
भिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः पुरीः ॥ तिलैर्जलेऽथ देशिम्या मूलदर्भोद्विनि  
सृतेः ॥ १६ ॥ दक्षिणासोपवीत स्यात्कमेणांजलिभिस्त्रिभिः ॥ सतर्पये  
द्विभ्यपितृस्तत्परांश्च पितृन्स्वकान् ॥ १७ ॥ मातृमातामहोस्तद्दधीनेषं हि

त्रिभिस्त्रिभिः ॥ मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥ १८ ॥ तानेकां-  
जलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् ॥ असंस्कृतप्रमाता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः  
॥ १९ ॥ वस्त्रनिष्पीडिताभोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् ॥ अतर्पितेषु पितृषु  
वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥ निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः ॥  
पयोदर्थस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥ सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि  
वृथा विना ॥ अन्यचित्तेन यदत्तं यदत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥ अनास-  
नस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ॥ एवं संतर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पय-  
न्ति च ॥ २३ ॥

और सम्पूर्ण धर्मशास्त्र तथा इतिहासभी अपनी सामर्थ्यके अनुसार पढ़ै स्वाध्यायको करके  
प्रथम देवताओंको तर्पण इसप्रकारसे करै ॥ १२ ॥ पूर्वको मुखकर दहिने घुटनेको नवाकर;  
पूर्वको अग्रभागवाली कुशा और जो तिल आदिको लेकर स्वाभाविकरूपसे यज्ञोपवीतको  
धारणकर दो अंजलि देकर तर्पण करै ॥ १३ ॥ दोनों घुटनोंको बराबरकर जनेऊ कटमें पहरे  
उत्तरको मुसकरे बाई ओरको अग्रभागवाली तिरछी कुशा और तिल मिलेहुए जैसे ॥ १४ ॥  
कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे उत्तरमे जो गिरै ऐसे जल द्वारासे दो २ अंजलियोसे फिर मनु-  
ष्योंका तर्पणकरै ॥ १५ ॥ दक्षिणकी ओरको मुखकर बांये घुटनेको नवाय द्विगुण कुशाओंसे  
तिल और देशिनीके मूल और कुशासे गिरते जलोंसे ॥ १६ ॥ दहिने कंधेपर जनेऊ रख  
क्रमानुसार तीन २ अंजुली देकर देवतारूप पितरोंका तर्पणकर फिर अपने पितरोंका तर्पण  
करै ॥ १७ ॥ इसके पीछे माता और मातामहआदि तीनोंका भी इसी भाति तीन २  
अंजुलियोंसे तर्पण करै और जो मातामहके गोत्रके अन्य दाहसे वर्जित हैं ॥ १८ ॥ उनका  
भी पृथक् २ दो २ अंजुली देकर तर्पण करै, और जो विना संस्कारके हुए ही मरगयेहैं,  
जिनका दाहादिक संस्कार नहीं हुआहै ॥ १९ ॥ उनकी वृत्ति वस्त्र निचोडनेसे ही होजातीहै, जो  
पुरुष पितरोंकी विना वृत्ति किये हुए वस्त्रको निचोडता है ॥ २० ॥ उसके पितर देवता और  
मनुष्योंसमेत निराश होजातेहैं, स्वधा, गोत्र, नाम, तिल इनसे जो जल दियाजाताहै ॥ २१ ॥  
वह श्रेष्ठ है, और वस्त्रके निचोडनेसे ही वह सब निष्फल होजाताहै, अन्यत्र मन लगाकर वा  
विधिसे रहित जो जल दियाजाताहै ॥ २२ ॥ या विना आसनपर बैठकर जो दियाजाताहै,  
वह सब रुधिरके समान होजाताहै, उपरोक्त नियमके अनुसार पितरोंका तर्पण करनेपर पितृ  
श्रमत्र होकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेहैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यामित्रावरुणनामभिः ॥ पूजयेत्क्षितैर्मंत्रैर्जलमंत्रोक्तदेवताः ॥

॥ २४ ॥ उपस्थाय रवि काष्ठां पूजयित्वा च देवताः ॥ ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीववि-

ष्णुनां लिहतांहसाम् ॥ २५ ॥ तत्तन्मन्त्रैश्च सकारं नमस्कारैः स्वनामभिः ॥

कृत्वा मुखं समालभ्य ज्ञानभेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य, मित्र, वरुण यह नाम जिन मन्त्रोंमें हों, उन मंत्रोंसे जलके  
मंत्रोंमें कहीहुई विधिसे देवताओंका पूजन करै ॥ २४ ॥ पूर्वदिशाका पूजन कर सूर्यकी  
स्तुति करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, औषधी, जीव, विष्णु इन दोपनाशकोंको ॥ २५ ॥

एन इनके मन्त्रोंसे नमस्कार कर और इन इनके नामोंसे स्तुति करके मुझका षोडश इस मोर्षि ज्ञान करे ॥ २६ ॥

सतं प्रविश्य भवनमाषसम्ये श्रुताशने ॥ पाकपञ्चाश चतुरो विद्व्याष्टिपिष-  
द्विज ॥ २७ ॥ अनाहितावसप्यामिरादापात्रं घृतश्रुतम् ॥ शाकले न विधानेन  
शुद्धयास्त्रीकिकेनले ॥ २८ ॥ व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्तामिस्तते पर-  
म् ॥ पशुभिर्देवकृतस्येति मन्त्रविद्विर्न्रिंयाक्रमम् ॥ २९ ॥ प्राजापस्य, स्विष्ट  
कृतं हृत्वेवं द्वादशाहृती ॥ ओंकारपूर्वं स्वाहातस्यागं स्विष्टविधानतः ॥ ३० ॥  
इसके उपरान्त मन्त्रमें आकर घरकी अग्निमें चतुर ब्राह्मण विधिद्विष्ट पाकपत्र करे  
॥ २७ ॥ जिसमें परकी अग्निमें अग्निहोत्र ग्रहण न कियाहो वह ब्राह्मण घृतसे भीष्ट  
आपको लेकर शाकल अथिषी विधिके अनुसार कौटिक अग्निमें इवन करे ॥ २८ ॥ इसके २  
व्याहृतियोंसे और फिर सम्पूर्ण व्याहृतियोंसे ही आहुति "देवकृतस्य" इस मंत्रसे अना-  
मुस्यार देकर ॥ २९ ॥ इसके पीछे 'स्विष्टकृत' प्राजापस्यकी बारह आहुति देकर स्विष्टकी  
विधिसे पहले ओंकार और अंतमें स्वाहा हो, इस अग्निसे आहुतिका त्याग होवाही ( ८  
प्राजापतये स्वाहा ) ॥ ३० ॥

शुचि इमान्समास्तीर्य बलिर्कर्म समाचरेत् ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो  
भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥ भूतानां पतये वेति नयस्कारेण स्यात्प्रवित् ॥ दद्या  
द्वल्लिप्रपं चाप्रे पितृभ्यश्च स्वधानम् ॥ ३२ ॥ पात्रमिर्णेजन वारि वायव्यो वि  
शि निःसिपेत् ॥ उद्धृत्य षोडशप्रासमात्रमत्र घृतोन्नितम् ॥ ३३ ॥ इदमत्र  
मनुष्येभ्यो हितेत्युक्त्वा समुत्सृजेत् ॥ गोप्रनामस्वभाकारि पितृभ्यश्चापि  
सक्तिः ॥ ३४ ॥ पशुभ्योऽन्नम बहु दद्यात्पितृभ्यश्चापिधानतः ॥ वेदादीनां पठे  
त्किंचिदस्य ब्रह्ममस्त्राप्तये ॥ ३५ ॥ सतोऽन्न्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्दहि ॥  
काफेभ्य श्वपत्रेभ्यश्च मक्षिपेत्प्रासमेव च ॥ ३६ ॥ उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठत्या-  
यन्मुहूर्तकम् ॥ अप्रमुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धं प्रतीक्षकं ॥ ३७ ॥

शुचीपर कुशा विठाकर उसके ऊपर बलि वैश्वदेव करे और 'विश्वेभ्यो देवेभ्य नमः'  
"सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः" ॥ ३१ ॥ और "भूतानां पतये नमः" इस मंत्रिसे शाकल जानने  
वाला पुरुष तीन षड् अम ( द्वार ) भागमें दे, 'पितृभ्यः स्वधानम्' इस मन्त्रसे पितरोंको  
दे ॥ ३२ ॥ पात्रोंके धोनेका लक वासुकोणमें रखे फिर सोलह प्रास भर पीछे  
छिड़केहूय अमकी निकालकर ॥ ३३ ॥ "इदमत्रं मनुष्येभ्यो हितं" यह कहकर ( दंत  
कार ) देवे, और फिर गात्र नाम रचना कहकर पितरोंको भी दे ॥ ३४ ॥ पितृभ्यकी  
विधिके अनुसार ही ( ३ पितृभ्यके ३ मातृभ्यके ) को नित्य अन्न दे, इसके पीछे यज्ञकी  
अग्निसे अग्निच कुंड देव अग्निदेको भी पड़े ॥ ३५ ॥ इसके पीछे अन्य जन्तुकी महान्तर भरक  
बाहर आकर कप, दुग्ध इनको भी मासरे, और गौको भी मासदेना उचित है ॥ ३६ ॥  
इसके पीछे घरके द्वारपर बैठकर पवित्र भाषसे अतिथिकी प्रतीक्षा करवा हुआ हो पशुवक  
वैद्यदेव सबदक आप मोक्षन न करे ॥ ३७ ॥

आगतं दूरतः श्रांतं भोक्तुकाममकिंचनम् ॥ दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्र-  
याञ्चनैः ॥ ३८ ॥ पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरर्चितः ॥ त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो  
यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥ कालागतोऽतिथिर्दृष्ट्वेदपारो गृहागतः ॥  
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥ विवाह्यस्तातकक्षमाभृदाचा-  
र्यसुहृद्विजः ॥ अर्घ्या भवंति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥ गृहागताय  
सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥ भक्तयोपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥  
विसर्जयेदनुब्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ॥ मित्रमातुलसंबंधिबांधवान्समुपाग-  
तान् ॥ ४३ ॥ भोजयेद्गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ॥ स्वाद्ब्रह्मभ्र-  
स्वाद्दु ददद्ब्रच्छत्ययोगतिम् ॥ ४४ ॥ गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु ॥  
बुभुक्षितेषु भुंजानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥ नाद्याद्गृह्येन्नपाकाद्यं  
कदाचिदनिमंत्रितः ॥ निमंत्रितोऽपि निदेत प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥ ४६ ॥

जो दूरसे आयाहो, श्रान्त हो, भोजन करनेकी इच्छा करताहो और अकिंचन हों  
( जिसके पास कुछ न हो ) ऐसे अतिथिको देखकर उसी समय उसके सम्मुख जाकर उसे  
घर ले आवै, और विनयसहित पूजन सत्कार करै ॥ ३८ ॥ अतिथिके चरण धोने, भली-  
भांति सत्कार करने और उवटनआदि मलनेसे यज्ञसे भी अधिक स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै  
॥ ३९ ॥ उचित समयपर आयाहुआ अतिथि और वेदके पार जाननेवाला ( किसी निमि-  
त्तसे ) यह दोनों घरपर आयेहुए पूजित हों तो स्वर्गमें लेजातेहैं, और जो इनकी पूजा नहीं  
करता, उसे नरकमें लेजातेहैं ॥ ४० ॥ जिसका विवाह अपने यहां हुआहो और जो ब्रह्मच-  
र्यको समाप्त करके गृहस्थाश्रममें जानेको उद्यत हो, राजा, आचार्य, मित्र, ऋत्विज् यह  
सबके घरपर आयेहुए प्रतिवर्ष धर्मसे पूजने योग्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वेदपाठी घरपर आवै  
उसका भलीभांति सत्कार कर श्रद्धासे एक बड़ाभाग देकर विदा करदे ॥ ४२ ॥ वेदपाठीके  
भलीभांति तृप्त होनेपर उसके पीछे २ कुछ दूर चलकर उसे विदा करदे । इसके पीछे,  
मित्र, मामा, सम्बन्धि बाधव इनके घर आनेपर ॥ ४३ ॥ भोजन करावै, भिक्षुक गृहस्थकी  
सन्मानसे दीहुई भिक्षाको ग्रहण करै और जो गृहस्थी म्वयं स्वादिष्ट अन्नका भोजन कर  
अस्वादिष्ट अन्न भिक्षुक वा अतिथिको देताहै वह अधोगतिको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ गर्भ-  
वती स्त्री, रोमी, भृत्य, बालक, और वृद्ध इनके भूखे रहते जो गृहस्थी भोजन करताहै वह  
महान् पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ विना निमंत्रणके पक्वान्न आदिका भोजन न करै,  
और न उसकी अभिलाषा करै, यदि कोई पुरुष निमंत्रण देभी दे तौभी ब्राह्मण नि-  
वारण करसकताहै ॥ ४६ ॥

शूद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टकूरतस्कराः ॥ ऋद्धापविद्धबद्धोश्रवधबंधनजीवि-  
नः ॥ ४७ ॥ शैलूषशौंडिकोन्नद्धोन्मत्तब्रात्यव्रतच्युताः ॥ नमनास्तिकानिर्ह-  
ञ्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥ कदर्यस्त्रीजितानार्यपरवादकृता नराः ॥  
अनीशाः कीर्तिमंतोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥ शयनासनसंसर्गकृतक-



मांदिबुषिता ॥ अश्वहानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥ अमोज्यान्ना स्तु-  
रत्नादौ यस्य यं स्यात्स तत्समं ॥ ५० ॥

शूर, जिसे शाप लगाहो, व्यामलेकर निर्वाह करनेवाला, वाग्दुष्ट, गूण, कथवा निरन्तर  
दुष्ट बोलनेवाला, कठोरहृदय, चोर, क्रोधी, पवित्र, और बंभन पड़ीहिंसा बंधनसे जो कीबिका  
करतेहैं ॥ ४७ ॥ नट, कलाक, उमड़, उन्मत्त, प्रात्य, जिसने व्रतको छोड़ दिया हो, मंगा  
नास्तिक, निर्द्वेष, युगल, व्यसनी, ॥ ४८ ॥ जिसे कामदेव और श्रियोमे जीताहो, असज्जन,  
बूसरेकी निंदा करनेवाला असमर्थ और कीर्तिमान् होकरभी जो राजा और देवताके द्रव्यको  
हरण करे ॥ ४९ ॥ स्रम्पा, आसन, संसर्ग, व्रतकर्म इनमें जो किसी भौवि वृषित हो  
और अज्ञानी, पवित्र, भ्रष्टाचार, नट आदि यह सम्पूर्ण अमोज्यान्ना कहेंहैं, अर्थात् इनके  
यहांके अन्नको न खाए, कारण कि जो जिसके यहांके अन्नको खाताहै वह उसीके समान  
होजाताहै ॥ ५० ॥

नापितान्वयमिन्द्रार्द्धसीरिणो दासगोपका ॥ शूद्राणामप्यमीषां तु भुक्तार्त्तं  
नेष दुप्यति ॥ ५१ ॥

नार्ह, पशुका मित्र, अर्द्धमीरी दास और गोप इन शूद्रोंके अन्नको खाकर भी दोष नहीं  
छाता ॥ ५१ ॥

धर्मेणान्योन्यमोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वया ॥ ५२ ॥ स्वयंतोपार्जित  
मेभ्यमाकरस्थममासिकम् ॥ अश्वलीढमगोप्रातमस्पृष्ट शूद्रवापसै ॥ ५३ ॥  
अनुच्छिद्यमसदुष्टमपर्युषितमेव च ॥ अम्लानचाह्यमन्नाद्यमार्थं नित्यं सुप्तं  
स्कृतम् ॥ कृसरारुणसयाषयापसं शष्कुलीति च ॥ ५४ ॥

द्विजोंको परस्परमें यदि बंध ( दुष्क ) विदित हो ही धर्म करके एक दूसरेके अन्नको  
भोजन करसकतेहैं ॥ ५२ ॥ परन्तु उस अन्नको खाए जिसको वह खाने या खिखानेवालेने  
अपनी जीविकासे संभय कियाहो और सहायको छोड़कर आकरकी वस्तु और जिस  
को कुचने न सुपाहो और जिसे गाने न सुंपाहो, जिसे दूर और काकन न सुआहो यह  
सभी पवित्रहै ॥ ५३ ॥ अस्त्रिष्ट न हो, बासी न हो, दुर्गंधि न आवीहो इस प्रकार भर्त्  
भांति यनायहूप अन्नको मित्य खाके शिष्यी गालुपुय, मोहनमाग, गीर पूरी इनका  
भी खाके ॥ ५४ ॥

नाभीयाद्वाह्यणो मांसमनियुक्तं कर्षचन ॥ ऋती भ्रातृ नियुक्तो वा अमभ्यम्  
तेति द्विज ॥ ५५ ॥ मृगयोपार्जितं मांसमभ्यक्ष्य पितृदेवता ॥ क्षत्रियो द्वा  
दशोर्न तत्क्रीत्याप्येद्योगवि धर्मत ॥ ५६ ॥

माद्वेग भाद्रादिकमें किना नियुक्त मांसभोजन कदापि न करे परन्तु यज्ञमें वा भाद्रमें  
नियुक्त होकर मांसय यदि मांसमात्र न करे ही पतिन दोगादे ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय मृगबा  
करके छावेहूप मांससे पितर और देवताओंको पूजकर ब्रह्मस भाप भी भोजन करे, और  
व्रतमें वारद्वे भागका गाल छेदर शेरन भी खाके ही भजन गरी दे ॥ ५६ ॥

द्विजो जग्ध्वा वृथामांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥

निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण वृथामांस खाताहै, या जो विना विधिके पशुओंको मारताहै, वह अनंत काल-तक नरकमें निवास करताहै, जबतक चन्द्रमा और तारागण आकाशमें स्थिति करतेहै तभी-तक उसका नरकमें वास है ॥ ५७ ॥

सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥

मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ॥ ५८ ॥

( वृथामासको वर्जदेनेसे ) सम्पूर्ण कामना और अश्वमेधके यज्ञके फलको प्राप्त होकर गृहस्थी भी ब्राह्मण मुनियोंकी समान होजाताहै ॥ ५८ ॥

द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥

निर्देशासंधिसंधिवत्सवंतीपयांसि च ॥ ५९ ॥

गाय और भैंसका दूध ब्राह्मणोंके खाने योग्य होताहै, और वह खाने योग्य दूध है जो व्यानेसे दशदिनके पीछेका हो, तथा वह गौ असंधिनी ( जो ग्याभन न ) हो; और उसके बछड़े वा बछिया हों ॥ ५९ ॥

पलांडुं श्वेतवृंताकं रक्तमूलकमेव च ॥ गुंजनारुणवृक्षासृजंतुगर्भफलानि च

॥ ६० ॥ अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैदवं चरेत् ॥ वाग्दूषितमविज्ञातम-  
न्यपीडितकार्यपि ॥ ६१ ॥

प्याज, सफेद वैंगन, लाल मूली, गाजर, वृक्षका लाल गोंद, गूलरके फल ॥ ६० ॥ विना समयके फूल जो ब्राह्मण इनको खाताहै वह ऐंदव इन्दुका ( चन्द्रदेवताका ) पाकरूप प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै, और वाणीसे दूषित ( गोभी आदिक ) और जिसे जानता न हो वह, और जिसेसे दूसरेको दु ख हो ऐसा पदार्थ खानेवालाभी ऐंदव प्रायश्चित्त करै ॥ ६१ ॥

भूतभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥

जो विना भूतोंके दिये अन्न खाताहै वह यह सब अन्न गृहस्थीको दग्ध करतेहै,

हैमराजतर्कास्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही ॥ ६२ ॥ अभावे साधुगन्धेषु लोधद्रुम-

लतासु च ॥ षलाशपन्नपात्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचारी यति-

श्रैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥

गृहस्थी सदा सुवर्ण चादी काँसी इनके पात्रोंमें भोजन करले ॥ ६२ ॥ पात्रोंके अभावमें गृहस्थी अच्छी सुगंधवाले देवदारु, ढाक और कमलके पत्तोंमें भोजन करनेयोग्य है ॥ ६३ ॥

ब्रह्मचारी और यतिको भी उक्त पत्तोंमें ही भोजन करना उचित है ॥ ६४ ॥

अभ्युक्ष्यान्नं नमरकारैर्भुवि दद्याद्दलित्रयम् ॥ भूपतये भुवः पतये भूतानां

पतये तथा ॥ ६५ ॥ अपः प्राश्य ततः पश्चात्पंचप्राणाहुतीः क्रमात् ॥ स्वाहा-

कारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥ अनन्यचित्तो भुंजीत वाग्यतोऽन्न-

मकुत्सयन् ॥ आवृत्तेरक्षमभीयादक्षुष्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥ तच्छिष्टमत्रमु  
 दृत्य प्रासमेर्कं भुवि क्षिपित् ॥ ६८ ॥ आघातः साधुसंगेन सद्विद्यापठनेन च ॥  
 वृत्तपृद्धकथाभिश्च क्षेपाहमतिवाहयेत् ॥ ६९ ॥

अन्नको "ऽन्तेजोऽसि" इस मन्त्रसे छिन्नकर नमस्कार करै; इसके पीछे पूज्यामें तीन कडी  
 ( बोझा २ अन्न ) दे किं, "भूतयये नमः, भुवः पतये नमः, भूतानां पतये नमः" ॥ ६७ ॥  
 फिर मपोस्तन "ऽमसूतोपस्वरणमसि स्वाहा" इस मन्त्रसे आचमन करके पांच प्राणोंकी  
 आहुति स्वाहा कहकर दे, और फिर सुखसहित श्लेष अन्नको खाये ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त  
 मीन धारण कर अन्नकी निन्दाको न करताहुमा मनुष्य एकाम मनसे वृत्तिपर्यन्त मोक्ष-  
 करै और पात्रको खाडी न छेडि, अर्थात् उसमें कुछ अंस रहनेदे ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त  
 "ऽमसूवापिधानमसि स्वाहा" इस मन्त्रसे प्रमपोस्तन अर्थात् पुनराचमन छेकर ) इस  
 बपेहुप वच्छिष्ट अन्नमेंसे एक प्रास उठाकर ( किंचित् दो बगह, "ऽश्यामाय नमः" "ऽ  
 श्वत्साय नमः" इस मन्त्रसे) पूज्यापर रखदे ॥ ६८ ॥ इसके पीछे आचमन करके साधुओंकी  
 संगति और बचम विद्याको पढ़कर जो सहाचारमें रहई वनकी कथाओंसे श्लेष निम्नसे  
 स्पटीत करै ॥ ६९ ॥

सायं सध्यामुपासीत ह्युत्थामिं मृत्यसंयुत ॥

आपोशानक्रियापूर्वमशनीयादन्वह द्विज ॥ ७० ॥

इसके पीछे सायंकाळको सन्ध्या करै, और अभिहोत्र कर सूर्योसमेत मोक्षसे पहले  
 आचमन करके नित्यशः मोक्षन करै ॥ ७० ॥

सायमप्यतिथिं पूज्यो होमकालागतोऽग्निशम् ॥

भद्रया शक्तितो नित्यं श्रुतं ह्यम्यादपजित ॥ ७१ ॥

होमके समय आयाहुमा अतिथि सन्ध्याके समयभी अपनी शक्तिके अनुसार भद्रासहित  
 अन्नरूप पूजने योग्य है, पूजा न करनेसे वह अतिथि उसके पुण्यको हरण करताई ॥ ७१ ॥

नातिशूत उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणी शुचि ॥ अप्रत्यगुत्तरशिरां शयीत क्षयने  
 शुभे ॥ शक्तिमानुदिते काले ज्ञानं संध्यां न ह्यपयेत् ॥ ७२ ॥ प्राज्ञे मुहुर्ते

चोत्पाप चिंतयेद्धितमारमन ॥ शक्तिमा मतिमान्निष्य प्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे वृत्तीवोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अस्यन्त एव नहीं हुआ चरणोंको धोकर पवित्र हो वह मनुष्य उत्तम क्षण्यापर क्षयन  
 करे, पक्षिमकी ओरको शिर न करे, शक्तिके अनुसार सूर्योदयके समय स्नान और सन्ध्याको  
 न त्यागै ॥ ७२ ॥ प्राज्ञमुहुर्ते ( ४ वर्षों रात श्लेष रहते ) में लठकर अपने दिवकी विचार  
 करे । समय मुद्रिमान् मनुष्य नित्य इस प्रकारका कार्य करै ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे मायाटीक्यां वृत्तीवोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्ममारसमुच्चयम् ॥ आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्मा-  
श्रितानि च ॥ १ ॥ गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥ सर्वती-  
र्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥

यह व्यासजीका कहाहुआ शास्त्र धर्मोंका सारियुक्त है; आश्रममें जो पुण्य है और जो पुण्य मोक्षके धर्मोंमें है ॥१॥ उन सबमें गृहस्थाश्रमसे श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है यह व्यासजीने वार २ कहाहै, जो गृहस्थ यथोक्त गृहस्थधर्मके अनुसार पालन करताहै, वह घरमेही सम्पूर्ण तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ २ ॥

गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥ नित्यजापी च होमी च सत्यवादी  
जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिवर्तनम् ॥ अपवादोऽपि नो  
यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥

जो गृहस्थी गुरुमें भक्ति करनेवाला, भृत्योंका प्रतिपालक, दयालु, निन्दा न करनेवाला, सर्वदा जप होम करनेवाला, सत्यभाषी और जितेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ जिसे अपनी स्त्रीसे ही सन्तोष है, पराई स्त्रीकी इच्छा न करनेवाला, जिसकी कहीं निन्दा न हो उस गृहस्थीको घरमें बैठही तीर्थका फल मिलताहै ॥ ४ ॥

परदारान्परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ॥

सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥ ५ ॥

जो गृहस्थी प्रतिदिन पराई स्त्री और पराये धनको हरण करताहै, उसके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी पाप नष्ट नहीं होते ॥ ५ ॥

गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ॥

अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेन लिप्यते ॥ ६ ॥

इस कारण सवन ( यज्ञ वा संतान ) युक्त घरोंमें सब तीर्थोंका फल मिलताहै, जिसके अन्नसे श्राद्ध आदि कियाजाता है तीन भाग पुण्यके उसको भी मिलते हैं, और जो उक्त कर्मोंको करे उसके एक भाग मिलता है ॥ ६ ॥

प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानां च तर्पणम् ॥ न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिभिक्षां  
ददाति यः ॥ ७ ॥ पादोदकं पादधृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ यो ददाति  
ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥

जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको जीविका प्रदान, तथा तृप्ति करता उनके चरण धोता है और जो चलि वैश्वदेव करता है उस मनुष्यको पाप स्पर्शतक भी नहीं करसकता ॥ ७ ॥ जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको प्रतिश्रय अर्थात् रहनेको जगह और पैरोंके धोनेके लिये जल पादधृत (जूता वा खडार्ज) दीपक अन्नदान और आश्रय देताहै, यमराज उसके निकट नहीं आसकते ॥ ८ ॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥

तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥

जिस गृहस्त्रीके घरमें माछणोंके चरणोंके धोनेके अछसे पृथ्वी जबतक गीळी रखी है तबतक कमलके पत्तोंमें उसके पितर समुज पीतेहैं ॥ ९ ॥

यत्फल कपिलादाने कार्तिक्या ज्येष्ठपुष्करे ॥ तत्फल द्रुपय श्रेष्ठा विभाषां पाद्  
क्षोधने ॥ १० ॥ स्वागमेनामय\* मीता आसनेन शतक्रतु ॥ पितर पादशी  
थेन अन्नाद्येन प्रजापति ॥ ११ ॥

हे ऋषिभेद्यो ! कपिलागौके दान करनेसे जो फल होता है, कार्तिककी पूर्णमासीको पुष्कर-  
में स्नान करनेसे जो फल होता है वही फल केवल ब्राह्मणोंके चरण धोनेसे होताहै ॥ १० ॥  
ब्राह्मणोंका स्वागत करनेस अग्निदेव प्रसन्न होतेहैं, आसन देनेसे इन्द्र प्रसन्न होते हैं, चरण धोने-  
से पितर प्रसन्न होतेहैं, और अन्नादि दान करनेसे प्रजापति ब्रह्माभी प्रसन्न होतेहैं ॥ ११ ॥

मातापित्रो पर तीय गगा गाधो विशेपत ॥

ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥

माता और पिता वही प्रधान तीर्थ हैं, यद्यपि गंगा और गौ वही भी तीर्थ हैं, परन्तु ब्राह्मणों-  
से बहकर तीर्थ न हुआ और न होगा ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणि षष्ठीकृत्य गृह एष वसेन्नर\* ॥ तत्र तस्य कुक्षेत्र भैमिपं पुष्करा  
णि च ॥ १३ ॥ गगाद्वारं च केदार सन्निहस्यं तथैव च ॥ एतानि सर्वतीर्थानि  
कृत्वा पापै\* प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंको षष्ठमें कर गृहस्नातनमें जो मनुष्य बाध करता है उसको घरमें ही कुक्षेत्र  
भैमिप और पुष्कर ॥ १३ ॥ इन्द्रियार, केदार, सन्निहस्य ( कुक्षेत्र ) यह सम्पूर्ण तीर्थ हैं, यह  
इन सब तीर्थोंके प्रभावसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १४ ॥

वर्णानामान्नमाणां च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ॥

दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥ १५ ॥

हे द्विजगण ! व्यास मुनिने जिस प्रकार कहा वसीके अनुसार चारों वर्ण और चारों  
व्यक्तियोंके दानका फल कहवाहूँ ॥ १५ ॥

यद्वाति विशिष्टेभ्यो यद्वाश्नाति दिनेदिने ॥ तत्र वित्तमहं मय्ये श्रेय कस्या-  
पि रक्षति ॥ १६ ॥ यद्वाति यद्वाश्नाति तदेव धनिनो धनम् ॥ अय्ये मृतस्य  
श्रीवंति दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥ किं धनेन करिष्यति देहिनाऽपि गतायुष\* ॥  
यद्दत्तं पितृभिर्धत्तस्तच्छरीरमक्षाधतम् ॥ १८ ॥ अशाश्नतानि गात्राणि वि-  
भवो भव शाश्वत ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रह\* ॥ १९ ॥  
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ॥ यत्परित्यज्य गतर्ष्यं तद्धनं किं  
न दीयते ॥ २० ॥ जीवति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बाधयाः ॥ जीवितं  
सफलं तस्य आरमार्यं को न जीवति ॥ २१ ॥ पशवोऽपि हि जीवति केच  
छात्मीदरंमराः ॥ किं कायेन सुगुप्तेन वलिना धिरजीविना ॥ २२ ॥ प्रासादार्द्धं

मपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ॥ इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ २३ ॥

जो धन प्रतिदिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दिया जाताहै जो स्वयं भोगता है उसी धनको मैं धन मानताहूँ, और जो दान नहीं करता, भोग नहीं करता, उसकी रक्षाही करताहै, वह उसका नहीं है ॥ १६ ॥ जो धन दान दिया जाताहै, भोगाजाताहै वही धनीका धन है, मृतकके धन रखजाने पर अन्य पुरुष उसके स्त्री वा धनसे क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥ धनको रखकर जो मरजाते हैं, वह उस धनसे आत्माका क्या उपकार करेंगे, धनको भोगकर जिस शरीरको पुष्ट करनेकी इच्छा करते हैं सो वह शरीर भी सर्वदा रहनेवाला नहीं ॥ १८ ॥ देह और धन सर्वदा रहनेवाला नहीं, सर्वदा मृत्यु सन्मुख खडी रहती है, इस कारण धर्मका सप्रह करना उचित है ॥ १९ ॥ जो धन सम्पत्ति धर्मके निमित्त, या अभिलाषा पूरणके निमित्त तथा कीातके निमित्त न हुई उस धनको त्यागकर परलोक जाना होगा, फिर उस धनको किस कारण दान नहीं करता ॥ २० ॥ जिस मनुष्यके जीवित रहनेसे ब्राह्मण मित्र तथा बंधु बांधव जीवित रहतेहैं उन्हींका जीवन सफल है, अपने लिये कौन नहीं जीता ॥ २१ ॥ केवल अपने पेट भरनेके लिये तौ पशुभी जीवन धारण करतेहैं ( जो मनुष्य धनसे दानादि सत्कार्य नहीं करते ) उन्हें भलीभांति शरीरकी रक्षा करनेसे या बलवान् होने तथा चिरजीवी होनेसे ही क्या फल है ॥ २२ ॥ यदि एक ग्रास वा आधा ग्रास भी अभ्यागतको न दे ( और यह कहै कि जब इच्छानुसार धन मिलैगा तब देंगे ) सो इच्छानुसार धन कब मिला और किसके होताहै ॥ २३ ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ॥

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुंचति ॥ २४ ॥

अदाता ( न देनेवाला ही ) पुरुष त्यागी है कारण कि वह धनको छोडकर जाताहै, परन्तु मैं दाताको कृपण मानताहूँ कारण कि दाता मरकर भी धनको नहीं छोडता, अर्थात् मरनेपरभी उसे धन मिलता है ॥ २४ ॥

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न स मृतः ॥

अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५ ॥

एक दिन अवश्यही प्राणत्याग करने होंगे परन्तु जो कृतार्थ है वह मृतक नहीं हुआ, और जो बिना धर्मकिये मराहै वह गधेकी समान है ॥ २५ ॥

अनाहूतैषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ॥ भविष्यति युगस्यांतस्तस्यांतो न भविष्यति ॥ २६ ॥ मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते ॥ परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥ अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ॥ पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनंतकम् ॥ २८ ॥

बिना मागे जो दान दियाहै, युगका तौ अन्त हो जायगा परन्तु उस दानका अन्त नहीं होगा ॥ २६ ॥ मरे बछडेवाली काली गौको जिस भांति दुहतेहैं परन्तु उसके दूधसे देवकार्य नहीं होता, इसीभांति परस्परके दानका भी कोई फल नहीं होता, केवल लोकाचारकी रक्षा होतीहै, परन्तु उससे प्रणय नहीं होता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य पापको न देखकर ( अर्थात्

जिन्ही पापक लिय न दे ) वा दानके मोछको न देखकर ( यह इच्छ्य न करै कि इसका फल गुप्त मिछै ) और यह भी अभिजापा न करै कि मैं फिर इस संसारमें जाऊंगा, तो उस समयमें दानका फल अनन्त होताहै अर्थात् जो दान निष्काम होकर कियाजाताहै वही सफल होताहै ॥ २८ ॥

मातापितृषु यद्दद्यात्पुत्रेषु च ॥ जायापत्येषु यद्दद्यात्सोऽनन्तं  
स्वर्गसंक्रमः ॥ २९ ॥ पितुः शतगुण दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥ भगिन्यां  
शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

माता, पिता, भाई, स्वश्वर, बही, पुत्र वा पुत्री जो इनको दान करताहै वह अनन्तकारण-  
वक स्वर्गमें भिजास करताहै ॥ २९ ॥ पिताको दान करनेसे सहस्रगुणा फल मिछताहै,  
माताको दान करनेसे द्वाशतगुणा फल मिछताहै, और भगिनीको जो दान दियाजाताहै वह  
साठगुणा होताहै, और जो भाईको दिया जाताहै उसका कमी भी नाश नहीं होता ॥३॥

अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेषु मुनीश्वराः ॥ आगमिष्यति यत्पात्रं तत्पात्रं तार  
विष्यति ॥ ३१ ॥ किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् ॥ पात्राणामुत्तमं  
पात्रं शूद्रात्तं यस्य नोदरे ॥ ३२ ॥

हेमुनीश्वरो ! दिन २ ब्राह्मणोंको दान करै, कारण कि, जो पात्र आजायगा वही धारवेगा  
॥ ३१ ॥ यत्किंचित् पात्रं वा वेदपाठी वा तपस्वी होताहै, और पात्रोंमें उत्तम पात्र वह  
है जिसके घरमें शूद्रका भक्षण नहो ॥ ३२ ॥

यस्य वैश्वं गृहे भूखंडं दूरे चापि गुणान्वितं ॥

गुणान्विताय दातव्यं नास्ति भूखंडं व्यतिक्रमः ॥ ३३ ॥

जिसके घरमें भूखंडा निवास हा और भिजास कर रहताहो ती वह मनुष्य गुणीको मुझ  
कर दान करै, भूखंड उक्षण करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥

देवद्रव्ययिनाक्षेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥ कुलान्पकुश्रतां याति ब्राह्मणातिक्रमेण  
च ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विभे वेदविषर्जिते ॥ ज्वलन्तमभिमुत्सृज्य  
न हि मरुमनि हुयते ॥ ३५ ॥ सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥  
भोजने चैव दाने च इत्याग्निपुरुष कुलम् ॥ ३६ ॥

देवताके द्रव्यका नाश, ब्राह्मणके मनझी चोरी और ब्राह्मणका उक्षण इमसे अच्छे  
कुलमें दुष्ट कुल होजावई ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण वेदको नहीं जानता उसका उक्षण नहीं  
होता; कारण कि प्रश्रित्य अग्निको छोडकर मरुममें हवन नहीं कियाजाता ॥ ३५ ॥ भोजन  
और दानके समयमें जो अपने समीपके परेदुष्ट ब्राह्मणका उक्षण करताहै वह तीन पाईतक  
जाने कुलको नष्ट करताह ॥ ३६ ॥

यथा फाहमयो हस्ती यथा स्वर्गमयो मृगः ॥ यथा विमोऽनधीयानरूपस्ते ना  
मपारफाः ॥ ३७ ॥ ग्रामस्थार्थं यथा गूर्यं यथा कूपश्च निमलः ॥ यथा वि  
मोऽनधीयानरूपस्ते नामपारफाः ॥ ३८ ॥

जिस भाति काठका हाथी, और जैसा चमडेका मुग होता है उसी भांति विना पढा ब्राह्मण है; यह तीनों नाममात्रधारी हैं; अर्थात् निरर्थक हैं ॥ ३७ ॥ शून्य ग्रामस्थान, और जलहीन कुआ जिस प्रकार किसी अर्थका नहीं उमी भाति विना पढा ब्राह्मण है, यह तीनों नाममात्रकेही धारण करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणेषु च यदत्तं यच्च वैश्वानरे हुतम् ॥

तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥

जो धन ब्राह्मणोंको दिया जाताहै, या जिस धनसे हवन कियाजाताहै; वही धन यथार्थ धन कहाहै, और सम्पूर्णधन वृथा है ॥ ३९ ॥

समं समब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्य्यं ह्यनंतं वेदपारगे

॥ ४० ॥ ब्रह्मवीजसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः ॥ जातिमात्रोपजीवी च स

भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥ गर्भाधानादिभिर्मंत्रैर्वेदोपनयनेन च ॥ नाध्यापयति

नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥ अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ॥

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥ ङाष्टिभिः पशुबंधैश्च चातुर्मा-

स्यैस्तथैव च ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥ मीमांसते च

यो वेदान्षड्भिरंगैः सविस्तरैः ॥ इतिहासपुराणानि स भवेद्देदपारगः ॥ ४५ ॥

अब्राह्मणको जो दियाजाय वही सम ( उतनाही रहताहै ) और जो ( सामान्य ) ब्राह्मण-ब्रुवको दिया जाय वह दुगुना होताहै, और आचार्यको दियाजाता है वह सौगुना होताहै; और वेदके पारको जो जानता है उसके देनेसे अनन्त फल होता है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न होकर जो गायत्रीआदिका जप न करै, और जो ब्राह्मण जातिही कहकर उदरपोषण करै, उस ब्राह्मणको सम ब्राह्मण कहतेहैं ॥ ४१ ॥ जिस ब्राह्मणकी संतानके यथा-शास्त्र गर्भाधानादि संस्कार हुएहैं, यज्ञोपवीत आर वेदपाठ भी रीतिके अनुसार हुआहै परन्तु उनको न पढे और न पढावै उसको ब्राह्मणब्रुव कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जो ब्राह्मण नित्य हवन करताहो, तपस्वी हो, कल्प और रहस्यसहित जो वेदोंको पढताहो उस ब्राह्मणको आचार्य कहते हैं ॥ ४३ ॥ यज्ञिय पशुको बाधकर जो चातुर्मास्य अग्निष्टोमादि यज्ञ करताहै और जो देवताओंकी पूजा करताहै उसे इष्टवान् कहतेहैं, अर्थात् उन्हीने पूजाकरी ॥ ४४ ॥ विस्तार सहित ङै अंग, चारों वेद और इतिहास पुराण इनका जो विचार करता है उसको वेद-पारग कहते हैं ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणा येन जीवन्ति नान्यो वर्णः कथंचन ॥ ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्य-

क्तुमुःसहेत् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ॥ प्रत्यक्षं चैव

लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥

जिससे ब्राह्मण जीतेहैं उससे और वर्ण कभी नहीं जीते अर्थात् जो ब्राह्मणोंको दान देकर पालन पोषण करताहै, अन्य वर्ण नटवेश्यादिकों को अपना द्रव्य देकर पोषण नहीं करताहै, ऐसे इस मार्गमें स्थित होनेवालेको कौन परित्याग करनेकी इच्छा करै अर्थात् कोई भी नहीं- ॥ ४६ ॥ वह ब्राह्मण देवताका भी देवता है और प्रत्यक्ष जगत्का कारण ब्रह्मतेजही है ॥ ४७ ॥



ब्राह्मणस्य सुखं क्षेत्र निष्ककरमकटकम् ॥ वापयेत्तत्र धीमानि सा कृपि सा-  
 र्षकामिकी ॥ ४८ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्दीर्घं सुपात्रे दापयेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे  
 च क्षिप्तं नैव हि दुष्पति ॥ ४९ ॥ विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते ॥  
 कीदंत्स्योर्षधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ५० ॥ नष्टशौचे व्रतघ्ने विप्रे  
 वेदविधार्जिते ॥ दीयमान रुदत्यत्र भयाद्दे वुष्कृत कृतम् ॥ ५१ ॥ वेदपूर्णं  
 सुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥ न च मूर्खं निराहारं पद्मात्रमुपवासिनम्  
 ॥ ५२ ॥ यानि यस्य पवित्राणि कुशौ तिष्ठति भो दिजाः ॥ तानि तस्य प्र-  
 योज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ ५३ ॥ यस्य देहे सदाभंति हृष्यानि त्रि-  
 दिवौकसः ॥ कम्पानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ५४ ॥ पशुंके वेदविदि-  
 मः स्वकर्मनिस्तः शुचिः ॥ दातुं फलमसस्यात् प्रतियजन्मत वसयम् ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणका मुखही ककर और काटोंसे रहित क्षेत्र है उसीमें बीज बाँधे, कारण कि वह  
 खेती सप मनोरथोंकी देनेवाली है ॥ ४८ ॥ अच्छे क्षेत्रमें बीज बोधे, सुपात्रको मन वे कारण  
 कि अच्छे खेतमें फेकाहुमा बीज और सुपात्रको दियाहुमा मन हूणित नहीं होता ॥ ४९ ॥  
 जिस समय विद्या और विनयसे मुक्त होकर ब्राह्मण घरमें आवे उस समय सब औपधी  
 कीजा करधी है कि हम परम गतिको प्राप्त होंगी ॥ ५० ॥ जो ब्राह्मण नष्टशौच है वा  
 जो व्रतसे भ्रष्ट है, तथा जो बेधसे हीन है, उसको दियाहुमा अन्न भय मानकर रोता है कि  
 इसने बुरा किया जो दिया ॥ ५१ ॥ वेदसे पूर्ण हुए ब्राह्मणको भी जिमावे, और निरहार  
 से रातके तथासे मूर्ख ब्राह्मणको कदापि न जिमावे ॥ ५२ ॥ हे द्विजो ! पवित्र वस्तु जिसके  
 घरमें रहे अर्थात् वही २ वस्तु उस ब्राह्मणको देनी; अन्यथा देहधारियोंका देह किसी प्रभो  
 जनका नहीं है ॥ ५३ ॥ जिस ब्राह्मणके शरीरमें देवता हृष्य और पितर कथ्य सर्वथा भोजन  
 करते रहते हैं, उससे परे और कौन होगा ॥ ५४ ॥ बेरका पान्तेवाला और अपन कर्ममें  
 उत्तर ब्राह्मण जो प्यता है, शत्रुको उसका फल अनिगन्त होता है और जन्म २ में वह  
 जन्म होता है ॥ ५५ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पंडिताः ॥ अहं नेच्छामि मुनयः परस्यता  
 सधसपदः ॥ ५६ ॥ वेदलांगलकृष्टेषु दिग्भेदेषु सन्तु च ॥ यापुरा पातित  
 धीर्जं तस्यता सस्यसंपदः ॥ ५७ ॥

हे मुनियों ! हाथी, रथ घोडा, यान, पादकी इनको एसा कौन पंडित ब्राह्मण छान्दी  
 दृष्टा करेगा, इनके सेनेकी फीर विद्वान् भी इच्छा नहीं करता, कारण कि वह सपदा  
 किसका देहीकी है ॥ ५६ ॥ बेररूप हलसे जुटे जा सस्यात्र ब्राह्मणोंमें उत्तम हैं वगमें जो  
 पूज्यमसे बीज बायागया है उसीकी वह अन्न भादि गेहीकी संपदा है ॥ ५७ ॥

शतेषु जायते शूरः सदक्षेषु च पंडितः ॥ यत्ना शतसदक्षेषु दाता भयति वा न  
 वा ॥ ५८ ॥ न रणं पिगयाच्छूरोऽप्यपनाम् च पंडितः ॥ न यत्ना वापूपटु  
 त्वन न दाता वापदानतः ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां जप शूरो धर्मं धरति पंडितः ॥  
 हितप्रायोक्तिभिर्वता दाता स मानदानतः ॥ ६० ॥

सौमं एक शूर वीर, हजारमें एक पंडित और लाखमें एक वक्ता होताहै, और दाना तो हो या न, हो ॥ ५८ ॥ रणको जीतनेसे ही शूर वीर नहीं होता, पढनेसे ही पंडित नहीं होता, वाणीसे ही वक्ता नहीं होता, और धनके दानसे ही दाता नहीं होता ॥ ५९ ॥ परन्तु जो इन्द्रियोंको जीतताहै वही शूर है, जो धर्माचरण करताहै वही पंडित है जो हितकारी और प्रिय वचन कहै वही वक्ता है, और जो मनुष्य सन्मानपूर्वक दान करै, वही दाता है ॥ ६० ॥

यद्येकपंत्यां विषमं ददाति स्नेहाद्वायाद्वा यदि वार्यहेतोः ॥ वेदेषु दृष्टं वृषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥ ६१ ॥ ऊखरे वापितं वीजं भिन्नभांडेषु गोदुहम् ॥ हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

यदि स्नेह या भयसे या धनके लोभसे एक पंक्तिमें वेदेषु ब्राह्मणोंको विषम न्यूनाधिक देताहै उसको ब्रह्महत्याका पाप होताहै, यह वार्ता मुनियोंने भी कहीहै और वेदोंमें भी देखी गईहै, और ऋषिभी वही कहतेहैं ॥ ६१ ॥ ऊपर भूमिमें बोयाहुआ वीज, फूटे पात्रमें दुहाहुआ दूध, भस्ममें कियाहुआ हवन, और मूर्खको दिया हव्य और दान यह सभी निष्फल हैं ॥ ६२ ॥

मृतसूतकपुष्टांगो द्विजः शूद्रान्नभोजने ॥ अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ ६३ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥ स भवेत्सूक्तरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥ गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥ श्वानश्च सप्तजन्मानि इत्येवं मनुब्रवीत् ॥ ६५ ॥

जो ब्राह्मण जन्म मरणके सूतकमें अन्न खाकर अपना शरीर पुष्ट करतेहै और जो शूद्रके यहांका भोजन करतेहैं वह ब्राह्मण परलोकमें जाकर किस योनिमें जन्म लेंगे, व्यासदेवजी कहतेहैं कि यह मैं स्थिर नहीं करसका ॥ ६३ ॥ शूद्रका अन्न उदरमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाताहै वह परलोकमें सूकरकी योनिमें जन्मलेताहै अथवा शूद्रकेही कुलमें जन्मलेताहै ॥ ६४ ॥ वह बारह जन्मतक गीध, सात जन्मतक सूकर, और सात जन्मतक कुत्ता होताहै, यह मनुका वचन है ॥ ६५ ॥

अमृतं ब्राह्मणात्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥

वैश्यात्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं ब्रजेत् ॥ ६६ ॥

ब्राह्मणका अन्न उदरमें स्थित रहनेपर यदि मरजाय तौ उसकी मोक्ष होतीहै, क्षत्रियका अन्न उदरमें रहनेपर मृतक होजाय तौ दरिद्र होताहै, वैश्याका अन्न उदरमें रहनेपर मरजाय तौ शूद्र होताहै, और शूद्रके अन्नसे नरककी प्राप्ति होतीहै ॥ ६६ ॥

यश्च भुंक्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥ ६७ ॥ यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥ वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥

जो ब्राह्मण निरन्तर एक महीनेतक शूद्रका अन्न खाताहै, वह इसी जन्ममें शूद्र है और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ६७ ॥ जिस ब्राह्मणके यहां शूद्रा स्त्री रसोई बनाती-

हो अथवा जिसकी स्त्री शूद्रा हा वह द्विज पितर और द्रवताओंस त्यागात्तुभा हे और मृत्युके उपरान्त रौरव नरकको जायदै ॥ ६८ ॥

भांडसकरसंकीर्णा नानासकरसकरा ॥

योनिसकरसंकीर्णा निरय याति मानथा ॥ ६९ ॥

प्राचीके सकरसे जो संकीर्ण है, जिसविसके पात्रमें शाळे, और शिबिका मल अन्नक सकरोंमें है, और यानिसकरसे जो संकीर्ण है, चाहे जिसके साथ विवाह करलें, यह सभी मृत्यु नरकमें जावेई ॥ ६९ ॥

पक्तिभेदी वृथापाकी नित्य ब्राह्मणनिन्दक ॥

आदेशी वेदविक्रैता पधेते ब्रह्मपातका ॥ ७० ॥

जो पतिमें भेद करताहो और जो वृथापाकी यखिवैश्वदेव न करै, अपन क्रियेही अन्न पकावै, ब्राह्मणोंकी निन्दा करताहो और वेदको बेचताहो, जो ब्राह्मणको फरताहो, अथवा कुछ व्रत्यके सोमसे पढावे या अपकरै यह पाँचों ब्राह्मणस्थाने खेदेई ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमभ्येतव्यं प्रयत्नत ॥

पतदुक्तप्रचारयत ॥ पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे षट्षोडश्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥

व्यासजीके विरचित धर्मशास्त्रके अष्टादशो मनुष्योंको प्रतिदिन पढ़ना आवश्यक है, व्यासजीके कहेहुए आचरणोंको जाँ करताहै उसका पतन नहीं होता, अर्थात् इस शास्त्रोक्त आचरणको करनेसे धर्मकी प्राप्ति होतीहै, और अधर्मका सम्पन्न नहीं होता ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे माण्डवीय्यायः षट्षोडश्यायः ॥ ४ ॥

व्यासस्मृतिः समाप्ता १२



॥ श्रीः ॥

# शङ्खस्मृतिः १३.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शंखस्मृतिप्रारंभः ॥

स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥

चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥

सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयंभू ब्रह्माजीको नमस्कार करके चारों वर्णोंके कल्याणके निमित्त शंखरूपिने शास्त्रको निर्माण किया ॥ १ ॥

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥ प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दि-  
शेत् ॥ २ ॥ दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥ क्षत्रियस्य च वैश्यस्य  
कर्मदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥ क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥ कृषि-  
गोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पा-  
नि वाप्यथ ॥

यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और पढाना, प्रतिग्रह और पढना यह छै. कर्म ब्राह्म-  
णोंके कहेहैं ॥ २॥ दान, पढना, और विधिके अनुसार यज्ञकरना, यह तीन कर्म क्षत्रिय और  
वैश्योंके हैं ॥ ३ ॥ क्षत्रिय जातिका विशेष कर्म प्रजाकी पालना करनाहै, और वैश्यका खेती,  
गौओंकी रक्षा तथा लैन दैन कहाहै ॥ ४ ॥ और तीनों जातियोंकी सेवा करना और सम्पूर्ण  
कारीगरी यह शूद्रका कर्म है,

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥

विशेष करके क्षमा, सत्य, शौच यह चारों वर्णोंके समान कर्म है ॥ ५ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं  
मौजिवंधनम् ॥ ६ ॥ आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥ ब्राह्मण-  
क्षत्रियाविशां मौजीबंधनजन्मनि ॥ ७ ॥ वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विच-  
क्षणैः ॥ यावद्वेदे न जायते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंको द्विजाति कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवी-  
तसे जानना ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंके यज्ञोपवीतके जन्ममें आचार्य  
पिता और माता गायत्री कहीहै ॥ ७ ॥ जवतक इनको वेद शास्त्रका अधिकार न हो तवतक  
पढित इनको शूद्रकी समान जानें, और वेदपाठप्रारंभ अर्थात् यज्ञोपवीत होजानेपर ब्राह्मण  
जानना उचित है ॥ ८ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २

गमस्य स्फुटताज्ञान निषेकः परिकीर्तिताः ॥ पुरा तु स्पन्दनात्कार्यं पुंसवनं वि-  
चक्षणैः ॥ १ ॥ पष्ठेऽष्टमे वा सीमतो जाते वै जातकर्म च ॥ आशौचे च  
व्यतिक्रान्ति नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥

गर्मके मन्त्रीमांदिसे प्रकाश पानेपर, निषेककर्म करना कहा है, और गर्मके स्पन्दन ( गर्मके  
बचन ) से प्रथम पडियोंको पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १ ॥ छठ वा आठवें महीनेमें  
सीमन्त और सन्तानके उत्पन्न होनेपर जातकर्म और सूतकसे निपूच जानेपर नामकरण  
संस्कार करना उचित है ॥ २ ॥

नामधेय च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥ मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य  
बलान्वितम् ॥ ३ ॥ वैश्यस्य धनसयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ शर्मातं  
ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥ घनांतं शैव वैश्यस्य दासान्तं  
चात्यजन्मनः ॥

चारोंवर्षोंका नाम समसंक्षरयुक्त रखना उचित है ब्राह्मणके नामके प्रचारणमें संगठ  
शब्द हो, क्षत्रियके प्रचारणमें बलयुक्त नाम हो ॥ ३ ॥ वैश्यके नाममें धनयुक्त नाम हो और  
शूद्रकातिके नाममें निम्नयुक्त शब्द वा ब्राह्मणके नामके पीछे शर्मा और क्षत्रियके नामके  
पीछे वर्मा ॥ ४ ॥ वैश्यके नामके अन्तमें धन और शूद्रके नामके अन्तमें दास होना उचित है,

घतुर्धे मासि फलव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥

पष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चडा कार्या यथाकुलम् ॥

चौथे महीनेमें बालकका सूर्यका दर्शन करावे ॥ ५ ॥ छठे महीनेमें अन्नप्राशन संस्कार  
करना कर्तव्य है, और सुंडन अपनी २ कुलकी रीतिके अनुसार करे,

गमस्योऽष्टमेऽष्टमे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥ गर्मादिकादक्षे राज्ञो गर्मा  
द्वादशमे विशः ॥ षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥ विंशतिः  
सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥ नातिवर्षेण सावित्रीमतं कर्ष्यं निवर्तते  
॥ ८ ॥ विज्ञातव्यास्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिताः प्रात्या  
सर्षधर्मवाहिकृताः ॥ ९ ॥

गर्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ ६ ॥ क्षत्रियका गर्मसे ग्यारह  
वें वर्षमें यज्ञोपवीत करे और वैश्यका गर्मसे बारहवें वर्षमें करे, ब्राह्मणकी सोलह वर्षतक  
क्षत्रियकी बारह वर्षतक ॥ ७ ॥ और वैश्यकी चौबीस वर्षतक गामत्री निपूच करी होधी, यह  
श्रावणका वचन है, इसके आगे निपूच होजायी है ॥ ८ ॥ किन्तु अपने २ धर्मके अनुसार  
संस्कार नहीं हुआ है, वह हीनों वर्ष गायत्रीसे पठित व्येऽ सम्पूर्ण धर्मकर्मोंसे वर्जित है, अथवा  
शूद्रकी समान हो जाते हैं ॥ ९ ॥

मौंजीन्यावर्षघनानां तु क्रमात्सौम्यं प्रकीर्तिताः ॥ मार्गवियाप्रवास्तानि चर्माणि  
ब्राह्मचारिणाम् ॥ १० ॥ पणविष्णुविन्वानां क्रमाद्दहा प्रकीर्तिताः ॥ केश

देशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥ ११ ॥ अवक्रास्सत्वचःसर्वे अनग्न्ये-  
धास्तथैव च ॥ वस्त्रोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥ १२ ॥ आदिम-  
ध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥ भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपू-  
र्वशः ॥ १३ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मुंज, प्रत्यचा, ब्राधना ( तृणविशेष ) इनकी क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी  
मेखला, और मृग, व्याघ्र, भेड इनका चर्म तीनों जातिके ब्रह्मचारियोंको कहा है ॥ १० ॥  
ढाक, पीपल, बेल इनके दंड क्रमानुसार कहे हैं, और वह दंड शिखा, माथा, मुखतकके  
प्रमाणसे तीनों वर्णोंको लेने उचित हैं ॥ ११ ॥ स्तंधे, त्वचासहित और जले न हों इन  
तीनोंके बस्त्र और जनेऊ क्रमसे कपास अलसीकी सन और उनके होने उचित हैं ॥ १२ ॥  
फिर आदि, मध्य और अंतमें भवतीशब्द लगाकर इस भातिके वचनसे क्रमानुसार भिक्षा  
मांगें, अर्थात् ब्राह्मण “भवति भिक्षां देहि” यह कहै, क्षत्रिय “भिक्षा भवति देहि” और  
वैश्य “भिक्षा देहि भवति” इस भाति कहै ॥ १३ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥

आचारमभिकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आचार्य शिष्यको यज्ञोपवीत संस्कार कराकर प्रथम शौच, आचार, अग्नि-  
का कार्य और सन्ध्योपासनादिकी शिक्षा करै ॥ १ ॥

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥

भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥

जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर वेद पढाता है उसे गुरु कहतेहैं, और जो कुछ द्रव्य लेकर  
पढाता है उसे उपाध्याय कहते हैं ॥ २ ॥

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम् ॥

क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नाहतास्त्रयः ॥ ३ ॥

मनुष्योंको सर्वदा माता, पिता और गुरु यह तीनों पूजने योग्य हैं, कारण कि, जो इन  
तीनोंका आदर नहीं करताहै उसके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं ॥ ३ ॥

प्रयतः कल्प उत्थाय स्नातो इतद्भुताशनः ॥ कुर्वीत प्रणतो भक्त्या गुरुणाम-  
भिवादनम् ॥ ४ ॥ अनुज्ञातस्तु गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ॥ कृत्वा ब्रह्मांजलि

१ अपनी मातासे प्रथम भिक्षा मागै, उसमें तो “मातर्भिक्षा मे देहि” ऐसाही वचन कहै, कारण  
कि “सतभिरक्षरैर्मातुः सकाशाद्भिक्षां याचेत्” ऐसा सूत्र है; और औरोंसे मागनेमें यह भवति शब्द-  
चयति वाक्य उच्चारण करै तदाकी यह कृत्वा लिखतेहैं ।

पश्यन्गुरोवदनमानत ॥ ५ ॥ ब्रह्मावसाने प्रारभे प्रणय च प्रकृतयेत् ॥ अन  
ध्यायेष्वभ्ययन वर्जयेच्च प्रपन्नत ॥ ६ ॥

प्रत्युपकाशमें ( लडकेरी ) उठकर प्रयत्न ( मसमूत्रादिक करके मुद्र ) हा स्नान और  
हाम करनेके उपरान्त मक्षिपूर्वक गुरुभोंको मसस्कार करै ॥ ४ ॥ इसके पीछे गुरुकी  
आज्ञासे ब्रह्मांशुदिका करक गुरुके मुखको दर्शन कर नम्रभासे देवका पढ़ै ॥ ५ ॥ वेद  
पढ़नेके प्रारम्भ और अन्तमें छंछारका उच्चारण करे, और अन्तध्यायके दिन पत्नपूर्वक  
न पढ़ै ॥ ६ ॥

चतुर्दर्शा पञ्चदशीमष्टमी राहुसूतकम् ॥ उत्कापात महीकपमाशौच प्रामवि  
ष्टयम् ॥ ७ ॥ इद्रप्रयाण श्वहत सूर्यसघातनिस्वनम् ॥ घाद्यकोलाइरु पुद्गम  
नध्यायान्विधर्जयेत् ॥ ८ ॥ नाधोपीतामिपुक्तोऽपि यानगो न च नीगत ॥  
देवायतनवल्मीकश्मशानस्यसन्निधौ ॥ ९ ॥

बौदस, पूर्वमासी, अष्टमी, प्रहण, उस्का, विज्वहीका पात, भूकप, जशौच, प्रामका उप  
श्रय ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाण ( वर्षाअनुमें धनुपका दर्शन ) छुत्केका मरण, शबके समूहका शम्भ,  
बाजोंका कुलाहल, और बुद्ध इन विभोंमें न पढ़ै ॥ ८ ॥ सबायी, और माघमें, बैभमाविरमें,  
वामीमें, शमश्राममें और शबके निकट बैठकर किसीके कइनेपर भी न पढ़ै ॥ ९ ॥

भैरव्यचर्या तथा कुर्याद्ब्राह्मणेपु ययाविधि ॥

गुरुणा चाप्यनुज्ञात प्रादनीयाध्याङ्गमुखं शुचि ॥ १० ॥

और ब्राह्मणोंसे विधिसहित भिक्षा मांगे, फिर पवित्र हो पूर्वकी ओरको मुख करके गुरु  
देवकी आज्ञा लेकर भोजन करै ॥ १० ॥

हित प्रिय गुरो कृपादहकारविधर्जित ॥ उपास्य पश्चिमां सध्या पूजयित्वा  
हुताशनम् ॥ ११ ॥ अमिवाप्य गुरुं पश्चाद्गुरोर्वचनकृद्रवेत् ॥ गुरो पूर्व समु  
सिष्टेच्छपीत चरम तथा ॥ १२ ॥

अहंकाररहित होकर गुरुदेवका प्यारा और हितकारी कार्य करे, इसके पीछे साधकाश  
हानेपर सम्प्या और अमिवासी पूजा करके ॥ ११ ॥ पीछे गुरुको नमस्कार कर गुरुके वच-  
नोंका पालन करै, और गुरुसे प्रथम बडे और पीछे छोटे ॥ १२ ॥

मघु मांसांजनं श्राद्ध गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ॥

हिंसा परापवादं च स्त्रीस्त्रीलां च विक्षेपत ॥ १३ ॥

मघु ( खल्व आदिक मीठापदार्थ वा मदिरा ), मांस अंजन श्राद्धका भोजन, गान, नाच,  
हिंसा, पराई विन्दा और विशेषकर स्त्रियोंकी छीन्ना इन्हीं स्वागदे ॥ १३ ॥

मेखलामजिन दंड धारयेच्च विक्षेपत ॥

अधःशापी भवेन्नित्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १४ ॥

१ "अथाजनि । एते ब्राह्मणिके" ऐसा जमरकेप्रारंभ किया है इतका अर्थ यह है कि वेदविपाठके  
समय जो अज्ञाति वाचना से उभे ब्राह्मणिके करते हैं ।

मूजआदिकी मेखला ( कौंधनी ) मृगजाला, दंड, विशेषकर इनको धारण करै, और ब्रह्मचारी सावधानीसे पृथ्वीपर शयन करै ॥ १४ ॥

एवं व्रतं तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ॥

गुरुवे च वनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वेदके पढ़नेके समयमें बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसप्रकार व्रत और नियमको करै; और फिर गुरुको धन देकर गुरुकी आज्ञासे स्नान करै अर्थात् गृहस्थाश्रममें वास करै ॥ १५ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

विदेत विधिवद्भार्यामसमानार्पणोत्रजाम् ॥

मातृतः पंचमी चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अपने गोत्र और प्रवरसे रहित स्त्रीके सहित विधिसहित विवाह करै अथवा जो अपनी माताके वंशज पूर्व पुरुषसे पांचवीं पीढीकी और पिताके पूर्वपुरुषसे सातवीं पीढीकी हो उसके साथ विवाह करै ॥ १ ॥

ब्राह्मो दैवस्तयैवार्पः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चा-  
ष्टमोऽधमः ॥ २ ॥ एभ्यो म्भयर्थास्तु चत्वारः पूर्वं ये परिकीर्तिताः ॥ गांधर्वो  
राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥

ब्राह्म, दैव, आर्प, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस, और पैशाच यह आठप्रकारके विवाह हैं, इनमें आठवा पैशाच अधम है ॥ २ ॥ पूर्व कहेहुए इनमें चार वर्ण्य विवाह हैं, और गांधर्व, राक्षस यह दोनों क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥ यज्ञस्थायत्विजे दैव आदायार्पस्तु  
गोद्वयम् ॥ ४ ॥ प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥ आसुरो द्रविणा-  
दानाद्गांधर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥ राजसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

जो विवाह बड़े यत्न और प्रार्थना करनेसे हो उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं, और जो कन्या यज्ञमें बैठे ऋत्विजको दीजाय उसे दैव विवाह कहते हैं; और वरसे दो गौ लेकर जो कन्या दीजाय उसे आर्पणविवाह कहते हैं ॥ ४ ॥ कन्या देनेके निमित्त जहा वरकी प्रार्थना कीजाय उस विवाहको प्राजापत्य कहते हैं, और धन लेकर जिसका विवाह कियाजाय उस विवाहको आसुर कहते हैं, और जो विवाह कन्या और वरकी सन्मतिसे हो उसे गांधर्व विवाह कहते हैं ॥ ५ ॥ युद्धमें हरीहुई कन्याके साथ विवाह करनेका नाम राक्षस विवाह है, और छल करके कन्याके साथ विवाह कियाजाय उस विवाहको पैशाच विवाह कहते हैं,

१ मातृवंशज जिन पुरुषोंमें कन्या पाचवीं पढ़ै उसे लेना यह भी मुन्यन्तरसम्मत नहीं है कारण कि "मातृतः पंचमं त्यक्त्वा पितृतः षष्ठकं त्यजेत्" ऐसा मन्वादिकोंका वचन है, इसमें ऊपर हो तो दोष नहीं ।



तिष्ठन्सु भाया विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥ एकैव भाया वैश्यस्य  
तया शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभाया प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥  
क्षत्रिया वैश्व वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥ वैश्या च भाया वैश्यस्य शूद्रा  
शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥

ब्राह्मणके तीन ( ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या ) स्त्री, और क्षत्रियके दो ( क्षत्रिया, वैश्या )  
स्त्री होती हैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्रके एक २ ही स्त्री होती हैं, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, और वैश्या  
बड़ी तीन ब्राह्मणकी भार्या कही हैं ॥ ७ ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या बड़े दो भार्या हैं,  
और वैश्यकी वैश्या और शूद्रकी शूद्राही भार्या होती हैं ॥ ८ ॥

आपद्यापि न कर्तव्या शूद्रा भाया द्विजग्मना ॥

तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥

विपत्तिकाल होनेपरभी द्विजाति शूद्रकी कन्याके साथ विवाह न करे कारण कि शूद्र  
कन्यासे उत्पन्न हुई सन्तानका कोई भी प्रारंभिक नहीं है, भवात् वह पवित्र होजाता है ॥ ९ ॥

तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्वपर्मभृतां वर ॥

धुषं शूद्रत्वमायाति शूद्रभादे त्रयोदशे ॥ १० ॥

तपस्वी, यज्ञशील और सम्पूर्ण धर्मोंमें भ्रष्ट होनेपरभी ब्राह्मण शूद्रके त्रयोदशवाह भाद्रकर  
जेते निष्कर्मही शूद्रकी समान होजाता है ॥ १० ॥

नीयते तु सर्पिण्डत्व येषां शूद्र\* कुलोद्भव ॥ सर्वे शूद्रत्वमायाति यदि स्वर्गजि

तस्य ते ॥ ११ ॥ सर्पिण्डीकरण कार्य कुलजस्य तथा धुषम् ॥ भाद्रद्वादशर्क

कृत्वा भादे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १२ ॥ सर्पिण्डीकरण चाहेन च शूद्र\* कर्मचन ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो शूद्र कुलमें उत्पन्न होकर भ्रमकी सर्पिणी करता है वह यदि स्वर्गके जीतनेवालेभी  
क्यों नहीं परन्तु सब शूद्र होजाता है ॥ ११ ॥ इसकारण कुलमें उत्पन्नहुओंका द्वादशवाहका  
भाद्र करके त्रयोदशवाह भाद्रके दिन व्यवस्था सर्पिण्डन करे ॥ १२ ॥ शूद्र कभीभी सर्पिणी  
करनेके योग्य नहीं है इसकारण यत्नपूर्वक द्वादशकीका जाग करे ॥ १३ ॥

पाणिप्रांश्वन्सवर्णांस्तु गृहीत्याक्षत्रिया शरम् ॥

वैश्या प्रतोदमादद्यादेवेन त्वप्रजग्मन\* ॥ १४ ॥

१ पर कही २ चारोंपक्षोंकी कन्या देनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको दे जेते शरस्त्रधारीको चारोंपक्षकी  
कन्यामें संतान-

“ब्राह्मण्यममवदत्तमिहिरौ स्तोत्रिर्ब्रह्मण्यी राजा मर्तृहरिश्च विक्रमन्वपः श्यामन्वपाम्भूर ।

नेपासां हरिश्चरैद्यतिभ्यो जातस्य संकुः इती ब्राह्मण्यममदः पदेव शरस्त्रधारीद्विषत्स्यमया ॥”

रेते क्लिंते पतीते पाद्व्यातीरे फल्ल वर -

“तेजोवतां न बोध्य वद्रे\* तनजुषी यथा”

इसीके अनुमोदक वाक्य है, शरस्त्रधारी शरसंभारता रामवेदको मर्षितः फल्लव्य\* धनतेजे और  
जेशोका दो कहनाही क्या है । “तद्व्यस्यता मर्षितो वेद शरः” ये भाष्यकारका वचन है ।

ब्राह्मणके विवाहकरनेमें ब्राह्मणी हाथको ग्रहण करै, क्षत्रियाशरको, वैश्या प्रतोद ( चा-  
बुक ) को ग्रहण करै ॥ १४ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥ सा भार्या या पतिप्राणा सा  
भार्या या प्रजावती ॥ १५ ॥ लालनीया सदा भार्या ताडनीया तयैव च ॥  
ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जो स्त्री घरमें चतुर हो, जो पतिव्रता हो, वा जिसके प्राण पतिमें बसतेहों, और जिसके  
संतान हो वही भार्या है ॥ १५ ॥ भार्याका सर्वदा लालन करता रहै और ताडनाभी करै  
कारणकि लालना और ताडना करनेसेही वह स्त्री लक्ष्मीकी समान होजाती है इसमें  
अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

पंचसूना गृहस्थस्य जुह्वी पेष्ण्युपस्कगः ॥ कंडनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य  
शांतये ॥ १ ॥ पंचयज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् ॥ पंचयज्ञविधानेन  
तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥

गृहस्थीमें सर्वदा पाच हत्या होवी हैं- चूल्हा, चक्को, बुहारी, ओखली, और जलका घडां,  
इन हत्याओंके पापकी शातिके निमित्त ॥ १ ॥ गृहस्थी किसीदिनभी पंचयज्ञकर्मका त्याग न  
करै, कारण कि पांचयज्ञके करनेसे उन हत्याओंका पाप नष्टहोजाता है ॥ २ ॥

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ॥ ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंचयज्ञाः प्रकीर्तिताः  
॥ ३ ॥ होमो देवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिडक्रिया स्मृतः ॥ स्वाध्यायो ब्रह्मय-  
ज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ यह पांचप्रकारके यज्ञ कहेहैं ॥ ३ ॥  
हवनको देवयज्ञ, बलिबैश्वदेवको भूतयज्ञ, पिंडदानको पितृयज्ञ, वेदपाठको ब्रह्मयज्ञ, और  
अतिथिके पूजनको मनुष्ययज्ञ कहा है ॥ ४ ॥

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ॥ गृहस्थस्य प्रसादेन जीवंत्येते  
यथाविधि ॥ ५ ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः ॥ ददाति च गृह-  
स्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती यह तीनों द्विजाति गृहस्थीके प्रसादसे यथाविधि ( यथार्थसे )  
जीवन निर्वाह करते हैं ॥ ५ ॥ गृहस्थीही यज्ञ करता है, गृहस्थीही तपस्या करताहै, गृहस्थीही  
दानदेता है, इसकारण गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥

अतिथिस्तद्देवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥

तिन्नस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥ एकैव भार्या वैश्यस्य  
तथा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्या प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥  
क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥ वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा  
शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥

ब्राह्मणके तीन ( ब्राह्मणी, क्षत्रिया वैश्या ) स्त्री, और क्षत्रियके दो ( क्षत्रिया, वैश्या )  
स्त्री होती हैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्रके एक २ ही स्त्री होती हैं, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, और वैश्या  
यही तीन ब्राह्मणकी भार्या कही हैं ॥ ७ ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या यह दो भार्या हैं,  
और वैश्यकी वैश्या और शूद्रकी शूद्राही भार्या होती हैं ॥ ८ ॥

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजमना ॥

तस्या तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥

विपत्तिकाल होनेपरभी द्विजाति शूद्रकी कन्याके साथ विवाह न करे करण कि शूद्र  
कन्यासे उत्पन्न हुई सन्तानका कोई भी प्राबंधित्त नहीं है, क्योंकि वह पवित्र होजाता है ॥ ९ ॥

तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्षधर्मनृतां वर ॥

ध्रुव शूद्रत्वमायाति शूद्रभास्त्रे त्रयोदशे ॥ १० ॥

तपस्वी, यज्ञशील और सम्पूर्ण धर्मोंमें ब्रह्म होनेपरभी ब्राह्मण शूद्रके त्रयोदशह मासकर  
नेसे निश्चयही शूद्रकी समान होजाता है ॥ १० ॥

नीयते तु सर्षिष्ठत्व येषां शूद्र कुलोद्भव ॥ सर्वे शूद्रत्वमायाति यदि स्वर्गजि

तश्च ते ॥ ११ ॥ सर्षिठीकरण कार्य कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥ भाद्रद्वादशक

कृत्वा भाद्रे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १२ ॥ सर्षिठीकरण चाहेत च शूद्र कर्षेयन ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो शूद्र कुलमें उत्पन्न होकर मिनकी सर्षिठी करता है वह यदि स्वर्गके जीवनेवालेकी  
क्यों नहीं परन्तु सब शूद्र होजाता है ॥ ११ ॥ इसकारण कुलमें उत्पन्नशूद्रोंका द्वादशहका  
भाद्र करके त्रयोदशह मासके दिन अक्षय सपिठन करे ॥ १२ ॥ शूद्र कभीभी सर्षिठी  
करनेके योग्य नहीं है, इसकारण पलपूर्वक शूद्रास्त्रीका त्याग करदे ॥ १३ ॥

पाणिप्राङ्गस्तवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥

वैश्या प्रतोदमादद्यादेवेन स्वप्रजन्मन ॥ १४ ॥

१ पर कही २ चारोंबनोंकी कन्या स्नेही भागा ब्राह्मणोंको है जैसे एकरत्नामीकीको चारोंबनोंकी  
कन्यामें संतान-

“ब्राह्मण्यममपरुषमिदितो क्वातिर्निदानमग्री राजा मनुहरिश्च विक्रमद्वयः कथरत्नामामभूत् ।

वैश्यानां हरिश्चंद्रनेचतिष्ठको अक्षय हीकु कृती शूद्रानाममः पदेन एकरत्नामीदिकरत्नामजाः ॥”

येते किये वर्णसे पादवातीदि परत बर -

“क्षेत्रीवर्णा म दोषाव श्ये” सर्षुको पया

रभीके अनुमोदक कस्य दे, एकरत्नामी एकरत्नामाम लामवेदको “अर्षत- पाठक” कानवेदे और  
बनोंका तो कहनाही पया दे । “एकरत्नामाम अपलो वेद एकरः” से माप्यकारण बचन है ।

वृतं तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव च ॥ कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यया च  
वृणीत तम् ॥ १८ ॥ एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्माजितधनं तथा ॥ याजयीत सदा  
विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विद्वान् मनुष्य उस ऋत्विजका त्याग न करै जिसको कि बरा हो परन्तु जन्म और कर्ममें  
शुद्ध उसी ऋत्विजका वरण करै ॥ १८ ॥ उक्तगुणोंसे युक्त जिसने न्यायसे धनका संचय  
कियाहो उस मनुष्यको ब्राह्मण सर्वदा यज्ञ करावै, और उसीसे प्रतिग्रह ले ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

गृहस्था मनुष्य जिससमय देखै कि शरीरका मास सूखगया है अर्थात् बुढापा आगया है,  
और, पौत्रको देखले तब वानप्रस्थआश्रमको ग्रहण करनेके निमित्त वनको चलाजाय ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तथा वानुगतो वनम् ॥ अग्नीतुपचरोन्नित्यं वन्यमाहारमा-  
हरेत् ॥ २ ॥ यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ तेनैव पूजयेन्नित्यम-  
तिथि समुपागतम् ॥ ३ ॥ ग्रामादाहत्य वाश्रीपादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥  
स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च विभृयात्तथा ॥ ४ ॥ तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं  
चैव कलेवरम् ॥

स्त्री [ यदि वनको जानेके लिये सम्मत न हो ] तौ उसे पुत्रोंको सोंपकर वनको चला-  
जाय ( और जो वनजानेके लिये सम्मत हो तौ ) उसको अपनेसाथ लेजाकर अग्निकी सेवा  
करै, और वनमें उत्पन्नहुए फद मूल फलादिकाही भोजन करै ॥ २ ॥ वनवासके समय जो  
अन्न आप भोजन करै उससेही पितर और देवता तथा अतिथिका पूजन करै ॥ ३ ॥ साव-  
धानचित्त होकर ग्रामसे आठ ग्रास लाकर भोजन करै और वेदको पढै तथा जटाओंकोभी  
धारण करै ॥ ४ ॥ प्रतिदिन तपस्याद्वारा अपनी देहको सुखावै,

आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥ प्रावृष्याकाशशायी च

नक्ताशी च सदा भवेत् ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्पष्ठकालिक एव वा ॥ ६ ॥

वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥ एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्मा-  
श्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शीतकालमें गीले वस्त्रोंको पहरे, और ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निको तपै ॥ ५ ॥ वर्षाकालमें  
भेदानमें शयन करै और सर्वदा नक्तमेंही भोजन करै, अथवा चौथे कालमें वा छठे कालमें  
भोजन करै ॥ ६ ॥ अथवा वृक्षों के तलेमेंही अपने समयको व्यतीत करै और ब्रह्मचर्यका  
पालनकर ब्राह्मण अपने समयको व्यतीतकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ ७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

असप्रकार स्वामीकी कियोका रक्षक है, और जिसमाति चारों वर्षोंका रक्षक प्राण्य है  
इसीप्रकार गृहस्थीका स्वामी अविधि कहै ॥ ७ ॥

न व्रतैर्नोपघासैश्च घर्मेण विधिधेन च ॥ नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपू-  
जनात् ॥ ८ ॥ न व्रतैर्नोपघासैश्च न च यज्ञीं पूयग्विधै ॥ राजा स्वर्गमवा-  
प्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥ न खानेन न मीनेन नैषामिपरिचर्यया ॥  
ब्रह्मचारी दिवं याति सयाति गुरुपूजनात् ॥ १० ॥ नामिशुभ्रभूषया हात्प्या  
खानेन विधिधेन च ॥ वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥ ११ ॥  
न दंडैर्न च मीनेन गुन्यागाराभयेण च ॥ यति सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नो-  
त्यनुत्तमम् ॥ १२ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्विर्वह्निशुभ्रभूषया तथा ॥ गृही स्वर्गमवा-  
प्नोति यया स्वातिपिपूजनात् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमा-  
गतम् ॥ आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥ १४ ॥

प्रथ, उपवास, और अनेकमाति के धर्मकरमेसे श्रीको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होवी, परन्तु  
केवल एकमात्र पतिके पूजन से स्वर्गको जाती है ॥ ८ ॥ प्रथ, उपवास और अनेकप्रकारके  
पत्रोंको करके राजाको स्वर्ग प्राप्त नहींहोता परन्तु एक प्रजाकी रक्षा करनेसेही स्वर्गकी प्राप्ति  
होवी है ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारी स्नान, मौन और गित्य अग्निकी सेवा करनेसेही स्वर्गको नहीं जाता  
परन्तु एकमात्र गुरुकी सेवा करनेसेही स्वर्गको जाताहै ॥ १० ॥ वानप्रस्थ अग्निकी सेवास  
या समास तथा अनेकप्रकारके स्नानकरनेसे स्वर्गको नहीं जाता, केवल एक भोजनके त्याग-  
करनेसेही स्वर्गको जाता है ॥ ११ ॥ सन्यासी ब्रह्म, मौन, और शून्य स्नानमें रहकरही सिद्धि  
को प्राप्त नहीं होवा परन्तु योगसेही सर्वोत्तम गतिका प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ गृहस्थी दक्षिणा  
वाली पत्रोंकी और अग्निकी सेवा करनेसे स्वर्गको नहींजाता केवल एक अतिथिके पूजनसेही  
स्वर्ग प्राप्त होवाहै ॥ १३ ॥ इसप्रकार गृहस्थीको यत्नपूर्वक अतिथिको भोजन और शयना  
आदिसे पूजाकरनी उचित है ॥ १४ ॥

सायमातश्च जुहुयादग्निहोत्र यथाविधि ॥ दर्श च पीणमास च जुहुयाद्विधि  
यत्तया ॥ १५ ॥ यजेत पशुर्षधेश्च चातुमास्यस्तथैव च ॥ प्रियर्षिकाधिका  
स्तु पिपेत्सोममतद्रित ॥ १६ ॥ इष्टिं वैशानरीं कुर्यात्तथा चारुपधनो  
दिज ॥ न भिक्षेत धन गृदासर्ष दद्याच्च भिक्षितम् ॥ १७ ॥

विधिपूर्वक सायंछात्र और प्रातःछात्र में अग्निहोत्र करे और दर्श ( अमावस ) तथा पूष-  
माधीकामी इवन करे ॥ १५ ॥ अश्वमेधादि यज्ञ और चातुमास्य यज्ञोंसे इश्वरका पूजन  
करे और पीणमर्षसे अग्निके अन्नदाता पुत्र्य आलम्बकदिता होकर सोम ( अश्वनामकी एक  
सत्ता ) का पान करे ॥ १६ ॥ भोटे धनशाला प्राण्य वैशानरी यज्ञ करे, और चारुये पनके  
करावि म माँगी और मिथाके सम्पूज यज्ञका दान करे ॥ १७ ॥

वृत्तं तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव च ॥ कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यया च  
वृणीत तम् ॥ १८ ॥ एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्माजितधनं तथा ॥ याजयीत सदा  
विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विद्वान् मनुष्य उस ऋत्विजका त्याग न करै जिसको कि वरा हो परन्तु जन्म और कर्ममें  
शुद्ध उसी ऋत्विजका वरण करै ॥ १८ ॥ उक्तगुणोंसे युक्त जिसने न्यायसे धनका संचय  
कियाहो उस मनुष्यको ब्राह्मण सर्वदा यज्ञ करावै, और उसीसे प्रतिग्रह ले ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

गृहस्था मनुष्य जिससमय देखै कि शरीरका मास सूखगया है अर्थात् बुढापा आगया है,  
और, पौत्रको देखले तब वानप्रस्थआश्रमको ग्रहण करनेके निमित्त वनको चलाजाय ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तथा वानुगतो वनम् ॥ अमीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमा-  
हरेत् ॥ २ ॥ यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ तेनैव पूजयेन्नित्यम-  
तिथि समुपागतम् ॥ ३ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्रीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥  
स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च विभृयात्तथा ॥ ४ ॥ तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं  
चैव कलेवरम् ॥

स्त्री [ यदि वनको जानेके लिये सम्मत न हो ] तौ उसे पुत्रोंको सोपकर वनको चला-  
जाय ( और जो वनजानेके लिये सम्मत हो तौ ) उसको अपनेसाथ लेजाकर अग्निकी सेवा  
करै; और वनमें उत्पन्नहुए कंद मूल फलादिकाही भोजन करै ॥ २ ॥ वनवासके समय जो  
अन्न आप भोजन करै उससेही पितर और देवता तथा अतिथिका पूजन करै ॥ ३ ॥ साव-  
धानचित्त होकर ग्रामसे आठ ग्रास लाकर भोजन करै और वेदको पढै तथा जटाओंकोभी  
धारण करै ॥ ४ ॥ प्रतिदिन तपस्याद्वारा अपनी देहको सुखावै,

आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥ प्रावृष्याकाशशायी च  
नक्ताशी च सदा भवेत् ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्षष्ठकालिक एव वा ॥ ६ ॥  
वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥ एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्मा-  
श्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शीतकालमें गीले वस्त्रोंको पहरे, और ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निको तपै ॥ ५ ॥ वर्षाकालमें  
भेदानमें शयन करै और सर्वदा नक्तमेंही भोजन करै, अथवा चौथे कालमें वा छठे कालमें  
भोजन करै ॥ ६ ॥ अथवा वृक्षों के तलेमेंही अपने समयकी व्यतीत करै और ब्रह्मचर्यका  
पालनकर ब्राह्मण अपने समयको व्यतीतकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ ७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्याय ७

कृत्वेषि विविषत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥

आत्मन्यमीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माभमी भवेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सर्ववेदसदक्षिणानामक इष्टि करके अपनी वेद तथा अपनी आत्मामेंही अभिषेको मानकर ब्राह्मण संन्यासभावमको ग्रहण करे ॥ १ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे मुक्तवचने ॥ अतीते पात्रसपाते नित्य मिहा  
यतिश्चरेत् ॥ सप्तागारांश्चरेद्दृश्यं भिक्षित नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥ न व्ययेच्च  
तयाश्लाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥ न स्वादयेत्तथैवात्र नाशनीयात्कस्यवि  
दग्ने ॥ ३ ॥

जिस समय प्रामवासी मनुष्य भोजन करचुके हों, पुत्रां न उठेगाहो, मूखमी पावक निकालकर यथास्थानपर रक्तविधे हों और रसोई वा लकड़े पात्रोंका इधर उधर छेनाभी बंद होगयाहो उससमय संन्यासी भिक्षाके लिये जाय, सात घरोंसे भिक्षा मांगे, एकदिन जिन घरोंमेंसे भिक्षा मांगीहा फिर बसरे दिन उनसे भिक्षा न मांगे ॥ २ ॥ वही भिक्षाके न मिलनेसे दुःखी न हो जो कुछ भिक्षाय उसछेही जीविष्य मिवाह करे, कलके स्वादिष्ट न करे और न किसीके घरमें मोहन करे ॥ ३ ॥

मृन्मयालावुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥

तेषां संमार्जनाच्छुद्धेरद्विधैव प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

वठिकेलिये मिट्टी और तौबके पात्र कहे गयेह, यह अच्छे मार्जनेसेही शुद्ध होगावेहें ॥४॥

कौपीनाच्छादन वासो विभृयादव्ययस्वरन् ॥

शून्यागारनिकेत स्याद्यत्र सायगृहो मुनिः ॥ ५ ॥

और दुःखसे रहित संन्यासी वनमें निवास करताहुआ कौपीन और गुदडीकेही बरतोंको पहरे, शून्यत्वानमें निवास करे, वहां संन्या होजाय वही घर मानकर मोन हो निवास करे ॥५॥

उष्टिपूतं न्यसेत्पाद वस्त्रपूत जलं पिबेत् ॥

सत्यपूतां षडेदाच मनपूत समाचरेत् ॥ ६ ॥

भस्मीमांति चारों ओरको देकर पैर रक्तै, और वस्त्रसे छानकर जल पिबे, सत्यवचन बोले और मनस पवित्र आचरण करे ॥ ६ ॥

सर्वभूतसमो भेद्यः समलोष्टाश्मकाचनः ॥ ध्यानयोगरतां भिक्षं प्राप्नोति  
परमां गतिम् ॥ ७ ॥ जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥ आभिमि-  
र्ष्याभिमिष्यैव तं दवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥ अगुचिष्व शरीरस्य मिनामिय  
धिपर्यया ॥ गर्भवासे च वसते तस्मान्मुष्येत नान्यथा ॥ ९ ॥

१ वहां छेनाभी अथ होतछतारे कि जित बरसे एक संन्यासी भिक्षा लेगयाहो देना निर्दिष्ट हीनेर उठी घरमें बूतपभी भिक्षा मांगनेको न जाय ।

सम्पूर्ण प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखे, सबका भिन्न बनारहै, और सुवर्ण, पत्थर, ढेला इनकोभी एकसाही समझै ध्यान और योगमें रत रहै, ऐसे आचरण करनेवाला भिक्षुक, परम-गतिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जो शरीर जन्ममरण वा मनकी पीडा और देहके रोगसे छूटजाय देवता उसीको ब्राह्मण शरीर कहतेहैं ॥ ८ ॥ शरीरकी अशुद्धतासे प्रियके स्थानपर अप्रिय और अप्रियके स्थानपर प्रिय होजाताहै, और गर्भमें निवास होताहै, इन सब क्लेशोंसे ब्राह्मण जन्मके बिना नहीं छूटता ॥ ९ ॥

**जगदेतन्निराक्रंदं निःसारकमनर्यकम् ॥**

**भोक्तव्यमिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥**

यह संसार बड़ा भयंकर है साररहित और अनर्थरूप है, इसमें जो आयेंहैं तौ इसको अवश्यही भोगना पड़ेगा; जो अपनी बुद्धिसे इसको भोगताहै उसकी युक्ति होजातीहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥

**प्राणायामैर्देहदोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥**

**प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥**

प्राणायामसे दोषोंको और धारणाओंसे सम्पूर्ण पापोंको भस्मकरदे, प्रत्याहारसे संगोंको और ध्यानसे अज्ञानआदि गुणोंको दग्ध करदे ॥ ११ ॥

**सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥ त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ १२ ॥ मनसः संयमस्तज्जैर्धारणेति निगद्यते ॥ संहारश्चेन्द्रियाणां च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥ हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥ ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥ १४ ॥**

सात व्याहृति और अकार शिरोमंत्रसहित गायत्रीके प्राणोंको रोककर तीनवार पढनेको प्राणायाम कहाहै ॥ १२ ॥ धारणाके जाननेवाले मनके रोकनेको धारणा कहतेहैं, इन्द्रियोंके विषयोंसे हटानेको प्रत्याहार कहतेहैं ॥ १३ ॥ और योगाभ्याससे हृदयमें स्थित देवदेव परमात्माका जो दर्शन है, इसको ध्यान कहतेहैं, इसके उपरान्त ध्यानयोगको कहताहूं ॥ १४ ॥

**हृदिस्था देवतास्सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ हृदि ज्योतीषि सूर्यश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ स्वदेहमरणे कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ध्याननिर्मथनाभ्यासादिष्णुं पश्येद्धृदि स्थितम् ॥ १६ ॥ हृद्यर्कश्चंद्रमाः सूर्यः सोममध्ये हुताशनः ॥ तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥ १७ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तेजोमयं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १८ ॥ वासुदेवस्तमोऽधानां पर्णैरपि पिधीयते ॥ अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेच्छुभिः ॥ १९ ॥ एष वै पुरुषो विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ एष धाता विधाता च पुराणो निष्कलः शिवः ॥ २० ॥ वेदाहमेतं पुरुषं भ्रंशं तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ यं वै विदित्वा न विभेति मृत्योर्नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ २१ ॥**



हृदयमें सम्पूर्ण देवता और प्राण स्थित हैं, हृदयमेंही सम्पूर्ण तारागण और सूर्य निवास करते हैं ॥ १५ ॥ मपने देहको नीचेकी बरणी और ऊपरको ऊपरकी बरणी करके ध्यानके उपरान्त अम्बास्वरूप मन्मते हृदयमें विराजमान विष्णुका दर्शन होता है ॥ १६ ॥ हृदयमें सूप और चन्द्रमा हैं सूर्यचन्द्रके मध्यमें अग्नि है इस अग्निमें सत्त्वपदार्थ स्थित है और सत्त्व पदार्थमें भगवान् अच्युत निवास करते हैं ॥ १७ ॥ अणुसेभी अणु और महाम्सेभी महान् आत्मा इस प्राणीके हृदयरूपी गुहामें स्थित है परमात्माकी कृपासे इस तेजोमय आत्माकी महिमाको कोई वेदान्तविचारसे शोकरहित रूप पुरुषही देखसके हैं ॥ १८ ॥ अज्ञानसे अंधे पुरुषोंको यह सबमें निवास करनेवाले भगवान् पक्षोंसे आच्छादित हैं अर्थात् पक्षे ढाकी जड़ चेतन सबमें व्याप्त हैं तथापि अज्ञानी धनको ऐसे नहीं देखसके जैसे मेंहदीमें अन्धी दिखाई नहीं पड़ती नहीं वो एक पक्षमेंही प्रसङ्ग प्रकाश दीखता है और उभ विषयकी इच्छाबाओंकी इन्द्रिय अज्ञानरूपी बलोंसे ढकी रहती हैं ॥ १९ ॥ और यह पुरुष ( हृदयमें क्षबन करने-वाला ) विष्णु प्रकट और अप्रकट और नित्य है; और यही वाचा, विषावा, पुण्ड्रक, कण्ठारहित और कस्यापत्वरूप हैं ॥ २० ॥ इनको मैं ब्रह्म पुरुष और सूर्यकी समान तेजस्वी समोगुणसे परे जानता हूँ, इनको ज्ञानकर पुरुष सत्यसेभी नहीं डरता और इसके अतिरिक्त मोक्षके छिमे बृहदा कोई मार्ग नहीं है ॥ २१ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो धापुराकाशमेव च ॥ पंचैतानि विजानीयान्महामृतानि  
पंडितः ॥ २२ ॥ चक्षुः श्रोत्र स्पर्शन च रसन घ्राणमेव च ॥ बुद्धिद्विपात्रि  
जानीयात्त्वैमानि शरीरके ॥ २३ ॥ रूपं शब्दस्तथा स्पर्शो रसो गन्धस्तथैव  
च ॥ इन्द्रियाण्यन्विजानीयात्त्वैव सततं बुधः ॥ २४ ॥ हस्ती पादाबुपस्यं  
च जिह्वा पापुस्तथैव च ॥ कर्मेन्द्रियाणि पंचैव नित्यमस्मिच्छरीरके ॥ २५ ॥  
मनी बुद्धिस्तथैवात्मा अन्वयकं च तथैव च ॥ इन्द्रियेभ्यः पराणीह अत्वारि कथि-  
तानि च ॥ २६ ॥ अद्विष्यैतानि तत्त्वानि कथितानि च ॥ तथात्मानं  
तद्व्यतीतं पुरुषं पंचविंशकम् ॥ २७ ॥ य एव ज्ञात्वा विमुच्यति ये जनाः साधु  
वृत्तयः ॥ तदिदं परमं गुणमेतदक्षरमुत्तमम् ॥ २८ ॥ अक्षरं परमस्पर्श  
मरूपं गन्धवर्जितम् ॥ निर्दुःखमसुखं शुद्धं तदिच्छोः परमं पदम् ॥ २९ ॥  
अजं निरंजनं शांतमप्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ॥ अनादिनिधनं ब्रह्म तदिच्छोः  
परमं पदम् ॥ ३० ॥

और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अकाश पंडित ज्ञान इन पांचोंको महामृत जानै ॥ २२ ॥  
१ चेद्र, २ कान ३ त्वचा ४ रसता ( जिह्वाके अग्रभागमें रहती है ) और ५ घ्राण यह पांच  
ज्ञानेन्द्रिय शरीरमें रहती हैं ॥ २३ ॥ रूप, शब्द, स्पर्श, रस गन्ध, इन पांचों इन्द्रियोंके  
अर्थ पंडितज्ञानोंको अत्रय ज्ञानना कथित है ॥ २४ ॥ हाथ पाँच, जिह्वा, गुहा यह  
पाँच कर्मेन्द्रिय शरीरमें हैं ॥ २५ ॥ मन बुद्धि, आत्मा, अन्वयक यह चार तत्त्व  
इन्द्रियोंसे परे हैं ॥ २६ ॥ यह जोबोध तत्त्व है और आत्मा जो पुरुष ( ईश्वर )  
है वह पचीसवा है ॥ २७ ॥ जिसको ज्ञानकर साधुत्वभाव अनुप्य मुक्त होजाते हैं

सो यह परम गुप्त अविनाशी और सर्वोत्तम है ॥ २८ ॥ उस आत्मामें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह कुछ नहीं है, और दुःख सुख यहभी उसमें कुछ नहीं है वह विष्णुका परमपद है ॥ २९ ॥ जो जन्म और कर्मोंकी वासनासे रहित है और जो शांत, अप्रत्यक्ष, नित्य, अविनाशी और जो आदि और अंतसेभी रहित है और जो ब्रह्मरूप है वही विष्णुका परम पद है ॥ ३० ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबंधनः ॥

सोध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यका विज्ञानही सारथी है, और मैनही प्रग्रह ( रस्सी ) अर्थात् इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी लगाम है वही संसाररूपसार्गसे परे उस विष्णुके परम पदको प्राप्तहोता है ॥ ३१ ॥

वालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥

तस्यापि शतमाद्भागजीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥ ३२ ॥

वाल ( केश ) के अग्रभागके सहस्रटुकडे कियेजायें उनमेंसे एक टुकडेका जो सौभाग्य भाग है उससेभी जीव सूक्ष्म है ॥ ३२ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा  
तथा परः ॥ ३३ ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ पुरुषात् परं किं-  
चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ३४ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविकलः  
सदा ॥ दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंसे परे अर्थ ( विषय ) हैं और अर्थसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धि से परे आत्मा महत्तत्त्व है ॥ ३३ ॥ महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त प्रधान है अव्यक्तसे परे पुरुष है और पुरुष ( ब्रह्म ) से परे कुछ नहीं है, किन्तु वही उत्तम काष्ठा और गति है ॥ ३४ ॥ इन सम्पूर्ण प्राणियोंमें वह सर्वदा अविकल एकसा स्थित रहता है, और सूक्ष्म बुद्धिवाले मनुष्य उत्तम और सूक्ष्म बुद्धिसे उस ब्रह्मका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अष्टमोऽध्यायः ८.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगं मलकर्षणम् ॥

क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मलकर्षण, क्रियास्नान, यह छैः प्रकारका स्नान कहा है ॥ १ ॥

अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु ॥ प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं  
प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ चंडालशवभूषाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ॥ स्नानानर्ह-  
स्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥ ३ ॥ पुण्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञ-  
विधिचोदितम् ॥ तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ जमु-

कामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितॄन् ॥ स्नान समाचरेद्यस्तु क्रियांगं तत्र  
कीर्तितम् ॥ ९ ॥ मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यगपूर्वकम् ॥ मलापकर्षणार्थाय  
प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥

स्नानके विनाकिमे मनुष्य जप, जमिहोत्रभादिके करनेका अधिकारी नहीं होता, इसका  
रण प्रायःकाठका स्नान नित्यस्नान कहा है ॥ ९ ॥ चांडाउ, सब, पूव, राम, और खलका  
की इनके स्पर्श करनेके उपराय्य जो स्नान कियाजाता है उस स्नानको भैमिष्ठिक कहा है  
॥ ९ ॥ पुष्पनसुत्रभादि समयमें जो ज्योतिषशास्त्रमें कहाहुमा स्नान है उस स्नानको काम्य  
कहा है, और निष्काम मनुष्य उस स्नानको न करे ॥ ४ ॥ पवित्रमंत्रोंके अपनेके निमित्त या  
जो देवताओंकी पूजाके निमित्त स्नान कियाजाता है उस स्नानको क्रियांग कहा है ॥ ९ ॥ जो  
स्नान मैलको दूरकरनेके निमित्त उषट्नाभादि छ्याकर कियाजाता है उस स्नानको मलक-  
र्षण कहा है, कारण कि उस स्नान करनेमें मनुष्यकी प्रवृत्ति मैल दूरकरनेके लिये है  
अन्यथा नहीं ॥ ६ ॥

सरित्सु देवस्नातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ क्रियाख्यानं समुद्दिष्टं खानं तत्र  
महाक्रिया ॥ ७ ॥ तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिसोदितम् ॥ नित्यं भैमि  
ष्ठिकं वैव क्रियांगं मलकपर्षणम् ॥ ८ ॥

नदी देवताओंके छोड़ेहुए कुड, तीर्थ, छोटी २ गली, इनमें जो स्नान कियाजाता है उसे  
क्रियास्नान कहा है, कारण कि इनमें स्नानकरना उत्तम कर्म है ॥ ७ ॥ और पूर्वोक्त नदी  
आधिकमें ही काम्य स्नान मञ्जीमांसिसे करना योग्य है और नित्य, भैमिष्ठिक, क्रियांग और  
मलकपर्षण यह चारप्रकारके स्नान हैं ॥ ८ ॥

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥ खानं तु वह्नितप्तेन तथैव परषा  
रिणा ॥ ९ ॥ शरीरशुद्धिविज्ञाता न तु स्नानफलं लभेत् ॥ अग्निगात्राणि  
मुद्घति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥

तीर्थक अभावमें गरमजलसे और पूर्वोक्त नदीमांसिसेमी भिन्न २ जलसे स्नानकरना  
कहा है और अग्निसे तपाये घया अस्य मनुष्यके निकालेहुए जलसे जो स्नान है ॥ ९ ॥ यह  
शरीरकी शुद्धिके निमित्त है, उस स्नानका फल नहीं मिलता कारण कि तीर्थस्नानसे फलभी  
प्राप्ति होती है और जलोंस गात्रकी शुद्धि होती है ॥ १० ॥

सरसु देवस्नातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ खानमेष क्रिया तस्माखानात्पुण्य  
फलं स्मृतम् ॥ ११ ॥ तीर्थं प्राप्यानुपंगेयं खानं तीर्थं समाचरेत् ॥ खानज  
फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलेन तु ॥ १२ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि  
सदा नृणाम् ॥ परास्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥ १३ ॥ सद्यः प्रद्य  
यणा पुण्या सरसि च शिलोद्यया ॥ नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जादयी तु  
विशेषतः ॥ १४ ॥

देवताओके खोदे तालाव, तीर्थ, और नदी इनमे स्नान<sup>१</sup>करनाही कर्म है, इसकारण स्नानकरनेसे पुण्यफल मिलताहै ॥११॥ जो अकस्मात् तीर्थमें जाकर स्नान कियाजाता है वह स्नान फलका देनेवाला होगा, तीर्थयात्राका फल नहीं होगा ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंने सम्पूर्ण तीर्थोंको मनुष्योंके पापोंका नाशकरनेवाला और परस्परमें अनपेक्ष कहा है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण शरने, तालाव, पर्वत, नदी यह सभी पवित्र हैं और विशेषकर श्रीगंगाजी पवित्र हैं ॥ १४ ॥

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥ विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ-  
फलमश्नुते ॥ १५ ॥ नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ॥ यथोक्त-  
फलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति यह अपने वशमे हैं वही तीर्थोंके फलको भोगताहै ॥ १५ ॥ जो मनुष्य पापी हैं उनके पापोंका नाश होजाताहै शुद्ध मनवाले मनुष्योंको तीर्थमे जानेसे इच्छानुसार फल मिलताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्यायः ९.

क्रियाम्नां तु वक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥

मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥ १ ॥

इसके उपरान्त क्रियाम्नांकी विधिको कहताहूं, प्रथम मिट्टी और जलसे विधिपूर्वक शौचकरै ॥ १ ॥

जले निमग्न उन्मज्ज्य उपस्पृश्य यथाविधि ॥ जलस्यावाहनं कुर्यात्प्रवक्ष्या-  
म्यतः परम् ॥ २ ॥ प्रपद्ये वरुणं देवमंभसां पत्निमूर्जितम् ॥ याचितं देहि मे  
तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ ३ ॥ तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाघविनिषूदनम् ॥  
सान्निध्यमस्मिन्सत्तोये भज त्वं मदनुग्रहात् ॥ ४ ॥ रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वा-  
नप्सुसदस्तथा ॥ सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्ये प्रणतः स्थितः ॥ ५ ॥ देवमप्सुसदं  
वह्निं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ॥ अपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥ ६ ॥  
रुद्रश्चाग्निश्च सर्पाश्च वरुणश्चाप एव च ॥ शमयंत्वाशु मे पापं यां रक्षंतु च  
सर्वशः ॥ ७ ॥ इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं जले ॥ आपोहिष्टेति  
तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ८ ॥ हिरण्यवर्णेति वदेदग्निश्च तिसृभिस्तथा ॥  
शन्नोदेवीति च तथा शन्न आपस्तथैव च ॥ ९ ॥ इदमापः प्रवहत तथा मंत्र-  
मुदीरयेत् ॥ एवं मंत्रान्समुच्चार्य छंदांसि ऋषिदेवताः ॥ १० ॥ अघमर्षणसू-  
क्तस्य संस्मरन्प्रयतः सदा ॥ छंद आनुष्टुभं तस्य ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ ११ ॥  
देवता भाववृत्तन्तु पापघ्नस्य प्रकीर्तितः ॥ ततोऽभासि निमग्नस्तु त्रिः पठेदघम-  
र्षणम् ॥ १२ ॥

फिर जलमें गोवा लगाकर बाहर निकल बिधिसहित आचमनकरके यथाविधि जलका आवाहन करै, इसके आगे जलका आवाहन कह्वाहुं कि ॥ २ ॥ "जलके पति बरुणदेव श्रीकी मैं स्मरण हुं हे वरुण ! जिस वीरकी मैं अमिताया करुं सम्पूर्ण पापोंके बुरकरनेके तिमिच तुम मुझे उसीको दो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण पापोंके बुरकरनेवाले वीरका मैं आवाहन करवाहुं, हे वीर्य ! इस उत्तम जलसे मेरे ऊपर कृपाकर मुझे संनिधिकरो ॥ ४ ॥ जलमें स्थित वनोंको और अन्य जलके निवासियोंको अनुकृतामवाह्य मैं नमस्कारकरके वनकी शरण हू ॥ ५ ॥ जलके निवासी और सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले अग्निदेवताकी भी मैं स्मरण हू ॥ ६ ॥ वज्र अग्नि, सूर्य, बरुण, और जल यह क्षीरघ्नी मेरे पापोंका नाशकरें और मेरी चारों ओरसे रक्षाकरें ॥ ७ ॥ इस भांति कहकर फिर जलमें "आपो हि ज्ञा०" इत्यादि तीनश्लोकोंके क्रमसे मन्त्रीमांति मन्त्रनकरै ॥ ८ ॥ "हिरण्यवर्णा० अग्निश्च ज्ञानो देवी०" और "क्षम आप०" इन मन्त्रोंको पढ़ै ॥ ९ ॥ और "इत्मापः०" इस मन्त्रको पढ़ै इसप्रकार मन्त्रोंका उच्चारण कर छन्द ऋषि और जो देवता अपमर्षणसूक्तके हैं वनज्य साव वानीसे सर्वथा स्मरण करै, अपमर्षणसूक्तका छन्द अनुष्टुप् है और ऋषि अपमर्षण है ॥ १ ॥ ॥ ११ ॥ पापके नाशकरनेवाले अपमर्षणका भावकृत देवता कहाइै फिर जलमें गोवा लगाकर वीनवार अपमर्षण मन्त्रको पढ़ै ॥ १२ ॥

यथाश्वमेधं क्रतुराद् सर्वपापप्रणाशनं ॥

तथाधमर्षणं सुक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥

जिस भांति यज्ञोंका राजा अश्वमेध सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाह्य है वही भांति अपमर्षणसूक्तभी सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ १३ ॥

अनेन ज्ञात्वा अम्मग्ये ज्ञातवान्यौतषाससा ॥ परिवर्तितषासास्तु तीर्थतीरं  
सुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥ उदकस्याप्रदानाच्च ध्यानशार्दी न पीडयेत् ॥ अनेन वि  
धिना ज्ञातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥ १५ ॥

इति श्रीशिवस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस विधिके अनुसार जलमें स्नान करके गीलेबलको निकालकर दूसरे बलको पहले इसके पीछे किनारेपर ध्यकर आचमन करै ॥ १४ ॥ और बिना तर्पणधिके घोंचीको न पीये, इस विधिके अनुसार स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त होताइै ॥ १५ ॥

इति श्रीशिवस्मृतौ माण्डवीकानां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### दशमोऽध्याय १०

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ॥

इसके उपरान्त तुम आचमनकी क्रियाको कह्वाहुं

कार्यं फनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥ अंगुष्ठमूले च तथा प्राजा  
पत्यं विचक्षणैः ॥ अंगुष्ठपत्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्य तर्भमिसूक्तम् ॥ २ ॥ प्राजा-  
पत्येन तीर्थेन त्रिः माभीपाल्लं दिजः ॥ दिः प्रमृज्य मुखं पश्चात्त्रान्यद्विः

समुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥ हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥ तालुगा-  
भिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ४ ॥

( दहिने ) हाथकी कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें बुद्धिमानोंने काय ( ब्राह्म ) तीर्थ कहाहै ॥ १ ॥ अंगूठेकी जडमें प्राजापत्य तीर्थहै, और अंगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ और तर्जनीकी जडमें पितृतीर्थ पंडितोंने कहाहै ॥ २ ॥ ब्राह्मण प्राजापत्य तीर्थसे तीनवार जलपिये, फिर दोवार मुखको पोंछे, और पीछे कानआदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श मलीभातिसे करै ॥ ३ ॥ ब्राह्मण हृदयतक आचमनके जलको पहुंचनेसे शुद्ध होतेहैं, क्षत्रिय कंठतक आचमनके जलके जानेसे शुद्ध होतेहैं, वैश्य तलुवेतक आचमनके जल जानेसे शुद्ध होतेहैं, और शूद्रकी शुद्धि मुखपर जलके स्पर्श करनेसेही होजातीहै ॥ ४ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ॥ उदङ्मुखो वा प्रयतो दिश-  
श्चानवलोकयन् ॥ ५ ॥ अद्भिः समुद्धताभिस्तु हीनाभिः फेनबुदबुदैः ॥ वह्निना  
चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥

पूर्व या उत्तरकी ओरको मुखकर मनुष्य सावधान होकर घुटनोंके भीतर हाथकर दिशा-  
ओंको न देखै ॥ ५ ॥ और कुएसे निकाले तथा झाग और बुल्वुलेरहित जलसे आचमन  
करै वह आचमनका जल गरम और खारीभी न हो ॥ ६ ॥

तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥ अंगुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः  
॥ ७ ॥ अंगुष्ठानामिकायोगेन श्रवणौ समुपस्पृशेत् ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशे-  
त्स्कंधद्वयं ततः ॥ ८ ॥ सर्वांसामेव योगेन नाभि च हृदयं तथा ॥ संस्पृशेच्च  
तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥ ९ ॥

अगूठा और तर्जनी इन दोनोंसे नासिकाके दोनों छिद्रोंका स्पर्श करै, बीचकी अंगुली और  
अगूठेसे दोनों नेत्रोंको लुये ॥ ७ ॥ अंगूठा और अनामिका इन दोनोंसे कानोंका स्पर्श करै  
कनिष्ठा और अंगूठेके योगसे दोनों कंधोंका स्पर्श करै ॥ ८ ॥ फिर पांचो अंगुलियोंके योगसे,  
नाभि, हृदय, और मस्तक इनका स्पर्शकरै; यह आचमनकी विधि कहीहै ॥ ९ ॥

त्रिः प्राश्नीयाद्यदंभस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवंती-  
त्यनुशुश्रुम् ॥ १० ॥ गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥ नासत्यदस्रौ  
प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥ ११ ॥ स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ ॥  
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ ॥ १२ ॥ स्कंधयोः स्पर्शनादस्य प्रीयं-  
ते सर्वदेवताः ॥ मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥

आचमनके समय जो तीनवार जलपान कियाजाताहै उससे ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र इत्यादि  
देवता प्रसन्न होतेहैं, यह हमने सुनाहै ॥ १० ॥ मुखमार्जन करनेसे गंगा और यमुना यह  
दोनों प्रसन्न होतीहैं, दोनों नासिकाके पुट स्पर्श करनेसे दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होवें  
॥ ११ ॥ दोनों नेत्रोंके स्पर्श करनेसे चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होतेहैं, और दोनों कानोंके  
स्पर्श करनेसे वायु और आग्नि प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ दोनों कंधोंके स्पर्श करनेसे सम्पूर्ण  
देवता प्रसन्न होतेहैं, :

विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिक्षो दिज' ॥ अप्रक्षालितपादस्तु आचातोऽप्यशुचिर्मवेत् ॥ १४ ॥ बहिजानुरुपस्युदय एकदस्तापितैर्जले' ॥ सोपानत्कस्तथा तिष्ठन्निव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

यज्ञोपवीतक विना पहले विना चोटीमें ग्रंथ लगावे और विना पैर धोये मनुष्य आचमन करनेपर भी अशुद्ध रहता है ॥ १४ ॥ दोबो घुटनोंसे हाथ बाहर रखकर हाथमें छियेहुए अङ्गसे जूवा पहरेहुए बजाहोकर जो आचमन करता है वह अशुद्ध रहता है ॥ १५ ॥

आचम्य च पुरा प्रोक्त तीर्थसमार्जनं नु यत् ॥ उपस्युक्षेत्तत पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मत' ॥ १६ ॥ अतश्चरति भूतेषु गुहायां विन्धतोमुख ॥ त्वं यज्ञस्त्व वपद्कार आपोज्योती रसोऽभृतम् ॥ १७ ॥

आचमनके पीछे तीर्थका मार्जन करे फिर धर्मपूर्वक इस मंत्रसे आचमन करे ॥ १६ ॥ हेअक्ष ! सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें ज्ञापक ब्रह्म, वपद्कार, ज्योति, रस अमृत आदिरूपसे तुम विचरतेहो ॥ १७ ॥

१ आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ॥ उडुत्पजातवेदसमिति मंत्रेण निःक्षिपत् ॥ १८ ॥ एष एव विधि' प्रोक्त' संध्यायाश्च द्विजातिषु ॥

फिर आचमन करनेके उपरान्त सूर्यके सम्मुखको मुखकर "उडुत्पजातवेदस०" इस मंत्रसे अङ्गकी अंडुक्ति दे ॥ १८ ॥ यही नियम द्विजातियोंकी दोनो समयकी संध्याओंमें कहा है, पूर्वा संध्या जपस्तिष्ठेदासीन' पश्चिमां तथा ॥ १९ ॥ ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं घाय शक्तित' ॥ ऋषयो दीर्घसप्यत्वादीर्घमायुरवामुषु' ॥ २० ॥

प्रातःकाळकी संध्यामें खडा होकर जपकरे, और सायंकालकी संध्यामें बैठकर जपकरे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त पवित्र मंत्रोंका अपनी शक्तिके अनुसार जपकरे, चाहे दीर्घ संध्याकी उपासना करतेये इसी कारणसे इनकी आयु दीर्घ होतीभी ॥ २० ॥

सर्वेषु पवित्राणि वक्ष्याम्यहमत' परम् ॥

येषां जपेद्य होमिश्च पूर्यते मानवा' सदा ॥ २१ ॥

इति श्रीसंखस्मृतौ वक्ष्यमोऽध्याय' ॥ १० ॥

इसके आगे वेदके जो पवित्र मंत्र हैं उन सबका वर्णन करता है इन सब मंत्रोंके जप और इनसे मनुष्य सर्वादा पवित्र होतेहैं ॥ २१ ॥

इति श्रीसंखस्मृतौ मायादीकानां वक्ष्यमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### एकादशोऽध्याय ११

अथमर्पणं देयवृत्तं शुद्धवत्यश्च तासमा' ॥ कूप्याड्य पापमाम्यश्च साविभ्यश्च तथैव च ॥ १ ॥ अभीष्टद्रुपदा शिव स्तोमानि प्याहृतीस्तथा ॥ भारुडानि च सामानि गायत्री श्रीशंन' तथा ॥ २ ॥ पुठपट्टं च भार्यं च तथा सोमप्रता नि च ॥ अर्द्धिर्गं घाहृत्पर्यं च यावत्सूक्तममृत तथा ॥ ३ ॥ शतरुद्रियमयवशिर

त्रिसुपर्ण महाव्रतम् ॥ गोसूक्तमश्वसूक्तं च इंद्रसूक्तं च सायनी ॥ ४ ॥  
 त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वामदेवव्रतं च ॥ एतानि गीतानि पुनन्ति  
 जंतूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥ ५ ॥

इति श्रीशखस्मृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अघमर्षणसूक्त, वैवृत्तसूक्त, शुद्धवतीऋचा, कृष्णांडीऋचा, पवमानसूक्त और गायत्री ॥ १ ॥  
 अभीष्ट हुपदा, स्तोम, व्याहृती, भारुडसामवेद गायत्री और उशानामंत्र ॥ २ ॥ पुरुषवृत्त, भाप,  
 सोमव्रत, जलके मन्त्र, बृहस्पतिके मंत्र, वाक्सूक्त, अमृत, ॥ ३ ॥ अतरुद्री, अथर्वशिखर, त्रिसुपर्ण,  
 महाव्रत, गोसूक्त, अश्वसूक्त, दोनों सामवेद ॥ ४ ॥ तीनों आज्यदोह, रथंतर, अग्निव्रत,  
 वामदेवव्रत, यह अघमर्षण आदि गानकरनेसे जीवोको पवित्र करतेहैं, और इच्छानुसार इनका  
 जपकरनेसे मनुष्य उसी जातिमें प्रसिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

इति शखस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि एभ्यस्सावित्री विशिष्यते ॥ नास्त्यघमर्षणात्पर-  
 मंतर्जलेन सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥ कुशशय्यामासीनः  
 कुशोत्तरीयो वा कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामुपा-  
 दाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीव-  
 कानामन्यतमानादाय मालां कुर्यात् ॥ कुशग्रंथि कृत्वा वामहस्तोपायनैर्वा  
 गणयेत् आदौ देवतामार्षं छंदः स्मरेत् ततः सप्रणवसव्याहृतिकामादावन्ते च  
 शिरसा गायत्रीमावर्तयेत् ॥ अथास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री  
 छंदः ॐकारप्रणवाद्याः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः  
 ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति  
 शिरः ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥

वेदमें यह सब मन्त्र पवित्र कहेहैं, इन सम्पूर्ण मन्त्रोंमें गायत्री प्रधान है अघमर्षण  
 मन्त्रसे श्रेष्ठ जलके भीतरे जपोंमें दूसरा मन्त्र नहींहै, और गायत्रीके समान दूसरा जप  
 नहींहै, व्याहृतियोंके समान होम नहींहै, कुशासनपर बैठकर वा ओढकर कुशाकी पवित्रियोंको  
 धारणकर पूर्वको वा सूर्यके सन्मुख जपकी मालाको ले देवताका ध्यान करताहुआ  
 मनुष्य जपकरै, सुवर्ण, मणि, मोती, स्फटिक, कमलगट्टे, बहडेके फल इनमेंसे कि-  
 सियोंकी जपके लिये माला बनावै, और कुशाकी गाठोंसे या बायें हाथकी अंगुलियोंसे  
 गिनतीकरै, फिर प्रथम मन्त्रके देवता ऋषि छन्द इनका स्मरण करै, और फिर आदि और  
 अन्तमें शिरमंत्रसहित गायत्रीका जपकरै, और गायत्रीका देवता सूर्य, ऋषि विश्वा-  
 मित्र और गायत्रीही छन्द है, और ॐकारका प्रणव और ॐ भूः ॐभुवः ॐस्वः ॐ  
 महः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं यह सात व्याहृति, “ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः  
 स्वरोम्” इस मन्त्रको शिर कहतेहैं, और यही मन्त्रोंमेंभी कहाहै,



सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

ये जपन्ति सदा तेषां न भयविद्यते क्वचित् ॥ १ ॥

ओ मनुष्य सबदा व्याहृति, प्रणव, शिर इनके साथ गायत्रीका जप, करताह वह कभी भय नहीं पावा ॥ १ ॥

शतजप्ता तु सा देवी दिनपापमप्याशिनी ॥ सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः  
समुद्धरेत् ॥ २ ॥ दशसाहस्रजप्ता तु सर्वकर्मपनाशिनी ॥ सुवर्णस्तेयक  
द्विभो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ सुरापथ विशुद्धयेत लक्षजप्यात्र सशय ॥ ३ ॥

सौवार गायत्रीका जपकरनेसे दिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं और हजारवार गाय-  
त्रीका जपकरनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ १ ॥ ओ दशहजारवार गायत्रीका जपकर  
ताहै उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं, सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण, ब्रह्महत्याकरनेवाला,  
गुरुकी श्रम्यार गमनकरनेवाला, मदिरा पीनेवाला यह सब एकछात्र गायत्रीके जपकरनेसे  
मिस्तन्वेह गुरु होजातेहैं ॥ ३ ॥

प्राणायामत्रय कृत्वा ज्ञानकाले समाहितः ॥

अहोरात्रकृतात्प्राणसत्सणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥

ओ मनुष्य ज्ञानके समय सावधान होकर तीन प्राणायाम करताहै वह दिनमें किन्हेदुर  
पापोंसे बचीसमय छूटजाताहै ॥ ४ ॥

सव्याहृतिकां सप्रणवां प्राणायामास्तु योऽहं ॥

अपि श्रुत्वाहन मासात्पुनस्त्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥

व्याहृति और अहोरात्रसहित सोऽहं प्राणायाम प्रतिदिन करनेसे एक महीनेमें मनुष्य गर्भ-  
हत्याके पापसेभी मुक्त होजाताहै ॥ ५ ॥

इत्वा देवी विश्लेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥ सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्स  
ला ॥ ६ ॥ स्मृतिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमसतैः शुचिः ॥ इंतुकामोऽपमृत्युं च  
घृतेन जुहुयात्तया ॥ ७ ॥ भीकामस्तु तथा पशैर्विल्वैः कांचनकामुकः ॥ ब्रह्म-  
वर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तया ॥ ८ ॥ घृतप्लूतिस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमा-  
हितः ॥ गायत्र्यस्युतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ पापात्मा लक्ष  
होमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ अभीष्टं लोकप्राप्नोति प्राणुयात्काममीप्सि-  
तम् ॥ १० ॥

और ओ इतन गायत्रीसे किजाताहै वह सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्णकरनेवाला है; भक्ति-  
प्रिय और बरकी बेमेवाली गायत्री सम्पूर्ण पापोंको नाशकरतीहै ॥ ६ ॥ ओ मनुष्य शरीरकी  
कमिछापाकरै वह पवित्र होकर गायत्रीका इतन पाबळोंसे करै, और ओ भक्तास्युत्सुके  
बचनेकी इच्छाकरै वह पीसे इतन करै ॥ ७ ॥ और लक्ष्मीकी इच्छाकरनेवाले कमळोंसे  
इतनकरै और सुवर्णकी इच्छाकरनेवाला बेळोंसे गायत्रीका इतनकरै, ब्रह्मदेवकी इच्छा  
करनेवाला रूपसे इतन करै ॥ ८ ॥ और महीमेंसे सावधानीसे पी मिहेदुर तिसीश्राव

दशहजार गायत्रीके हवन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥ और पापात्मा-  
मनुष्य लाख गायत्रीके हवनकरनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै तथा मनवांछितलोकमें जन्मलेकर  
अभिलषित फलको पाताहै ॥ १० ॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥ गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह  
च पावनम् ॥ ११ ॥ हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥ तस्मात्तामभ्य-  
सेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२ ॥

वेदोंकी माता गायत्री है, और पापोंकी नाशकरनेवाली है, इस लोक और स्वर्गमें गाय-  
त्रीसे परे पवित्रकरनेवाला दूसरा नहींहै ॥ ११ ॥ जो मनुष्य नरकरूपी समुद्रमें पड़ेहै-  
उनका हाथ पकडकर रक्षाकरनेवाली गायत्रीही है, इसकारण नियमपूर्वक शुद्धतासे ब्राह्मण  
नित्य गायत्रीका अभ्यासकरै ॥ १२ ॥

गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥ तस्मिन्न तिष्ठते पापमण्डिरिव  
पुष्करे ॥ १३ ॥ जप्येनैव तु संसिद्धयेद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ कुर्यादन्यत्र  
वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥

गायत्रीमें तत्पर ब्राह्मणको हव्य और कव्यसे जिमावै, कारण कि उस ब्राह्मणमें पाप  
इस भांति नहीं टिकते कि जैसे कमलके पत्तेके ऊपर जलकी बूंद नहीं ठहरती ॥ १३ ॥  
ब्राह्मण गायत्रीके जपकरनेसेही सिद्ध होजाताहै, इसमें कुछ संदेह नहीं, वह ब्राह्मण चाहै अन्य  
कर्म करै वा न करै परन्तु तौ भी उसको मैत्र कहतेहैं ॥ १४ ॥

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५ ॥

उपांशु जप सौगुना फलका देनेवाला है, और मानसजप हजारगुणा फल देताहै, विशेष-  
करके गायत्रीका जप ऊँचे स्वरसे बुद्धिमान् मनुष्य न करै, और जप भी ऊँचे स्वरसे  
न करै ॥ १५ ॥

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥ गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं  
च विंदति ॥ १६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ॥ गायत्री तु  
जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य गायत्रीके जपमें तत्पर है वह स्वर्गको प्राप्तहोता है, और गायत्रीके जपकरनेसे  
मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ इसकारण सम्पूर्ण यत्नके साथ स्नान करनेके पीछे पवित्र  
चित्त होकर मनको रोक सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाली गायत्री का जप करै ॥ १७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥ अथ  
तर्पणविधिः ॥ ॐ भगवंतं शेषं तर्पयामि । कालाम्निरुदं तु ततो रुक्मभौमं

तथैष च ॥ श्वेतमौमं ततः प्रोक्तं पातालानां च सप्तमम् ॥ १ ॥ जम्बूद्वीप ततः  
 प्रोक्तं शाकद्वीप ततः परम् ॥ गोमेदपुष्करे तद्वृक्षाकार्य च ततः परम् ॥ २ ॥  
 शार्धरं ततः स्वधामानं ततः हिरण्यरोमाणं ततः कल्पस्यापिनो लोकास्तप  
 येत् ॥ लवणोदं ततः दक्षिमण्डोदं ततः सुरोदं ततः पृथोदं ततः क्षीरोदं ततः  
 इक्षुदं ततः स्वाहृदं ततः इति सप्तसमुद्रकम् प्रत्युचं पुरुषसूक्तेनोदकांजलीन्  
 दद्यात् पुण्याणि च तथा भक्त्या ॥ अथ कृतापसम्भ्यो दक्षिणामुखोऽन्तर्जालुं  
 पित्र्येण पितॄणां यथाभास्त्वं प्रकाममुद्रकं दद्यात् ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजसेनी  
 दुषरेण स्रङ्गपात्रेणान्यपात्रेण षोडशं पितृतीर्थं स्पृशन्दिद्यात् ॥ पित्रि पितामहाय  
 प्रपितामहाय मात्रे मातामहाय प्रमातामहाय मात्रे मातामही प्रमातामही  
 सप्तमान्युरुषान् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात् पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा  
 गुरूणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥ मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संवधिवापवानां  
 कुर्यात् ॥ तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ भवति चात्र श्लोकाः

स्नानकरमेके उपरान्त गायत्रीको जपकर पूरकी ओरको मुखकरके देवतीर्थसे देवताओंका  
 जलसे तर्पणकरै, अब तर्पणकी विधि करतैहै ॥ १ ॥ मगवाम् क्षेत्रको एतकरताहू फिर काळ नाभि  
 रुद्र रुक्म, मौम, श्वेतमौम, और सारो पाठाळ क्रमानुसार इनको एतकरै ॥ १ ॥ इसके  
 पीछे जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, गोमेद, पुष्कर और शाकद्वीप इनको एतकरै ॥ २ ॥ फिर  
 शार्धर, स्वधामा, हिरण्यरोमा, कल्पवृक्ष स्थित रहनेवाळे छोके इनको एतकरै; फिर लवणोद,  
 दक्षिमण्डोद, सुरोद, पृथोद, क्षीरोद, इक्षुद, स्वाहृद इन साठ समुद्रोंको एतकरै; फिर पुरुषसूक्त  
 को पढ़कर परमेश्वरको जलकी अंजुली दे, फिर भक्तिस्थित पुण्य, मित्रवनकर अपसम्भ्य हा  
 दक्षिणको मुखकिये पुत्रोंके भीतर हाथकर पितृतीर्थसे अष्टोके अनुष्ठार यथेच्छ जल पितरों  
 को दे, सोनेके पात्र वा चाँदी, गूजर वा गँडे बरबरा किसी अन्यके पात्रसे पितृतीर्थका  
 स्नानकर जलसे पिता, पितामह, प्रपितामह, माता मातामह, प्रमातामह, माता, मातामही,  
 प्रमातामही साठ पुरुष पिताके पक्षमें बिनका नाम जानें पितृपक्षोंका तर्पण करै फिर गुरु  
 और मातृपक्षोंका तर्पणकरै, फिर सम्बन्धी वांषकोंका तर्पणकरै; और इसीभाँति तर्पणकरने-  
 के विषयमें श्लोकमी हैं ॥

विना सौवर्णसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च ॥ विना दर्भेभ्य मंत्रैश्च पितॄणां नोपति  
 ष्यते ॥ १ ॥ सौवर्णरजताभ्यां च स्रङ्गेनीदुषरेण च ॥ दक्षमक्षयतां याति  
 पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ २ ॥ हेप्ता तु सह यद्वत् क्षीरेण मधुना सह ॥  
 तदप्यक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ ३ ॥

चाँदी, सोना, ताँबा, तिल, कुशा और मंत्र इनके बिना दियागुजा जल पितरोंको नहीं  
 पहुँचताहै ॥ १ ॥ सुवर्ण, चाँदी, गँडा गूजर इनके पात्रोंसे जो मनुष्य पितरोंको जल देता है  
 वही दक्षय पक्ष मिळताहै ॥ २ ॥ सुवर्ण रूप, सहय इन सबको मिलाकर जो तिलजल  
 पितरोंको दिया जाताहै, वह भी दक्षय होताहै ॥ ३ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाव-  
हन् ॥ ४ ॥ स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितॄणां तु तिलांभसा ॥ पितृयज्ञमवाप्नोति  
प्रीणाति च पितॄंस्तथा ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अन्न इत्यादि द्रव्य, जल वा दूध, मूल फल इनसे पितरोंको प्रतिदिन प्रसन्न रक्खे ॥ ४ ॥  
जो मनुष्य स्नानकरनेके उपरान्त तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करताहै, वह पितृयज्ञके  
फलको पाताहै, और उसके पितर भी वृद्ध होतेहैं ॥ ५ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकाया त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥

पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य देवकार्यके विषयमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करै, पितृकार्य उपस्थित होने-  
पर गुप्तरीतिसे परीक्षाकरै ॥ १ ॥

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ॥ ऊनांगा अतिरिक्तांगा ब्राह्मणाः  
पंक्तिदूषकाः ॥ २ ॥ गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ॥ गुरूणां त्या-  
गिनश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३ ॥ अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविव-  
र्जिताः ॥ शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण निपिद्ध कर्मको करताहै, अथवा कठोरचित्त है, वा जिसकी देहका अंग न्यून  
और अधिक है, वह पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गुरुके प्रतिकूल आचरण कर-  
ताहै, और जो वेदको उखाडताहै, अर्थात् वेदोक्त कर्मको नहीं जानता, और जिसने गुरु-  
ओंका त्यागकराहै वहभी पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ ३ ॥ जो अनध्यायके दिन पढताहै  
जो शौच आचारसे हीन है, और जो शूद्रके अन्नसे पुष्ट होताहै, वहभी पंक्तिको दूषितकर-  
नेवाला है ॥ ४ ॥

षडंगवित्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः ॥ त्रिणाचिकेतः पंचामिर्ब्राह्मणः  
पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥ ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ॥ ब्रह्मदेयापतिर्यश्च  
ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ॥  
अथर्वागिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥ नित्यं योगरतो विद्वान्सम-  
लोष्टाश्मकांचनः ॥ ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण वेदके छैहों अंगोंको जानताहो, और जो त्रिसुपर्णको जानताहो, जिसने बहु-  
तसी ऋचा पढीहों, वा सामवेदको गाताहो, जिसने त्रिणाचिकेत पढाहो, जो पंचाम्रिको  
तापताहो वह ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ५ ॥ जिसकी सन्तान वेदके अनुसारहो  
जो वेदोक्तका दाता हो, और जिसका आगेका समयभी वेदके अनुसार हो वह ब्राह्मणभी  
पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ६ ॥ जो ऋग्वेद और सामवेदके पारको जानताहो, और

दिसमे अर्घ्य आगिरसवेवका माग पढछिपाहो वह ब्राह्मणभी पंक्तिओ छुट्ट करेबाक्य है ॥ ७ ॥ जो निश्च भोगमार्गमें छपर है, जो शानी है, जो बेडे फयर और सुबणको समाप्त देखवाहै, सो ध्यानशील है, और जो पंडित है वह ब्राह्मणभी पंक्तिका पवित्रकरने वासा है ॥ ८ ॥

द्री दैवे प्रादुस्सुखौ श्रीश्च पिच्ये षोदद्दुस्सुखास्तथा ॥ भोजयेद्विधिधान्विप्रानेकै  
कमुभयत्र वा ॥ ९ ॥ भोजयेदयवाऽप्येकं ब्राह्मण पक्तिपावनम् ॥

देवकर्ममें पूर्वामिगुल वो ब्राह्मणोंको और पितृकर्ममें उत्तरामिगुल तीन भबवा एलेक या दोनो बगद एक २ ब्राह्मणकोही भोजन करावै ॥ ९ ॥ या पंक्तिके पवित्र करेबाके एकही ब्राह्मणको सिमावै,

दैवे कृत्वा तु निषेध पश्चाद्भौ तु तस्मिन्नेष ॥ १० ॥ उच्छिष्टसन्निधौ कार्यं वि  
दनिर्षपणं ध्रुवैः ॥ अभावे च तथा कार्यमप्रिकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥

और देवकर्ममें नैषेध बनाकर अग्निमें हवनकरै ॥ १ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उच्छिष्टके निच्छट्टही पिंडदान करै और किसीकारणसे जो पिंडवानका अभाव हो तौ विधिसहित अग्नि होत्र करै ॥ ११ ॥

भाद्र कृत्वा प्रयत्नेन स्वराक्रोधविषर्जित ॥ उच्छमन्नं दिनातिम्यं भक्षया वि-  
निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पठित ॥ भोजयेद्वि-  
धिधान्विप्रान्नाथमात्म्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥ यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा  
भोज्यमेव वा ॥ अनिवेद्यं न भोक्तव्यं पिंडमूले कदाचन ॥ १४ ॥

यत्नसहित भाद्र करके शीघ्रतापूर्वक ओपसे रहित मनुष्य उच्छ भक्ष ब्राह्मणोंको अज्ञासे हाम करै ॥ १२ ॥ फल मूल तथा त्रयबाओंका आसन इनपर न बैठाकर अर्घ्योत्तु मुद्र ऊन आदिके आसन पर बैठाकर रोष, माहमसे उज्ज्वल विभिन्न ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १३ ॥ अपने घरमें जो कुछ भक्ष्य वा भोज्य वस्तु बनाई हो उसको पिंडोंके पास बिना दिधे कभी भोजन न करै ॥ १४ ॥

उत्तमगधान्यगंधानि चैत्यवृक्षमघानि च ॥ पुष्पाणि धर्मनीयानि रक्तवर्णानि यानि  
च ॥ १५ ॥ तोमोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥ कर्णासृग्ं प्रदातव्यं  
कार्पासमयवा नवम् ॥ १६ ॥ वशां विधर्तयेत्प्राज्ञो यघनाहतवस्त्रजा ॥ पृतेन  
दीपो दातव्यस्तिष्ठतींठेन वा पुनः ॥ १७ ॥ धूपार्पं गुग्गुलु दद्याद्भूतयुक्तं  
मधूत्कटम् ॥ यदनं च तथा दद्यात्पिष्टा च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥

अपिठ सुगंधिबाडे वा गण्डीन और छाछ राके फुल इनको स्नान दे ॥ १५ ॥ यदि छाछ फुल अन्नमें उत्तम धूपहों तौ दाग करै, ऊनका सूत वा कपासका सूत दे ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य मये वस्त्रकी बर्ती बनावै, और फिर पी वा दिठोंका वेड दीपकमें छाडे ॥ १७ ॥ धूपके मिमिच घृत और मीठा मिश्राहुमा गुग्गुल दे, और पीसकर पद्मन और चुपुम दे ॥ १८ ॥

भूतुणं सुरसं शिशुं पालकं सिंधुकं तथा ॥ कूष्मांडालाबुवार्ताककोविदारंश्च  
वर्जयेत् ॥ १९ ॥ पिप्पलीमिरचं चैव तथा वै पिडमूलकम् ॥ कृतं च लवणं  
सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥ राजमापान्मसूरांश्च चणकान्कोरदूषकान् ॥  
लोहितान्बृक्षनिर्यासाञ्छ्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥

भूतुण, सुरसों, सौंजना, पालक, सिंधुक, पेठा, तुम्बी, वैंगन, कचनार, श्राद्धमें इनका  
निषेध है ॥ १९ ॥ पीपल, मिरच, सलगम, वनाया लवण, वांशका अग्रभाग इनको भी  
त्याग दे ॥ २० ॥ खांस, मसूर, कोदों और कोरदूषक, वृक्षके लाल गोदको भी श्राद्धकर्म  
में त्याग दे ॥ २१ ॥

आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्धीकादधिदाडिमान् ॥ विदारीश्चैव रंभाद्या दद्याच्छ्राद्धे  
प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ धानालाजान्मधुयुतान्सकूञ्चर्करया तथा ॥ दद्याच्छ्राद्धे  
प्रयत्नेन शृंगाटकविसेतकान् ॥ २३ ॥

आम, आवला, गन्ना, दाख, दही, अनार, विदारीकंद, केला इनको श्राद्धमें यत्नसहित  
दे ॥ २२ ॥ सहतमें भिलेहुए धान, खीलें; खाड भिले सत्तू, शृंगाटक, विसेतक इनको भी  
श्राद्धमें विशेष करके दे ॥ २३ ॥

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वान्तान्दत्तदक्षिणान् ॥

अभिवाद्य पुनर्विप्राननुब्रज्य विसर्जयेत् ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर उनके आचमन करनेके उपरान्त उनको दक्षिणा दे  
ब्राह्मणोंको नमस्कारकर उनके पीछे २ जाकर पहुंचा आवै ॥ २४ ॥

निमंत्रितस्तु यः श्राद्धं मैथुनं सेवेते द्विजः ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥

जो ब्राह्मण निमंत्रित होकर स्त्रीसंसर्ग करताहै उसको श्राद्धमें जिमानेवाला और वह  
जीमनेवाला दोनोंही बड़े पापके भागी होते हैं ॥ २५ ॥

कालशाकं सशल्कं च मांसं वार्ध्राणसस्य च ॥

खड्गमांसं तथानंतं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥ २६ ॥

कालशाक, शल्क, वार्ध्राणस ( मृग ) का मांस यमराजने इनको अनन्त फलका  
देनेवाला कहा है ॥ २६ ॥

यद्दाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा ॥ प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानंत्यम-  
श्नुते ॥ २७ ॥ गंगायमुनयोऽतीरे अयोध्यामरकंटके ॥ नर्मदायां गयातीर्थे  
सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २८ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ॥ सप्तवे-  
ण्यृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य इनमें जो जाकर पितरोंको देताहै, वह अक्षय  
फलको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ गंगा और यमुनाके किनारे, अयोध्या, अमरकंटक, नर्मदा,  
गयातीर्थ इनमें देनेसे अनन्त फल प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुंग, महालय,  
ऋषिकूप, इनमें दानकरनेसे अनन्त फल मिलताहै ॥ २९ ॥

पक्षिने अर्चनं सांगिरसवेदका भाग पढछियाहो वह ब्राह्मणभी पंक्तिको मुद्र करनेवाला है ॥ ७ ॥ जो निरुध योगमार्गमें उत्तर है, जो ज्ञानी है, जो डेढे पत्वर और सुवर्षको समान देखताहै, जो ध्यानशील है, और जो पंडित है वह ब्राह्मणभी पंक्तिका पवित्रकरने-वाला है ॥ ८ ॥

दी दैवे प्राङ्मुखी श्रींश्च पित्र्ये षोडशमुखास्तथा ॥ भोजयेद्विषयान्विप्रानेकै  
कमुमयत्र वा ॥ ९ ॥ भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पक्तिपावनम् ॥

देवकर्ममें पूर्वाभिमुख हो ब्राह्मणोंको और पितृकर्ममें उत्तराभिमुख तीन भयवा अनेक  
पा दोनों अगह एक ९ ब्राह्मणकोही भोजन करावै ॥ ९ ॥ या पच्छिमे पवित्र करनेवाले  
एकही ब्राह्मणको सिमावै,

दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चादक्षी तु तस्मिपेत् ॥ १० ॥ उच्छिष्टसन्निधौ कार्यं पि  
दनिर्वपणं सुधैः ॥ अभावे च तथा कार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥

और दैवकर्ममें नैवेद्य बनाकर अग्निमें इधनकरै ॥ १० ॥ उच्छिष्टान् मनुष्य उच्छिष्टके  
निचटही पिंडवान करै और किसीकारणसे जो पिंडवानका अभाव हो वी विधिसहित अग्नि  
होत्र करै ॥ ११ ॥

भाद्र कृत्वा प्रयत्नेन त्वराङ्गेषविषर्जित ॥ उल्लमस द्विजातिभ्यः श्रद्धया पि  
निवेद्येत् ॥ १२ ॥ अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पंडितः ॥ भोजयेद्वि  
षयान्विप्रान्नाघमान्पसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥ यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्य वा  
भोज्यमेष वा ॥ अनिवेद्यं न भोक्तव्यं पिंडमूले कदाचन ॥ १४ ॥

यत्नसहित भाद्र करके क्षीप्रतापूर्वक ऋषसे रहित मनुष्य बंध अन्न ब्राह्मणोंको अन्नसे  
दान करै ॥ १२ ॥ फल मूळ तथा प्रतवालोंका आसन इनपर न बैठाकर अथात् मुद्र ऊन  
आदिके आसन पर बैठाकर गंध माछसे उज्ज्वल विविध ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १३ ॥  
अपने घरमें जो कुछ भक्ष्य वा भोज्य वस्तु बनाई हो उसको पिंडोंके पास बिना दिये कभी  
भोजन न करै ॥ १४ ॥

उग्रगवान्यगधानि धैत्यपूषमघानि च ॥ पुष्पाणि यर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि  
च ॥ १५ ॥ तोमोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥ ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं  
कार्पासमयथा नवम् ॥ १६ ॥ दशां विषर्तयेत्प्राज्ञो यद्यनाहतधरज्जगाम ॥ धृतेन  
दीपो दातव्यस्तिरज्ज्ज्ज्जेन वा पुनः ॥ १७ ॥ पूषार्थं गुग्गुलुं दद्यात्पूषतपुक्तं  
मपूत्कटम् ॥ चंदनं च तथा दद्यात्पिप्पलां च कुकुमुं शुभम् ॥ १८ ॥

अधिक सुगंधिवाले वा गंधीन और खाऊ रंगके फूल इनको त्याग दे ॥ १५ ॥ यदि  
छाऊ फूल ऊपरमें उरग्न हृष्टों वी दान करै, ऊनका सूत वा कपासका सूत दे ॥ १६ ॥  
पुदिमान् मनुष्य गये वरुकी बर्षा बनावै, और फिर धी वा तिरोंका लेख शीपकर्म करके  
॥ १७ ॥ पूषके निमित्त पूत और मीठा मिठाहृमा गूळ दे, और पीसकर चन्दन और  
कुकुम दे ॥ १८ ॥

कहेहै ॥ ४ ॥ जो बालक मूढनसे प्रथमही मरजाय वह अहोरात्रसे और यज्ञोपवीतसे पहले जो मरजाय उसके बंधु ऋष्यत्र तीन दिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ ५ ॥ जो कन्या बिना विवाह मरजाय उसके यहा तीन दिनमें शुद्धि हातीहै, और शूद्रके मरनेमें भी तीन दिनमें शुद्धि होतीहै,

अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्रत्सरात्परम् ॥ ६ ॥ मृत्युं समधिगच्छेच्चैन्मासात्तस्यापि  
वांधवाः ॥ शुद्धिं समधिगच्छेत्पूर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

यदि बिनाविवाहा शूद्र सोलह वर्षसे पीछे ॥ ६ ॥ मृतक होजाय तौ उसके बंधु वांधव एक महीनेमें शुद्ध होतेहैं इसमें विचार करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचि-  
दपि शाम्यति ॥ ८ ॥ हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ॥ प्रसवे मरणे  
तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥

यदि जिस कन्याका विवाह न हुआहो और वह पिताके घरही रजस्वला होजाय तौ उसके मरनेका अशौच कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ८ ॥ यद्यपि कोई नीच वर्णकी कन्या विवाहसे प्रथम ही सन्तान उत्पन्न करले तौ उसके प्रसव और मरणके दोनों अशौच कभी निवृत्त नहीं होते ॥ ९ ॥

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥

असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥

सजातीय अशौचमें यदि दूसरा सजातीय अशौच होजाय तौ प्रथमके साथही दूसरा भी समाप्त होजाताहै और जो दूसरा सजातीय न हो तौ धर्मराजके वचनके अनुसार दूसरेके सग दोनों अशौच निवृत्त होजातेहैं ॥ १० ॥

देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचि-  
र्भवेत् ॥ ११ ॥ अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ तथा संवत्सरेतीते  
स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

परदेशमें जाकर यदि जातिका मरण या जन्मअशौच हुएके समाचार सुनकर दशदि-  
नके बीचमें जो शेष दिन हैं तबतक अशुद्ध रहताहै ॥ ११ ॥ यदि दशदिनके उपरान्त सुने  
तौ तीन रात्रिमें और एक वर्ष वीतनेपर सुने तौ स्नान करनेसे ही शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥ परपूर्वासु च स्त्रीषु व्यहाच्छद्धिरिहेष्यते  
॥ १३ ॥ मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ॥ गृहे दत्तासु कन्यासु  
मृतासु तु त्र्यहस्तथा ॥ १४ ॥ निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ॥  
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥ मातुले पक्षिणी रात्रिं शिष्य-  
वर्तिग्वान्धवेषु च ॥ सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥

अपने औरससे अतिरिक्त पुत्र व्यभिचारिणी और परपूर्वा स्त्री इनके मरनेमे तीन दिनमें  
शुद्धि होजातीहै ॥ १३ ॥ नाना, आचार्य, विवाही कन्या इनके मरनेमें भी तीन दिनमें



म्लेच्छदेशे तथा रात्री सध्यायां च विशेषतः ॥

न भ्रातृमाचरेत्याशौ म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥ ३० ॥

म्लेच्छोंके देशमें, रात्रिमें विशेषकर सध्याके समयमें बुद्धिमान् मनुष्य भ्रातृ न करे, और म्लेच्छोंके देशमें जाय भी नहीं ॥ ३० ॥

हस्तिच्छापासु यद्वत् यद्वत् राहुदशने ॥

विषुवत्यपने चैव सर्वमानस्यमव्रुते ॥ ३१ ॥

गण्डमया, महज, विषुवत्सम्पन्ति और दोनों अपन इममें दान करमेसे अनन्त फल होता है ॥ ३१ ॥

प्रीष्टपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ॥ प्राप्य भ्रातृ प्रकर्तव्यं मधुना पाय  
सेन घा ॥ ३२ ॥ प्रजां पुष्टिं यज्ञं स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ॥ नृणां भ्रातृ  
सदा प्रीताः प्रयच्छति पितामहा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्सप्तमौ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

यदि किसी कारणसे प्रीष्टपदीप्रयुक्त महात्म्य भ्रातृका यथायोग्य समय स्वकीय होजाय  
तो मघानक्षत्रसे युक्त त्रयोदशीके दिन मधुसे वा खीरसे भ्रातृ करे ॥ ३२ ॥ इससे  
पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंको सर्वदा सम्पान, पुष्टता, धन, स्वर्ग, आरोग्य, धन इन-  
को देतेहैं ॥ ३३ ॥

इति शंखस्मृतौ मघादीक्षायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्याय १५

जनने मरणे चैव सर्पिडानां दिजोत्तमः ॥

अपहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥

जा भ्रातृण्य अप्रिहोत्री और वैशपाठी है वह सर्पिडोंके जन्म मघवा मरणमें तीन दिनमें  
शुद्ध होताहै ॥ १ ॥

सर्पिडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्धपति  
॥ २ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्धपति ॥ मासेन तु तथा शूद्रः  
शुद्धिमाप्नोति नांतरा ॥ ३ ॥

छातवी पीठीमें सर्पिडता निवृत्त होजातीहै और नामधारक भ्रातृण्य एक दिनमें शुद्ध  
होताहै ॥ २ ॥ बाण्ड दिनमें क्षत्रिय, एक पक्षमें वैश्य, और एक महीनेमें शूद्रकी शुद्धि  
होतीहै मघन नहीं होती ॥ ३ ॥

रात्रिमिमांसानुत्पाभिर्गर्भेस्त्रावे विशुद्धपति ॥ अजातवृत्तघाते तु सद्यः शौच  
विधीयते ॥ ४ ॥ अहोरात्राद्यथा शुद्धिघालि स्वकृतशूद्रके ॥ तथैवानुपनीते तु  
अपहाच्छुद्धयति घांघवा ॥ ५ ॥ अनुठानां तु कम्पानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ॥

महीनोंकी समान रात्रियोंमें गर्भके क्षाणमें कितने महीनेका गर्भ हो बचनी ही रात्रियोंमें  
शुद्धि होतीहै और पाण्डक बिना दांत अनेही मरणात् ही बच्चे मरणमें उसी समय शुद्धि

कहीहै ॥ ४ ॥ जो बालक मूडनसे प्रथमही मरजाय वह अहोरात्रसे और यज्ञोपवीतसे पहले जो मरजाय उसके बंधु बांधव तीन दिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ ५ ॥ जो कन्या विना विवाह मरजाय उसके यहा तीन दिनमें शुद्धि होतीहै, और शूद्रके मरनेमे भी तीन दिनमे शुद्धि होतीहै,

अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्रत्सरात्परम् ॥ ६ ॥ मृत्युं समविगच्छेच्चैन्मासात्तस्यापि बांधवाः ॥ शुद्धिं समविगच्छेद्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

यादि विनाविवाहा शूद्र सोलह वर्षसे पीछे ॥ ६ ॥ मृतक होजाय तौ उसके बंधु बांधव एक महीनेमें शुद्ध होतेहैं इसमें विचार करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचि-  
दपि शाम्यति ॥ ८ ॥ हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ॥ प्रसवे मरणे  
तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥

यादि जिस कन्याका विवाह न हुआहो और वह पिताके घरही रजस्वला होजाय तौ उसके मरनेका अशौच कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ८ ॥ यद्यपि कोई नीच वर्णकी कन्या विवाहसे प्रथम ही सन्तान उत्पन्न करले तौ उसके प्रसव और मरणके दोनों अशौच कभी निवृत्त नहीं होते ॥ ९ ॥

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥

असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥

सजातीय अशौचमें यदि दूसरा सजातीय अशौच होजाय तौ प्रथमके साथही दूसरा भी समाप्त होजाताहै और जो दूसरा सजातीय न हो तौ धर्मराजके वचनके अनुसार दूसरेके संग दोनों अशौच निवृत्त होजातेहैं ॥ १० ॥

देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचि-  
र्भवेत् ॥ ११ ॥ अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ तथा संवत्सरेतीते  
ज्ञात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

परदेशमें जाकर यदि जातिका मरण या जन्मअशौच हुएके समाचार सुनकर दशदि-  
नके बीचमें जो शेष दिन हैं तबतक अशुद्ध रहताहै ॥ ११ ॥ यदि दशदिनके उपरान्त सुने  
तौ तीन रात्रिमें और एक वर्ष धीतनेपर सुने तौ स्नान करनेसे ही शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥ परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छद्धिरिहेष्यते  
॥ १३ ॥ मातामहे व्यतीते तु आचार्यं च तथा मृते ॥ गृहे दत्तासु कन्यासु  
मृतासु तु त्र्यहस्तथा ॥ १४ ॥ निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ॥  
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥ मातुले पक्षिणी रात्रिं शिष्य-  
वर्गबांधवेषु च ॥ सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥

अपने औरतसे अतिरिक्त पुत्र व्यभिचारिणी और परपूर्वा स्त्री इनके मरनेमे तीन दिनमें  
शुद्धि होजातीहै ॥ १३ ॥ नाना, आचार्य, विवाही कन्या इनके मरनेमें भी तीन दिनमें

शुद्धि होजातीहै ॥ १४ ॥ वेशक राजाके मरनेमें और अपन घरमें दौहित्रके जन्ममें आचार्यकी स्त्री वा पुत्रोंके मरनेमें एक दिनमें ही शुद्धि होजातीहै ॥ १५ ॥ मामाके मरनेमें दिनरातमें और शिष्य आश्रितक और पांचव इनके मरनेमें एक रातमें, सव ब्रह्मचारी और अनुपान गुरु उपगुरुके मरनेमें एक दिन अशुद्धि रहतीहै ॥ १६ ॥

पकरार्त्रि त्रिरात्र च पद्मरात्र मासमेव च ॥ शूदे सपिंडे षणानामाशीच क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥ त्रिरात्रमय पद्मरात्र पक्ष मास तथैव च ॥ वैश्ये सपिंडे षणानामाशीच क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥ सपिंडे क्षत्रिये शुद्धिः पद्मार्त्रं ब्राह्मणस्य तु ॥ वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥ सपिंडे ब्राह्मणे वर्णां सर्वं पञ्चाविशेषतः ॥ दशरात्रेण शुष्येपुरिष्पाह भगवान्पमः ॥ २० ॥

अपना जो सपिंडी शूद्र होगयाहो उसके मरनेमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह चारों वर्ण क्रमानुसार एक रात, तीन रात, छः रात, और एक महीनेमें शुद्ध होठे हैं ॥ १७ ॥ सपिंडी वैश्यके मरनेमें चारों वर्णोंको तीन रात, छः रात, एक पक्ष और एक महीनेका अक्षौच कहाहै ॥ १८ ॥ और सपिंडी क्षत्रियके मरनेमें ब्राह्मणोंकी छः रातमें और तीन वर्णोंकी चारह दिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥ सपिंडी ब्राह्मणके मरनेमें चारों वर्णोंकी द्वादश रातमें होजाहै, यह मागवाम् बमने कहाहै ॥ २० ॥

भृग्बग्न्यनशनाभोभिर्भृतानामात्मघातिनाम् ॥ पतितानां च नाशीच शस्त्रवि श्लुद्धताश्च ये ॥ २१ ॥ यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ॥ नाशीचभाजः कथिता राजाह्माकारिणश्च ये ॥ २२ ॥

युग, अग्नि, अतस्म, अह, अपने आप सस, अह इनसे मिनकी मुसु हुंरहो वा जो पठित मरेहों उनका अक्षौच नहीं होता ॥ २१ ॥ संन्यासी, मनी, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर, वीक्षित और राजा की आज्ञा माननेवाले, यह अशुद्ध नहीं कहेहैं ॥ २२ ॥

यस्तु भुक्ते पराशीचे वर्णा सोऽप्यक्षचिर्भवेत् ॥ अशीचमुद्धौ शुद्धिश्च तस्या प्युक्ता मनीषिभिः ॥ २३ ॥ पराशीचि नरो भुक्ता कृमियोनी प्रजायते ॥ भुक्तासं क्षियते यस्य तस्य योनी प्रजायते ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी दूसरेके अक्षौचमें खाताहै, वह अशुद्ध होजाताहै, परन्तु जब अक्षौचकी शुद्धि होजातीहै तभी बुद्धिमानोंने ब्रह्मचारीकी भी शुद्धि कहीहै ॥ २३ ॥ जो मनुष्य दूसरेके अक्षौचमें खाताहै उसके कीड़ेकी बोनि मिळतीहै और जिसके अन्नको खाकर मरताहै उसी की जातिमें जन्म लेताहै ॥ २४ ॥

दानं प्रतिग्रहो ह्योमः स्थाप्यायः पितृकर्म च ॥

प्रेतपिंडे क्रियाधर्ममाशीचे विनिवर्तते ॥ २५ ॥

इति श्रीशैलस्वामी पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, हवन, वेदपाठ, पितरोंका कर्म यह सब प्रेतके द्विये पितरोंके कर्मके अति रिक्त अक्षौचमें निवृत्त हाजावेहैं ॥ २५ ॥

इति श्रीशैलस्वामी भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्धयति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा घृिवनैः पूय-  
शोणितैः ॥ १ ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्धयेत् पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ एतैरेव तथा  
स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥ २ ॥ शुद्धयत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलांभसा ॥  
अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥ क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य  
लोहस्य च विनिर्दिशेत् ॥ मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ४ ॥  
अब्जानां चैव भांडानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ शाकवर्जं मूलफलद्विदलानां  
तथैव च ॥ ५ ॥ मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ उष्णांभसा  
तथा शुद्धिं सस्त्रेहानां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण मट्टीके पात्र अशुद्ध होनेपर दुबारा अग्निमें पकानेसे शुद्ध होजाते हैं और मदिरा,  
मूत्र, विष्टा, थूक, राघ, और रुधिर ॥ १ ॥ इन सबका स्पर्श होनेसे मट्टीका पात्र दुबारा  
अग्निमें तपानेसे भी शुद्ध नहीं होता और इन्हींका स्पर्श ताब्रे, सुवर्ण और चाँदीके पात्रमें  
होगयाहो ॥ २ ॥ तौ वह फिर बनानेसे शुद्ध होताहै, और इसके अतिरिक्त अन्य किसी  
प्रकारसे अशुद्ध होजाय तौ केवल उसकी शुद्धि जलसे ही होजातीहै, और ताब्रेकी शीसाकी  
और लाखकी शुद्धि खटाईके जलसे होतीहै ॥ ३ ॥ लोहे और काँसीकी शुद्धि खारी जलसे  
और मोती, मणि, मूगा इनकी शुद्धि घोनेसे ही होजाती है ॥ ४ ॥ जलमें उत्पन्नहुए पदार्थ  
और पत्थरके पात्र तथा शाकको छोडकर मूल फल और वल्कल यह घोनेसे ही शुद्ध  
होजानेहैं ॥ ५ ॥ यज्ञके पात्र यज्ञमें माजनेसे और चिकने गरम जलसे घोनेसे शुद्ध  
होजाते हैं ॥ ६ ॥

शयनासनयानानां सशूर्पशकटस्य च ॥ शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे करकेधनयोस्तथा  
॥ ७ ॥ मार्जनाद्दिग्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तक्षणात् ॥ संमार्जितेन तोयेन  
वाप्तसां शुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥ वहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ॥  
प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणाञ्च तक्षणात् ॥ ९ ॥ सिद्धार्थकानां कल्केन  
शृंगदंतमयस्य च ॥ गोवालैः फलपात्राणामस्थां शृंगवतां तथा ॥ १० ॥  
निर्यासानां गुडानां चलवणानां तथैव च ॥ कुसुंभकुंभकुमानां च ऊर्णाकार्पासयो-  
स्तथा ॥ ११ ॥ प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवानन्यमः ॥

शय्या, आसन, सवारी, सूप, शकट, चटाई, ईधन इनकी शुद्धि यज्ञमें केवल जल छिडकने  
से होजातीहै ॥ ७ ॥ घरोंकी शुद्धि मार्जनेसे और पृथ्वीकी शुद्धि कुछ थोडी खोदडालनेसे  
और वनोंकी शुद्धि जलसे होतीहै ॥ ८ ॥ बहुतसे अन्नोंकी तथा दलेहुए अन्न और  
काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि जलके छिडकनेसे होतीहै ॥ ९ ॥ सींग और दातकी वस्तु सरसोंकी  
खलसे और फलके पात्र, हाड और सींगवालोंकी शुद्धि गौके चँवरसे होतीहै ॥ १० ॥ गोंद,  
लवण, गुड, कुंसुम, कुकुम, ऊन और कपास ॥ ११ ॥ इनकी शुद्धि जल छिडकनेसे होजा-  
तीहै, यह भगवान् यमने कहाहै,

भूमिस्वमुदकं शुद्धं शुचिं तोयं शिलागतम् ॥ १२ ॥ वर्षणगधरसिद्धुष्टैर्वर्जितं  
यदि तद्रथेत् ॥ शुद्धं मदीगतं तोयं सर्वदेव सुखाकरम् ॥ १३ ॥

और पृथ्वी तथा शिखापर पत्रा जल शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ वर्षि वह जल दुष्टवर्ष जो  
रस गणसे रहित हो, वह मदी और जाकरका जल शुद्ध है ॥ १३ ॥

शुद्धं प्रसारितं पप्यं शुद्धे चाऽऽनाशयोर्मुञ्चे ॥

मुस्तवर्षं तु गौं शुद्धां मार्जारं भ्राभमे शुचिं ॥ १४ ॥

हाटमें फेली हुई वस्तु बन्दों और घोड़ेका मुख शुद्ध हैं मुख छोड़के गौका सर्वभंग शुद्ध है,  
परमें रहनेवाली बिजाव शुद्ध है ॥ १४ ॥

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः ॥

आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥ १५ ॥

शय्या, स्त्री, पासक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और पात्र वह अपने अपनेही शुद्ध हैं और अन्यके  
शुद्ध नहीं हैं ॥ १५ ॥

नारीणां श्वेष वस्त्रानां शकुनीनां शुभं सुखम् ॥

रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे भृगुयायां सदा शुचि ॥ १६ ॥

स्त्री, पशु, पक्षी, इनका सुख क्रमसे रात्रि प्रस्रवण और वृक्ष तथा भृगुयाये सर्वदा  
शुद्ध है ॥ १६ ॥

शुद्धा भद्रुश्चतुर्येहि स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥

दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुद्धघति ॥ १७ ॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके स्वामीके निमित्त और देवता पित्रोंके कर्ममें पांचवें  
दिन शुद्ध होती है ॥ १७ ॥

रथ्याकर्द्धमतापेन घृथिनाघेन धाप्यय ॥

नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्धघति ॥ १८ ॥

कदाचित् मनुष्यकी नाभिके ऊपर गलीकी बीचमें अथवा जल या मूत्र लगायाव ही उसी  
समय स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १८ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ॥ भुक्त्वा क्षुत्वा तथा मुपया

पीत्वा श्रीमोऽयग्राह्यं च ॥ १९ ॥ रथ्यामाक्रम्य याचामदासो विपरिधाय च ॥

छपुर्मात्रा, मसका स्वाग स्नान, भोजन क्षीर दायन, गन्धपान और जलमें अन्नग्रहण  
इनका करके आजतसे प्रथम ॥ १९ ॥ और गलीमें बैठकर पशुओंको धारणकर आपना करे

पृथ्वा मूत्रं पुरीषं च ह्येपगंधापहं द्विजं ॥ २ ॥ टट्टतेनाभसा शीयं मृदा

धीयं समाचरत् ॥ पायी च मृत्तिकां सप्त लिंगे द्वे परिकीर्तिते ॥ २१ ॥ एष

स्मिन्विंशतिद्वयं द्योर्देयाश्चतुर्दश ॥ तिस्रस्तु मृत्तिका शोयां कृत्वा नरपतिशा

धनम् ॥ २२ ॥ तिस्रस्तु पादयागोयां शीयकामस्य सयदा ॥ शीयमतदृष्ट

स्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्व पूर्यते यया ॥ २४ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

और द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मलमूत्रका त्याग करके जिससे दुर्गंध दूर होजाय ऐसी ॥ २० ॥ स्वयं जल निकालकर मिट्टी और जलसे शुद्धि करले, और गुदामें सातवार लिंगमे तीनवार मिट्टी लगावै ॥ २१ ॥ वाये हाथसे बीसवार और फिर दोनोंमें चौदहवार नखोंकी शुद्धि करके तीनवार मिट्टीको लगावै ॥ २२ ॥ शुद्धिकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य तीनवार पैरोंमें मिट्टीको लगावै, यह शुद्धि गृहस्थियोंकी है, ब्रह्मचारियोंकी इससे दुगुनी शुद्धि कहीहै ॥ २३ ॥ वानप्रस्थोंकी इससे तिगुनी शुद्धि है, और संन्यासियोंकी चौगुनी है, प्रत्येक वारमें इतनी मिट्टी लगावै जिससे कि तीन अंगुल हाथके भरजाय ॥ २४ ॥

इति श्रीबृहस्पृतौ भाषाटीकाया षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

### सप्तदशोऽध्यायः १७.

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटी वने ॥ अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥ ग्रामं विशेषेण भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥ हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ते महापातकिनस्त्वमे ॥ ३ ॥

वनमें जाय पर्णकुटी बनाकर जटा धारण करके त्रिकालीन स्नान कर पत्तें, मूल, पत्र इनका भोजन करताहुआ पृथ्वीपर शयन करै ॥ १ ॥ अपने कर्मको मनुष्योंके निकट प्रकाश करताहुआ गांवमें भिक्षाके अर्थ जाय और वारहवर्षतक एक समय भोजन करै ॥ २ ॥ सुवर्णकी चोरी करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे रमण करनेवाला, यह महापापीभी इस व्रतके करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥

यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥ कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपहत्य च ॥ एतदेव व्रतं कुर्यात्स्यक्त्वा च शरणगतम् ॥ ५ ॥ आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ॥ हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥

यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यको मारनेवाला तथा रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला इसी व्रतके करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ झूठी साक्षी कहकर न्यायको चुराय और शरण आयेको त्यागकरके यही व्रत करै ॥ ५ ॥ अग्निहोत्रीकी स्त्रीकी हत्या करनेपर और मित्रकी हत्या करनेपर, तथा विना जाने गर्भकी हत्या करनेपर भी इसी व्रतको करै ॥ ६ ॥

वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्याद्विगुणं च विशुद्ध्ये ॥ ७ ॥ क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्द्धं वैश्यघातने ॥ अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥ पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ॥

गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥ पशून्हुत्वा तथा ग्राम्यान्मांसं  
कृत्वा विषक्षणं ॥ आरण्यानां वधे तद्ब्रह्मचर्यं तु विधीयते ॥ १० ॥

वनवासी ब्राह्मण और अपराधी राजा इनकी हत्या करके पूना प्रव करे वन वह शुद्ध होगा ॥ ७ ॥ वनवासी क्षत्रियकी हत्या करके पौन प्रव करे, वैश्यकी और स्त्रीकी हत्या करके इस प्रवको प्राधा करे ॥ ८ ॥ छूद्रकी हत्या करके और अनुमयी स्त्रीमें गमन करके पाष चौपाई इस प्रवको करे ॥ ९ ॥ ग्रामके वनके पशुओंको मारनेवाला अन्य प्रायश्चित्त न करके केवल यही प्राधा प्रव करे ॥ १० ॥

— हत्या द्विज तथा सर्पजलेक्षयविलेक्षयान् ॥

सप्तरात्र तथा कुर्याद्भ्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥

पक्षी और जलचर तथा विलमें सर्पको मारकर छात्ररात्रिक ब्रह्महत्याका प्रव करे ॥ ११ ॥

अनरमां तु शतं हृत्वा सास्नां दशशतं तथा ॥

ब्रह्महत्याप्रतं कुर्यात्पूर्वं सप्तत्सरं नर ॥ १२ ॥

विन्य अस्थिके सौ जीवोंकी हत्या करके, या एक सहस्र हस्तीयुक्त जीवोंको मारकर मनुष्य एक वर्षतक सम्पूर्ण ब्रह्महत्याके प्रवको करे ॥ १२ ॥

यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ॥

तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥

किस ३ वर्णकी जीविकाका छेदन करे वहीवही वर्णकी हत्याका प्रायश्चित्त करे ॥ १३ ॥

अपहृत्य तु वर्णानां भुव प्राप्य प्रमादत ॥ प्रायश्चित्तं वधप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं

चरत् ॥ १४ ॥ गोजाम्भस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ॥ जलापहरणे वैश्वं

कुर्यात्सप्तत्सरं प्रतम् ॥ १५ ॥ तिलानां धान्यपखाणां मघानामामिपस्य च ॥

संवसराद्दं कुर्यात् प्रतमेतरसमाहितं ॥ १६ ॥ कृणुषुःकाष्ठतफाणां रसानाम

पहारकं ॥ मासमेकं प्रतं कुर्याद्दत्तानां सर्पिणां तथा ॥ १७ ॥ छवणानां

गुहानां च मूलाणां कुसुमस्य च ॥ मासार्द्धं तु प्रतं कुर्यादितदेव समाहितं

॥ १८ ॥ लोहानां वैदलानां च सूत्राणां धर्मणां तथा ॥ एकरात्रं प्रतं कुर्या-

दितदेव समाहितं ॥ १९ ॥

अज्ञानसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंकी मूर्ति चारी करके ती ब्राह्मणोंकी आज्ञा छत्र प्रायश्चित्त करे ॥ १४ ॥ गौ, बकरी, घोडा, भण्डि, चांरी, जल इनकी चारी करनेवाला मनुष्य एक वर्षतक ब्रह्म प्रवको करे ॥ १५ ॥ विल अन्न, बरख मदिठ मांस, इनकी चोरी करनेवाला छे महीनेतक सावधान हाकर इसी प्रवको करे ॥ १६ ॥ विल, गन्ना, काठ, मट्टा, रस, दांत, धी इनकी चारी करनेवाला एक महीनेतक इन प्रवका करे ॥ १७ ॥ छवण, मूछ, पूछ इनकी चारी करनेवाला सावधान होकर पंद्रह दिनतक इसी प्रवको करे ॥ १८ ॥ अदा, बैरख, मूष चाम इनकी चोरी करनेवाला एकरात्रि रात्रि पान होकर यही प्रव करे ॥ १९ ॥

भुक्त्वा पलांडुं लशुनं मद्यं च करकाणि च ॥ नारं मलं तथा मांसं विडराहं  
खरं तथा ॥ २० ॥ गौधेयकुंजरोष्ट्रं च सर्वं पांचनखं तथा ॥ क्रव्यादं कुक्कुटं  
ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥

प्याज, लहसुन, मदिरा, करक, मनुष्यकी विष्टा इत्यादि मल, मनुष्यका सांस, सूकर,  
गधा इनका खानेवाला ॥ २० ॥ गोधेय, हाथी, ऊंट, सम्पूर्ण पंचनखमास, जीव और ग्रामके  
सुरगेको खानेवाला एक वर्षतक उक्त व्रतको करै ॥ २१ ॥

भक्ष्याः पंचनखास्त्वैते गोधाकच्छपशल्लाकाः ॥

खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥

गोह, कछवा, सेह, गेंडा, ससा, यही पांच पंचनख भक्ष्य है, इनको मारनेवाला भी इसी  
व्रतको करै ॥ २२ ॥

हंसं मद्दुरकं काकं काकोलं खंजरीटकम् ॥ मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं  
शुक्रसारिके ॥ २३ ॥ चक्रवाकं प्लवं कोकं मंडूकं भुजंगं तथा ॥ मासमेकं व्रतं  
कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥

हस, मद्दुर, कौआ, काकोल ( सर्प ) खजरीट, मत्स्यके खानेवाले मत्स्य, बगला, तोता,  
सारिका, ॥ २३ ॥ चक्रवा, प्लव, कोक, मंडक, सर्प इनका खानेवाला एकमहीनेतक इसी  
व्रतको करै, और फिर इनको न खाय ॥ २४ ॥

राजीवान्सिंहतुंडांश्च शकुलांश्च तथैवच ॥ पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परि-  
कीर्तितौ ॥ २५ ॥ जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्किरान् ॥ रक्तपादाञ्जाल-  
लपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥

राजीव, सिंह, तुड, शकुल, पाठीन, रोहित यह मत्स्य भक्ष्य हैं ॥ २५ ॥ जो जलमें  
उत्पन्नहो और जो जलमेंही विचरण करै जो मुखके अग्रभागसे और नखोंसे खोदनेवाले,  
जिनके पैर लाल हो, और जिनका पैर जालके समान हो इनको खानेवाला सात दिनतक  
व्रत करै ॥ २६ ॥

तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कपिजलम् ॥ वार्ध्रीणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह  
यमस्तथा ॥ २७ ॥ भुक्त्वा चोभयतोदंतांस्तथैकशफदंष्ट्रिणः ॥ तथा भुक्त्वा तु  
मांसं वै मासार्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥

तीतर, मोर, लाल पक्षी, कपिजल, वार्ध्रीणस, वर्तक इनको यमराजने भक्ष्य कहा है  
॥ २७ ॥ दोनोंओर दातवाले, और जिनके एक खुर हो, इनको जो एक महीनेतक खाय वह  
पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ २८ ॥

स्वयं मृतं तथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ॥ गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च  
तथा पयः ॥ संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥ क्षीराणि यान्य-  
भक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥ सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥

जीव जो स्वयं मरजाय उसका मांस, या भैंसा, बकरी का मांस, या जिस गौका बड्डा



गोषधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तया ॥ ९ ॥ पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मास  
कृत्वा विचक्षण ॥ आरप्यानां षधे तद्भक्तवर्धं तु विधीयते ॥ १० ॥

वनवासी ब्राह्मण और अपराधी राजा इनकी हत्या करके दूना प्रत करै वष वह शुद्ध होंगे  
॥ ७ ॥ वनवासी क्षत्रियकी हत्या करके पौन प्रत करै, वैश्यकी और स्त्रीकी हत्या करके  
इस प्रतको आभा करै ॥ ८ ॥ शूद्रकी हत्या करके और भ्रतुमयी स्त्रीमें गमन करके पाव  
चौपाई इस प्रतको करै ॥ ९ ॥ ग्रामके वनके पशुओंको मारनेबाधा अन्य प्रायश्चित्त न करके  
केवल यही आभा प्रत करै ॥ १० ॥

— हत्या द्विजं तथा सर्पजलेक्षपविलेशयान् ॥

सप्तरात्र तथा कुर्याद्भ्रत ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥

पशु और जलचर तथा विद्वेमें सर्पको मारकर साठरात्रिक ब्रह्महत्याका प्रत करै ॥ ११ ॥

अनस्मां तु शत दृक्षा सास्मां दशशत तथा ॥

ब्रह्महत्याप्रत कुर्यात्पूर्णं सवत्सरं नर ॥ १२ ॥

बिना करिके सौ जाबोंकी हत्या करके, या एक सइस हस्त्रियुक्त जीबोंको मारकर मनुष्य  
एक वर्षतक सम्पूर्ण ब्रह्महत्याके प्रतको करै ॥ १२ ॥

यस्य यस्य च घर्णस्य वृत्तिच्छेद समाचरेत् ॥

तस्य तस्य षधे प्रोक्त प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥

जिस ३ बणकी जीबिकाका छेदन करे वसीवसी वर्षकी हत्याका प्रायश्चित्त करै ॥ १३ ॥

अपहृत्य तु घर्णानां भुव प्राप्य प्रमादत\* ॥ प्रायश्चित्तं षधप्रोक्तं ब्राह्मणानुमत  
चरेत् ॥ १४ ॥ गोजाम्भस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ॥ जलापहरणे वैष  
कुर्यात्सवत्सरं प्रतम् ॥ १५ ॥ तिलानां धान्यवस्त्राणां मघानामामिपस्य च ॥  
संपत्सराई कुर्यात् प्रतमेतत्समाहित\* ॥ १६ ॥ तृणेषु काष्ठतक्राणां रसानाम  
पहारक\* ॥ मासमेकं प्रत कुर्याद्दलानां सर्पिणां तथा ॥ १७ ॥ लयणानां  
गुहानां च मूलानां कुसुमस्य च ॥ मासाई तु प्रत कुर्यादेतदेव समाहित\*  
॥ १८ ॥ लोहानां धेदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ॥ एकरात्रं प्रत कुर्या  
दतदेव समाहित\* ॥ १९ ॥

अज्ञानसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वेदप, शूद्र इन चारों वर्गोंकी भूमि चारी करके ही ब्राह्मणोंकी  
भाशा छद्म प्रायश्चित्त करै ॥ १४ ॥ गौ, बकरी घोडा मयि, पंखी, जल इनकी चारी  
करनेबाधा मनुष्य एक वर्षतक वक्त प्रतको करै ॥ १५ ॥ तिल अन्न, वस्त्र मयिण मांस,  
इनकी चोरी करनेबाधा छे: महीनेतक सावधान होकर इसी प्रतको करै ॥ १६ ॥ तिल,  
गन्ना, काठ, मट्ट, रस, बाँठ, पी इनकी चारी करनेबाधा एक महीनेतक इस प्रतको करै  
॥ १७ ॥ लवण मूक, फूल इनका चारी करनेबाधा सावधान होकर पंद्रह दिनतक इसी  
प्रतको करै ॥ १८ ॥ छाहा, बैरछ, मूठ, पाम इनकी चारी करनेबाधा एकरात्रि राव  
धान हाकर बही प्रत करै ॥ १९ ॥

और निरन्तर शूद्रजातिके अन्नको खानेवाला छैः महीनेतक व्रत करै ॥ ३९ ॥ वैश्यका अन्न निरन्तर खानेसे तीन महीने, और क्षत्रियका अन्न निरन्तर खानेसे दो महीनेतक व्रतकरै ॥ ४० ॥ ब्राह्मणका अन्न निरन्तर खानेवाला एक महीनेतक व्रत करै,

अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ अद्यभांडगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ॥ शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४२ ॥ क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ॥ अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४३ ॥

मदिराके पात्रमे जलको पीनेवाला पंद्रह दिनतक व्रतकरै ॥ ४१ ॥ गुडकी मदिराके पात्रमे जल पीनेवाला सात रात्रि व्रत करै, शूद्रकी उच्छिष्टको खानेवाला एक महीनेतक और वैश्यकी उच्छिष्टको खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४२ ॥ क्षत्रियकी उच्छिष्टको खानेवाला सात दिनतक, ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खानेवाला एक दिन और श्राद्धमे खानेवाला बुद्धिमान् मनुष्य एक महीनेतक व्रत करै ॥ ४३ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविदति ॥

व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपंचमाः ॥ ४४ ॥

परिवेत्ता, परिवित्ति, जो स्त्री परिवेत्ताने बड़े भाईसे पहले विवाही हो वह, दाता और पांचवा याजक, इन पांचोंको एक वर्षतक व्रत करना उचित है ॥ ४४ ॥

काकोच्छिष्टं गवाव्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥ ४५ ॥ दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालांगलेन च ॥ मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ४६ ॥

वृथाकृसरसंयावपायसापूपशकुलीः ॥ भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४७ ॥ नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥ त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्या-

त्पुंश्वलीदशनक्षतः ॥ ४८ ॥ पादप्रतापनं कृत्वा वह्नि कृत्वा तथाप्यधः ॥ कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ४९ ॥ नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥ त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छिष्टा गुल्मलतास्तथा ॥ ५० ॥

काकका उच्छिष्ट, गौका सूंघा इनका खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करै ॥ ४५ ॥

केग, कीडा, मूसा, वानर इनसे दूषितहुआ और मक्खी, मच्छर इनसे दूषित हुएको खाकर तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४६ ॥ वृथा कृसर, सयाव, खीर, पूआ, पूरी इनका खानेवाला सावधानीसे तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४७ ॥ नीलके वृक्षकी लकड़ीसे जिसके शरीरमें घाव होजाय, या कुत्तेने काटाहो उससे घाव होजाय, तौ वह तीन रात्रितक व्रतकरै ॥ ४८ ॥

और जिसके पुंश्वलीके दातोंका क्षत होजाय, जो नीचे अग्नि रखकर पैरोको सेके, और जो कुशाओंसे पैरोको झाडे वह एक दिन व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४९ ॥ जो नीला वस्त्र पहरेरहाहो जिसके छूनेसे स्नान करना योग्य है उसका अन्न खाकर और गुल्म लताका छेदन करके तीन रात्रि व्रत करै ॥ ५० ॥

अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥

पलाशस्य द्विजश्रेष्ठमग्निगञ्जं तु व्रती भवेत् ॥ ५१ ॥

मरगया हा वा जो गामिन हो उस गौका दूध, और संधिनीका दूध जो अमुद्ध हो उसको खानेवाला पशु बिनतक प्रव करै ॥ २९ ॥ जो दूध अमह्य है उनके विकारों ( वही आदिहों ) को खाकर बुद्धिमान् मनुष्य साठ रात्रितक ब्रह्म प्रवको करै ॥ ३० ॥

लोहितान्बृक्षनिर्यासान्ब्रधनममवास्तथा ॥ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युपित  
च यत् ॥ गुडशुक्त तथा भुक्ता त्रिरात्रं च प्रती भवेत् ॥ ३१ ॥

बृक्षका छाल गोंद, और बृक्षके काठनेसे जो गोंद निकले वह, शुक्त, ( फांसी वा भाऊ सिरका ) वासी पशु और गुडका शुक्त, इनको खानेवाला मनुष्य तीन रात्रितक प्रव करै ॥ ३१ ॥

दधि मह्य च शुक्तेषु यच्चान्यहधिसभवम् ॥ गुडशुक्तं तु मह्यं स्यात्सर्षपि  
पकनिति स्थिति ॥ ३२ ॥ यषगोधूमजा\* सर्वे विकारा\* पयसश्च ये ॥ राजवा  
हयकुन्त्य च मह्यं पर्युपित भवेत् ॥ ३३ ॥

शुक्लेमें वहीका विकार, धी मिला गुडका शुक्त यह मह्य मुक्लेमें कहाइ ॥ ३२ ॥ जो, गूँ, दूध, इनका विकार, और राजवाहवका मांस यह वासी भी मह्य है ॥ ३३ ॥

राजीवपकं मांस च सर्वयज्ञेन वर्जयेत् ॥

सवस्त्र प्रतं कुर्यात्प्राश्येताञ्जानतस्तु तान् ॥ ३४ ॥

राजीव मत्स्यभेदके पकेहुए मांसको सय मांदि त्याग दे और जो मनुष्य ऊपर कहे हुमोंका खान पूजकर खाके वह एक वर्षतक प्रवको करै ॥ ३४ ॥

शूदात्रं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रगायतारिण ॥ विक्रिस्तकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्री  
मृगजीविन ॥ ३५ ॥ पदस्य कुल्लटापाक्ष तथा घघनघोरिण ॥ वदस्य  
क्षेव चोरस्य अधीराया\* स्त्रियस्तथा ॥ ३६ ॥ यर्मकारस्य वेनस्य क्लीवस्य  
पतितस्य च ॥ रुक्मकारस्य पूतस्य तथा धार्धुपिकस्य च ॥ ३७ ॥ फदपस्य  
नृशंसस्य वेद्यायाः कितपस्य च ॥ गणान्न भूमिपालान्नमन्न चैव श्वजीविनाम्  
॥ ३८ ॥ मौजिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं प्रतं चरेत् ॥

शूद्र रंगरेज, बैद्य, क्षुद्रबुद्धि स्त्री, और जा अपनी जीविजा मृगोंस करवाहो ॥ ३५ ॥ नर्पुम्य, अग्निधारिणी स्त्री, बोटिया, कैदी चोर, पतिपुत्रहीन स्त्री ॥ ३६ ॥ यमार, वेन, जीव पतिव सुनार, पूत, धार्धुपिक, व्याज छेनेवाला ॥ ३७ ॥ कृपण, कायर, हिंसक, बह्या, कपटी शूद्र इत्यादि इनके भक्षणको खानेवाला, इनमहके भक्षण तथा राजाक भक्षण और जो कुत्तोंसे अपनी जीविजा करै उनके भक्षणको ॥ ३८ ॥ मूँजके व्यापारी और सूतिका ( ममूते दोकर शूद्र नदी हुई स्त्री ) क भक्षण खानेवाला एक महीनेतक प्रव करै ॥

शूद्रस्य मतत भुक्त्वा पन्मासाप्रतमाचरेत् ॥ ३९ ॥ पेश्यस्य तु तथा भुक्त्वा  
श्रीमामाप्रतमाचरेत् ॥ क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा दी मासी प्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥  
ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमर्कं प्रतं चरेत् ॥

मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥

विक्रीय पाणिना मद्यं तिलानि च तथाचरेत् ॥ ५९ ॥

मांसको बेचनेवाला महाव्रत करे, अपने हाथसे मदिरा और तिलको बेचकरभी महाव्रतको करे ॥ ५९ ॥

हूंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥

दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥

या ब्राह्मणको अपमानसूचक हूंकार, और वडोंको तू कहकर भलीभांति सावधान होकर एक दिनतक व्रत करे ॥ ६० ॥

प्रेतस्य प्रेतकार्याणि कृत्वा च धनहारकः ॥

वर्णानां यद्भ्रतं प्रोक्तं तद्भ्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥

जो धन (वेतन) लेकर प्रेतकी क्रिया और प्रेतको द्रमज्ञानमें कंधेपर लेजाय वह निज वर्णका जो व्रत अन्यत्र कहाहै उसी व्रतको शुद्ध होकर करे ॥ ६१ ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्द्धते ॥

कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्षदानुमतं व्रतम् ॥ ६२ ॥

पाप करके उसे न छिपावै, कारण कि छिपानेसे पापकी वृद्धि होतीहै वृद्धिमान् मनुष्य पाप करके सभाकी अनुमतिसे प्रायश्चित्त करे ॥ ६२ ॥

तस्करश्चापदाकीर्णं बहुव्याधमृगे वने ॥ न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभया-

त्सदा ॥ ६३ ॥ सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥ व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च

इत्याह भगवान्पद्मः ॥ ६४ ॥ शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरा-

त्स्रवते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ॥ ६५ ॥ आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य

ब्राह्मणैः सह ॥ प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६६ ॥

इति श्रीशाङ्गीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण चोर, भेडिये, साप, मृगआदिक जन्तुओंसे परिपूर्ण स्थानमें जाकर या जहां प्राणोंका भय हो ऐसे स्थानमें जाकर व्रत न करे ॥ ६३ ॥ कारण कि, जीवनकी रक्षा सब स्थानोंपर लिखीहै, जीवित रहनेपर व्रत कृच्छ्र तथा अनेक दानद्वारा सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करसकताहै यह भगवान् यमने कहाहै ॥ ६४ ॥ और शरीर ही धर्मका मूल है इस कारण

यत्नसाहित शरीरकी रक्षा करनी योग्य है, पर्वतमेंसे जलकी समान शरीरमेंसे धर्म निकलता रहताहै ॥ ६५ ॥ इस कारण सम्पूर्ण शास्त्रोंको विचारकर ब्राह्मणोंके साथ एकमति होकर

ब्राह्मण प्रायश्चित्त वतावै, अपनी इच्छासे कभी न वतावै ॥ ६६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१ "दहित्वा च वहित्वा च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इस वचनसे दाह करनेवाला परगोत्रीमी तीन दिन अशुद्ध रहताहै, उसके उपरान्त प्रायश्चित्त करे ।

ब्राह्मण डाकफी धनीदुई शय्या ( साठ भादि ) धान ( सषारी ) व्यासतः ( पीडा कुसी भादि ) और सडाक इनपर बैठकर तीन रात्रि प्रव करै ॥ ५१ ॥

वाग्दुष्टं भाषदुष्टं च भाजने भाषदूषिते ॥

भुक्तानं ब्राह्मणं पश्चाधिरात्रं तु घृती भवेत् ॥ ५२ ॥

वाणी और भाव इनसे दुष्ट पदार्थको भाषसे दुष्ट पात्रमें खाकर ब्राह्मण तीन रात्रितक प्रव करै ॥ ५२ ॥

क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणं ॥

सषत्सरं घृतं कुर्याच्छिष्ट्वा पिप्पलपादपम् ॥ ५३ ॥

अपने प्राणोंको रक्षामें तत्पर क्षत्री युद्धमें पीठ बँकर और पीपलके दूधको काटकर एक वर्षतक प्रव करै ॥ ५३ ॥

दिवा च भेषुन कृत्वा स्नात्वा नमस्तर्पामसि ॥

नर्मा परस्त्रियं हृष्टा दिनमेकं घृती भवेत् ॥ ५४ ॥

दिनके समय भेषुन करके, कसमें भगा हो स्नान करके वा दूसरेकी बीकी भागी बँडकर एक दिनतक प्रव करै ॥ ५४ ॥

शिष्यामावशुचि द्रव्यं तदेवामसि मानवः ॥

मासमेकं घृतं कुर्यादुपकुप्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥

भक्ति वा जलमें अगुद्ध पदार्थ फँककर वा गुठपर छेप करनेवाला एकमहीनेतक प्रव करै ॥ ५५ ॥

पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणं क्वचित् ॥ त्रिरात्रं तु घृतं कुर्याद्रामहस्तेन

वा पुनः ॥ ५६ ॥ एकपक्षपुपायिष्ठेषु विषमं यं प्रयच्छति ॥ यश्च यावदसौ

पक्षं कुर्यात् ब्राह्मणो घृतम् ॥ ५७ ॥

कदाचित् ब्राह्मण पीनेस पक्षदुष्ट पानीको पीछ पा बधि हायसे जल पीछे तो तीन रात्रितक प्रव करै ॥ ५६ ॥ एक पक्षमें बैठनुओंके भागे जो न्यूताधिक परोसे, वह ब्राह्मण इसी घृतका करस ॥ ५७ ॥

धारपित्वा तुल्यं त्रियं विषमं कारयेद्दुग्धम् ॥

सुरालक्षणमघानां दिनमेकं घृती भवेत् ॥ ५८ ॥

बभिरु तरामूमें तालरामी न्यूताधिक करै, सुद और छबजको बेचनेवाला मनुष्य यह सभी एक दिनतक प्रव करै ॥ ५८ ॥

१. वाणीदुष्ट पैसा "गोशुणी" यह चपीके नाम हैं भावः यह मन्नाय है, भाषदुष्ट जो बरु बुपे शीशुस बनाए जाते हैं जिस निहित मंत्रका भी कषार आदिक भाषदुष्ट पात्र रंगसे बने आदिक क्रियेतो।

२. "दुष्ट कल्पम्" इत पात्रके अनुकार करनेवाले दुष्टके पाठमें वह व्यवहित जान्य ।

तिलोंकी खल, विनाजलका मट्टा, सत्तू इनको प्रतिदिन खाय और बीच २ भे उपवास करनेका नाम तुलापुरुष है ॥ १० ॥

**गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः॥**

गोवर और जौको एकमहीनेतक प्रतिदिन सावधानीसे खाय, यह यावकव्रत है,

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११ ॥ ग्रासं चंद्रकलावृद्ध्या प्राशनीयाद्द्विद्वयन्सदा ॥ द्वासयेच्च कलाहानौ व्रतं चांद्रायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पापोंके नाशकरनेवाले इस वार्द्धिक व्रतको करै उसीको चांद्रायण व्रत भी कहतेहैं उसका लक्षण यह है ॥ ११ ॥ चंद्रमाकी कलाकी भांति वृद्धिके अनुसार एकग्रास प्रतिदिन खावै ॥ और कलाकी हानिके अनुसार एक एक ग्रास प्रतिदिन घटाता जाय, यह चांद्रायण व्रत है ॥ १२ ॥

मुंडास्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेंद्रियः ॥ स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ॥ १३ ॥ पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥ अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥ पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥ गतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

मुंडन किये हुए त्रिकाल स्नान करै, पृथ्वीपर शयन कर इन्द्रियोंको जीतना, स्त्री, शूद्र, पतित इनके साथ संभाषण न करना ॥ १३ ॥ और पवित्र स्तोत्रआदिका जप, यथाशक्ति हवन करना यह विधि सर्वदा सब कृच्छ्रोंमें जाननी उचित है ॥ १४ ॥ कृच्छ्रोंके प्रतापसे पापी मनुष्य पापोंसे छूटकर स्वर्गमें इसभांति जाताहै कि जैसे पापहीन मनुष्य स्वर्गमें जातेहैं, इसमें कुछ सदेह नहीं ॥ १५ ॥

**शंखप्रोक्तामिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥**

**सर्वपापविनिर्मुक्तस्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥**

इति श्रीशाखीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंखनामिके कहेहुए शास्त्रको पढताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

**इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥**

## अष्टादशोऽध्याय १८

अथ द्विषडगस्नायी स्नाने स्नानेऽयमपणम् ॥ निमग्नस्त्रिं पठेदप्सु न भुञ्जीत  
दिनत्रयम् ॥ १ ॥ धीरासनं च तिष्ठेत् गां दद्याच्च मयस्विनीम् ॥ अथमर्षण  
मित्येतद्भूत सर्वाधनाशनम् ॥ २ ॥

तीन दिनतक प्रतिदिन तीनवार स्नानकर तीनो स्नानोमें जलमें दूधाहुआतीनवार अपमर्षण  
अपकरै, और तीन दिनतक भोजन न करै ॥ १ ॥ सर्वदा धीरासनपर खड़ा होकर दूध देने-  
वाली गौका दान करै, इसका नाम अथमर्षण ग्रन्थ है इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥२॥

अथ साय अथर्हं प्रातरुग्रहमधादयाधितम् ॥

अथ पर च नाङ्गीयात्प्राजापत्यं चरम्यतम् ॥ ३ ॥

प्राजापत्य ग्रन्थ करनेपर तीन दिनतक नक्त भोजन तीन दिनतक एकमन्त्र, तीन दिनतक  
अप्याधित भोजन, और तीन दिनतक उपवास करै ॥ ३ ॥

अथमुष्ण पिवेतोर्यं अथमुष्ण घृत पिवेत् ॥ अथमुष्ण पयः पीत्वा घायुमस्त-  
रुपहं भवेत् ॥ ४ ॥ तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ॥

तीन दिनतक गरम जल पिये, तीन दिनतक गरम घृतका पान करै, तीन दिनतक गरम  
दूधही पिये, और तीन दिनतक केवल वायु ही महान्न करके रहै ॥ ४ ॥ इसका नाम  
तप्तकृच्छ्र है और ऐसाही शीत कृच्छ्र, शीत घृत, शीत दूध और वायु इनका क्रमशः तीन  
तीन दिनतक सेवन कियाजाताहै यह शीतकृच्छ्र कहाहै,

दादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

और बारह दिनतक उपवास करनेका नाम पराक ग्रन्थ है ॥ ५ ॥

विधिनादकसिद्धात्त समभीयात्प्रयत्नतः ॥

सत्कृन्दि सोदवा मास कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक जलसे घनाये अन्नको पलसहित आ मनुष्य खाय यदि वह मनुष्य एक मही  
नेतक सोदक करे अथवा भोजनके बिना जल न पिये उसे वारुणकृच्छ्र कहाहै ॥ ६ ॥

विल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवा शुभे ॥

मासेन लोकेस्त्रीन्कृच्छ्रं कथ्यत बुद्धिसत्तर्भः ॥ ७ ॥

एक महीनेतक बेल, आंबला, कमलगट्टे इनको खातेस बुद्धिमानोंने स्त्रियोंका कृच्छ्र कहाहै ॥७॥

गोमूत्र गोमय क्षीर दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एषराशोपघासश्च कृच्छ्रं सातपर्नं  
स्मृतम् ॥ ८ ॥ एतेस्तु अथमम्यस्तीर्महासातपन स्मृतम् ॥ ९ ॥

गामूत्र गोमय, दूध, घृत कुशाका जल इनका पान्य और एक दिन उपवास करना इसका  
नाम सातपन कृच्छ्र है ॥ ८ ॥ और इन सपथो तीन दिन करनेस महासातपन कहाहै ॥९॥

विष्णवार्धं यामतर्धं सुसत्तुर्नां मतिघासरम् ॥

उपघासांतराम्यासासुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥ मुच्यते प्रेतलोकात् पितृलोकं  
स गच्छति ॥ ९ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥ यजेत्  
वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥

जिस प्रेतके एकादशके दिन प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रआदि अधिकारी वृषका उत्सर्ग करतेहैं  
वह प्रेत प्रेतलोकसे मुक्त होकर पितृलोकमें जाताहै ॥ ९ ॥ मनुष्य बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा  
करै यद्यपि बहुतसे पुत्रोंमेंसे कोई एक तो गयाको जायगा, या कोई तो अश्वमेधयज्ञ करैगा,  
अथवा कोई तो नील बैलका उत्सर्ग करैगा वही यथार्थ पुत्र है ॥ १० ॥

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥

हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥

काशीधाममें जाकर कदाचित् जो मनुष्य निकल आताहै तो सब भूत परस्परमें ताली  
घजाकर उसका उपहास करतेहैं ( तस्मात् काशीप्राप्त करके क्षेत्रन्यास करके वहां रहनाही  
श्रेष्ठ है ) ॥ ११ ॥

गयाशर तु यत्किंचिन्नान्नो पिडं तु निर्वपेत् ॥ नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो  
भोक्षमाणुयात् ॥ १२ ॥ आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥ यन्नाम्ना  
पातयेत्पिडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य गयामें जाकर नामोल्लेख करके गयाशिरपर पिंडदान करताहै यदि वह नर-  
कमेंभी हो तोभी स्वर्गमें जाताहै, और जो स्वर्गमें होय तो उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ १२ ॥  
अपने सम्बन्धी हों या दूसरेके सम्बन्धी हो जिसकाभी नाम लेकर गयामें जो पिंडदेगा वह  
मनुष्य सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥

लांगूलशिरसा चैव सवै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥

जिसका रंग लाल हो, खुर पूंछ और शिर यह सफेद हो उसे नील वृष कहतेहैं ॥ १४ ॥

नवश्राद्धं त्रिपक्षे च द्वादशश्वेव मासिकम् ॥ षण्मासौ चाव्दिकं चैव श्राद्धान्ये-  
तानि षोडश ॥ १५ ॥ यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ॥ पिशाचत्वं  
स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ १६ ॥

आद्य श्राद्ध ( जो कि ब्राह्मणआदिको ११ वा आदिक दिन प्रथम रहताहै वह) त्रिपक्ष (१॥  
महीनेमें ) बारह महीनोंके दो षण्मासिक, वर्षी, यह सोलह श्राद्ध हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य  
प्रेतके लिये इन सोलह एकोद्दिष्टको नहीं करता, उसके सैंकड़ों श्राद्ध करनेसे भी वह प्रेतयो-  
निसे मुक्त नहीं होता ॥ १६ ॥

सपिडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥ मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं  
मृतेऽहनि ॥ १७ ॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम् ॥ अदैवं भोज-  
येच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥ संक्रान्तादुपरागे च पर्वण्यपि महालये ॥  
निर्वाप्यास्तु त्रयः पिंडा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥ १९ ॥ एकोद्दिष्टं परित्यज्य पा-



॥ श्रीं ॥

अथ लिखितस्मृतिः १४

भापाटीकासमेता ।



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ लिखितस्मृतिः ॥

इष्टापूर्ते तु कृत्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

ब्राह्मण यज्ञपूर्वक इष्ट और पूर्वको करवावै, कारण कि इष्टसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीवै, और पूर्वसे मोक्ष होमावीवै ॥ १ ॥

एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ॥ कुलानि तारयेत्सत यत्र गीर्षित्वापी भवेत् ॥ २ ॥ भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ॥ तद्विक्रान्नामृषाम्मर्त्यं पाव्पानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥ घापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥

पतितान्मुद्गरेषु स पतफलमश्नुते ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र तपः सस्य वेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेव च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ॥ अधिकारी भवेच्छूद्राः पूर्ते धर्मं न धेदिके ॥ ६ ॥

एकदिनतक सिधना जल पूर्णमें रहजाय पेसा ब्रह्मण्य यज्ञसहित करे, और बिन जलसयोंसे गौकी दूधा निवृत्त होजाय पेसे जलसयोंका बनानेबाध्य साधुओंको वारवावै ॥ २ ॥ भूमिदान करनेसे जो लोक मिश्रवावै वृक्षोंके छागनेसे भी मनुष्योंको वही लोक प्राप्त होतेवै ॥ ३ ॥ बाबडी, कूप, तालाब, देवताओंके मंदिर इनके दूटनेपर जो इनको फिर बनवातावै वह भी पूर्वके फलको प्राप्त होतावै ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तप, सस्य, वेदोंकी रक्षा, भय्यागतका संस्कार और ब्रह्मवैश्वदेव इनको इष्ट कशावै ॥ ५ ॥ द्विजातियोंके इष्ट और पूर्व यह साधारण धर्म कहेवै, और शूद्र केवल पूर्वका अधिकारी है उसे बेशोक धर्म इष्टमाविकोंका अधिकार नहींवै ॥ ६ ॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गगातायेषु तिष्ठति ॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥

मनुष्यकी अस्थि जबतक गंगाजलमें पडीरवै ततन्वै हजार वर्षतक वह मनुष्य स्वर्गमें निवास करतावै ॥ ७ ॥

देवतानां पितृणां च जले दद्यात्कलांजलिम् ॥

असंस्कृतमृतानां च स्पृष्टे दद्यात्कलांजलिम् ॥ ८ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी संखडी जलमें दे, अर्थात् देवदर्पण और पितृदर्पणके निमित्त जलमेंही जलको डाले, जो बाळक संस्कारके विभाहृत् सरगयेवै जलके छिन्ने

दो माताओंको दो पिंड दे और पिंडमें दोनामका उच्चारण करै, छःके निमित्त अर्थात् बाप, दादा और पडदादा तथा माता, दादी और पडदादी इन छैके लिये तीन पिंडदान करै, इस प्रकारसे पिंडदेनेवाला दाता मोहको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ यदि मन्त्रज्ञ ब्राह्मण शरीरके पंक्तिको दूषित करनेवाले विकारोंसे युक्त होजाय उसको यमराजनें तौभी निर्दोष कहाहै, कारण कि वह पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ २८ ॥

अग्नौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥

प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥

अग्नौकरणका शेष अन्न पिताके पात्रमें दे पहले पितरोंको देकर पीछे विश्वेदेवाओंको न दे ॥ २९ ॥

अनग्निको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥

तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥

यदि अग्निहोत्ररहित ब्राह्मण पार्वणश्राद्ध करै तौ वह मनुष्य पितृपक्ष और मातामहपक्ष इन दोनों पक्षोंका अवलम्बनकर श्राद्ध करै ॥ ३० ॥

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥

तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥

अपुत्रक होकर मृतक हुए पुरुष वा स्त्री इनके निमित्तभी एकोद्दिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण श्राद्ध नहीं करै ॥ ३१ ॥

यस्मिन्राशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्विजन्मनः ॥ तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपि-  
डोदकक्रियाः ॥ ३२ ॥ वर्षवृद्धयभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ॥ अधिमासे तु  
पूर्वं स्थाच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥ स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु  
कर्मणा ॥ अभिघातान्तरं कार्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥ ३४ ॥

जिस राशिके सूर्यमें द्विजातिकी मृत्यु हुईहो उसी राशिके उसीदिन में दान, पिंडदान और जलदान करै ॥ ३२ ॥ और वर्षकी वृद्धिमें अभिषेक इत्यादि अधिक न करै यदि मलमाम आजाय तौ वर्षसे प्रथमभी श्राद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ यदि किसी कर्मवशसे उस दिनको प्रारब्धवश त्यागदे अन्यथा नहीं, मृत्युके उपरान्त जो कर्तव्य है वह उसीदिन करना उचित है ॥ ३४ ॥

शालाभौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥ यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो  
विधीयते ॥ ३५ ॥ वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंद्रितः ॥ वैदिके  
स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥ अग्नौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा  
मंत्रैस्तु शाकलैः ॥ संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्रीयादनग्निमान् ॥ ३७ ॥  
उच्छेषणं तु नोतिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ॥ ततो गृहबलि कुर्यादिति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥

र्षण कुरुते द्विज' ॥ अकृत तद्विजानीयात्स मातापितृघातक' ॥ २० ॥ अमा  
वास्या क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽप्यथा यदि ॥ सर्पिणीकरणदूष्य तस्योक्त' पार्व  
णो विधि' ॥ २१ ॥

इसकारण सर्पिणी करनेके उपरान्त प्रत्येक वर्षमें मातापिताके मरनेके दिनमें एकद्विज  
पुत्र करे ॥ १७ ॥ माता पिताका आठ प्रत्येक वर्ष २ में निरन्तर करता रहे, और विधे-  
देवाके विना आठमें जिमावे और एक पिंड दे ॥ १८ ॥ सन्नाम्नि, ग्रहण, पूर्व, पितृपक्ष  
इसमें एकपक्षमें तीन पिंड दे और जो क्षयाके दिन ॥ १९ ॥ एकद्विजको त्यागकर  
पार्वणआठ करता है वह आठ न हुएकी समान है, और वह पुत्र माता पिताका मारने  
वाला है ॥ २ ॥ जो अमावस या पितृपक्षमें मरे उसके निमित्त सर्पिणी करनेके उपरान्त  
क्षयाके दिन भी पार्वण आठ करे ॥ २१ ॥

श्रिद्वजग्रहणादेव प्रेतत्व नैव जायते ॥

अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्दु विधीयते ॥ २२ ॥

श्रिद्वजके सेनेसे ही प्रेत नहीं होता, उसके मरनेसे भी ग्यारहमें दिन पार्वण आठ कहा है ॥ २२ ॥

यस्य संवत्सरादवाक्सर्पिणीकरणं स्मृतम् ॥

प्रत्यह तस्मोदूर्ध्वम दद्यात्संवत्सर द्विज ॥ २३ ॥

एक वर्षसे प्रथम जिसका सर्पिणीकरण कहा है उसके निमित्तभी प्रतिदिन माछण गलसे  
भरा घट दान करे ॥ २३ ॥

पत्या वैकेन कर्तव्य सर्पिणीकरण स्त्रिय' ॥ पितामहापि तत्तस्मिन्सत्येवन्दु  
क्षयेऽइनि ॥ तस्यां सत्यां प्रकर्तव्य तस्या' श्वयेति निश्चितम् ॥ २४ ॥

स्त्रीकी सर्पिणी एकमात्र पतिके पिंडके साथही करनी चाहिये यदि स्त्रीका पति जीवित  
हो तो स्त्रीका सासके पिंडमें स्त्रीका पिंड मिलावे और जो स्त्रीकी सासमी जीवितहो तो स्त्रीकी  
सासकी सासके पिंडमें स्त्रीका पिंड मिलावे ॥ २४ ॥

विवाहे धैव निवृत्ते चतुर्थेऽइनि रात्रियु ॥ एकत्वं सा गता भर्तुं पिंडे गोत्र च  
सूतके ॥ २५ ॥ स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी उद्गाहास्तप्तमे पदे ॥ भर्तृगोत्रेण फलव्या  
दानपिंडोदकक्रिया ॥ २६ ॥

स्त्री विवाह होनेके पीछे चौधदिनकी रात्रिमें पतिकी सङ्गिनी भ्रमात् पतिके पिंड, गोत्र  
और सूतकमें एक दानाछाह ॥ २५ ॥ विवाहके पाँच सप्तपदीके होनेहीमें स्त्री अपने  
पिताके गोत्रसे भ्रष्ट होजातीह अतः पतिके गोत्रसेही उसका पिंडदान और उद्गाहन करना  
चाहिये ॥ २६ ॥

द्विमातुः पिंडदान तु पिंडे पिंडे द्विनामत' ॥ पण्णा द्याद्यय' पिंडा एव दाता  
न मृहति ॥ २७ ॥ अथ वेम'प्रविशुक्त' शारीर' पक्तिदूषण' ॥ अदापतं  
यम प्राह पतिपावन, एव स ॥ २८ ॥

दो माताओंको दो पिंड दे और पिंडमे दोनामका उच्चारण करै, छुके निमित्त अर्थात् बाप, दादा और पडदादा तथा माता, दादी और पडदादी इन छैके लिखे तीन पिंडदान करै, इस प्रकारसे पिंडदेनेवाला दाता मोहको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ यदि मन्त्रज्ञ ब्राह्मण शरीरके पत्तिको दूषित करनेवाले विकारोसे युक्त होजाय उसको यमराजने तौभी निर्दोष कहाहै, कारण कि वह पत्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ २८ ॥

अग्नौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥

प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥

अग्नौकरणका शेष अन्न पिताके पात्रमें दे पहले पितरोंको देकर पीछे विश्वेदेवाओंको न दे ॥ २९ ॥

अनग्निको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥

तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥

यदि अग्निहोत्ररहित ब्राह्मण पार्वणश्राद्ध करै तौ वह मनुष्य पितृपक्ष और मातामहपक्ष इन दोनो पक्षोंका अवलम्बनकर श्राद्ध करै ॥ ३० ॥

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥

तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥

अपुत्रक होकर मृतक हुए पुरुष वा स्त्री इनके निमित्तभी एकोदिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण श्राद्ध नहीं करै ॥ ३१ ॥

यस्मिन् राशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्विजन्मनः ॥ तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपि-  
डोदकाक्रियाः ॥ ३२ ॥ वर्षवृद्धयभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ॥ अधिमासे तु  
पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥ स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु  
कर्मणा ॥ अभिघातान्तरं कार्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥ ३४ ॥

जिस राशिके सूर्यमें द्विजातिकी मृत्यु हुईहो उसी राशिके उसीदिन मे दान, पिंडदान और जलदान करै ॥ ३२ ॥ और वर्षकी वृद्धिमे अभिषेक इत्यादि अधिक न करै यदि मलमास आजाय तौ वर्षसे प्रथमभी श्राद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ यदि किसी कर्मवशसे उस दिनको प्रारब्धवश त्यागदे अन्यथा नहीं, मृत्युके उपरान्त जो कर्तव्य है वह उसीदिन करना उचित है ॥ ३४ ॥

शालाग्नौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥ यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो  
विधीयते ॥ ३५ ॥ वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंद्रितः ॥ वैदिके  
स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥ अग्नौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा  
मंत्रैस्तु शाकलैः ॥ संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्रीयादनग्निमान् ॥ ३७ ॥  
उच्छेषणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ॥ ततो गृहबलि कुर्यादिति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥

नित्यं शाब्दादि अथवा लौकिक आग्निमें अन्न पकावै, और मित्र अग्निमें अन्न पकावै इस मेंही हवन करनेकी विधि है ॥ ३५ ॥ नित्य आळस्थरहित होकर लौकिक वा वैदिक अग्निमें हवन करै, वैदिक अग्निमें हवन करनेसे सन्पूर्ण पाप नष्ट होमावेई ॥ ३६ ॥ प्रथम अग्निमें सात व्याहृति और शाकल्यपिके कबेरुप मंत्रोंसे हवनकर मूर्तोंको अन्नका भाग देकर भोजन करै और जो अग्निहोत्री न हो वी ॥ ३७ ॥ अथवाक ब्राह्मण विद्या न हो जायें तपतक सच्छिष्ट न कर इसके पीछे गृहवर्षि करै यही व्यवस्थित धर्म है ॥ ३८ ॥

दमा' कृष्णाजिनं मंत्रा ब्राह्मणाश्च विशेषत' ॥ नैते निमात्पतां यान्ति योक्तव्यास्त पुन' पुन' ॥ ३९ ॥ पानमाचमनं कुर्यात्कुशापाणिस्तदा द्विज' ॥ अन्वता नोच्छिष्टतां याति एष एष विधि' सदा ॥ ४० ॥ पान आचमने चैष तपण वैधिके सदा ॥ कुशाहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुश ॥ ४१ ॥ घाम पाणौ कुशाङ्कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ॥ शिनाचामन्ति य मूढा रुधिरिणाचमन्ति ते ॥ ४२ ॥ नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृता' ॥ पवित्रास्तान्विजानीया यथा कायस्तथा कुशा' ॥ ४३ ॥

धर्म, फासे सुगन्धा चर्म, मन्त्र, विशेषकर ब्राह्मण, यह निर्मात्पता ( अशुद्धि ) को बार बार ग्रहण करनेसे भी अशुद्ध नहीं होत ॥ ३९ ॥ कुशा हाथमें लेकर ब्राह्मण सर्वथा जड़-पान और आचमन करै भोजन करनेपर भी यह कुश सच्छिष्ट नहीं होत, यह शाकल्यकी विधि है ॥ ४० ॥ पीना, आचमन, चर्पण, देवकर्म इनमें सर्वथा कुशा हाथमें छेनेसे शुधित नहीं होवा कारण कि सैसा हाथ है वैसीही कुशा होतीई ॥ ४१ ॥ वयि हाथमें कुशा लेकर इहने हाथसे आचमन करै । जो मूढशुद्धि मनुष्य किना कुशाके आचमन करतेई वह अन्या आचमन रुधिरकी समान है ॥ ४२ ॥ नीवीमें और जनेजमें जो कुशा रक्तीई वह कुशा पवित्र है, कारण कि कुशामी देहकी समान हैं ॥ ४३ ॥

पिंडे कृतास्तु ये दर्भा ये' कृत पितृतपणम् ॥

मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥ ४४ ॥

जो कुशा पिंडोंपर रखी जातीई, वा जिनसे पितरोंका चर्पण कियासाहा; वा जिनसे लेकर मद्यमूत्र त्याग कियासे उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४४ ॥

देषपूर्व तु यच्छ्राद्धमर्दयं चापि यद्भवेत् ॥

ब्रह्मचारी भयेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पितृकम् ॥ ४५ ॥

जा भाद्र विश्वरूपरूपक हो वा विश्वरूपपूर्वक न हो अर्थात् पार्वण हो एकोदित हो, उस समयमें ब्रह्मचारी रहे; और पितरोंके निमित्त भाद्र करै ॥ ४५ ॥

मानु' भाद्र तु पूर्ष स्थापितृणां तदनंतरम् ॥

तता मातामदानां च वृद्धी भाद्रप्रथं स्मृतम् ॥ ४६ ॥

प्रथम माताका भाद्रकर पीछे पितरोंका करै, इसके पीछे माताभारिका भाद्र हावाई, इसप्रकारे वृद्धिभाद्रमें तीन भाद्र हावई ॥ ४६ ॥

ऋतुर्दक्षो वसुः रात्यः कालकामौ धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवा आर्द्रवाश्च विश्वेदेवाः  
प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥ ये अत्र  
विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ ४८ ॥ इष्टिश्राद्धे ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च  
दैविके ॥ ४९ ॥ कालः कामोऽग्निकार्येषु अग्रे धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवा  
आर्द्रवाश्च पाञ्चणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥

और ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरुरवा, आर्द्रवा इनको विश्वेदेवा  
कहाहै ॥ ४७ ॥ “हे महाबली और महाभागी विश्वेदेवो ” जो इस श्राद्धमें कहे हैं वे  
सावधान हो ॥ ४८ ॥ इष्टि ( पूजननिमित्तक ) श्राद्धमें ऋतु और दक्ष, देवश्राद्धमें वसु और  
सत्य ॥ ४९ ॥ अग्निके कर्ममें काल और काम, यज्ञनिमित्तक श्राद्धमें धूरि और लोचन पाँच  
णमें पुरुरवा, और आर्द्रवा इन विश्वदेवोंको नियुक्त करै ॥ ५० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिका-  
धर्मशंकया ॥ ५१ ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां  
यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥ ५२ ॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपे-  
त्पुत्रिकासुतः ॥ द्वितीये तु पितुस्तस्यासृतीयं तत्पितुःपितुः ॥ ५३ ॥

जिस कन्याके भाई और पिता न हो, उस कन्याका पिता किस जातिके था यह कन्या  
पुत्रिका है कि क्या यह शका करके बुद्धिमान् मनुष्य उसके साथ विवाह न करै ॥ ५१ ॥  
यद्यपि उस भाईहीन कन्याको मनुष्य अलंकृत करके यह कहकर दे कि “यह कन्या मैं  
तुम्हें देताहूँ इसके जो पुत्र होगा वह मेरा होगा” जो इस प्रतिज्ञासे कन्या विवाही जाय उसे  
पुत्रिका कहतेहैं ॥ ५२ ॥ पुत्रिका कन्यासे उत्पन्न हुआ पुत्र पहले माताको पिंडदान करै,  
दूसरा पिंड माताके पिताको दे, और तीसरा पिंड माताके बाबाको दे ॥ ५३ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितृन् ॥ अन्नदाता पुरोधश्च भोक्ता च  
नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥ अलाभे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ घृतेन  
प्राक्ष्णं कार्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य श्राद्धके समय मृदके पात्रमें पितरोंको जिमाताहै, उससे श्राद्धका कर्ता और  
पुरोहित, तथा भोजन करनेवाला यह तीनों नरकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ यदि पीतलआदिके  
पात्र न हों तब ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मृदके पात्रमेंभी भोजन करावै, और मृदके पात्र  
वाले शिडक लेनेपर वह पवित्र होजातेहैं ॥ ५५ ॥

श्राद्धं कृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुंजीत विह्वलः ॥ पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिंडो-  
दकाक्रियाः ॥ ५६ ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ॥  
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः ॥ ५७ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं आराध्य-  
यनमथुनम् ॥ दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥ अध्वगाभी  
भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ॥ कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीगमने च सुकरः ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके दूसरेके यथा श्राद्धमें व्याकुल होकर भोजन करताहै उसके  
पितर लुप्तपिंड और लुप्तउदकाक्रिय होकर नरकमें जातेहैं ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके

या दूसरेके भाद्रमें भोजन करके अधिकमार्ग पढवाहै उसके पितर उस एक महीनेतक पूजे जातेहैं ॥ ५७ ॥ भाद्र करके दुबारा भोजन, मार्ग बचना, बोल बठाना, पढना, राग, प्रतिग्रह, हवन और मैथुन इन भाठ कार्योंको त्यागदे ॥ ५८ ॥ भाद्रमें छाकर जो मनुष्य अधिक माग पढवाहै वह पोढा होसाहै, और जो दुबारा भोजन करताहै वह काक होजाहै, और जो कर्म करताहै वह धूर होजाहै, और जो बीससर्ग करताहै उसको सूकरकी बेरि मिलीहै ॥ ५९ ॥

दशकृत्वः पिवेदापः सावित्र्या चाभिमत्रिताः ॥

ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्धघेत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त कर्मोंको करनेबाछा वसवार गायत्री पढ जळ पिये और फिर सन्ध्यापासन करके सुख होजाहै ॥ ६० ॥

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्द्विर्जानुं च यत्कृतम् ॥

सर्वं तस्मिन्फलं कुर्याच्चप होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

गीळे वसोंको पहनकर जबवा घुतनोंसे दोमों हाम बाहर करके जो जप, हवन और प्रतिग्रह किया जाताहै वह उसका सब निष्फल होजाताहै ॥ ६१ ॥

चान्द्रायण नवभादे पराको मासिके तथा ॥ पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्पम्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥ ऊनाब्दिके द्विरार्द्रं स्यादेकाहं पुनराब्दिके ॥ श्रावे मास तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥

नवभाद्रमें भोजनकर चान्द्रायण प्रवकरै, मासिक भाद्रमें जीमकर पराक प्रव करै और डेढ महीनेके भाद्रमें और छै महीनेके भाद्रमें भोजन करके कृच्छ्र करै ॥ ६२ ॥ ऊनाब्दिके कर्में त्रिरात्र, और बरसीमें एकदिन प्रव करै और सबके असीचमें जातेबाछा एकमहीनेतक प्रव करे, जबवा कृच्छ्र करना कहाहै ॥ ६३ ॥

सपविभ्रतानां च ऋगिदाष्टिसरीसृपैः ॥

आरमनस्त्यागिनां चैव आद्रमेपां न कारयेत् ॥ ६४ ॥

जो ब्राह्मण सर्पके विपसे, या सीगवाळे सरीसृप इनसे मृगक होगयाहो जो अपनेसे त्याग गयाहै इनका भाद्र न करै ॥ ६४ ॥

गोभिर्हृतं तथोद्धृतं ब्राह्मणेन तु पातितम् ॥

तस्युक्षंति च ये विप्रा गोनाम्नाश्च भवति ते ॥ ६५ ॥

जो मनुष्य गौके आपातसे मृतक होगयाहै और जो रंधनसे मरगयाहै, या ब्राह्मणद्वारा जो निहत हुआहै इनके दाबका ओ स्वर्ग करताहै वह दूसरे जन्ममें गौ, बकरी, घोडा इनकी पोटिमें जन्म लेताहै ॥ ६५ ॥

अग्निदाता तथा श्वान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्धघति मनुराह प्रजापति ॥ ६६ ॥ ऋग्मुष्ण पिवेदापरुपहमुष्णं पय पिवेत् ॥ इयद् मुष्णं पूत पीत्वा चापुमक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

उनके दाहका कर्ता, और जो फाँसीका देनेवाला है, वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै । यह मनुका वचन है ॥ ६६ ॥ तीन दिनतक गरम जल, तीन दिनतक गरम दूध, तीन दिनतक गरम घी, और तीन दिनतक वायुको भक्षण करके रहै ॥ ६७ ॥

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥ यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्व्रह्मघा-  
तकम् ॥ ६८ ॥ उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मघातकः ॥ सर्वे ते शुद्धि-  
मृच्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥ ६९ ॥

गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, स्त्री, खेत, घर यदि इनको चुगाले, और जिससे दुःखी होकर मनुष्य प्राणोंको त्यागदे उसीको ब्रह्महत्यारा कहतेहैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य धर्म नष्ट करनेके उद्योगसे उद्यत होकर साथ २ जाताहै वनमें जो मनुष्य एकका धर्म नष्ट करताहै वह मनु-  
ष्यही एकही ब्रह्महत्यारा और पापी है, और सब शुद्ध हैं ॥ ६९ ॥

पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवैश्मनि ॥

स मासाद्धं चरेद्भारि मासं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥

पतित मनुष्यके यहाहा जो मनुष्य अन्नभोजन करै या चाडालके यहाका भोजन करै तो जो अज्ञानतासे भोजन कियाहो तो पंद्रह दिनतक, और जानबूझकर खायाहो तो एकही महीनेतक जलपान करै ॥ ७० ॥

यो येन पतितेनैव स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥

तैनैवोच्छिष्टसंपृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य जिस पतितका स्पर्श करनेपर स्नान करनेसे शुद्ध होताहै यदि उसीको उच्छिष्टे दृश्यामें स्पर्श कियाहो तो प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७१ ॥

ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पंचमः ॥ ७२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरने-  
वाला, और इनकी संगति करनेवाला यह पाच महापातकी कहेहैं ॥ ७२ ॥

स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥

कुर्वन्त्यनुग्रहं ये च तत्पापं तेषु गच्छति ॥ ७३ ॥

स्नेहके वशसे, वा लोभसे, वा भयसे, या दयासे जो पापका प्रायश्चित्त नहीं कराते वह पाप उनकोही लगताहै ॥ ७३ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंपृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ॥

तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचामेन शुचिर्भवेत् ॥ ७४ ॥

यदि उच्छिष्ट मनुष्यके द्वारा उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श होजाय तो उसी समय स्नानकर  
आचमन करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ७४ ॥

कुञ्जवामनपंडेषु गड्ढेषु जडेषु च ॥ जात्यन्धे वयिरे मूके न दोषः परिवेदने

॥ ७५ ॥ क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते ब्रजितेऽपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च

न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥



बहामार्ई यद्यपि कुनडा, बिछदिया, नपुसक, चोतळा, महामूर्जे, जन्मसे अथा, वहरा, गूंगा हो तो उसका विवाह न होनेपर छोटा मार्ई पहले विवाह करले तो इसमें दोष नहीं है ॥७५॥  
छीप, देहप्रंतरमें रहनेवाला, पवित्र, जिसने सन्यास धर्मको ग्रहण करलियाहो, और जो योगशास्त्रका अभ्यास करताहो ऐसे बड़े मार्ईके होवेहुए छोटामार्ई विवाह करले तो फोरे दोष नहीं है ॥ ७६ ॥

पूरणे कूपघापीनां वृक्षच्छेदनपातने ॥

विक्रीणीत गज चार्श्व गोवध तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य कुए या बावडीको पाटवे, वृक्षोंको काटबाड़े, हाथी या घोड़ेको बधताये उसको गावधका प्रायश्चित्त करना लिखित है ॥ ७७ ॥

पादेङ्गौमवपन द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥

तृतीये तु शिखावर्ज चक्षुर्ये तु शिखावप ॥ ७८ ॥

जिस स्थळमें एक पादके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वहां शरीरके सम्पूर्ण रोमोंको फटावे, और द्विपादमें बायीं मूर्खोंका छेदनकरावे, और त्रिपादमें शिखाके अविरिक्त सम्पूर्ण केशोंका और चौथे पादमें शिखासहित मुंडन करावे ॥ ७८ ॥

चण्डालोदकसस्पर्शं ज्ञानं येन विधीयते ॥ तैनयोच्छिष्टसंसृष्टं प्राजापत्य समाचरेत् ॥ ७९ ॥ चण्डालस्पृष्टभांडस्य यत्तोयं पिबति दिज् ॥ तत्सणाक्षि पते यस्तु प्राजापत्य समाचरेत् ॥ ८० ॥ यदि नोक्षिप्यते तोय शरीरे तस्य जीर्ण्यति ॥ प्राजापत्य न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपन चरेत् ॥ ८१ ॥ चरेत्सान्तपन विप्रं प्राजापत्यं तु क्षत्रियं ॥ तदर्धं तु चरद्वैश्यं पाद शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२ ॥

बाढाछके जलको छूकर स्नान करे और बधियष्ट ब्राह्मण यदि चांढाछके जलके छूके ही प्राजापत्य प्रवकरे ॥ ७९ ॥ यदि फोड़ ब्राह्मण चांढाछके पड़ेका या उसके पहाँके पात्रमें जल पीले तो जो वही समय ब्रह्मण करवे ही वह प्राजापत्य प्रवकरे ॥ ८० ॥ और जो यदि ब्रह्मण न करे और वह पपणाय तो सांतपन कृच्छ्र करे प्राजापरप करना ठीक नहीं ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण सांतपन, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य भ्रया प्राजापत्य करे, और शूद्रमाति चौधार्ई प्राजापत्य करे ॥ ८२ ॥

रजस्यला यदा स्पृष्टा शुना सूकरयापसे ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगम्येन शुद्धयति ॥ ८३ ॥ अज्ञानतः स्नानमायमा नाभेस्तु विशपत ॥ अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात्तदीयस्पर्शने मतम् ॥ ८४ ॥

यदि रजस्यला स्त्रीको कुत्ता, सूकर और काक यह छूले वा एक रात्रि उपवास करे पंचगम्यक पीनेस शुद्ध होती है ॥ ८३ ॥ यदि रजस्यला स्त्री अज्ञानसे किसीको गभितक छू तो स्नान करनेसेही उसकी शुद्धि है और गभिते ऊपर स्पृष्टकरनेपर तीनरात्र उपवास परतक लिखित है ॥ ८४ ॥

यालभैव दशाहे तु पंचत्य यदि गच्छति ॥

सद्य एव विगुह्येत नाशीच नोदकक्रिया ॥ ८५ ॥

बालक यदि जन्मदिनसे द्वादशदिनके बीचमेही मरजाय; तो उसी समय शुद्धि होजातीहै उसका अशौच और जलदान नहीं होता ॥ ८५ ॥

शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ॥

शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥

यदि मरणसूतकमे जन्मसूतक होजाय तो शेषदिनोंसे ही जन्मसूतककी शुद्धि होतीहै, और जन्मसूतकके दिनोंसे मरणसूतक निवृत्त नहीं होता ॥ ८६ ॥

षष्ठेन शुद्धयेतैकाहं पंचमे द्वयहमेव तु ॥

चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥

छठी पीढीमें एक दिनका, पाचवी पीढीमें दो दिनका, चौथीमें सातदिनका और तीसरीमें दशदिनका सूतक होताहै ॥ ८७ ॥

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ॥

आ दाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥ ८८ ॥

जा ब्राह्मण अग्निहोत्री नहींहै उसे मरणके दिनसेही अशौच लगताहै, और जो वेदोक्त अग्निहोत्र करताहै उसको दाहपर्यंतही अशौच लगताहै ॥ ८८ ॥

आमं मांस घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥

अन्यभांडस्थिता ह्येते निष्क्रांताः शुचयः स्मृताः ॥ ८९ ॥

कच्चा मांस, घृत, सहत, फलसे उत्पन्न स्नेहद्रव्य अर्थात् बादामका तेल इत्यादि यह अन्य मनुष्यके पात्रमेंसे अपने पात्रमें आनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ८९ ॥

मार्जनीरजसा सक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ॥

नवांभसि तथा चैव हंति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ९० ॥

मार्जनीके मुखसे निकलीहुई धूरि यदि स्नानके जलमें या वस्त्रके जलमें या घटके जलमें, वा नये जलमें लगजाय तो प्रथम क्रियेहुए पुण्य उसी समय नष्ट होजातेहैं ॥ ९० ॥

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु ॥

धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥

दिनमें कैथके वृक्षकी छायामें, रात्रिमें दही और सत्तूमें और सर्वदा आमलेके फलोंमें अलक्ष्मी निवास करतीहै ॥ ९१ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥

तत्रतत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तं धर्मशास्त्र समाप्तम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस २ कार्यमें अपनेको संकीर्ण ( पतित ) विचारै उसी २ कार्यमें तिलोसे हवन और आठसौ गायत्रीका जपकरै ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तधर्मशास्त्रभाषाटीका सम्पूर्णा ॥ १४ ॥

इति लिखितस्मृतिः समाप्ता ॥ १४ ॥

॥ श्री ॥

## अथ दक्षस्मृति १५

भापाटीकासमेता ।

—०००—

प्रथमोऽध्याय १

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दक्षस्मृतिप्रारम्भः ॥ सर्वशास्त्रायतत्त्वज्ञः सर्वविदवि-  
दां वरः ॥ पारगः सर्वविद्यानां दक्षोनाम प्रजापति ॥ १ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अर्थोंके जाननेवाले, सम्पूर्ण वेद और वेदके अंगोंको जाननेवालोंमें भेद,  
सम्पूर्ण विद्याओंके पारगों जाननेवाले दक्षनामक प्रजापति हुए ॥ १ ॥

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थितिः संहार एव च ॥ आत्मा चात्मनि तिष्ठेत् आत्मा  
ब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च धानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एतेषां  
तु हितायाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥

उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और संहार इनके करनेमें सामर्थ्यवान् जो आत्मा है वही दक्षके  
देहमें स्थित था, और उनका मग प्रलयमें स्थित था ॥ २ ॥ उन्हीं दक्षने ब्रह्मचारी, गृहस्थी,  
धानप्रस्थ, सन्यासी इन चारों वर्गोंके हितके निमित्त शास्त्रनामक धर्मशास्त्रको निर्माणकिया ॥ ३ ॥

जातमात्रं शिशुस्तापश्चावदष्टौ समा घय ॥ स हि गर्भसमो ज्ञेयो भ्यक्तिमा  
प्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥ भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते ॥ अस्मिन्वा  
ले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥ उपनीते तु दोषोस्ति क्षिप्यमा  
पर्विगर्हितः ॥

जपतक बाळककी अठ बरोंकी अवस्था न होजाय तबतक बाळकको उत्पन्नहुँए बाळककी  
समान ज्ञान, वह बाळक गर्भस्थित बाळककी समान है; इसका एक आकार मात्रही है  
॥ ४ ॥ जपतक बाळकका कनेरु न हो तबतक भक्ष्य, अभक्ष्य, पेय, अपेय, सस्य और  
असस्य इस बाळकको दोष नहीं है ॥ ५ ॥ पक्षोपवीत होजानेपर निश्चित क्रम करनेसु पापका  
भागी होता है,

अमासम्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ स्वीकरोति यदा षट् चरे  
देवप्रतानि च ॥ ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं छातो भवेद्गृही ॥ ७ ॥ द्विविधो  
ब्रह्मचारी स्यादुपफुर्याणको द्वय ॥ द्वितीयो नेष्टिकश्चैव तस्मिन्नेव प्रत  
स्थितः ॥ ८ ॥

जपतक साठई वर्षकी अवस्था न हो तबतक म्यवहारका अधिकारी नहीं होता ॥ ६ ॥  
जपतक वेदका पढ़े और वेदोक्त प्रतको करे तबतक वह ब्रह्मचारी कहाता है, इसके पीछे  
ज्ञातक होकर गृहस्थी होता है ॥ ७ ॥ ( पंडितोंने शास्त्रमें कनेरु प्रकारक ब्रह्मचारी कहे हैं )

परन्तु ब्रह्मचारी दो प्रकारके हैं एक तौ उपकुर्वाणक, दूसरा नैष्ठिक, जो जन्मभरतक ब्रह्मचर्यके व्रतमेंही स्थित रहै ॥ ८ ॥

यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥

न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य प्रथम गृहस्थाश्रममें स्थित होकर फिर ब्रह्मचारी होताहै, और जो यतीभी नहींहै और वानप्रस्थभी नहींहै वह सम्पूर्ण आश्रमसे भ्रष्ट है ॥ ९ ॥

अनाश्रमी न तिष्ठेत् दिनमेकमपि द्विजः ॥ आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ १० ॥ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा ॥ नासौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमाच्च्युतः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण एकदिनभी आश्रमसे हीन होकर न रहै कारण कि आश्रमशून्य होनेपर प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १० ॥ आश्रमरहित होकर जप, हवन, दान, और वेदपाठ इत्यादि द्विज जो कुछ कर्म करैगा उसका फल नहीं होगा ॥ ११ ॥

त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ॥

प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थआश्रम, वानप्रस्थआश्रम, इन तीनों आश्रमोंका आनुलोम्य है और प्रातिलोम्य नहींहै, इससे जो प्रातिलोम्यसे वर्तताहै उससेपरे अत्यन्त पापका कर्ता कोई नहींहै ॥ १२ ॥

मेखलाजिनदंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥ गृहस्थो दानवेदाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥ त्रिदंडेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

मेखला, मृगचर्म, दंड इनसे ब्रह्मचारी और गृहस्थी दान और वेद इत्यादिसे अनुलोम कर्मोंद्वारा वानप्रस्थ विदित होताहै ॥ १३ ॥ संन्यासी तीन दंडोंसे लक्षित होता है चारों आश्रमोंके यह पृथक् लक्षण हैं, जिस वानप्रस्थके यह लक्षण नहीं हों वह प्रायश्चित्तके योग्य है ॥ १४ ॥

उक्तं कर्म क्रमो नोक्तो न काल ऋषिभिः स्मृतः ॥

द्विजानां च हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋषियोंन कर्म कहाहै परन्तु क्रम और काल नहीं कहा, यह सम्पूर्ण कार्य द्विजोंके हितके निमित्त दक्षमुनिने स्वयं कहेहैं ॥ १५ ॥

इति दक्षस्मृतौ भाषाटीकाया प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्विजेन दिने दिने ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥

प्रातिदिन प्रात.काल उठकर द्विजोंको जो कर्म करना चाहिये वह उपकारी कर्म मैं सब कहताहूँ ॥ १ ॥

उदयास्तमित यावत् विप्रं क्षणिको भवेत् ॥ नित्यनेमिचिकित्सुक्तं फाम्येधा  
न्यैरगाहितं ॥ २ ॥ संध्याय धैश्वदेवांत स्वकं कर्म समाचरेत् ॥ स्वकं कर्म  
परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विज ॥ ३ ॥ अज्ञानादयथा लोभात्स तेन पतितो  
भवेत् ॥ दिवसस्पाद्यगागे तु कर्म तस्योपदिश्यते ॥ ४ ॥ द्वितीये च तृतीये  
च चतुर्थे पंचमे तथा ॥ षष्ठे च सप्तमे विष अष्टमे च पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥  
विभागेष्वेषु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

ब्राह्मणगण सूर्यदेवके उदयसे अठसक नित्यफाय, नैमित्तिकफाय और अन्य प्रकारके  
अनिय काम्यकर्मको रयागकर, क्षणकाळमी न बितावे ॥ २ ॥ जो ब्राह्मण सन्ध्या, षड्  
वैश्वदेव इत्यादि अपने कर्मोंका त्यागकर अन्य वर्षका फल करतावे ॥ ३ ॥ अज्ञान अथवा  
लोभस बह ब्राह्मण उच्च अन्यकर्मके करनेसे पतित होजाताहै, और ब्राह्मणको बिनके पाह्ले  
भागमें जो कर्म करता कहाहै ॥ ४ ॥ और दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें और  
आठवें भागमें पूयक् २ ॥ ५ ॥ इन भागोंमें जो कर्म कहाहै उन सबको कहाताहै।

उप काले च सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा ययार्यवत् ॥ ६ ॥ ततः ज्ञानं प्रकृयात्  
दन्तधावनपूर्वकम् ॥ अत्यस्तमस्त्रिंशत् कापो नवाच्छिद्वसमान्वित ॥ ७ ॥ क्षय  
त्येष दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विज्ञोघनम् ॥ क्षियति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि  
स्रवन्ति च ॥ ८ ॥ अगानि समतां याति उत्तमान्यधमे सह ॥ नानास्येद-  
समाकीर्णं शयनाद्दुत्थितं पुमान् ॥ ९ ॥ अस्त्रात्वा नाचरोऽक्रविश्वपद्मोमादिकं  
द्वज ॥ प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥ सप्तजन्मकृत  
पापं त्रिभिर्वैश्वेष्यपोहति ॥ उपस्युपसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवी ॥ ११ ॥  
प्राजापत्यं तनुस्य महापातफनाशनम् ॥ प्रातःस्नानं प्रशंसति दृष्टादृष्टकर्म हि  
तत् ॥ १२ ॥ सूर्यमर्हति पश्चान्ना प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥ गुणा  
दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः ॥ आरोग्यमायुश्च मनो  
नुरुद्धुः स्वप्रपातश्च तपश्च मेघा ॥ १४ ॥

अससमय प्रातःकाळ होजाय तब बन्धार्थ शौचकरके ॥ ६ ॥ पंचधावनके उपरान्त स्नान  
करे, नौ छिन्नोत्ते युक्त और अत्यन्तमधीन बह सरीर है ॥ ७ ॥ दिन और रात मङ्गुत्र  
इसमेंसे झरताहै, प्रातःकाळके स्नानकरनेसे इस शरीरकी शुद्धि होतीहै, जब मनुष्य सोजा  
ताहै, इससमय इन्द्रिय अस्त्रिको प्रातःहोतीहै, और झरतीहै ॥ ८ ॥ उत्तम अथवा समी अंग  
एक होजातेहैं और छानेसे उठहुमा मनुष्य बिबिध मांसिके पसीनोंसे पूर्ण होजाताहै ॥ ९ ॥  
ब्राह्मण बिना स्नानकिये कभी जप और हवनआदि न करे, जो द्वित प्रातःकाळकी उठकर  
स्नान करताहै ॥ १० ॥ इसके सात जन्मके कियेहुए पाप तीन दिनमेंही नष्ट होजातेहैं  
प्रतिदिन प्रातःकाळ सूर्योदय होनेपर सन्ध्याके समयका जो स्नान है ॥ ११ ॥ यह प्राजापत्य  
प्रकृते समान महापापोंका नाश करनेवाला है, प्रातःकाळका स्नान इसलोक और परलोकमें  
सुखका देनेवाला है उसकी प्रशंसा सभी करतेहैं ॥ १२ ॥ प्रातःकाळका स्नान कर मनुष्य  
बेवकी पवित्रतासे सम्भूय जपहोमआदिके करनेका अधिकारी होताहै ॥ १३ ॥ जो सज्जन

पुरुष स्नानमे तत्पर होताहै उसमे यह दशगुण विद्यमान होतेहैं, रूप, पुष्टता, बल, तेज, आरोग्य, अवस्था, दु.स्वप्नका नाश, धातुकी वृद्धि, तर्प और बुद्धि ॥ १४ ॥

स्नानादनंतरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते ॥ अनेन तु विधानेन स्वाचांतः शुचिता-  
मियात् ॥ १५ ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिवेदंबु वीक्षितम् ॥ संवृत्यांगु-  
ष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ १६ ॥ संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुप-  
स्पृशेत् ॥ ततः पादौ समभ्युक्ष्य अंगानि समुपस्पृशेत् ॥ १७ ॥ अंगुष्ठेन  
प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः  
॥ १८ ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद्वाहू  
चाग्रेण संस्पृशेत् ॥ १९ ॥ संध्यायां च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ॥ २० ॥  
हृत्माभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥ वैश्यः प्राशितयात्राभिर्जिह्वागां-  
भिः स्त्रियोत्रिजाः ॥ २१ ॥

फिर स्नानके उपरान्त आचमन करै, इस विधिके अनुसार आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र  
होजाताहै ॥ १५ ॥ पहले दोनों हाथ और दोनों पैरोंको धोकर तीनवार जलको देखकर  
पियै, फिर अंगूठेकी जडसे तीनवार मुपको पोंछै ॥ १६ ॥ और तीनअंगुली मिलाकर प्रथम  
मुखका स्पर्श करै; इसके पीछे पैरोंको छिडककर अंगोंका स्पर्शकरै ॥ १७ ॥ अंगूठे और  
प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्शकरै, इसके पीछे अंगूठे और अनाभिकासे वारंवार नेत्र और  
कानोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ अंगूठे और कनिष्ठिकासे नाभिका और हाथके तलसे हृदयका  
स्पर्शकरै, सम्पूर्ण अंगलियोंसे शिरका, और हाथके अग्रभागसे भुजाओका स्पर्शकरै ॥ १९ ॥  
सन्ध्याके समय, प्रात.काल और मध्याह्नके समयमें पूर्वोक्त आचमनकरै ॥ २० ॥ हृदयतक  
आचमनका जल पहुचनेसे ब्राह्मण, कंठतक पहुचनेसे क्षत्रिय, प्राशितमात्र जल पहुचनेसे  
वैश्य, और जिह्वातक जलके स्पर्शसे स्त्री और शूद्र पवित्र होतेहैं ॥ २१ ॥

संध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥ स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः  
श्वा चैव जायते ॥ २२ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदन्य-  
त्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥ २३ ॥ संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधी-  
यते ॥ स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥ २४ ॥ ऋत्विक्पुत्रो गुरुभ्रां-  
ता भागिनयोऽथ विट्पतिः ॥ एभिरेव हुतं यत्तु तद्हुतं स्वयमेव तु ॥ २५ ॥  
देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमंगलमीक्षणम् ॥ देवकार्यस्य सर्वस्य प्रवृत्तिं तु विधी-  
यते ॥ २६ ॥ देवकार्याणि प्रवृत्तिं मनुष्याणां तु मध्यमे ॥ पितृणाञ्चपराह्निं  
तु कार्याण्येतानि यत्नतः ॥ २७ ॥ पौर्वाह्निकं तु यत्कर्म यदि तत्सायमाचरेत् ॥  
न तस्य फलमाप्नोति वंध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ २८ ॥ दिवसस्याद्यभागे तु  
सर्वमेतद्विधीयते ॥ द्वितीये चैव भागे तु वेदाभ्यासो विधीयते ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण सन्ध्या उपासना नहीं करता वह जीताहुआही शूद्र है, और मरकर वह  
कुत्तेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ २२ ॥ सन्ध्याहीन मनुष्य नित्य अशुद्ध है, और वह सम्पूर्ण  
कर्मोंके अयोग्य है, वह जो कुछ कर्म करताहै उसका फल उसे नहीं मिलता ॥ २३ ॥

सम्प्राप्ते उपरान्त स्वयं हवन करना कहा है, कारण कि जो फल स्वयं होम करनेका है वह दूसरेसे करनेसे नहीं मिलता ॥ २४ ॥ ऋत्विजका पुत्र, गुरुभाई, मानसा, और राजा इन्होंने जो हवन किया है वह स्वयं कियेही की समान है ॥ २५ ॥ सम्प्राप्तापाना करने उपरान्त होम और देवपूजा करके गुरुकी पूजा और भगवद्गुरुओंका दर्शन करे, और देवकार्य मन्त्राहसे पहलेशी करना कहा है ॥ २६ ॥ देवकार्य पूर्वाह्ने, मनुष्योंके काय मन्त्राहमें, और पितरोंके कार्य मन्त्राहसे पीछे पमसहित करे ॥ २७ ॥ पूर्वाह्ने फर्तव्य कर्मका जो मनुष्य सायकालमें करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता, जिस मांति वर्षासीके भैरुमसे फल प्राप्तनहीं होता ॥ २८ ॥ दिनके प्रथम भागमें सम्प्राप्ता इत्यादि सम्पूर्ण कर्मको कर दूसरे भागमें बंधको पड़े ॥ २९ ॥

वेदाम्प्राप्तो हि विप्राणां परम तप उच्यते ॥ ब्रह्मपन्न स विक्षेपः पङ्कगसहि  
तस्तु यः ॥ ३० ॥ वेदस्वीकरण पूर्व विचाराम्यसनं जपः ॥ प्रदानं चिष शि  
प्येभ्यो वेदाम्प्राप्तो हि पंचधा ॥ ३१ ॥ समित्युपकुशादीनां स कालः  
समुदाहृतः ॥

ब्राह्मणोंको पङ्कगसहित वेदशास्त्रका अभ्यास पंचयज्ञकी समान है, और यही महातप है ॥ ३० ॥ प्रथम वेदका अभ्यास पांच प्रकारका है, एक जो गुरुके मुखसे वेदको सुना, दूसरा वेदका विचार तीसरा अभ्यास चौथा जप, पांचवां शिष्योंको पढ़ाना ॥ ३१ ॥ समित्ये, पुण्य, कुशा इत्यादिका समूह दूसरे भागमें करे,

तृतीये चिष भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ३२ ॥ माता पिता गुरुर्माया  
प्रजा दीनः समाभितः ॥ अभ्यागतोऽतिथिभ्यामि पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥  
ज्ञातिर्विभुजनः क्षीणस्तथाज्जायः समाभितः ॥ अन्योऽप्यधनयुक्तश्च पोष्यवर्ग  
उदाहृतः ॥ ३४ ॥ सार्वभौतिकमन्त्रार्थं फर्तव्यं तु विक्षेपतः ॥ ज्ञानविभ्रष्टः  
मदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसा  
धनम् ॥ नरकः पीडने तस्य तस्मात्पन्नेन तं भरेत् ॥ ३६ ॥ स जीवति य  
पथैको बह्वभिद्योपजीव्यते ॥ जीर्षतो मृतकास्त्वम्ये पुरुषाः स्वोदरंभरा ॥ ३७ ॥  
बह्वर्थं जीव्यते कैश्चिन्नुदुषार्थं तथा परैः ॥ आत्मार्येभ्यो न क्षक्रोति स्वोदरे  
प्रापि बुद्धितः ॥ ३८ ॥ दीनानापविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥  
अदत्तदाना जायते परभाग्योपजीविनः ॥ ३९ ॥ यद्दासि विशिष्टेभ्यो यज्जु  
होषि दिने दिने ॥ तत्ते विषमह मम्ये शेष कस्यापि रससि ॥ ४ ॥

तीसरे भागमें पोष्यवर्ग और जर्बकी विन्वा करनी फर्तव्य है ॥ ३२ ॥ माता, पिता, गुरु, श्री संतान दीन, समाभित, अभ्यागत, अतिथि और भ्राता इनको पोष्यवर्ग कहा है ॥ ३३ ॥ तथा जाति वैपु, अक्षयर्ष, जनाज सयाभित और भनी इन्हेंभी पोष्यवर्ग कहा है ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके निमित्त अन्नभ्रादि वगैरे और ज्ञानवान् मनुष्यको वे, जो इसके विपरीत करता है वह नरकमें जाता है ॥ ३५ ॥ पोष्यवर्गके पावन करनेसे उत्तम-

स्थान स्वर्गकी प्राप्ति होताहै, और पोष्यवर्गको पीडित करनेसे नरकमे जाताहै, इसकारण यत्नसहित पोष्यवर्गका पालन करै ॥ ३६ ॥ उसी मनुष्यका जीवन सार्थक है, जो कि बहुतोंका जीवनमूल है, और जो केवल अपनेही उदरभरनेमे आसक्त हैं वह जीतेहुएभी मृतककी समान है ॥ ३७ ॥ कोई मनुष्य तो बहुतोंके लिये ही जीवन धारण करतेहैं, और कोई मनुष्य केवल अपने कुटुम्बके लिये जीवन धारण करतेहैं और कोई अपनं उदर भरनेके लियेही दुःखी होकर अपने पालनमेभी समर्थ नहीं होते ॥ ३८ ॥ इसकारण अपनी वृद्धिकी इच्छा करनेवाला दीन, अनाथ और सज्जन इनको दान दे, कारण कि जिन्होंने दान नहीं दियाहै वह पराये भाग्यसेही जीविका निर्वाह करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥ जो बुद्धिमान् और सज्जनको दान करताहै, जो प्रतिदिन हवन करताहै वह धन्य है, और उसीको मैंभी धन्य मानताहूँ, जो धन दान वा हवनमें नहीं लगाता वह मनुष्य धनकी रक्षा करनेवाला है ॥ ४० ॥

चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥ तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रि-  
मे जले ॥ ४१ ॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥ तेषां मध्ये  
तु यन्नित्यं तत्पुनर्विद्यते त्रिधा ॥ ४२ ॥ मलापकर्षणं पश्चान्मंत्रवत्तु जले  
स्मृतम् ॥ संध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥ मार्जनं  
जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः ॥ उपस्थानं ततः पश्चाद्गायत्रीजप उच्यते  
॥ ४४ ॥ सविता देवता यस्य मुखमग्निस्त्रिपात्स्थिता ॥ विश्वामित्र ऋषिः  
दो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ४५ ॥

दिनके चौथे भागमें स्नानके निमित्त जल, तिल, फल और कुशा आदि लावै और नदी-  
आदिके अकृत्रिम जलमें स्नान करै ॥ ४१ ॥ स्नान तीनप्रकारका कहाहै, नित्य जो प्रतिदिन  
किया जाताहै, नैमित्तिक जो सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण इत्यादिमे कियाजाताहै, और काम्य  
जो स्वर्गादिकी कामनासे कियाजाताहै ॥ ४२ ॥ नित्य स्नानभी तीनप्रकारका है, जिस  
स्नानसे सम्पूर्ण शरीरका मैल धुलजाय इसका नाम मलापहरण स्नान है, इसके पीछे जलमे  
सकल्प करके मंत्रोंसहित जो स्नान कियाजाताहै यह दूसरा है, दोनों रीतिसे जो सन्ध्यामें  
स्नान किया जाताहै यही तीनप्रकारका स्नान हुआ ॥ ४३ ॥ जलके बीचमें मार्जन करै,  
प्राणायाम करै इसके पीछे स्तुतिकर गायत्रीका जपकरै ॥ ४४ ॥ जिस गायत्रीके  
सूर्य देवता हैं, मुख अग्नि, विश्वामित्र ऋषि, और त्रिपाद गायत्री छन्द है, वह गायत्री  
सर्वोत्तम है ॥ ४५ ॥

पंचमे तु तथा भागे संविभागो यथार्थतः ॥ पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोप-  
दिश्यते ॥ ४६ ॥ देवैश्वैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ॥ गृहस्थः प्रत्यहं  
यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४७ ॥ त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनि-  
रुच्यते ॥ सीदमानेन तैव सीदंतीहेतरे त्रयः ॥ ४८ ॥ मूलत्राणे भवेत्स्कन्धः  
स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः ॥ मूलैर्नैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ ४९ ॥ तस्मा-  
त्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ॥ राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च



सर्वदा ॥ ५० ॥ गृहस्थोपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ॥ नचैष पुत्र  
दारेण स्वकर्मपरिषर्जितः ॥ ५१ ॥ अहुत्वा च तथा जप्त्वा जदत्वा यश्च  
भुजते ॥ देवादीनामूर्त्ती भूत्वा दरिद्रश्च भवेत्तरः ॥ ५२ ॥ एष एष हि  
मुंकेन्नमपरोन्नेनमुज्यते ॥ नमुज्यते स एषैको यो भुक्ते तु समांशकम् ॥ ५३ ॥  
विभागशीलो यो नित्य क्षमायुक्तो दयालुकः ॥ देशतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स  
तु धार्मिकः ॥ ५४ ॥ दया लब्धा क्षमा भद्रा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ॥ गुणा  
यस्य भवंत्येते गृहस्थो मुख्य एष स ॥ ५५ ॥ सविभाग सत कृत्वा गृहस्थः  
शेषमुग्भवेत् ॥ भुक्त्वा तु सुखमास्याप तदन्नं परिणामयेत् ॥ ५६ ॥

दितके पांच भागमें यथायोग्य विभाग करे, पित्र, देवता, मनुष्य और कीट पतंग इनका  
विभाग करदे, यह पक्ष आपिने कहा है ॥ ४६ ॥ देवता, मनुष्य और कीट पतंग यह प्रतिदिन  
गृहस्त्रीद्वारा जीविका निर्बाह करतेहैं, इसकारण गृहस्थाभ्रमही भेष्ट है ॥ ४७ ॥ तीनों  
आश्रमोंकी योनि गृहस्त्रीकोही कहा है, संसारमें उसके पुत्री रहनेसे अन्य आश्रमी  
पुत्री होजातेहैं ॥ ४८ ॥ जिस मांति वृक्षकी मडकी रक्षाकरनेसे बाली और डालियोंसे  
पक्षे होजातेहैं, और एक जड़के नाश होनेसेही सब नष्ट होजातेहैं ॥ ४९ ॥ इसकारण पत्न  
सहित गृहस्त्रीकी रक्षा और उसके पूजा समा सर्वदा मान राजा और तीनों आश्रमी करें  
॥ ५० ॥ कर्ममें पराधन गृहस्त्री घरमें रहनेसेही गृहस्त्री नहीं होता, अर्थात् घर उसके  
बन्धन नहींहै, और जो गृहस्त्री अपने कर्मसे हीनहै वह भी पुत्रसे गृहस्त्री नहीं होता, अर्थात्  
पुत्र इत्यादि उसके नरकमें सहायक नहीं होते ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य हवन और अपने बिन  
किये भोजन करते हैं वह देवता और मनुष्य आदिके ऋणीहोकर दखिरी हातेहैं ॥ ५२ ॥  
कोई मनुष्य तो भ्रम जातेहैं और किसी मनुष्यको भ्रमही खाताहै; जो देवता आदिको  
सागरेकर खाताहै केवल बचीको खल नहीं खाता ॥ ५३ ॥ जिसका स्वभाव बांटकर खाने  
का है, जिसमें क्षमा और दया है वा जो देवता और अविधियोंका भक्त है वह गृहस्त्रीही  
धार्मिक है ॥ ५४ ॥ दया लब्धा क्षमा, भद्रा बुद्धि, त्याग, कृतज्ञता इतने गुण जिसमें  
विद्यमानहों वही अर्थात् गृहस्त्री है ॥ ५५ ॥ गृहस्त्रीको कथित है सपको बांटकर पीछे आप  
भोजनकर आत्मसहित उस भ्रमको पचावे ॥ ५६ ॥

इतिहासपुराणार्थं पृष्ठं वा सप्तम नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु षड्विंशत्या ततः  
पुनः ॥ ५७ ॥ होमं भोजनकृत्य च यथान्यद्गृहकृत्यकम् ॥ कृत्वा चैष ततः  
पश्चात्स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥ ५८ ॥ मदीपपश्चिमौ यामी वेदाम्यासेन ती  
नयेत् ॥ यामद्वयं शयानस्तु धृष्टसूयाय कल्पते ॥ ५९ ॥

दितका छत्र वा सातवां भाग इतिहास और पुराणादिके पाठसे बिचारे छोड़की यात्रा  
आठवें भागमें करे, इसके पीछे सम्पत्ता करनेको बाहर जाय ॥ ५७ ॥ फिर हवन, भोजनादि  
तथा जो कुछ परका काम काम हो उसके समाप्तकर इसप्रकार कुछ पड़े ॥ ५८ ॥ मदीपके  
पहले पिछे दोनों पक्षोंको वेदाभ्याससे ब्यतीत करे, और दोपहर शयनकरे, जो द्विज  
इसमांति आपत्त्य करताहै वह अश्रवणको मातहोताहै ॥ ५९ ॥

नैमित्तिकानि कर्माणि निपतन्ति यथायथा ॥ तथातथा तु कार्याणि न कालस्तु  
विधीयते ॥ ६० ॥ यस्मिन्नेव प्रयुंजानो यस्मिन्नेव प्रलीयते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन  
स्वाध्यायं च समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥

नैमित्तिक या काम्यकर्म जिस समय जिसभांति उपस्थित हो उसे उसी भावसे निर्वाह  
करै, स्वस्थकालकी प्रतीक्षा न करै ॥ ६० ॥ वेदके अभ्यासमें लगकर वेदमेही लीन होजा-  
ताहै, इसकारण यत्नपूर्वक वेदका अभ्यासकरना उचित है ॥ ६१ ॥

सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ॥

भुंजानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६२ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सर्वदा मध्यके दोनों पहरोमें हवनसे बचाहुआ जो घृत और भात है उसकाही भोजनकरै,  
यथासमय भोजन और शयन करनेसे ब्राह्मण कमी दु खी नहीं होता ॥ ६२ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

सुधा नव गृहस्थस्य ईषदानानि वै नव ॥ नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवैव  
तु ॥ १ ॥ प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव ॥ सफलानि नवान्यानि  
निष्फलानि तथा नव ॥ २ ॥ अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा ॥  
नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥

गृहस्थीको नौ अमृत, नौ ईषदान, नौ कर्म और नौ विकर्म कहेहैं ॥ १ ॥ और नौ गुप्त,  
नौ प्रकाशके योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल हैं ॥ २ ॥ सर्वदा नौ वस्तु अदेय हैं, यही नौ  
वस्तु गृहस्थीकी उन्नतिका कारण हैं ॥ ३ ॥

सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ॥ मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दत्त्वा चतु-  
ष्टयम् ॥ ४ ॥ अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः ॥ उपासनमनुब्रज्या  
कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥

अब नौ सुधावस्तुओंको कहताहूँ, यदि सज्जन पुरुष अपने घरपर आवे तौ मन, नेत्र,  
मुख, वाणी इन चारोंको सौम्य रखवै ॥ ४ ॥ इसके पीछे देखतेही चठ खडाहो आनेका  
कारण पूछे, प्रीतिसहित वार्तालाप करै, सेवाकरै, चलते समय पीछे २ कुछ दूर चलै, इसभांति  
नौओंको प्रतिदिन करै ॥ ५ ॥

ईषदानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ॥ पाद्शौचं तथाभ्यंग आश्रयः  
शयनानि च ॥ ६ ॥ किंचिद्दद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नगृहे वसेत् ॥ मृज्जलं  
चाथने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥

और यह नौ ईषत् ( तुच्छ ) ९ दान हैं, भूमि, जल, तृण, पैरवोना, उबटन, आश्रय,  
शय्या, ॥ ६ ॥ और अपनी शक्तिके अनुसार थोडा २ दे, कारण कि बिना भोजनके

गृहस्थिके परमे निवास मदीहे, और अधिधिके मदी या सब दे यह नौ ईपदान परमे सर्वदा होवेई ॥ ७ ॥

सध्या स्नान जपो होम\* स्वाध्यायो वेषताचनम्॥विश्वेदेव क्षमातिथ्यमुद्धृत चापि शक्तिः ॥ ८ ॥ पितृदेवमनुष्याणां दीनानायतपस्विनाम् ॥ गुरुमादापितृणां च संविभागो यथाहृत\* ॥९॥ एतानि नव कर्माणि

सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेषपाठ, देवताका पूजन, षष्ठि वैश्वदेव, अपना शक्ति मनु-सर वषत वेकर अतिथिका उत्कार, ॥ ८ ॥ और पितर, देवता मनुष्य, दीन, अनाथ, उपस्थी, गुरु, माता, पिता इन सबका यथारिचिसे विभाग ॥ ९ ॥ यह नौ कर्म हैं,

विकर्माणि तथा पुन\* ॥ १० ॥ अनृत पारदार्यं च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥ अगम्यागमनापेयपान स्तेय च हिंसनम् ॥ ११ ॥ अश्वीतकर्माधरणं भैत्रघर्मं यद्विष्कृतम् ॥ नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

और यह नौ विकर्म हैं ॥ १० ॥ कि झूठ, परार्थ की, अमस्यका भक्षण, अगम्यकी गमन पीनेके अयोग्य वस्तुका पान, चोरी, हिंसा ॥ ११ ॥ बेव्रहित कर्मोंका करना, भैत्रघर्मसे बाहर रहना, यह नौ कर्म निम्निक हैं इन सबको त्यागदे ॥ १२ ॥

पैशुन्यमनृतं माया काम क्रोधस्तथाऽभिमियम् ॥ द्वेषो दम् परद्रोह\*

और पुगळी, झूठ, माया, काम, क्रोध, अभिय, इप, वंम, वूसयेंते द्रोह, येमी नौ विकर्म-की हैं इन सबकोभी त्यागदे,

प्रच्छन्नानि तथा नव ॥ १३ ॥ आयुर्विचि गृहच्छिद्धं मत्रो भियुर्नभियजे ॥ तपो दानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ १४ ॥

नौ प्रच्छन्न ये हैं कि, ॥ १३ ॥ अकस्या, धन परका छिद्र मन्त्र, भैशुन, भेषज, तप, दान, अपमान यह नौ सर्वदा छिपाने योग्य हैं ॥ १४ ॥

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाप्यनविक्रया\* ॥ कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापम कुत्सनम् ॥ “प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाभमिणस्तथा” ॥ १५ ॥

और प्रायोग्य कर्म ( अर्थात् अचमर्जने अचमर्जको अजनेना) अणकी शुद्धि, (बापीस देवेना) दान, पहना बेचना कन्याका दान, वृषोत्सर्ग, प्रकाशमें कियाहुआ पाप, और अर्निहा, ये नौ प्रकाशित करें ॥ १५ ॥

मातापित्रोर्गुंरी मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥

दीनानायविशिष्टेषु दक्ष तत्सफल भवेत् ॥ १६ ॥

माता पिता, गुरु, मित्र, नन्न, उपकारी दीन, अनाथ, सज्जन इनको देना सच्छ है ॥ १६ ॥

पूर्वं वंदिनि मध्ये च कुर्वीर्ये क्लिये श्लेठे ॥

षाडुच्चारणचोरेभ्यां दत्तं भवति निष्कलम् ॥ १७ ॥

और पूर्व, मन्दी मद्य कुर्वीर, कपटी, श्लेठ, चाट, चारण और इनका देना निष्कल है ॥ १७ ॥

सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ॥ अन्वाहितं च निक्षेपं सर्वस्वं  
चान्वये सति ॥ १८ ॥ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ॥ यो  
ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

इकट्टी भिक्षा, न्यास, कोश, स्त्री और स्त्रियोंका धन, अन्वाहित, निक्षेप, और वंशके  
होते सर्वस्व यह नौ वस्तुएँ आपत्तिकाल आजानेपरभी देनी उचित नहीं, उन्हें देनेवाला मूर्ख  
है और वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥

नवनवकवैत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ॥

इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव सुंचति ॥ २० ॥

इन पूर्वोक्त नवनवक इक्यासीको जो मनुष्य जानताहै वह मनुष्योंका अधिपति है; उसको  
नीति इस लोक और परलोकमें नहीं छोडती ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ॥ सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि  
तथा परे ॥ २१ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किञ्चिक्त्रियते परे ॥ यत्कृतं तु  
पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने सुखकी अभिलाषा करताहै वह अपनेही समान दूसरेकोभी देखै कारण  
कि जिस भांति सुख दुःख अपनेको होताहै उसी भांति दूसरेकोभी होताहै ॥ २१ ॥ जो सुख  
दुःख दूसरेके लिये किया जाताहै वह सब अपनी आत्मामेंही आकर प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ॥ क्रियाहीने न धर्मः स्याद्दर्शहीने  
कुतः सुखम् ॥ २३ ॥ सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ॥ तस्माद्धर्मः  
सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

और क्लेशके विना पाये धन नहीं मिलता और विना धनके कर्म नहीं होता, कर्महीने  
मनुष्यसे धर्म नहीं बनता, धर्महीनको सुख नहीं मिलता ॥ २३ ॥ सुखकी अभिलाषा सभी  
करतेहैं, और वह सुख धर्मसेही मिलताहै, इसकारण सम्पूर्ण वर्णोंको यत्नसहित धर्म करना  
उचित है ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥ दानं हि विधिना देयं काले पात्रे  
गुणान्विते ॥ २५ ॥ समद्विगुणसाहस्रमानन्यं च यथाक्रमम् ॥ दाने फलवि-  
शेषः स्याद्विसायां तावदेव तु ॥ २६ ॥

आर जो धन न्यायसे प्राप्तहुआहै उस धनसे परलोकके कर्म करने उचित हैं, और उत्तम  
अवसरमें विधिसहित सुपात्रको दानदे ॥ २५ ॥ उस दानका फल क्रमानुसार सम, दूना,  
सहस्रगुना और अनन्त इस भांति विशेषरीतिसे होताहै और उतनाही हिंसामें पापकी वृद्धि  
जानलेना ॥ २६ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्य्ये त्वनंतं वेदपारगे  
॥ २७ ॥ विधिहीने यथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥ न केवलं तद्विनश्ये-  
च्छेषमप्यस्य नश्यति ॥ २८ ॥

ब्राह्मणसे अन्यको देना सम है, अर्थात् अथवा दिया बतनाही बसकर फल है, और ब्राह्मणमुक्के देनेसे पुण्या है, आचार्यको देनेसे सहस्रपुना, और जो देवके पारको जानवाही बसके देनेसे अर्ध फल होताहै ॥ २७ ॥ और जो पात्र विधिसे हीन है उसे जो प्रतिग्रह दियाजाताहै वही केवल धर्म नहीं है बरन उक्त शेषदानमा नष्ट होजाताहै ॥ २८ ॥

व्यसनप्रतिकारार्थं कुटुम्बार्थं च याचते ॥

पृथमन्विष्य दातव्यमन्यया न फलं भवेत् ॥ २९ ॥

कुलके दूर करनेके लिये और जीवनक लिये जो मांगे उसको दूँडकरभी दे वह विधि है ॥ २९ ॥

मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥ यः स्थापयति तस्येह पुण्यसम्पत्ता न विद्यते ॥ ३० ॥ यच्छ्रेयो नामिहोत्रेण नामिष्टोमेन लभ्यते ॥ तच्छ्रेयं प्राप्तुपादिभ्यो विभ्रेण स्थापितेन वै ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य माता पितासे हीन किसीभी ब्राह्मणका संस्कार तथा विवाहभादि करकर गृहस्वधर्ममें स्थितकरताहै उसके पुण्यकी सहाय नहीं हो सकती ॥ ३० ॥ जो कस्याप अग्नि होत्र और अग्निष्टोम यज्ञके करनेसे नहीं मिलता उस कस्यापके वही ब्राह्मण प्राप्तकरताहै जो अपरोक्त प्रकारसे विवाहादि संस्कार करकर अपने कर्ममें स्थित है ॥ ३१ ॥

यद्यदिष्टतमं लोके यन्मात्मदयितं भवेत् ॥

तत्तद्गुणवते देयं तदेषाक्षयमिच्छता ॥ ३२ ॥

इति श्रीवासे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो अपनेको ससारायें इष्ट और प्रिय है उसी २ वस्तुको अथवा पुण्यकी अभिलाषा करनेवाला गुणवान् मनुष्य दान करे ॥ ३२ ॥

इति श्रीब्रह्मसूत्री भाष्यटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४

पत्नीमूलं गृहं पुसां यदि च्छंदानुवर्तिनी ॥ गृहाभमात्परं नास्ति यदि भार्या घशानुगा ॥ १ ॥ तथा घमाथकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ २ ॥

पुत्रोंकी स्त्रीही गृहाभममा मूल है यदि स्त्री आशाकारिणी हो, तथा बहामें हो तो गृह-स्थाममसे दरे और काह भद्र सुखका साधन नहींहै ॥ १ ॥ यदि स्त्री बहवर्तिनी है तो पुत्रव स्त्रीके साथ धर्म अध, काम इन तीनों बर्गोंके फलको भोगताहै ॥ २ ॥

प्राकाम्ये यत्तमाना या श्रहासं तु निवारिता ॥

अयस्या सा भयत्पश्चाद्यया व्याभिरुपसिता ॥ ३ ॥

यदि स्त्री इच्छानुसार नहीं करनेवासी है बस स्त्रीमें पुत्रव स्त्रेके बसके निवारण नहीं करे तो वह स्त्री फिर विप्रबुद्ध कायूमें बाहर होजातीहै, तिस अति अस्वयोगके दानेपर बसकी विव्रिता न करनेसे पीछे वह बड़ा कष्टदायक होजाताहै ॥ ३ ॥

अनुकूला नवाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा ॥

आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥ ४ ॥

जो स्त्री स्वामीके अनुकूल आचरण करती है वाक्यदोपरहित ( अर्थात् विनययुक्त भाषण करनेवाली ), कार्यमें कुशल, सती, मीठे वचन बोलनेवाली और जो स्वयंही धर्मकी रक्षा करती है और पतिमें भक्ति करनेवाली है वह स्त्री मनुष्य नहीं वरन देवताकी समान है ॥४॥

अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य इहैव हि ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥ ५ ॥ स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ॥ रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तदा कष्टतरं नु किम् ॥ ६ ॥ गृहवासः सुखार्थो हि पत्नीमूल च तत्सुखम् ॥ सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥ ७ ॥ दुःखायान्या सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ८ ॥ जलौका इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ॥ सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति ॥ ९ ॥ जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ॥ इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ १० ॥ साशंका बालभावे तु यौवनेऽभिमुखी भवेत् ॥ तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥ ११ ॥ अनुकूला त्वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ॥ एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥ १२ ॥ प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ॥ भर्तुः प्रीतिकरी या तु भार्या सा चेतरा जरा ॥ १३ ॥

जिस पुरुषकी स्त्री वशमें है वह इसीलोकमें स्वर्ग भोगताहै, और जिसकी स्त्री वशमें नहींहै वह नरक भोगताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ स्वर्गभी एक दुर्लभ पदार्थ है स्त्री पुरुषोंमें परस्पर प्रेम होना, स्त्री पुरुषोंमें एक अनुराग करनेवाला और एक विरक्त हो, तो इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ॥ ६ ॥ गृहस्थाश्रममें निवास केवल सुखकेही लिये है, परन्तु गृहस्थाश्रममें स्त्रीही सुखका मूल है, जो स्त्री विनययुक्त और मनके भावको जानतीहै और जो वशमें है वह यथार्थ स्त्री कहनेके योग्य है ॥ ७ ॥ उपरोक्त गुणोंके विपरीत स्वभाव होनेपर स्त्रियें केवल दुःख भोगतीहैं और उनका मन सर्वदा दुःखी रहताहै; पुरुषोंकी स्त्रीही यदि प्रतिकूल आचरणकरनेवाली है, तौ परस्परमें चित्त नहीं मिलता, यदि पुरुषके दो स्त्री हों तौ दोनोंका चित्त दुःखी रहताहै ॥ ८ ॥ सब स्त्रियें जलौकाकी समान हैं, अलंकार, चम्र, और अन्न इत्यादिसे भलीभांति पालित होनेपर सर्वदा पुरुषोंके रक्तशोषण करतीहैं ॥९॥ वह क्षुद्र जलौका केवल रक्तशोषण करती है, परन्तु स्त्रीरूप जलौका पुरुषोंके रक्त, धन, मांस, वीर्य, बल, और सुख सबका शोषण करतीहै, अर्थात् स्त्रियें पुरुषोंको एक दंड ( घडी ) भी स्वच्छन्दतासे नहीं रहने देती ॥ १० ॥ जब परस्परमें दोनोंकी अवस्था अल्प है तब स्त्रियोंको सर्वदा शंका रहती है, जब परस्परमें दोनोंकी युवा अवस्था होजातीहै तब स्वामीके प्रति स्त्रीका टेढापन ( रोप ) होताहै, अर्थात् इच्छानुसार न चलतीहै और जब स्वामीकी अवस्था वृद्ध होजातीहै तब उसको तृणकी समान तुच्छ जानतीहै ॥ ११ ॥ जो स्त्री पतिके वशमें है, वाक्यदोपसे रहित है, (अर्थात् विनययुक्त भाषण करनेवाली हो,) कर्ममें दक्ष, सती

और पतिव्रता है, और यह सम्पूर्ण गुण जिस स्त्रीमें विद्यमान है वह स्त्री निश्चयही छद्मीका स्वरूप है ॥१२॥ जो स्त्रियें सबदा प्रसन्नचित्त रहती हैं स्वान और मानकी ज्ञाता स्वामीमें प्रीति करनेवाली गृहोपकरण, द्रव्योंमें अथस्मान और परिमाणविषयमें अमिद्वह स्त्रीही स्त्री करनेके योग्य है और जिसमें यह गुण न हों वह केवल क्षरीरको धारण करनेवाली अरास्वरूप है ॥१३॥

शिष्यो भायां शिशुर्घाता पुत्रो दास समाभित ॥

यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥ १४ ॥

जिस गृहस्थके शिष्य, स्त्री, बालक, माई, मित्र, दास और आभित नियमसहित बच्चे हैं उसका संसारमें गौरव होता है ॥ १४ ॥

प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी ॥ दृष्टमेष फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते

॥ १५ ॥ धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ॥ दोषे सति न दोष

स्यादन्या भार्या गुणान्विता ॥ १६ ॥

पहली विवाही हुई स्त्री धर्मपत्नी है, दूसरी विवाहिता स्त्री केवल रति बढ़ानेके निमित्त है, उस स्त्रीका फल केवल इस लोकमें ही है परलोकमें नहीं ॥ १५ ॥ यदि पहली विवाहिता स्त्रीमें कोई दोष नहीं हो तो उसे धर्मपत्नी कहेंगे, और यदि उसमें कोई दोष हो और दूसरी स्त्रीमें कोई गुण हो तो दूसरे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होगा ॥१६॥

अदुष्टाऽपतिता भार्या यौषणे यं परित्यजेत् ॥

स जीवति स्त्रीत्वं च पृथग्यत्वं च समाप्नुयात् ॥ १७ ॥

जो पुरुष दोषरहित विना पतिव्रता स्त्रीको यौषणमन्त्रसे स्वागत्य है, वह पुरुष मर कर स्त्रीयानिको प्राप्त हो वैश्वत्यको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

दरिद्रं व्याधितं वैश्व भर्तारं यावमन्यते ॥

शुनी गुप्ती च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १८ ॥

जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पतिका विरस्कार करती है वह स्त्री, कुपिया, गीषनी, मकरी वार-वार होती है ॥ १८ ॥

मृते भर्तारि या नारी समारोहेद्दुतासनम् ॥ सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोकं

महीयते ॥ १९ ॥ श्यालब्राह्मी यथा श्यालं बलाद्बुद्धरते विलात् ॥ तथा सा

पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ २० ॥ अण्डालप्रत्यक्षितपरिम्राजकतापसा ॥

तेषां जातान्यपत्यानि अण्डालैस्सह वासयेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीब्राह्मे धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और पतिके मरनेके उपरान्त जो स्त्री सती होजाती है वह धर्म आचरण करनेवाली होती है, और स्वर्गमें देवताओंसे पूजित होती है ॥ १९ ॥ सर्पका पकड़नेवाला भिन्नमें से जिस प्रकार सर्पको निकालता है उसी प्रकार वह स्त्री पतिका बद्वार कर उसके साथ आसक्त होती है ॥ २० ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, संन्यासी और वापस इनके उत्पन्न हुए संतानोंको ब्राह्मणके साथ ही रखे ॥ २१ ॥

इति श्रीब्रह्मसूक्तो माधवीकानो अष्टादशोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

उक्तं शौचमशौचं च कार्यं त्याज्यं मनीषिभिः ॥

विशेषार्थं तयोः किञ्चिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

शुद्धिमानोंमें शौचको करना और अशौचका त्याग जो कहाहै, उनदोनोंको हितकी इच्छासे मैं विशेषतासे कहताहूँ ॥ १ ॥

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥ शौचाचारविहीनस्य सम-

स्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ २ ॥ शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथांतरम् ॥ ३ ॥ अशौचाद्धि वरं बाह्यं

तस्मादाभ्यन्तरं वरम् ॥ उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरःशुचिः ॥ ४ ॥

शौचके विषयमें सर्वदा यत्नकरना कर्तव्य है ब्राह्मणोंके पक्षमें शौचही सम्पूर्ण धर्म और कर्मोंका मूल है, शौच आचाररहित हुए ब्राह्मणोंके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजातेहैं ॥ २ ॥

शौच दो प्रकारका है एक तो बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर. मट्टी और जलसे बाह्य शौच होता है और मनकी शुद्धिसे आन्तरिक शौच होताहै ॥ ३ ॥ अशौचमें बाह्य शौच श्रेष्ठ है, और बाह्य शौचसे आन्तरिक शौच श्रेष्ठ है, जो इन दोनोंसे शुद्ध है वही शुद्ध है दूसरा नहीं ॥ ४ ॥

एका लिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ॥ उभयोः सप्त दातव्या मृदस्ति-

क्षस्तु पादयोः ॥५॥ गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥ द्विगुणं त्रि-

गुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥

बाह्य शौचका नियम कहताहूँ, प्रथम मलत्याग करनेके विषयमें जो करना कर्तव्य है उसे श्रवणकरो. लिंगको एकवार, गुदामें तीनवार वा दोनोंमें तीन या चारवार, और बाये हाथमें दशवार तथा दोनों हाथोंमें सातवार और दोनों पैरोंमें तीनवार मट्टी लगावै ॥ ५ ॥ यह शौच गृहस्थियोंको कहाहै, ब्रह्मचारियोंको दुगुना वानप्रस्थको तिगुना, संन्यासीको चौगुना करना कहाहै ॥ ६ ॥

अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ॥ द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा

परिकीर्तिता ॥ ७ ॥ लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वा पूर्यते यया ॥ एतच्छौचं

गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च

चतुर्गुणम् ॥ दातव्यमृदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥ ९ ॥

गुदामें तीनवार मिट्टी लगानेको कहाहै, इससे पहलीवार मट्टी आधी पस्सीकी बराबर और दूसरी तीसरी वारमें उस्सेभी आधी हो ॥ ७ ॥ और तीन अंगुल भरजाय इतनी मट्टी लिंगमें लगावै यह शौचका परिमाण गृहस्थियोंके लिये कहाहै, ब्रह्मचारियोंको इससे दुगुना करना उचित है ॥ ८ ॥ वानप्रस्थोंको तिगुना, और संन्यासियोंको चौगुना कहाहै, इतना जल लगावै जिससे मट्टीका लेप दूरहोजाय ॥ ९ ॥

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च ॥

न जलकान्तिं यथासम्भवे देवं मासो न निर्मलः ॥ १० ॥



जिन पुठपोंका अन्व'करण शुद्ध नहीं है वह दुष्टात्मा हजार बार मट्टीसे ब सौ घण्ड उछले भी छुट नहीं होसके ॥ १० ॥

भूदा तोयेन शुद्धिं स्यान्न क्लेशो न धनम्यय' ॥

यस्य शौचेपि शैयित्य चित्त तस्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥

मट्टी और उछसेही शुद्धि होवाहै, कुछ धन खर्च नहीं होवा और न कुछ छुट होवाहै ( इसकारण शौचके विषयमें यत्नकरना उचित है ) जिनका शौचके विषयमें ध्यान नहींहै, वह धर्मकर्ममें प्रवृत्त नहींहै ॥ ११ ॥

अन्यदेश दिवा शौचमन्यद्वाप्री विधीयते ॥ अन्यदापदि निर्दिष्ट ह्यन्यदेश एना पदि ॥ १२ ॥ दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्ध विधीयते ॥ तदर्धमातुरस्या दुस्वरायां त्वर्द्धमध्वनि ॥ १३ ॥

जो शौच कशागयाहै वह दिनमें करना कर्तव्य है, रात्रिके समय अन्यप्रकारका करना कर्तव्य है; जाहणोंको आपत्तिकाछमें एकप्रकारका और स्वत्यकाछमें अन्य प्रकारका शौच करना कर्तव्य है ॥ १२ ॥ दिनमें जो शौच कशागयाहै, उससे आधा शौच रात्रिके समय करनेसे शुद्ध होजावाहै रोगी मनुष्यके छिये जो शौच रात्रिमें कशागयाहै उससे आधा कशाहै अर्थात् दिनके शौचका एकपाद करनेसेही शुद्ध होजाताहै, विद्वेस जानेके समय मार्गमें अतिशीघ्रवाके कारण एकपादसे आधा शौच करनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम् ॥

तदर्धं चातुरे काले पयि शुद्धवदाचरेत् ॥ १४ ॥

जिस कर्मको दिनमें करनेके छिये कहाहै उससे आधा रात्रिमें करे, और शुजाबस्त्रामें उसका आधा करे, और मार्गमें शूद्रकी समान आचरण करना योग्य है ॥ १४ ॥

न्यूनधिकं न कर्तव्य शौचं शुद्धिमभीप्सवा ॥

प्रायश्चित्तेन युज्येत विहिताऽतिक्रमे कृते ॥ १५ ॥

इति श्रीदक्षे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिससमय, जिस स्थानमें जितना शौच कशागयाहै उससे अल्प या अधिक करना उचित नहीं, न्यून या अधिक शौच करनेसे शुद्ध नहींहोवा जो इस विधिको वर्तमान करताहै वह प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ मातृदीक्षायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### पष्ठोऽध्यायः ६

अशौचं तु प्रथमपामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ॥

माषज्जीव तृतीयं तु यथावदनुपर्यसः ॥ १ ॥

जब जन्म और मरणमें जो अशौच होताहै और जीवमपर्यन्त जो अशौच होताहै, ऐसे तीन अशौच शास्त्रमें अष्टहूप हैं जिनको लक्ष कहावाहू ॥ १ ॥

सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्त-  
थैव च ॥ २ ॥ मरणांतं तथा चान्यद्दश पक्षास्तु सूतके ॥ उपन्यासक्रमेणैव  
वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥

सद्यःशौच, एकदिन, दोदिन, तीनदिन, चारदिन, छैः दिन, दसदिन, बारहदिन, पन्द्रह  
दिन और एकमास ॥ २ ॥ और मरणपर्यन्त यह दस पक्ष सूतकमें हैं, वर्णके क्रमसे इन  
सबको मैं कहताहूँ ॥ ३ ॥

अर्थार्थतो विजानाति वेदमंगैः समन्वितम् ॥ सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न  
सूतकी ॥ ४ ॥ राजर्त्विग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा ॥ व्रतिनां सत्रिणां  
चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥ एकाहस्तु समाख्यातो योमिवेदसमन्वितः ॥  
हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ ६ ॥ जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन  
भूमिपः ॥ वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ अस्नात्वाचम्य  
जप्त्वा च दत्त्वा हुत्वा च भुंजते ॥ एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम्  
॥ ८ ॥ व्याधितस्य कर्दर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्री-  
जितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्रद्धा-  
त्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥ न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं  
तु सूतकम् ॥ एवंगुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥

षडङ्गसहित कल्प और रहस्यसहित वेदको जो मनुष्य जानताहै जो मनुष्य वेदोक्त कर्मकां-  
डको करताहै उसको सूतक नहीं होता ॥ ४ ॥ राजा, ऋत्विज्, दीक्षित, बालक, परदेशमें  
जो रहताहो, व्रती, सत्री इनको सद्यःशौच कहाहै ॥ ५ ॥ जो वेदपाठी और अग्निहोत्री  
ब्राह्मण है उसे एकदिनका, हीनको तीनदिनका और अधिक हीनको चारदिनका अशौच होताहै  
॥ ६ ॥ जो मनुष्य जातिमात्रका ब्राह्मण है उसे दशदिनका, क्षत्रियको बारह दिनका, वैश्यको पंद्रह  
दिनका और शूद्रको महीनेका अशौच होताहै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य स्नान, आचमन, जप, दान  
और विना हवनके किये भोजन करतेहैं उन सबको जीवनपर्यन्त अशौच होताहै ॥ ८ ॥  
रोगी, कायर, कृपण, ऋणी, क्रियाकर्मसे हीन, मूर्ख और जिसे स्त्रीने जीतलियाहो ॥ ९ ॥  
जिसका चित्त सर्वदा व्यसनमें आसक्त हो और जो नित्य पराये आधीन रहताहो जो श्रद्धा  
और त्यागसे हीन हो उसका भस्मांत सूतक होताहै ॥ १० ॥ सूतक कभी नहींहै और जीनेतक  
सूतक है इसप्रकार गुणकी विशेषतासे सूतक कहाहै ॥ ११ ॥

सूतके मृतके चैव तथाच मृतसूतके ॥

एतत्संहतशौचानां मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि जन्मसूतकमें मरणसूतक और मरणसूतकमें जन्मसूतक होजाय तो दोनोंकी शुद्धि  
मरण अशौचके साथ होजातीहै ॥ १२ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥ दशाहात् परं शौचं विप्रोर्हति च  
धर्मवित् ॥ १३ ॥ दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् ॥ मृतकानि

मृतो यस्तु सूतकति च सूतकम् ॥ १४ ॥ एतत्सहतशीचानां पूषाशीचेन  
शुद्धपति ॥ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्न न भुज्यते ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, दान, वेदपाठ सूतकमें इन सबका नियेच है, धर्मज्ञ ब्राह्मण पञ्चदिनके  
उपरान्त शुद्धि प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ उससमय विभिपूर्वक दानकरना उचित है कारण कि  
यह दानही धर्मगण्डसे उद्धार करता है, मरणाशौचके बीचमें जो मरण अशौच होजाय अथवा  
जन्मसूतकके बीचमें जन्मसूतक होजाय ॥ १४ ॥ तौ इन एकत्रद्वय सूतकमें पूर्व अशौ  
चके क्षेपनिर्गमने शुद्धि होजाती है; दोनों सूतकमें दशदिनतक शुद्धका अभि मोजन न करे ॥ १५ ॥

चतुर्थेऽदि कर्त्तव्यमस्त्रिसंचयनं द्विजैः ॥

तत संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥

विद्वान् मनुष्य चौथेदिन अस्त्रिसंचयन न करे फिर अस्त्रिसंचयनके उपरान्त अंगका  
स्पर्श करे ॥ १६ ॥

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ॥ दशपदुष्पहमेकाहं प्रसवे सूतक  
भवेत् ॥ १७ ॥ स्वस्पर्शकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् ॥ आपत्तस्य  
सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

यदि एक पतिके अनुलोमके क्रमसे चार स्त्री हो तौ उन स्त्रियोंकी सन्तान होनेके सूतकमें  
पतिको क्रमसे दसदिन, छैः दिन, तीनदिन, वा एकदिनका सूतक होता है ॥ १७ ॥  
यह सम्पूर्ण अशौच स्वस्य अथस्यामे कहा है, आपत्तिकात्मने सूतकके समयमेंही सूतक  
नहीं होता ॥ १८ ॥

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताप चिपेत वा ॥ पूर्वसकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र  
विद्यते ॥ १९ ॥ यज्ञकाले विवाहे च देवयाने तथैव च ॥ ह्यमाने तथा  
वामौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

इति वाचे धर्मस्यैव पण्डोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यज्ञके होनेके समयमें यदि कोई जन्म वा मृतक होजाय तौ पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोष  
रही है ॥ १९ ॥ यज्ञके समय, विवाहमें, और देवयान तथा अभिशोत्रमें अशौच और सूतक  
होनों नहीं होते ॥ २० ॥

इति ब्रह्मसूतो मत्तादीकानां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्याय ७

लौका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृताः ॥

इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रवर्षीम्यहम् ॥ १ ॥

जिससे जन्तु वशमें कियाजाता है, जिसके द्वारा आत्मा वशीकृत होता है जिससे इन्द्रियें  
जीतीजाती हैं वही योगकी कलाको कहा है ॥ १ ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं मत्पाहारोऽप्य धारणा ॥

तर्कश्चैव समाधिश्च पदगो योग उच्यते ॥ २ ॥

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क, समाधि ये जिसके छैः अंग हैं उसीको योग कहतेहैं ॥ २ ॥

मैत्रीक्रियामुदे सर्वा सर्वप्राणिज्यवस्थिता ॥

ब्रह्मलोकं नयत्याशु धातारामिव धारणा ॥ ३ ॥

सब प्राणियोंमें आनंदकी जो एक क्रिया है वह ब्रह्मलोकमें इसभांति लेजातीहै जिसभांति धारणा ब्रह्माको ॥ ३ ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथार्चितनात् ॥ व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्य-  
चिद्भवेत् ॥ ४ ॥ नच पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ॥ नच शास्त्रा-  
तिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित् ॥ ५ ॥ न मंत्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ॥  
लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥ ६ ॥

वनमें निवास, अनेक ग्रंथोंका विचार, व्रत, यज्ञ, और तप, इनसे किसीको योग प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ पथ्यभोजन, नाकके अग्रभागका देखना, शास्त्रोंकी अधिकता और शौच इनसेभी योग नहींहोता ॥ ५ ॥ मंत्र, मौन, कपट, अनेक प्रकारके पुण्य और लोकके व्यवहारमें तत्पर इनसेभी योग नहीं होता ॥ ६ ॥

अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ॥ पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्धय-  
ति नान्यथा ॥ ७ ॥ आत्मचिताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च ॥ सर्वभूतस  
मत्वेन योगः सिद्धयति नान्यथा ॥ ८ ॥ यश्चात्मनिरतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव  
च ॥ आत्मानंदस्तु सततमात्मन्येव सुभाषितः ॥ ९ ॥ रतश्चैव सुतुष्टश्च  
संतुष्टो नान्यमानसः ॥ आत्मन्येव सुतुष्टोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्धयति ॥ १० ॥  
सुतोऽपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः ॥ ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो  
ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ॥ ब्रह्मभूतः स  
एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥

अभियोग, अभ्यास, योगमेंही निश्चयसे और वारंवार निर्वेद विरक्तिसे योग सिद्ध होताहै ॥ ७ ॥ आत्माकी चिन्ताके आनंदसे, शौच, आत्मामे क्रीडा, सब भूतोंमें ममता इनके द्वारा योग सिद्धहोताहै, इसके अतिरिक्त नहीं ॥ ८ ॥ सर्वदा आत्मामें मिला, आत्मामें क्रीडाशील, आत्मामें आनन्दस्वभाव, और निरन्तर आत्मामें प्रीतिमान् ॥ ९ ॥ आत्मामें रमा आत्मामें सन्तुष्ट जिसका मन अन्यत्र न हो, और जो भलीभांतिसे आत्मामें वृत्त हो उसी पुरुषको योग सिद्ध होताहै ॥ १० ॥ योगी सोताहुआभी जागतेकी समान है जिसकी ऐसी चेष्टाहो वही श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियोंमें बडा कहागयाहै ॥ ११ ॥ इस संसारमें आत्माके विना जो दूसरेको न देखे वही ब्रह्मरूप है, यह दक्षऋषिके पक्षमें कहाहै ॥ १२ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विदति ॥ यत्नेन विषयासक्ति तस्माद्योगी  
विवर्जयेत् ॥ १३ ॥ विषयेंद्रियसंयोगं केचिद्योगं वदन्ति वै ॥ अधर्मो धर्मबु-  
द्ध्या तु गृहीतस्तैरपंडितैः ॥ १४ ॥ आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम् ॥  
उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवंचिताः ॥ १५ ॥

त्रिसङ्का त्विच विषयमें आसक्त हो वह यही मोक्षका प्राप्त नहीं होता, इसकारण यागी विषयकी ओरसे अपना मन हटाके ॥ १३ ॥ कोई मनुष्य विषय और इन्द्रियोंके संयोगको योग कहतहै उन निबुद्धियोंने अपर्मको धर्मबुद्धिसे जानाहै ॥ १४ ॥ उनसे अन्य कोई आत्मा और मनके संयोगको योग कहतहै यह योग पूर्णतः ठगोसेभी अधिक है ॥ १५ ॥

वृत्तिहीनं मनं कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥

एकीकृत्य विमुच्येत योगोर्ध्वं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥

सब वृत्तियोंसे मनको हटाकर और जीवको परमात्मामें छगानेसे मुक्त होजाताहै, यही योग मुख्य है ॥ १६ ॥

कपायमोहविक्षेपलज्वाशकादिष्वेतस ॥

व्यापारास्तु समाख्यातास्वाक्षित्वा वक्ष्यमानयेत् ॥ १७ ॥

कपाय, मोह और विक्षेपका जो नाश है उसका वही व्यापार कहाहै, जिसका मन वसमें होजाय, इसकारण कपायआदिसे रहित मनको अपने वक्षमें करे ॥ १७ ॥

कुटुम्बे पंचभिर्ग्रामं पृथस्तत्र महत्तरं ॥ देषासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतु नैव शक्यते ॥ १८ ॥ बलेन परराष्ट्राणि गृह्यन्तस्तु नोच्यते ॥ जितो येनेन्द्रियग्रामं स शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥ बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि धे ॥ मनस्पर्षेन्द्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥ सर्वमावधिनिसुर्कं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ॥ एतद्ब्रह्म तया ज्ञानं शेषस्तु ग्रंथविस्तरं ॥ २१ ॥

पाप कुटुम्बियोंका प्राम होताहै, और उस प्राममें छत्र ( मन ) सबसे बड़ा है, उसको जीतनेको देवता मनुष्य, असुर यह कोई भी समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ जो बलपूर्वक दूसरेके देशोंको जीत लेताहै वह शूर नहीं कहाता; परन्तु वास्तवमें वही शूर है जिसने इन्द्रिय रूपी प्रामको जीत लियाहो ॥ १९ ॥ सब बहिर्मुख इन्द्रियोंको अवमुख करे, फिर उन इन्द्रियोंको मनमें मुक्तकरे, मनको आत्मामें यामित करे ॥ २० ॥ और सब मावधेसे रहित क्षेत्रज्ञको ब्रह्ममें मित्तारै इसीका नाम स्यान् और ज्ञानहै, शेष तो सब ग्रंथका निस्वाप्दी है ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा विषयभोगास्तु मनो निश्चलतां गतम् ॥

आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिं परिकीर्तितं ॥ २२ ॥

जो मन विषय भोगोंको त्यागकर आत्माकी शक्तिरूपसे निश्चल होजाताहै उसे समाधि कहतहै ॥ २२ ॥

चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं पचदशाशतम् ॥ द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ॥ २३ ॥ यज्ञास्ति सवलोरस्य तदस्तीति निरुच्यते ॥ कथ्यमानं तथा न्यस्य हृदयं नापितिष्ठति ॥ २४ ॥ स्वयंपिचं च तद्रूपं कुमारी भेषुन यथा ॥ अयोगी नैव जानाति जात्यंभो दि यथा घटम् ॥ २५ ॥ नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंपिचं हि तद्रूपम् ॥ ताम्बुसमत्यादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥

चारके संनिकर्षसे जो फल होताहै वह अनित्य है, और पिछले अंगोंसे जो फल होताहै वह सनातन और नित्य तथा अक्षय होताहै ॥ २३ ॥ सष लोकोको जो ब्रह्म नास्ति प्रतीत होताहै, और जो अस्तिशब्दसे पुकारा जाताहै; तथा कहाहुआमी जो दूसरेके हृदयमें स्थित नहीं होता ॥ २४ ॥ वही ब्रह्म इसभांति स्वयं जानने योग्य है, जिसप्रकार कुमारीका मैथुन, और योगमार्गसे हीन उसी ब्रह्मको इसभांति नहीं जानता, जिसप्रकार जन्माघपुरूप घटको ॥ २५ ॥ नित्य अभ्यासशील मनुष्यको भलीभांति अनायाससे जानने योग्य है, और सूक्ष्म होनेके कारण वह सनातन परब्रह्म अनिर्देश्य है ॥ २६ ॥

बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा ॥ मन्यन्ते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यन्ते ॥ २७ ॥ सत्वोक्तटाः सुरास्तेपि विषयेण वशीकृताः ॥ प्रमादिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥ तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दंडधारणम् ॥ इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥ न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ॥ वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥

पडितोंका विचार और मनसे जो ब्रह्मका देखना है इसको भूषण मानतेहैं, स्त्री और मूर्ख यह भूषणकोही बहुत उत्तम मानतेहैं ॥ २७ ॥ विषयेने जब सत्त्वगुणी देवताओंकोभी अपने वशमें करलिया तब फिर प्रमादी मनुष्योंको वशमें करलेनेकी तौ क्या बात है ॥ २८ ॥ इसकारण जिसने मनके मैलका त्याग करदियाहो वही दंडको धारण करे और जिसने त्याग न कियाहो उसको दंडधारण करनेकी सामर्थ्य नहींहै और विषय उसका तिरस्कार करतेहैं ॥ २९ ॥ जिसभांति तरंगोंके कारण जल क्षणमात्रकोभी स्थिर नहीं रहता, इसीभांति वासनाओंसे रहताहुआ चित्तभी स्थिर नहीं रहसकता, इसकारण उसका विश्वास न करे ॥ ३० ॥

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

जिसकी रक्षा आठ प्रकारकी है इसकारण उस ब्रह्मचर्यकी सर्वदा रक्षा करे कि, स्मरण, कीर्तन, क्रीडा, प्रेक्षण, गुप्तबोलना, ॥ ३१ ॥ संकल्प, विकल्प, अध्यवसाय, क्रियाकी निवृत्ति, यह आठप्रकारका मैथुन बुद्धिमानोंने कहाहै ॥ ३२ ॥

त्रिदंडव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः ॥ यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडी हि स स्मृतः ॥ ३३ ॥ नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ॥ एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

त्रिदंडके बहानेसे बहुतसे मनुष्य जीवन धारण करतेहैं परन्तु जो ब्रह्मको नहीं जानता वह त्रिदंडी नहीं कहाता ॥ ३३ ॥ न पढना, न बोलना, न किसीप्रकार सुनना, जो इन सब गुणोंसे युक्त हो वही संन्यासी है दूसरा नहीं ॥ ३४ ॥

— पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

श्वपदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५ ॥

जो संन्यास छोड़ कर अपने धर्ममें स्थिर न रहे उसको राजा अपने नगरसे कुत्तेके पैरका दाग देकर निकाल दे ॥ ३५ ॥

एको मिथुर्ययोकस्तु द्वी वैश मिथुन स्मृतम् ॥ त्रयो ग्रामं समाख्यात ऊर्ध्वं  
तु नगरायते ॥ ३६ ॥ नगर हि न कस्तम्य ग्रामो वा मिथुन तथा ॥ एतन्नयं तु  
कुर्वाणं स्वधर्माच्छेषते यतिः ॥ ३७ ॥ राजघातादि तेषां तु भिक्षावार्ता  
परस्परम् ॥ ज्ञेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥ ३८ ॥ लाभपूजानि  
मिसं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ॥ एते वाम्ये च बहवः प्रपंचास्तु तप  
स्विनाम् ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त धर्मबाह्य एकव्यक्ति हो तो उसकी भिक्षुक संज्ञा है, दो व्यक्ति हों तो वे मिथुन संज्ञा हैं, ॥  
तीनके समूहको ग्राम कहते हैं, इससे अधिकको संग नगर कहाता है ॥ ३६ ॥ इसकारण सम्पासी  
ग्राम, नगर और मिथुन इनकी सगति न करै इन तीनों कर्मोंको जो पति करता है वह उत्तम धर्मसे  
पतित होआता है ॥ ३७ ॥ कारण कि, उनमें राजाकी अथवा भिक्षाकी बात परस्पर होती है,  
स्नेह, भुगठपन, मत्सरवा, वार्ताआदि यह संनिकर्षसे होते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥  
पञ्च, कहना और धनप्राप्तिके निमित्त शिष्योंको रक्षना यह पूजाके निमित्त है, यह सब  
यथा अन्य सबनी तपस्वियोंके प्रपञ्च हैं ॥ ३९ ॥

ध्यान शीघ्र तथा भिक्षा नित्यमेकांतस्वीकृता ॥

भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते ॥ ४० ॥

ध्यान, शौच, भिक्षा, एकांतमें निवास भिक्षुकके यह चार कर्म हैं पांचवां नहीं ॥ ४० ॥

यस्मिन्देसे भवेद्योगी ध्यानयोगविश्लेषणः ॥

सोपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य वापद्यः ॥ ४१ ॥

ध्यान और योगमें पंडित जिस देशमें निवास करताहो वह देशभी पवित्र होआता है, फिर  
उसके धनु वापद्य क्यों न होंगे ॥ ४१ ॥

तपोभिर्यं वशीकृता व्यापितावसथावहा ॥ वृद्धा रोगगृहीताश्च ये वाम्ये वि  
फलेंद्रियाः ॥ ४२ ॥ नीरुजश्च युवा वैव भिक्षुर्नावसथार्हणः ॥ स रूपयति  
तत्स्थानं वृद्धादीम्पीडयत्यपि ॥ ४३ ॥ नीरुजश्च युवा वैव ब्रह्मचर्याद्दिनश्यति ॥  
ब्रह्मचर्याद्दिनष्टश्च कुलं गोत्रं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

तपस्या और उनके द्वारा जो दुबळ होगये हैं, रोगी, वृद्ध, भार जिनकी इन्द्रियें विकार-  
युक्त हैं ॥ ४२ ॥ यह धर्ममें निवास करसकते हैं, परन्तु रोगरहित युवा भिक्षुक धर्ममें वास करनेके  
योग्य नहीं है, कारण कि, उसके ठहरनेसे उस स्थानको भी दोष लगता है और यह वृद्धोंको  
पीटिय करता है ॥ ४३ ॥ आरोग्य युवा भिक्षुक इसमांति आचरण करनेसे ब्रह्मचर्यसे पतित  
होआता है, और फिर वह ब्रह्मचर्यसे नष्ट होकर अपने बंधको भी नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

यस्य स्थावसथ भिक्षुर्भयुनं यदि सेवत ॥

तस्यायसथनाथस्य मूलान्यपि निवृत्तति ॥ ४५ ॥

भिद्भुक जिसके घरमें वासकरै यदि मैथुन करै ती वह उस घरके स्वामीको जड़मूलसे नष्ट करताहै ॥ ४५ ॥

आश्रमे तु यतिर्यस्य सुहृत्तमपि विश्रमेत् ॥ किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्यो हि जायते ॥ ४६ ॥ संचितं यद्गृहस्थेन पापमामरणांतिकम् ॥ स निर्दहतितत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥ ४७ ॥ ध्यानयोगपरिश्रांतं यस्तु भोजयते यतिम् ॥ अखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥

और जिसके आश्रममें संन्यासी एकसुहृत्तको ठहरजाय, उसको अन्य धर्मका प्रयोजन क्या है वह उससेही कृतार्थ होजाताहै ॥ ४६ ॥ गृहस्थीने अपने शरीरमें जो पापसंचय कियेहैं यति उसके घरमें एकरात्रि निवासकर उसके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करदेताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य योगाश्रममें परिश्रात यतिको भोजन कराताहै, सो चराचर त्रिलोकीके निवासीको भोजन करानेका जो फल है वही फल उसको मिलताहै ॥ ४८ ॥

द्वैतं चैव तथाद्वैतं द्वैताद्वैतं तथैव च ॥ न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम् ॥ ४९ ॥ नाहं नैव तु संबन्धो ब्रह्मभावेन भावितः ॥ ईदृशायां त्ववस्थायामवाप्यं परमं पदम् ॥ ५० ॥ द्वैतपक्षः समाख्यातो ये द्वैते तु व्यवस्थिताः ॥ अद्वैतानां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥ ५१ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो विपश्यति ॥ अतः शास्त्राण्यधीयंते श्रूयते ग्रंथविस्तरः ॥ ५२ ॥

द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत इन तीनोंमें द्वैत नहींहै यही पारमार्थिक ज्ञान है ॥ ४९ ॥ मैं नहीं हूँ, और न मेरा है, और न मेरा किसीसे सम्बन्ध है परन्तु मैं ब्रह्मरूपमें स्थित हूँ, इस अवस्थामें ब्रह्मपद प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ द्वैतमें स्थितिवालोंको द्वैतपक्षका कहाहै और अद्वैतपक्षवालोंका धर्म भलीभाति निश्चित है उसको मैं कहताहूँ ॥ ५१ ॥ इसमें जो आत्माके अतिरिक्त दूसरी वस्तुको देखताहै उसीने मानों शास्त्र पढेहैं, और ग्रंथोंके विस्तारको सुनाहै ॥ ५२ ॥ दक्षशास्त्रे यथा प्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ॥ अधीयते तु ये विप्रास्ते यांति परलौकताम् ॥ ५३ ॥ य इदं पठते भक्त्या शृणुयादपि यो नरः ॥ स पुत्रपौत्रपशुमान्कीर्तिं च समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ श्रावयित्वा त्विदं शास्त्रं श्राद्धकालेऽपि यो द्विजः ॥ अक्षय्यं भवति श्राद्धं पितृंश्चैवोपतिष्ठते ॥ ५५ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण दक्षऋषिके इस शास्त्रमें कहेहुए आश्रमोंका प्रतिपालन करतेहैं वा जो इस शास्त्रको पढतेहैं वह परलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ५३ ॥ जो इसे पढताहै, या नीच वर्णमी इसे सुनताहै वह पुत्रपौत्रयुक्त तथा पशुवाला होकर कीर्तिको पाताहै ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्धके समय इस शास्त्रको सुनवाताहै उसका श्राद्ध अक्षयफलका देनवाला होताहै और पितरोंके निकट प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ मापाटीकाया सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥ १५ ॥



॥ श्रीं ॥

## अथ गौतमस्मृति १६

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्याय १

श्रीगणशाप नम ॥ इय गौतमस्मृतिप्रारम्भ ॥ वेदो धम्ममूल तद्विदो च  
स्मृतिशीले दृष्टो धम्मम्पतिप्रम ॥ साहस च महता न तु दृष्टोऽर्थो परदी  
चत्त्याग्र तुल्यबलविरोधे विकल्पा ।

वेदही धर्मका मूल है, स्मृति और शीलभी धर्मका मूल है, धर्मका व्यवस्थित और सादरभी  
दृष्टि आता है, परन्तु महापुरुषोंका धर्म कोई दृष्टि धर्म नहीं है प्रकृत धर्म दुःखसे ध्यान  
पत्रशास्त्रे शास्त्रोंके विरोधमें विद्वत्स्वामी दाता है अथवा जहाँ का धर्मयोंस का प्रकार कम मानने  
वहाँ लोको करने उचित है;

उपनयन श्राद्धगस्याष्टमं नयम पात्रम पा पात्र्य गभादि संख्या यथागो  
तद्विनीयनम तद्यस्मात्स आचार्या यदानुपयनाद्य षष्ठादशद्वादशया क्षमिपयै  
त्रयया आषाढशाद्वाद्गणस्य पतिता सावित्री द्वाविंशत रागन्धरस्य त्रिपिषा या  
यिन्धरया मीनाम्यामौर्यासौम्यो मगला धम्मण कृष्णरुद्रपस्तातिनानि याता  
मि द्वाणक्षीमगीरपुतया सूर्यया पापासिं यादिकृतं पापापमप्ययं पात्रं प्राद्ग  
णस्य मीनादृष्टादृष्ट इतरयार्पित्यपालाशी प्राद्गणस्य देवी भाद्रपार्पित्यया शेष  
यात्रिया या मर्षेयाम् । अर्थाद्विना पूजयतां सगन्धर्या मूर्द्धल्यान्नाम्राप्रप्रमाणा  
मुद्वान्तिशिरागताय ।

आषाढका माघ या भी वर्षमें यज्ञारधीन करे यदि अष्टोत्तरी पूजा करे या वर्षमें  
वर्षमें दागवर्ग करे वर्षमें करती गतना गर्भस करके पर यज्ञोत्तरीय पूजा धम्म है  
शिरास आचार्य केरुका उपनय कराने, धर्मिक और वैश्वका अमातुगार ग्यारह और  
काद्वयनक यज्ञारधीन कराने विधि है, गच्छरुद्रक आद्गणकी और अत्रिचकी काद्वय-  
कौतक और वैश्वकी अहीनक वर्णक गच्छरी करित मरी होनी अर्थात् गौतमविद्या पर  
मरे, यज्ञरुद्रक गच्छ आद्गण, धर्मिक वैश्व अत्रिचमरे वेपथु मूर्द्धकी और मूर्द्धकी क्य  
अ मूर्द्धकी मरी और काठ मया द्रव्यगच्छा और मेरेका चर्के लय वेपथ और मय  
द्वन्द्वे वध मन्त्रे अ का १ वेपथकी करती कि लोको वर्णको यज्ञाके मरीय और वि  
लया मर्द्धक वधक अत्रिचक वध काल करने उचित है अद्गणको दृष्टवे अद्गुका  
द्वन्द्वे अ वैश्वको भी अद्गण काल करित है अद्गण वेपथ का यज्ञाके दागवर्ग है  
अ का १ अत्रिचक मयन वेपथ और वैश्वका रंथ काल करे, मया और मरी विधी करित

वृक्ष का सबत्कल काष्ठका दंड धारण करसकताहै परन्तु वह दंड फटे न हो. दंडका परिमाण तीनों जातियोंको यथाक्रमसे मस्तक, ललाट और नासिकाके अग्रभागतक हो, ब्राह्मण सब मुंडन करावै, क्षत्रिय मस्तकपर जटा रक्खै और वैश्य शिखा रक्खै ।

**द्रव्यहस्त उच्छिष्टोऽनिधायामेत् ॥**

कोई द्रव्य यदि हाथमें हो और वह यदि उच्छिष्ट होजाय तौ इस द्रव्यको विना पृथ्वीपर रक्खे आचमन करै.

**द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहत्क्षणनिर्णजनानि तैजसमार्तिकदारवतांतवानां तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां, दासुवदस्थिभूम्योः आवपनं च भूमेः । चैलवद्रज्जुविदलचर्मणाम् उत्सर्गो वात्यंतोपहतानाम् ।**

धातु, मट्टी, काष्ठ, शुक्तिनिर्मितवस्तु इन चारों द्रव्योंकी शुद्धि क्रमसे भाजने, तपाने, छीलने और धोनेसे होजातीहै, और पत्थर, मणि, शंख, सीपी इनकी शुद्धि धातुके समान है, काष्ठके समान हाड और भूमिकी शुद्धि है, और भूमिकी शुद्धि हलसे खनन करनेपरभी होजातीहै, वासके पात्रकी शुद्धि वस्त्रके समान है और जो अत्यन्त अष्ट हो तौ उसे त्यागदे.

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत् । शुचौ देश आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वंतरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिवंधनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रिश्रुत्पूर्वाऽप आचामेत् । द्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि मूर्द्धानि च दद्यात् । सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुनः दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात् । प्राक् च्युतेरित्येके । च्युते स्वास्राववद्विद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वति ताश्चेदंगे निपतांति । लेपगंधापकर्षणे शौचमभेध्यस्य तदद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविस्रंसनाभ्यवहारसंयोगेषु च यत्र चाप्रायो विदध्यात् ।

पूर्व वा उत्तरको मुख करके शौचका प्रारंभ करै, पवित्रस्थानमें बैठकर दोनों घुटनोंके भीतर दहिनी भुजाको रक्खकर नियमसहित यज्ञोपवीत धारणकर मणिवंधतक दोनो हाथोंको धोकर मौन धारणकर हृदयका स्पर्शकर तीन या चारवार जलसे आचमन करै, और दो बार मुखका मार्जन करै, पैरोंको छिडकै, और शिरके सातों छिद्रोंका स्पर्श करै, फिर मूर्द्धापर भी जलका स्पर्श करै, यदि जिह्वासे स्पर्श न हो तौ दांतोंमें लगा अन्नादि दांतोंकेही समान है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि जबसक वह दातोंसे पृथक् न हो तबसकही दांतोंके समान है, और पृथक् होनेपर आस्रावके समान होजाताहै, इसकारण उसको मुखसे बाहर निकालनेसेही शुद्धि होतीहै, जो मुखकी बूंद अपने शरीरपर गिरजाय उससे शरीर अशुद्ध नहीं होता, अशुद्ध वस्तुका लेप और गंधको दूरकरनेके लिये शौच करै यदि पवित्र वस्तु लगी हो वा मूत्र, विष्टा, वीर्यस्खलन भोजनके समयमें होजाय तौ वेद और स्मृतियोंमें कही रीतिके अनुसार वहां मट्टी और जलसे शौच करना उचित है;

पाणिना स्वयमुपसंगृह्यांगुष्ठमधीहि भो इत्यामंत्रयेत् गुरुः । तत्र चक्षुर्मनःप्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामात्प्राणं संतप्य गुरुः । ॐ पूर्वा

ध्यवहारप्राप्तेन सार्वधर्षिक भैक्षचरणमभिशस्तं पतितधर्ममादिमच्यतिषु भव  
च्छब्दं प्रयोज्यो धर्षणोपधुष्येण आचार्यज्ञातिगुरुस्वेच्छालाभेऽन्यत्र तेषां पूर्वं परि-  
हरेत् निषेध गुरवेऽनुज्ञातो भुञ्जीत । असंनिधौ तद्भार्यापुत्रसत्रज्ञाचारिसस्य ।  
षाम्यतस्तृप्यन्नकोष्ठुप्यमानस्सत्रिघायादकं स्पृशेत् ।

आवश्यकता होनेपर पतिव और निन्दित वर्णके अतिरिक्त और सपके पहिले मित्रा केभावे,  
मित्राके समय वर्णके क्रमसे प्रथम मध्य और अन्तमें "मभत्" शब्दका प्रयोग करे, ब्राह्मण  
मित्राके समय पहले "मभत्" शब्दका प्रयोग करे, क्षत्रिय मध्यमें और वैश्य अंतमें; आचा-  
र्य, कुल, जाति, गुरु और अन्याम्य आधियोंके निकट मित्रा न मांगे, यदि अन्यत्र कहीं  
मित्रा न मिले तो इनमेंसे प्रथम कहेहुएको त्यागकर औरोंसे मित्रा मांगे; मित्रासे से  
कुल मिले उसे गुरुके भागे निवेदन करे, इसके पीछे गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करे गुरुके  
विद्यमान न होनेपर इनकी स्त्री, पुत्र और अपने साधके पढनेवाले शिष्योंके भागे रखे  
और मित्राका जल समर्पण करे, इसके पीछे वृत्ति होनेतक मौन होकर भोजन करे, और  
भोजनको रत्नकर कछसे आचमन करे,

। शिष्यशिष्टिरवधेनाक्षकौ रज्जुवेषुविदलाम्यां तनुभ्याम्, अम्येन घ्नन् रा  
ज्ञा शास्य\* ।

शिष्यको किसीप्रकारका आघात न पहुंचे ऐसी राहना गुरु करे, और अक्षको रस्सी,  
वंत, बांस या हाथ व्याधसे क्षिप्प करे, और जो गुरु अन्य वस्तुसे करताई राजा उसे  
बंधे;

द्वादशधर्षण्येकवेदे ब्रह्मधर्ष्यं चरेत् । प्रतिद्वादस्र सर्वेषु ग्रहणांत वा । विद्यति  
गुरुर्येन निमन्म्य\* कृतानुज्ञातस्य वा खानम् । आचार्य\* भेष्टो गुरूणां मातेत्येक ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ ९ ॥

एक वेदके पढनेमें बारह धर्षण्य ब्रह्मधर्ष्य करणकरे, प्रत्येक वेदमें इसीप्रकार ब्रह्मधर्ष्य है;  
कबतक मछी मांछिसे बिद्या प्राप्त न हो तबतक पढ्यारहे; जब पढ्युके तो गुरुको दक्षिण  
दे, इसके पीछे गुरुकी आज्ञासे खानकरे, सप गुरुओंमें आचार्यही भेष्ट है; और कोई ९  
माताको भेष्ट बतावे है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मध्यमीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### तृतीयोऽध्याय ३

तस्याभमविकल्पमेके ज्ञापते । ब्रह्मधारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति । तेषां  
गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् । तत्रोक्तं ब्रह्मधारिण\* । आचार्याधीनत्वमात्र  
गुरो कर्मशेषेण जपेत् । सुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे स ब्रह्मधारिण्यमो  
वा एषवृत्तो ब्रह्मलोकमेवामोति जितेन्द्रिय\* । उचरणां वैतदविरोधी अनिचयो  
भिक्षु ऊर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षांसु भिक्षार्यां ग्राममियात् । जपन्यमनिवृत्त  
चरेत् ॥ निवृत्ताशीवाक्चक्षुःकर्मसंपत\* कीपीनाः उदनाथं वासो विभृपात्

प्रहीणमेके निर्णेजनाविप्रयुक्तमौपधीवनस्पतीनामंगमुपाददीत न द्वितीयाभपहर्तुं रात्रि ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वा वर्ज्येजीववधसमीभूतेषु हिंसानुग्रहयोर- नारंभो वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्य- भाजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्ष्यमप्युपयुंजीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत् जटिलश्चैराजिनवासाः नातिसां- वत्सरं भुंजीत ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थ्यस्य गार्हस्थ्यस्य ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कोई२ ब्रह्मचारीको इसमांति आश्रमोंका विकल्प कहतेहैं कि ब्रह्मचारी, गृहस्थी, भिक्षुक, वैखानस इन सबके क्रमसे इनका मूल केवल गृहस्थही है, कारण कि और तीनोंमे संतान उत्पन्न नहीं होती, और इन चार प्रकारके आश्रमोंमे ब्रह्मचारीके लिये सर्वदा अधीनताही कहीहै गुरुके निमित्त कर्मको करनेसेही वह लोकोंको जीतताहै यदि गुरु न हो तौ गुरुकी संतानके प्रति गुरुके समान व्यवहार करै, यदि गुरुकी कोई संतान न हो तौ वृद्धगुरुका शिष्य वा अग्निके प्रतिही इसप्रकारका आचरण करै, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इसप्रकारका व्यवहार करताहै वह ब्रह्मलोकको जाताहै, और यह भिक्षुक पिछले तीनों आश्रमोंका विरोधी न हो संचयन करै, ऊर्ध्वरेता और स्थिरस्वभाव होकर वर्षाऋतुमें भिक्षाके अर्थ ग्राममें जाय, निषिद्ध शूद्रजातिके अतिरिक्त उत्तम जातिमें भिक्षा मागै भिक्षुक किसीको आशीर्वाद न दे और वाणी, नेत्र तथा अपना कर्म इनको छिपावै, कौपीनमात्र और ओढनेके बस्त्रको धारणकरै, कोई२ ऐसा भी कहते हैं कि किसीके त्यागे उस बस्त्रको धारणकरै जो साफ और नया हो, अथवा औषधी वा वनस्पतिकी छालको धारणकरै, और भोजनके निमित्त दूसरी रात्रिमें ग्राममें निवास न करै, मुंडन कराये रहै, शिखाको राखै और जीवकी हिंसाको त्यागदे, प्राणियोंका वध न करै, सब प्राणियोंको समदर्शी हो देखै, और किसीके ऊपर हिंसा वा दया न करै, वैखानसका धर्म है कि फल मूल भोजनकर वनमें निवास करै, तपस्या करै, और तपस्वियोंकी अग्नि स्थापनकरै, ग्राममें भोजन न करै, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य इनकी पूजा करै, निषिद्ध जातिके अतिरिक्त सबका अतिथि वने, और कभी २ भिक्षा मागकरभी जीवन धारण करले, परन्तु जो अन्न जोतनेसे उत्पन्न हो उस अन्नको न खाय किसी ग्राममें भी प्रवेशन करै, मस्तकपर जटा रक्खै, चीर वा मृगछालाके बस्त्र धारणकरै, वर्षादिनसे अधिकके अन्नको न खाय आचार्योंने कहाहै कि गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ और प्रत्यक्ष फलका देनेवाला है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विदेतानन्यपूर्वां यवीयसीम् असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबंधुभ्यो जीविनश्च मातृबंधुभ्यः पंचमात् ॥

वेद पढनेके उपरान्त गृहस्थी होकर अपने अनुरूप, जिसका किसीके साथ विवाह न हुआहो और अपनी समान थोड़ी अन्नखायवाली कन्याके साथ विवाह करै, जो अपने प्रवरकी होतीह

व्याहृतय' पचसप्तांता' गुरो पादोपसमग्रहण प्रातर्धनानुषचन चाद्यतयोरनुज्ञात उपविशेत् । प्राङ्मुखो दक्षिणत' शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्री चानुषचनमादितो ब्रह्मण आदाने अँकारस्यान्यप्रापि ।

गुरु अपने हाथसे शिष्यका बंगूठा पकड़कर "भो शिष्य सू पठ " यह कहकर बुझने इसके उपरान्त शिष्य गुरुमें अपने भेज और मनको छगाकर कुशाओंसे अपने प्राणोंको स्थिर कर तीन प्राणायाम करे, आचमनका प्रमाण पन्द्रह भूषवक है और पूर्वकी ओरको अप्रमाण-वाली कुशाओंके आसनपर बैठकर अँकारपूर्वक पाँच वा सात व्याहृतियोंका पाठ करे प्रातःकालमें वेद पढ़नेके प्रारंभ और अस्तमें शिष्य गुरुके चरणोंको ग्रहण करे और गुरुकी आज्ञा लेकर गुरुके दक्षिण भागमें, पूर्व या उत्तरको मुख करके बैठे प्रथम गायत्री तथा वेद और अँकारके पढ़नेके समयमेंही इषीभांति बैठे,

अंतरागमने पुनरुपसदने श्वनकुलमदूकसर्पमात्प्राणां अहमुपवासो विप्रवास  
अप्राणायामा घृतप्राशन चेतरेषां इमशानाम्पभ्ययने विधम् ॥ १ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कृत्वा, बैठकर, सर्प, बिछाव यह पवि पढ़नेके समय गुरु शिष्यके बीचमें होकर निकलकराप चौ ब्राह्मण हीनदिन वनमें निवासकर उपवास करे और अत्रिय, वैश्य इत्यादि प्राणायाम और पूठका भोजन करे, स्नानके निकट जो पढ़ताहै उसके सिधेमी यही प्रावधिष्ठ है ॥

इति श्रीभौतमस्यूतौ माण्डवीय्यां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्याय २

प्रागुपनयनास्कामचारवादभक्ष' अद्भुतो ब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति  
नास्याचमनकल्पो विद्यते अन्यप्रापमार्जनप्रधायनावोक्षणभ्यो न तदुपस्पशना  
दशीचम् ॥ न त्वेधैनमभिह्वनयलिहरणयोर्नियुञ्जात् न ब्रह्माभिव्याहारेदन्यत्र  
स्वधानिनयनात् ॥

यज्ञोपवीतसे प्रथम इच्छानुसार बोलने और इच्छानुसार भोजनकरनेमें कोई दोष नहीं है, उस समय हवन और ब्रह्मचर्यका अधिकार नहीं होता, ऐस मगुप्यका मलमूत्र त्याग नेका भी कोई नियम नहीं है; उसको शरीरका मात्रन, धोना, और ऊपर जब छिड़कनेके लिये छुड़के निमित्त आचमनकामी विधान नहीं है, म छूनेयोग्य वस्तुके स्पर्शकरनेसे भी उसे दोष नहीं लगता उसको अभिमं हवन वा बलिद्वैतदेवकार्यमेंही नियुक्त न करे, और पितृकार्यके अतिरिक्त उसको वेदका मन्त्र न पढ़ावे,

उपनयनादिनियम' ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यम् अग्नीम्पनमैक्षचरणे सत्यवचनम् ॥ अपा  
मुपस्पशनमेक आगोदानादि । यदि संष्यार्य तिष्ठेत्पुत्रामासीतोत्तरां सज्योति  
प्यान्योतिषो दर्शनादाग्यतो नादित्यमीक्षयेत् यज्ञियेभ्युमासुर्गणमात्स्यादि वा  
स्वमांजनाभ्यजनपानोपानच्छत्रकामकोपशोभमोहवाद्यवादनस्नानवदतपारहनह  
र्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ।

यज्ञोपवीत होनेसेही सब नियमोंकी रक्षा करनी होतीहै, उपनयन होजानेपर जो ब्रह्म-  
चर्य कहाहै उसे करै, अग्निकी रक्षा, ईधन, भिक्षा मांगना, सत्य बोलना, जलोंसे आच-  
मन करना कोई २ इन नियमोंको गोदानसे पहले कहतेहैं कि, संध्या करनेके निमित्त ग्रामसे  
बाहर जाय, और प्रातःकालकी संध्या उससमय करै कि जिस समय आकाशमें तारागण  
स्थित हों, और सायंकालकी संध्या नक्षत्रोंके उदय होनेपर मौन धारणकर करै, सूर्यको  
न देखे, ब्रह्मचारी, मधु, मांस, गन्ध, फूलमाला, दिनमें शयन, अंजन, उवटना, सवारी,  
जूता, छत्री, काम, क्रोध, लोभ, मोह, वाजा, वजाना, अधिक स्नान, दतोन, हर्ष, नृत्य,  
गाना, निन्दा, मदिरा और भय इन सबको त्यागदे ॥

गुरुदर्शने कंठप्रावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवितहसितजृम्भि-  
तास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालंभने मैथुनशंकायां द्यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसा  
आचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः अधः-  
शय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसवेशी वागुदरकर्मसंयतः नामगोत्रे गुरोः  
संमानतो निर्दिशेत् ॥ अर्चिते श्रेयसि चैवम् ॥ शय्यासनस्थानानि  
वहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमं वचनादृष्टेन अधःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायां  
गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत् । गच्छंतमनुव्रजेत् कर्म विज्ञाप्याख्यायाऽऽहूताध्यायी युक्तः  
प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम्, नोच्छिष्टाशनस्त्रपनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्द-  
नोपसंग्रहणानि विप्रोष्योपसंग्रहणं गुरुभार्याणां तत्पुत्रस्य च नैके युवतीनाम् ॥

और गुरुको देखकर कठ रोकले, घुटने फैलाकर बैठना, पैरोंका फैलाना, थूकना, हसना,  
जंभाई लेना अंगको हाथ से वजाना इनकाभी त्याग करदे, स्त्रीको देखना, स्पर्श करना,  
तथा मैथुनकी शंका, जुआ, नीचकी सेवा, विनादिये लेना, हिंसा, आचार्य और आचार्यके  
पुत्र स्त्री तथा दीक्षित इनका नाम लेना, सूखी वाणी, मदिराका पीना इन सब कार्योंको  
एकवारही त्यागदे, ब्राह्मणको सर्वदा पृथ्वीपर शयन करना उचित है; गुरुसे प्रथम उठै  
नीचे आसनपर बैठे और गुरुके सोजानेपर पीछे शयनकरै, वाणी, भुजा और उदर इनको  
अपने वशमें रक्खै, मान अर्थात् आदरसहित गुरुका नाम और गोत्र उच्चारण सब करै;  
सब मांति से पूजने योग्य और श्रेष्ठ मनुष्यके साथभी इसीप्रकारका व्यवहार करै, गुरुकी  
शय्या, आसन और स्थानका त्यागकरै नीचे बैठ अथवा नम्रभावसे स्थित होकर गुरुके  
वचनोंको श्रवणकरै, और गुरुके वचनके अनुसार चलै, गुरुको देखतेही उठ खड़ाहो, उनके  
चलनेपर पीछे २ चलै, यदि गुरु किसी बातको पूछें तौ उनको यथार्थ उत्तर दे, वह जब  
पढ़नेके लिये बुलावें तभी जाकर पढ़ै, और सर्वदा उनका प्रिय और हितकारी कार्य करतारहै  
और उच्छिष्टभोजन, स्नान कराना, प्रसाधन, पैरघोना, उवटना चरणोंका स्पर्श इनके अतिरिक्त  
उनकी स्त्री और पुत्रोंके साथभी इसी प्रकारका व्यवहार करै, और परदेशसे आनेपर गुरुकी  
स्त्रीपुत्रोंकेभी चरण स्पर्श करै, कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि गुरुकी युवती स्त्रियोंके साथ  
उक्त व्यवहार न करै ॥

व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिक भैक्षघरणमभिशास्त पतितधर्ममादिमज्जातेषु भव  
च्छब्दं प्रयोज्यो वर्णानुपूर्व्येण आचार्यज्ञातिगुरुस्वेच्छाच्छाभेऽन्यत्र तेषां पूर्वं परि-  
हरेत् निषेध गुरवेऽनुज्ञातो भुञ्जीत । अर्सनिधौ तद्भार्यापुत्रसम्रत्नवारिसत्रम् ।  
वाग्यतस्तृप्यन्नलोलुप्यमानस्सन्निधायादकं स्पृशेत् ।

भावस्यकृता होनेपर पतित और भिन्नित वर्णके अतिरिक्त और सबके यहसि भिक्षा लेनावै,  
भिक्षाके समय वर्णके क्रमसे प्रथम मध्य और अन्तमें "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, प्राङ्गण  
भिक्षाके समय पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, अत्रिय मध्यमें और वैश्य अंतमें, भाषा  
यं, कुल, जाति, गुरु और अम्बान्य आत्मियोंके निकट भिक्षा न मांगै, यदि अन्यत्र कही  
भिक्षा न मिलै तौ इतमेंसे प्रथम कहेहुएको स्वागच्छ औरोंसे भिक्षा मांगै, भिक्षासे जो  
कुछ मिलै उसे गुठके आगे विषेदन करै, इसके पीछे गुठकी आजा लेकर भोजन करै गुठके  
विद्यमान न होनेपर उतकी खी, पुत्र और अपने साथके पढनेवाले शिष्योंके आगे रखै  
और भिक्षाका जल समर्पण करै, इसके पीछे वृत्ति होनेतक मौन होकर भोजन करै, और  
भोजनको रसकर लठसे आपस्यन करै,

शिष्यशिष्टिरिषधेनासकौ रज्जुवेपुविदलान्यां तनुम्याम्, अन्येन धनु रा  
ज्ञा शास्यम् ।

शिष्यको किसीप्रकारका आघात न पहुंचै ऐसी धाडना गुरु करै, और अन्नको रस्ती,  
बैठ, बांस वा हाथ आदिसे शिक्षा करै, और जो गुठ अन्य वस्तुसे करतावै राजा उसे  
बुँठ वे;

द्वादशवर्षाप्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् । प्रतिद्वादश सर्षेपु ग्रहणांत वा । विद्यति  
गुरुर्येन निमन्त्र्यं कृतानुज्ञातस्य वा खानम् । आचार्यं भेष्टो गुरुणां मातेत्येकम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

एक वेदके पढनेमें बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य धारणकरै, प्रत्येक वेदमें इसीप्रकार ब्रह्मचर्य है;  
सबतक मछी मांरिसे विद्या प्राप्त न हो तबतक पढतारवै, जब पढचुके तौ गुठको दक्षिण  
दे, इसके पीछे गुठकी आजासे खानकरै, सब गुठभोंमें आचार्यही भेष्ट है; और कोई २  
माताको भेष्ट बतावे है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मध्यमीकानां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्याय ३

तस्याभ्रमविकल्पमेकं भुषते । ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति । तेषां  
गृहस्थो योनिरमगमत्वादितरेषाम् । तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्वमात्रं  
गुरोः कमदोषेण जपेत् । गुर्वभाषे तदपरपृथुत्तित्तदभावे पृष्टे सम्रत्नवारिण्यमो  
वा एवपृष्टो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेन्द्रियः । उत्तरपां चैतद्विरोधी अनिचयो  
भिक्षुः ऊर्ध्वरेता भ्रूवशीलो वर्णासु भिक्षार्थी ग्राममियात् । जपन्यमनिपृष्ट  
चरेत् ॥ मिदृत्ताशीर्वाक्चक्षुःकर्मसंयतः कीपीनाच्छादनार्थं वासो विभृयात्

प्रहीणभेके निर्णेजनाविप्रयुक्तमौषधीवनस्पतीनामंगसुपाददीत न द्वितीयामपहर्तुं रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वा वर्ज्येज्जीववधसमीभूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभो वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्यभाजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्ष्यमप्युपयुंजीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत् जटिलश्रीराजिनवासाः नातिसावत्सरं भुंजीत ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थ्यस्य गार्हस्थ्यस्य ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कोई २ ब्रह्मचारीको इसभांति आश्रमोंका विकल्प कहतेहैं कि ब्रह्मचारी, गृहस्थी, भिक्षुक, वैखानस इन सबके क्रमसे इनका मूल केवल गृहस्थही है, कारण कि और तीनोंमें संतान उत्पन्न नहीं होती, और इन चार प्रकारके आश्रमोंमें ब्रह्मचारीके लिये सर्वदा आधीनताही कहीहै गुरुके निमित्त कर्मको करनेसेही वह लोकोंको जीतताहै यदि गुरु न हो तौ गुरुकी संतानके प्रति गुरुके समान व्यवहार करै, यदि गुरुकी कोई संतान न हो तौ वृद्धगुरुका शिष्य वा अग्निके प्रतिही इसप्रकारका आचरण करै, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इसप्रकारका व्यवहार करताहै वह ब्रह्मलोकको जाताहै, और यह भिक्षुक पिछले तीनों आश्रमोंका विरोधी न हो संचयन करै, ऊर्ध्वरेता और स्थिरस्वभाव होकर वर्षाऋतुमें भिक्षाके अर्थ ग्राममें जाय, निषिद्ध शूद्रजातिके अतिरिक्त उत्तम जातिमें भिक्षा मागै भिक्षुक किसीको आशीर्वाद न दे और वाणी, नेत्र तथा अपना कर्म इनको छिपावै, कौपीनमात्र और ओढनेके वस्त्रको धारणकरै, कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि किसिके त्यागे उस वस्त्रको धारणकरै जो साफ और नया हो, अथवा औषधी वा वनस्पतिकी छालको धारणकरै, और भोजनके निमित्त दूसरी रात्रिमें ग्राममें निवास न करै, मुंडन कराये रहै, शिखाको राखै और जीवकी हिंसाको त्यागदे, प्राणियोंका वध न करै, सब प्राणियोंको समदर्शी हो देखै, और किसीके ऊपर हिंसा वा दया न करै, वैखानसका धर्म है कि फल मूल भोजनकर वनमें निवास करै, तपस्या करै, और तपस्वियोंकी अग्नि स्थापनकरै, ग्राममें भोजन न करै, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य इनकी पूजा करै, निषिद्ध जातिके अतिरिक्त सबका अतिथि वने, और कमी २ भिक्षा मागकरभी जीवन धारण करले, परन्तु जो अन्न जोतनेसे उत्पन्न हो उस अन्नको न खाय किसी ग्राममें भी प्रवेश न करै, मस्तकपर जटा रखवै, चीर वा मृगछालाके वस्त्र धारणकरै, वर्षादिनसे अधिकके अन्नको न खाय आचार्योंने कहाहै कि गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ और प्रत्यक्ष फलका देनेवाला है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशी भार्या विदेतानन्यपूर्वा यवीयसीम् असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वसप्तमात् पितृबंधुभ्यो जीविनश्च मातृबंधुभ्यः पंचमात् ॥

वेद पढनेके उपरान्त गृहस्थी होकर अपने अनुरूप, जिसका किसीके साथ विवाह न हुआहो और अपनी समान थोड़ी अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करै, जो अपने प्रवरकी होतीहै



उसका साथ परस्परमें विवाह नहीं होता । पिताके बहुभोंकी सातवीं पीढ़ीसे ऊपर कर माताके बहुभोंकी पांचवीं पीढ़ीसे ऊपर विवाह होजाताहै,

ब्राह्मो विद्याचाग्रिप्रर्षधुक्षीलसपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालकृतां संयोगमत्र । प्राजा-  
पत्ये सह धर्मं चरतामिति । आर्षे गामियुन कन्यावते दद्यात् । अतर्वैश्वानरे  
दानं देव । अलकृत्येच्छन्यां स्वयं संयोगो गांधर्वः । विसेनानतिस्त्रीमतामासुरः ।  
प्रसह्यादानाद्राक्षसः । असविज्ञानोपसगमनात्पैशाचः । सत्यारो धर्म्या प्रथमा  
पढित्येके ॥

कन्याको वर और भाभूपणोंसे सुसज्जितकर उत्तम परित्रवाड़े और शीघ्रबाह् स्तुत्यसे कन्या देनेका नामही ब्राह्म विवाह है "सुम होमों जाने एकत्र होकर धर्मका आचरण करो" यह कहकर जो विवाहमें कन्या और वरका संयोग करानाहै उसका नाम ब्राह्मण विवाह है; कन्याके पिताको दो गौ देकर जो कन्या विवाही जाय उसका नाम आर्ष विवाह है, वैश्वानरे यज्ञमें त्रयी पुरोहितको कन्या देनेका नाम देवविवाह है, अलकृत्य और अमिच्छाभिणी कफि साथ पुरुषका परस्परमें इच्छानुसार जो संयोग होजाताहै उसका नाम गांधर्व विवाह है वर दान करके अधिक स्त्रीवाले मनुष्यको जो कन्या दी जातीहै वह आसुर विवाह है । अतर्वैश्वानरे कन्याको इरण करकेमानका नाम राक्षस विवाह है; और कन्याको कन्याकी भ्राता स्वामें देनाहै उसका नाम पैशाच विवाह है इन आठों प्रकारके विवाहोंमें प्रथमके वर्मानुगत हैं, और कोई २ कहते हैं कि प्रथमके छेही वर्मानुगत हैं,

अनुलोमानंतीरिकांतरव्यतरासु जाताः सर्वाषष्ठोऽग्निपाददौर्ध्वतपारशव  
प्रतिलोमासु सूतमागधायोगवसक्तृवैदेहकचडालाः ब्राह्मण्यजीजनस्तुत्रान् वं  
भ्य आनुष्यत्त्वात् ब्राह्मणसूतमागधचडालान् तेभ्य एष क्षत्रिया मूर्धावसिक्त  
त्रिपदीषरपुत्कसान् तेभ्य एष वैश्या भृञ्जुकंटकमाहिष्यवैश्यवैदेहान् तेभ्य प  
पारशवमथनकरणभूदान् सूद्रेत्येके । वर्षांतरगमनमुत्कर्पापकर्पाभ्यां सप्तमे  
पंचमेन चाचार्याः सृष्टर्षतरजातानां च प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां  
असमानायां च शूद्रात्पतितवृत्तिः अत्यः पापिष्ठः ॥

अनुलोमविवाहके अनन्तर जिसमें एकका अंतर हो वह अनुलोम और जिसमें ५ अंतर हो वह प्रतिलोम, इन क्षियोंमें ब्राह्मणवृत्त्यादिसे उत्पन्नपुत्र वह होते हैं जिससे पुत्र अन्वष्ट क्षत्रीसे क्षत्रिया वर, मित्राव वैश्यामें दौर्ध्वत और पारशव वैश्यसे शूद्रामें है, प्रतिलोम क्षियोंमें ब्राह्मणमें क्षत्रीसे सूत, मागध क्षत्रियामें वैश्यसे आयोगध, चडाल, शूद्रसे वैश्यामें वैदेहक चांडाल उत्पन्न होते हैं, कोई २ देसामी कहते हैं कि कमात्र चारों वर्णोंके पतिव्रतोंसे इन पुत्रोंको उत्पन्नकरती है ब्राह्मणसे ब्राह्मण क्षत्रियोंसे सूत, वै मागध शूद्रसे चांडाल और इगसेही क्षत्रियाब्राह्मणसे मूर्धावसिक्त, क्षत्रियसे क्षत्री, वै यामर और शूद्रसे पुत्कसको उत्पन्न करताहै, और इगसेही वैश्या की भृञ्जु, कंटक क्षत्रियसे माहिष्य और वैश्यसे वैश्य और शूद्रसे वैदेहको उत्पन्न करती है और इतीन चारों वर्णोंके योगसे शूद्रा कमानुसार पारशव वधन, करण और शूद्र वह चारप्रकारके

उत्पन्नकरती है, आचार्य कहते हैं कि छोटी और बड़ी जातिके विवाहसे सातवां वा पांचवीं पीढ़ीमें दूसरा वर्ण होजाताहै, और जो अन्यवर्णमें उत्पन्न हुए हैं उनमें प्रतिलोम और शूद्रांमें उत्पन्न अन्यवर्णकी स्त्रीमें शूद्रसे जो उत्पन्नहुए हैं वह पतितवृत्ति अन्त्यज और पापी हैं;

पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्षादश दैवाद्दशैव प्राजापत्यादश पूर्वान्दशा-  
परानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सज्जनपुत्र तीनपीढ़ीतक और आर्ष तथा दैवविवाहसे जो पुत्र उत्पन्न हुआहै वह दश पिछले और दश अगले पुरुषोंको पवित्र करता है और जो ब्राह्म विवाहसे पुत्र उत्पन्न है वह पूर्वोक्त तीस पीढ़ी और अपनेको पवित्र करता है ।

इति गौतमस्मृती भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

ऋताबुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥ देवपितृमनुष्यभूतर्विपूजकः नित्य-  
स्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् । यथोत्साहमन्यद्रार्योदिरमिर्दायादिर्वा तस्मिन्  
गृह्याणि देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च बलिकर्माग्नावग्निर्धन्वन्तरिर्विश्वदेवाः  
प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु मरुद्भ्यो गृहदेव-  
ताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्र्य उदकुम्भे आकाशायेत्यन्तरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च  
सायं स्वस्तिवाच्य भिक्षादानप्रश्नपूर्वं तु ददातिषु चैवं धर्मेषु समद्विगुणसाहस्रा-  
न्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः गुर्वर्थांनिवेशौषधार्थवृत्ति-  
क्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागौ बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु  
कृतामितरेषु प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

ऋतुमती स्त्रीमें तथा निषिद्ध दिनोंमें स्त्रीसंसर्ग नकरै और प्रतिदिन देवता, पितर, मनुष्य, भूत और ऋषि इनकी पूजा करतारहै, सर्वदा वेदको पढै, पितरोंको जलदान करै, और ब्रह्माह सहित अन्यकर्मकोभी करै, स्त्री, अग्नि और पुत्रादिके होनेपर गृहस्थके कर्म होतेहैं; देव, पितर, मनुष्य, स्वाध्याय और बलि वैश्वदेव यह यज्ञ हैं, अग्निमें बलिकर्म करै, अग्नि, धन्वन्तरि, विश्वदेव, प्रजापति और स्विष्टकृत् इनमें हवन करै, जिस दिशाका जो अधिपति है उसी औरको उसके निमित्त बलिप्रदान करै, दिशाके द्वारपरभी अन्न दे ४९ मरुत् और वरके देवताओंके निमित्तभी बलिप्रदानकरै वरके भीतर जाकर ब्रह्माके निमित्त बलि-प्रदानकरै, और जलके कलशमें जलकी पूजाकरै अन्तरिक्षमें आकाशको बलिप्रदानकरै, और सायंकालमें राक्षसोंको बलिप्रदानकरै स्वस्तिवाचन कराकर ब्राह्मणको दे व अब्राह्मणको देनेमें इसी प्रकारके धर्मोंमें समान फल है अथवा भिक्षासे ब्राह्मणको दानकरै, या किसी वर्गके विषयमें दानकरै, दानकारी अब्राह्मण, श्रोत्रिय और वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दानकरनेसे समान फलहोताहै, दुगुना, सहस्रगुना, और अनन्तगुना फल प्राप्तहोताहै गुरुओंके निमित्त और औषधिके लिये भिखारी दरिद्र, यज्ञ करनेके लिये उद्यत, विद्यार्थी, निर्बल,

पथिक, और विश्वकित्यहकारि इनको विभाग करके देना उचित है, वेदीके बाहरे माग  
नेवालेको अन्नदान देना उचित है, यदि किसी मनुष्यको कुछ देना स्वीकार करछिपावो  
फिर उसको विष्मर्मी धानसे तो उसको अगीकार कीहुई भी बस्तु न दे

कुदहृष्टमीतार्तलुन्धवालस्यविरमूठमचोन्मत्तषाम्पान्यन्वृत्तान्यपातकानि । भो  
जयेत्सर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्मिणीसुषासिनीस्पधिरान् जघन्यांश्च आचार्यं  
पितृसखीनां च निषेध ध्वनाक्रियां ऋत्विगाचार्यंश्वशुरपितृमातृकानामुपस्थाने  
मधुपर्कः सवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राक्षस्य भोत्रियस्य अत्रोत्रियस्यासनोदके  
त्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नाधिक्षेपांश्च प्रकारयेत् नित्यं वा संस्कारविशिष्ट  
मध्यतोन्नदान वैद्ये साधुवृत्ते विपरीतेषु तृणोदकभूमिं स्वमात ततः पूज्यानस्या  
शब्द शय्यासनावसयानुग्रज्योपासनानि सहकृभ्यसोः समानानि अस्पृशोपि हनिने

श्रेणी, आत्मवी, बरपोक, रोगी, खेमी, बालक, वृद्ध, मूढ, मत्त, और धन्मत्त, इनमें  
मिथ्या वात करनेमेंही पाठक नहींहै, अतिथि, कुमार, ( बालक ) गर्मिणी, सुहागिनी स्त्री,  
और अपनेसे बड़े तथा छोटे इनको पढ़के भोजन करकर गृहस्त्री पीछे आप भोजनकरके  
अतिथि, शशुर, पिता, मामा आचार्य इनकी पूजामें वर्ष दिनमें एकबार मधुपर्क यज्ञकरे,  
और अचार्य, पिता और मित्र इनको निषेधन करके पीछे किसी कर्मको करे, विवाहके  
समयमें राजासे प्रथम वेदपाठी ब्राह्मणको मधुपर्क दे अत्रोत्रियके आनेपर आसन्न और उरु  
दे, और कभी अत्रिय आज्ञाय तो उसी समय पाद्य अर्घ्य और विविध मांथिके अन्न दान-  
बाकर दे, चतुर वैद्यको वनायेहुए अन्नसे प्रतिदिन धन्न दे, और वैद्य यदि अच्छा न हो  
तो दूध, खट्ट, भूमि इनका दानकरे, जो कुछभी न हो तो स्वागत तो अवश्यही करे, और  
पूजन करनेके योग्यअन्न अन्नक्षण करके भोजन न करे, और शय्या, आसन, पर, पीछे  
बहना सेवा अपने समान और उत्तम मनुष्य इन दोनोंके विभिन्न एकभावसे करे, जो  
अपनेसे हीन हो, उसको पूर्वोक्त संस्कारसे किञ्चित् संस्कार करे

असमानप्रामोतिथिरकत्रात्रिकोपिवृत्ससूर्योपस्थापी कुक्षलानामपारोग्याणामनु  
प्रमोऽयं शूद्रस्याब्राह्मणस्यानतिथिरवाङ्मणो यज्ञे संवृत्तभेद भोजनं तु सत्रियस्योर्ध्व  
ब्राह्मणेभ्यः अन्यान् मृष्यिं सदानृशंसार्थमानृशंसार्थम् ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे वचसोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो अपने प्रामाण्य न हो किसी बुद्धके नीचे एक रात्रि निवास करवाहो, सूर्यकी स्तुति  
करवाहो उसीकी अतिथि कहतेहैं, उसकी कुछछ भेद और आरोग्यताका प्रश्न करे,  
शूद्र और अस्पृश यह अतिथि नहीं होसकता; ब्राह्मण यदि यज्ञमें आज्ञाय तो  
यह अतिथि होताहै; परन्तु अत्रियको ब्राह्मणसे पीछे भोजन कराने, और अत्रियजातिवोंको  
भूत्येके साथ दयाके परबस होकर भोजनकरावे ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायाटीकायां वचसोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्यायः ६.

पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् । अभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृतद्वंधूनां  
 पूर्वजानां विद्यागुरूणां च सन्निपाते परस्य स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादोऽज्ञस-  
 मवाये स्त्रीपुंगोऽभिवादतोऽनियममेकेनाविप्रोष्य स्त्रीणाममातृपितृव्यभार्या-  
 भगिनीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां श्वश्रुश्च ऋत्विक्छुरापितृव्यमातुलानां तु  
 यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्याः तथान्यः पूर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोप्य-  
 पत्यसमेन अवरोप्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेत् ॥

प्रतिदिन गुरुओंका समागम होनेपर उनके चरणोंको ग्रहण करै और यदि विदेशसे माता,  
 पिता, इनके बंधु तथा बडाभाई और विद्यागुरु यह आजॉय तौ इनके सन्मुख जाकर चर-  
 णोंको ग्रहणकरै, और यदि यह सब इकट्ठे होकर मिलै तौ जो सबके गुरु हैं पहले उनके  
 चरण ग्रहण करै “भापको यह मैं नमस्कार करताहूं” इस भांति अपने नामको लेकर नम-  
 स्कारकरै, और कोई २ ऐसामी कहतेहैं कि मूर्खोंके समागम तथा स्त्रियोंके मिलनस्थानसे  
 नमस्कारका कुछ नियम नहीं है, और जो स्त्री, माता, चाचा, ताई, भगिनी, भाईकी स्त्री,  
 सास यह परदेशसे आई हैं तौ इनके चरणोंको ग्रहण न करै, ऋत्विज, श्वशुर, चाचा, मामा,  
 और अपनेसे दश वर्ष बडा अन्यजाति पुरवासी हो तौ इनको देखतेही उठकर खडा होजाय  
 परन्तु नमस्कार न करै, और अस्ती वर्षका शूद्रभी अपने पुत्रके समान बैठाने योग्य है, और  
 उसका नाम शूद्रके समान लेना उचित नहीं;

राज्ञश्चाजपः प्रेष्यः भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि जातो दशवर्षवृद्धः पौरः  
 पंचभिः कलाधरः श्रोत्रियश्चारणस्त्रिभी राजन्यवैश्यकर्मविद्याहीनाः दीक्षितश्च  
 प्राक्क्रियात् वित्तबंधुकर्मजातिविद्यावयांसि सामान्यानि परवलीयांसि श्रुतं तु  
 सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥

यदि राजाका भृत्य अजप हो तौ उसको भी भवत्शब्दका प्रयोग करै, जो एक दिनही  
 उत्पन्न हुआ हो उसे वयस्य और अपनेसे जो पाच वर्ष बडा हो उसे कलाधर वा  
 श्रोत्रिय कहतेहैं और जो अपनेसे तीन वर्ष बडा है वह चारण कहाताहै, और कर्म विद्यासे  
 हीन क्षत्रिय, वैश्य, दीक्षित, धन, बंधु, कर्म, जाति, विद्या, अवस्था इन सबमें पहला बडा है,  
 और वेद तौ सबसेही बडा है, कारण कि वही धर्म और श्रुतिका मूल है;

चक्रिदशमीस्थाणुग्राह्यवधूस्रातकराजभ्यः पथोदानं राज्ञा तु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रथवान्, नव्वै वर्षसे अधिक अवस्थाका मनुष्य, दयाकरने योग्य, वधू, ज्ञातक, ब्रह्मचारी,  
 यह सब राजाको मार्ग छोडदे, और राजा वेदपाठीको मार्ग छोडदे ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकाया षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः ७

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणादिषोपयोगोऽनुगमन शुभूपा, । समासेब्राह्मणो  
 गुरु' यामनाभ्यापनप्रतिग्रहा' सर्वेषां पूर्वं' पूर्वो गुरु' तदभावे क्षत्रवृत्ति' तद्  
 भावे वैश्यवृत्ति' तस्यापप्य गधरसकृतास्रतिलशाणसौमामिनानि रक्षनिर्भित्ते  
 वाससी शीर च सविकार मूलफलपृष्ठीपथमधुमांसतृणोदकापध्यानि पक्षत्र  
 हिंसासयोगे पुरुषवशा कुमारी वेहतश्च नित्यं भूमिप्रीहियथाजाभ्यश्वर्षभपेयन-  
 कुहश्वीके विनिमयस्तु रसानां रसै' पशूनां च न लषणाकृतास्रयोस्तिष्ठानां च  
 समेनामेन तु पक्षस्य संपत्स्ये' सर्वपातुक्षतिरक्षकावशूदेण तदप्येके प्राप्स  
 शये तदर्पसंकराभस्यनियमस्तु प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शास्त्रमावदीत राजन्वो  
 वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आपत्कालमें ब्राह्मण आधिके अधिकरिक्त अन्यजातिसे विद्या पढे और जबतक पढकर  
 पढतक बसकी सेवा सुगुहा करतारहे, अथवा पीछे २ चले फिर जब विद्या पढ चुके तब  
 ब्राह्मणही गुरु होवाहे, ब्रह्मकरना, पढाना, दामलेना यह सब धर्म ब्राह्मणोंकेही हैं, इनमें पढ  
 धर्म भेद है, यदि ब्राह्मणोंको यह वृत्ति न मिले तो वह क्षत्रियवृत्तिको करनेको, और इससे  
 सफ़्त मनोरथ न हो तो वैश्यकी वृत्तिसे जीविका निर्वाह करे, परन्तु ब्राह्मण गंध, रस, फल  
 मज्ज, तिष्ठ, सन, मृगजर्म, रंगवस्त्र, दूध दूधक विकार, मूल, फल, फूज औषधि, श्वेत, मंस,  
 पृष, अन्न, अपध्वस्तु, हिंसाके संयोगमें पशु, पुरुष, वांस स्त्री, कुमारी, जितका गर्भ  
 गिरजाताहो, भूमि, घान, औ, पक्षी, मेढ इनको कदापि न चबे, और कोई २ पेसाही  
 खाते हैं कि औषधि, गौ, बैल, इनकामी बेचना कथित नहीं, एक नजरके रखके सब  
 दूसरे प्रकारके रसका चरखा नकरे; पशुके साथ पशुका चरखा न करे छत्रके साथ छत्रकम,  
 पके अन्नके साथ पके अन्नकम, और विडोंसे विडकामी चरखा न करे, मोअनकी आपत्क-  
 कला होनेपर उटीस्त्रय कसे अन्नसे पके अन्नका चरखा करके और अन्नक होनेपर छत्र  
 पातुओंके द्वारा अपनी आजीविका करके, सूत्रके साथ कमी न करे; परन्तु वर्षसंकरके  
 अन्नस्यका नियम रक्षे, प्राण संशय उपस्थित होनेपर ब्राह्मण भी क्षत्रपारण करके, और  
 क्षत्रिय वैश्य कर्मको करे ।

इति गौतमस्मृती आपत्काल्यं सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ८

द्वौ लोके धृतवृत्ती राजा ब्राह्मणश्च बहुभुतः । तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्या  
 त'सहानां चलनपतनसर्पयानामापत्तं जीवर्नं प्रसृतिरक्षजमसंकरो धर्मः । स एष  
 बहुभुता भवति लोकेष्वेदेषेदां गवित् वाकोषाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तु-  
 वि' चत्वारिंशता संस्कारैः' संस्कृतस्त्रिपु कर्मस्वामिरतः पदसु पासामया-

चारिकैष्वभिविनोतःपद्भिः परिहार्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादंड्यश्चावहिष्कार्य-  
श्चापरिवाह्यश्चापरिहार्यश्चेति ।

इस लोकमें राजा और बहुश्रुत ब्राह्मण यह दोहीजन व्रत धारण करनेवाले हैं इसके  
चौचमें बहुश्रुत ब्राह्मणही श्रेष्ठ है, चार प्रकारकी मनुष्यजातिमें ज्ञानका अंश है, इनका  
जीवन, चलन, पतन, पठन, यह उत्सर्पणके आधीनहै, प्रसूनिकी रक्षाही पवित्र धर्म है,  
वह मनुष्यही बहुश्रुत कहाजाता है जो लोकरीति तथा वेद वेदांगका जाननेवाला  
और वाकोवाक्यमें चतुर तथा इतिहास और पुराण इनमें कुशल हो, सर्व वेदादि शास्त्र  
की अपेक्षा करनेवाला ( उसका अनुसरण करनेवाला ) जिसके चालीस प्रकारके संस्कार  
हुएहों, तीन प्रकारके कर्मोंमें अभिरत और जो छैः कर्मोंमें तत्पर हो; और जो समय २  
के आचरणोंमें भलीप्रकार शिक्षित हो और जिसमें ऊपर कहे हुए छैःहों कर्म नहीं वह  
राजाके मारने योग्य है; जो उपरोक्त छैःहो कर्मको करताहै उसे राजा दण्ड न दे और  
न उसकी निन्दा करै तथा वह राजाके देशसे बाहर निकालने योग्य भी नहींहै ॥

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनं जातकर्मनामकरणान्नप्राशनं चौलोपनयनं  
चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देव-  
पितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां च अष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्व-  
युजीति सप्तपाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ आग्रहायणं चातु-  
र्मास्यानि निरूढपशुबंधसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः अग्निष्टोमोत्यग्निष्टोम  
उक्थः षोडशी वाजपेयोतिरात्रोऽतोऽर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः इत्येते चत्वारि-  
ंशत्संस्काराः । अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्व्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमना-  
यासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहेति । यस्यैते न चत्वारिंशत्संस्काराः न चाष्टावात्म-  
गुणा न स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति ॥ यस्य तु खलु संस्कारा-  
णामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणाः अथ स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति  
गच्छति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन,  
चारों वेदोंका अध्ययनके अर्थ ब्रह्मचर्य, स्नान, विवाह, देव, पितर, मनुष्य, भूत, ब्रह्म इन  
पांचों यज्ञोंका अनुष्ठान, अष्टका और पार्वण श्राद्ध, श्रावण, अगहन, चैत्र, और कारके महीनेमें-  
की १५पूर्णमासी, यह सात पाकयज्ञके भेद हैं और अग्निका आधान, अग्निहोत्र, दर्शयज्ञ, पूर्णमास-  
यज्ञ, आग्रहायणयज्ञ, चातुर्मास्ययज्ञ, पशुबंधयज्ञ, सौत्रामणि यह सात हविर्यज्ञके भेद हैं, और  
अग्निष्टोम, अत्याग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आतोऽर्याम, यह सात सोमयज्ञके  
भेद हैं, और यह चालीस गर्भाधानआदि संस्कार हैं, आठ प्रकारके आत्माके गुण हैं,  
प्राणीमात्रमेंही दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मंगलविधान, कृपणताराहित्य, और  
अस्पृहा, यह चालीस प्रकारके संस्कार और आठ प्रकारके गुणोंमें नहींहैं वह कभी भी

ब्रह्मलोक वा सायुष्यमुच्छिन्नो प्राप्तः सती होता और जिसमें चासीव प्रकारके संस्कारोंसे कुर्वनी हैं और बाठ प्रकारके गुण हैं वह सायुष्य वा साखोक्यको प्राप्त होता है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ माण्डूकीकाण्डोऽध्यायः ॥ ८ ॥

### नवमोऽध्याय ९.

स विधिपूर्वञ्ज्वात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थधर्मान् प्रयुञ्जान इमानि प्रतान्पुनरुपैत् ज्ञातकं नित्यं शुषिं सुगंधिं ध्यानशीलं सति विमवे न जीर्णमण्डवासां स्यात् । न रक्तमुन्वणमन्यधृतं वा वासो विभूयात् । न स्यु पानहो निर्णिक्रमशस्त्रौ न रुद्रश्मशुरकस्मात्तामिमपश्च युगपद्धारयेत् । नापोऽभेष्येन ससृजेत् । नाजलिना पिबेत् । न तिष्ठन् उद्धृतेनोदकेनाचामेत् । न शूद्राशुष्येकपाभ्याधर्मितेन न वाय्वर्णिं विप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरीषाभेष्यान्पुदस्येत् नैता देवता प्रति पादौ प्रसारयेत् । न पर्णलो छात्रमभिसूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेशनस्रुतपकपालामेष्यान्यापि तिष्ठन्न म्लेच्छाशुष्यधर्मिदै सह सभावेत संभाष्य पुष्यकृतो मनसा भ्यायेत् । ब्राह्मणेन वा सह सभायेत् । अघेनु घेनुभष्येति ब्रूयात् । अमद्रं भद्रमिति कपालं भगालमिति मणिघनुरितीन्द्रघट्टं । गां घर्ती परस्मै नाशसीत् । नधे नो वारयेत् । न मियुनीसूत्वा शीर्षं प्रति विलिषेत् । न च तस्मिन् शयने स्वाभ्यायमधीपीत् । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रति संविशेत् । नाकस्यां नारी भभिरमयेत् । न रजस्वलां न चैतां श्लिष्येत् न कन्याम् । अग्निमुखोपधमनधिष्ट इवावधर्हिर्गणमात्स्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोगनाजनापेक्षणकुद्दार प्रवेक्षणपादपावनासंदिग्धभोगननदीवाहतरणपृष्टपृषभारोहणाधरोहणप्राणनाभ्यवस्थां च विवर्षयेत् । न संदिग्धां नाशमधिरोहेत् । सर्व्वत एव आरामानं गोपायेत् । न प्रावृत्य शिरोहनि पर्येटेत् । भावृत्य रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावनेतर्द्धाय नाराधावसपात्र भस्मकरीपकृष्टछायापयिकाम्येपूभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यात् । उदङ्मुत्सं सध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुत्सं पालाशमासन पात्रुके दंत पावनामिति च वर्जयेत् । सोपानकक्षाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्जयेत् । न पूर्वाह्नमध्यन्दिनापराह्णानफलान् कुर्याद्वा यथाशक्ति धर्मार्थ कामेभ्यस्तेषु च धर्म्मोत्तरं स्यात् । न नमो परयोपितमीक्षेत् न पदासनमाकर्षेत् । न भिक्षुनोदरपापिपादवाक्चक्षुश्चापस्त्रानि कुर्यात् । छेदनभेदनविलेखन विमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥ मापरियस्रतंत्रीं गच्छेत् । न जलकुलं स्यात् । न यज्ञमभृती गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । न मस्यानुसंगे भक्षयेत् । न रात्री भेष्याद्दतमुद्गतज्वेदविलिपनपिण्याकमपितमभृतीनि चासवीर्याण्य

शनीयात् । सायंप्रातस्त्वन्नमभिष्टजितमनिन्दन् भुञ्जीत् । न कदाचिद्  
रात्रौ नम्रः स्वपेत् स्नायाद्वा । यच्चात्मवंतो वृद्धाः सम्यग्विनीता दंभ-  
लोभमोहवियुक्ता वेदविद् आचक्षते तत्समाचरेत् ॥ योगक्षेमार्थमीश्व-  
रमधिगच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः प्रभूतैधोदकयवसकुशमाल्यो-  
पनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्मिकाधिष्ठितं निकेतनमावसितुं य-  
तेत । प्रशस्तमंगल्यदेवतायनचतुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत । मनसा वा तत्स-  
मग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पः सत्यधर्मार्य्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौचशिष्टः  
श्रुतिनिरतः स्यात् । नित्यमहिंसो मृदुदृढकारी दमदानशील एवमाचारो माता-  
पितरौ पूर्वापरांश्च संबद्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकात्र  
च्यवते न च्यवते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### प्रथमःपाठकः ॥ १ ॥

वेदको पढकर ब्राह्मण विधिसहित स्नानकर विवाह करै, इसके पीछे शास्त्रोक्त नियमके अनुसार गृहस्थधर्मका अनुष्ठानकर इन व्रतोंको करै, स्नातक होकर सर्वदा पवित्र रहै, उत्तमर गंधवाले द्रव्योंका सेवनकरै, और प्रतिदिन स्नान करै, शील रक्खै, धनके होतेहुए पुराने और मलीन वस्त्रोंको न पहरे, मलीन और रंगेहुए वस्त्रोंको न पहरे, दूसरेके पहरेहुए वस्त्रोंको न पहरे, पहरीहुई माला और दूटे जूते आदिको न पहरे, सामर्थ्य होनेपर जीर्णवस्त्रको धारण न करै, और एक कालमें अग्नि और जलको धारण न करै, अंजुलीसे जल न पियै, खडे होकर निकालेहुए जलसे आचमन न करै, और शूद्र, अशुद्ध तथा एक हाथसे निकालेहुए जलसे आचमन न करै, वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, देवता, जल, गौ इनके सन्मुख मूत्र, विष्ठा तथा किसी अपवित्र वस्तुका त्याग न करै, देवताओके ओरको पैर न फैलावै, पत्ते, डेला, पत्थर इनसे मूत्र और विष्ठाको दूर न करै, और भस्म, केश, नख, सुप्सी, कपाल, अपवित्र वस्तु इनपर भी न बैठे, म्लेच्छ, अशुद्ध, अधर्मी मनुष्य इनके साथ सम्भाषण न करै, यदि सम्भाषण करै तो मनही मन पुण्यात्माओंका स्मरणकरै, दूध न देतीहो उस गौको धेनुमव्या इस भाति कहै, अमगळ वस्तुको मंगल कहै, कपालको भगाल कहै, इन्द्रधनुको मणिधनु कहै, चुगती हुई गौको और वडडेको न बटावै और न उसे आप हटावै, मैथुनकरके गौचकरनेमें त्रिलम्ब न करै, मैथुनकी शय्यापर वेद न पढै, पिछली रात्रिमें पढकर फिर शयन न करै, असमर्थ स्त्रीके साथ तथा रजस्वला स्त्रीके साथ भोग न करै, रजस्वलाका स्पर्शमी न करै, कन्याके साथ मैथुन न करै, अग्निको मुखसे न फूके, गहिंठ वचन न बोलै, बाहरे गंध वा माला धारण न करै, पापीके साथ अबलेखन न करै, भार्य्याके साथ भोजन न करै, जिससमय स्त्री नेत्रोंमें अंजन लगातीहो उस समय उसे न देखे, खोटे द्वार में न जाय, दूसरेसे पैरोंको न धुलावै, और संदिग्ध स्थानमे भोजन न करै, हाथोंसे नदीको न पारै, विषवृक्षपर चढना वा उतरना जिनमें प्राणोंकी शंकाहो उन सब को त्यागदे, दूदीहुई नौकापर न चढै, सब प्रकारसे आत्माकी रक्षाकरै दिनमें नंगे शिर न



प्रसङ्गे वा सायुष्यमुल्लिख्ये प्राप्त नही होता और जिसमें बाकीस प्रकारके संस्कारसे सम्बन्धी हैं और आठ प्रकारके गुण हैं वह सायुष्य वा सायुष्यको प्राप्त होकरे ।

इति श्रीमौक्तमस्तुती भाष्येऽष्टादशस्मृतयः ॥ ८॥

### नवमोऽध्याय ९.

स विधिपूर्व आत्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्पभर्मान् प्रपुंजान इमानि प्रताम्पनुकर्षेत् आतकं नित्य शुचि सुगन्धिं ज्ञानशीलं सति विभवे न जीर्णमकवद्रासां स्यात् । न रक्तमुन्वणमन्यधृतं वा वासो विभृयात् । न सस्य पानहो निर्णिकमशक्तौ न रुद्धश्मशुरकस्मात्तामिमपश्च युगपद्धारयेत् । नापोऽभेष्येन ससृजेत् । नाजलिना पिबेत् । न तिष्ठन् उन्मतेनोदकेनाचामेत् । न शूद्राद्युच्येकपाण्यावर्जितेन न धार्यामि विप्रादिस्पापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा भूषपुरीषामेष्यान्नुदस्पेत् नैता देवता प्रति पादौ प्रसारयेत् । न पर्णलो धारमभिमूर्त्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेक्षणसत्पक्कपालामेष्यान्वधि तिष्ठन्न म्लेच्छाद्युच्यधार्मिके सह सभावेत सभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् । आश्लपेन वा सह सभावेत । अघेनु धेनुमभ्येति ब्रूयात् । अमद्दं भद्रमिति कपालं भगालमिति मणिधनुरितीद्वघनु । गां धर्यतीं परस्मै नावक्षीत । न चैनां वारयेत् । न मिथुनीभूत्वा शीर्षं प्रति बिल्वेषत् । न च तस्मिन् शपते स्वाध्यायमधीपीत । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिक्षिपेत् । नाकृत्पां नारी मभिरमयेत् । न रजस्वलां न वीतां क्षिप्येत् न कस्याम् । अमिमुखोपधमनविषु इवाद्बर्हिर्निधमास्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोजनभोजनावेक्षणकुट्टार प्रवेशनपादपावनसर्पदिग्भभोजनमदीषाहृतरणवृषभारोहणापरोहणप्राणना य्यवस्थां च विषर्षयेत् । न संदिग्धां नावमपिरोहेत । सर्व्वत एव आत्मानं गोपायेत् । न प्रावृत्य क्षिरोहनि पर्येदेत् । प्रावृत्य रात्रौ भूषोच्चारे च न भूमाव नंतद्वौष नाराचावसथात्र भस्मकरीपकृष्टुछापापयिकाम्येपूमे भूषपुरीषे विषा कुर्यात् । तदकमुखं सभ्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखं पालाशमासनं पादुके वत पावनमिति च धर्षयेत् । सोपानत्कक्षासनासनशयनाभिवादनमस्त्रपत्न वञ्जयेत् । न पृष्ठाद्दमयन्दिनापरप्राज्ञानफलान् कुर्यात् । मयाशक्ति धर्मार्थ कामेभ्यस्तेषु च धर्मोत्तरं स्यात् । न नमो परयोपितमीक्षेत न पदासनमाक र्षेत् । न विश्वेदेवपामिपादवाक्यसुभ्यापलानि कुर्यात् । छेदनभेदनपिच्छेसन विमर्दनस्फेदनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥ नोपरिषत्सर्तरीं गच्छेत् । न जलकुलं स्यात् । न यज्ञमभृतो गच्छेत् । दर्शनाय तु कापम् । न मत्पानुसृगी भसयेत् । न रात्रौ प्रेष्याद्दत्तमुद्धृतखेहविष्टेपनपिण्याकमपितप्रभृतीनि चाचवीर्योप्य

पृथक् जये अन्यत्तु यथाहं भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पंचाशद्भागं विशतिभागः शुल्कः पण्ये मूले फल-मधुमांसपुष्पौषधतृणैधनानां षष्ठं तदक्षणधर्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् । अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासिमास्येकैकं कर्म कुर्युः । एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः । नौचक्रिवंतश्च भक्तं तेभ्योपि दद्यात् । पण्यं वणिग्भिरर्थापचयेन देयम् । प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्द्धमाधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेषः स्वामी । रिक्थाक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्यधिगमा राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके । चौरहतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्रा दद्यात् । रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणादा समावृत्तेर्वा ।

तीनों द्विजातियोंको अध्ययन, यज्ञ, और दान इन तीनों कर्मोंका अधिकार है, इन तीनोंमें ब्राह्मणको अधिक पढाना, यज्ञकराना, और दानलेना यह विशेष है, और सबमें यह नियम है कि आचार्य जाति गुरु धन विद्या इनके नियममें ब्राह्मणही उपदेश करनेवाला होताहै, और शास्त्रमें कहेहुए कर्मोंको छोडकर लें न दें भृत्योसे कृषी कराना यह क्षत्रिय और वैश्यके धर्म हैं, परन्तु राजाका यह अधिक धर्म है कि सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा, दंडकरने-योग्य दुष्ट मनुष्यको दंड, बेदपाठी और उद्योगहीन, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, विनाकरवाले, इनकी पालनाकरै, युद्धक्षेत्रमें रथपर चढकर धनुष, बाण धारण कियेरहै, युद्ध करतेमें विमुख न हो, युद्धके समयमें प्राणियोंकी हिंसासे पाप नहींहै, विजयमें और भयमें अशक्त न हो, परन्तु हताश, सारथीहीन, घोडेरहित, शस्त्रहीन, जो कृतांजलि हो, जिसके बाल खुले हों, जो मुखफेरे बैठाहो, वृक्षपर चढाहो, दूत हो और जो अपनेको गौ अथवा ब्राह्मण कहै, यदि दूसराभी क्षत्रिय हो तो उसीके आश्रय होकर अपनी जीविकासे उसका निर्वाह करै, संग्रामको जीतनेवाला भृत्यभी संग्रामकी वस्तुओंके लेनेका अधिकारी है, परन्तु धन और सवारी यह राजाही लेनेका अधिकारी है, यदि युद्धमें राजाभी साथ हो तो अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु वा कुछ एक द्रव्यका भागभी राजाओंका होताहै, और राजा अन्य वस्तुओको यथायोग्य वांटदे, खेतीकरनेवाला राजाको छटा, दशवा वा आठवां भाग दे ईधन, तृण इनका छठाभाग राजाको दे कारण कि इनकी रक्षा करना राजाकाही धर्म है, राजा इनमें नित्य सावधानी रखै, प्रत्येक महीनेमें एकदिन राजाका काम कारीगर करतारहै, और अपना निर्वाह अधिकसे करै, यही धर्म मजूर, नौकावान, तथा रथवानोंकाभी है, वहभी राजाको भागदेने योग्य हैं, और वैश्य धनके विना बेचनेकी वस्तुकोन दे जिसका स्वामी न हो यदि उसका नष्ट धन मिलजाय तो राजासे कहदै, और उस धनकी पहले राजा एकवर्षतक रक्षाकरै, एक वर्षके उपरान्त जिसको वह धन मिलाहो उसको चौथाई दे और शेष धनको अपने पास रखै, और भाग, क्रय, विभाग, परिग्रह, अधिगम, लोभ इनमें ब्राह्मणका लब्धमें क्षत्रियका विजितमें और वैश्यका निर्विष्टमें जो सेवाकरनेसे मिलजाय वह अधिक भाग होताहै, और खजानेके मिलनेमें

श्री, और रात्रिमें शिर ढककर मछमूत्रका त्यागकरै, परन्तु घृष्णीको तुलभापिसे बिनाइके मूत्रविघ्नाका त्याग न करै, भस्म, सूडा गोबर, जूना, क्षेत, छाया, मार्ग अच्छी बस्तु इनमें मछका त्याग न करै, दिनके समयमें चत्वारको सन्ध्या और रात्रिके समयमें दक्षिणको मुखकर के मछमूत्रका त्यागकरै, और डाकका भासन, खडार्क, दत्तौत इनको त्यागने, जूना, पैरोंमें पहरेहुय भोजन, उपवेशन, सपन, स्तुति और नमस्कार न करै । यथाशक्ति पूर्वाह्न और अपराह्न इनकी निष्कण्ट न जानेदे, परन्तु यथाशक्ति धर्म अर्थ और काममें सप्रयको अतीत करै, इन तीनोंमें धर्मही उत्तम है, दूसरेकी नगी श्रीको न बेखी, पैरसे भासमको न लैये, छिगा, चर्द, हाथ, पैर, पाणी, नेत्र इनका पपछ न करै, और छेवन, मेड़न, विछेवन, मखना, हाथसे हाथ धमाना इनको बिना प्रयोजन न करै, रस्तीके ऊपर जसके तटपर न बैठे, बरपीके बिना हुये गहमें न जाय; और देतनेके छिये ठी इच्छामुसार जाय; जानकी वस्तुको गोर्धमें रखकर न क्षाय, सेवककी छाई हुई रात्रिमें बिना शिकनी कण और बिलपन निर्दलमट्टा, गरिष्ठवस्तु इनको न क्षाय, साबकास और प्रातःकालमें पूजाकरके बिना कलकी मिन्हा किये भोजनकरै, रात्रिके समय मेंगा स्रजन न करै, मेंगा खान न करै, किस कर्मके करनेको भास्यजानी बुद्धपुरूप मसी भांठि दीक्षित, ईस, छोम, मोइसे रहित और बेपके जाननेबाछे कई उच कर्मको सर्वदा करवारौ, और मांगक्षेमके निमित्त फलीके समीप जाय; देवता, गुद, धर्मइ इनको छोडकर अन्य घरोंमें निवास करमेके छिये पतन न करै, किस स्थानमें काठ काष्ठ, सुसा, कुशा, फस और मार्ग यह अधिक प्राप्तहो और जहां बाहुतसे सज्जन पुरुष निवास करते हो मिस स्थानमें जग्निहोत्र हो ऐसे स्थानमें निवास करै, भेष्ट और मांगक्षिड वस्तु और चौराहे इनको वहिनीमोर बेकर गमन करै, पीडादि भापति प्रसव होने पर भी मनाही मनमें सम्पूर्ण धर्माचरणोंका पाछन करै, सर्वदा सत्यधर्मसे सज्जनोंका आचरणकरै, ससुठकोंको पडावे, शौचकी शिक्षा दे और बेहको पढवारौ, प्रतिदिन हिंसा न करै, मज्जासे रह कर्म करै, इन्द्रियोंको दमन करै दान करै, शौच रखै, इस प्रकार ध्यचरण करेताहुआ मरता पिठा और पहले पिछले सम्बंधियोंको पापसे मुक्त करनेकी इच्छा करतहुआ गृहस्थी सन्तानन मछकोकमें निवास करवाहे ।

इति श्रीगौतमस्त्वो भाष्यीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

### दशमोऽध्यायः १०

द्विभातीनामव्ययनमिज्या दानम् । ब्राह्मणस्याधिका प्रवचनयामनप्रतिग्रहा  
सर्वेषु नियमस्तु आचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्यानिधयेषु ब्राह्मणं सप्रदानमन्यत्र  
यथोक्तान् कृपिवाणिज्ये चास्वयकृते कुसीदं च राज्ञोधिक रक्षण सर्वभूतानां  
न्याप्यददत्त्व बिभूयात् ॥ ब्राह्मणान् भौषियान् निरुत्साहीषाब्राह्मणानकरीषो  
पकुर्वाणाश्च योगश्च विनये भये विज्ञेयेण चर्या च रथपनुर्म्मां संप्राये संस्थानम  
निवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवे अम्यत्र व्यश्वसारभ्यापुषकृतांशक्तिप्रकी  
र्णकेक्षपराह्मुसोपविष्टस्थसृष्टादिकृद्दूतगोघ्राह्मणवादिभ्यः सप्रियधैदम्पस्त  
मुपजीयेत् वि स्यात् जेता लभेत सामामिकं वित्त वाहनं तु राज उद्धारथा

पृथक् जये अन्यत्तु यथार्हं भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पंचाशद्भागं विशतिभागः शुल्कः पण्ये मूले फल-मधुमांसपुष्पोपधतृणेंधनानां षष्ठं तद्रक्षणवर्म्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् । अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासिमास्येकैकं कर्म कुर्युः । एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः । नौचक्रिबंतश्च भक्तं तेभ्योपि दद्यात् । पण्यं वणिग्भिरर्थापचयेन देयम् । प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्द्धमधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेष स्वामी । रिक्याक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्यधिगमा राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके । चौरहतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्वा दद्यात् । रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणादा समावृत्तेर्वा ।

तीनों द्विजातियोंको अध्ययन, यज्ञ, और दान इन तीनों कर्मोंका अधिकार है, इन तीनोंमें ब्राह्मणको अधिक पढाना, यज्ञकराना, और दानलेना यह विशेष है, और सबमें यह नियम है कि आचार्य जाति गुरु धन विद्या इनके नियममें ब्राह्मणही उपदेश करनेवाला होताहै, और शास्त्रमें कहेहुए कर्मोंको छोडकर लैन देंन भृत्योसे कृपी कराना यह क्षत्रिय और वैश्यके धर्म हैं, परन्तु राजाका यह अधिक धर्म है कि सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा, दंडकरनेयोग्य दुष्ट मनुष्यको दंड, वेदपाठी और उद्योगहीन, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, विनाकरवाले, इनकी पालनाकरै, युद्धक्षेत्रमें रथपर चढकर घनुप, बाण धारण कियेरहै, युद्ध करतेमें विमुख न हो, युद्धके समयमें प्राणियोंकी हिंसासे पाप नहींहै, विजयमें और भयमें अशक्त न हो, परन्तु हताश, सारथीहीन, घोडेरहित, शस्त्रहीन, जो कृतांजलि हो, जिसके बाल खुले हों, जो मुखफेरे बैठेहो, वृक्षपर चढाहो, दूत हो और जो अपनेको गौ अथवा ब्राह्मण कहै, यदि दूसराभी क्षत्रिय हो तो उसीके आश्रय होकर अपनी जीविकासे उसका निर्वाह करै, संग्रामको जीतनेवाला भृत्यभी संग्रामकी वस्तुओंके लेनेका अधिकारी है, परन्तु धन और सवारी यह राजाही लेनेका अधिकारी है, यदि युद्धमें राजाभी साथ हो तो अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु वा कुछ एक द्रव्यका भागभी राजाओंका होताहै, और राजा अन्य वस्तुओंको यथायोग्य वांटदे, खेतीकरनेवाला राजाको छटा, दशवा वा आठवां भाग दे ईधन, तृण इनका छठाभाग राजाको दे कारण कि इनकी रक्षा करना राजाकाही धर्म है, राजा इनमें नित्य सावधानी रखवै, प्रत्येक महीनेमें एकदिन राजाका काम कारीगर करतारहै, और अपना निर्वाह अधिकसे करै, यही धर्म मजूर, नौकावान, तथा रथवानोंकाभी है, वहभी राजाको भागदेने योग्य हैं, और वैश्य धनके विना वेचनेकी वस्तुको न दे जिसका स्वामी न हो यदि उसका नष्ट धन मिलजाय तो राजासे कहदै, और उस धनकी पहले राजा एकवर्षतक रक्षाकरै, एक वर्षके उपरान्त जिसको वह धन मिलाहो उसको चौथाई दे और शेष धनको अपने पास रखवै, और भाग, क्रय, विभाग, परिग्रह, अधिगम, लोभ इनमें ब्राह्मणका लब्धमें क्षत्रियका विजितमें और वैश्यका निर्विष्टमें जो सेवाकरनेसे मिलजाय वह अधिक भाग होताहै, और खजानेके मिलनेमें

राजाको भाग दे कोई २ ऐसामी कहतेहैं कि पशु और सुवर्णमेंमी पांशवां भाग है और बत्नेकी वस्तुमें बीसवां भाग राजाका है परन्तु पवित्र प्राणियोंके अतिरिक्त कीई २ ऐसामी कहतेहैं कि यदि प्राण्यसे अतिरिक्त धर्म विख्यात हो तो छठे भागका अधिकारी है, चोरिके द्रव्यको पाकर राजा उस धनको ध्यास्थानपर पहुँचावे, या अपने खजानेसे देवे, जबतक बाळक व्यवहारको न जाने जबतक अथवा गृहस्थी होनेतक वासकके धनकी रक्षा करताहै वही राजाका धर्म है,

वैश्यस्याधिक कृषिवणिक्पाशुपाल्यं कुसीदं सूद्रधत्तयोर्षणं एकजातिस्तस्यापि सत्यमश्लेषमशौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमैविके भ्रातृकर्म भृत्यभरणं स्वदायुष्टिं परिचर्यां चोचरेणं धूर्तिं लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासं कूर्वान्युच्छिष्टाशनं शिष्यवृत्तिश्च । यं चायमाभयते भर्ताभ्यस्तेन क्षीणोपि तेन चोत्तरस्तदर्थोस्य निश्चयः स्यात् । अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मत्रः । पाक्यश्चै स्वयं यजेतेत्येके । सर्वे चोचरोत्तर परिचरेयुः । आपानार्थं योर्भ्यतिक्षेपे कमणः साम्यं साम्यम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैश्यकी जेठी, व्यवहार, पशुओंका पालन, कुसीद सूत्रके छेनेसे अधिक धर्म है और शौचा धर्म सूत्र है एकजाति अर्थात् द्विजाविसंस्कारसे यह हीन होताहै उसकेमी यही धर्म हैं; सत्य, श्लेषहीन, शौच, आचमनके निमित्त हाथ पैरोंका धोना, और कोई २ ऐसामी कहतेहैं कि, आश्रयकरना, सुत्योंकी पाठना, गुरुक, फल, सख्त, मीठा, मस, पूर, औषधि, अपने द्वारपर सन्तोष, उत्तर द्विजावियोंकी सेवा, और उनसे अपनी जीविकाकी इच्छा करताहै, और उनके पुपने नूते, छत्री बख कूर्च तथा कुम्भाकी मुष्टिको धारण करै, उनकी वृच्छिष्ट मोचन करै, अपनी इच्छानुसार किसी शिष्यकार्यद्वारा अपनी जीविका निर्वाह करै, सूत्र सेवाके निमित्त मिसर आभय के वही इसकी पाठना करता है हीनमवस्था होनेपर उसे सूत्रभी प्रतिपाठन करै वही इस सूत्रको बड़ाई देनेवाला है उसके निमित्त इसके सचय हैं, और सूत्रको नमस्कारके मन्त्रकामी अधिकार है, कोई २ ऐसामी कहतेहैं कि पाक्यहोसि सूत्रमी स्वयं पूजन करके, और चारों वर्णोंमें पिछे २ पूर्व २ वर्णकी सेवा करै, और सज्जन, दुर्जन इनका व्यवक्षेप तथा उच्छटापच्छटीमें दोनों कर्म समान हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायावीजायां दशमोऽध्यायः ॥ १ ॥

### एकादशोऽध्यायः ११

राजा सम्यस्येष्टे भ्रातृणवर्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादीं प्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः । शुचिर्नितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्यात् तमुपर्यासीनमपस्ताडुपासीरन्नये भ्रातृणोभ्यस्तेष्वेन मन्ये रत् । वर्णानाभमांश्च न्यापतोऽभिरक्षेत् । चलतर्धनान्स्वधर्मं एव स्थापयेत् । धर्मस्योऽभ्रामाग्मवतीति विज्ञापते । भ्रातृण च पुरो दधीत विद्याभिनन

वाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनम् । तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ब्रह्म-  
प्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ।

ब्राह्मणके अतिरिक्त राजा सभीका ईश्वर है, वह सर्वदा लोकोका हित करतारहै, सर्वदा मधुरवचन कहतारहै, कर्मकांड और ब्रह्मविद्यामें शिक्षित शुद्ध जितेंद्रिय और जिसके सहायक गुणवान् हों उपायोसे युक्त होकर सम्पूर्ण प्रजामें समदर्शी रहै, उनका हित कर-  
तारहै, सबसे ऊचे आसनपर बैठेहुए उस राजाकी ब्राह्मणके अतिरिक्त और सब जातियें सेवाकरै, ब्राह्मणभी उसका मान्यकरै जो चारोंवर्णोंकी न्यायसे रक्षाकरै और आप धर्मके मार्गमें स्थित रहकर धर्मपथसे स्वलित चारो वर्णोंको अपने २ धर्मपर स्थापित करै, वही राजा धर्मके अंशका भागी कहागया; यह बात शास्त्रसे जानीगई है, विद्या, देश, वाणी, रूप, अवस्था, शीलवान्, न्याययुक्त तपस्वी जो ब्राह्मण है उसे पुरोहित करै. ब्राह्मणसे उत्पन्नहुआ क्षत्रिय अर्थात् ब्राह्मणसे संस्कार कियाहुआ कर्मोंको करतारहै, कारण कि ब्राह्मणसे उत्पन्नहुआ ( अर्थात् संस्कार कियाहुआ ) क्षत्रिय बढताहै, और दुःखी नहींहोता यह शास्त्रके अनुसार जानागयाहै.

यानि च दैवोत्पातचितकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते । शांतिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेष-  
णसंवलनाभिचारद्विषद्वृद्धियुक्तानि च शालामौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ।

दैविक उत्पातोंकी चिन्ता करनेवालोंमें जो कहाहै उसको आदरपूर्वक श्रवणकरै कोईर ऐसाभी कहतेहैं कि योग, क्षेम उनकेही आधीन है अग्निशालामें ग्रहशांति, पुण्याह, स्वस्त्ययन, आयुर्वृद्धि और मंगलदायक कार्य, नान्दीमुख, शत्रुओंकी पराजय, विनाश और पीडादायक कर्मोंका अनुष्ठान करै, और अन्यकर्मोंको ऋत्विजोंकी आज्ञानुसार करै

तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्माश्चा-  
म्रायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदकारवः स्वस्वे वर्गे तेभ्यो  
यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोभ्युपायः तेना-  
भ्यूह्य यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां  
गमयेत् । तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति । ब्रह्म क्षेत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान्  
धारयतीति विज्ञायते ।

राजा प्रजाओंके विवादस्थानमें विचारकर निर्णय करै, वेद, धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग, उपवेद, पुराण, शास्त्रोंके अविरुद्ध, देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, उसका प्रमाण, कृषि, वाणिज्य, पशुपाल, व्यापारी, और शिल्पकारियोंको अपने २ वर्गमें स्थितकरै, अधिकारके अनुसार इनसे धन लेकर धर्मकी व्यवस्था करै, और न्यायके ढूंढनेमें उसका निर्णय करै, उस-  
सेही निश्चय करके जहाका तहां पहुंचादे और विवाद होनेपर अधिक विद्वानोंको सौंपकर निर्णय करावै कारण कि ऐसा करनेसेही राजाका कल्याण होताहै, ब्रह्मवीर्य क्षत्रियके तेजके साथ मिलनेसे राजा ब्राह्मण, देवता, पितर और मनुष्य इनकी पालना करताहै, यह बात शास्त्रसे विदित है, और बढानेभी यही कहाहै.

वंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान् दमयेत् वर्षांश्चाभमाभ स्वकर्मनिष्ठा प्रेत्य  
फलमनुभूय तत शोपेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेधसो  
जन्म प्रतिपद्यते । विष्वचो विपरीता नश्यति तानाचार्योपदेशो दृढश्च पास्यते ।  
तस्मात् राजाचायावर्निद्यावर्निधी ॥

इति श्रीगीतमीये धर्मशास्त्र एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इमनके निमित्तही दृढकी सृष्टि है इसकारण सबदा सृष्टिका दमन करतारहै स्वधर्ममें  
स्थित धर्म और आभम मरनेके उपरान्त अपने २ कर्मोंके फलको भोगकर पुण्यके अंतमें  
इसमांति जन्म लेतेहैं, जहां यह उच्यत हों कि देश, जाति, कुल, रूप, व्यवस्था, विद्या, धन,  
आचरण, सुख और सुखि. अपने धर्मसे विपरीत आचरण करतेहुए धर्म और आभम तट  
होजातेहैं, नष्टहुए इनको आचार्यका उपदेश और दृढ पाठना करवाहै, इसकारण राजा  
और आचार्य यह निम्नाकरनेके योग्य नहैं।

इति श्रीगौतमधृतौ मायादीक्षायातेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्याय १२.

शूद्रो द्विजातीनमिसधायाभिहत्य च धाग्वंदुपारुष्याभ्यामंग मोक्ष्यो येनोपह  
न्यात् । आर्यरूपमिगमने स्त्रिगोद्धारः स्वप्रहरणं च गोप्ता वेदधोषिकः ।  
अपाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुम्यां भोत्रप्रतिपूरणम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेदः  
घारणे शरीरभेदः । आसनक्षयनवाक्पपिपु सममेप्सुर्दम् घातम् । क्षत्रियो  
ब्राह्मणाक्रोशे दृढपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अप्यर्द्ध वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रिये पचाशत्  
तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित् ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियधैर्यौ अष्टापाद्य स्तेयकि  
त्स्विय शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेवाम् । प्रतिवर्षं विदुषांतिश्रमे दृढमूपस्त्वम् ।  
पल्लहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमस्ये पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंपुके  
तु तस्मिन् पयि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पचमापा गवि पद्मपृस्तरे अश्व  
महिष्योर्दश अजाविपु द्वी द्वी सर्व्वधिनाशे शतं शिष्टाकरणं प्रतिपिद्दसेषायां  
च नित्यं चेलर्पिबाहुर्ध्वं स्वहरणं भोग्म्यर्थं तृणमेधोधीरुदनस्पतीनां च पुष्पाणि  
स्ववदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

शूद्र यदि किसी द्विजातिके प्रति विरकाररूपक वाक्य कहै और कठोरभाषसे  
क्यापाव करै; तब वह जिस अगसे आकाश करै राजा उसके उसी अंगको कटवावे; और  
अग्नेसे कड़ौकी कियोंके संग यदि गमय करै तो उसका छिग कटवावे; और ध्ये वह स्वयंही  
मरवाव या अपनी किसी भांति रक्षाकरै तो उसका अतिकर्षक बहई कि, राजा उसका  
बद करै. शूद्र यदि बैचको मुनके तो राजा धीमे और छाकसे उसके कान मरे, बैधमत्रका

उच्चारण करनेपर उसकी जिह्वा कटवाले, और जो वेदको पढ़े तौ शरीरका छेदन करे, आसन, शयन, वाणी, मार्ग यदि इनमें शूद्र बराबरी करे तौ सौरुपये दंडकरे और वैश्य कुछ ऊपर आधा दंड दे यदि ब्राह्मण, क्षत्रियकी निन्दा करे तौ पचासरुपये और वैश्यकी निन्दा करनेपर पच्चीस रुपये दंड, और शूद्रकी निन्दा करनेपर कुछ दंड नहीं है; और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रकी निन्दा करनेमें ब्राह्मण और राजाके समान है, विद्वानोंके अवलंघनमें प्रत्येक वर्णको और शूद्रको मणिचोरी करनेका जो पाप होताहै, वही विद्वानोंकी निन्दा करनेवालोंको होताहै. थोड़ेसे फल, हरिद्रा, धान्य और शाक इनकी चोरीमे पांच कृष्णल (रक्ती सोना, ) और किंचित् पशुकी पीडामे खेतके स्वामीको दोष है; और ग्वालियोके साथमे जो खेतको विगाडै तौ पालकोंको दोष है, यदि खेत मार्गमे हो या खेतका आवरण न हो, तौ खेतके स्वामी और पालक दोनोंको दोष है, गौकी पीडामें पांच मासे सुवर्ण, उंट और खरकी पीडामें छैः मासे, घोडे, और भैंसकी पीडामें दसमासे, बकरी और भेडकी पीडामें दोमासे सुवर्णका दंड कहाहै, और यदि सब खेतोको नष्टकरदे तौ सौमासे सुवर्णका दंड करना उचित है, शिष्ट शास्त्रमें कहेहुएके न करने और कपडे धोनेसे अन्य निपिट्टोकी सेवामें धनका हरना लिखा है, गौ और अग्निके निमित्त तृण, रखायेहुए वनस्पतियोंके फल रखवालेके नहोनेपर उन फलोंको अपना समझकर लेले.

कुसीदवृद्धिर्द्धर्म्या विशतिः पंचमासिकी मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य मुक्ताभिर्न वर्द्धते दित्सतोवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिता कायिकाशिकाधिभोगाश्च कुसीदं पशूपलोमजक्षेत्रशतवाह्येषु नापि पंचगुणम् । अजडापोगंडधनं दशवर्षमुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुः न श्रोत्रियप्रव्रजितराज-पुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगः रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्युः प्रातिभाव्य-वाणिक्लृक्कमद्यदूतदंडान् पुत्रानध्याभवेयुः निध्यं वाचितावक्तीताधयो नष्टाः सर्वा न निदिता न पुरुषापराधेन स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात् कर्माच-क्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामन्ननेनस्वी राजा न शारीरो ब्राह्मणदंडः कर्मवि-योगविख्यापनविवासनांकरणानि अप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती सः चोरसमः सचिवो मतिपूर्वे प्रतिगृहीताप्यधर्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबंधविज्ञानादंडनियोगः अनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवचनात् वेदवित्समवायवचनात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूद और व्याजका बढ़ाना विशति भाग धर्मका है, और एक महीनेके लिये रुपये लेने-से पांचमासे प्रत्येक रुपये पर है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि, पाचमासे एकवर्षतक है पीछे नहीं, और अधिक दिन ऋणरहनेसे सूदसे दुगना होजाताहै छोटी हुई वृद्धि देनेके पीछे नहीं बढ़ती, और जो वृद्धिको रोककर रखताहै उनपर कालचक्रकी वृद्धि होतीहै, वृद्धि कारिता अधिभोगा, कायिका, यह तीन प्रकारकी होतीहै, और पशुओंके लीम, ऊन और सैकड़ोंवार जोते-हुए खेतोंमें पांचगुणोंसे अधिक वृद्धि नहीं होती, बुद्धिमान्का धन दशवर्षसे अधिक उसके समीपमें न



दंडो दमनादित्याहुस्तेनादोतान् दमयेत् वर्णाश्चाभमाश्च स्वकर्मनिष्ठां प्रेत्य  
 फलमनुभूय ततः क्षेपेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःभुतवित्तवृत्तसुसमेवसो  
 जन्म प्रतिपद्यन्ते । विष्वं चो विपरीता नश्यति तानाचार्यापदेशो दंडश्च पाठ्यते ।  
 तस्मात् राजाचार्यावर्निषावर्निषौ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

व्रतके निर्दिष्टा ही दंडकी सृष्टि है इसकारण सर्वथा सृष्टिका व्रतन करतारों स्वधर्मों  
 स्थित वर्ण और आत्मन मरनेके उपरान्त अपने २ कर्मोंके फलको भोगकर पुण्यके कर्मों  
 इच्छामांति जन्म लेतेहैं जहां यह व्रतम ही कि देश, जाति, कुल, रूप, अवस्था, विद्या, धन,  
 आचरण, सुख और दुःखि अपने धर्मसे विपरीत आचरण करतेहुए वर्ण और आत्मन नष्ट  
 होजातेहैं, मष्टहुए व्रतको आचार्यका उपदेश और दंड पाठना करवाहै, इसकारण राजा  
 और आचार्य यह निम्नाकरनेके योग्य नहींहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ माघटीकानामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनमिसंधायामिहृत्य च षाण्डं चारुष्याम्यामग मोष्यो येनोपह  
 न्यात् । आर्यरूपमिगमने लिंगोद्धारः स्वमहरणं च गोप्ता श्रेष्ठधोषिकः ।  
 अथाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजदुर्म्यां श्रोत्रप्रतिहरणम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेद  
 धारणं शरीरभेदः । आसनशयनवाक्यपिषु समप्रेप्सुर्दण्डः शतम् । क्षत्रियो  
 ब्राह्मणाकोशो दंडचारुष्ये द्विगुणम् ॥ अप्यर्द्ध वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रिये पचाशत्  
 तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित् ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यी अष्टापाद्यं स्तेपकि  
 त्विष शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेपाम् । प्रतिघर्षं विदुपोतिक्रमं दंडमूयस्त्वम् ।  
 पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते  
 शु तस्मिन् पयि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयो पचमाया गवि पञ्चदशसरे अश्व  
 महिष्योर्दण्ड अजापिषु द्वी द्वी सर्ष्वविनाशो शतं क्षिष्टाकरणे प्रतिपिद्दसथायां  
 च नित्यं चेलपिंडावृर्ध्वं स्वहरणं गोग्न्यर्षे वृणमेधोवीरुद्धमस्पतीनां च पुष्याणि  
 स्वयदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

शूद्र यदि किसी द्विजातिके प्रति तिरस्कारसूचक वाक्य कहे और कठोरमात्रसे  
 अपाठ करे; तब वह जिस अंगसे अपाठ करे राजा उसके वही अंगको कटवावे, और  
 अपनेसे बड़ोकी क्रियोंके संग यदि गमन करे तो बड़का डिंग कटवावे; और जो वह स्वर्गही  
 मरजाय या अपनी किसी मांदि रक्षाकरे तो उसका अर्धकट्ट यहहै कि राजा उसका  
 बंध करे. शूद्र यदि वेदको सुनके तो राजा शीघ्र और दालसे उसके काम भरवे, वेदमशका

ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् प्राङ्घ्रिवाको मध्यो भवेत् । संवत्सरं प्रतिक्षेत प्रतिभायां धेन्वनदुत्स्त्रीप्रजनसंयुक्तेषु शीघ्रम् । आत्ययिके सर्वधर्मभ्यो गरीयः प्राङ्घ्रिवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मणसे छोटे २ पशुओके विषयमे यदि झूठ कहै तौ वह दश पशुओंको मारताहै, गौ, घोडा, पुरुष, भूमि इनके विषयमे यदि झूठ कहै तौ दशगुनी क्रमसे वा सम्पूर्ण हत्या करताहै, पृथ्वीकी चोरी करनेवालेको नरककी प्राप्ति होतीहै जलके चुराने वा दूसरेकी स्त्रीके साथ मैथुन करनेमेभी नरक मिलताहै, मीठा और घीकी चोरी करनेमें पशुकी चोरीकी समान दोष होताहै, जो साक्षी झूठ कहै वोह निकालने वा दण्ड देनेके योग्य है, यदि साक्षीकी जीविका उसीके अधीन हो तो इसमें दोष नहींहै, अर्थात् झूठबोलेदे तौभी पापका भागी नहीं होता, वस्त्र, सुवर्ण, अन्न, और वेदमें गौके समान दोष हैं, सवारी क्री चोरीमें घोडेकी समान दोष है, यदि अत्यन्त पापीसे जीविका हो, तौ राजा वकील और शास्त्रोंका जाननेवाला ब्राह्मण यह झूठ न बोलै, और जो वकील बीचमें रहै वह एक वर्षतक प्रतिभाके लौटनेकी वाटदेखे, गौ, बैल, स्त्रीके संतान होना और मैथुन इनमें शीघ्र न्याय करै, और आवश्यकीय कार्योंमें वकीलका सत्य वचन प्रामाणिक हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४ .

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिडानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदंतः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्धयेरन् । रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राज-क्रोधाच्च । युद्धप्रायोऽनाशकशस्त्रामिषोदकोद्भयनप्रपतनैश्चेच्छतां पिंडनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा जननेप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः संसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याःपक्षिणी असपिण्डे योनिबंधे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमशौच-मभिसंधाय चेत् उक्तं वैश्यशूद्रयोः आर्तवीर्वा पूर्वयोश्च त्र्यहं वा आचार्यतत्पु-त्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् । अवरश्चेद्दर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वावरं तत्र शावोक्तम् आशौचे पतितचंडालसृतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्पृष्ट्युपस्पर्शनं सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् । शवानुगमे शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानतिभाग एकेऽप्रत्तानाम् ।

ऋत्विक् दीक्षित और ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त इनको दशदिन और सपिण्डियोंको न्यारह दिन, क्षत्रियको बारहदिन, वैश्यको पंद्रहादिन, और शूद्रको एकमहीनेतक शवका सूतक होता है, एक अगौचके बीचमेंही यदि दूसरा अशौच होजाय तौ पहलेके साथही उसकी शुद्धि

रहते यदि वृत्तपुरुषतक भोगै तौ वसकीबुद्धि सुद भीर बेदपाठी संन्यासी और राजाकेपुरुष भोगके लो इनका वह मन नहीं होसकता, निम्न कोशका ब्रह्म, मंगाहुमा, मोक्षछिया, सोपाहुमा भाषि, वा बरोहर, यह यदि मद्र होआर्य तौ दोष नहींहै अर्थात् यह मन जिसको मिछवाय वह पुरुष बहवेनेके योग्य नहींहै, यदि इनके मिछनेमें किसी मनुष्यका कुछ अपराध होजाय तौ दोष है, और चोर अपने बाळोंको सोझकर हाथमें मूसल छे राजाके सम्मुख लाकर अपना अपराध कहवे, वह चोर राजाके बांधने वा छोडवेनेसे मुद्र होताहै, राजा यदि उस मूसलसे न मारे, तौ पापका भागी राजा होताहै परन्तु राजा ब्राह्मणको क्षरीरका दण्ड न वे, वरन कामसे विरुक्त करवे और उसके सम्मुख विदित करै, वा अपने देससे निकालदे, और क्षरीरपर दण्ड छमावे, यदि जो राजा ब्राह्मणको अपरोक्ष दण्ड न वे तौ वह पापका भागी होताहै और मंत्री और पापी चोरके समान है और राजा जानकर अपर्णाको पकड पुरुषकी क्षति और अपराधके म्युन्यधिकके बिबानसे बंधवे, अबवा बेवके सान्नेबाछे बैसा करै बैसाही दंडवे ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मापाटीकानां ब्राह्मणोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्याय १३

विप्रतिपत्तीं साक्षिणि मिष्यासत्यव्यवस्था इहव स्युरनिदिता स्वकर्मसु प्रास्पयिका राज्ञा निःप्रीत्यनमितायाभ्रान्यतरस्मिन्नपिशूद्रा ब्राह्मणस्वब्राह्मण वचनादनवरोधोऽनिवदभेत् नासमवेतापृष्टा प्रश्रुयु अवचनेन्ययावचने च दोषिण स्य स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरक अनिवद्वैरपि वक्तव्यं पीडा कृते निवध प्रमत्तोक्ते च साक्षिसम्यराजकर्तव्यु दोषो धर्मतत्रपीडायाम् । शपथेनैके सत्यकर्मणा तद्देशराजब्राह्मणससदि स्यात् ।

बिबाहके स्थानमें साक्षीके द्वाप कौन दृष्टाहै और कौन सत्ता है राजा इस बातका स्थिर करै, दोनों पक्षमें निवकर्म अनिश्चित हो राजाका बिभासी पक्षपाती और द्वेषशून्य दूत्रबन्दिनी साक्षी होसकताहै, परन्तु साक्षीकी संख्या अनेक होनी आवस्यक है, अत्राहमोंके वचनकी अपेक्षा ब्राह्मणोंके वचनका आदर करै, साक्षी यदि साक्षी देनेके छिडे समझ न हो, तौ उसे राजाके घरपर जानेकी आबदयकता नहींहै, परन्तु ऐसे साक्षीसे यदि राजा पूछे तौ वह सत्य २ कहवे फारज कि सत्य कहनसे स्वग और मिष्या कहनेसे नरककी प्राप्ति होताहै अनिवद्वदभी साक्षी देसकताहै; कारण कि किसीकी पीडासे वा रोडनेसे अथवा प्रम तहोकर कहनसे साक्षीको और समासद तथा राजाके कमचारी इनको दोष है, और कोई २ येसामी कहतेहैं कि धर्मके भाषीन दुःखमें सचे कर्मधेमी शपथद्वारा निगब होजाह, अगर उससे वह सौगंय देवता, राजा वा ब्राह्मण इनकी सभामें छीजाय;

अत्राह्मणानां धुद्रपश्चनूते साक्षी दश इति गोश्वपुरुषभूमिषु दक्षयुषोत्तरान् । सर्ष वा भूमी हरणे नरक भूमिवदप्सु भियुनसंपोगेषु च पशुवन्मधुसर्पिणो गोवद्वद्वहिरण्यपास्यप्रहसु यानेष्वश्ववत् मिष्यावचने याप्यो दंडपथ साक्षी नानूतवचने दोषो जीवर्न चेतदधीनं नतु पापीयसो जीवर्न राजा प्राड्विवाको

## पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति चापरपक्षस्य यथा-  
श्राद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षे  
गुणसंस्कारविधिरन्नस्य नवावरान् भोजयेद्युजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रो-  
त्रियान् वाग्रूपवयःशीलसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवत् । न च  
तेन मित्रकर्म कुर्यात् । पुत्राभावे सर्पिंडा मातृसर्पिंडाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे  
ऋत्विगाचार्या । तिलमाषव्रीहियवौदकदानैर्मांसं पितरः प्रीणन्ति । मत्स्यहरि-  
णरुरुशशकूर्मवराहमेषमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि  
वार्धाणसेन मांसेन कालशाकच्छागलोहखड्गमांसैर्मधुमिश्रैश्चानंत्यम् ।

इससमय श्राद्धके विषयमें कहतेहैं, अमावस्याके दिन पितरोंके लिये श्राद्धकरै, अपर-  
पक्षमें ( अर्थात् महालयमें ) पंचमी इत्यादि तिथियोंमें भी पितरोंके निमित्त श्राद्ध करै,  
श्राद्धमें कहेहुए द्रव्य, देश और ब्राह्मणके समागममें भी श्राद्धकरै, श्राद्धमें जो समय नियत किया-  
गयाहै, उसमें भी श्राद्धकरै, शक्तिके अनुसार अन्नके गुणोंका संस्कार करै, और अपनी  
शक्तिके अनुसार कमसे कम नौ ९ ब्राह्मणोंको जिमावै, अथवा उत्साहके अनुसार अयुग्म  
आदि वेदपाठी, वाणीरूप अवस्थाशील, इनसे युक्त ब्राह्मणोंको जिमावै, प्रथम युवा पितरोंके  
ब्राह्मणोंको अन्नदान करै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि सबको पिताकी समान समझ-  
कर श्राद्धकरै, और श्राद्धके दिन सन्ध्या उपासना न करै, यदि पुत्र न हो तो सर्पिंड वा  
शिष्यही पिंडदे, और यहभी न हो तो ऋत्विज और आचार्य यह दे, तिल, उडद, चावल, जौ  
और जलके देनेसे पितर एक महीनेतक तृप्त होतेहैं; और मत्स्य, हरिण, रुरु, शशा, कछुआ,  
सूअर इनके मांससे एकवर्षतक, खारसे और गौके दुग्धसे वारह वर्षतक, वार्धाणसके  
मांससे और कालशाक, बकरी, गैंडा तथा मीठे मिलेहुए इनके मांससे पितृ अनन्त  
तृप्त होतेहैं,

न भोजयेत् स्तेनह्यवपतिततद्दृत्तिनास्तिकवीरहाग्रेदिष्विष्टाधिषूपातिस्त्रीग्रामया-  
जकाजपालोत्सृष्टाभिमद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडा-  
शी सोम विक्रय्यगारदाही गरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागाभिहिंस्रपरिवित्तिपरि-  
वेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्वालान् कुनखिश्यावदंतश्चित्रिपौनर्भवाकित-  
वाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रापतिनिराकृतिकिलासिकुसीदिवणिक्शिल्पोप-  
जीविज्यावादित्रतालनृत्यगीतशीलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् ।

चोर, नपुंसक, पतिव्र, और जिसकी जीविका पतितसे हो उसे, नास्तिक, वीरकी हत्या  
करनेवाला, जो दूसरी विवाही स्त्रीको मुख्य समझता हो, वा जिसने दूसरी स्त्रीके साथ  
विवाह कियाहो, जो स्त्री और ग्रामवासियोंको यज्ञ करावै, बकरियोंकी रक्षा करनेवाला;  
जिसने अग्निहोत्र लेकर छोड़दियाहो, मदिरा पीकर जो पृथ्वीमें विचरण करै, झूठी साक्षी  
देनेवाला, दूत, जिसको यह मालूम न हो कि यह कौन है. कुंडाशी, सोमको बेचनेवाला,

होती है, पड़ना अशौच जिसदिन समाप्त होगा उसकी एकरात्रि रहनेपर यदि प्रातःकालका वृक्षा अशौच और होनाम ती तीनदिन में शुद्धि होती है, गौ या प्राण्यके द्वारा मृतक होनेपर तीनदिन अशौच रहता है, राजाके श्लेषसे, युद्धमें, पैठने, और भोजन स्थानके व्रतमें यदि पुरुष मरजाय, या श्वशुर, अप्ति, विप, जलसे ऊंचेपरसे गिरकर, वा फँसीसाकर, वा बर्षाके जलसे जो मनुष्य मरजाय उसकी सातवींपीढ़ी व पांचवी पीढ़ीमें पिंडोंका अधिकार नहीं रहता, और अम्मसूतकमेंभी इसीमांति शुद्धि होती है, गर्भ गिरजानेपर अितने महीनोंका गर्भ हो तबनीही रात्रितक माता पिता अथवा माताहीको अशौच रहताहै, और गर्भके पडनेमें तीनदिनका सूतक होसा है, यदि वृक्षदिनके उपरान्त सूतक विरहित जानपडे तो एकरात्र दोदिनतक होता है, जो अपना सर्पिड नहो, जिसके छाय योक्किक सम्बन्धहो या अपनेसाथ पडनेबाछ हो, वा ब्रह्मचर्यमें साबीहो या वेद पडनेबाछ हो इनके मरजानेमें एकदिनका सूतक होता है; और जो मनुष्य जानकर प्रेतका स्पर्श करे उसके दशदिनका सूतक होता है, वैश्य और शूद्रका सूतक प्रथम कहलाये हैं, राजस्वाम्य स्त्रीके स्पर्श करनेवाले तथा सूतकी ब्राह्मण और क्षत्रियको स्पर्श करनेवाले मनुष्यको तीनदिनका सूतक होता है, पूर्वकडेहुओमें और आचार्य तथा आचार्यका पुत्र, स्त्री, पञ्जमान, क्षिप्य इनका स्पर्शकरने वालेकोभी पहले कडेहुओंको तीनदिनका अशौच होता है, यदि नीचवर्षका मनुष्य भेष्टवर्षके श्वका स्पर्श करे, अथवा भेष्टवर्ष हीनवर्षके श्वका स्पर्शकरे, ती तसेमी मरणका अशौच होता है, पवित्र चांडाल, सूतिका, ब्रह्मघटी और श्वके स्पर्श तथा इन सबके स्पर्श करनेवालोंके स्पर्श करनेवाला जलमें मग्नहोकर बस्त्रोंसहित स्नान, श्वके छात्र आनेवाले और कुत्तेका स्पर्श करनेवालाभी बस्त्रोंसहित स्नानकरे, और चूडाकरण होनेके उपरान्त मृतक होजाय ती उसके सर्पिड अख्यान करे, कोई कोई पेशामी कहते हैं कि विना विवाही कन्याओंको अख्येनेका अधिकार नहीं है; अर्थात् मरनेपर अख्यान न करे ॥

अधःक्षय्यासनिनो ब्रह्मचारिण सर्वे न मार्गयेरन् । न मांसं भक्षयेपुराप्रदा नात् । प्रथमवृत्तीयसप्तमनवमेपूवकक्रिया वाससां च त्यागं । अंत्ये त्वस्यानां दंतजन्मादिमातापितृभ्यां नृर्ष्यां माता बालदेक्षांतरितमप्रजितासर्पिडानां सद्यं शौचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिभृत्स्पर्ध स्वध्यायानिभृत्स्पर्धम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अख्यानसे प्रथम भूमिपर शयन करे ब्रह्मचारी रहे, मांसका भक्षण न करे, प्रथम हीसते, सातवें, नवें दिन अख्यान और बर्षोंका त्याग करे, अस्त्यजोंका अख्यान और बर्षोंका त्यागना यह दसमें दिन होताहै, और दारोंके जनजानेपर यदि बालक मरजाय ती माता पिताको अथवा केवल माताहीको सूतक छाताहै, और बालक, परदेस्त्री, संन्यासी, असर्पिड इनको और जिस कार्यमें विप्र उपस्थित न हो इसकारणसे राजाओंकी और वेदपाठमें विप्र न होजाय इसकारण ब्राह्मणकी वसीसमय शुद्धि होजातीहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मातादीकानां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदंगगर्जनातश-  
ब्देषु च श्वसृगालगर्दभसंहादे लोहितेन्द्रधनुर्नीहारेषु' अभ्रदर्शने चापतीं मूत्रित  
उच्चारिते निशासध्वोदके वर्षति चैके वलीकसंतानमाचार्यपरिवेषणे  
ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतमहापथाशौचेषु  
पूतिगंधांतःशवादिवाकीर्तिसूद्रसान्निधाने शुल्कके चोद्भावे ऋग्यजुषं च सामश-  
ब्दो यावत् । आकालिकाः निर्घातभूमिकंपराहुदर्शनोल्काः स्तनयित्नुवर्षविद्यु-  
तश्च प्रादुष्कृताग्निषु अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादिप्रवृत्तौ  
सर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयित्नुपराल्हे अपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रात् ।  
अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्ये च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपा-  
हितवेदसमाप्तिः छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् अमावास्यायां च द्यहं  
वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढीपौर्णमासीतिसोष्टकास्त्रिरात्रमन्याग्न्येके अभितो वा-  
र्षिकं सर्वे वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसंनिपाते प्रस्पंदिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य  
च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृ-  
तात्रश्राद्धिकसंयोगेपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरंति यावत्स्मरंति ॥

इति श्रीगौतमस्ये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यदि दिनके शब्द धूल' उडानेवाली वायु चले और रात्रि के समय कानोमें फुंकारतीहुई  
पवन चले, तौ वेदको न पढै, वाण, भेरी, नक्कारा, मृदंग, रोगीका भयंकर शब्द, कुत्ता, गीध,  
गधा इनका शब्द होता हो, वा इन्द्रधनुष दीखपडै तथा नीहार और कुसमय मेघ दृष्टि  
पडै मलमूत्र त्याग करनेके उपरान्त तथा रात्रि और संध्याके समयमें वेदको न पढै, और  
कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षा होते समयमेंभी न पढै, अपने कुटीके वलीक ( अर्थात्—  
प्रांतभाग बरौती ) से बरसातका पानी टपके इतनी बरसात होवै तौ निकट और  
जहां आचार्यके चारोंओर मनुष्य बैठे हों वहां, चन्द्रमा सूर्यके निकट मंडलवननेके समय,  
इन समयोंमेंभी वेदको न पढै, किसीकारणसे भयभीत होकर, सवारीमें चढकर, लेटकर,  
घुटनोंको खडा करके भी वेदको न पढै, श्मशानमें ग्रामके निकट बडे मार्गमें, और अशौ-  
चके निकट वेदको न पढै, दुर्गके निकट, शव, नाई, सूद्र, और शुल्कमहसूलके स्थानपर भाग-  
ताहुआ वेद न पढै, जहांतक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदका शब्द सुनाईजाय, अकालमें निर्घात,  
भूमिकंप, राहुदर्शन, उल्कापात, मेघवर्षण, और विजलीका गिरना, अग्निका लगना इतने  
समयमेंभी वेदको न पढै, बिना ऋतुके विजली चमकै, और रात्रिके पहले पहरमें तारे दूटें  
तौ वेदको न पढै, यदि मध्याह्नके समय गरजै, अथवा प्रदोषकालमें गरजै;  
और आधीरातके समयमें भी वेदको न पढै, दिनके समय तारे दीखें अपने देशके  
राजाकी मृत्यु होनेपर वेद पढनेका निषेध है, परदेशमें जाकर दूसेरेके साथ वेदकी समाप्ति  
करै. वसन, श्राद्ध, मनुष्य, यज्ञभोजन इनमें एक दिनका अमावसमें दो दिनका, कार्तिक,  
फाल्गुन, तथा, आषाढकी पूर्णिमा और तीनों अष्टका इनमें तीन रात्रिका वेदका  
अनध्याय होताहै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षाऋतुके आदि अन्तमेंभी वेदके पढ-

परमें अग्नि छगानेवात्म, बिष बेनेवात्म, प्रवळेकर भिसने छोडदियाहो, बहुलका इत, ज्योम्ब लीके स्याय गमन करनेबाछ, ईंसक, परिविधि परिवेत्ता, पर्याहित, सब रवागमें फिरनेवाछ, त्यक्तत्मा, क्लिष्टका मन वशमें न हो, घुरे नल्लोबात्म, काळे बांतबात्म, दाहबात्म, इस्पी विवाहिया लीका पुत्र, कपटी बकरोंको पाछनेबाछा, राजाका इत, बैस्पिया, शूद्रा लीका पति, तिरस्कारसे जीविका करनेबाछा, कुष्ठरोगी, ब्यागलेनेबाछा, जो छेत्तेन करवा हो, कारीमरीसे जीविका करनेवात्म, प्रस्थंवा, वाजा, ठाळ, नृत्य, गीत, क्लिष्टका इतमें मन छगताहो; जिसे विना इच्छके पिताने जुषा करदियाहो, इन्होंको भाद्रमें जिमावे लीं, सिष्याधिके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतं सद्यः आद्री शूद्रातल्पगस्त सुप्ररोपे मासं नयति पितृन् तस्मात् तदहब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचढाळपति तावेक्षणे दुष्ट तस्मात् परिभ्रूते दद्यात् तिळेवां विकिरेत् । पंक्तिपावनी वा शमयेत् ।

कियेनेक महरपि कहते हैं कि सिष्य सजा तीनपुरुषोंसे अधिक पीढीके सगोत्रियोंकोभी भाद्रमें भोजन करावे, और गुणवानको शीघ्रही जिमावे, यदि भाद्रकरनेबाछ शूद्राभी शम्पापर गमन करै तो शूद्रापुत्रके अघेघमें एकमहीनेतक पितरोंको मरकों बास होवा है, इसकारण भाद्रके दिन ब्राह्मणसे रई, कुत्ता, भंगडाळ, पतित इनके देखनेसभी भाद्र दूषित होजावा है, इसकारण एकव्रत में भाद्र करै, दिखेको बलेर वे, अथवा पंक्तिठो पवित्र करनेबाछे ब्राह्मण सावि करदेते हैं,

पंक्तिपावना पढगवित् ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमसुस्त्रिसुपर्णं पचाग्निं  
स्नातको मन्त्रब्राह्मणवित् धर्म्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसंधान इति हविःपु श्वेष दुर्बला-  
दीन्ब्रह्म एवैक पक्षिके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जो पढग वेदको जाननेवाछ अ्येष्ठ वचन सामका जो गतकरे, भिसने तीनबार अग्नि चिनीहो करकेके मधुभावा भादि तीनों मंत्रोंका जाननेवात्म त्रिसुपर्ण मंत्रोंका ज्ञाता, पचाग्नि मंत्र और ब्राह्मणोंका ज्ञाता, स्नातक, गृहस्त्री, धर्मज्ञ, ब्रह्मदेवानुसंधान वेदमें जो महीमांति से द्रव्यभादि दे इत्ने पढगके ज्ञाताओंको पंक्तिका पवित्रकरजेबाछा कहा है, इवन इत्यादि कार्यमेंभी इधीप्रकार दुर्बल मनुष्योंको भोजन करावे और कोई २ पेशामी कहते हैं कि यह नियम केवल ब्राह्मणकी है ॥

इति श्रीमौक्तस्मृतौ मन्थटीकनां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

### षोडशोऽध्यायः १६

भावणादिवार्षिकी मोष्ठपर्वा घोपाकृत्याधीपीतच्छदांसि अर्धपंचमासान् । पंच-  
दक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टात्मा न मांसं भुंजीत द्विमास्यो वा नियमः ।

बर्षाकृतमें भाषणकी पूर्णिमा और माघकी पूर्णिमाको वा दक्षिणायनके पंच महीनों में ब्रह्मचारी नियमपूर्वक छोमोंको त्यागकर वेदको पढ़ै मांस भोजन न करै अथवा दो महीनेमें मुष्ठन करावे,

नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदंगगर्जनार्तशब्देषु च श्वसृगालगर्दभसंज्ञादे लोहितेंद्रधनुर्नाहारेषु' अभ्रदर्शने चापतीं मूत्रित उच्चारिते निशासध्योदके वर्षति चैके वलीकसंतानमाचार्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतमहापथाशौचेषु पूतिगंधांतःशवादिवाकीर्तिसूद्रसन्निधाने शुल्कके चोद्गोवे ऋग्यजुषं च सामशब्दो यावत् । आकालिकाः निर्घातभूमिकंपराहुदर्शनोल्काः स्तनयित्नुवर्षविद्युत्तश्च प्रादुष्कृतामिषु अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयितुरपराह्णे अपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रात् । अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्थे च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिः छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् अमावास्यायां च ब्यर्हं वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढीपौर्णमासीतिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्याग्न्येके अभितो वार्षिकं सर्वे वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसंनिपाते प्रस्पंदिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृतान्नश्राद्धिकसंयोगेपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरंति यावत्स्मरंति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यदि दिनके शब्द धूल उडानेवाली वायु चलै और रात्रि के समय कानोमें फुंकारतीहुई पवन चले, तौ वेदको न पढै. वाण, भेरी, नकारा, मृदंग, रोगीका भयंकर शब्द, कुत्ता, गीध, गधा इनका शब्द होता हो, वा इन्द्रधनुष दीखपडै तथा नीहार और कुसमय मेव दृष्टि पडै मलमूत्र त्याग करनेके उपरान्त तथा रात्रि और संख्याके समयमें वेदको न पढै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षा होते समयमेंभी न पढै, अपने कुटीके वलीक ( अर्थात्—प्रांतभाग वरौती ) से बरसातका पानी टपके इतनी बरसात होवै तौ निकट और जहां आचार्यके चारोंओर मनुष्य बैठे हों वहां, चन्द्रमा सूर्यके निकट मंडलबननेके समय, इन समयोंमेंभी वेदको न पढै, किष्कीकारणसे भयभीत होकर, सवारीमें चढकर, लेटकर, घुटनोंको खडा करके भी वेदको न पढै, श्मशानमें ग्रामके निकट बडे मार्गमें, और अशौचके निकट वेदको न पढै, दुर्गके निकट, शव, नाई, सूद्र, और शुल्कमहसूलके स्थानपर भागताहुआ वेद न पढै, जहांतक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदका शब्द सुनाईजाय, अकालमें निर्घात, भूमिकंप, राहुदर्शन, उल्कापात, मेघवर्षण, और बिजलीका गिरना, अम्रिका लगना इतने समयमेंभी वेदको न पढै, विना ऋतुके बिजली चमकै, और रात्रिके पहले पहरमे तारे दूटै तौ वेदको न पढै, यदि मध्याह्नके समय गरजै, अथवा प्रदोषकालमें गरजै; और आधीरातके समयमें भी वेदको न पढै, दिनके समय तारे दीखै अपने देशके राजाकी मृत्यु होनेपर वेद पढनेका निषेध है, परदेशमें जाकर दूसरेके साथ वेदकी समाप्ति करै. वमन, श्राद्ध, मनुष्य, यज्ञभोजन इनमें एक दिनका अमावसमें दो दिनका; कार्तिक, फाल्गुन, तथा, आषाढकी पूर्णिमा और तीनों अष्टका इतमें तीन रात्रिका वेदका अनध्याय होताहै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षाऋतुके आदि अन्तमेंभी वेदके पढ-



नेका निषेध है, वर्षा होतीही बादल गर्जता हो, और नदी २ बूँदें पड़ती हीं उस समयभी वेद न पड़े भोजनकरनेके उपरान्त और उत्सवमें वेद पढ़नेका निषेध है, पढ़ेहुए वेदको रात्रिमें बारसूँदसे अधिक न पड़े, और कोई २ ऐसामी कहतेहैं कि मन नगरमें नित्य अशुद्ध रहताहै, इसकारण नगरमें वेदको न पड़े और बादल करनेवालोंको बिना अतप्यायके समयभी अतप्याय होताहै, और अशुचान्नभाइमेंभी सब विद्याओंका अतप्याय होताहै, यह अपिष्ठा वचन है ॥

इति श्रीगीतमस्मृद्यै मायाटीकानां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

### सप्तदशोऽध्यायः १७

प्रशस्तानां स्वकर्मसु दिजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत प्रतिगृह्णीयात् । एषोदक  
यवससूलफलमध्वमयाम्बुघृतशय्यासनावसययानपयोदधिधानाशफरिभिर्यंगुल-  
कमार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यमरणे चान्यत् । दृष्टिभेद  
नांतरेण भूदान् पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारंपितृपरिवारका भोज्यान्ना वपि  
कुचाशिल्पी । नित्यमभोज्य केशकीटावपत्रं रजस्वलाकृष्णक्षकुनिपदोपहत भूर्ण  
प्रावेक्षित गवोपमातं भावदुष्टं शुक्तं केषलमदधि पुनः सिद्धं पर्युपितमशाकर्म  
क्षप्रेहमःसमभूनि उत्सृष्टपुध्न्यमिक्षस्तानपदेश्यदंष्ट्रिकतक्षककंदर्यधंधनिकाधि  
किसकमृगयुवार्थुच्छिष्टभोजिगणविद्रिपाणामपांक्तानां प्राक् हुर्वलान् यूयाघ्रा-  
नि च मनोत्थानव्यपेतानि समासमाभ्यां विपमसमे पूजान्तरानर्चितश्च गोश्च  
भीरमनिर्दक्षायाः सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमाविक्रमपयमीष्टमेकक्षफं च  
स्पंदिनीयमसुसधिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः पचनसाश्च क्षत्यक्षसकश्चा  
विद्गोभासङ्गकच्छपाः उभयतोदत्केश्यलोमीकसफकलार्धिकप्लवषक्याकहंसा  
काकककगृध्रशेना जलजा रक्तपादतुंडा ग्राम्यकुक्कुटसूकरी धेन्वनहुही च  
आपन्नदावसन्नवृषामांसानि किसलयकपाकुलशुननिर्म्यासलोहिताग्रश्चनाश्वनि-  
षिदारुषकषलाका शुक्लद्वुटिट्टिममाधातनक्तंचरा अभस्या । भक्ष्याःप्रदुवावि  
किराजालपादा मत्स्याश्चाविकृतावप्याश्च धमार्धेव्यालहृताहृष्टवोपवाक्प्रक्षस्ता  
म्यम्युदपोपर्युंजीतोपर्युंजीत ॥

इति श्रीगीतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अपने कर्ममें उत्तर दिजातियोंके यहाँ ब्राह्मण भोजन करे, और उनसे प्रतिग्रह ले, ईबन,  
जब, मुसा मूक, मीठा, मयसे रहित हो स्वयं बीहुई क्षप्या, भासन, सबाठी, पर. पूष,  
वही, बाना, मत्स्य, कागुन्दी मास्य, और मार्गका शाक, यह शूद्रके यहाँसेमी लेने, पोष्य है  
और पिठा, गुरु, वेपत्ता भृत्य इनकी पाठनाके निमित्त उपके यहाँसे लेनेयोग्य है, यदि और  
कोई आजीविका हो तो शूद्रसे लेके अन्यसे न ले, और शूद्रमें भी उत्तके यहाँसे ले तो कि  
पशुघोषी पाठना करनेबाछा किष्कान, कुष्ठका संगी, पिठाका सेवक दो; इनका भज जाने

योग्य है; और जो व्यापारी शिल्पी न हो उसका भी अन्न खानेयोग्य है, जो अन्न केश और कीड़ासे दूषित हुआहो रजस्वला स्त्री और पक्षीके पैरसे जिसका स्पर्श होगयाहो, बालककी हत्या करनेवालेने जो देखाहो, गौका सूंघाहुआ, भावदुष्ट, दहीके अतिरिक्त शुक्त, दुवारा पकाया शाकसे भिन्न वासी ऐसे खाने योग्य पदार्थ, स्नेह, मांस, और सहंत ये अमक्ष्य हैं, जिसको व्यभिचारके कारण त्यागदियाहो, या जिसे व्यभिचारका दोष लगायाहो, जिसके लेनेको स्वामीने आज्ञा न दीहो, जिसको कुछ दंड हुआहो, बढई, उपकार न माननेवाला, बंधनिक, व्याध, उच्छिष्ट जलका पीनेवाला, बहुतोंका शत्रु, और पंक्तिसे बाह्य इनके यहांका अन्न न खाय, दुर्वलसे प्रथम भोजन न करै, भोजन, आचमन और उत्थान, इनको वृथा न करै, समकी विषम पूजा, और विषमकी सम पूजा तथा सूर्यादिक तारोंकी पूजाका त्याग न करै; और दसदिनसे पहले ( व्याईहुई ) गौ, बकरी, भैंस, इनका दूध न पिये, भेड ऊंटनी, घोड़ी, रजस्वला, दो बच्चेवाले, संधिनी, दूध देनेवाली मृतवत्सा इनका दूध पीने योग्य नहींहै; सेह, खरगोस, गोह, गंडा, कल्लुआ यह सेहके अतिरिक्त सब अमक्ष्य हैं, दोनोंओर दांतवाले, बडे २ रोम जिनके हों, एकखुरवाले और कलविक चिडिया, जल-मुरगी, चकवा, हंस, काक, कंक, गीध, वाज, जिनके चोंच और पैर लाल हों यह जलके जीव, ग्रामका मुरगा, शूकर, गौ और बैल यह स्वयं मरजाँय, और वनमें अग्निसे जो उक्त जीव मरजाय उसका मांस और वृथामांस, पत्तेका रस आदि स्वयंहतेका मांस जिनमें लाली हो ऐसा निकलाहुआ गोंद, अश्व, निचि दारु, ( ? ) बक, बगला, तोता, दुद्रु, टटीरी, मांघाच, और चिमगादर यह जीव सब अमक्ष्य हैं, चोंचसे खोदनेवाले, जालकी समान पैरनेवाले और विकाररहित मछली यह भक्षणीय हैं और मारने योग्य है, धर्मके लिये सर्पसे मरेहुए तथा निर्दोष और जिन्हे कोई घुरा न कहै उनको भी जलसे छिडककर काममें लेलेना योग्य है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

### अष्टादशोऽध्यायः १८.

अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्भर्तारं वाक्चक्षुःकर्मसंयता यद्यपत्यलिप्सुर्देव-  
शात् गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात् पिडगोत्रऋषिसंबंधेभ्यः योनिमात्राद्वा नादेव-  
रादित्येके । नातिद्वितीयं जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्त-  
स्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव । नष्टे भर्तारि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं  
प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात् तस्य द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबंधे भ्रात-  
रि चैवं ज्यायसि यवीयान् कन्यागन्युपयमनेषु षडित्येके । त्रीन्कुमार्यृतूनती-  
त्य स्वयं युज्येतानिदितेनोत्सृज्य पिड्यानलंकारान् । प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दो-  
षी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके । द्रव्यादानं विवाहसिद्धयर्थं धर्मतंत्रप्रसंगे च  
शूद्रात् । अन्यत्रापि शूद्रात् बहुपशोर्हीनकर्मणः शतगौरनाहिताग्नेः सहस्र-  
गोर्वा सोमपात् सप्तमी चाभुक्ता निचयाग अप्यहीनकर्मभ्यः आचक्षीत राज्ञा

पृष्टस्तेन हि मतस्य भुतशीलसपन्नभेदधर्मतंत्रपीडायां तस्याकरणे दोषोऽपि ॥

इति श्रीगीतमीमे धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

"न धी स्वातंत्र्यमर्हति" इस मनुवाक्यके अनुसार जो धर्म करनेमें भी पतिके आधीन है, इससे स्वामीकी आज्ञाको कभी उल्लंघन न करे, और पतिकी मृत्यु होजाय तो मन्वापीसे नियमपूर्वक सुकर्ममें उत्तर रहे, यदि उस अवसरमें उसको सन्तानकी इच्छा हो तो पतिके छोड़कर अर्थात् अपने देवरसे ऋतुकाष्ठमें समागमकर सन्तान उत्पन्न करके बिना ऋतुके गमन न करे, और यदि देवर न हो तो जिसके साथ आपि पिंड और गोत्रका सम्बन्ध है वा केवल धीनिसम्बन्धवाले देवरसे सन्तान उत्पन्न करके, परन्तु ऋतुकाष्ठके सिवाय गमन न करे, किन्हीका यह मत है कि देवरके सिवाय अन्य किसीसे गमन न करे, और ऋतुकाष्ठके बिना गमन न करे, देवरसेभी दो सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करे ऋतुकाष्ठके बिना दूसरेकी सन्तान उसके पतिकी नहीं होती, अर्थात् यदि किसीप्रकारका सत्व न हो तो वह सन्तान उत्पन्न करनेवालेकीही होगी कारण कि अभिषिसेही जीवितुप पतिके उसके क्षेत्रमें यदि सन्तान उत्पन्न हो तो वह सन्तान क्षेत्रीकीही होगी अथवा उस क्षेत्रके स्वामी और उत्पन्न करनेवाला इन दोनोंकीही यह सन्तान होगी वास्तवमें तो जो पत्निगा बलीकीही वह सन्तान होगी ( यह रूपपतिका धर्म द्विजातिसे प्रयत्न करनेके निमित्त है कारण कि मनुने इसका निषेध किया है " नान्यस्मिन्विषया मारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः" ) और दूसरे यह कठिणवर्त्मनी है इससे द्विजातिमें आवरणके योग्य नहीं है, अप पतिके अज्ञातवासके धर्म करते हैं, यदि पतिकी कुछ खबर न मिले तो छाः वर्षतक उसकी बाट देखे, यदि समाचार मिल जाय तो स्वयं उसके पास बसीजाय यदि संन्यासी होगयाहो तो उसके पास न जाय अथ पिताके मरनेपर श्वेत्प्रभावाके पहनेको जानेमें क्या कर्तव्य है सो करते हैं। ब्राह्मणके विद्या सम्बन्धमें श्वेत्प्रभावाकी यदि इतीप्रकार समाचाररहित होजाय उसकी खबर न मिले तो छोटा भाई उसका कन्यादान अधिराज्य बहोपत्रीय तथा विवाह करनेको बारहवर्षतक उसके आनेकी वाट देखे पीछे उसका विवाह करके कोई करते हैं कि, छःवर्षतक बाट देखे यदि पिताआपि उसके न विवाहते हैं तो कुमारी तीन ऋतु बिताकर पिताके दियेहुए भ्रष्टकार भूपण त्यागकर स्वयं किसी भेद्य कुलके वरसे विवाह करके, ऋतुके पहलेकी कन्या दानकरना उचित है ऋतुके पहले कन्यादान न करनेसे कन्याका पिताआपि पापबुद्ध होता है; कोई कहते हैं कि कन्या ऋतुमती होनेसे पहले विवाहना उचित है यदि ब्रह्म न हो तो इस विवाह उत्पन्न करने अथवा किसी धर्मकारके करनेके निमित्त दूसरेमें ब्रह्म केनेमें शेष नहीं है दूसरे कार्यके निमित्तभी बहुत पशुवाले दूसरे हीनकर्मवाले सौगौके स्वामीसे अभिहोत्ररहित ब्राह्मणसे तथा सहास्रगौके स्वामी सोमपीनेवाले ब्राह्मणसे वन मध्य करे सब मोजन न मिले और सातवीं ब्रेह्म आज्ञाय तब अधीनकर्म ( भेद्यकर्मवाले ) के बहोसे मोजन मह्यकरके यदि राजा पूछे तो बध उत्पन्न २ करते धर्मके उत्तरणमें बाधा हो तो राजा वैदिक तथा शाक्यस्यम सुहीन्य ब्राह्मण वरण पोषण करवावे ऐसा न करनेसे उसको शेष क्षत्रीय याजसे शेष न होगा।

इति श्रीगीतमस्मृती मायादीशान्नाम्न्याशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितीयः प्रपाठकः ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्च ॥ अथ खल्वयं पुरुषो येन कर्मणा लिप्यते  
यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवधवदनं शिष्टस्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति  
च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसते न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म  
क्षीयत इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्टा पुनः सवनमायांतीति विज्ञायते ।  
त्रात्यस्तोमैश्चेष्टा तरति सर्व्व पाप्मानम् । तरति ब्रह्महत्यां योश्चमेधेन यजते ।  
अग्निष्टुताभिश्चस्पमानं याजयेदिति च । तस्य निष्कयणानि जपस्तपो होम  
उपवासो दानमुपनिषदो वेदांताः सर्व्वच्छंदःसुसंहिता मधून्यधमर्षणमथर्व-  
शिरो रुद्राः पुरुषसक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथंतरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो  
महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमं वहिष्पवमानं कूष्मांडानि पाव-  
मान्यः सावित्री चेति पावनानि । पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसू-  
तयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च मेध्यानि । सर्व्वे  
शिलोच्चपाः सर्वा स्रवत्यः पुण्या हृदास्तोर्थानि ऋषिनिवासा गोष्ठपरिस्कंदा इति  
देशाः । ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताधःशायिताऽ-  
नाशक इति तपांसि । हिरण्य गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिलघृतमन्नामिति देयानि ।  
संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहःषडहर्ष्यहोहोरात्र  
इति कालाः एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्नेनसि गुरुणि गुरूणि लघुनि  
लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चांद्रायणमिति सर्व्वप्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तम् ॥

इति श्रीगौतमीयेधर्मशास्त्र एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वर्णधर्म, और आश्रमोंका धर्म कहागया, इस समय जिस कर्मके करनेसे मनुष्य पापसे  
लिप्त होते हैं, उसको कहते हैं, यज्ञ न करने योग्यको यज्ञ कराना, और भक्षणके अयोग्यको  
भक्षण कराना, तथा नमस्कार करने अयोग्यको नमस्कार करना, शास्त्रोक्त कर्मका न करना,  
नीचकी सेवा करना, निषिद्ध कर्मोंके करनेपर प्रायश्चित्त करै अथवा न करै उसकी मीमांसा  
कीजाती है, कोई २ ऋषि कहते हैं कि प्रायश्चित्त न करै, कारण कि कर्मोंका क्षय नहीं  
होता, कोई २ कहतेहैं कि प्रायश्चित्त करै कारण कि शास्त्रसे यह विदित होता है कि  
पुनर्वार स्तोमयज्ञके करनेसे पवित्र होजाते हैं, और त्रात्यस्तोम यज्ञके करनेसे सम्पूर्ण  
पापोंसे छूटजाता है, अश्वमेध यज्ञका करनेवाला ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाता है; शापकी  
निन्दासे लिप्तहुआ मनुष्य अग्निष्टुत् यज्ञको करै और उपरोक्त पापोंका प्रायश्चित्त यह है कि  
जप, तप, हवन, उपवास, दान, उपनिषद, वेदान्त, चारों वेदोंकी साहिता, मधु, अधमर्षण,  
अथर्वण वेदके शिरोमंत्र, पुरुषसक्त, राजन और रोहिणी मंत्र, बृहत् और रथन्तर साम,  
पुरुषगति, महानाम्नी ऋचा, महावैराज, महादिवाकीर्त्य और ज्येष्ठसामोंका कोईसा भाग  
वहिष्पवमान, कूष्मांड, पावमानी ऋचा. गायत्री यह सभी मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं;

पर्याप्तव, धाकनक्षत्र, फल, मसूव धावक, हिरण्य, धृत, सोमकृता इनका पीना भी पवित्र करनेवाले हैं, सम्पूर्ण पर्वत, क्षरने, पवित्र कुंड, शीर्ष, अपि गौभोका निवास इन सम्पूर्ण देशोंमें जानेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, ब्रह्मचर्य, स्वयं मापण, यथा समय व्यायमन, आर्द्र, बस, पुष्पापर क्षयन, और अनशन इन सम्पूर्ण कार्योंका नाम उपस्था है। सुवर्ण, गो, विड, बस, घोडा, मूमि, धृत और अन्न इन सब वस्तुओंका दान करे, वर्ष, छैः मास, छैनमास, दो मास, या एक मास, चौबीस, बारह, छै.. तीन दिन अहोरात्र यह काठ है, पूर्वोक्त सम्पूर्ण प्रायश्चित्त अनावेश पापमें भी किये जाते हैं, परन्तु बड़े पापमें बड़े और छोटे पापमें छोटे प्रायश्चित्त करनेयोग्य हैं, कृष्ण अतिकृष्ण आश्रायण यह सब पापोंके प्रायश्चित्त हैं ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ म्पाटीकामेकमेवमर्थोऽध्यायः ॥ १९ ॥

### विंशोऽध्यायः २०

अथ खटु पट्टिपु पातनास्थानेषु दुःस्वान्यनुमूय तत्रेमानि लक्षणानि भवन्ति ब्रह्महार्द्रकुटी सुराप श्यावदत गुरुतरपग पंगु स्वर्णहारी कुनखी शिवश्री वस्त्रापहारी हिरण्यहारी दडुरी तेजोपहारी मण्डली खेहापहारी क्षयी तथा अजीर्णवान्नापहारी ज्ञानापहारी मूक प्रतिहता गुरोरपस्मारी गोघ्नो जात्यध पिशुन शतिनासः प्रतिवक्रस्त सूचक मूत्रोपाभ्याय शपाकत्रपुसीसधामर विक्रपी मद्यप एकशफविक्रपी मृगम्पाय कुंडाशी मृतकवैलिकी वा नक्षत्री चार्धुदी नास्तिको रंगोपजीव्यमस्यमस्ती गंडरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः पिंडित पडो महापयिको गंडिकश्चांडाळी पुष्कसी गोव्धवकीर्णा भ्रष्टामेही धर्मपत्नीपु स्थान्मैधुनप्रवर्तक सत्वाट सगोत्रासमयक्यमिगामी श्वीपदी पितृमातृभगिनीरुपमिगाम्यविजितस्तेषां कुम्भकुंडपंडभ्यापितभ्यंगदरिद्रारुपा पुपोऽल्पशुद्धि श्वपंडसैलूपतस्करपरपुरुषप्रभ्यपरकर्मकरा सत्वाटवक्रांगसं कीर्णाः क्रूरकर्मार्णः क्रमशश्चात्याभ्योपपद्यति तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्त विशुद्धैर्लक्षैर्जायते धर्मस्य धारणादिति धर्मस्य धारणादिति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे विंशतिवमोऽध्यायः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण पापी चौछठ नरकके स्थानमें दुःख भोगकर मनुष्यकोर्ममें पूर्वोक्त पापोंसे निष्ठ युक्त हो कर्म छोटे हैं, ब्रह्महत्या करनेवालेके गीळा कुछ होता है, मरिच पीनेवालेके दाँव काके होते हैं गुरुकी क्षम्यापर गमन करनेवाला डंगला होता है, सुवर्णकी चोरि करनेवालेके नख बुरे होते हैं, बसोका चुपमेवाका शत्रुयुक्त होता है, सोनेका चोर मेंडक होता है, देवका चोर बकचैतोगसे युक्त होता है, धीकी चोरि करनेवाला क्षयी होता है अन्नकी चोरि करनेवाला अजीर्ण रोगसे युक्त होता है; ज्ञानकी चोरि करनेवाला मूढ़, गुदका मारनेवाला मिरगीरोगसे युक्त होता है, गोकी हत्या करनेवाला कर्मप्रथ होता है, सूचकी माक और सुकमें सर्वथा दुर्गति भावीरहती है, धुरका पडानेवाला आंधक,

रांग, सीसा, चँवर इनका बेचनेवाला, मद्यप, एकशफ पशुओंको बेचनेवाला, मृग-  
व्याघ, कुंडाशी, भृत्य वा धोबी और बिना शास्त्रके जाने नक्षत्रोंको बतानेवाला अर्बुद-  
रोगी, नास्तिक, रंगरेज, भक्षण करने अयोग्यका भक्षण करनेवाला गंडमालाका रोगी  
होताहै, ब्राह्मण, कठोर, तस्कर, इनका जो गुरु हो, नपुंसक, रातदिन रास्ता चल-  
नेवाला गंडमालाका रोगी, और चाडाली, भंगन इनके साथ रमण करनेवाला प्रमेह रोगसे  
युक्त होताहै, पतिव्रता दूसरोंकी स्त्रीमें मैथुनकी इच्छा करनेवाला गंजा; अपने गोत्रकी स्त्रीमें  
गमन करनेवाला, और अपनी स्त्रीके साथ कुसमयमें गमन करनेवाला श्लीपदी होताहै,  
पिता, और माताकी बहन और पिताकी अन्य स्त्रियोंमें वीर्य डालनेवाला कुबडा, मूत्र-  
कृच्छ्री तथा अंगहीन दरिद्री और अल्पबुद्धि होताहै, तथा क्रोधी, नपुंसक, नट, चोर,  
पराये भृत्य और टहलुये, खलवाट, गजे, कुबडे, वर्णसकर और क्रूर कर्म करनेवाले होतेहैं,  
क्रमानुसार अंत्यजभी होतेहैं, इसकारण मनुष्ययोनिमें पापका प्रायश्चित्त अवश्य करना  
उचित है, कारण कि धर्मके धारण करनेसे निर्मल चिह्नवाले मनुष्य उत्पन्न होतेहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया विशोऽध्यायः ॥ २० ॥

### एकविंशोऽध्यायः २१ .

त्यजेत्पितरमपि राजघातकं शूद्रयाजकं शूद्रार्थयाजकं वेदविप्लावकं भ्रूणहनं  
यश्चांत्यावसायिभिः सह संवसेदंत्यावसायिन्या वा तस्य विद्यागुरुन्योनिःसंबंधांश्च  
सन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्म्मणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः  
कर्मकरो वा अवकरादमेध्यपात्रमानीय दासी घटान् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः  
पदा विपर्यस्येदमुमुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावी-  
तिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिःसंबंधाश्च वीक्षेरन् । अप उपस्पृश्य ग्रामं  
प्रविशति अत ऊर्ध्व तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्रीमज्ञानपूर्वं  
ज्ञानपूर्वं चेन्निरात्रम् ।

राजाका मारनेवाला, शूद्रको यज्ञकरानेवाला, वेदको डुवानेवाला, भ्रूणहत्याकारी, अंत्या-  
वसायी स्त्रियोका संग करनेवाला ऐसे पिताको भी पुत्र त्यागदे ( अन्योंको तो कहनाही  
क्या ) फिर वह मनुष्य विद्या, गुरु और योनिःसम्बन्धियोंको इकट्ठा करके जलबन्ध  
इत्यादि सम्पूर्ण प्रेतोंके कार्यको करे, और इसके निमित्त पात्रको त्यागदे, दास, अथवा  
भृत्य, अवकरसे अशुद्ध पात्र लाकर, दासी घडोंको भरकर दक्षिणको मुख करके  
“इसको मैं अनुदक करताहूँ” यह कहकर पैरसे उलटा करदे और वह सब उस प्रेतका  
नाम लें, अपसन्ध हो शिखाको खोलकर विद्यागुरु और बधु भी देखलें, फिर जलका  
स्पर्शकर ग्राममें प्रवेश करे और उसके संग यदि कोई अज्ञानतासे संभाषण करले तो वह  
खडा होकर एक दिन गायत्रीका जपकरे, और जिसने जानबूझ कर संभाषण कियाहो वह  
तीन रात्रि खडे होकर गायत्रीका जपकरे.

यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्धयेत्तस्मिन् शुद्धे शतकुंभमयं पात्रं पुण्यतमात् द्विदात्  
पूरयित्वा सर्वंतीभ्यो वा तत एनमप उपस्पृशेयुः । अथास्मै तत्पात्रं दृद्युस्तत्सं-

अतिपृष्ट जपेव क्षांता थी' क्षांता पृथिवी क्षांतं शिवमतरिक्ष योरोचनस्तमिह  
गृह्णामीत्येतिर्पञ्चभिस्तरत्समदीभि' पाषमानीभि' कूष्मण्डिकाज्यं शुद्ध्यात् ।  
हिरण्य ब्राह्मणाय वा दद्यात् गां वाचार्याय च यस्य च प्राणातिकं प्रापयित्त  
स मृत', शुद्धपेव तस्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि फुरुरेतदेव क्षांत्युदकं  
सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे राजाकी इत्या करके भी पुरुष यदि कुछ होगयाहो वी वह कुछ होअनेके  
उपरान्त सुवर्णके पड़ेको पवित्र कुडमें वा झरनोंमेंसे भरकर उसका स्पर्श करे और सुवर्णके  
पड़ेको उसे देवे फिर वह उस पड़ेको छेकर "शांता थी' अर्था पृथिवी क्षांतं शिवमंतरिक्षं वो रोच  
नस्तमिह गृह्णामि" इन मंत्रोंको अपै, और यजुर्वेदकी ऋचा, पाषमानी तथा कूष्मण्डिकेपुदका इतन  
करै, ब्राह्मणको सुवर्णका दान दे, आचार्यको गौवान करै जिस पापीका प्राणभित्त प्राणा-  
न्तिक है वह मरनेके पीछे कुछ होता है, उसके उद्धारणमादि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करने में उत  
समस्त पापोंमें यही क्षांतिका उद्क कहा है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ माषादीक्यां मेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

### द्वाविंशोऽध्याय २२

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमावृपितृयोनिषधगस्तेन नास्तिकानिदितकर्मान्यासिप-  
तितात्याग्यपतितस्याग्नि' पतिता' । पातकसंयोजकाश्च तैश्चाब्द समाधरन्  
द्विजातिकर्मभ्यो हानि' पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेके नरक त्रीणि प्रथमान्यनि-  
दंश्यानि मनु । न स्त्रीष्वगुरुतल्पग' पततीत्येके । धूणहनि हीनवर्णसेवायां च  
स्त्री पतति कीटसारूप राजगामि पैद्युन गुरोरनुताभिर्शसनं मह्यपातकसमानि  
अपांक्ष्यानां प्राग्दुर्बलात् । गोहृत्ब्रह्मोजसतन्मंत्रकृदवकीर्णपतितसावित्रि  
केषूपपातकं याजनाभ्यापनाद्वस्त्रिगाथार्यां पतनीयसेवायां च हेयौ अन्यत्र हाना  
त्पतति तस्य च प्रतिग्रहीत्येके न फर्दिधिन्मातापिशोरवृत्तिः दाय तु न भजे-  
रन् ब्राह्मणामिशसने दोषस्ताषान् द्विरनेनसि दुर्बलार्हिसायां चापि मोचने  
शक्तचेत् । अभिक्रुद्धधावगूरुण ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निपातने निपाति  
सहस्र लोहितदर्शने यावत्तस्तत्प्रस्कंध पांसुं सगृह्णीयात्संगृह्णीयात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

महत्या करनेवाला, मर्दिग पीनेवाला, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला, माया और  
पिताके पक्षकी योनिसम्बन्धी शिवोंके साथ गमन करतवाला नास्तिक, निदित कर्मोंको  
करनेवाला, पतितका संसर्ग करनेवाला अराहितका त्यागनेवाला यह सभी पतित हैं इनके  
साथ जो मनुष्य एक बचक संसर्ग करता है वह भी पातकी लेवावा है, वह पतित  
द्विजातियोंके कर्मसे हीन होकर पर और परब्रेकमें अग्रतिको प्राप्त होता है, और कोई २

ऐसा भी कहते हैं कि, उस मनुष्यको नरक होता है यह मनुष्यका मत है कि पहले तीन ( ब्रह्महत्याकारी, मदिरा पीनेवाला, गुरुशय्यापर गमनकारी)का प्रायश्चित्त नहीं है, कोई २ यह कहते हैं कि गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला पतित होता है अन्य स्त्रीमें गमनकरनेवाला पतित नहीं होती. भ्रूणहत्या करनेवाली और नीच वर्णकी सेवा करनेसे स्त्री पतित होती है, झूठी साक्षी, राजाकी चुगली, गुरुकी झूठी निन्दा यह भी महापातकके समान है, पंक्तिके बीचमें हत्यारा, वेदका त्यागी, ( वेदमंत्रोंके व्यवहारसे रहित ) भवकीर्णी और गायत्री से पतित होकर जो ऋत्विक् आचार्य हो तो यहभी त्यागनेके योग्य हैं, जो पतितकी सेवाको करतेहैं जो इनको नहीं त्यागता है वह भी पतित होता है. और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पतितके प्रतिग्रहसे यह पतित होते हैं, पुत्र माता पिताकी आज्ञाका उल्लंघन न करै, और बिना उनकी आज्ञाके भाग भी न दाटे, ब्राह्मणकी निन्दा तथा पूर्वोक्त निरपराधी और दुर्बलकी हिंसा में भी द्रुगना दोष है, यदि छुटानेमें सामर्थ्यवान् होकर ब्राह्मणको हिंसा करावे, और गुरुपर क्रोध करै तो ब्राह्मणको सौ वर्षतक नरक होताहै मारनेमें सहस्र वर्षतक और रुधिरके निकलनेपर अजितने रुधिरसे पृथ्वीके परमाणु भीजें उतनेही वर्षतक नरक प्राप्त होता है ।

इति श्रीगीतमस्मृतौ भाषाटीकाया द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

### त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

प्रायश्चित्तमसौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिखच्छादितस्य लक्ष्येण वा स्याज्जन्यशस्त्रभृतां खट्वांगकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्ष्याय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्माचक्षणः यथोपक्रामेत्संदर्शनादार्यस्य स्नानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शनाच्छुद्धयेत् । प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेप्यग्निष्टंदतश्चोत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे हत्वापि आत्रेय्यां चैवं गर्भे चाविज्ञाते ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात् । शूद्रे संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात् । अनात्रेय्यां चैवं गां च वैश्यवत् मंडूकनकुलकाकविडराहमूषिकाश्चहिसासु च । अस्थिमतां सहस्रं हत्वा अनस्थिमतामनडुद्रारे च अपि वाऽस्थिमतामेकैकस्मिन् किचिद्दद्यात् । षंडे च पलालभारः सीसमाषकश्च वराहे घृतघटः सर्पे लोहदंडः ब्रह्मबंध्वां च ललनायां जीवो वैशिके न किञ्चित् तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारौ त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गः यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमत्र योगे सहस्रवाक् चेत् अग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिंडं तु लभेत् । अमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीकृते कूर्पांडैर्वृतहोमो घृतहोमः ॥

इति श्रीगीतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

ब्रह्महत्या करनेवालोंका प्रायश्चित्त यह है कि वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करे अथवा तीनवार शस्त्रधारियोंके शस्त्रसे काटेजाय, फिर वह खट्वांग और कपालको हाथमें लेकर बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य



प्रतकोधारण किये मिश्राके निमित्त अपने कर्मको कद्दतेहुए ग्राममें जायें, सजन मनुष्यको देव कर मार्ग छोड़वें और तीर्थमें स्नान, आसन और लडके आचमनसेही शुद्ध होतेहैं, यदि ब्रह्महत्याके निमित्तसे किसी ब्राह्मणके प्राण बचजाय, अथवा नष्टहुआ द्रव्य मिश्रजाय, तो तीसरा भाग कम प्रायश्चित्त करै, रामा अश्वमेध अथवा अन्य धर्ममें अप्रिची स्तुति करै, और जो धर्म करणसे ब्राह्मणके लक्ष्मी इच्छा न करवाहो यदि वह ब्राह्मण मरजाय तो, चतुस्रती स्त्रीके मरनेमें या विना जाने गर्भके नष्ट करनेमें भी नौ बपका प्रायश्चित्त है, ब्राह्मण छत्रियोंके मारनेमें छैः वर्षका समावसे ब्राह्मण्य करै, और सहस्र गौ दे तथा वैश्यके मारनेमें तीन वर्षका ब्राह्मण्य करै एक बैल और सौ गौ दे, शूद्रकी हत्यामें एक वर्षका ब्राह्मण्य कर एक बैल और ग्यारह गौ दे, रजस्रवाके अतिरिक्त स्त्रीका मारने-वाला एक वर्षतक ब्राह्मण्य कर एक बैल और सौ गौओंका दान करै, मेंढक, काक, नौछा, भिष, अश्व, वृद्ध, सुसा, इनकी हिसामें भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै, सहस्र अस्त्रि-वाले और अस्त्रियोंसे रहितोंकी हत्यामेंभी तथा अधिक भारसे बैलकी हत्यामेंभी यही प्रायश्चित्त है; और अस्त्रिवाले छोटे १ स्त्रीकी एक २ हत्यामें बौडा ३ दान करै, पंड जीवकी हत्यामें पञ्चाङ्गण एक भार, और मासा सीसा दानकरै, शूकरकी हत्यामें पीका मडा, सर्पकी हत्यामें छोहेकी बडको ब्राह्मणको दे, ब्राह्मणकी अस्मिचारिणी स्त्रीकी हत्या शम्बा, अन्न और वनके जोमसे बिना जाने होजाय तो भिन्न २ वर्षके प्रायश्चित्त करनेकी विधि है वृषदेकी स्त्रीकी हत्या करनेवाला दो और वेदपाठीकी स्त्रीकी हत्यामें तीन वर्ष तक प्रायश्चित्त करै, यदि द्रव्य मिश्रजाय तो अपराधी छोड़ देनेके योग्य है, अथवा उसको बसके पर पहुंचावे, यदि इस अपराधमें हथार बारभी सदा हो अप्रिका त्यागी, तिरस्कारी और उपपातक हो उनमें भी यही प्रायश्चित्त है, स्त्रीके अस्मिचारिणी होनेपर उसे परमें रखछोड़ै और पिंड दे गौके अतिरिक्त स्त्रीसे भिन्न स्त्रीकी कीहुई हत्यामें कूर्मान्धमंत्रोंसे पीका हवन करै ।

इति गौतमस्मृतौ माषादीश्रया बभूवर्षिणोऽध्यायः ॥ २१ ॥

### चतुर्विंशोऽध्यायः २४

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामार्सिचेयुः सुरामास्ये मृत शुद्धयेव अमत्या पाने पयोभूतमदक धार्युं प्रतिश्र्यह तप्तानि सकृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः मूत्रपुरीषरे-  
तसां च मोक्षने श्रापदोष्टहराणां चांगस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गंधाम्राजे  
सुरापस्य प्राजायामो घृतमाशनं च पूर्वेभ्यः दष्टस्य तल्पे लोहशयने गुरुतल्पगः  
शयीत । सूमीं वा ज्वलंतीं चाश्लिष्येत् । लिङ्गं वा सवृषजमुत्कृष्याञ्जलायाथा  
य दक्षिणां प्रतीचीं दिशं प्रजेत् । अजिह्ममाक्षरीरनिपातात् मृतः शुद्धयेव ।  
सस्त्रीसयोनिःसगोत्राशिष्यभार्यासु स्तुपायां गवि च गुरुतल्पसमोऽत्रकर इत्येके  
श्वभिरादयेद्राजा निह्निमवर्णगमने श्वियं प्रकाशं पुमांसं पातयेत् । ययोक्त वा  
गर्भिनावकीर्णो निर्झरति चतुष्पथे यजते । तस्याग्निमूढघातं परिधाय लोहि-

तपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्धयेत् । रेतःस्कंदने भये रोगे स्वप्नेग्नीधनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः साभिसंधैर्वारै तस्याभ्याम् ॥

मदिरा पीनेवाले ब्राह्मणके मुखमे उष्ण मदिराको डालै तौ वह मृत्युको पाकर पापसे मुक्त होताहै, यदि अज्ञानतासे मदिरापान कीहै तो तीन दिनतक क्रमानुसार दूध, घृत, उदक और वायुको भोजनकर तप्तकृच्छ्र व्रतको करै इसके उपरान्त पुनर्वार यज्ञोपवीत करानै, मूत्र, विष्टा, वीर्य, भेडिया, ऊट, गधा, ग्रामका सुरगा इनके भक्षण करनेमेंभी पूर्वोक्त संस्कार करै, मदिरा पीनेवालोंकी दुर्गाधिकी सूंघने और पूर्वोक्त भेडियेआदिके काट-खानेमें प्राणायाम और घृतका भोजन करै, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तपाईहुई लोहेकी शय्यापर शयन करै, और जलतीहुई लोहेकी स्त्रीका स्पर्श करै, अथवा अण्डकोश-सहित इन्द्रियको काट हाथमें रखकर दक्षिण अथवा पश्चिम दिशाको चलाजाय और मरण-पर्यंत निष्कपट रहै, फिर मरनेके उपरान्त शुद्ध होजाताहै मित्रकी स्त्री, कुलगोत्रकी स्त्री, शिष्य और पुत्रवधू, गौ इनके साथ गमन करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरनेके समान प्रायश्चित्त करै, यदि कोई उत्तम वर्णकी स्त्री नीच वर्णके पुरुषके साथ व्याभिचार करै, तौ राजा उसको सबके सम्मुख मरवा दे, और वह पुरुष भी वध करनेके योग्य है, गधीके योनिमें वीर्य डालनेवाला चौराहेमें निर्ऋति देवताका पूजन करै, और वालोसहित उस गधेकी चामको ओढकर लोहेका पात्र हाथमें ले अपने कर्माँको कहताहुआ सात घरोंसे भिक्षा माँगै, एक वर्षतक इस भाति करनेसे शुद्ध होजाताहै, भय, रोग, या सुपुत्रि अवस्थामे वीर्य स्वलित होजाय तौ सात दिनतक अग्निहोत्र करनेके लिय ईधन और भिक्षा मांगकर घृतसे हवन करै ।

सूर्याभ्युदित ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुंजानोभ्यस्तमिते च रात्रि जपन् सावित्रीम्, अशुचिं दृष्ट्वादित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वा अमेध्यप्राशने वा अभोज्यभोजने निष्पुरीषाभावः त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा, स्वयं शीर्णान्युपयुंजानः फलान्यनतिक्रामन् प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दिनो घृतप्राशनं च आक्रोशानृतहिसासु त्रिरात्रं परमं तपः सत्यवाक्ये चेद्धारुणीभिः पावमानीभिर्होमः । विवाहमै-थुननिर्मातृसंयोगेष्वदोषभेके । अनृतं चेत् न तु खलु गुर्वयेषु यतः सप्त पुरुषा-नितश्च परतश्च हन्ति । मनसापि गुरोरनृतं वदन्नल्पेष्वप्यर्थेषु । अंत्यावसा-यिनीगमने कृच्छ्राब्दः अमत्या द्वादशरात्रम्, उदक्यागमने त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूर्यके उदय होनेपर ब्रह्मचारी रहै प्रतिदिन एक बार भोजन करै, सूर्यके अस्त होनेपर गायत्रीका जप करताहुआ रात्रिको व्यतीत करै, अपवित्र वस्तुको देखकर सूर्यका दर्शन करै; और अपवित्र वस्तुको भक्षण करके प्राणायाम और सूर्यका दर्शन करै, अभोज्य वस्तुका यदि भोजन करले तौ जबतक उस अन्नका मल शरीरमेंसे न निकले तबतक ( तीन रात्रितक )

भोजन न करे अथवा सात दिनतक आपसे दूटेहुए फलोंका भक्षण करे, पाँचों पचनल पशुओंके अतिरिक्त अन्य पशुओंके भक्षणमें ब्रतन करके घृतका भक्षण करे; 'निम्बा, मिप्या, हिंसा इनमें छस्य पचनके बिपै अर्थात् जो सबे निन्दक हो वी वारुणी पावमाती कृषाओंसे हवन करे और कोई २ पेसा भी कहते हैं कि विवाह, मैतुन और माताके अतिरिक्त अन्य क्षियोंके साथ झूठ बोझनेका दोष नहीं है, गुरुके निमित्त झूठ बोझनेवाला सात पिछड़ी और सात अगली पीछियोंको नष्ट करता है। मनसे भी गुरुके निमित्त कुछ कामोंमें झान ब्रतकर यदि झूठ बोझे अथवा भीष्मादिके साथ यदि गमन करे, पूर्वोक्त कर्मोंको यदि अज्ञातसे करे वी बारह रात्रितक कृष्ण करनेसे मुक्ति होती है, और स्वस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तीन रात्रि कृष्ण करे ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायादीकानां ऋषिर्षोऽध्यायः ॥ २४ ॥

### पचविंशोऽध्याय २५

रहस्य प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ग्रन्थ तरत्समदीत्यप्सु जपेदप्रतिप्राह्य प्रतिजिपृक्षन् प्रतिगृह्य वा अभोज्य बुभुक्षमाणं पृषिषीमावपेत् ऋत्वतर मण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्र घृतेन द्विती यमद्विस्तृतीयं विषादिव्येकमक्तको जलक्लिन्नवासां छोमानि नखानि त्वष मांसं क्षोणितं स्नाप्यस्त्रिमन्वानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहो मीत्यंतत सर्व्वेपामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायां । अयाम्य उक्तो नियमः । अस त्व पारयेति महाभ्याहृतिभिर्जुहुयात् । कृष्णहिंसांश्च तद्वत् एव वा ब्रह्महत्या-सुरापानस्तेयगुरुतरलेषु प्राणायामिः । खातोऽधमर्षण जपेत् । सममक्षमेधाव-भूधेन सावित्री वा सहस्रकृत्व आवर्त्तयन् पुनीते हेवात्मानमंतर्जले वाधमर्षण त्रिरावर्त्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अज्ञानतासे जो अपराध किया है उसका यह प्रायश्चित्त है कि जन्ममें बैठकर "तरत्स मदी" इस ऋचाको बार बार कपे और प्रतिमहके अयोग्य को छेनेकी इच्छा करनेवाला वा छेनेवाला भी मरु में बैठकर पूर्वोक्त ऋचा को कपे, और अभोज्य भोजन की इच्छा करनेवाला पृष्ठीपर्यटन करे, अतुमणी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला स्नान वा आचमन करनेसे ही मुक्त होमावा है, और कोई २ पेसा कहते हैं कि क्षियोंके साथमें यह प्रायश्चित्त है कि जो भ्रूणहत्या करे वह दशरात्रितक दूध पीनेका व्रत करे; अगोत्री ब्रह्म रात्रितक धी पिये और अगोत्री ब्रह्म रात्रियोंमें जलशी पिये, दिनमें एकबार भोजन करे, और मीनेहुए बर्कोंको पहनकर होम नल मांस, क्षयि, ज्ञायु, मज्जा, स्कीर यह सब "आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि" इस मंत्रसे हवनकरे, सम्पूर्ण भ्रूणहत्या करनेवालोंकाभी यही प्रायश्चित्त है तथा अपरोक्त नियमसे रहकर "अमे त्वं पारव" यह कहकर सात म्जा व्याहृतियोंसे हवन करे और कृष्णांडमंत्रोंसे पीका हवन करे, ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी क्षण्यापरगमन करनेवाला इन शीर्षमेंभी पूर्वोक्त व्रतको

कर प्राणायाम और स्नान करके अधमर्षणका जप करै तथा सहस्रवार गायत्रीको जपे, तब वह अश्वमेधके अवभृथके समान आत्माको पवित्र करताहै; और जलके बीचमें तीनवार अधमर्षणको जपनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया पचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

### षड्विंशोऽध्यायः २६.

तदाहुः कृतिधावकीर्णां प्रविशतीति । मरुतः प्राणेनेद्रं वलेन बृहस्पतिं ब्रह्मवर्चसेनाग्निमेवेतरेण सर्वेणेति । सोमावास्यायां निश्यमिमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति कामावकीर्णांस्म्यवकीर्णांस्मि कामाय स्वाहा । कामाभिदुग्धोस्म्यभिदुग्धोस्मि कामकामाय स्वाहेति । समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तुं कृत्वोपस्थाय समासिंचन्वित्येतया त्रिरुपतिष्ठेत् । त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रात्या इति । एतदेवैकेषां कर्माधिकृत्ययोः पूत इव स्यात्स इत्थं जुहुयादित्यमनुमंत्रयेत् वरोदक्षिणेति । प्रायश्चित्तमविशेषात् अनाज्ववैपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राशनेषु शूद्रायां च रेतः सिक्त्वा योनौ च दोषवति कर्मण्यभिसंधिपूर्वोऽप्यब्लिगाभिरप उपस्पृशेद्गारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः प्रतिषिद्धवाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः संख्याताः पंच सर्वास्वपो वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्रातः रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् अष्टौ वा समिध आदध्यादेवकृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कितने प्रकारसे अवकीर्णां प्रवेश करताहै, विद्वानोंने यह कहाहै कि पवनमें प्राण, इन्द्रमें वल, बृहस्पतिमें ब्रह्मतेज और अन्य समस्त देहकी वस्तु अग्निमें प्रवेश करतेहैं, वह अवकीर्णां अमावसकी रात्रिको अग्नि स्थापन करै, प्रायश्चित्तकी “कामावकीर्णांस्मि कामाय स्वाहा” और “कामाभिदुग्धोस्म्यभिदुग्धोस्मि कामकामाय स्वाहा” इन मंत्रोंसे आहुति दे, समिधकी लकड़ी रखकर छिडके, और यज्ञवास्तुका चक्र बनावै, ‘समासिंचतु’ इस मन्त्रसे तीनवार स्तुति करै, और उसी वास्तुमें “त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रात्या” यह मन्त्र पढ़े, यहभी कितने ऋषियोंका वचन है कि, कर्मका प्रारंभ कर जो पवित्र करनेकी अभिलाषा करनेवाले हैं वह भी इसी प्रकार होम करै, और ‘वरो दक्षिणा’ इससे स्तुति करै, इसी भांति सामान्यमेंभी प्रायश्चित्त है, कठोरता, चुगली, निषिद्ध आचरण, अभक्ष्यभक्षण इनमें और शूद्रा स्त्रीमें वीर्य डालकर, वा आप्रहसे जो दूषित कर्म कियाहै तौ वरुणदेवतावाली और जलके चिह्नयुक्त ऋचाओंसे या अन्यान्य पवित्र मंत्रोंसे आचमन करै, मन और वाणीके निषिद्ध आचरणमें पांच व्याहृतियोंसे अथवा सभी व्याहृतियोंसे आचमन करै, प्रातःकालमें “अहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहा” इस मन्त्रसे, और सायंकालमें “रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनातु” इस मन्त्रसे आठ समिधें रक्खै, और “देवकृतस्य” इस मंत्रद्वारा हवन करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकाया षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## सप्तविंशोऽध्यायः २७

अथात कृच्छ्रान् व्यास्यास्यामः । हविष्यामातराक्षान् भुक्त्वा तिस्रो रात्री  
 नाशनीयात् । अथापरं अ्यहं नक्तं भुञ्जीत । अथापरं अ्यहं न कंचन याचेत् ।  
 अथापरं अ्यहं सुपषसेत् । सतिष्ठदहनि रात्रावासीत् क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् ।  
 अनार्यैर्न सभापेत् । रौरवयौघाजिने नित्यं प्रयुञ्जीत । अनुसवनमुदकोपस्य  
 शनम् । आपोद्दिष्टेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्माजयेत् । हिरण्यवर्णां शुचयं  
 पाषका इत्यष्टाभिः ॥ अयोदकतर्पणम् ॥ ॐ नमो हमाय मोहमाय सहमाय धुन्वते  
 तापसाय पुनर्वसवे नमो नमो मौज्यायौर्म्याय षसुर्षिदाय सर्वर्षिदाय नमो  
 नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्यवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये  
 महते देवाय अ्यवकायैकशरायाधिपतये हराय शर्षपिज्ञानाय शिषाय शोता  
 योत्राय वसिष्ठे पृणिने कपदिने नमो नमः सूर्यापादित्याय नमो नमो नील-  
 ग्रीवाय शितिकृष्टाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय भेष्टाय  
 वृद्धायेंद्राय हरिकेशायोद्धरेतसे नमो नमः सत्याय पाषकाय पाषकवर्णाय नमो  
 नमः कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय  
 तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तम  
 पुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमः ब्रह्मललाटाय नमो नमः कृत्तिषाससे  
 पिनाकहस्ताय नमो नमः इति । एतद्देवादित्योपस्थानम् । एता एषाज्याहुतयः ।  
 द्वादशरात्रस्थांते चरुं अययित्वाताम्यो देवताम्यो जुहुयात् । अयमे स्वाहा सो  
 माय स्वाहा अमीषोमाम्यो स्वाहा इद्रामिभ्यामिन्द्राय विश्वम्यो देवम्यो ब्रह्मणे  
 प्रजापतयेभ्रमे स्थिष्टकृत इति ॥ अयं ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनेवातिकृच्छ्रो  
 व्यास्यातः । पाषासकृदाददीत् वाषदशनीयात् अम्भसस्मृतीयं स कृच्छ्रातिकृच्छ्रं  
 प्रथमं चरित्वा शुचिं पूतं कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्पत्  
 महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो  
 मुच्यते । अथेतांस्त्रिंशन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वदेवज्ञोतो  
 भवति यथैव वेदं यथैव वेदः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस समय कृच्छ्रप्रारंभके विषयमें कहते हैं, पाषासकृदादमे केवल हविष्याजको भाजन कर तीन  
 रात्रितक कुछ न खाए, पीठे तीन दिनतक मऊ ग्रह करे, इसके पीठे तीन दिन अयाचित  
 ग्रवडा अनुष्ठान करे, अयात् किसीके कुछ न मगि, छिद्र तीन दिनतक बपनास करे, दिनके  
 समय गृहवा रदै, रात्रिके समय बैठे पदुत शीघ्र पल्लकी इच्छाकरनेवाला साथ बोलै, दुष्टोंक साथ  
 बातलाए न करे, नित्य गृह यौष इतकी मगशाहा जाड़े, शिष्टसममें जाचमन कर "आपो  
 दि षा" आदि तीन जापाओंसे और 'हिरण्यवर्णां शुचयं पाषका' इत्यादि जाठ पवित्र

ऋचाओंसे मार्जन करै; फिर इसभांति जलसे तर्पण करै कि इम, मोहम, संहम, धुन्वत्, चापस, पुनर्वसु, मौज्य, और्म्य, अस्तुविन्द, सर्वविन्द, पार, सुपार, महापार, पारयिष्णु, रुद्र, पशुपति, महान् देव, त्र्यंबक, एकचर, अधिपति, हर, शिव, शांत, उग्र, वज्रि, घृणि, कपर्दी, सूर्य, आदित्य, नीलग्रीव, शितिकंठ, कृष्ण, पिगल, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वृद्ध, हरिकेश, ऊर्ध्वरेतः, सत्य, पावक, पावकवर्ण, काम, कामरूपी, दीप्त, दीप्तरूपी, तीक्ष्ण, तीक्ष्णरूपी, सौम्य, सुपुरुष, महापुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष, ब्रह्मचारी, चन्द्रललाट, कृत्तिवासा, पिनाक-हस्त इन सबको मेरा नमस्कार है, यह तर्पण है और सूर्यकी स्तुति भी यही है, घृतकी आहुति भी यही है, इस प्रकार व्यतीतहुए वारह दिनके उपरान्त चरुको पकाकर इन देवताओंके निमित्त हवन करै, और “अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अन्नोपोमाभ्या स्वाहा, इंद्राग्निभ्यां स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, अग्नये त्विष्टकृते स्वाहा” इस हवन के पीछे वेदके मंत्रोंसे तर्पण करै, इसी प्रकार अतिकृच्छ्र भी कहागया है, जितना एकवार मुखमें आवै उतनाही भोजन करै और जलकोही भक्षण करै, यह कृच्छ्रातिकृच्छ्र है, प्रथम कृच्छ्रको शुद्धतासे करकै पवित्र और कर्मका अधिकारी होता है; दूसरे अतिकृच्छ्रको करकै महापातकसे अन्य जो पाप करताहै उससे मुक्त होजाता है, और तीसरे कृच्छ्रोंके करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है, और इन तीनों कृच्छ्रोंको करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंमें स्नात होताहै उसको सभी देवता जानतेहैं इस प्रकार जानै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

### अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातश्चांद्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् । श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् । आप्यायस्व संते पर्यांसि नवोनव इति चैताभिस्तरपणयाज्यहोमौ हविषश्चानुमंत्रणम् उपस्थानं चंद्रमसो यद्देवा देवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयात् । देवकृतस्येति चांते समिद्धिः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीः रूपं गीरोजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वग्रासप्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसत्कुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवीष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान् भुक्तैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं, विपरीत-अेकेषाम् । एष चांद्रायणो मासो मासमेतमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हंति । द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दशापरानात्मानं चैकविंशं पंक्तीश्च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामाप्नोत्याप्नोति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ चान्द्रायण व्रतके विषयमें कहतेहैं, चान्द्रायणका नियम यह है कि चतुर्दशीमें कृच्छ्र व्रतकरके मुंडन करै, और प्रातःकाल पूर्णमासीके दिन उपवास करै “आप्यायस्व सं ते पर्यांसि नवो नव” इत्यादि मंत्रोंसे पाठकर तर्पण करै, घृतका हवनकरै, हविका अस्तुमंत्रण और चन्द्रमाकी

## सप्तविंशोऽध्याय २७

अथात कृच्छ्रान् व्याख्यास्याम । इविष्यामातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्री  
नाशनीयात् । अथापरं ष्यहं नक्त भुजीत । अथापर ष्यह न कश्चन याचेत ।  
अथापर ष्यहमुपवसेत् । सतिष्ठदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकाम सत्य षदेत् ।  
अनार्यैर्न सभापेत । रीरषयौषाजिने नित्य प्रयुंजीत । अनुसधनमुदकोपस्य  
शनम् । आपोहिष्ठेति तिष्ठभि पवित्रवतीभिर्माजयित् । हिरण्यवर्णां शुचय  
पावका इत्यष्टाभिः॥अयोदकतर्पणम्॥ॐ नमो हमाय मोहमाय सहमाय धुन्वते  
तापसाय पुनर्षसधे नमो नमो मौज्यायोर्म्याय घसुविंदाय सर्वविंदाय नमो  
नम पाराय सुपाराय महापाराय पारपिप्पवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये  
महते देवाय ऋषकायैकचरायाधिपतये हराय शर्षायेशानाय शिषाय ज्ञाता  
योग्राय षग्निने घृणिने कपाह्निने नमो नम सूर्यापादित्याय नमो नमो नील  
ग्रीषाय शितिकठाय नमो नम कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय भेष्टाय  
कुद्गापेद्राय हरिकेशायोद्धरेतसे नमो नम सत्याय पावकाय पावकवर्णाय नमो  
नम कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय वीतरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय  
तीक्ष्णरूपिणे नमो नम सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तम  
पुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चन्द्रललाटाय नमो नमः कृत्तिषाससे  
पिनाकहस्ताय नमो नम इति । एतदेवादिष्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतय ।  
द्वादशरात्रस्याते चरुं अपयित्वाताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्रये स्वाहा सो  
माय स्वाहा अमीषोमाभ्यां स्वाहा इंद्राभिभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवभ्यो ब्रह्मणे  
प्रजापतयेऽग्रये स्विष्टकृत इति ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो  
व्याख्यातः।पाषसकृदादवीत तावदशनीयात् अम्भसस्तृतीयं स कृच्छ्रातिकृच्छ्र-  
प्रथमं चरित्वा शुचिं पृत्तं कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यत्किञ्चिदम्पत्  
महापातकेभ्य पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो  
मुच्यते । अपैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वदेवज्ञातो  
भवति परैर्व वेद परैष वेत् ॥

इति श्रीशैतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस समय कृच्छ्रतर्पणके विषयमें कहते हैं, प्रातःकालमें केवल इविष्याम्रको भोजन कर तीन  
रात्रितक कुछ न खाय, पौछे तीन दिनतक नक्त भव करै, इसके पीछे तीन दिन भवाचित्त  
अवका अनुष्ठान करै, अर्थात् किसीके कुछ न मरी, फिर तीन दिनतक उपवास करै, दिनके  
समय जबा खै, रात्रिके समय बैठे, बहुत क्षीम फळकी इच्छाकरनेवाला स्वयं पीछे, दुष्टोंक साथ  
वार्तालाप न करै, नित्य रुठ बौध इनकी मृगछाछा भोडै शिकाळमें अग्रमन कर "आपो  
हिं ह्य" भावि तीन ऋचाओंसे और "हिरण्यवर्णां शुचय पावका" इत्यादि आठ पवित्र

यवृत्तो न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्य श्रोत्रियां अनपत्यस्य ऋक्थं भजेरन् ।  
राजेत्रेषां जडक्लीवौ भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलो-  
मासूदकयोगक्षेमकृतान्नेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तासु अनाज्ञाते दशावरैः  
शिष्टैरूहवाद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमा-  
स्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदिति आच-  
क्षते । असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह । यतो  
यमप्रभावो भूतानां हिसानुग्रहयोगेषु धर्मिमणं विशेषेण स्वर्गलोकं धर्मविदाप्नोति  
ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति श्रीगौतमधर्मशास्त्रं संपूर्णम् ॥ १६ ॥

पिताकी मृत्युके पीछे पिताके धनको पुत्रही विभाग (वाट) कर लै, पिताकी जीवित अवस्थामें माताकी रजोनिवृत्ति होजाय, और पिता इच्छा करै तौ धन वांटदे, या सम्पूर्ण धन बड़े पुत्रको देकर अन्य पुत्रोंको केवल भरणपोषणके निमित्तही देसकताहै, या बड़ा भाई छोटे भाइयोंको पिताकी समान पालनाकरै और विभाग करै तौ धर्मसे वीसवा भाग अधिक धन और दोनों ओरके दातवाला वैल ज्येष्ठभाईको दे, काना, लंगडा, गंजा, यह वैल मध्यम पुत्रको दे, और यदि अनेक वैल हो तौ गौ, कवच, गाडी और एक २ पशु छोटे भाइयोंको दियाजाय; और शेष सब धनको बराबर २ वाटलै. बड़े भाईको दो भाग, और छोटे भाइयोंको एक २ भाग देना उचित है, और अपनी इच्छासेही सबभाई एक २ भाग लेलें, दश घोडे वा वैल आदि पशुओंमेंसे क्रमसे सबभाई एक २ लेलें, परन्तु बड़े भाईको एक अधिक देना उचित है, और सबसे बड़ी स्त्रीके पुत्रको सोलह वैलदे, अथवा छोटे भाइयोंको भी उसके समानही दे; और माताको भी उसीकी समान भाग पिता देदे, जिसके पुत्र न हो वह पुरुष यह प्रतिज्ञा करै कि मेरे लिये अपत्य पुत्र इसमें हो, और अग्नि प्रजापतिका पूजनकर पिता पुत्रिकाको दान करै, कोई २ ऐसा कहतेहैं कि अभिसंधि होनेसेही पुत्रिका हो सकतीहै, इस कारण पुत्रिकाके संदेहसे जिसके भाई न हो उस स्त्रीसे विवाह न करै पिंड, गोत्र, ऋषी इनके सम्बन्धी धनको वाटलें, और जिसके पुत्र न हो उसकी स्त्रीभी धन लेलें, या देवरसे पुत्रको उत्पन्न करै, और जिसके देवर हो वह यदि किसी अन्यसे उत्पन्न करले, तौ उसका धन विना विवाही और अप्रतिष्ठित कन्याओंका होता है, भगिनीयोंका शुल्क माताकी मृत्यु होजानेपर पीछे भाइयोंका होता है, मृतकहुए संसृष्टियोंका धन बड़े भाईका है, और उस संसृष्टिके मृतक हो जानेपर यदि जो संसृष्टि न हो तौ उस धनका अधिकारी भाई है, विभाग हो जानेके पीछे जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताकेही भागका भोगनेवाला है, जिस विद्वान् मनुष्यने स्वयं धन संप्रह कियाहै, वह मूर्ख विद्यारहित भाइयोंको यथेच्छ न दे, और जो पुत्र भी विद्यासे हीन हो तौ समविभाग करले, और धर्मसे विवाहीका पुत्र, देवर से उत्पन्न पुत्र, गोदलिया पुत्र, स्वयं आया हुआ, जिसकी यह खबर न हो कि यह किसके वीर्यसे उत्पन्न है वह, जो जीवन आदिमें पडा मिलाहो यह लैहो पुत्र धनके भागी हैं. कारी कन्याका पुत्र जो



स्तुति इन सबको करे और "यदेवा वेदहेतुं" इत्यादि चार ऋचाओंसे पूतका हवनकरे, इसके पीछे "विह्वलस्य" इत्यादि मंत्रोंसे समियोंका हवनकरे और "भू, भुव, स्व, उप, ध्रुव, स्व, श्री, स्व, गी, ओज, वेज, पुरुष, बर्म, शिव" इन चौदह मंत्रोंसे प्राणोंका अनुमेकन करके उत्सार करे, इसके पीछे प्रत्येकमंत्रसे मनसे ' नम स्याद्' यह पढ़े, सम्पूर्ण प्राणोंका प्रकृत यह है कि कितनेसे विकार उत्पन्न न हो, चत, मिथ्याका जन्म, सचू, कर्म, बी, धृ, र्म, इत, मूय, क्क, इदक, हवि, यह एक २ क्रमानुसार भेष है, पूर्णमासीक दिन पंच प्राणोंको खाकर प्राविदित एकमात्र कर्म करके कृष्णपक्षमें मौजनाकरे, अथावसके दिन वन वासकर प्राविदित एक २ मासको वडाते शुक्लपक्षमें मङ्गलकरे, किसी ऋषियोंके मरण इतले विपरीत चारायणकी विधि है; और यह चारायणमास है, इसका पवित्र होकर प्रथम एक माहीनेक ( मय ) करके मनुष्य सप पापोंके दूटकर मुक्ति पाताहै, और दूसरीबार करके वसपीढी पिछडी और वसपीढी अगली तथा इन्हीसवी अथवा आत्माको और जित जित जन्मों वैठे वन पंक्तियोंकोभी पवित्र करताहै, और एक वर्षक चारायण करनेसे अन्तर्भूतको प्राप्त होताहै ।

इति भैरवोपसंस्मृतौ पापाटीकामाहाविष्टोऽध्यायः ॥ २८ ॥

### एकोनविंशोऽध्यायः २९

ऊर्ध्वं पितृ पुत्रा ऋक्ष भजेरन् निवृत्ते रजसि मातृर्जायति चेच्छति । सर्वं वा पूर्वजस्येतरान्विसृयात् पितृवत् । विभागे तु धर्मवृद्धिं विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मियुनमुभयतोदसृक्तो धृपो गोवृषा काणसोरकूटसंजा मध्यमस्थानेकांश्चिज्जविधान्यापसी ब्रह्मनोपुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यवीपसा सम वेतरत् सर्वं यवी वा पूर्वजं स्यात् । एकैकमितरेषाम् एकैक वा काम्य पूर्व्यं पूर्वो ज्येष्ठे दक्षतं पशूनामेकशफो द्विपदानां वृषभाधिको ज्येष्ठस्य ऋषमयोदशा ज्येष्ठिने यस्य समं वा ज्येष्ठिने । येन यवीपसा प्रतिमात् वा स्ववर्गे भागविशेषं पितोत्सृजेत्पुत्रिकामनपत्योमिं प्रजापतिं वेष्टास्मदधर्मपत्यमिति सवाद्य अभिसंधिमात्राण्युत्रिकेत्येकेषां तत्सशयात्रोपपच्छेदघातृकां पिंडगोत्रपिसंबंध्या ऋक्ष भजेरन् । स्त्री श्वानपत्यस्य बीजं वा छिप्सेत् । देवशयत्यामन्मतोनातमभाग स्त्रीपन बुद्धितृणामप्रतानामप्रतिष्ठितानां च भगिनीशुक्ल सोदराणामूर्द्धं मातुं पूर्व्यं चैके ससृष्टविभागं प्रेतानां ज्येष्ठस्य ससृष्टिनि प्रेतोऽसृष्टिकृत्स्वयात् । विमक्तजं पित्र्यमेष स्वयमर्जितमयद्येभ्यो वैद्यं काम न दद्यात् अपेयां समं विभजेरन् पुत्रां औरसक्षेत्रमदत्तकृत्रिमगुठोत्पन्नापविद्धा ऋक्षमाम फानीनसहोदपीनर्मवपुत्रिकापुत्रस्वपदत्तक्रीता गोत्रमाम् । वनुर्पाशिनभीर साधभावे प्राज्ञणस्य ॥ राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्त्याशमाह । ज्येष्ठांशहीनमन्यत् राजन्यावेश्यापुत्रसमवापे स यथा ब्राह्मणपुत्रेण क्षत्रियाथत् शूद्रापुत्रोप्यनपत्यस्य शुश्रूषुबोद्धमेत दृष्टिमूलं प्रेतैफासिबिधिना सवणापुत्रोप्यम्या-

यवृत्तो न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्य श्रोत्रियां अनपत्यस्य ऋक्थं भजेरन् ।  
राजेतरेषां जडक्लीवौ भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलो-  
मासूदकयोगक्षेमकृतात्रेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तासु अनाज्ञाते दशावरैः  
शिष्टैरूहवाद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमा-  
स्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिपदिति आच-  
क्षते । असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह । यतो  
यमप्रभावो भूतानां हिसानुग्रहयोगेषु धर्मिणं विशेषेण स्वर्गलोकं धर्मविदामोति  
ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति श्रीगौतमधर्मशास्त्रं संपूर्णम् ॥ १६ ॥

पिताकी मृत्युके पीछे पिताके धनको पुत्रही विभाग (वांट) करलै, पिताकी जीवित अवस्थामें माताकी रजोनिवृत्ति होजाय, और पिता इच्छा करै तौ धन वांटदे, या सम्पूर्ण धन बड़े पुत्रको देकर अन्य पुत्रोंको केवल भरणपोषणके निमित्तही देसकताहै, या बडा भाई छोटे भाइयोंको पिताकी समान पालनाकरै और विभाग करै तौ धर्मसे बीसवा भाग अधिक धन और दोनों ओरके दांतवाला बैल ज्येष्ठभाईको दे, काना, लंगडा, गजा, यह बैल मध्यम पुत्रको दे; और यदि अनेक बैल हों तौ गौ, कवच, गाडी और एक २ पशु छोटे भाइयोंको दियाजाय, और शेष सब धनको बराबर २ वांटलै. बड़े भाईको दो भाग, और छोटे भाइयोंको एक २ भाग देना उचित है, और अपनी इच्छासेही सबभाई एक २ भाग लेलें, दश घोड़े वा बैल आदि पशुओंसे क्रमसे सबभाई एक २ लेलें, परन्तु बड़े भाईको एक अधिक देना उचित है, और सबसे बडी स्त्रीके पुत्रको सोलह बैलदे, अथवा छोटे भाइयोंको भी उसके समानही दे, और माताको भी उसीकी समान भाग पिता देदे, जिसके पुत्र न हो वह पुरुष यह प्रतिज्ञा करै कि मेरे लिये अपत्य पुत्र इसमें हो, और अग्नि प्रजापतिका पूजनकर पिता पुत्रिकाको दान करै, कोई २ ऐसा कहतेहैं कि अभिसंधि होनेसेही पुत्रिका हो सकतीहै, इस कारण पुत्रिकाके संदेहसे जिसके भाई न हो उस स्त्रीसे विवाह न करै पिंड, गोत्र, ऋषी इनके सम्बन्धी धनको वांटलें, और जिसके पुत्र न हो उसकी स्त्रीभी धन लेलें, या देवरसे पुत्रको उत्पन्न करै, और जिसके देवर हो वह यदि किसी अन्यसे उत्पन्न करले, तौ उसका धन बिना विवाही और अप्रतिष्ठित कन्याओंका होता है, भगिनीयोंका शुल्क माताकी मृत्यु होजानेपर पीछे भाइयोंका होता है, मृतकहुए संसृष्टियोंका धन बड़े भाईका है, और उस संसृष्टिके मृतक हो जानेपर यदि जो संसृष्टि न हो तौ उस धनका अधिकारी भाई है, विभाग हो जानेके पीछे जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताकेही भागका भोगनेवाला है, जिस विद्वान् मनुष्यने स्वयं धन सग्रह कियाहै, वह मूर्ख विद्यारहित भाइयोंको यथेच्छ न दे, और जो पुत्र भी विद्यासे हीन हो तौ समविभाग करले, और धर्मसे विवाहीका पुत्र, देवर से उत्पन्न पुत्र, गोदलिया पुत्र, स्वयं आया हुआ, जिसकी यह खबर न हो कि यह किसके बीर्यसे उत्पन्न है वह, जो जीवन आदिभें पडा मिलाहो यह छैहो पुत्र धनके भागी हैं. कारी कन्याका पुत्र जो

विवाहके समय गर्भ में हो एक स्नानपर सम्बन्ध करके फिर दूसरी जिस कन्याका विवाह होगवाहो उसका पुत्र, पुत्रिकाका पुत्र, जिसको पिता माता प्रसन्नतासे देखें वह, सोच्छिन्ना यह भी हैहो पुत्र गोत्रके भागी है और धनके चौथे भागमें इनका अधिकार है, क्षत्रियोंमें उत्पन्न हुआ बड़ा और ब्राह्मणका पुत्र और सभाविपुत्रोंके न होनेपर पुत्र्य अथवा अधिकारी है परन्तु बड़े भार्गवकी धीसमा भाग आदि क्षत्रिय और वैश्यके पुत्रके समागम होनेपर भागी नहीं होता, परन्तु समभागका अंश होता है; जो पुत्र क्षत्रियसे वैश्यमें उत्पन्न हो वह पुत्र ब्राह्मणके पुत्रकी समान है और पुत्रहीन मनुष्यकी दूश्राखीका पुत्रमी यदि सिष्यभावसे सेवा करे तो भोजन वस्त्रमात्रका अधिकारी होसकता है, और जो अपने बर्णकी स्त्रीकामी पुत्र म्यायके विरुद्ध चलाता है वह वृत्तिका भागी नहीं है, कोई २ ऐसा कहते हैं कि उस पुत्रवहित ब्राह्मणके धनको, वेदपाठी क्षत्रिय इत्यादिके धनको राजा छेड़े, अज्ञानी और नपुंसकमी पालनेके योग्य है; और जहका पुत्रमी भागका अधिकारी है, दूश्राके पुत्रके समान प्रविश्यमेंमी अज्ञके भागी हैं, और जह, बोगक्षेम, तथा सिद्धअन्न इनका और इकट्ठी रहती क्षियोंका विभाग नहीं है, जिस पापका प्रायश्चित्त क्षत्र्यमें विहित नहा तो कमनुसार चर्करनेवाले क्षेमसे हीन दसजनसे निर्णय करले, चारों वेदोंके पारको जाननेवाले तीन धारमी और तीन धृयक् २ धर्मके ज्ञाता हों, इन दस मनुष्योंके एकत्रहोनेकी समा कहा है, यदि इस प्रकारके परिपदोंका अभाव हो तो वेदके जाननेवाले क्षिष्ट, यह दोतोको विवाहके विषयमें भीमांसा करवे, बसीमांतिका आचरण करे, कारण कि क्षात्र्यमेंमी यही कहा है कि वेदका जाननेवाला सम्पूर्ण भूतोंका दुःख और दया करनेमें समर्थ होनेसे सब भूतोंपर निमज्जानुग्रहसमर्थ धर्मधर्मराजके समान प्रभावशाली है, धर्मके विषयमें धर्मका जाननेवाला स्वर्गलोके ज्ञान और निर्णय करनेके कारण प्राप्त होता है, यही धर्म है ।

इति श्रीपौतमस्मृतौ भाष्यटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति गौतमस्मृति समाप्ता ॥ २९ ॥



॥ श्रीः ॥

## अथ शातातपस्मृतिः १७.

### भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शातातपस्मृतिप्रारंभः ॥ प्रायश्चित्तविहीनानां महा-  
पातकिनां नृणाम् ॥ नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नांकितशरीरिणाम् ॥ १ ॥  
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ॥ प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्ता-  
पवतां पुनः ॥ २ ॥

जिन महापातकी मनुष्योंने प्रायश्चित्त नहीं किया है, वह नरक भोगनेके उपरान्त उन्हीं  
उन पापसूचक चिह्नोंसे युक्त होकर जन्म लेते हैं ॥ १ ॥ जबतक उस पापका प्रायश्चित्त न  
किया जाय तबतक पापकी सूचना देनेवाला चिह्न प्रत्येक जन्ममें होता है, प्रायश्चित्त करने  
और पश्चात्ताप करनेसे वह पापका चिह्न जाता रहता है ॥ २ ॥

महापातकजं चिह्नं सप्त जन्मानि जायते ॥ उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि  
पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ॥  
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य  
परिक्षये ॥ बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥

महापातक पापका चिह्न सात जन्मतक प्रकाश पाता है, उपपातकका चिह्न पांच जन्मतक  
प्रकाश पाता है और पापका चिह्न तीन जन्मतक प्रकाश पाता है ॥ ३ ॥ मनुष्योंके दुष्कर्मोंसे  
उत्पन्नहुए रोग उपायोंसे शांत होते हैं, जप, देवपूजा, हवन, इन सम्पूर्ण कार्योंसे समस्तरो-  
गोंकी शांति होती है ॥ ४ ॥ पूर्वजन्ममें जो पाप किया है वह नरक भोगनेके अन्तमें व्याधि-  
रूपसे पापियोंको पीड़ित करता है, उसकी शांतिका उपाय जप इत्यादि कार्य जानें ॥ ५ ॥

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी कासा अतिसार-  
भगन्दरौ ॥ ६ ॥ दुष्टव्रणं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ॥ इत्येवमादयो  
रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥ जलोदरं यकृत्स्त्रीहाशूलरोगव्रणानि  
च ॥ श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥ रक्तार्बुदविसर्पपाद्या  
उपपापोद्भवाग्दाः ॥ दंडापतानकश्चित्रवपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥ वल्मीक  
पुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ॥ अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति  
हि ॥ १० ॥ अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकरात् ॥ उच्यन्ते च  
निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥

कुष्ठरोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, अतिसार और भगंदर ॥ ६ ॥  
दुष्टघाव, गंडमाला, पक्षाघात, नेत्रोका नाश इत्यादि रोग महापातकोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥  
जलोदर, यकृत, दाहिनी कुक्षिकीमें डीहा ( तिली ), शूल, घाव, सांस, अजीर्ण, ज्वर, छर्दी,

भूम, मोह, गन्धप्रह ॥ ८ ॥ रज्जुबुद्ध, विसर्प, इत्यादि रोग उपपातकसे उत्पन्न होते हैं, बंधा पतानक, शिखरपु, कप, झुमडी, ॥ ९ ॥ चक्रे, पुंडरीकमादि रोग पापोंसे उत्पन्न होते हैं, अस्वन्त पापके करनेसे बवासीर रोग होता है ॥ १० ॥ और अन्यमी बहुतसे वर्षसकर रोग उत्पन्न होते हैं, उनके कारण तथा प्रायश्चित्तोंको क्रमानुसार कहते हैं ॥ ११ ॥

महापापेषु सर्वं स्यात्तदर्धमुपपातके ॥

दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिवलावलम् ॥ १२ ॥

महापातकमें सम्युक्त उपपातकमें आधा और पापमें छठ्य भाग प्रायश्चित्त व्याधिकी न्यून-  
शिक्षा देकर कल्पना करना उचित है ॥ १२ ॥

अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कल्पते ॥ गोदाने वत्सपुत्रा गौ सुशीला च पयस्विनी ॥ १३ ॥ वृषदाने शुभोऽनन्तच्छुद्धावरसकांचन ॥ निवर्तनानि भदाने दश दद्याद्विजातये ॥ १४ ॥ दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ॥ दश ताम्येव गोचर्मं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥ सुवर्णशतनिष्कं च तदर्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥ अश्वदाने मृदुस्वस्नमर्षं सोपस्करं दिशेत् ॥ १६ ॥ महिषीं माहिषे दाने दद्यात्स्पर्णापुधान्विताम् ॥ दद्याद्भ्रज महादाने सुवर्णं फलसंपुतम् ॥ १७ ॥ छससम्पार्हणं पुष्यं प्रदद्याद्देवतावेन ॥ दद्याद्विजसहस्राय मिष्टान्नं द्विजभोजने ॥ १८ ॥ रुद्रं जपेच्छसपुष्यैः पूजयित्वा च ध्येयकम् ॥ एकादश जपेद्द्वान्दक्षांशं गुग्गुलिपृतैः ॥ १९ ॥ हुत्वाभिषेचनं कुर्वाणमश्वैरुपदैवतैः ॥ शान्तिके गणेशातिथिं प्रहस्रास्तिकपूर्वकम् ॥ २० ॥

अथ गोदान इत्यादिमें साधारण विधि कहते हैं, गोदानमें सुशील बछड़ेसहित वृष देवे-  
बाजी गौ देनी उचित है ॥ १३ ॥ बैलके दानमें शुभ और सुन्दर सफेद बाल तथा कांच-  
नसे विभूषितकर वृषमका दानकरे, पृथ्वीके दानमें ब्राह्मणोंको ब्रह्मनिवर्तन पृथ्वीदान करे  
॥ १४ ॥ बस हाथके बराबरके बंडसे तीस बंडका निवर्तन कहा है, और दश निवर्तनकी  
बराबर पृथ्वीका गोचर्म होता है गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें  
पुणित होता है ॥ १५ ॥ सो निष्क ( तोड़े ) के चौथाई निष्कको सुवर्ण कहा है, और पोंडेके  
दानमें कोमल सुदृक्कण चिकना जन्वा सामी सहित सुन्दर घोड़ा है ॥ १६ ॥ जिस  
स्वामिमें सैसका दान कहा गया है उस स्वामिमें सुवर्ण और अन्न छत्रोंसे पुच्छकर महिषका  
दान करे, और महाशिव अर्थात् हाथीके दानमें सुवर्ण और फलसहित हाथीका दान करे  
॥ १७ ॥ देवताके पूजनमें उत्तम २ एक छत्र फूल प्रदानकरे, और ब्राह्मणोंके भोजनमें एक  
छत्र ब्राह्मणोंको मिष्टान्न दे ॥ १८ ॥ ध्येयक महादेवके जपमें छत्र फूलोंसे महादेव  
की एक पूजनकर म्यारह ब्रह्मोंका जपकरे, गुग्गुलु और पृथसे दक्षसं ॥ १९ ॥ इवम करके  
बहुपदेवताके मंत्रोंसे अभिषेक करे, और शान्तिके कर्ममें ब्रह्मोंकी शान्तिकर गणेशाति करे ॥ २० ॥  
धान्यदाने शुभं धाम्यं त्वातीपष्टिमितं स्मृतम् ॥ वस्त्रदाने पट्टपद्मद्वयं कर्पूरसं-  
युतम् ॥ २१ ॥ दशपंचाष्टवतुर उपवेश्य विमानं शुभान् ॥ विधाय वैष्णवीं

पूजां संकल्प्य निजकाम्यया ॥ २२ ॥ धेनुं दद्याद्विजातिभ्यो दक्षिणां चापि  
शक्तितः ॥ अलंकृत्य यथाशक्ति वस्त्रालंकरणैर्द्विजान् ॥ २३ ॥ याचेद्दंड-  
प्रमाणेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥ तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि  
॥ २४ ॥ पुनस्तान्परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिवद्विजान् ॥ संतुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां  
व्रतकारिणे ॥ २५ ॥

अन्नके दानमें ६० खारी अन्नका दान कहाहै, वस्त्रके दानमें कपूरसहित रेशमके वस्त्रका  
दानकरै ॥ २१ ॥ दस, पांच, या आठ अथवा चार उत्तम ब्राह्मणोंको पास बैठालकर  
अपनी कामनाके अनुसार संकल्प करनेके उपरान्त विष्णुका पूजनकर ॥ २२ ॥ ब्राह्म-  
णोंको गौ और यथाशक्ति दक्षिणा दे, फिर वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको शोभायमान  
कर ॥ २३ ॥ उनसे शास्त्रोक्त और पापके अनुसार प्रायश्चित्तको मांगै; और उनकी आज्ञा  
ले मलीभाति प्रायश्चित्तकर ॥ २४ ॥ मनोरथ पूर्ण करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजाकरै, इसके पीछे  
ब्राह्मण संतुष्टहोकर उस व्रत करनेवाले पुरुषको आज्ञा दें ॥ २५ ॥

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि॥सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छान्ति  
ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥ सर्वदेव-  
मया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥ उपवासो व्रतं चैव ज्ञानं तीर्थफलं  
तपः ॥ विप्रैस्सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ २८ ॥ सम्पन्नमिति  
यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥ प्रणम्य शिरसा धार्यमग्निष्टोमफलं लभेत्  
॥ २९ ॥ ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ॥ तेषां वाक्योदकैर्नैव  
शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ३० ॥ तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः ॥  
भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या भुंजीत सह बंधुभिः ॥ ३१ ॥

इति श्रीशातातपीये कर्मविपाके साधारणविधिः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

जप, तप, तथा यज्ञ इत्यादिके कर्ममें, जो न्यूनता रहजातीहै, वह ब्राह्मणोंकी आज्ञासे  
दूर होजातीहै ॥ २६ ॥ ब्राह्मण जपे कहतेहैं उसे देवताभी मानतेहैं, कारण कि ब्राह्मण  
देवताओंके स्वरूप हैं, इसीकारण उनका वचन मिथ्या नहीं होता ॥ २७ ॥ उपवास, व्रत,  
स्नान, तीर्थयात्राका फल, और तपस्या यह सब जिसके ब्राह्मणोंने करदियेहैं उसको  
इनका सम्पूर्ण फल होताहै ॥ २८ ॥ यदि जिस कार्यमें "तुम्हारा वह कार्य सिद्ध होगया"  
यह वचन ब्राह्मण कहदें, उनके उस वचनको नमस्कारकर शिरपर जो धारण करताहै वह  
अग्निष्टोम यज्ञके फलको पाताहै ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला, जलसे रहित  
जंगमतीर्थ ब्राह्मण है, उनके वचनरूपी जलसे मलिन मनुष्य शुद्ध होजातेहैं ॥ ३० ॥ इसके  
पीछे उनकी आज्ञा लेकर और उनके आशीर्वादको ग्रहणकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्म-  
णोंको भोजन कराय पीछे अपने बंधुओंसहित आप भोजन करै ॥ ३१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्याय २

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पांडुकुक्षी प्रजायते ॥ प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशा-  
 न्तये ॥ १ ॥ चत्वारः कलशाः कार्याः पंचरत्नसमन्विता ॥ पंचपल्लवसंपुक्ताः  
 सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥ मध्वस्थानाविमृष्ट्युक्तास्तीर्णोदकसुपुरिताः ॥ कषा-  
 यपचक्रोपेता नानाविधफलान्विता ॥ ३ ॥ सर्षोपधिसमायुक्ता स्याप्या  
 मतिदिक्ष द्विजैः ॥ रीप्यमष्टदल पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥ तस्यो-  
 परि न्यसेद्देव ब्रह्माणं च चतुर्मुखम् ॥ पलाद्धार्द्रममापेन सुषर्णेन विनिर्मि-  
 तम् ॥ ५ ॥ अर्घ्येत्पुरुषमूक्तेन त्रिकाल प्रतिघासरम् ॥ यजमानः शुभैर्गन्धै  
 पुष्पैर्बुधैर्यथाविधि ॥ ६ ॥ पूर्वादिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ॥ पठेषु  
 स्वस्ववेदांस्ते ऋग्येदमभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥ दशांशेन ततो होमो ब्रह्मशांतिपुर-  
 सरम् ॥ मध्यकुम्भे विधातव्यो घृत्वाकैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमिदं  
 कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥ तत्र पीठे यजमानमभिर्षिषेद्यथाविधि ॥ ९ ॥  
 ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचाप्याय  
 निवेदयेत् ॥ १० ॥ आदित्या षसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ प्रीताः सर्व्ये  
 व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥ इत्युदीर्यं सुहृर्मत्तया तमाचार्यं समा-  
 पयेत् ॥ एष विधाने विहिते श्वेतकुक्षी विशुद्धयति ॥ १२ ॥

ब्रह्महास्याकरमेंवाळा पापी नरक भोगकर वृद्धे जन्ममें श्वेतकुक्षी होताहै, वह उस पापकी  
 छाँटिके निमित्त प्रायश्चित्त करै ॥ १ ॥ चार कलशोंमें पंचरत्न डाले, और कलशोंके मुखों-  
 पर पंचपल्लव रखकर सफेद वस्त्रसे बाँधे ॥ २ ॥ अश्वशाळाभावि साठ स्वानोंकी मही  
 इन कलशोंमें डालकर पीचके कलसे इनको मरे, पीठे पचकपाय ( कपेखीवस्तु ) और अनेक  
 साँटिके फलोंसे युक्त करै ॥ ३ ॥ पीठे सर्षोपधियोंसे युक्त करके चारोंविस्त्राओंमें रखै,  
 और पीचके कलसके ऊपर चाँदीका घना आठबलका कमल रखे ॥ ४ ॥ फिर उस  
 कमलके ऊपर चतुर्मुखी छैःभासे सुषर्णकी बनी ब्रह्माजीकी मूर्ति स्थापित करै ॥ ५ ॥  
 फिर यजमान प्रतिदिन उत्तम गन्ध, पुष्प, भूप, बीपादिसे शीतों काळमें पुरुषसूक्तका सपकर  
 ब्रह्माका विभिन्नरहित पूजन करे ॥ ६ ॥ अग्नेवृत्तादि ब्राह्मण ब्राह्मर्ष्य धारणकर पूर्वभावि विस्त्राओं-  
 में स्थित घटोंके निकट धीरे २ वेदोंको पढ़े ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्मशांति करके पीचके  
 घटपर पठसयुक्तकर ठिठ और सुषर्णसे ब्रह्मशांति करे ॥ ८ ॥ इसके पीछ द्विजोंमें भेद्य  
 चारद्विजवक्त एक कार्यको समाप्तकर आसनपर बैठेहुए यजमानका विभिन्नरहित अभिषेक करे  
 ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त गौ, घृष्णी, सुवर्ण और ठिठ इन्हें अपनी छाँटिके अनुसार ब्राह्मणों  
 को दानकरे; और आचार्यको देनेयोग्य वस्तु दे ॥ १ ॥ "इसके पीछे सूर्य, वसु, ब्रह्म,  
 विश्वेदेवा मरुद्गण्य यह" सब प्रसन्न होकर मेरे कठिन पापको बुरकरे ॥ ११ ॥ इसपकार  
 बारम्बार मक्ति सहित प्रार्थनाकर आपाथके निकट समा प्रायण्य करे; इसभाँवि नियम  
 सहित प्रायश्चित्त करनेसे श्वेत कुक्षी शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥ स्थापयेद्धटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्य  
संयुतम् ॥ १३ ॥ रक्तचंदनलिप्तांगं रक्तपुष्पांबरान्वितम् ॥ रक्तकुंभन्तु तं  
कृत्वा स्थापयेदक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥ ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरि  
तम् ॥ तस्योपरि न्यसेदेवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन पापं  
मे शाम्यतामिति ॥ सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामवित् ॥ १६ ॥  
दशांशं सर्वपैर्दुत्वा पावमान्यभिषेचने ॥ विहिते धर्मराजानमाचार्याय निवे-  
दयेत् ॥ १७ ॥ यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ॥ दक्षिणाशापति-  
देवो मम पाप व्यपोहतु ॥ १८ ॥ इत्युच्चार्य्य विसृज्यैनं मासं सद्भक्तिमाचरेत् ॥  
ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥

गौकी हत्या करनेवाला कुष्ठी होताहै और नरक भोगनेके अंतमें उसका प्रायश्चित्त इसभांति  
है कि पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्तकर एक घटको स्थापित करै ॥ १३ ॥ और लाल चंदनसे उस  
घटपर लेपकरै, फिर लाल फूल और लाल वस्त्र उस घटके ऊपर रखवै, इसभांति उस घटको  
लालकरके दक्षिण दिशामें रखवै ॥ १४ ॥ इसके पीछे तिलका चून तांबेके पात्रमें भरकर  
उस पात्रको घटके ऊपर स्थापितकरै, और उस पात्रपर सुवर्णके निष्क ( तोलाका भेद )  
से वनवाय यमराजकी मूर्ति स्थापित करै ॥ १५ ॥ मेरे पापोंकी शांति होजाय, यह कहकर  
पुरुषसूक्त मंत्रद्वारा यमराजका पूजन करै, इसके पीछे सामवेदका जाननेवाला ब्राह्मण उस  
कलशके ऊपर सामवेदकी पारायण करै ॥ १६ ॥ फिर सरसोंसे दशांशहवनकर पावमानी  
ऋचाओंसे अभिषेक करनेके उपरान्त धर्मराजकी मूर्ति आचार्यको दे ॥ १७ ॥ भैंसेपर चढा  
हाथमें भयंकर दंडलिये दक्षिणदिशाका स्वामी यमराज देवता मेरे पापोंको दूरकरै ॥ १८ ॥  
यह कहकर आचार्यको विदाकर एकमहीनेतक उत्तम भक्ति करै; ब्राह्मण और गौके मारने-  
वालेकी यह शुद्धि कही ॥ १९ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ॥ नरकांते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथा-  
विधि ॥ २० ॥ प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ॥ व्रतान्ते कार-  
येन्नावं सौवर्णफलसम्भिताम् ॥ २१ ॥ कुंभं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्व  
वत् ॥ निष्कहेम्ना तु कर्तव्यो देवः श्रीवत्सलांछनः ॥ २२ ॥ पट्टवस्त्रेण संवे-  
ष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ॥ नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वापस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥  
वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूत्ताशयस्थित ॥ पातकार्णवमग्नं मां तारय प्रणतार्तिहृत् ॥  
२४ ॥ इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति  
विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥ २५ ॥

पिताकी हत्या करनेवाला, बुद्धिहीन और महासूर्ख होता है, माताका मारनेवाला अंधा  
होता है वह नरक भोगनेके उपरान्त विधिसहित यह प्रायश्चित्त करै ॥ २० ॥ तीस प्राजाप-  
त्य विधिसहित करै और व्रतकी समाप्तिमें पलभर सुवर्णकी नाव वनवावै ॥ २१ ॥ चांदीका  
बडा पूर्वोक्त प्रकारसे तांबेके पात्र वनवावै, और तोलेभर सुवर्णकी विष्णुकी मूर्ति वनवावै



## द्वितीयोऽध्याय २

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पांडकुष्ठी प्रजायते ॥ प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्प्रातःकशा-  
 न्तये ॥ १ ॥ चत्वारः कलशाः कार्प्याः पञ्चरत्नसमन्विताः ॥ पञ्चपल्लवसयुक्ताः  
 सितवस्त्रेण सयुताः ॥ २ ॥ अश्वस्थानादिमृत्पुष्पास्तीर्थोदकमुपूरिताः ॥ कर्पा-  
 मपञ्चकोपेता नानाविधफलान्विता ॥ ३ ॥ सर्षोपधिसमायुक्ता स्याप्याः  
 प्रतिदिन द्विजैः ॥ रीप्यमष्टदलं पत्रं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥ तस्यो-  
 परि न्यसेद्देव ब्रह्माणं च धनुर्मुखम् ॥ पलार्द्रार्द्रप्रमाणेन सुषर्णेन विनिर्मि-  
 तम् ॥ ५ ॥ अर्घ्येत्पुरुषमूकेन त्रिकाल प्रतिवासरम् ॥ यजमानः शुभेर्गन्धि-  
 पुष्पैर्द्रुपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥ पूर्वादिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मधारिणः ॥ पठेयुः  
 स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रमृतीञ्छने ॥ ७ ॥ दशाक्षेन ततो होमो ब्रह्मशांतिपुर-  
 सरम् ॥ मध्यकुम्भे विधातव्यो पृथाक्तैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमिदं  
 कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥ तत्र पीठे यजमानमभिर्यिचेद्यथाविधि ॥ ९ ॥  
 ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्याय  
 निविदेयत् ॥ १० ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ प्रीताः सर्वे  
 व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥ इत्युदीर्य मुहूर्तकृत्वा तमाचार्य क्षमा  
 पयेत् ॥ एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विद्युद्घति ॥ १२ ॥

ब्रह्महास्याकरनेवासा पापी नरक भोगकर वृक्षे जन्ममें श्वेतकुष्ठी होता है, वह उस पापी  
 श्रांतिके निर्मित प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥ चार कलशोंमें पञ्चरत्न डाले, और कलशोंके मुखों-  
 पर पञ्चपल्लव रखकर छेदक वस्त्रसे बांध दे ॥ २ ॥ अश्वस्त्राणामादि सात स्वर्णोंकी मूर्तियाँ  
 इन कलशोंमें डालकर तीर्थके जलसे इनको भर, पीठे पञ्चकपाय ( कपिसौमस्तु ) और मूके  
 श्रांतिके फलोंसे युक्त करे ॥ ३ ॥ पीठे सर्षोपधियोंसे युक्त करके चारोंदिशाओंमें रखे,  
 और बीचके कलशके ऊपर चांदीका बना आठदलका कमल रखे ॥ ४ ॥ फिर उस  
 कमलके ऊपर धनुर्मुखी है-मासे सुवर्णकी बनी ब्राह्मणोंकी मूर्ति स्थापित करे ॥ ५ ॥  
 फिर यजमान प्रतिदिन उक्त गन्ध, पुष्प, धूप, क्षीपादिसे तीनों कार्प्योंमें पुष्पसूचका उपकर  
 ब्राह्मणोंके विधिसे पूजन करे ॥ ६ ॥ ऋग्वेदमादि ब्राह्मण ब्राह्मणोंके चारोंदिशाओंमें  
 स्थित पठोंके निकट बीरे २ वेदोंको पढ़े ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्मशांति करके बीचके  
 पठपर पुठसयुक्तकर तिल और सुवर्णसे पृथाक्तपूजन करे ॥ ८ ॥ इसके पीछे द्विजोंमें श्वेत  
 धारद्विसतक उक्त कार्प्योंको समाप्तकर आसनपर बैठे हुए यजमानका विधिसे पूजन करे  
 ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त गौ, वृष्णी, सुवर्ण और तिल इन्हें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणों  
 को दानकरे, और आचार्यको वेत्तयोग्य वस्तु दे ॥ १० ॥ "इसके पीछे सूर्य, वसु रुद्र,  
 विश्वेदेवा मरुद्गण यह" सब प्रसन्न होकर मेरे कठिन पापको क्षमा करें ॥ ११ ॥ इस प्रकार  
 बारम्बार भक्ति सहित आचार्यके निकट क्षमा मागना करे, इसमांति निष्पन्न  
 सहित प्रायश्चित्त करनेसे श्वेत कुष्ठी मुक्त होजाता है ॥ १२ ॥

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥ स्थापयेद्धटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्य  
संयुतम् ॥ १३ ॥ रक्तचंदनलिप्तांगं रक्तपुष्पांबरान्वितम् ॥ रक्तकुंभन्तु तं  
कृत्वा स्थापयेदक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥ ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरि  
तम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन पापं  
मे शाम्यतामिति ॥ सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामवित् ॥ १६ ॥  
दशांशं सर्षपैर्दुत्वा पावमान्यभिषेचने ॥ विहिते धर्मराजानमाचार्याय निवे-  
दयेत् ॥ १७ ॥ यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ॥ दक्षिणाशापति-  
देवो मम पापं व्यपोहतु ॥ १८ ॥ इत्युच्चार्य्य विसृज्यैनं मासं सद्भक्तिमाचरेत् ॥  
ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥

गौकी हत्या करनेवाला कुष्ठी होताहै और नरक भोगनेके अंतमें उसका प्रायश्चित्त इसभांति  
है कि पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्तकर एक घटको स्थापित करै ॥ १३ ॥ और लाल चंदनसे उस  
घटपर लेपकरै, फिर लाल फूल और लाल वस्त्र उस घटके ऊपर रक्खै, इसभांति उस घटको  
लालकरके दक्षिण दिशामें रक्खै ॥ १४ ॥ इसके पीछे तिलका चून तांवेके पात्रमें भरकर  
उस पात्रको घटके ऊपर स्थापितकरै, और उस पात्रपर सुवर्णके निष्क ( तोलाका भेद )  
से वनवाय यमराजकी मूर्ति स्थापित करै ॥ १५ ॥ मेरे पापोंकी शांति होजाय, यह कहकर  
पुरुषसूक्त मंत्रद्वारा यमराजका पूजन करै, इसके पीछे सामवेदका जाननेवाला ब्राह्मण उस  
कलशके ऊपर सामवेदकी पारायण करै ॥ १६ ॥ फिर सरसोंसे दशांशहवनकर पावमानी  
ऋचाओंसे अभिषेक करनेके उपरान्त धर्मराजकी मूर्ति आचार्यको दे ॥ १७ ॥ भैंसेपर चढा  
हाथमें भयंकर दंडालिये दक्षिणदिशाका स्वामी यमराज देवता मेरे पापोंको दूरकरै ॥ १८ ॥  
यह कहकर आचार्यको विदाकर एकमहीनेतक उत्तम भक्ति करै, ब्राह्मण और गौके मारने-  
वालेकी यह शुद्धि कही ॥ १९ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ॥ नरकांते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथा-  
विधि ॥ २० ॥ प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ॥ व्रतान्ते कार-  
येन्नावं सौवर्णफलसम्भिताम् ॥ २१ ॥ कुंभं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्व  
वत् ॥ निष्कहेम्ना तु कर्तव्यो देवः श्रीवत्सलांछनः ॥ २२ ॥ पट्टवस्त्रेण संवे-  
ष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ॥ नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥  
वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूताशयस्थित ॥ पातकार्णवममं मां तारय प्रणतार्तिहृत्  
॥ २४ ॥ इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति  
विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥ २५ ॥

पिताकी हत्या करनेवाला, बुद्धिहीन और महासूर्ख होता है, माताका मारनेवाला अंधा  
होता है वह नरक भोगनेके उपरान्त विधिसहित यह प्रायश्चित्त करै ॥ २० ॥ तीस प्राजाप-  
त्य विधिसहित करै और व्रतकी समाप्तिमें पलभर सुवर्णकी नाव वनवावै ॥ २१ ॥ चांदीका  
बडा पूर्वोक्त प्रकारसे तांबेके पात्र वनवावै, और, तोलेभर सुवर्णकी विष्णुकी मूर्ति वनवावै

॥ २२ ॥ इसके उपरान्त रेशमके वस्त्र में उस मूर्तिको छपेटकर विभिन्नरिक्त विष्णुमगवानका पूजन करै, और सामग्रीसहित उस नापको ब्राह्मणको दे ॥ २३ ॥ हेवासुदेव ! हेअगतके नाप, हेसम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थिति करनेवाले हेनमस्कारकरनेवालोंके दुःखको दूर करनेवाले पापरूपी समुद्रमें डूबेहुए मेरा बन्धन करो ॥ २४ ॥ यह कहेकर नमस्कार कर ब्राह्मणोंको बिदाकरै, और अपनी शक्तिके अनुसार अन्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ॥ २५ ॥

स्वसृष्टाती तु षधिरो नरकान्ते प्रजायते ॥ भूको भ्रातृषधे वैष तस्यैर्यं निष्कृतिं स्मृता ॥ २६ ॥ सोऽपि पापविशुद्धपर्यं श्रेष्ठाद्वायजयतम् ॥ प्रतान्ते पुस्तक दद्यात्स्वर्णफलसमुत्तम् ॥ २७ ॥ इमं मत्र समुच्चार्य ब्रह्मार्थी तां विसर्जयेत् ॥ सरस्वति जगन्मातं शब्दब्रह्माधिदेवते ॥ २८ ॥ हुष्कर्मकरणात्वा पाद पाहि मां परमेश्वरि ॥

मगिनी ( यज्ञ ) की हत्याकरनेवाला बहुरा और माईको मारनेवाला गूना होवाहै, उसका प्रायश्चित्त नरकके भंवरमें यह कहाहै ॥ २६ ॥ यह अपने पापसे शुद्धिके निमित्त चांश्रावण प्रव करै, और प्रवकी समाप्तमें सुवर्णके पञ्चसहित पुस्तकका दान करै ॥ २७ ॥ इस मत्रको पढ़कर देवीसरस्वतीका विसर्जन करै कि हेसरस्वति ! हेअजन्माता, हेदेवकी देवता, हे परमेश्वरि ! निवृत्तकर्म करनेसे ओ पाप छल्पन हुआहै इससे मेरी रक्षा करो २८ ॥

बालपाती च पुरुषो मृतवत्सं प्रजायते ॥ २९ ॥ ब्राह्मणोद्वाहनं वैष कर्तव्यं तेन शुद्धये ॥ भवर्णं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥ ३० ॥ महारुद्रजप वैष कारयेच्च यथाविधि ॥ पङ्गोकादशी रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥ ३१ ॥ रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रं प्रकीर्तितः ॥ एकादशमिरेतेस्तु अतिरुद्रश्च कथ्यते ॥ ३२ ॥ जुहुयाच्च दक्षाग्नेन दूर्व्यापुतसम्पया ॥ एकादश स्वर्णनिष्कां प्रदातव्या सदक्षिणां ॥ ३३ ॥ पछान्येकादश तथा दद्याद्विस्तानुसारतः ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥ ३४ ॥ आपयेद्दम्पतीः पश्चान्मंत्रैर्वरुणदेवते ॥ आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥

बालकी हत्या करनेवाला मनुष्य मृतवत्स होवाहै ॥ २९ ॥ यह शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणोंको कपेपर चढाकर पछे, और विधानसे हरिवंश पुराणको भवण करै ॥ ३० ॥ पीठे महारुद्रका जप करावै, पङ्गोकी ग्यारह रुद्रोंको रुद्र कहते हैं ॥ ३१ ॥ ग्यारह रुद्रोंको महारुद्र कहाहै; और ग्यारह महारुद्रोंको एक अतिरुद्र कहतेहैं ॥ ३२ ॥ पक्षहजार दुर्वाभोंके बर्षांश दहनकरै और ग्यारह गोठेभर सुवर्णकी दक्षिणा दे ॥ ३३ ॥ धनके अनुसार ग्यारह पछ सुवर्णदे और अन्य ब्राह्मणोंकोभी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणादे ॥ ३४ ॥ पीठे वरुण देवतावाले मंत्रोंसे खीसहित पञ्चमानको स्नानकरावै, और आचार्यको वस्त्र तथा जामूपपदे ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषं पुष्टीं निर्दिशभोपजायते ॥ स च पापविशुद्धपर्यं प्राजापत्यशतं श्येत् ॥ ३६ ॥ प्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा गृणुयादथ भारतम् ॥

गोत्रकी हत्याकरनेवाला पुरुष कुष्ठी और वंशसेहीन होताहै वह अपने पापसे मुक्तहोनेके लिये सौ प्राजापत्यकरै ॥ ३६ ॥ व्रतकी समाप्तिमें पृथ्वीका दानकर महाभारतको श्रवण करै,

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थात्रोपयेदश ॥ ३७ ॥

दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

स्त्रीकी हत्या करनेवाला अतिसार रोगवाला होताहै, वह दश पीपलके वृक्ष लगावै ॥ ३७ ॥ और सक्करकी गौका दानकरै, तथा सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावै,

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥ ३८ ॥ गोभूहिरण्यमिष्टान्न-

जलवस्त्रप्रदानतः ॥ घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ ३९ ॥ इत्यादिना

क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥

राजाका मारनेवाला क्षयरोगसे युक्त होताहै, उसका प्रायश्चित्त यहहै ॥ ३८ ॥ गौ, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतकी और तिलकी गौ इनका दान ॥ ३९ ॥ क्रमानुसार करै तौ वह मनुष्य क्षयरोगसे मुक्त होजाताहै.

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥ ४० ॥

प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥

वैश्यकी हत्याकरनेवाला मनुष्य रक्तअर्बुद (लहड) रोगसे युक्त होताहै ॥ ४० ॥ वह चार प्राजापत्य व्रतकर सतनजेका दानकरै,

दंडापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

प्राजापत्यं सकृच्चैवं दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥

शूद्रकी हत्याकरनेवाला मनुष्य दंडापतानक रोगवाला होताहै ॥ ४१ ॥ वह एक प्राजापत्यकर दक्षिणासहित गौका दानकरै,

कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥ ४२ ॥

तेन तत्पापशुद्धयर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥

शिल्पीकी हत्याकरनेवाला रूखा ( सूखा ) होताहै ॥ ४२ ॥ वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये सफेद बैलका दानकरै,

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥ ४३ ॥ प्रासादं कारयित्वा तु

गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥ गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥ ४४ ॥

कुलित्थशाकैः पूवैश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥

हाथीकी हत्याकरनेवाला मनुष्य सब कामोंमें अधूरा होताहै ॥ ४३ ॥ वह मनुष्य मंदिर बनवाकर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापितकरै, और मन्त्रोंका ज्ञाता उस मन्दिरमें गणेशजीका एक लक्ष मंत्र जपै ॥ ४४ ॥ कुलथीका शाक और फूलोंसे गणेशजीका हवनकरै,

उष्ट्रे षिनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥ ४५ ॥

स तत्पापविशुद्धयर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥

ऊंटकी हत्याकरनेवाला तोतला होताहै ॥ ४५ ॥ वह अपने पापसे छूटनेके लिये कपूरका फलदे,

अथे विनिहते धैव धक्कण्ड\* प्रजायते ॥ ४६ ॥

शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्पिघनुत्तये ॥

घोड़ेको मारनेवाला ठोके मुखका होवाहै ॥ ४६ ॥ वह अपने वस पापसे मुक्त होनेके लिये सौ पल ( चारसौ तोले ) चन्दनका दानकरै.

महिषीघातने धैव कृष्णगुल्म\* प्रजायते ॥ ४७ ॥ स्त्रे विनिहते धैव स्वररोमा प्रजायते ॥ निष्कत्रयस्य प्रकृतिं सप्रदद्याद्विरम्भयीम् ॥ ४८ ॥

भैंसकी हत्या करनेवाले मनुष्यको गुल्मरोग होवाहै ॥ ४७ ॥ स्त्री हत्या करनेवाले स्वररोमावाला होवाहै, वह वस पापसे मुक्त होनेके लिये तीन तोले सुवर्णकी प्रतिमाक दानकरै ॥ ४८ ॥

तरक्षी तिहते धैव जायते केकरेक्षण ॥

दद्याद्ब्रह्ममयीं धेनु स तत्पातकशातये ॥ ४९ ॥

कछुबीबकी हत्या करनेवाले मनुष्यके केकर नेत्र होतेहैं वह वस पापकी क्षतिके निमित्त ब्रह्ममयी गौका दानकरै ॥ ४९ ॥

शूकरे निहते धैव दन्तुरो जायते नरः ॥

स दद्यात्तु विशुद्धपर्षं घृतकुर्मं सदक्षिणम् ॥ ५० ॥

सूकरकी हत्या करनेवाला मनुष्य कंचे दाँतोंका होवाहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये दक्षिणासहित पीके पड़ेका दानकरै ॥ ५० ॥

इरिणे निहते स्त्रज\* शृगाले तु विपादक\* ॥

अश्वस्तेन प्रदातव्य\* सीवर्णपलनिर्मित्तः ॥ ५१ ॥

घृगकी हत्या करनेवाला श्मशान होवाहै, गीदड़की हत्या करनेवाला एक पैरवाला होवाहै, वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये सुवर्णसे बने घोड़ेका दानकरै ॥ ५१ ॥

अजाभिघातने धैव अघिकांगः प्रजायते ॥

अजा तेन प्रदातव्या विश्वित्रवस्त्रसयुता ॥ ५२ ॥

बकरीकी हत्या करनेवाले मनुष्यके अधिक अंग होतेहैं, वह विश्वित्र वस्त्रोंसहित बकरीका दान करै ॥ ५२ ॥

उरधे निहते धैव पांडुरोगः प्रजायते ॥

कस्तूरिकापकं दद्याद्वाङ्गणाय विशुद्धये ॥ ५३ ॥

बक्रेका मारनेवाला पांडुरोगी होवाहै, वह अपनी मुद्रिके लिये पत्रमर कस्तूरी का दान करै ॥ ५३ ॥

मार्जारि निहते धैव पीतपाणि प्रजायते ॥

पारावर्तं ससीवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥

बिलबकी हत्या करनेवाला पीले दाँतोंका होवाहै, वह एक तोले सुवर्णके कपूरका दान करै ॥ ५४ ॥

शुकसारिकयोर्घाते नरः स्खलितवाग्भवेत् ॥

सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात्स विप्राय सदक्षिणम् ॥ ५५ ॥

तोते और मैनाकी हत्या करनेवाला मनुष्य तोतला होताहै, वह दक्षिणाके साथ शास्त्रकी उत्तम पुस्तक ब्राह्मणको दानकरै ॥ ५५ ॥

वकघाती दीर्घनासो दद्याद्ग्रां धत्रलप्रभाम् ॥

काकघाती कर्णहीनो दद्याद्गामसितप्रभाम् ॥ ५६ ॥

बगलेका मारनेवाला मनुष्य बडोनाकका होताहै, वह सफेद गौका दान करै, और काककी हत्या करनेवाला कानोंसे हीन होताहै, वह काली गौके दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५६ ॥

हिंसायां निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता ॥

तदर्धाद्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥ ५७ ॥

इति शतातपीये कर्मविपाके हिंसाप्रायश्चित्तविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह हिंसाओंमें पूर्वोक्त प्रायश्चित्त ब्राह्मणोका कहा इससे आधा प्रायश्चित्त क्षत्रियोंका और चौथाई वैश्यका है, और इससे आठवा भाग शूद्रको क्रमसे करनेके लिये कहाहै ॥ ५७ ॥

इति शतातपस्मृतौ भाषाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

सुरापः श्यावदन्तः स्यात्प्राजापत्यन्तरं तथा ॥ शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात्पा-  
पविशुद्धये ॥ १ ॥ जपित्वा तु महारुद्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ ततोऽभिषेकः

कर्तव्यो मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ २ ॥ मद्यपोरक्तपित्ती स्यात्स दद्यात्सर्पिषो वटम् ॥

मधुनोऽर्धघटं चैव सहिरण्यं विशुद्धये ॥ ३ ॥

मदिरा पीनेवाले मनुष्यके दात काले होतेहैं, वह अपने इस पापसे मुक्त होनेके लिये प्राजापत्यव्रत करनेके उपरान्त शक्करकी सात तुलाओंका दान करै ॥ १ ॥ पीले महारुद्रका जपकर तिलोसे दशांश हवन करै, फिर वरुणदेवतावाले मन्त्रोंसे अभिषेक करै ॥ २ ॥ मदिरा पीनेवाले मनुष्यको रक्तपित्त रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये घीसे मराहुआ बढा मीठे वा सहतका दे ॥ ३ ॥

अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः ॥

यथावत्तेन शुद्धचर्थमुपोष्यं भीष्मपंचकम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण करताहै उसके उदरमें कीड़े होतेहैं, वह मनुष्य भीष्मपंचक शास्त्रकी रीतिसे उपवास करै ॥ ४ ॥

उदक्यावीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ॥

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ॥ ५ ॥

रजस्वलाके देखे हुए पदार्थको खानेवाला मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह मनुष्य गोमूत्र और जौको खाकर तीन रात्रिमें शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्य सस्पृष्ट जायते कृमिलोदरं ॥

त्रिरात्र समुपोष्याय स तत्पापात्ममुच्यते ॥ ६ ॥

अयोग्य मनुष्यके स्पर्श क्रियेद्वय पदार्थको खाकर मनुष्य कृमिलोदर होता है, वह तीनरा  
प्रतक उपवास करके उस पापसे मुक्त होता है ॥ ६ ॥

परान्नविभ्रकरणादजीर्णमभिजायते ॥ लक्षहोम स कुर्वीत प्रायश्चित्त यथाविधि  
॥ ७ ॥ मन्दोदरामिर्भवति सति द्रव्ये कदम्बदं ॥ प्राजापत्यत्रय कुर्यान्नोजयेच्च  
शत द्विजान् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य दूसरेके भ्रम में विभ्र करता है उसे अजीर्ण रोग होता है, वह मनुष्य विविध  
व एकछात्र गायत्रीके लपसे हवनकर प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ जो मनुष्य घन होनेपर न  
कुत्सित भ्रमको देता है, वह मदाभिरोगसे पीड़ित होता है, वह अपने पापसे मुक्त हानकेद्वि  
धीन प्राजापत्य श्रवण और फिर सौ ब्राह्मणोंको विभामे ॥ ८ ॥

विषद स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीं ॥

जो मनुष्य विष देता है उसे छर्दिका रोग होता है, वह दूध देनेवाली दश गायोंका  
दान करे,

मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदान समाचरेत् ॥ ९ ॥

मार्गको नष्टकरनेवाला पैरोंका रोगी हाता है उसकी सुखि घोड़ेके दान करनेसे होती है ॥ ९ ॥

पिशुनो नरकस्पति जायते श्वासकासघान् ॥

पूत तेन प्रदातव्य सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥

पुगली करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके भवमें स्वांस और कांशारोगसे मुक्त होता है,  
वह सहस्र टकेमर धाँके दानकरनेसे सुख होता है ॥ १० ॥

धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्धये ॥

ब्रह्मकूर्चमयीं धेनु दद्यात्प्राञ्च सदक्षिणाः ॥ ११ ॥

धूर्त मनुष्यको मिरगीका रोग होता है वह उस पापसे सुख होनेके क्रिये ब्रह्मकूर्चमयी  
गाँको दे और पीछे दक्षिणा दे ॥ ११ ॥

शूली परोपतापेन जायत तत्प्रमोचने ॥

सोऽश्वदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरं ॥ १२ ॥

जो मनुष्य दूसरेको दुःख देता है, वह शूल रोगसे मुक्त होता है, वह भद्रदानकरनेसे पापसे  
पूत जाता है और पीछे रुद्रका जप करे ॥ १२ ॥

दाषामिदायकभ्यै रक्तातीसारया भवेत् ॥

तेनोदपान कर्तव्यं रोपणीयस्तथा वटं ॥ १३ ॥

द्वयमें अग्नि सगामबाँकेको रक्ततीसार रोग होता है वह मनुष्य जड़को पिजने और  
वटके घुसके लगानेसे सुख होता है ॥ १३ ॥

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः ॥ गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥ मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥ प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिर वा जल में मलमूत्र करताहै उसके पापका रूप दारुण रोग गुदामे होताहै ॥ १४ ॥ गुदाके रोगवाला मनुष्य एकमहीनेतक देवताका पूजन करै, और दो गौ दानकर एक प्राजापत्य व्रतसे उसकी शांति होतीहै ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥ तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १६ ॥ एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः ॥ सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य गर्भको गिराताहै उसके यकृत, तिल्ली, जलोदर आदि रोग होतेहै, उसके पापों की शांतिके निमित्त यह प्रायश्चित्त कहाहै कि ॥ १६ ॥ विधिसहित सुवर्ण, चाँदी, ताँवा इनके तीनपलसहित जलधेनुको दे ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ॥ संवत्सरत्रयं सिंचेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥ १८ ॥ उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराजं सुपूजितम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य प्रतिमाको भंगकरताहै वह प्रतिष्ठासे हीन होता है, वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये तीनवर्षतक प्रतिदिन पीपलको सींचता रहै ॥ १८ ॥ फिर अपने गृह्योक्तविधिसे पीपलका विवाह करै इसके पीछे भलीभातिसे पूजाकर गणेशजीकी स्थापनाकरै ॥ १९ ॥

दुष्टवादी खंडितः स्यात्स वै दद्याद्विजातये ॥

रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २० ॥

दुष्टवचनको कहनेवाला मनुष्य अंगहीन होताहै, वह मनुष्य दो पल चाँदी और दुग्धके दो घटोंको दानकरै ॥ २० ॥

खल्लीटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम् ॥

दूसरेकी निन्दा करनेवाला गजा होशहै, वह सुवर्ण सहित गौका दान करै,

परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २१ ॥

दूसरेकी हँसी करनेवाला काना होताहै, वह मोती और गौका दान करनेसे दोषहीन होजाता है ॥ २१ ॥

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान् ॥

निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्तिनाम् ॥ २२ ॥

इति शातातर्पाये कर्मविपाके प्रकीर्णप्रायश्चित्तं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सभाके धीचर्म पक्षपात करनेवाले मनुष्यको पक्षाघात होताहै वह मनुष्य तीन तोले सोना सत्यवादियोंको दे ॥ २२ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



भुक्त्वा चास्पृश्य संस्पृष्ट जायते कृमिलोदरं ॥

त्रिरात्र समुपोष्याय स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

अयोग्य मनुष्यके स्पर्श किंभेदुप पदार्थको स्पर्श मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह तीनर  
व्रतक उपवास करके उस पापसे मुक्त होताहै ॥ ६ ॥

पराश्रविभ्रकरणादजीणमभिजायते ॥ लक्षहोम स कुर्वीत प्रायश्चित्त यथाविधि  
॥ ७ ॥ मन्दोदरामिर्भवति सति द्रुम्ये कदम्बद् ॥ प्राजापत्यत्रय कुर्याद्भोजयेच्च  
शत द्विजान् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य वृषभके अन्न में विभ्र करताहै उसे अजीर्ण रोग होताहै, वह मनुष्य विभिन्नहि  
त एकछात्र गायत्रीके अणसे इवनकर प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ जो मनुष्य घत होनेपर भी  
कुसिद्ध अन्नको देताहै, वह महाभिरोगसे पीडित होताहै, वह अपने पापसे मुक्त हानकेछिये  
धीन प्राजापत्य व्रतकरे और फिर सौ ब्राह्मणोंको जिमाके ॥ ८ ॥

विषट् स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दक्ष पयस्विनीः ॥

जो मनुष्य विष देताहै उसे छर्दिका रोग होता है, वह दूध देनेवाली दक्ष गौओंका  
दान करे,

मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥

मार्गको नष्टकरनेवाला पैरोंका रोगी होताहै उसकी शुद्धि घोड़ेके दान करनेसे होतीहै ॥ ९ ॥

पिशुनो नरकस्यति जायते श्वासकासवान् ॥

घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥

पुगळी करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके अन्तमें श्वास और श्वासरोगसे मुक्त होताहै,  
वह सहस्र टकेभर घृते दानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

भूर्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्ध्ये ॥

ब्रह्मकूर्चमयीं धेनुं दद्याद्ब्राह्म सदक्षिणाः ॥ ११ ॥

भूत मनुष्यको मिरगीका रोग होताहै वह उस पापसे शुद्ध होनेके छिये ब्रह्मकूर्चमयी  
गौको दे और पीछे पक्षिणा दे ॥ ११ ॥

शूली परोपतापेन जायत तत्प्रमोचने ॥

सोऽश्वदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं अपेन्नरं ॥ १२ ॥

जो मनुष्य दूसरेको दुःख देताहै, वह रुद्र रोगसे मुक्त होताहै; वह अन्नदानकरनेसे पापसे  
मुक्तजाताहै और पीछे रुद्रका अन्न करे ॥ १२ ॥

दायामिदायकश्चैव रक्तघातीसारवान्भवेत् ॥

तेनोदपानं फलस्य रोपणीयस्तथा घटं ॥ १३ ॥

इनमें अग्नि सगामेवालेको रक्तघातीसार रोग होताहै, वह मनुष्य जलको पिछाई और  
बदक घृष्टके लगावेसु शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः ॥ गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥ मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥ प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिर वा जल मे मलमूत्र करताहै उसके पापका रूप दारुण रोग गुदासे होताहै ॥ १४ ॥ गुदाके रोगवाला मनुष्य एकमहीनेतक देवताका पूजन करे, और दो गौ दानकर एक प्राजापत्य व्रतसे उसकी शांति होतीहै ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥ तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १६ ॥ एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विवानतः ॥ सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य गर्भको गिराताहै उसके यकृत, प्लीहा, जलोदर आदि रोग होतेहै, उसके पापों की शांतिके निमित्त यह प्रायश्चित्त कहाहै कि ॥ १६ ॥ विधिसहित सुवर्ण, चाँदी, ताँवा इनके तीनपलसहित जलधेनुको दे ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ॥ संवत्सरत्रयं सिचेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥ १८ ॥ उद्गाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृहोक्तविधानतः ॥ तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराजं सुपूजितम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य प्रतिमाको भंगकरताहै वह प्रतिष्ठासे हीन होता है, वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये तीनवर्षतक प्रतिदिन पीपलको सींचता रहै ॥ १८ ॥ फिर अपने गृहोक्तविधिसे पीपलका विवाह करै इसके पीछे भलीभातिसे पूजाकर गणेशजीकी स्थापनाकरै ॥ १९ ॥

दुष्टवादी खंडितः स्यात्स वै दद्याद्विजातये ॥

रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २० ॥

दुष्टवचनको कहनेवाला मनुष्य अंगहीन होताहै, वह मनुष्य दो पल चाँदी और दुग्धके दो घटोंको दानकरै ॥ २० ॥

खल्लीटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम् ॥

दूसरेकी निन्दा करनेवाला गजा होताहै, वह सुवर्ण सहित गौका दान करै,

परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २१ ॥

दूसरेकी हँसी करनेवाला फाना होताहै, वह मोती और गौका दान करनेसे दोषहीन होजाता है ॥ २१ ॥

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान् ॥

निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्तिनाम् ॥ २२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके प्रकीर्णप्रायश्चित्तं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सभाके बीचमें पक्षपात करनेवाले मनुष्यको पक्षाघात होताहै वह मनुष्य तीन तोले सोना सत्यवादियोंको दे ॥ २२ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्याय ४

कुलघ्नो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहत् ॥

स तु स्वर्णशत दद्यात्कृत्वा चांद्रायणप्रयम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके उपरान्त निर्बंध (हीनबंध) होता है, यह तीन पांश्रायणप्रयत्न कर सौ तोले सुवर्णका दान करे ॥ १ ॥

औदुषरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते ॥

प्राजापत्य स कृत्वात्र ताम्र पलशत दिशेत् ॥ २ ॥

जो मनुष्य चिबिकी चोरी करता है वह नरक भोगनेके अन्तमें उदुषर कुष्ठरोगसे मुच्छो-  
ता है, इस पापका प्रायश्चित्त यह है कि वह प्राजापत्यप्रयत्न करके सौ पल ताम्र दान करे ॥ २ ॥

कांस्यहारी च भवति पुढरीकसमन्वित\* ॥ कांस्य पलशत दद्यादलकृत्य  
द्विजातये ॥ ३ ॥

काँसीकी चोरी करनेवाला पुढरीक रोगप्राप्त होता है; वह ब्राह्मणोंको भूपणसे क्षोभाय  
मानकर सौ पल काँसीका दान करे ॥ ३ ॥

रीतिहृत्पिगलाक्ष स्यादुपोष्य हरिषासरम् ॥ रीति पलशत दद्यादलकृत्य द्विज  
श्रमम् ॥ ४ ॥

पीतलकी चोरी करनेवाले मनुष्यके पीछे नेत्र हाते हैं, उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह  
एकादशी विधिमें उपवासकर एकसौ पल पीतल उत्तम ब्राह्मणोंको अर्पणकर दे ॥ ४ ॥

मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिंगमूर्द्धन ॥

मुक्ताफलशत दद्यादुपोष्य स विधानत\* ॥ ५ ॥

मोक्षिकी चोरी करनेवाले मनुष्यके केश पीछे होते हैं वह विधिपूर्वक उपवासकर सौ  
मोक्षी दान करे ॥ ५ ॥

प्रपुहारी च पुरुषो जायते भेन्नरोगवान् ॥

उपोष्य दियस सोऽपि दद्यात्पलशत प्रपु ॥ ६ ॥

प्रपुकी चोरी करनेवाले मनुष्यको भेन्नरोग होता है, वह मनुष्य एकदिन उपवासकर सौ  
पल सीसेका दान करे ॥ ६ ॥

शीसहारी च पुरुषो जायते शीपरोगवान् ॥

उपोष्य दियस दद्यादुपुतधेनु विधानत ॥ ७ ॥

शीसेकी चोरी करनेवाले मनुष्यके शिरसे रोगहोता है, उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह  
विधिसहित एकदिन उपवासकर पीछे गौका दान करे ॥ ७ ॥

दुग्धहारी च पुरुषो जायते घट्टमूर्द्धन\* ॥

स दद्यादुदुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ८ ॥

दुग्धकी चोरी करनेवाले मनुष्यका घट्टमूर्द्धन रोग होता है; वह ब्राह्मणको दुग्धधेनु  
दान करे ॥ ८ ॥

दधिचौर्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः ॥

दधियेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥ ९ ॥

दहीका चोर मदवाला होताहै, वह अपनी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको दही और गौक दान करै ॥ ९ ॥

मधुचोरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥

स दद्यान्मधुधेतुं च समुपोष्य द्विजातये ॥ १० ॥

जो मनुष्य सहतकी चोरी करताहै, वह नेत्रोका रोगी होताहै, वह व्रत उपवासकर ब्राह्मणको सहत और गौदान करै ॥ १० ॥

इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान् ॥

गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्वोषशांतये ॥ ११ ॥

जो मनुष्य ईखके रसको चुराता है उसको गुल्मरोग होताहै; वह अपने उस दोषकी शातिके निमित्त गुडकी गौका दान करै ॥ ११ ॥

लोहहारी च पुरुषः कर्बुरांगः प्रजायते ॥

लोहं पलशतं दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य लोहेको चुराताहै वह कवरा होताहै, वह अपनी शुद्धिके निमित्त एकदिन उपवास कर सौ टके भर लोहेका दानकरै ॥ १२ ॥

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत्कंडूदिपीडितः ॥

उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥

जो तैलको चुराता है उसको खुजली आदिका रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये एकदिन उपवासकर दो घडे तैल ब्राह्मणोंको दे ॥ १३ ॥

आमान्नहरणाञ्चैव दन्तहीनः प्रजायते ॥

स दद्यादश्विनौ हेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥

जो मनुष्य कषे अन्नको चुराताहै वह दरिद्री होताहै, वह दो तोले सुवर्णकी मूर्ति अश्विनी-कुमारकी बनवाकर ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

पक्कान्नहरणाञ्चैव जिह्वारोगः प्रजायते ॥

गायत्र्याः स जपेच्छतं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥

पक्कान्नकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी जिह्वामें रोग होताहै, वह मनुष्य एक लक्ष गायत्री का जपकरै और तिलोंसे दशांश हवन करै ॥ १५ ॥

फलहारी च पुरुषो जायते व्रणितांगुलिः ॥

नानाफलानामयुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥ १६ ॥

फलकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी अंगुलियोंमें घाव होतेहैं, वह मनुष्य भाति २ के फल ब्राह्मणोंको दान करै ॥ १६ ॥

तांबूलहरणाच्चैव श्वेतीष्ट\* सप्रजायते ॥

स दक्षिणां प्रदद्याच्च विदुमस्य द्वय धरम् ॥ १७ ॥

पानीकी चोरी करनेवाले मनुष्यके होठ सफ़द होवेई, वह उत्तम दो मूंगोकी दक्षिणा दे ॥ १७ ॥

शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचन ॥

घ्राज्ञणाय प्रदद्यादि महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥

शाककी चोरी करनेवाले मनुष्यके नीले नेत्र होतेई वह दो महानील मणि आद्यजको द१८

कन्दमूलस्य हरणाद्भ्रस्वपाणि प्रजायते ॥

देवतायतनं कार्य्यसुधान तेन शक्ति\* ॥ १९ ॥

जो मनुष्य कन्दमूलकी चोरी करताहै उसके हाथ छाटे छोट होते ई, वह मनुष्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार देवताका मंदिर और बगीचा बनवावे ॥ १९ ॥

सौगन्धिकस्य हरणाद्दुर्गन्धाङ्ग\* प्रजायते ॥

स लक्ष्मणेन पद्मानां जुहुयात्प्रातवेदसि ॥ २० ॥

जो मनुष्य सुगंधकी चोरी करताहै उसके अंगमें दुर्गंध जाती रहतीहै, वह मनुष्य अग्निमें एक छत्र कमंडोका हवन करे ॥ २० ॥

वारुहारी च पुरुष स्वित्तपाणि\* प्रजायते ॥

स दद्याद्विदुषे शुद्धी काश्मीरजपलद्रयम् ॥ २१ ॥

काठकी चोरिकरनेवाले मनुष्यके हाथमें पसना बहुत होताहै वह मनुष्य अपनी छदिके छिपे विद्याको दो पत्र हीरेका दानकरे ॥ २१ ॥

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ॥

न्यायेतिहास दद्यात्स घ्राज्ञणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥

शास्त्रकी पुस्तककी चोरी करनेवाला मनुष्य मूंग हाताहै, वह आद्यजको दक्षिणासहित न्याय और इतिहासके मन्त्रोका दानकरे ॥ २२ ॥

धस्त्रहारी भेषत्कुष्ठी सप्रदद्यात्प्रजापतिम् ॥

हेमनिष्कमित धैय वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥

बखोकी चोरी करनेवाला मनुष्य कुष्ठरोगी होताहै वह एक तोले सुवर्णकी मूर्ति और दो बर माद्यजका द ॥ २३ ॥

ऊणाहारी श्लोमश\* स्यात्स दद्यात्प्रपलान्वितम् ॥

स्यननिष्कमित हेम धदि दद्याद्विजातये ॥ २४ ॥

ऊनकी चोरी करनेवाला मनुष्यके शरीरपर जगद २ रोग होतेई, यह तोलभर सुवर्णकी मूर्ति और कम्यल माद्यजकोरे ॥ २४ ॥

पट्टमूत्रस्य हरणाप्रिलोमा जायते नर\* ॥

तेन धेनु प्रदातव्या विगुद्वर्षं द्विजमने ॥ २५ ॥

जो मनुष्य रेशमकी चोरी करताहै उसके मुखआदिपर रोम नहींहोते वह अपने दोषकी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको गौदान करै ॥ २५ ॥

औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ॥

सूर्यायार्घ्यः प्रदातव्यो मासं देयं च कांचनम् ॥ २६ ॥

जो मनुष्य औषधको चोरी करताहै उसके आधा शीशीका रोग होताहै, वह मनुष्य सूर्य भगवान्को अर्घ और ब्राह्मणको एकमासा सुवर्ण दानकरै ॥ २६ ॥

रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्यारक्तवातवान् ॥

सवस्त्रां महिर्षा दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥

जो मनुष्य लाल वस्त्र और मूगेकी चोरी करताहै उसे रक्तवातका रोग होताहै, वह मनुष्य वस्त्र और मणिके साथ भैंसका दानकरै ॥ २७ ॥

विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ॥ तेन कार्यं विशुद्धयर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥ मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ॥ दशांशहोमः कर्तव्यो पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥

ब्राह्मणके रत्नोकी चोरी करनेवाला मनुष्य संतानसे हीन होताहै, वह अपनी शुद्धिके निमित्त महारुद्रका जपकरै ॥ २८ ॥ जिसके पुत्र मर २ जातेहैं उसको जो प्रायश्चित्त करना कहाहै उस सभी प्रायश्चित्तको करै, और ढाककी लकड़ियोंमें दशांश हवन करै ॥ २९ ॥

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ॥ ज्वरो महाज्वरश्चैवं रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ३० ॥ ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ॥ अतिरौद्रं जपेद्दौद्रे

[वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

देवताकी मूर्तिकी चोरी करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारका ज्वर होताहै, ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर, वैष्णवज्वर, ॥ ३० ॥ यदि जो ज्वर होय तौ रोगीके कानमें रौद्र जपकरै, यदि महाज्वर होय तौ महारुद्रका जपकरै यदि रौद्रज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै और वैष्णव ज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ॥

तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तितः ॥ ३२ ॥

इति शातातपीथे कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारके चोरी करनेवाले मनुष्यको ग्रहणी रोग होताहै वह मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार अन्न जल वस्त्र सुवर्ण इनका दानकरै ॥ ३२ ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकाया चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पंचमोऽध्यायः ५.

मातृगामी भवेद्यस्तु लिंगं तस्य विनश्यति ॥ चांडालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुंभमुत्तरतो न्यसेत् ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्व-

रम् ॥ सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मित नरवाहनम् ॥ ३ ॥ यजेत्युरुपसूक्तेन धनर्द  
विश्वरूपिणम् ॥ अथर्ववेदविद्विभो ह्याथर्वण समाचरेत् ॥ ४ ॥ सुवर्णपुष्टिकां  
कृत्वा निष्कविंशतिसख्यया ॥ दद्यादिमाय सपञ्च्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन्  
॥ ५ ॥ निधीनामधिपो देवः शक्रस्य मियस्सखा ॥ सौम्याशाधिपतिः भीमा-  
न्मम पार्ष्ण्यपोऽस्तु ॥ ६ ॥ इम मंत्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥  
दद्याद्देव हीनकोशे लिङ्गनाशे विशुद्धये ॥ ७ ॥

माघाके साय गमन करनेवाले मनुष्यका छिंग नष्ट होताहै, चाँदाबकी स्त्रीके साय  
गमन करनेवाले मनुष्यके भंडकास नहीं होते ॥ १ ॥ वह अपने प्रायश्चित्तके निमित्त छत्त  
रदिसामें काळे वस्त्रसे ढका और काळे फूँछोंसे शोभायमान पडेको स्थापित करे ॥ २ ॥  
उस पडेके ऊपर कसीके पात्रमें छः गोले सुवर्णसे बनाहुई नरवाहन कुबेरकी मूर्ति स्थापित  
करे ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त पुरुषसूक्ते सप्त विश्वरूपी कुबेरका पूजनकरे, और अथर्ववेदके  
जाननेवाले ब्राह्मणस अथर्ववेदका पाठ करावे ॥ ४ ॥ और "मैं पाव रहित हूँ" इस भाँति कहना  
हुआ बीसगोले सुवर्णकी प्रतिमाका पूजन करके ब्राह्मणको दे ॥ ५ ॥ "हे निधिवॉके स्वामी और  
महादेवके प्यारे मित्र, छत्तरदिसाके स्वामी और कस्मीबान् कुबेरदेव मेरे पापको दूरकरो ॥ ६ ॥  
इस मंत्रका उच्चारणकर विधिसहित कुबेरकी मूर्ति छिंगहीन और नष्टकोसवाछ मनुष्य  
आचार्यको दे ॥ ७ ॥

गुरुनायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रं मजायते ॥ तेनापि निष्कृतिः कार्या सास्त्रद  
ष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥ स्थापयेत्कुभमेक तु पश्चिमायां शुभे दिने ॥ नीलवस्त्रसमा  
च्छन्नं नीलमान्यविभूषितम् ॥ ९ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देव साम्रपात्रे प्रथेतसम् ॥  
सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मित यादसांपातिम् ॥ १० ॥ यजेत्युरुपसूक्तेन वरुणं  
विश्वरूपिणम् ॥ सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेधु समाचरेत् ॥ ११ ॥ सुवर्णपु  
ष्टिकां कृत्वा निष्कविंशतिसख्यया ॥ दद्यादिमाय सपञ्च्य निष्पापोऽहमिति  
ब्रुवन् ॥ १२ ॥ यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावन ॥ ससाराण्यो कण  
धारो वरुण पावनोऽस्तु मे ॥ १३ ॥ इम मंत्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥  
दद्याद्देवमलकृत्य मूत्रकृच्छ्रमशान्तये ॥ १४ ॥

जो मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साय रमण करताहै उसे मूत्रकृच्छ्र रोग होताहै, वह मनुष्यभी  
शास्त्रकी रीति से प्रायश्चित्त करे ॥ ८ ॥ वह पुरुष पश्चिम दिसामें मीले मखोंसे ढके और  
नीले फूँछोंसे शोभायमान एक पडेको शुभ मुहूर्तमें स्थापनकरे ॥ ९ ॥ फिर उस पडेके ऊपर  
छोपक पात्रमें छः गोले सुवर्णसे बन और जलके जीवोंके स्वामी वरुण देवताको स्थापित करे  
॥ १० ॥ और विश्वके रूपी वरुणका पुरुषसूक्ते पूजन करे उस पडेके मनीष सामवेदके  
जाननेवाला ब्राह्मण सामवेदका पाठ करे ॥ ११ ॥ और बीसगोले सुवर्णकी मूर्ति बनाकर  
ब्राह्मणका पूजनकर मैं पाव रहित हूँ" इस भाँति कहना दे ॥ १२ ॥ उसके जीवोंके  
स्वामी सबका पवित्र करनेवाले और ससारकी समुद्रमें कर्मधार जा बहनेवाले वरुणको  
पवित्र करे ॥ १३ ॥ इस मंत्रको पाठकर विधिसहित वरुण देवताकी मूर्तिसे शोभायमानकर  
मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके निमित्त ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ॥ भग्नीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥ १५ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् ॥ पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥ तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ॥ सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् ॥ यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥ सुवर्णपु-  
त्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १९ ॥ देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ॥ शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु ॥ २० ॥ इयं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥ दद्याद्देवं सहस्राक्षं सपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥

अपनी कन्याके साथ गमनकरनेवाला मनुष्य रक्तकुष्ठका रोगी होता है, वहिनके साथ गमनकरनेवाले मनुष्यको पीतकुष्ठ होताहै ॥ १५ ॥ वह मनुष्य उसपापसे छूटनेके निमित्त पीलेवस्त्रसे ढका और पीले फूलोंसे शोभायमान घडेको पूर्वदिशामें स्थापित करै ॥ १६ ॥ उसके ऊपर सुवर्णके पात्रमें छै. तोले सुवर्णसे बनी और हाथमें वज्रसहित देवताओके ईश्वर इन्द्र-देवताकी मूर्तिको स्थापितकरै ॥ १७ ॥ और पुरुषसूक्तसे विश्वरूपी देवराज इन्द्रका पूजन करै, फिर उस घडेके निकट यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद इनका पाठकरै ॥ १८ ॥ पीछे दस सुवर्णकी प्रतिमा बनवायकर ब्राह्मणोंका पूजन करै; "मैं पापसे हीनहूँ" इसभाति कहताहुआ दे ॥ १९ ॥ "देवताओंका स्वामी वज्रसहित जिसका स्थान विष्णुहै जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये है, हजार जिसके नेत्र हैं वह देवराज इन्द्र मेरे सम्पूर्ण पापोंको दूर करे" ॥ २० ॥ इस मंत्रको पढकर विधिपूर्वक आचार्यको इन्द्रकी मूर्ति सब पापोंकी निवृत्तिके लियेदे ॥ २१ ॥

आतृभार्याभिगमनाद्गलकुष्ठं प्रजायते ॥ स्ववधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते ॥ २२ ॥ तेन कार्यं विशुद्धचर्थं प्रागुक्तस्याद्भिमेव हि ॥ दशांशहोमः सर्वत्र वृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य भाईकी स्त्रीके साथ गमन करताहै उसके गलित कुष्ठ होता है और पुत्र वधूके साथ गमन करनेसे काला कुष्ठ होताहै ॥ २२ ॥ वह मनुष्य अपने पापोंसे छूटनेके निमित्त पहले कहेहुएमेसे आधा प्रायश्चित्त करै, और पूर्वोक्त सब प्रायश्चित्तोंमें धीसे भीगेहुए तिलोंसे दशांश हवनकरै ॥ २३ ॥

यद्गम्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमंडलम् ॥ कृत्वा लोहमयी धेनुं पिलषष्टिप्रमा-  
णतः ॥ २४ ॥ कार्पासभांडसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ॥ दद्याद्विप्राय  
विधिवदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥ सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥

जो मनुष्य गमनकरने अयोग्य चाडाली स्त्रीके साथ गमनकरता है उस मनुष्यके शरीरमें चकत्ते होते हैं वह साठ तिलके प्रमाणसे लोहेकी गौ बनवाकर ॥ २४ ॥ और कपास पात्र काँचीकी दोहनी और बछड़ेवाली उस गौको विधिसहित ब्राह्मणको दे और फिर यह मंत्र पढै; गौही विष्णु भगवान्की मूर्ति है, मातारूप है वह गौ मेरे पापका नाश करै ॥ २५ ॥



तपस्विनीसगमने जायते चाश्मरीगद् ॥ स तु पापविशुद्धयर्थं प्रायश्चित्तं  
समाचरेत् ॥ २६ ॥ दद्यादिमाय विदुषे मधुधेनु ययोदिताम् ॥ तिलद्रोणशत  
षैष हिरण्येन समन्वितम् ॥ २७ ॥

तपस्विनीके साथ गमनकरनेसे मनुष्यको पयरीका रोग होताहै, वह मनुष्य उस पापकी  
शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥ किसी विद्वान् माछपको शास्त्रकी विधिसे अनुसार  
गौदान करे, और सुवर्णसहित सौ द्रोण तिल के ॥ २७ ॥

पितृष्वस्रभिगमनाइक्षिणांशम्रणी भवेत् ॥

तेनापि निष्कृति कार्या अजादानेन शक्ति ॥ २८ ॥

पिताकी बहिनेके साथ गमनकरनेसे मनुष्यके दाहिने ऊधेपर घाव होतेहैं, बफरीके दानको  
करके वहभी प्रायश्चित्त करै ॥ २८ ॥

मातृलान्यां तु गमने पृष्ठकुब्जं प्रजायते ॥

कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २९ ॥

माँके साथ गमन करनेबाद मनुष्य कुनडा होताहै, वह काळी मृगछाछाको बेकर प्राय  
श्चित्त करै ॥ २९ ॥

मातृष्वस्रभिगमने वामांगे म्रणयान्भवेत् ॥

तेनापि निष्कृति कार्या सम्यग्दासप्रदानतः ॥ ३० ॥

माँके साथ गमन करनेवाले मनुष्यके भंगधे पाद होतेहैं, वह मनुष्य मछी प्रकार दासका  
दानकर प्रायश्चित्त करै ॥ ३० ॥

मृतभायाभिगमने मृतभार्यं प्रजायते ॥

तत्पातकविशुद्धयर्थं द्विजमेक विवाहयेत् ॥ ३१ ॥

विधवा स्त्रीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यकी स्त्री मरवाणीहै, वह मनुष्य उस पापसे छूट  
नेके निमित्त एक माछपका विवाह करे ॥ ३१ ॥

सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरं ॥

तेनापि निष्कृति कार्या महिषीदानपन्नतः ॥ ३२ ॥

अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ गमन करनेसे मनुष्यको भगदर रोग होताहै, इसका पही प्राय  
श्चित्त है कि यत्नसहित भैंसका दानकरै ॥ ३२ ॥

तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेही जायते नरः ॥

मास रुद्रजपं कार्या दद्याच्छुद्धपा च फाचनम् ॥ ३३ ॥

जा मनुष्य तपस्विनीके साथ गमन करताहै उसे प्रमद रोग होताहै, वह अपनी शक्तिसे  
अनुसार सुवर्णका दानकरे और एक महीनेतक रुद्रका जप करेताहै ॥ ३३ ॥

दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायते दुष्टरक्तदृष्टः ॥

स पातकविशुद्धयर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य दीक्षावाले मनुष्यकी स्त्रीके साथ गमन करताहै वह दुष्ट होताहै और उससे  
भेज दास होतेहैं, वह उस पापसे छूटनेके निमित्त दो प्राजापत्यमय करे ॥ ३४ ॥

स्वजातिजायागमने जायते हृदयवणी ॥

तत्पापस्य विशुद्धयर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३५ ॥

अपनी जातिकी स्त्रीके साथ जो मनुष्य गमन करताहै उस मनुष्यके हृदयमें घाव होता है, वह दो प्राजापत्यव्रत कर उस पापसे दूटजाताहै ॥ ३५ ॥

पशुयोनौ च गमने मूत्राघातः प्रजायते ॥

तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्धये ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य पशुकी योनिमें गमन करताहै उसे मूत्राघात रोग होताहै, वह अपनी शुद्धिके लिये दो तिलपूरित पात्रोंको दे ॥ ३६ ॥

अश्वयोनौ च गमनाद्बुद्धस्तंभः प्रजायते ॥

सहस्रकमलस्नानं मासं कुर्याच्छिवस्य च ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य घोड़ीकी योनिमें गमन करताहै उसे गुदाका स्तंभ होताहै, वह एक महीनेतक सहस्रकमलोंसे शिवजीको स्नानकरावै ॥ ३७ ॥

एते दोषा नराणां स्युर्नरकांते न संशयः ॥

स्त्रीणामपि भवंत्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ३८ ॥

इति श्रीशातातपीये कर्मविपाकेऽगम्यागमनप्रायश्चित्तं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह ऊपर कहेहुए दोष मनुष्योंको नरकके अंतमें होतेहैं इसमें किंचित्भी सदेह नहीं, और उन उन पुरुषोंकी संगतिसे उपरोक्त दोष स्त्रियोंको भी होनेहैं ॥ ३८, ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकाया पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

अश्वशूकरशृंग्यद्रिहुयादिशकटेन च ॥ भृग्वग्निदारुशस्त्राश्मविषोद्धंधनजैर्भृताः

॥ १ ॥ व्याघ्राहिगजभूपालचौरवैरिवृकाहताः ॥ काष्ठशल्यमृता ये च शौचसं-

स्कारवर्जिताः ॥ २ ॥ विषूचिकान्नकवलदवातीसारतो मृताः ॥ डाकिन्यादि

ग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्चये ॥ ३ ॥ अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ॥

पंचत्रिंशत्प्रकारैश्च नाम्बुवंति गति मृताः ॥ ४ ॥ पित्राद्याः पिंडभाजः स्युस्त्रयो

लेपभुजस्तथा ॥ ततो नांदीसुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यश्रुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥ द्वादशै-

ते पितृगणास्तर्पिताः सन्ततिप्रदाः ॥ गतिहीनाः सुतादीनां सन्ततिं नाशयन्ति

ते ॥ ६ ॥ दश व्याघ्रादिनिहता गर्भ विघ्नन्त्यमी क्रमात् ॥ द्वादशास्त्रादि-

निहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥ ७ ॥ विषादिनिहता भ्रान्ति दशसु द्वादश

स्वपि ॥ वर्षैकबालकं कुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥ व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः

कुमारीगमनेन च ॥ विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥ राज्ञा राज-

कुमारघ्नश्चैरेण पशुहिंसकः ॥ वैरिणा मित्रभेदी च बकवृत्तिवृकेणतु ॥ १० ॥

गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ॥ द्रोही संस्काररहितः शुना

निक्षेपहारक ॥ ११ ॥ नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकं ॥ कृमिमि-  
 कृत्तवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनं ॥ १२ ॥ शृगिणा शंकरद्रोही शकटेन च  
 सूचकः ॥ भृगुणा मेदिनीचीरो घडिना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥ वधेन दक्षि-  
 पाचीर शस्त्रेण भृतिनिन्दकं अश्मना द्विजनिन्दाकृद्द्विषेण कृमतिप्रदं ॥  
 ॥ १४ ॥ उद्धधनेन हिस्र स्यासेतुमेदी जह्लेन तु ॥ द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसा-  
 रेण लोहहृत् ॥ १५ ॥ डाकिन्याद्यैश्च त्रियते स दर्पकायकारकं ॥ अनप्याये-  
 प्यधीयानो त्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥ अस्पृश्यस्पर्शसगो च घान्तमा-  
 भित्य शास्त्रहृत् ॥ पतितो मदाविभेताऽनपत्या द्विजधस्त्रहृत् ॥ १७ ॥

यदि मनुष्य घोडा, सूकर, सींगवाळ पशु, पक्ष, गाय, शिख, अग्नि, काष्ठ, शस्त्र, पत्थर, विष, और फौंसी इत्यादिसे मृषक होजाय ॥ १॥ जो मनुष्य सिंह, हाथी, राजा, चोर, भैरी, व्याघ्र और फाठके आपातसे मरजाय, आ शीघ्र और संस्कारसे हीन हो ॥ २ ॥ हेमा, अमरा और अमरा मास घनकी अग्नि, अतीसार, झाकिनी आदिप्रह, विजलीका गिरना और बलाव इत्यादि इनसे जा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाय ॥ ३ ॥ छुनके अपोष्य, अपवित्र, पवित्र, पुत्रहीन, इन पूर्वोक्त पैंतीस प्रकारसे मरेहुए मनुष्योंकी गति नहीं होती ॥ ४ ॥ पितासे आदि सेकर तीन पिंडके भागी और उनसे पहले तीन सेपके भागी, और इनसे परसे तीन अनु सुत्र हातर्ह ॥ ५ ॥ एतिसो प्राप्त होकर वह बारह पिठरोंके गण सन्तानको देतेहैं, और जो गतिसे हीन हैं वह अपने पुत्रादिकी सम्पतिको नष्टकरतेहैं ॥ ६ ॥ सिंह इत्यादि इस प्रकारके आपातसे मृतक द्रुप पिठर गर्भका नष्ट करतेहैं, और अथ इत्यादिके आपातसे मृतक द्रुप बारह जन पाठकको नष्ट करतेहैं ॥ ७ ॥ विपानि द्वाय सुत्रको प्राप्तद्रुप इय या बारह पुत्र्य दस वर्षक बाळकका नष्ट करतेहैं, या मनुष्यको सन्तानहीन करवत हैं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य कुमारी कन्यामें गमन करताहै, वह सिद्धसे मारा जाताहै, जो मनुष्य किसीका विष देताहै, वह सर्वके आपातसे दण्ड होताहै; और राजाक पुत्रका मारनेवाला तथा रामाके साथ दुष्टता करनेवाला हाथीसे मरताहै ॥ ९ ॥ जा राजपुत्रको मारताहै वह राजर्षिसे मरताहै; पशुकी हिता करवाला चोरसे माय जाणहै; और मित्रोका भेद करनेवाला मनुष्य हाथीसे मारजाताहै; अतिभी बहुरितिहै बसई मृत्यु नुकसे होतीहै ॥ १० ॥ गुल्फी दयाकरनेवाला दयापर मरताहै; मातृपुत्रक मनुष्य दीपदहित होकर मरताहै; नृसेवा अपकार करवाला मनुष्य पादादि संस्कारसे हीन होकर मरताहै और परोहरका पुरानेवाला कुत्ते काटभसे मरताहै ॥ ११ ॥ अतीबाला मनुष्य बनेसे सुहरव मरताहै; और बसोका पुरानवाला कीहोम, और छदनकरनवाला भी कीहोसे मरता है ॥ १२ ॥ शिरकीक माय द्राद करनेवाला भीगवाले पशुभोगे मरताहै; चुगली करनवाला मनुष्य गाड़ी, पूर्वाका पार पही मित्राथ, और पशुमें दानि करनवाला अग्निसे मरताहै ॥ १३ ॥ दक्षिणाका पार बसो अग्निसे वीही निन्दा करनवाला दण्डसे मरताहै निरह पय रम भार कुत्रिका देनेवाला शिरसे मरताहै ॥ १४ ॥ दिगाकरनेवाला मनुष्य चंगीत मरताहै, पुराका ताहनेवाला अम राता० हाथीका पुरानेवाला मृषग भार खाइका पुरानेवाला अतिगारव मरताहै ॥ १५ ॥ अंदागे कार्यकरनवाला झाकिनी आदिसे

और अनध्यायमें पढनेवाला बिजलीसे मरताहै ॥ १६ ॥ अयोग्यका स्पर्श करनेवाला, और शास्त्रको चुरानेवाला यह दोनों वमनरोगसे मरतेहैं; मदिराका बेचनेवाला पतित होताहै, ब्राह्मणके बन्नोंका चोर सन्तानहीन होताहै ॥ १७ ॥

अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ कारयेन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रे-  
तरूपिणम् ॥ १८ ॥ चतुर्भुजं दंडहस्तं महिषासनसंस्थितम् ॥ पिष्टैः कृष्णतिलैः  
कुर्यात्पिंडं प्रस्थप्रमाणतः ॥ १९ ॥ मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुंडलसंयुतम् ॥  
अकालमूलं कलशं पंचपल्लवसंयुतम् ॥ २० ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधि-  
समन्वितम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २१ ॥ सप्तधान्यं तु  
सफलं तत्र तत् सफलं न्यसेत् ॥ कुंभोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २२ ॥  
कुर्यात्पुरुषसूक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् ॥ षडंगं च जपेद्दुद्रं कलशे तत्र वेदवित्  
॥ २३ ॥ यमसूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा ॥ गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः  
स्वात्मविशुद्धये ॥ २४ ॥ गृहशांतिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ अज्ञातना-  
मगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २५ ॥ प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिंडं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
इमं तिलमयं पिंडं मधुसर्पिःसमन्वितम् ॥ २६ ॥ इदामि तस्मै प्रेताय यः  
षोडां कुरुते मम ॥ सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २७ ॥  
द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे ॥ ततोऽभिषिचेदाचार्यो दम्पती कल-  
शोदकैः ॥ २८ ॥ शुचिर्वरायुधधरो मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ यजमानस्ततो दद्यादा-  
चार्याय सदक्षिणान् ॥ २९ ॥ ततो नारायणबलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् ॥  
एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३० ॥ विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनि-  
हतेष्वपि ॥ व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३१ ॥ सर्पदंशे नागव-  
लिर्देयः सर्वेषु कांचनम् ॥ चतुर्निष्कमितं हेम गजं दद्याद्गजैर्हते ॥ ३२ ॥  
राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्यमयम् ॥ चोरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते  
वृषम् ॥ ३३ ॥ वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्तिं च कांचनम् ॥ शय्यामृते  
प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३४ ॥ निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना सम-  
धिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३५ ॥ संस्कारहीने च  
मृते कुमारं च विवाहयेत् ॥ शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्नृजशक्तितः ॥ ३६ ॥  
शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥ कृमिभिश्च मृते दद्याद्ब्रह्मूमात्रं द्वि-  
जातये ॥ ३७ ॥ शृंगिणां च हते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन मृते  
दद्यादश्वं सोपस्कुरान्वितम् ॥ ३८ ॥ भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥  
अभिना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तितः ॥ ३९ ॥ दवेन निहते चैव कर्तव्या  
सदने सभा ॥ शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषी दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥ अश्मनानिहते

दद्यात्सवसां गां पयास्थिनीम् ॥ विपेण च मृते दद्यात्मेदिनीक्षप्रसयुताम् ॥ २१ ॥  
 दद्यात्तनमृते चापि प्रदद्याद्गां पयास्थिनीम् ॥ मृते जलेन घृण इमदद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥  
 ॥ २२ ॥ वृक्ष वृक्षहृते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसयुतम् ॥ अतिसारमृते लक्ष सावित्र्या  
 मयतो जपेत् ॥ २३ ॥ ढाकिन्यादिमृते वैष जपेद्द्वर्दं यथोचितम् ॥ विद्युत्पातेन  
 निहते विद्यादान समाचरेत् ॥ ४४ ॥ अस्पर्शं च मृते कार्यं घेदपारायणं तथा ॥  
 सच्छास्त्रपुस्तक दद्याद्दान्तमाभिस्य संस्पृशेत् ॥ ४५ ॥ पातित्येन मृते कुर्यात्  
 आजापत्यानि पौदश ॥ मृते चापत्परहिते कृच्छ्राणां नवार्ति चरेत् ॥ ४६ ॥  
 निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश हयाहृते ॥ कपिना निहते दद्यात् कार्पिकं कनकनि  
 र्मितम् ॥ २७ ॥ विपूचिकामृते स्वाद्मं भोजयेत्तु शतं द्विजान् ॥ तिलधेनुं  
 प्रदातव्या कठेऽन्नकषले मृते ॥ ४८ ॥ केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समा  
 चरेत् ॥ एष कृते विधानेन विद्वेष्यादीर्द्धर्द्धिहिकम् ॥ ४९ ॥ ततः प्रेतस्वनिर्मु  
 क्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥ दद्यात् पुत्रांश्च पौत्रांश्च आपुरारोग्यसपदं ॥ ५० ॥

अथ इन चबका क्रमानुसार प्रायश्चित्त कहते हैं, कि, एक तोड़भर सुवर्णकी प्रेतकी मूर्ति  
 बनावे ॥ १८ ॥ उस मूर्ति के चार मुजा हों हाथमें वह देकर उसे फिर भैंसेपर सवार करे,  
 फिर काठे तिलके पीस कर प्रस्थमरका एक पिंड बनावे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उस  
 पिंडमें सड़त पी भिछाकर सुवर्णके छुड़क उस पिंडपर रकलै, नीचे से गोख एक कसस हो  
 उसपर पच पकव रकलै ॥ २० ॥ फिर उसे काठे बखसे ढकने और उसमें सत्रौंवापि ढाके,  
 फिर उसपर अन्न और फलसहित पात्र रकलै, फिर उस पात्रपर देवताकी मूर्तिको स्थापित  
 करे ॥ २१ ॥ पीछे फलके साथ सदनजा रकलै और उस कससपर प्रेतकी मूर्तिको रकलै  
 ॥ २२ ॥ पुरुषसूक्तको पढ़वाहुआ प्रतिदिन वृषसे तर्पणकरे, और उस कससके निकट  
 बेहोका ज्ञावा पढ़का जपकरे ॥ २३ ॥ इसके पीछे यमसूक्तसे यमराजकी पूजाकरे और  
 अपने आरमाकी श्रुतिके निमित्त गाथजीकाभी जपकरे ॥ २४ ॥ महोकी शांति कर तिलसे  
 वसास बनकरे जिस प्रेतके गोत्र और नामको नहीं जाना है उस प्रेतके निमित्त तिलकाठि  
 वे ॥ २५ ॥ पितृतीर्थसे पिंड व पीछे इस मंत्रको करे कि सड़त और पी भिछाहुया वह  
 तिलका पिंड ॥ २६ ॥ उस प्रेतके निमित्त देवाहु जो मुझे पीडावेवाह, और जिस जन्मके काठे  
 तिल हों ऐसे बखसे मरेहुप काठे पडे ॥ २७ ॥ बारह प्रेतको और एक विष्णु भगवान्को  
 वे, इसके पीछे आचार्य कससोंके बखसे कौपुठर दोहोका अभिवेक करे ॥ २८ ॥ फिर  
 आचार्य श्रुतवापुर्वक वचन श्रुतके धारणकर बखसे देवावाके मंत्रोंसे यज्ञनामका अभिवेक  
 करे, फिर यमनाम आचार्यको भेद वसिष्ठा वे ॥ २९ ॥ पीछे शास्त्रकी विधिके अनुसार  
 नारायणकाठि करे वह साधारण विधि भितकी गति कही हुई है उनकी कहीगई ॥ ३० ॥  
 और शिन्धी मृत्यु सिंह इत्यादिसे हुई है उनकी विशेष विधि यह है कि जो मनुष्य म्याप्रसे  
 मरगये उसकी गतिके निमित्त वृत्तरेकी कन्याका निवाह करे ॥ ३१ ॥ जो धर्मके काठनेसे  
 मरगये हैं उनके बखारकी इच्छास नगोंको कठि वे, सब विपसोंमें सुवर्णकी दक्षिणा दे जो  
 हाथीके जापावसे मरगये हैं उनके बखारकी कामनासे चार वडे सुवर्ण दान करे ॥ ३२ ॥

राजदंडसे मरेहुए मनुष्यके निमित्त सुवर्णका पुरुष धनवाकर दे; चोरसे मरेहुए पुरुषके आशयसे गौदान करै, यदि मनुष्य शत्रुके आघातसे मृतक हुआ हो तो बैलका दान करै ॥ ३३ ॥ भिडाके द्वारा मृतकहुए मनुष्यके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण दानकरै, शय्यापर, मृतकहुए पुरुषको छुटकारा पानेकी इच्छासे रुईसहित शय्यादान करै ॥ ३४ ॥ और उस शय्यापर तोष्ठेभर सुवर्णकी विष्णुभगवान्की मूर्ति रखै, यदि जो शुद्धिसे हीन होकर मृत्युको प्राप्तहोतौ दो तोले सुवर्णकी विष्णुकी मूर्तिदे ॥ ३५ ॥ यदि संस्काररहित होकर मरे तौ दूसरेके लडकेका विवाह करेदे, कुत्तेके काटनेसे मनुष्यकी मृत्यु होजाय, तौ अपनी शक्तिके अनुसार कुछ धन मट्टीके नीचे गाड दे ॥ ३६ ॥ शूकरद्वारा मृतक हुए मनुष्यके उद्धारके निमित्त दक्षिणासहित भैंसेका दान करै, कृमिद्वारा मरे हुए मनुष्यके आशयसे ब्राह्मणको गेहूँ दे ॥ ३७ ॥ यदि सींगवाले पशुसे मनुष्य मृतक हो तो वध्रसहित बैलका दान करै; गाडीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त सामग्री सहित घोडा दे ॥ ३८ ॥ पर्वतकी शिलासे पिचकर मरजाय तौ अन्नका पर्वत दे, यदि अग्निसे मरे तौ अपनी शक्तिके अनुसार जूते दान करै ॥ ३९ ॥ दावान्निसे यदि मनुष्य मरजाय तौ किसी स्थानमें सभा बनावै, शस्त्रसे मरजाय तौ दक्षिणा सहित भैंसका दान करै ॥ ४० ॥ पत्थरसे मरजाय तौ वछडे सहित दूध देनेवाली गौका दान करै और विपसे मृतक होजाय तौ खेतीसहित पृथ्वीका दान करै ॥ ४१ ॥ फासीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त दूध देनेवाली गौका दान करै, जलसे मरजाय तौ तीन तोलेभर सुवर्ण की मूर्ति वरुणकी दे ॥ ४२ ॥ वृक्षसे मरजाय तौ सुवर्णका वृक्ष दे और सुवर्ण दान करै; अतिसार रोगसे मरजाय तौ सावधानीसे एकलाख गायत्रीका जप करवावै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य शाकिनी आदिसे मृतक होजाय तौ यथारीति रुद्रका जप करवावै, विजलाके गिरनेसे मरजाय तौ विद्याका दान करै ॥ ४४ ॥ छूनेके अयोग्यके स्पर्शसे मरजाय तो बेदका पाठ करावै, वमन करनेसे मृतक होजाय तौ उत्तम शास्त्रकी पुस्तक दान करै ॥ ४५ ॥ पतित होकर मृतक हो तौ १६ प्राजापत्य करै सन्तानहीन होकर मरे तो नव्ने कृच्छ्र करै ॥ ४६ ॥ और तीन तोले सुवर्ण दान करै, घोडेसे मरजाय तौ घोडा दे, वन्दरसे मृतक हो तौ सुवर्णका वन्दर बनवाकर दे ॥ ४७ ॥ विपूचिकासे मृतक होजाय तौ उत्तम भोजनसे सौ ब्राह्मण जिमावै, यदि कण्ठमें घ्रास अटकनेसे मरजाय तो तिलकी गौका दान करै ॥ ४८ ॥ केश और रोम आदिके रोगसे मृतक होजाय तौ उस मनुष्यके उद्धारके निमित्त आठ कृच्छ्र व्रत करै, इस प्रकार कर्म करनेके उपरान्त अन्त्येष्टि कर्मको करै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे प्रेतभावसे छूटकर तृप्त होकर पितर पुत्र, पोते, अवस्था, आरोग्यता और सम्पदा इत्यादिको देते हैं ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥ शिष्याय शरभंगाय विन-  
यात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विनयपूर्वक शरभंग शिष्यके पूँछनेपर शातातप ऋषिने कर्मोंका विपाक कहा है ॥ ५१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकाया षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥ १७ ॥

दद्यात्सप्तसां गां पयस्विनीम् ॥ विपेण च मृते दद्यान्मेदिनीक्षेत्रसप्तुताम् ॥ ४१ ॥  
 उद्धधनमृते चापि प्रदद्याद्गां पयस्विनीम् ॥ मृते जलेन परुणं हेमदद्यात्त्रिनिष्ककम्  
 ॥ ४२ ॥ पृक्षं पृक्षहते दद्यात्सीर्षणं स्वर्णसप्तुतम् ॥ अतिसारमृते लसं साविन्या  
 मयतो जपेत् ॥ ४३ ॥ हाकिन्यादिमृते चैव जपेद्बुद्धयथोचितम् ॥ विद्युत्पातेन  
 निहते विद्यादान समाचरेत् ॥ ४४ ॥ अस्पृशं च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥  
 सच्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्दान्तमाभित्य सस्यते ॥ ४५ ॥ पातित्येन मृते कुर्यात्  
 व्याजापयानि षोडश ॥ मृते चापत्परहिते कृच्छ्राणां नर्षति चरेत् ॥ ४६ ॥  
 निष्कप्रयमितं स्वर्णं दद्यादश हयाहते ॥ कपिना निहते दद्यात् फापि फनकनि  
 र्मितम् ॥ ४७ ॥ विपूषिकामृते स्यात्तु भोजयेश्च शतं द्विजान् ॥ तिलधेनु  
 प्रदातव्या कठिन्नकषले मृते ॥ ४८ ॥ केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समा-  
 चरेत् ॥ एव कृते विधानेन विदध्यादौष्धदीहिकम् ॥ ४९ ॥ ततः प्रेतत्वनिर्मु-  
 क्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥ दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आपुरारोग्यसपदः ॥ ५० ॥

अथ इन सबका क्रमानुसार प्राथमिक कहते हैं, कि, एक लोहेमर सुवर्णकी प्रेतकी मूर्ति बनावे ॥ १८ ॥ उस मूर्ति के चार मुखा हों हाथमें दृढ देकर उसे फिर जैसेपर सवार करे, फिर काळे तिलोंको पीस कर प्रथमरका एक पिंड बनावे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उस पिंडमें सहव पी भिजाकर सुवर्णके कुछ छ उस पिंडपर रक्खे, नीचे से गोल एक कसस हो उसपर पच पसब रक्खे ॥ २० ॥ फिर उसे काळे पक्षसे ढकवे और उसमें सबोंपधि डाले, फिर उसपर अन्न और फलसहित पात्र रक्ख, फिर उस पात्रपर देवताकी मूर्ति को स्थापित करे ॥ २१ ॥ पीछे फलके साथ सतनसा रक्खे और उस कससपर प्रेतकी मूर्तिको रक्खे ॥ २२ ॥ पुढपसूक्तको पढवाहुमा प्रतिदिन ब्रह्मते वर्णकरे, और उस कससके निकट बेहोंका झावा पढावा करुका अपकरे ॥ २३ ॥ इसके पीछे यमसूक्तसे यमराजकी पूजाकरे, और अपने आत्माकी मुद्रिके निमित्त गावत्रीकामी अपकरे ॥ २४ ॥ महोंकी शक्ति कर तिलोंसे वृषाक्ष हवनकरे जिस प्रेतके गोत्र और नामका नहीं जाना है उस प्रेतके निमित्त तिलामाळे दे ॥ २५ ॥ विपुलीर्षसे पिंड व पीछे इस मंत्रको कहे कि सहव और पी भिजाहुया यह तिलका पिंड ॥ २६ ॥ उस प्रेतके निमित्त देवाहु जो मुझे पीजावेवाहै, और जिस पक्षमें काळे तिल हों ऐसे पक्षसे मरेहुप काळे पडे ॥ २७ ॥ बारह प्रेतको और एक विष्णु भगवान्को दे, इसके पीछे आचार्य कससोंके पक्षसे श्रीपुढ्य होमोंका अभियेक करे ॥ २८ ॥ फिर आचार्य शुद्धतापूर्वक ब्रह्म सूक्तको पारणकर ब्रह्मदेवतावाळे मंत्रोंसे ब्रह्ममानका अभियेक करे, फिर यममान आचार्यको भेष दक्षिणा दे ॥ २९ ॥ पीछे शासकी विधिके अनुसार नारायणबलि करे, वह साधारण विधि विवकी गति नहीं हुई है उनकी करीगर् ॥ ३० ॥ और किन्तकी मृत्यु सिद्ध इत्यादिसे हुई है उनकी विशेष विधि यह है कि जो मनुष्य प्रायश्चित्त मरजाय उसकी गतिके निमित्त घूसरेकी कन्याका विवाह करदे ॥ ३१ ॥ जो सर्वके काठनेसे मरगये हैं उनके बद्वारकी इच्छासे भागोंको बलि दे, सब विपनोंमें सुवर्णकी दक्षिणा दे जो हाथीके आपावसे मरगये हैं उनके बद्वारकी कामनासे चार लोहे सुवर्ण दान करे ॥ ३२ ॥

मनुष्य, सूर्याभिनिर्मुक्त मनुष्य बुरे नखवाला, काले दांतवाला, परिवित्ति, परिवेत्ता, अग्नेदि-  
धिषु, और दिधिषूका पति, वीरकी हत्या करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, यह सब पापी  
हैं, निम्नलिखित पाच प्रकारके पापी महापापी कहे गयेहैं; जैसे, गुरुकी शय्यापर गमन  
करना, मदिरा पीना, ब्रह्महत्या, गर्भकी हत्या, ब्राह्मणका सुवर्ण चुराना, पतितके साथ पढ़ना  
पढ़ाना और यौन ( सम्बन्ध ) से मेल,

अथाप्युदाहरंति ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौ-  
नादन्नपानासनादपि ॥

इन सब विषयोंमें पड़ितेने कहाहै कि, पतितके साथ एक वर्षतक संग, एक वर्षतक यज्ञ  
करानों पढ़ाना, सम्बन्ध करना, भोजन, जलपान, बैठना इनके करनेसे मनुष्य पतित होताहै,

अथाप्युदाहरंति । विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥

कुलापदेशेन ह्योपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्धरंतीति ॥

और यहभी कहाहै कि “विद्या नष्ट होनेपर फिरभी मिल सकती है, परन्तु जातिका  
नाश होनेपर सर्वनाश होजाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोडा भी सन्मान पाताहै, इस  
कारण अच्छे वंशकी स्त्री के साथ विवाह करै,”

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुति-  
ष्ठेत् । राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् ।  
इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण  
आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्यु-  
दयिकामिति ह विज्ञायते ॥ इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तीन वर्णोंकी ब्राह्मण वंशमें रखलै, ब्राह्मण उत्तको जिस धर्मका उपदेश दे, राजा उसे  
प्रचलित करै, राजाके धर्मानुसार राज्य पालन करनेपर ब्राह्मणको छोड़कर और सब प्रजासे  
राजा छठा भाग ले, राजा ब्राह्मणोंके इष्टापूर्त धर्मकार्यके छठे भागको लेता है, यह प्रसिद्ध  
है कि ब्राह्मणही वेदका आदि प्रकाशक है, ब्राह्मणही सबको आपत्तियोंसे उद्धार करता है,  
इस कारण ब्राह्मण अनादि है और करग्रहण करनेके अयोग्य है, चन्द्रमा ब्राह्मणोंका राजा है,  
यही इस लोक और परलोकका कल्याण करनेवाला है यह विदित है ।

इति ऋषिष्मृतौ भाषाटीकाया प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

सुर्गा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रिय-  
विजननं द्वितीयं मांजीवन्धनं तत्रास्य माता सावित्री  
। वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।

शूद्र यह चार वर्ण हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह  
स पहले मातासे और दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसे होता है,  
चार्य पिता कहागया है आचार्य वेदको पढ़ाता है. इस



## अथ वशिष्टस्मृति १८

## प्रथमोऽध्यायः १



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वशिष्टस्मृतिप्रारम्भः ॥ अथात पुरुषनिम्नेयसार्थं धर्मजिज्ञासा ॥ ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च । विहिता धर्मः । तदहमे शिष्टाचारः प्रमाणम् । दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विंध्यस्य ये धमा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतभ्याः न ह्यन्ये प्रतिलोककल्पधर्माः । एतदापावठमित्या चक्षते । गंगायमुनयोरतराप्येके । यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवचस मिति । अथापि भाह्वविनो निदाने गायामुदाहरंति ॥

इस समय मनुष्योंकी शुद्धि के लिये धर्म के ज्ञाननेकी आवश्यकता होती है, जो मनुष्य धर्मको जानकर उसके अनुसार कार्य करता है वह इस लोक और परलोकमें धार्मिक कहकर अत्यन्त प्रशंसाके योग्य होता है, ज्ञानमें जो कहा है वही धर्म है; यदि शास्त्रोंमें न मिले तो स्वर्गतोका बचनकी प्रामाणिकता है, हिमालय पर्वतके दक्षिण और विन्ध्याचल पर्वतके उत्तर भागमें जो सब धर्म और सम्पूर्ण आचार प्रचलित हैं वह सभी ज्ञानमेंके योग्य धर्म हैं, अन्य आचारोंके धर्मको न बिचारै, कारण कि वह अतिदुष्ट गार्हित धर्म हैं, इसी स्थानका नाम आर्यावर्त है; गंगा और यमुनाके मध्यके स्थानको भी कोई २ आर्यावर्त कहते हैं, पञ्चविंश ३ स्थानमें काळे मृग स्वभावसे ही विचरण करते हैं, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

पश्चात्सिधुर्विद्वरिणीसूर्यस्योदयने पुनः ॥ यावत्कृष्णोभिधावति तावद्ब्रह्मवचसम् ॥ त्रैविद्यवृद्धा यं ह्युपर्यर्धं धर्मविदो जनाः ॥ पवने पावने चैव सर्वतो नात्र सहायः ॥ इति ।

इसमें भी आकाश पृथिवी इत्यादि मूल प्राचीन गायामुदाहर्त करते हैं "पश्चिम समुद्र और सूर्यके उदयास्तके मध्यके दिन २ स्थानोंमें काळे मृग विचरण करते हैं, वन २ देशोंमें ब्रह्मवचन प्रचलित है" यानि वेदोंमें बड़े बूढ़, धर्मके ज्ञाननेवाले शुद्धि और शोधनके विषयमें जिस धर्मका उपदेश करें वही सार्थ धर्म है इसमें संदेह नहीं" ॥

वेदधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् धृत्यभाषावद्भवोन्मनुः ।

शुद्धि के अभावमें मनुष्य वेदधर्म, जातिधर्म और कुलधर्म इन सबका वर्णन किया है सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनस्त्री श्यावतं वः परिवितिः परिवेत्ता अग्नेदि-धिर्पुर्दिधिर्पुतिर्वीरहा ब्रह्मम इत्येत एनस्वित् । पंचमहापातकाम्याचक्षते । युक्तस्वयं सुरापानं घृणहत्यां ब्राह्मणमुवर्णहरणं पातितसप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौ-नेन वा ।

जिसके क्षयन ( निरा ) करनेमें सूर्य उदयहो, उसको सूर्याभ्युदित कहते हैं और जिसके क्षयन ( निरा ) करनेमें सूर्यका अस्त हो उसको सूर्याभिनिर्मुक्त कहते हैं, ऐसे सूर्याभ्युदित

षट्कर्मणि ब्राह्मणस्य अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ।  
 त्रीणि राजन्यस्याऽध्ययनं यजनं दानं शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन  
 जीवेत् । एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यकुसीदानि च ।  
 एतेषां परिचर्या शूद्रस्य अनियता वृत्तिः अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्ताशिखा-  
 वर्जम्, अजीवंतः स्वधर्मेणान्यतरापापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन्नतु कदाचिज्ज्याय-  
 सीम् । वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवतोऽश्मलवणमपण्यं पाषाणकोपक्षौ-  
 माजिनानि च तांतवस्य रक्तं सर्वं च कृतांत्रं पुष्पमूलफलानि च गंधरसा  
 उदकं च ओषधीनां रसः सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं सविकारमपस्त्रपु  
 जतु सीसं च ।

ब्राह्मणके छेः कर्म हैं, पढना, पढाना, यज्ञकरना, कराना, दान और प्रतिग्रह, क्षत्रियोंके  
 तीन कर्म हैं, अध्ययन, याजन और दान, शास्त्रके अनुसार प्रजापालनभी क्षत्रियका धर्म है,  
 उससेही जीविका निर्वाह करै, वैश्यके भी तीन हैं, खेती, लेंनदेन, पशुओंका पालन, और  
 सूत्र ( व्याज ) लेना, यह वैश्यकी वृत्ति है, और इन तीनों जातिकी सेवाकरना यह शूद्रका  
 धर्म है और शूद्रकी जीविकाका नियम नहीं है, वालोंकी रक्षाका नियम नहीं है, और वेशका  
 भी नियम नहीं है, तब केवल खुली चोटी होकर न रहै, स्वधर्म से जीविका निर्वाह न  
 होनेपर जिसमें पाप नहो इसप्रकारकी दूसरी वृत्तिका अवलम्बन करले, परन्तु जिसमें  
 पाप हो ऐसी वृत्तिको कभी अवलम्बन न करै, वैश्यकी वृत्तिको अवलम्बनकर वाणिज्यद्वारा  
 जीविका निर्वाह करै तौ निम्नलिखित द्रव्योंको न वेचै, "जैसे मणिमुक्ता इत्यादि, लवण,  
 पाषाणकी वस्तु उपक्षौम, मृगचर्म, लालसूत्रका वस्त्र, और वनायाहुआ सबप्रकारका अन्न,  
 पुष्प, मूल, फल, गंध, रस, जल, औषधियोंका रस, अमृतकी लता, शस्त्र, विष, मांस, दूध,  
 और और दूधके विकार त्रपु, लाख, और सीसा इनके वेचनेका निषेध है,

अथाप्युदाहरंति ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥

व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

इसमें भी यह वचन कहतेहैं कि मांस, लाख, लवण इनके वेचनेसे ब्राह्मण शीघ्र पतित  
 होताहै और दूधके वेचनेसे तीन दिनमें पतित होताहै;

ग्राम्यपशूनामेकशपाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो वयांसि दंष्ट्रिणश्च । धा-  
 न्यानां तिलानाहुः ।

ग्रामके पशुओंके बीचमें एक खुरके पशु और केशोंवाले पशु तथा वनके सब पशु पक्षी  
 और डाढवाले पशु, अन्नमें तिल यह सब वेचनेके अयोग्य कहे हैं,

अथाप्युदाहरंति । भोजनाभ्यंजनादानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः स  
 विष्टायां पितृभिः सह मज्जति ॥ कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् ।

इसमें यहभी वचन है कि भोजन उबटना इनसे अन्न जो तिलोंसे वह विष्टामें कीडा  
 होकर पितरोंसहित नरकमें डूबता है, और आप जोतकर जो तिलोंको उत्पन्न करै तौ इच्छाके  
 अनुसार वेचै ।

अयाप्युदाहरति । द्रयमिह धे पुरुषस्य रेतोऽर्धाक्षणस्योर्ध्वं नाभेरर्धाचीन मन्येत  
तद्यदूर्ध्वं नाभेस्तेनास्पानीरसी प्रजा जायते । यदुपनयति जनन्यां जनयति  
यत्साधु करोति । अथ यदर्धाचीन नाभेस्तेनास्पौरसी प्रजा जायते तस्माच्छ्रे-  
श्रियमनूधानमभूज्योऽस्तीति न वदतीति हारीता ॥

इसमें भी यह बचन है कि पुरुषके शरीरके दो भाग हैं जिससे ब्राह्मणके देहका नामिके  
ऊपरका भाग और एक नामिसे नीचेका भाग है जो भाग नामिसे ऊपरका है इससे इस  
मनुष्यके अनौरसी प्रजा होती है, कि जो यज्ञोपवीत होता है और जननी ( गायत्री ) में  
उत्पन्न करता है वही अश्रम करनेवाला है और जो नामिसे नीचेका भाग है विससे मनुष्यके  
औरससे प्रजा होती है, इस कारण बेरपाठी और विषामें बड़ेको " वृ भूप्रथम है " यह  
बचन नहीं करे ऐसा हारीत ऋषिका बचन है ।

अयाप्युदाहरति ॥ नद्यस्य विद्यते कर्म किंचिदामौजीवंधनाव् ॥ वृत्त्या शूद्र  
समो ज्ञेयो यावद्देवेन जायते ॥ अन्यत्रोदककर्म स्वधापितृसपुत्रेभ्यः ।

इसमें बड़े महर्षि यह कहते हैं कि यज्ञोपवीतसे प्रथम इसको कोई कर्मका अधिकार नहीं  
है, जबतक यह बेरमें उत्पन्न नहीं होता जबतक अन्नदान रक्षा पितरोंका सयोग इनके अति  
रिक्त और सब आचरणमें शूद्रके समान जानता ।

विद्या इधि ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेषधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायातृजवेऽ  
यताय न मा भूया वीर्यवती तथा स्पाम् । य आपूणात्यवितयेन  
कर्मणा बहुवृक्ष कुर्वन्नमृत सप्रयच्छन् । तं मन्येत पितर मातर च  
तस्मै न हुझेत्कतमश्नाह । मध्यापिता धे गुरु नाद्रियते विप्रा षाचा मनसा  
कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति भृत तव ।  
यमेव विद्यां शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । यस्तेन हुझेत्कतमश्ना  
नाह तस्मै मा भूया निधिपाय ब्रह्मन्निति ॥ दहस्यमिर्यथा कस्य ब्रह्म त्वन्दम  
नाहतम् । न ब्रह्म तस्मै प्रभूयाच्छक्यमानमकुंतत इति ॥

विद्याने ब्राह्मणोंके निकट आकर कहा, कि "मिरी रक्षाकरो, मैं तुम्हारा गुण बन हूँ, और  
निकट कठोर तथा अवशेन मनुष्यके निकट मुझे प्राप्त न करना, कारण कि वसीसे मैं वीर्य  
वाली हुई हूँ । जो मनुष्य बहुवसा परिभ्रमकर सम्पूर्ण कर्मोंके श्रावणकर भी अल्पन्त सुख  
मानवावे उस गुरुको माता और पिता माने, उसके साथ कभी भी किसीभी प्रकारका श्लोह  
न करे जो सम्पूर्ण ब्राह्मण पढ़कर मम बचन और कर्मसे गुरुका सन्मान नहीं करते वह  
जिस मांति मुझे उपकारमें लगी आते वसी मांति ब्राह्मणान भी उनको स्पर्श नहीं कर  
सकता; और वह ब्राह्मण जिसको, मुद्र, अममव बुद्धिमान् और मद्यपारी समझें और जो  
मनुष्य "मैंने किसीके निकट उपवेश नहीं पाया " वह कहकर गुरुसे श्लोह न करे ( हे  
ब्राह्मण ! ) इस निधिप रक्षकके निकट मुझे कहिये " अथ विसप्रकार तुजको रक्ष करतीहै  
वसीप्रकार अन्याय किया ब्राह्मणभी रक्ष करवादे, इसकारण उस अन्यायके करनेवालेको  
शक्तिमत् ब्रह्म (बेद) का उपवेश न करे, यह बेरका बचन है

जो कर्मसे हीन और पापी हो उसको अपनी इच्छानुसार दुगुना करनेके लिये सुवर्ण और तिगुना करनेके लिये अन्नदेना उचित है, और उस अन्नसेही रसभी कहेगये हैं, अर्थात् रसोंका देना भी कहाहै,

पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतमष्टगुणम् । अथाप्युदाहरन्ति । राजानुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत् ॥ पुना राजाभिषेकेण द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत् ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शते स्मृतम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ वसिष्ठवचने प्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके शृणु ॥ पंचमाषांस्तु विंशत्यामेवं धर्मो न हीयते ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

फूल, फल, मूल यह तुलामें रक्खे गयेहों तौ आठगुने लेने, इसमेंभी यह वचन कहा गयाहै कि राजा अपनी इच्छासे द्रव्यकी वृद्धिका नाश करदे और फिर राजाके अभिषेकसे द्रव्यकी वृद्धिको त्याग दे, और एक सौ रुपये पर चारों वर्णोंसे दो तीन चार, और पाच रुपये महीनेका व्याज क्रमानुसार ग्रहण करै, और वशिष्ठके वचनमें कही हुई वार्धुषिक वृद्धिको श्रवण करो बीससेर पर पांचवां भाग अधिक अन्नका ले अर्थात् चौबीस सेर अन्न ले, इसरीतिसे करनेपर धर्मकी हानि नहीं होती ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ मापाटीकाया द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ३.

अश्रोत्रियाननुवाक्या अनमयः शूद्रधर्माणो भवन्ति नानृग्ब्राह्मणो भवति ।

वेदको न पढनेवाला, अनुवाकशून्य, अग्निहोत्ररहित यह तीनों वर्ण शूद्रकी समान हैं, विना वेदके पढे ब्राह्मण नहीं होता,

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरति ।

इस विषयमें ( मनु ) के श्लोकोंका प्रमाण दिखाते हैं कि,

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १ ॥ न वणिङ्गन कुसीदजीवी ये च शूद्रप्रेषणं कुर्वन्ति न स्तेनो न चिकित्सकः ॥ अत्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

“जो ब्राह्मण वेदको न पढकर अन्य विषयोंमें परिश्रम करताहै, वह इस जन्ममेंही अपने वशसाहित शूद्रत्वको प्राप्तहोता है ॥१॥ वणिक, और व्याजसे जीविका करनेवाला, शूद्र, चोर और वैद्य यह शूद्रत्वको प्राप्त नहीं होते, जिस ग्राममें व्रतसेहीन और अध्ययनसे वर्जित ब्राह्मण भिक्षा मांगकर अपनी जीविका निर्वाह करसकै, राजा उन ग्रामवासियोंको दंड दे कारण कि, यह सब ग्रामवासी चोरोंको आहार देकर उनका पालन करतेहैं,

चत्वारोपि त्रयो वापि यद्व्यूवैदपारगाः॥स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः॥

अत्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां पर्वत्वं नैव विद्यते ॥

( तंस्मादाभ्यामनस्योताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कृपिः स्यात् । निदाघेऽयं प्रपञ्चेत्रा  
 तिपीडनलांगल प्रवीरयसुशयः सोमपित्सरु ॥ तदुद्दपतिगामयिम्पर्म्यंअपी-  
 यरीम्पस्यावद्रयवाहणम् ॥ लांगलं प्रवीरवद्रीरं मनुप्यवदनलुब्धतासुशी कल्या  
 णीह्यस्य नासिखोदुपतिदूरेपविदति सोमपिष्टरु सोमाह्यस्य प्राप्नोति ॥ तत्सहतदुद्द  
 पति गामरिमा अजानश्नखरस्त्रांष्ट्रीणां यशफयांश्च दर्शनीयां पीवरीं कल्याणीं  
 प्रथममुष्वतीं कथं हि लांगलमुद्दपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥

इसकारण किन्हीं धमिवा न कियाहो, जिनकी नाक में नाथ न ब्याहीहो ऐसे बैलोंसे पूष्णी  
 को प्रातःकालके भोजनके पहले समयमें जोतै, मीप्मभक्तुमें अलका दामकरै हल ऐसा होना  
 उचित है जिससे अत्यन्त पीडा न हो, पैनी बारवाही जिसमें कुस हो, और जो हल  
 सोमकृताके पीनेवाले पञ्जमानके छिये पूष्णीको रोय सके वह हल येनुरूपी पूष्णीको रोय  
 सकताहै, और रयको छेजानेवाले मेप और अश्वमी पूष्णीको खोय सकयेद, जो पूष्णीपर  
 अथ इत्यादि पाडे वेगसे दौडते हैं, जो पुण हैं और जो रथ तथा हलके छेजानेवाले बैस हैं,  
 और घोडे बससे छे जानेमें समर्थ हैं, और जिसमें यलवान् अच्छे बैस छगेहें और कुस सुय  
 देवेबाही छगीहो, करण कि निच हलकी कुस अच्छी है वही हल जमीनमें दूरतक प्रवेस  
 करसकता है उस हलमें बैस, मीडे, बकरी ओतना और रथमें घोडे शिचह तथा उष्ट जोवे,  
 यदि बैस बलवान् और नये हों तो ऐसे बैलोंके हलसे पुष्ट और कस्यापकारिणी प्रथमतःकृपी  
 इस पूष्णीको यदि धान्यविक्रय करनेका न होय तो कैसा भय्य जोवे, यदि जोवे तो ठिठोको  
 छत्पन्नकर उनके बेचनेमें कुछ बोप नहीं है ( इसकारण वास्तविक तो धान्यव्यापार ब्राह्मणको  
 कहा नहीं अतएव ब्राह्मणको कृषिकर्म करना धनित नहीं )

रसारसे समतो हानतो वा निमातप्या नत्येव लयण रसे ॥ तिलतद्गुलपफानं  
 विद्यान्मनुप्याश्च विहितां परिवर्तकेन ।

रसोंको रसोंसे वरापर वा म्पूसासे बेचे, परन्तु रसोंसे लयण को न बेचे, तिल, चाण्ड,  
 तथा पञ्जानकोमी रसोंसे छेना उचित नहीं, और मनुप्यको भी मनुप्यके बदलेमें  
 छेनेको कहाहै

ब्राह्मणराजन्वीं वार्षुपात्रं नाथाताम् ॥ अथाभ्युदाहरंति । समर्थ धान्यमुद्दृत्य  
 महार्थं यं प्रपञ्छति ॥ स धे वार्षुपिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितं ॥ वार्षुपिं  
 ब्रह्महृतारं तुलया समतोलयत् ॥ अतिष्ठद्दूषणहा कोटयो वार्षुभिर्न्यंक् पपातह ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय यह वार्षुपिकके अन्नका भोजन न करै, इसमें भी यह बचन कहाहै  
 कि छत्ते अन्नको निकालकर मईगा वन मद्यवादिषोंमें निदित है यही वार्षुपिक कहावाहै,  
 यदि वार्षुपिक और मद्यहत्या करनेवालय मनुष्य एक वराभूमि तोडा गयाहो, मद्यहत्याक-  
 रनेवालेकी ओरका पडा रुचा होनाय और वार्षुपिक दिहातकमी न हो

कामं वा परिक्रमकृत्याय पापीयसे वृषादिगुणं हिरण्य त्रिगुणं धान्यं धान्यनिव  
 रसा म्यास्याताः ।

आत्मरक्षाके निमित्त आततायीके मारनेमें कुछ पाप नहीं होता, ऐसा कहा है कि आततायी छैः प्रकारके हैं, इस विषयमें औरभी कहा है, अग्नि लगानेवाला, विषदेनेवाला, जिसके हाथमें शस्त्र हो, घनका चोर खेतकी चोरी करनेवाला, और स्त्रीकी चोरी करनेवाला यह छैः प्रकारके आततायी हैं, वेदांतके पार जाननेवाले भी हिंसा करनेवाले आततायीको मारनेकी इच्छा करै, इससे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न वेदपाठी आतातायीको जो मारता है, उस हत्यासे वह पाप नहीं होताहै, कारण कि इसका वह क्रोधही मारनेवाला है,

त्रिणाचिकेतः पंचामिस्त्रिसुपर्णवान् चतुर्भ्या वाजसनेयी षडंगविद्वद्ब्रह्मदेयानु-  
संतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित् यस्य धर्मानधीते यस्य च  
पुरुषमातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः ।  
चातुर्विद्यो विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥ आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिष-  
त्त्यादशावरा ॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स आचार्यः । यस्त्वेकदेशं  
स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।

यह मनुष्य पंक्तिको पवित्रकरनेवालेहैं कि त्रिणाचिकेत पंचामि तीन सुपर्णको जो जानताहै; जिसकी बुद्धि चार प्रकारकी हो, वाजसनेयी संहिताको जानताहो, ब्रह्म वेदका भागी जिसकी संतान हो, छंद और ज्येष्ठ सामवेदको जाननेवाला मंत्रब्राह्मणका ज्ञाता जो धर्मोंको पढताहो और जिसके ओर माता पिताका वंश वेदपाठी हो, जो विद्यावान् और स्नातकये पंक्तिको पावन करनेवाले हैं, ब्रह्मचारी और चारों विद्याओंमें जो एकभी विद्याको जानता हो और छैः अंग जानताहो, धर्मशास्त्रको जो पढावै और आश्रमोंमें स्थित तीन मुख्य २ पुरुष तथा कमसेकम समा होती है, जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर जो चारों वेदोंको पढावै वह आचार्य कहाता है और जो वेदका कोई भाग वा कोई अंग पढावै उसे उपाध्याय कहते हैं,

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥

क्षत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

अपनी रक्षाके समयमें, और वर्णोंकी संकर भ्रष्टताके समयमें ब्राह्मण और वैश्यभी शस्त्रोंको धारण करलें तो शस्त्रधारणमें दोष नहीं है, कारण कि, क्षत्रियको तो रक्षाकरनेका अधिकार है.

प्राग्वोद्गवासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिवंधनात् । अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो  
रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवत् द्विः प्रमृज्यात् खान्याद्भिः संस्पृशेत्  
मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये च पाणौ ब्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् ।  
हृदयंगमाभिराद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कंडगाभिः क्षत्रियः शुचिः वैश्यो-  
द्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव चापुत्रद्वारापि यागास्तर्पणानि स्युः ।

और पूर्व बां उत्तरकी ओरको मुखकरके बैठे, पैर और हाथोंको पहुंचेतक धोकर अगूठकी जडमें जो रेखा उत्तर दिशाकी ओरको है वही ब्रह्मतीर्थ है उससे इसप्रकार आचमन करै, जिसप्रकार शब्द न हो, फिर दो बार मुखको पोंछकर कान आदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श करै,

चार अने वा तीनकने वेदके ज्ञाननेवाळे मनुष्य जिस धर्मको कई बही पधार्य धर्म कहकर ज्ञाननेके योग्य है, अन्य सहस्रों मनुष्योंका उपदेश कियाहुआ धर्म धर्म नहीं है । प्रथ और मंत्रोंसे हीन केवल आदिमानत्रसेही जीविका करनेवाळे ब्राह्मण यदि हजारों इच्छे क्यों नहीं होजायें परन्तु वह हीभी "पर्यत्" नहीं होसकते;

यददस्यन्यथा भूत्वा मूर्खा धर्ममतदिदा ॥

तत्पाप क्षतथा भूत्वा तदङ्गुष्यनुगच्छति ॥

मूर्ख मनुष्य जिस धर्मको न जानकर धर्मरहितकार्यको धर्म कहकर उसका उपवेश करते हैं, वह पाप ही प्रकारसे विमल होकर कहनेवालोंकी मज्झीकी ओरको जाणै, भोग्रियायैव देयानि ह्य्यकम्यानि नित्यशः ॥ अभोग्रियाय दक्षानि धृतिं नार्थाति देवता ॥ यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव बहुभुतः ॥ बहुभुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे स्यतिक्रम ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विधिं वेदविषयिते ॥ ज्वलत मग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि ह्यते ॥ यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो मृगः ॥ यश्च विभोजनधीयानस्त्रयस्ते नामधारका ॥

हम्य और कम्य प्रतिदिन बेहपाठी ब्राह्मणको दे; बिना वेद पढेके वेनेसे देवता मूम नहीं होते, गृहके निकटही जो मूर्ख रहवाहो, और विद्याम मनुष्य दूर रहता हो तो मूर्खको छोडकर विद्यामकोही हम्य कम्य देना उचित है, मूर्खके घरस्थानमें होय नहीं है, कारण कि कस्यही हुई धर्मिको खागकर मत्समें हवन नहीं कियाजाता, कठका पत्त हाथी, चमकेका मृग और अभ्यवनसे विमुख ब्राह्मण, यह तीनों नाममात्रके धारण करनेवाळे हैं;

विदद्रोअ्यानि स्वात्तानि मूर्खा राष्ट्रेषु भुजते ॥

तदन्न नाशमायाति महश्चापि भयं भवेत् ॥

भन्न विद्यातोंके भोजनकरने योग्य है, यदि मूर्ख भन्नको भोजन करेंगे तो वह भन्न निरर्थक होजायगा और उस राज्यमें महामय उपस्थित होग,

अप्रज्ञायमानविचं योऽभिगच्छेद्वाजा तदरेत् अधिगत्रि पृथर्मश प्रदाय ब्राह्मण श्वेदभिगच्छेत् पदकर्मसु धर्तमानो न राजा हरेत् ।

यदि किसीको दूसरेका बिना जानाहुआ धन मिलजाय; ही राजाको उचित है कि जिस मनुष्यको वह धन मिलाही उससे वह धन लेकर उस धनके छैः भागकर उसमेंसे एकभाग उसे देवे, क्षेपधन अपने पास रखै और यदि छैः कर्मोंमें पुण्य ब्राह्मणको वह धन मिलजाय तो राजा उसे ग्रहण न करे,

आततायिन हत्वा नात्र प्राजेच्छोः किञ्चित्कित्स्वपमाह ॥ पृथ्विपास्वातता यिनः । अयाप्युदाहरंति ॥ अग्निदो गरदभैव शस्त्रपाणिर्चनापह ॥ क्षेप्रदार- हरभैव पढेते आततायिन ॥ आततायिनमायांतमपि; वेदांतपारगम् ॥ जिपांसंतं जिपांसीयात्त तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वाभ्यापिनं कुळे जातं यो हन्यादाततायिनम् ॥ न तेन भूणहा स स्यान्मस्युस्तंमृष्युमच्छति ॥

आत्मरक्षाके निमित्त आततायीके मारनेमें कुछ पाप नहीं होता, ऐसा कहा है कि आततायी छैः प्रकारके हैं, इस विषयमें औरभी कहा है, अग्नि लगानेवाला, विषदेनेवाला, जिसके हाथमें शस्त्र हो, धनका चोर खेतकी चोरी करनेवाला, और स्त्रीकी चोरी करनेवाला यह छैः प्रकारके आततायी हैं, वेदांतके पार जाननेवाले भी हिंसा करनेवाले आततायीको मारनेकी इच्छा करै, इससे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न वेदपाठी आतातायीको जो मारता है, उस हत्यासे वह पाप नहीं होता है, कारण कि इसका वह क्रोधही मारनेवाला है,

त्रिणाचिकेतः पंचाम्निस्त्रिसुपर्णवान् चतुर्भेधा वाजसनेयी षडंगविद्वह्मदेयानु-  
संतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित् यस्य धर्मानधीते यस्य च  
पुरुषमातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः ।  
चातुर्विद्यो विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥ आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिष-  
त्त्याहशावरा ॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स आचार्यः । यस्त्वेकदेशं  
स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।

यह मनुष्य पंक्तिको पवित्रकरनेवालेहैं कि त्रिणाचिकेत पंचाम्नि तीन सुपर्णको जो जानताहै; जिसकी बुद्धि चार प्रकारकी हो, वाजसनेयी संहिताको जानताहो, ब्रह्म वेदका भागी जिसकी संतान हो, छंद और ज्येष्ठ सामवेदको जाननेवाला मंत्रब्राह्मणका ज्ञाता जो धर्मोंको पढताहो और जिसके ओर माता पिताका वंश वेदपाठी हो, जो विद्यावान् और स्नातकये पंक्तिको पावन करनेवाले हैं, ब्रह्मचारी और चारों विद्याओंमें जो एकभी विद्याको जानता हो और छैः अंग जानताहो, धर्मशास्त्रको जो पढावै और आश्रमोंमें स्थित तीन मुख्य २ पुरुष तथा कमसेकम सभा होती है, जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर जो चारों वेदोंको पढावै वह आचार्य कहाता है और जो वेदका कोई भाग वा कोई अंग पढावै उसे उपाध्याय कहते हैं,

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥

क्षत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

अपनी रक्षाके समयमें, और वर्णोंकी संकर भ्रष्टताके समयमें ब्राह्मण और वैश्यभी शस्त्रोंको धारण करलें तो शस्त्रधारणमें दोष नहीं है, कारण कि, क्षत्रियको तो रक्षाकरनेका अधिकार है.

प्राग्वोदग्वासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिवंधनात् । अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो  
रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवत् द्विः प्रमृज्यात् खान्यद्विः संस्पृशेत्  
मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये च पाणौ ब्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् ।  
हृदयंगमाभिराद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कंडगाभिः क्षत्रियः शुचिः वैश्यो-  
द्विः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव चापुत्रद्वाराऽपि यागास्तर्पणानि स्युः ।

और पूर्व वा उत्तरकी ओरको मुखकरके बैठे, पैर और हाथोंको पहंचेतक धोकर अंगूठेकी जडमें जो रेखा उत्तर दिशाकी ओरको है वही ब्रह्मतीर्थ है उससे इसप्रकार आचमन करै, जिसप्रकार शब्द न हो, फिर दो बार मुखको पोंछकर कान आदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श करै,



मन्त्रकपर एक ज्ञावै, यदि हावसे पछटा हुआ खडा सोती प्रयेता हुआ आचमन न करे और बिना हागोका जल जो हृदयतक पहुँचे ऐसे जलसे आग्रहण और जो जल कंठतक पहुँचे उससे क्षत्रिय, और जो मुखमें पहुँच जाय उससे वैश्य और जिसका स्पर्श ही होतपर हो वनसे क्षी और शुद्ध पवित्र होवेई, जो पुत्र यह करवावे उससे पुत्रि होतीई,

न वर्षागधरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरष्टुभागमा । न भूम्या विभ्रुप उच्छिष्ट कुवन्ति ।  
अर्नगच्छिष्टा । सुखा भुक्त्वा पीत्वा चात्वा चार्घातः पुनराचामेत् । पासश्च  
परिधाय ओष्ठौ संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतो लेपो दंतघटतसकेषु यथा  
तर्मुक्षे भवेत् ॥ आर्घातस्यावशिष्टं स्यातिगिरत्रेष तच्छुधिः । परानपाचामय-  
तं पदौ या विभ्रुपो गता ॥ भूम्या तास्तु समा प्रोक्त्वास्ताभिर्नोच्छिष्टमागम-  
येत् ॥ प्रचरन्नभ्यवहृत्पर्येषु उच्छिष्ट यदि संस्पृशेत् ॥ भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्य-  
मार्घात प्रचरेत्पुन ॥ यद्यन्मीमांस्य स्यात्सदृष्टि संस्पृशेत् ।

और जो जल, वर्ष, गंध, रस आदिसे युक्त हों, और जो अशुद्धमार्गसे आये हों वनसे आचमन करना उचित नहीं, और जो मुखकी धृव आगपर स्पृशे न करे वही वह उच्छिष्ट नहीं करती आचमनके उपरान्त क्षयन, मोजन और जलपान करके फिर आचमन करे, वलोंको पहन कर आचमन करनेकी विधि है, और जोरका स्पर्शकरके रोमोंके बिना श्मश्रुका केप मुख नहीं है, वलोंमें जमी हुई वस्तु वारोंकेही समान है, और जो मुखके नीचे आचमनका शेष जल रखनाय वही उसके निगलवही मुखकी शुद्धि है, और जो दूसरोको आचमन कराते समयमें अपने पैरोंपर जलकी धृव गिर जाय वही वह पृथ्वीके समान है, वनसे अशुद्धि नहीं होती, मोजनके स्थानमें परोछवे समयमें यदि उच्छिष्टका स्पर्श होजाय वही हाथ के द्रव्यको पृथ्वीपर रखकर आचमन करे, फिर परोछे, जिस जिसमें अपवित्रताकी शंका हो वही उसमें जलका छीटा वे;

श्रुताश्च मृगा वन्या पातित च खगै फलम् ॥ बालैरनुपविद्वान्त स्त्रीभिरा-  
चरित च यत् ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्जुचीनाह प्रजापति ॥ प्रसारितं च  
यत्पप्यं य दोषा स्त्रीमुखेषु च ॥ मशकैर्मक्षिकाभिश्च भीली येनोपहन्यते ॥  
सितिस्याश्चैव या आपो गवां प्रीतिकराश्च या ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्जुची  
नाह प्रजापतिरिति ।

कुत्तेका भारहुमा मृग पक्षियोंका गिराया फल, बालकोंका हुमा; और स्त्रियोंका कियाहुमा आचरण, प्रजापतिने विचारकर इन सबको पवित्र कियाई वृक्षानोंपर फैली हुई बंधनेकी वस्तु, खीके मुखक दोष, मच्छर, और मकड़ी जो नीलकर बैठजाय; जिनसे गे की प्रति हो पृथ्वीपर स्थितजल इन सबको गणना करके प्रजापतिने शुद्ध कराई।

लेपं गर्धापकर्षणम् । क्षीयममेध्वलितस्य । अग्निर्मृदा च तेजसमृण्मपदारव  
स्रातधानां भस्मपरिमाजनं प्रदाहृतक्षणनिर्णमनानि तेजसवदुपलमणीनां मापि  
घृच्छखशुकीनां वारुयदस्नां रज्जुबिदलधमनां विलयच्छौचम् । गोवाटिः  
फलचमसानां गौरसर्पपकन्देन क्षीमजानाम् ।

जिसमें अशुद्ध वस्तु लगीहो उसकी शुद्धि जिससे दुर्गंध जाती रहै ऐसे लेप वा जल तथा मट्टीसे होजातीहै; सुवर्णके, मट्टी, काठ, और तन्तुओंके पात्रोंकी शुद्धि क्रमसे भस्मके मांजने, पकाने छीलने और घोनेसेही होजाती है; पत्थर और मणियोंकी शुद्धि सुवर्ण आदिके पात्रोंके समान है, शंख और सीपीके पात्रोंकी शुद्धि मणिके समान है और हड्डेकी शुद्धि काष्ठके समान है, रस्सी, विदल, और चाम, इनकी शुद्धि वस्त्रोंके समान है, फल, यज्ञका पात्र, इनकी शुद्धि चँवरसे होतीहै, रेशमके वस्त्रोंकी शुद्धि सफेद सरसोंके खलसे होतीहै,

भूस्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थाने दोषविशेषात्प्राजापत्यमुपैति ।

पृथ्वीकी शुद्धि जलके छिडकने, ब्रुहारने तथा लीपने और खोदनेसे होजातीहै, और जो किसी स्थानमें अविक दोष हो तौ प्राजापत्य व्रत करै ,

अथाप्युदाहरति । खननादहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि । चतुर्भिः शुद्धयते भूमिः पंचमात्रोपलेपनात् ॥ रजसा शुद्धयते नारी नदी वेगेन शुद्धयति । भस्मना शुद्धयते कांस्यं ताम्रमस्लेन शुद्धयति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरिवैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्धयेत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥ अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयेत तथा राजतम् ।

इसमेंभी यह वचन प्रासांगिक है कि खोदने जलाने, वर्षामें गौओंके फिरनेमें इन चार प्रकारसे और पांचवें लीपनेसेभी शुद्धि होजाती है, खीकी शुद्धि रजसे है, नदीकी शुद्धि वेगसे है, काँसीके पात्रकी शुद्धि भस्मसे है, खटाई से ताँबेके पात्रकी शुद्धि है, मदिरा, मूत्र, विषा, कफ, राध, आंशु, रुधिर, जिस मट्टीके पात्रमें इनका स्पर्श होगयाहो वह अग्नि में पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता, जलसे शरीरकी शुद्धि होती है, सत्यसे मनकी शुद्धि है, विद्या और तपस्याके द्वारा भूतात्माकी शुद्धि होतीहै, ज्ञानके उदयसे बुद्धि निर्मल होतीहै सुवर्ण और चाडीके पात्रकी शुद्धि जलसे होती है.

अंगुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् । अंगुल्यग्रे मानुषम् । पाणिमध्य आग्नेयम् । प्रदेशिन्यंगुष्ठयोरंतरा पित्र्यम् । रौचंत इति सायंप्रातरशनान्यभिपूजयेत् । स्वदितमिति पित्र्येषु । संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कनिष्ठा उंगलीकी जडमे कायतीर्थ है, उंगलियोंके अग्रभागमें मनुष्यतीर्थ है अंगूठेके और प्रदेशिनीके बीचमें पितृतीर्थ कहाहै, सायंकाल और प्रात.कालमें अन्नकी पूजा करै, और ये रुचिकर अच्छे अन्नहैं ऐसी प्रशंसाकरे और पितरोंके भोजनमें स्वदित, ( अच्छाभोजन खाया) और विवाहआदिके भोजनमें "अच्छा संपन्नहुआ" ऐसा कहै ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ४

प्रकृतिविशिष्टं वातवर्ष्यं सुस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्वाह राजन्य-  
कृतं ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यं पद्मघां शूद्रो अजायत । इति निगमो भवति, ।  
गायत्र्या छद्सा ब्राह्मणमसृजत् । त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचि-  
च्छद्दसा शूद्रमित्यसस्कार्यो विश्वायते ॥ त्रिष्वेव निवासः स्यात्सर्वेषां सत्यम-  
क्रोधो दानमर्हिंसा प्रजनन च ।

प्रकृति और संस्कारके भेदसे चारों वर्णोंका विभाग है, और इतना भेदभी है कि इस  
ईश्वरकं मुखसे ब्राह्मण, मुखाभोंसे क्षत्रिय, और जघाभोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए  
हैं; गायत्री छद्से ब्राह्मणकी सृष्टि है, और त्रिष्टुमछंदसे क्षत्रीकी सृष्टि है, और अगतीछंदके  
योगसे वैश्यकी सृष्टि ईश्वरनेकी है, अर्थात् छपरोंके भेदके मंत्रोंसे इनका संस्कार होताहै,  
परन्तु शूद्रकी सृष्टि किसी छद्योगसे नहीं की इससेही शूद्र संस्कारके हीन जानाआताहै,  
प्रथम तीन वर्णोंमेंही संस्कारकी स्थिति है, चतुर्थे वर्णही सत्यबावी क्रोधरहित दानी और  
हिंसारहित हुए, और चातकर्मही उनका धर्म है,

पितृदेषतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् । मधुपर्कं च यज्ञे च पितृद्वैतकम्मणि ॥  
अथैव च पशुं हिंस्यान्नान्ययेत्यश्वीन्मनु ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्प-  
द्यते क्वचित् ॥ नच प्राणिषधं स्वर्ग्यस्तस्मादागे, वयोऽवधं ॥ अयापि ब्राह्म-  
णाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोर्षं वा महाज वा पशुदेषमस्या-  
तिथ्यं कुर्वतीति ॥

पितर, देवता, और अतिथि इनकी पूजामें पशुकी हिंसा करे, कारण कि मनुका यह  
वचन है कि मधुपर्कमें यज्ञमें पितर और देवताओंके निमित्त जो कर्म हैं उनमें पशुकी हिंसा  
करे, तो कुछ दोष नहीं है, अन्यथा हिंसा न करे; बिना प्राणियोंकी हिंसाकिये मांस कभी  
उत्पन्न नहीं होता; प्राणियोंकी हिंसामें स्वर्गकी देनेबासी है, इस कारण यागयज्ञमें जो  
प्राणियोंकी हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है, बिना हिंसाके हुए स्वर्ग नहीं मिलसकता, ब्राह्मण  
वा क्षत्रियके अभ्यागत होनेपर इनके किये बड़ा बैस वा बड़ा बकरा पकाने; इसकारण  
इसके आतिथ्य करनेका नियम है

उदकक्रियामशीर्षं च द्विषर्षांश्चसृष्टिसूत उभयं कुर्यात् । वृतजननावित्येके ।  
शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमाणा आपोऽभ्यवर्षति ततस्तत्रस्या एव सभ्यो-  
चराम्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वति । अयुग्मा दक्षिणामुस्ता । पितृणां वा  
एया दिक् या दक्षिणा । गृहान्मजित्वा स्वस्तरे अहमन्नत आसीरन् ।  
अशक्नी श्रितोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

जो वर्षसे अधिक वर्षत्वामें मरे तो अश्वान और अश्वीय दोनोंही करने उचित हैं, और  
जो २ देवतामें कहतेहैं, कि यदि बाण्डके दांत अममाये हों तब यह मरणाव पी दोनों  
कर्मोंका करवा उचित है, अथके शरीरमें अग्निज्वालाकर पिताकी ओरकी दिग्वाले बड़की

ओरको चलावाधै और जलमें खडाहोकर दोनों हाथोंसे जलदान करै, और अयुग्म तथा दक्षिण दिशाको मुखकरै, कारण कि दक्षिण दिशा पितरोंकी है, फिर घरमें जाकर तीन दिनतक उपवासकर अच्छे आसनपर बैठे, शक्तिके न होनेपर मोल लेकर खाले,

दशाहं शावमाशौचं सपिंडेषु विधीयते । मरणात्प्रभृतिदिवसगणना । सपिंडता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्वीजानि निमित्तत्वात् ।

सपिंडियोंमें मरणअशौच दसदिनतक होता है, और मरनेके दिनसे दिनोंकी गिनती है, सात पीढीतक सपिंड जानेजातेहै और कुमारी कन्याओंके मरनेका अशौच तीन पीढियोंमें तीन दिनतक होताहै, और विवाही हुई कन्याओंका आशौच जहां कन्या विवाहीहो वही होताहै, इसी भांति उन कन्याओंके जन्मसूतकमें भी भली भांति शुद्धि की इच्छाकरनेवालोंको अशौच है, कारण कि, माता और पिता बीजके निमित्त हैं,

अथाप्युदाहरंति । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचिर्ज्ञेयं तन्न पुंसि न विद्यते ॥ ब्राह्मणो दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः । वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ अशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्तवान् ॥ स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ अनिर्दशाहे पक्वान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ॥ कृमिर्भूत्वा स देहांते तद्विद्यामुपजीवति ।

इस विषयमें यह वचन है कि, यदि सूतकमें स्पर्श न करै तौ पुरुषको अशौच नहीं है, कारण कि जन्मसूतकमें रज अशुद्ध है और वह रज पुरुषमें नहीं है ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय, एक पक्षमें, वैश्य बीसरात्रिमें और शूद्र, एक महीनेमें शुद्ध होताहै, जो मनुष्य शूद्रके अशौच वा सूतकमें भोजन करताहै, वह पुरुष नरकोंमें जाता है या सर्पादि योनिमें उत्पन्न होताहै जो निर्मात्रित होकर दस दिनके भीतर भोजन करै, वह कीडा होकर उधी वृत्तिसे जीविका बिर्वाह करताहै,

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वासनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिंडानां त्रिरात्रमाशौचम् । सद्यः शौचमिति गौतमः । देशांतरस्ये प्रेते ऊर्ध्वं दशाहञ्चैकरात्रमाशौचम् । आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्त्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ।

उस पापसे मनुष्य बारह वा छैः महीनेतक उपवासकरे साहिताका पाठकरनेसे पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे जानागया है, कि दो वर्षसे कम अवस्थाका बालक मरजाय वा गर्भपात होजाय तौ सपिंडोंको तीन रात्रिका अशौच होताहै, और गौतम ऋषिका यह वचन है कि उसी समय शुद्धि होजातीहै,

भूपयतिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिक्षः अभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ४

प्रकृतिविशिष्टं चातुषर्ष्यं सस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदाह राजन्य-  
कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यं पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इति निगमो भवति ।  
गायत्र्या छंदसा ब्राह्मणमसृजत् । त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचि-  
च्छंदसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवासः स्यात्सर्वेषां सत्यम-  
क्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ।

प्रकृति और संस्कारके भेदसे चारों वर्णोंका विभाग है, और इनको भेदभी है कि इस  
ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, जुबानोंसे क्षत्रिय, और जपानोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए  
हैं, गायत्री छन्दसे ब्राह्मणकी सृष्टि है, और त्रिष्टुभछन्दसे क्षत्रीकी सृष्टि है, और जगतीछन्दके  
योगसे वैश्यकी सृष्टि ईश्वरनेही है, अर्थात् अपरोक्ष भेदके मतोंसे इनका संस्कार होवाहै,  
परन्तु शूद्रकी सृष्टि किसी छन्दयोगसे नहीं की इससेही शूद्र संस्कारके हीन जानाजावाहै,  
प्रथम तीन वर्णोंमेंही संस्कारकी स्थिति है, सम्पूर्ण वर्णही सत्यवादी क्रोधरहित शान्ति और  
हिंसारहित हुए, और जातकर्मही इनका धर्म है,

पितृदेवतातिथिपूजायां पशु हिंसात् । मनुष्यैश्च यक्षैश्च पितृदैवतकर्मणि ॥  
अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यधीन्मनु ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्प-  
द्यते कश्चित् ॥ मत्तं प्राणिष्वथ स्वर्ग्यस्तस्माद्यगे षधोऽवध ॥ अयापि ब्राह्म-  
णाय वा राजन्याय वा अम्यागताय वा महोक्ष वा महाज वा पचेदेवमस्या-  
तिर्ष्यं कुर्वतीति ॥

पितर, देवता, और अतिथि इनकी पूजामें पशुकी हिंसा करे, कारण कि मनुका यह  
वचन है कि मनुष्यकर्ममें यज्ञमें पितर और देवताओंके निमित्त जो कर्म हैं उनमें पशुकी हिंसा  
करे, तो कुछ दोष नहीं है, अन्यथा हिंसा न करे, बिना प्राणियोंकी हिंसाकिये मांस नहीं  
उत्पन्न नहीं होता, प्राणियोंकी हिंसाही स्वर्गकी वेधेवाली है, इस कारण यागयज्ञमें जो  
प्राणियोंकी हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है, बिना हिंसाके हुए स्वर्ग नहीं मिलसकता, ब्राह्मण  
वा क्षत्रियके अम्यागत होनेपर इनके किये बड़ा बड़ा वा बड़ा बकरा पकावे, इसप्रकार  
इसके आतिथ्य करनेका नियम है,

उदकक्रियामक्षीर्षं च द्विषर्पांश्चमृतिमृत तमयं कुर्यात् । दत्तजननादित्येके ।  
शरीरमग्निना संपोष्य । अनवेक्षमाणा आपोऽभ्यवषति ततस्तत्रस्या एष सम्यो-  
चरान्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वति । अयुग्मा दक्षिणामुक्त्वा । पितृणां वा  
पया दिक् वा दक्षिणा । गृहाम्प्रजित्वा स्वस्तरे अहमहनत आसीरन् ।  
अशक्तौ धीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

जो वर्णसे अधिक अवस्थामें मरे तो बछरान और अक्षौच दोषोंही करने कथित हैं, और  
कोई २ देखामी कहतेहैं कि यदि बालकके हात अम्यामे हो तब वह मरवाय तो दोनों  
कर्मोंका करना कथित है, मृतके शरीरमें अग्निजगाकर पिवाकी ओरकी बिनादेसे बछरी

मांगो तव स्त्रियोने कहा कि हम ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो तब इन्द्रने कहा कि हम आज्ञा देतेहैं और प्रसन्न होकर कहतेहैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर स्त्रियोने कहा कि गर्भके रहनेपरभी सन्तान होनेके समयतक हम पुत्रके साथ मैथुन कर-सकें एक वर हमको यहभी मिले, तब इन्द्रने कहा कि "अच्छा" ऐसाही होगा, तब वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करतीहुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होतीहै, इसकारण रजस्वला स्त्रीका अन्न नहीं खाना. इसी कारण रजस्वला स्त्री रजरूपी ब्रह्महत्याको महीने महीनेमें छोडके मुक्त होतीहै जैसे सर्प केचलीको छोडके मुक्त होजाताहै; तदाहुर्व्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते आचारा याश्च योषित इति सेयमुपयाति । उदक्यायास्त्वासते तेषां ये च केचिदनमयः गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यही ब्रह्मवादियोने कहाहै कि, रजस्वला स्त्री अजन न लगावै, उवदन न लगावै, इसनिमित्त ऐसी स्त्रीका अन्न लेना उचित नहीं, इसकारण उस समय उस अवीरा स्त्रीको इन्द्रकायोंमें ब्रह्मवादियोंकी सम्मति नहीं है । जो रजस्वला स्त्रीके साथ सम्भोग करतेहैं, जो अभिहोत्रसे हीन हैं, और जो वेदपाठी हैं, वह गृहस्थी होकर भी सदा शूद्रके समान हैं ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भापाटीकाया पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह न नश्यति ॥ १ ॥ नैनं प्रयाति न ब्रह्म नामिहोत्रं न दक्षिणा ॥ हीनाचाराश्रितं भ्रष्टं तारयन्ति कथंचन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव तापतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः पडंगा आखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अंधस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥ ४ ॥ नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्त्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥ ६ ॥ आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्तरः ॥ श्रद्धधानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

यह निश्चय है कि आचारही सबका परम धर्म है, आचारभ्रष्ट मनुष्य इसलोक और परलोकमें नष्ट होताहै जो मनुष्य आचारसे रहित और भ्रष्ट हैं उनको तपस्या, वेदाध्ययन, अभिहोत्र और दक्षिणा

राजा सम्पत्तीं शमशान रत्नस्वस्त्र, सूचिष्ठा, और अशुद्ध इनका स्वर्णकर शिर सहित जड़-  
में ज्ञान करे तब पवित्र होता है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ मायादीक्यां अनुषोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पचमोऽध्याय ५

अस्वतत्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनभिरनुदयया च । अनृतमिनि विज्ञापते ।

पुरुष स्वतंत्र है और स्त्री पराधीन है, अभिहोत्रसे हीन और रूप तथा दानके अयोग्य है  
शुंठ, रूप है यह शास्त्रसे जाना जाता है, ॥

अथाप्युदाहरति । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ पुत्राश्च स्याधिरे  
भावे न स्त्री स्यात्प्रमर्दति ॥ तस्या भर्तुरभिवार उक्तं प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

इस विषयमें यह भी वचन है कि यास्यावस्थामें पिता रक्षा करता है, यौवनव्यवस्थामें  
पति रक्षा करता है, और वृद्धावस्थामें स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुत्र है, स्त्री कभी स्वाधीन  
नहीं होसकती; और प्रायश्चित्त तथा स्त्रीकाके समयमें स्त्रीको पतिका अवलंबन करा है;

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्र रजस्वलाऽशुचिर्भवति ।

सा नाऽज्यान्नाभ्यज्यात्वाप्सु स्नायात् । अथ शपीत विद्या न स्यात्पात् नार्भि

स्युशेत् न रज्जु प्रमृजेत्त दंतान्धावयेत्त मांसमदनीयात् न महासिरीसयेत् न

हृत्सेत्त किंचिदाधरेस्नानलिना जलं पिबेत् न क्षपरेण वा न छोह्नितायसेन वा

विज्ञापते हींद्रस्त्रिशीर्षाणम् स्थाष्टं इत्या पाप्मना गृहीतो मन्युत इति । तं

सर्वापि भूतान्यभ्याश्रोसन् शृण्वन् शृण्वन् शृण्वन्निति स त्रिपठपापावत्

अस्यैमे ब्रह्महत्यायै तृतीयभाग गृहीतेति गत्थिवमुषाच ता अशुषन् किन्नोभूदिति

सोमबीदर वृणीष्वमिति ता अशुषन्वृती प्रजा विदामह इति काम मा विजानी

मोऽश्लं भवाम इति यथेच्छया आप्रसषकालात्पुरुषेण सह भैयुनभावेन संभवाम

इति च एपोस्माक वरस्तयेद्विणोक्तास्ता प्रतिजगृह्वं तृतीयं शृण्वहत्याया सैपा

शृण्वहत्या मासिमास्याधिर्भवति । तस्माद्रजस्वलात्त नादनीयात् । अतश्च

शृण्वहत्याया एवैतद्रूप प्रतिमुष्यास्ते कंसुकमिव ।

यैसा कहा है कि, मासि २ में अशुषणी होनेसे सम्पूर्ण पाप मष्ट होजाते हैं, यह स्त्री  
रत्नस्वस्त्रा होनेपर तीनदिनतक अशुद्ध रहती है, रत्नस्वस्त्रा स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावे, उबटन  
न करे, अन्नमें ज्ञान न करे, पुष्पीपर शयनकरे, अभिक्षा त्यक्त न करे, और रस्तीको न  
धोवे, शीतको न धावे मांसको न खाए परको न देखे ईसे नहीं और कुछ कर्म न करे छटे  
पात्रमें अंशुखिसे कुछ न लिये, और छोड़ेके पात्रसेभी कुछ पीनेका निषेध है यह शास्त्रसे  
जानागया है, कि इन्द्रने हीन क्षिरवाले लवणाके पुत्र विश्वरूपको मारकर अपनेको पापसे  
गृहीत मान्य तब यह इन्द्रको सब प्राणिपति इस प्रकार बोला कि हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३  
तब यह इन्द्र शिष्योंके निकट जाकर यह बोला कि इस मेरी ब्रह्महत्याका तीसरा पापका  
भाग तुम ग्रहणकरो, शिष्योंने यह सुनकर कहा कि तुम्हें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि वर

मांगो तव स्त्रियोने कहा कि हमें ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो तव इन्द्रने कहा कि हम आज्ञा देतेहैं और प्रसन्न होकर कहतेहैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर स्त्रियोने कहा कि गर्भके रहनेपरभी सन्तान होनेके समयतक हम पुरुषके साथ मैथुन कर-सकें एक धर हमको यहभी मिलै, तव इन्द्रने कहा कि "अच्छा" ऐसाही होगा, तव वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करतीहुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होतीहै; इसकारण रजस्वला स्त्रीका अन्न नहीं खाना इसी कारण रजस्वला स्त्री रजस्वली ब्रह्महत्याको महीने महीनेमे छोडके मुक्त होतीहै जैसे सर्प कंचलीको छोडके मुक्त होजाताहै; तदाहुर्ब्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते आचारा याश्च योषित इति सेयमुपयाति । उदक्यायास्त्वासते तेषां ये च केचिदनमयः गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यही ब्रह्मवादियोंने कहाहै कि, रजस्वला स्त्री अंजन न लगावै, उवटन न लगावै, इसनिमित्त ऐसी स्त्रीका अन्न लेना उचित नहीं, इसकारण उस समय उस अवीरा स्त्रीको इन्द्र काय्योंमें ब्रह्मवादियोंकी सम्मति नहीं है । जो रजस्वला स्त्रीके साथ सम्भोग करतेहैं, जो अभिहोत्रसे हीन है, और जो वेदपाठी हैं, वह गृहस्थी होकर भी सदा शूद्रके समान हैं ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

### षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥ नैनं प्रयाति न ब्रह्म नामिहोत्रं न दक्षिणा ॥ हीनाचारश्रित्तं भ्रष्टं तारयन्ति कथंचन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव तापतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्प वेदाः पडंगा अखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अंधस्य दारा इव दर्शनियाः ॥ ४ ॥ नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च ॥ ६ ॥ आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ॥ आचाराच्छ्रयमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्धधानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

यह निश्चय है कि आचारही सबका परम धर्म है, आचारभ्रष्ट मनुष्य इसलोक और परलोकमें नष्ट होताहै जो मनुष्य आचारसे रहित और भ्रष्ट हैं उनको तपस्या, वेदाध्ययन, अभिहोत्र और दक्षिणा यह किसी प्रकारभी उद्धार नहीं करसकते, यदि छै.हो अंगोसद्विह



राजा संन्यासी मनमान रजस्वला, सुविद्या, और अशुद्ध इनका स्पर्शकर क्षिर सहित जल में स्नान करै तब पवित्र होताहै ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ मायाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### पचमोऽध्याय ५

अस्वतत्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनभिरनुदक्ष्या च । अनृतमिनि विज्ञायते ।

पुरुष स्वतंत्र है और स्त्री पराधीन है, अभिरहोत्रसे हीन और अप तथा दाम्नेक अयोग्य है झूठ, रूप है यह शास्त्रसे जाना जाताहै; ॥

अप्याप्युदाहरंति । पिता रक्षति कौमारे भता रक्षति यौवने ॥ पुत्राश्च स्याविरे भावे न स्त्री स्वातभ्यमर्हति ॥ तस्या भर्तुरभिचार उक्तं प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

इस विषयमें यह भी वचन है कि वास्तवस्थामें पिता रक्षा करताहै, यौवनमवस्थामें पति रक्षा करताहै, और पुत्रावस्थामें स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुत्र है स्त्री कभी स्वाधीन नहीं होसकती, और प्रायश्चित्त तथा क्रीडाके समयमें स्त्रीको पतिका अवलंबन कहाहै,

मासि मासि रजो ह्यसां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिराश्रं रजस्वलाऽशुचिभवाति ।

सा नाञ्ज्यान्नाम्यञ्जात्ताप्सु स्नायात् । अथ शयीत विद्या न स्वप्यात् नार्मि

स्पृशेत् न रज्जु प्रमृजेन्न वतान्याषयेत् न मांसमश्नीयात् न महाग्निरीक्षयेत् न

इसेत् किञ्चिदाचरेत्त्रांजलिना अलं पिबेत् न सर्परेण वा न लोहितापसेन वा

विज्ञायते ह्यद्रिस्त्रिशीर्षाणम् त्वाष्ट्रं इत्या पाप्मना गृहीतो मम्युत इति । त

सर्षाणि सूतान्यभ्याक्रोक्षन् घृणहन् घृणहन् घृणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत्

अस्यैमे ब्रह्मइत्यायै तृतीयभागं गृहीतेति गत्विवसुधाच ता अद्भुवन् किन्नोभूदिति

सोमवीद्वर वृणीष्यमिति ता अद्भुवन्तृती प्रमां विंदा मह इति कामं मा विजानी

मोऽलं भवाम इति यथेच्छया आपसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवाम

इति च एयोस्मार्कं धरस्तर्षेद्रणोकास्ता प्रतिजगुः तृतीयं घृणहत्याया सैपा

घृणहत्या मासिमास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलात्त नास्नीयात् । अतश्च

घृणहत्याया एवैतद्रूप प्रतिमुच्यस्ते कञ्चुकमिव ।

पैसा कहाहै कि, महीने २ में जसुभ्मी होमेसे सम्पूर्ण पाप मष्ट होजातेहैं; यह स्त्री रजस्वला होमेपर तीनदिनतक अशुद्ध रहतीहै, रजस्वला स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावै, चबटन न करे, अलमें स्नान न करे, पृथ्वीपर शयनकरे, अग्निका स्पर्श न करे, और रस्तीको न धोवै, दावोंको न धोवै सांसको न जाप परको न बेजे हँसे नहीं और कुछ कर्म न करे छन्दे पात्रमें अशुद्धिसे अन्न न पिये, और छोड़ेके पात्रसेभी अन्न पीनेका निषेध है यह शास्त्रसे जानागयाहै, कि इन्द्रने तीन क्षिरबाळे त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मारकर अपनेको पापसे गृहीत माना तब उस इन्द्रको सब प्राणियोंने इस प्रकार बोझा कि हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३ तब यह इन्द्र क्षियोंके निकट आकर यह बोझ कि इस भेरी ब्रह्महत्याका तीसरा पापका माग तुम ग्रहणकरो, क्षियोंने यह सुनकर कहा कि हमें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि बर

गृहस्थीको इसप्रकार शौच करना कर्तव्य है इससे दुगुना ब्रह्मचारीको, तिगुना वानप्रस्थको, और यतिको चार गुना करना कर्तव्य है,

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्म-  
चारिणः ॥ १८ ॥ अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुञ्जाना  
एव सिद्धयन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु निय-  
मेषु च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

आठ ग्रास यतिका भोजन है. सोलह ग्रास वानप्रस्थका भोजन है, बत्तीस ग्रास गृह-  
स्थीका भोजन है, ब्रह्मचारीके भोजनका नियम नहीं है, वैल ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ यह  
तीनों भोजनसेही सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, और भोजन न करनेवाले इनकी सिद्धि नहीं है, तप,  
दान, व्रत, उपहार, नियम, यज्ञ, पढाना, धर्म जो इनमें आसक्त न हो वह निष्क्रियहै,

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेत-  
द्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दांताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे नि-  
वृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

योग, तप, इन्द्रिय दमन, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विद्या, विज्ञान, आस्तिक्य, यह  
लक्षण ब्राह्मणके हैं, जो ब्राह्मण सबजगह इन्द्रियोंको दमन करनेवाले हैं, और जिनके कान  
वेदसे पूर्ण हैं, जो जितेन्द्रिय हैं जो प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त हैं और जो प्रतिग्रह लेनेमें  
संकोच करतेहैं वह ब्राह्मण उद्धारकरनेको समर्थ हैं.

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः कर्मचांडाला जन्मत-  
श्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूयां च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पैशुन्यं निर्द-  
यत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ २४ ॥

निंदक, चुगल, कृतघ्नी, क्रोधी यह चारों जने कर्मसे चांडाल हैं, और इसके अतिरिक्त  
पांचवा जातिचांडाल है, अधिक वैर, निन्दा, झूठ, ब्राह्मणको दोष लगाना, चुगलपन, निर्द-  
यता यह सब लक्षण शूद्रके जानने,

किञ्चिद्देदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥

पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

कोई पात्र वेदसे हैं और कोई पात्र तपसे हैं और पात्रोंका भी पात्र वह है कि जो शूद्रके  
अन्नको नहीं खाताहै,

शूद्रान्नरसपुष्टांग अधीयानोपि नित्यशः ॥ जुह्वित्वापि यजित्वापि गतिमूर्ध्वं न  
विदति ॥ २६ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्धियते द्विजः ॥ स भवेच्छू-  
करो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ २७ ॥ शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधि-  
गच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥ २८ ॥

वेदको पढ़ता हुआ मनुष्य आचारहीन होनेके कारण किसी प्रकार सुद्ध नहीं होसकता जिसप्रकार  
आग्निसे लपाये हुए बॉसलेको पक्षी त्यागदेते हैं उसी प्रकार आचारसे हीन ब्राह्मणको सुयुक्त समझ  
वेद त्याग देते हैं; आचारसे हीन मनुष्यको सांगोपांग वेद और छे: हों जंग किस प्रीतिके उत्पन्न करने  
समर्थ हैं, जिस भाँति अंबेको सुन्वर ली, और मायासे बर्चमान और मायाही मनुष्य  
दुःखसे वेद उचका उद्धार नहीं कर सकते, परन्तु मझी भाँतिसे पढ़ा हुआ एक भङ्गर  
वेदका मनुष्यको पवित्र करनेवाला है, दुराचारी मनुष्य छोकमें निश्चित और सर्वथा दुःख  
भागी है वह रोग प्रसं और अस्वायु होवा है, आचारका फल धर्म है, आचारका फल धर्म।  
आचारसे सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है, आचार दुष्ट छत्रनोंका नाश करता है, जो मनुष्य सम्प  
छत्रनोंसे हीन होकर भी केवल एक सवाचारके करनेवाला है, अद्वैत और विचारहीन व  
मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है,

आहारनिर्हारविहारयोगा सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ४

षाण्डिलीवीर्याणि तपस्तपैव घनापुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥

धर्मज्ञ मनुष्य, भोजन, गमन, स्त्रीबा, बाणी, पुत्रि, वीर्य, तप और काम इनको गुप्त  
भावसे करे, ॥

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुद्वस्त्रम् ॥ रात्रौ कुर्यादक्षिणस्य एवं ह्यायुर्न  
हीयते ॥ १० ॥ प्रत्याग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां प्रति च दिग्जम् ॥ प्रति  
सोमोदकं स्रम्यां प्रज्ञा नश्यति मेहत ॥ ११ ॥ न नद्यां मेहन कार्यं न  
अस्मनि न गोमये ॥ न वां कुष्टे न मार्गे च नोत्से क्षेत्रे न क्षाद्वले ॥ १२ ॥  
छायायामन्नकारं वा रात्रावहनि वा दिग्जं ॥ यथासुखमुखं कुर्यात्त्राणवाधधम-  
येषु च ॥ १३ ॥ उद्धृताभिरग्निं कार्यं कुर्यात्त्रानमनुद्धृता मिरपि ॥ आहरे-  
न्मृसिकां विप्रं कृत्वात्ससिकतां तथा ॥ १४ ॥ अंतर्जले देवगृहे वस्तीके  
सूपिकस्थले ॥ कृतशीचावशिष्टा च न प्राह्या पञ्च मृत्तिका ॥ १५ ॥ एका  
श्लिगे करे तिस्र टमाम्यां द्वे तु मृत्तिके ॥ पथ पाने दक्षीकस्मिन्नुभयो सप्त  
मृत्तिकाः ॥ १६ ॥ एतच्छीचं गृहस्यस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ घानमस्यस्य  
त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

मखमूत्रका त्याग दिनमें उत्तरकी ओरको मुखकरके करे और रात्रिमें दक्षिणको मुखकर-  
के करे, कारण कि ऐसा करनेसे आपुकी हाति नहीं होती; अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण,  
चन्द्रमा जल संस्था इनके सम्मुख जो मखकात्याग करावै उसकी मुद्रि मष्ट होजाती है, और  
नदी, भस्म, गोबर, सुता हुआ खेत, मार्ग और बोया खेत, घास, इनमें मखका त्याग न करे  
छया वा अंधकारके समयमें रात्रि अथवा विषमों और प्राणोंकी हिसामें अपनी इच्छानुसार  
मुखकरके मखका त्यागकरे, खडको आप निकालकर स्नान करे, बिना निकाले खडसे किना  
रेपर मट्टी अथवा रैत बाहर निकालकर स्नान करके, खडके भीतरकी, देवताके स्थानकी  
मट्टी बॉमीकी मट्टी चुड़ोकी खोदी हुई मट्टी और लीचसे बनी यह पाँच प्रकारकी मट्टी छेनी  
बन्धित नहीं किंगमें एकवार, बरिे हाथ तीन बार इसके पीछे दोनों हाथोंमें दोबार मट्टी  
छगावै, गुत्रामें पाँचबार, बरिे हाथमें दसबार और फिर दोनों हाथोंमें सातबार मट्टी छगावै

गृहस्थीको इसप्रकार शौच करना कर्तव्य है इससे दुगुना ब्रह्मचारीको, तिगुना वानप्रस्थको, और यतिको चार गुना करना कर्तव्य है,

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्म-  
चारिणः ॥ १८ ॥ अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुंजाना  
एव सिद्धयन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु निय-  
मेषु च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

आठ ग्रास यतिका भोजन है. सोलह ग्रास वानप्रस्थका भोजन है, बत्तीस ग्रास गृह-  
स्थीका भोजन है, ब्रह्मचारीके भोजनका नियम नहीं है, वैल ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ यह  
तीनों भोजनसेही सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, और भोजन न करनेवाले इनकी सिद्धि नहीं है, तप,  
दान, व्रत, उपहार, नियम, यज्ञ, पढाना, धर्म जो इनमें आसक्त नहो वह निष्क्रियहै,

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेत-  
द्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दांताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधे नि-  
वृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

योग, तप, इन्द्रिय दमन, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विद्या, विज्ञान, आस्तिक्य, यह  
लक्षण ब्राह्मणके हैं, जो ब्राह्मण सबजगह इन्द्रियोंको दमन करनेवाले हैं, और जिनके कान  
वेदसे पूर्ण हैं, जो जितेन्द्रिय हैं जो प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त हैं और जो प्रतिग्रह लेनेमें  
संकोच करतेहैं वह ब्राह्मण उद्धारकरनेको समर्थ हैं.

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः कर्मचांडाला जन्मत-  
श्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूयां च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पैशुन्यं निर्द-  
यत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ २४ ॥

निदक, चुगल, कृतघ्नी, क्रोधी यह चारों जने कर्मसे चांडाल हैं, और इसके अतिरिक्त  
पांचवा जातिचांडाल है, अधिक वैर, निन्दा, झूठ, ब्राह्मणको दोष लगाना, चुगलपन, निर्द-  
यता यह सब लक्षण शूद्रके जानने;

किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् ॥

पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

कोई पात्र वेदसे हैं और कोई पात्र तपसे हैं और पात्रोंका भी पात्र वह है कि जो शूद्रके  
अन्नको नहीं खाताहै,

शूद्रान्नरसपुष्टांग अधीयानोपि नित्यशः ॥ जुह्वित्वापि यजित्वापि गतिमूर्ध्वा न  
विदति ॥ २६ ॥ लूदान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥ स भवेच्छू-  
करो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ २७ ॥ शूदान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योधि-  
गच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥ २८ ॥

जिसका स्त्रीर शूद्रके अन्नसे पुष्ट है वह चाहे नित्य वेद पढ़ताहो, और अग्निहोत्र तथा यज्ञकोभी करताहो परन्तु तौभी वैकुण्ठको नहीं प्राप्त होसकता, जिस ब्राह्मणके मरतेसमय शूद्रका अन्न खवरमें रहजाताहै, वह सूकरकी योनि पाताहै, अथवा शूद्रके कुष्ठमें अन्न छेताहै; शूद्रके अन्नको भोजन कर मैथुन करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह पुत्र जिसके अन्न खानेसे उत्पन्न हुआहै उसीका है, इसीकारण वह स्वर्गके जानेयोग्य नहींहै,

स्वाध्यायाद्वा योनिमित्रं प्रशांत चैतन्यस्यं पापभीरु बहूनाम् ॥

स्त्रीपुक्तात्रं धार्मिक गोशरप्य व्रतैः क्षांत तादृशं पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

जो वेदके पढ़नेमें युक्त है, आतिका मित्र, शांतस्वभाव, चैतन्य ( ब्रह्म ) में स्थिति, पापसे बरनेवाला, बहुत धन और स्त्रीकी पाछन पोषण करना, धर्मज्ञता, गौशौकी रक्षा करना, और जो व्रतोंसे यकाहो उसको पात्र कहतेहैं

आमपात्रे यथा न्यस्त शीरं दधि घृत मधु ॥ विनश्येत्पात्रदीर्घत्यात्तच्च पात्र  
रसाश्च ते ॥ ३० ॥ एव गां च हिरप्यं च धत्तमश्वं महीं तिष्ठान् ॥ अविदा  
न्यतिगृह्णानो भस्मीभवति वारुयत् ॥ ३१ ॥

कबे पात्रमें रक्साहुमा जो घृत, दही तथा घृत है जिसमेंसे पात्रकी दुर्बलतासे वह पूर्वोक्त रस और वह पात्र मष्ट होजाताहै उसीप्रकार जो मूर्ख गौ सुवर्ण, बस, घोडा, पृष्णी, ठिठ औ इनको ग्रहण करताहै वह काष्ठके समान मरम होजाताहै,

नागं नस्र च वादित्रं कुर्यान्नस्वापोजलिना पिबेत् ॥ न पादेन न पाणिना वा  
राजानमभिहन्त्यात् । न अलेन जलं नेष्टकामिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं  
न कल्कपुटको भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

भंग और नखोंसे बाजा न बजावै हाथकी बंगुळीसे छछ न पिये, और राजाको पैर तथा हाथसे न मारै, और बछसे अछको न मारै, ईद मारकर फलको न तोड़े, कल्कको दोनोंमें न रक्खे, म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे,

अथाप्युदाहरति । न पाणिपादवपलो न नेत्रवपलो भवेत् । न चांगवपलो  
विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥ पारपर्यागतो येषां वेदः सपरिकृंहण ॥ ते  
शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ यन्न संत नखासर्तं नास्तुत न बहूशु-  
तम् ॥ न सुवृत्तं न दुर्युध वेद कश्चित् ब्राह्मण इति ॥

इति वसिष्ठे धर्मशास्त्रे पद्मोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस विषयमें यहभी कहाहै कि, हाथ पैर नेत्र आदि भंग इनको वपल न करै, और यह शिष्टोंका वपन है कि भंगप्रत्यक्षमन्त्र वेद जिन ब्राह्मणोंके बंधमें परंपरसे बचा आया है, उन ब्राह्मणोंको वेदके प्रत्यक्ष करनेवाले जानना, और जो सत् बसतूको और वेदके पाठक अपाठकको और सहाचारी और असहाचारी जो इनको जानवाहै, अर्थात् जो मद्य ज्ञानी है वही ब्राह्मण है वही यथार्थ ब्राह्मण है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ मन्मथीकायां पद्मोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः । तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्योपनिक्षेप्तुमावसेत् ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् आशरीरविमोक्षणात् । आचार्यं प्रमृते अग्निं परिचरेत् । विज्ञायते हि तवाम्भिराचार्यं इति । संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् । गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छंतमनुगच्छेत् । आसीनं चानुतिष्ठेत् । शयानं चासीनं उपविशेत् । आहूताध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत खट्वाशयनदंतप्रक्षालनाभ्यंजनवर्जंस्तिष्ठेत् । अहनि रात्रावासीतत्रिःकृत्वोःभ्युपेयादपोभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, और संन्यास यह चार आश्रम हैं, इन चारोंके बीचमें ब्रह्मचारी एक वेद वा दो वेदोंको पढ़कर जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं हुआहै वह अपने शरीरको निवेदन करनेके लिये गुरुके घरमें निवास करे, और जबतक शरीरपात न हो तबतक गुरुकी सेवा करता रहे, आचार्यके परलोक जानेपर अग्निकी सेवा करे, कारण कि यह शास्त्रसे विदित हुआहै कि अग्निही तेरा आचार्य है, वचनको रोक कर चौथे, छठे वा आठवे समयमें भोजन करे, और भिक्षा मांगे, गुरुके आधीन रहे, जटा धारण करे, या केवल चोटी रखे, गुरुक चलनेपर आप पीछे २ चले और गुरुके बैठनेपर आप बैठे, गुरुके शयन करनेके उपरान्त पीछे आप शयन करे, जब गुरु पढ़नेके लिये बुलावै तौ पढ़नेको जाय, जो भिक्षा मांगकर लावै वह प्रथम सब गुरुदेवको निवेदन कर आज्ञा ले पीछे आप भोजन करे, शय्यापर शयन, दन्तधावन, और उचटन इनको त्यागदे, दिन रात गुरुके यहा रहे, प्रतिदिन तीनवार स्नान करे

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्णामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विदेत् । पंचमीं मातृबंधुभ्यः सप्तमीं पितृबंधुभ्यः । वैवाह्यमग्निमिंध्यात् । सायमागतमतिथिं नावरुंध्यात् । नास्यानश्नन् गृहे वसेत् । यस्य नाश्नाति वासार्थो ब्राह्मणो गृहभागतः ॥ सुकृतं तस्य यत्किञ्चित्सर्वमादाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि तिथिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ॥ काले प्राप्ते अकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

गृहस्त्री होनेके समयमें, श्रेय और हर्षको रोकना आवश्यक है, गुहकी आज्ञा लेकर समावर्तनस्तान कर, अन्य गोत्रकी जिसको मैथुनका स्पर्श न हुआ हो, जो मुबरी तथा अपनी समान हो, और माताके बन्धुओंसे पौत्रकी और पिताके बन्धुओंसे जो सातवीं हो ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करे फिर वैवाहिक अधिको प्रवर्धित करे, सन्ध्याके समय जो अतिथि आवै उसे अन्यत्र न जानेदे, गृहस्त्रीके घरमें विना भोजनके अतिथि निवास न करे, जिस गृहस्त्रीके घरमें प्रयोजनबासा आयाहुमा प्राण्य भोजन नहीं करताहै, उसका जो कुछ पुण्य है उस सबको लेकर ब्रह्म जासाहै, जो प्राण्य एक रात्रितक रहताहै वहीको अतिथि कहते हैं इसकारण उसकी विधि अनियत है इसी कारणसे उसे अतिथि कहाहै, एक ग्रामका और सङ्ग आयाहुमा अतिथि नहीं होता, समय वा असमय पर आवै परन्तु उसे मूखा न रक्खै,

श्रद्धाशीलोऽस्युहालुरसमन्याधेयाय नानाहितामि स्यात् । अथ सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः सनूताभिर्मानयेत् । यथाशक्ति धाम्नेन सर्वभूतानि ।

गृहस्त्री ब्रह्महृ, और ब्रह्मोत्थय रदै, अतिहोत्रके छिये समर्थ है इसकारण गृहस्त्री अग्नि होत्रसे हीन न रदै, सोमपानमें सामर्थ्य होनेपर सोमपानसे हीन न रदै, स्वाध्याय, सन्तानोत्पादन, और यज्ञ, यह गृहस्त्रीके छिये विशेष करके करने कर्तव्य हैं, परमें आयेहुएको देख बैठना आसन, शय्या, कोमल बचन, इनसे माने शक्तिके अनुसार अग्नसे गृहस्त्रीही सब भूषणको समान है,

गृहस्य एव यजते गृहस्यस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्यस्तु विशिष्यते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यांति सस्थितिम् ॥ एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्ये यांति सस्थितिम् ॥ यथा मातरमाभिस्य सर्वे जीवति अंतवः ॥ एव गृहस्यमाभित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्यपक्षोपधीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जा ॥ श्रुती गच्छन्विधिष्वथ मुहुन्न ब्राह्मणभ्यवते ब्रह्मलोकात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति अतिथेः परमेशाब्देऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गृहस्त्रीही यज्ञकरताहै, गृहस्त्रीही तप करताहै, इसकारण चारों आश्रमोंके बीचमें गृहस्त्री अग्रही भेद है, जिसमांति सम्पूर्ण मद्यिये समुद्रमें मिळजातीहै, वहीप्रकार सम्पूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रममें भिन्ने रहतेहैं; जिसमांति सम्पूर्ण प्राणी जीवतमाके आज्ञासे जीवित रहते हैं, वहीप्रकार भिक्षासे जीविका करनेवाले गृहस्त्रीके आज्ञाके बलसे गृहस्त्रीका आश्रमकर जीवित रहतेहैं, जो नित्य तप्यन्करै, जो नित्य यज्ञोपवीतको धारण करै, जो नित्य वेदको पठता रदै पवित्रके आज्ञा त्याग करै, अतुकाश्रममें हीसंसर्ग करै, निरिये दान करै, यह आश्रम ब्रह्म लोकसे पवित्र नहीं होता ।

इति अतिथस्मृतौ मातृवीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थो जटिलश्चिराजिनवासा ग्रामं च न विशेत् । न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ।  
अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत । ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयो मूलफलभैक्षणाश्रमागतम-  
तिथिमर्चयेत् । दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्राव-  
णकेनाग्निमाधायाहिताग्निःस्यादृक्षमूलिकः ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योऽनग्निरनि-  
केतो दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानंत्यमानंत्यम् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थ जटा धारण करे रहै, चीरवस्त्र तथा मृगछाला धारण करै ग्राममें प्रदेश न करै,  
हलसे जुते हुए अन्नको न खाय, विना जुता अन्न तथा फल मूल इनको इकट्ठा करता रहै,  
ऊर्ध्व रेता रहै, पृथ्वीपर शयन करै, जो आश्रममें अतिथि आवै उसकी पूजा फल मूलसे करै,  
छै महीनेके उपरान्त अग्नि और स्थानको त्याग दे, देवता, पितर, मनुष्य इनको अवश्य दे,  
वह अनन्त स्वर्गको जाता है ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः १०.

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ॥ अथाप्युदाहरंति । अभयं  
सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु  
विद्यते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु विवर्तते ॥ हंति जातानजातांश्च प्रति-  
गृह्णाति यस्य च ॥ संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदभेकं न संन्यसेत् ॥ वेदसंन्यासतः  
शूद्रस्तस्माद्देदं न संन्यसेत् ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ उप-  
वासात्परं भैक्ष्यं दयादानाद्विशिष्यते ॥

संन्यासी सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर प्रस्थान करै, इस विषयमें पंडितोंने कहा है, कि  
जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर विचरण करता है, उसे कभी किसी प्राणीसे  
भय नहीं होता, सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर जो स्थिति करता है उसे किसी प्राणीके  
निकट भय नहीं रहता, और जो ऐसा संन्यासी जिस गृहस्थीसे कुछ भी प्रतिग्रह करता  
है वह उस गृहस्थीके जात और अजात तथा पिछले और अगले सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करता  
है, एक अक्षर ( ॐ ) ही श्रेष्ठ वेद है और प्राणायाम परम तप है, उपवास करनेसे भिक्षाका  
अन्न श्रेष्ठ है, दानकी अपेक्षा दया प्रदान है ।

मुंडोऽभमत्वपरिग्रहः सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम् । विधूमे सन्नमुसले  
एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तुणैर्वैष्टितशरीरः स्थंडिलशाय्यनित्यां  
वसतिं वेसेत् । तथा ग्रामांते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसाज्ञानमधी-  
यमानः अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥

मुंडित, ममता और परिग्रह शून्य होकर रहै, “ आज उस २ के घर जाऊंगा ” ऐसा  
विचार मनमें न कर सात घरोंसे भिक्षा मागै, एक धोतीसे ढका अथवा मृगछाला और



गृहस्त्री होनेके समयमें, क्रोध और हर्षको रोकना आवश्यक है, गुरुकी आज्ञा लेकर समावर्तनस्नान कर, अन्य गोत्रकी बिसकी मैथुनका स्वर्ग न हुआहो, जो पुवती तथा अपनी समान हो, और माताके बंधुओंसे पौषवी और पिताके बन्धुओंसे सो सारथी हो ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करै फिर वैवाहिक अधिभक्त प्रकटित करै, सम्पाके समय जो अतिथि आवै उसे अन्यत्र न जानेदे, गृहस्त्रीके परमें विना भोजनके अतिथि मित्रास न करै, भिस गृहस्त्रीके परमें प्रयोजनवाला आयाहुआ ब्राह्मण भोजन नहीं करतादे, उसका जो कुछ पुण्य है उस सबको लेकर पछा जाताहै, जो माहण एक रात्रितक रहताहै उसीको अतिथि कहते हैं इसकारण उसकी विधि अनियत है इसी कारणसे उसे अतिथि कहाहै, एक मामला और सज्ञ आयाहुआ अतिथि मही होता, समय वा असमय पर आवै परन्तु उसे मूखा न रक्खै,

अद्वाशीलोऽस्पृहाल्लुरलमग्न्यापेयाय नानाहिताभिः स्यात् । अथ च सोमपा-  
नाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तं स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं  
प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः सनुताभिर्मानयेत् । यथाशक्तिः शान्तेन सर्वभूतानि ।

गृहस्त्री अद्वालु, और अछोलुप रवै, अमिहोत्रके छिये समर्थ है इसकारण गृहस्त्री अधि होत्रसे हीन न रवै, सोमपानमें सामर्थ होनेपर सोमपञ्चसे हीन न रवै, स्वाध्याय, सन्तानोत्पादन, और यज्ञ, यह गृहस्त्रीके छिये विशेष करके करने कर्तव्य हैं, परमें आवैहुएको देख उठना आसन, खप्पा, कोमल वचन, इनसे नामे शक्तिके अनुसार अन्नसे गृहस्त्रीही सब भूतोंको समान है,

गृहस्य एष यजते गृहस्यस्तप्यते तपः । त्वत्पूर्णाभाभमाणां तु गृहस्यस्तु विशिष्य  
ते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे याति संस्थितिम् ॥ एवमाभमिणः सर्व  
गृहस्ये याति संस्थितिम् ॥ यथा मातरमाभित्य सर्वे जीवति अतएव ॥ एवं  
गृहस्यमाभित्य सर्वे जीवति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्यपज्ञोपवीती नित्यस्या-  
भ्यापी पतिसाध्वर्जी ॥ ऋती गच्छन्विधिषश्च जुहुष्य ब्राह्मणभ्यवते ब्रह्मलो-  
कात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गृहस्त्रीही यज्ञकरताहै, गृहस्त्रीही तप करताहै इसकारण चारों आत्मोंके पश्चिमें गृहस्त्री अमही भेद है, जिसमांति सम्पूर्ण मरिचें समुद्रमें मिलजातीहै, वहीप्रकार सम्पूर्ण आत्ममें गृहस्यात्ममें मिले रहवेहै जिसमांति सम्पूर्ण प्राणी जीवात्माके आश्रयसे जीवित रहते हैं, वहीप्रकार भिक्षासे जीविका करनेवाले गृहस्त्रीके आत्ममेंके बखसे गृहस्त्रीका आश्रयकर जीवित रहतेहैं, जो नित्य वर्णनकरै, जो नित्य यज्ञोपवीतको धारण करै, जो नित्य देवको पूजा रवै पवित्रके अन्नका त्याग करै, ऋतुक्रममें स्त्रीसर्ग करै, विधिसे हवन करै, यह ब्राह्मण ब्रह्म-  
लोकेसे पवित्र मही होता ।

इति वशिष्ठस्मृतौ धर्मशास्त्रात् अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवीत्युदककमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्न-  
पानवर्जो न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथवा संन्यासीने ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षा मागना वहांसे जो मिलै वह भक्षण करै मीठा, मांस, घी, इनको त्याग दे, गृहस्थी, संन्यासी और साधुओंको प्रसन्न होकर तृप्त करता रहै, अथवा ग्राममें निवास करै कपटी न हो, शरण न रखै, दुर्जन न हो, इंद्रियोंका सयोग न करै, सब प्राणियोंकी हिंसा और अनुग्रहको त्याग कर उपेक्षा करता रहै, चुगलपन, मत्सरता, अभिमान, अहंकार, अश्रद्धा, कठोरता, मनका शोक, निंदा, दंभ, लोभ, मोह, क्रोध, इन सबको त्याग दे, यह सब आश्रमवालोंका इष्ट धर्म कहा गयाहै कि यज्ञोपवीतको धारण करे रहै, जलका कमंडल हाथमें रखै, पवित्र रहै, और ब्राह्मण शूद्रके अन्नको त्यागदे, इसभांति आचरण करनेगला ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### एकादशोऽध्यायः ११.

षट्कर्मणां गृहदेवताभ्यो वलिं हरेत् । श्रोत्रियायान्नं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वाऽन-  
तरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथि भोजयेत् । स्वेष्टायासमानुपूर्व्येण स्वगृह्याणां  
कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृतीस्ततोऽपरा न्गृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ  
निर्वपेच्छूदेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन पुनः पाको  
यदि निवृत्ते वैश्वदेवोऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा अन्नं कारयेद्विजातयेऽह्नि वैश्वान-  
रः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तां हि शान्ति-  
जना विद्भिरिति तं भोजयित्वापासीतासीमान्तादनुव्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

छै. कर्मोंमें रत ब्राह्मण घरके देवताओंको वलिप्रदान करै । वेदपाठी और ब्रह्मचारीको अन्नदेकर फिर पितरोंको अन्नदे, इसके पीछे अतिथिको भोजन करावै, इसके पीछे वंधु वांधवोंको भोजन करावै, फिर वृद्ध, युवा, कुमार, बालक तथा घरके सेवकको जिमावै, इसके पीछे कुत्ते, चाड़ाल पतित तथा कौआआदिको भोजन करावै, फिर पृथ्वीपर वलि दे, और शूद्रोंको उच्छिष्ट दे तथा शेष अन्नको आप सावधानीसे भोजन करै, सब अन्नके उपभोग होजानेपर फिर पाककर, यदि वैश्वदेवकी निवृत्तिपर अतिथि आजाय तौ उसके लिये भोजन बनवावै, कारण कि जो ब्राह्मण अतिथि घरमें आजाय तौ दुबारा अग्नि उत्पन्न होतीहै, और वर्षाके समयके अतिरिक्त अतिथि भोजनके उपरान्त उस घरसे चलाजाय उसको शान्ति-वाले जन जानतेहैं, अतिथिको भोजन कराकर सेवा करै और ग्रामकी सीमातक उसके पीछे २ चलाजाय, अथवा जवतक वह लौटनेको न कहै तवतक चले

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्वेद्युर्ब्राह्मणान् सन्निपात्य यतीन्  
गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः  
शिष्यानपि गुणवतो भोजयेद्विलप्रशुक्लविगृधिश्चावदंतकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥

गौंके बाहोंसे जिसका क्षीर छिपा हो, वह सन्यासी पृथ्वीपर क्षयन करे, और अन्त्ये बसतीमें निवास करे, और इसीप्रकार प्रामके निकट वेवर्मविर वा झूने पर तथा बृहके नीचे निवास करे और मनसे ज्ञानको पढ़े, जिस स्थानपर प्रामके पशु हो उस स्थानपर बिहार न करे ।

अथाप्युदाहरति । अरप्यन्त्यस्य जितेंद्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवतकस्य ॥  
अभ्यात्मवर्षितागतमानसस्य ध्रुवा इनाशृत्तिरुपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिंगोऽभ्यक्ता  
चारः अनुमत्त उन्मत्तवेष ॥

इसमें यह भी वचन है कि, मनमें तिस्य निवास करे, जितेन्द्रिय होकर रहे, जिस सन्यासीको इन्द्रियोंसे प्रीति न हो और जिसका मन आत्माकी चिन्तामें लगा रहे, उसे उन्मत्तवर्षणका अभाव है जिसके चिह्न प्रगट न हों और आचरण प्रगट हों, और जो उन्मत्त हो, जिसका वेष उन्मत्तकी समान हो ।

अथाप्युदाहरति । न शब्दशास्त्रामिरतस्य मोक्षो न चापि लोकाग्रहणे रतस्य ॥  
न भोजनाच्छादनतत्परस्य नचापि रम्यावसयप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ॥ अनुज्ञासनवादाभ्यां भिक्षां छिप्सेत कश्चित् ॥  
अलाभे न विपादी स्याद्भ्रातृभैवेव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रं स्यात्प्रासादात्  
संगादिनिर्गतं ॥ न कुटुम्बां नोदके संगे न खैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे मासने  
क्षेत्रे यः स धि मोक्षवित्तमः ॥

और यह भी कहा है कि, जो केवल शास्त्राधिकारमें उत्तर है ( स्वयं स्वबिहित क्रियाको नहीं करता ), जो लौकिक व्यवहारमेंही उत्तर रहता है ( पारमार्थिक ईश्वर प्रणिधानवि नहीं करता ), जो केवल ज्ञान पान ब्रह्म पात्रादिकोंमेंही आसक्त रहता है और उत्तम मठ मन्दिर् और सुन्दर मठ आदिकोंमेंही उत्तर रहता है उस सन्यासीका मोक्ष नहीं होता है । सन्यासीने लौकिक व्यवहारसे उपकीर्तिका सम्पादन करनेके लिये दिव्य भौम और आंतरिक वृष्टि विष्णु तेजी मन्त्री बगैर पाठों, तथा नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्रानुसार विधि नक्षत्र जन्मपत्रिका आदिकोंके फल, वैश्वकीय औपनिषोंसे चिकित्सा, धर्मशास्त्रादिके अनुसार विधि और प्रायश्चित्तादिकोंका कथन, किरीका कथन सुनके अपने भी अनुवाद करके करना ऐसी वृत्ती रहके भिक्षा मिलानेकी इच्छा करना नहीं, भिक्षा नहीं मिले तो खेद न करे भिक्षा मिलनाप तो हर्ष भी न करे केवल अपने प्राणयात्रा जितने अज्ञानसे होसके उतनेसे निर्बाह करके इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त न रहे जो सन्यासी कुटीमें, उपक्रमे, बृत्तरेके छगमें, ब्रह्मके रूपर त्रिपुष्करमें, परमें असनके रूपर क्षयन नहीं करता वह मोक्षका तत्त्व जाननेवाला तत्त्वज्ञ मोक्षगामी पुरुष है ।

ब्राह्मणकुले वा यज्ञभेदज्ञानीत सायं मधुमांससर्पिपरिवर्ज पतन्साधून्या  
गृहस्थाभ्यायमातश्च सृप्येत् । प्रामे वा घसेत् अनिष्टः अशरण असफसुकः ।  
नवेन्द्रियसयोग कुर्वीत केनचित् । उपेक्षकः सर्वमूढानां हिंसानुग्रहपरिहारेण  
पेगुन्यमतसराभिमानाहकाराभद्रानार्जपात्मसुखपरगर्हादमल्लोभमोहकोपपियज-

नं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवीत्युदककमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्न-  
पानवर्जो न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथवा संन्यासीने ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षा मागना वहांसे जो मिलै वह भक्षण करै मीठा, मास, घी, इनको त्याग दे, गृहस्थी, संन्यासी और साधुओंको प्रसन्न होकर तृप्त करता रहै, अथवा ग्राममें निवास करै कपटी न हो, शरण न रखवै, दुर्जन न हो, इंद्रियोंका संयोग न करै, सब प्राणियोंकी हिंसा और अनुग्रहको त्याग कर उपेक्षा करता रहै, चुगलपन, मत्सरता, अभिमान, अहंकार, अश्रद्धा, कठोरता, मनका शोक, निंदा, दंभ, लोभ, मोह, क्रोध, इन सबको त्याग दे, यह सब आश्रमवालोंका इष्ट धर्म कहा गयाहै कि यज्ञोपवीतको धारण करे रहै, जलका कमंडल हाथमें रखवै, पवित्र रहै, और ब्राह्मण शूद्रके अन्नको त्यागदे, इसभांति आचरण करनेगला ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भापाटीकाया दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

### एकादशोऽध्यायः ११.

षट्कर्मणां गृहदेवताभ्यो वलि हरेत् । श्रोत्रियायान्नं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वाऽन-  
तरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथि भोजयेत् । स्वेष्टायासमानुपूर्व्येण स्वगृह्याणां  
कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृतीस्ततोऽपरा नृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ  
निर्वपेच्छूदेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन पुनः पाको  
यदि निवृत्ते वैश्वदेवेऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा अन्नं कारयेद्विजातयेऽहि वैश्वान-  
रः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तां हि शान्ति-  
जना विद्विरिति तं भोजयित्वापासीतासीमान्तादनुब्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

छैः कर्मोंमें रत ब्राह्मण घरके देवताओंको वलिप्रदान करै । वेदपाठी और ब्रह्मचारीको अन्नदेकर फिर पितरोंको अन्नदे, इसके पीछे अतिथिको भोजन करावै, इसके पीछे वंधु वान्ध-  
वोंको भोजन करावै, फिर वृद्ध, युवा, कुमार, बालक तथा घरके सेवकको जिमावै, इसके पीछे कुत्ते, चांडाल पतित तथा कौआआदिको भोजन करावै, फिर पृथ्वीपर वलि दे, और शूद्रोंको उच्छिष्ट दे तथा शेष अन्नको आप सावधानीसे भोजन करै, सब अन्नके उपभोग होजानेपर फिर पाककर, यदि वैश्वदेवकी निवृत्तिपर अतिथि आजाय तौ उसके लिये भोजन बनवावै, कारण कि जो ब्राह्मण अतिथि घरमें आजाय तौ दुबारा अग्नि उत्पन्न होतीहै, और वर्षाके समयके अतिरिक्त अतिथि भोजनके उपरान्त उस घरसे चलाजाय उसको शान्ति-  
वाले जन जानतेहैं, अतिथिको भोजन कराकर सेवा करै और ग्रामकी सीमातक उसके पीछे २ चलाजाय, अथवा जबतक वह लौटनेको न कहै तबतक चले

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्वैद्युर्ब्राह्मणान् सन्निपात्य यतीन्  
गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः  
शिष्यानपि गुणवतो भोजयेद्विलप्रशुक्लविग्रथिदयावदंतकाष्ठिकनखिवर्जम् ॥

अथाप्युदाहरति । अयं चैन्मप्रविद्युक्तं शारीरं पक्तिरूपणं ॥ अदृश्यं च यमं  
 प्राह पक्तिपावन एव स ॥ आद्ये नोद्गासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षपात् ॥  
 स्वे पतन्ति हि या धारास्तां पितृपुत्रकृतोदकां ॥ उच्छिष्टेन प्रपुष्टास्ते यावन्ना-  
 स्तमितो रविः ॥ क्षीरधारास्ततो यान्त्यक्षयां सखरभागिन ॥ प्राक्सस्कार  
 प्रमीतानां प्रवेशनमिति श्रुतिः ॥ भागधेयं मनुः प्राह उच्छिष्टोच्छेपणे उभे ।  
 उच्छेपणं भूमिगर्तं विकिरैस्त्रैपसोदकम् ॥ अनुमेतेषु पिस्रजेदमजानामनायुषाम् ।  
 उभयोः शास्त्रयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्ननिवेदनम् ॥ तदन्तरं प्रतीक्षति ह्यसुरा द्रष्टव-  
 तसः ॥ तस्मादभ्युन्यहस्तेन कुर्व्यादन्यमुपागतम् ॥ भोजनं वा समालम्ब्य  
 तिष्ठतोच्छेपणे उभे ॥

महात्म्यपितृपुत्रकृतं चतुर्भक्तिं परान्तं पितरोंको दे, पहलेदेविन प्राणजोंको मौतकर, सन्यासी  
 पृथ्वी, सापु पृथ्वी, सुवर्कर्म करनेवाले, वेद पढ़नेवाले शिष्य तथा अपने शिष्य और गुणी इनको  
 भोजन करावे, और जिसके छेद देवाहों, छोमीहो, दाँव जिसके काछेहों, कुटी और  
 जिसके नख बुरेहों इन सबकी स्थापने, इसमें यहमी बचन है कि जो मंत्रोंका धामनेवाला  
 हो, उसका शरीर वा वह पत्थिको हुष्ट करनेवाला हो, धमने उसको दूषित नहीं कहा, कारण  
 कि वह पत्थिको पवित्र करनेवाला है; आदमी उच्छिष्टको पितृ छिपनेसे पहले केकरे,  
 भाकासमें जो बलकी प्राण पढ़ती है उसको वह पीते हैं, जिनको उरक दाँव दियाहो,  
 सबतक सर्वदेव न छिपतेहैं वह तक वह उच्छिष्टसेपुष्ट रहतेहैं, फिर वह उच्छिष्ट भागियोंके  
 देनेसे अक्षय दूषकी धारा होजातीहै, जो बिना संस्कारके मरगयेहैं अर्थात् कितना संस्कार  
 नहीं हुआहै उनका प्रवेश आदमें नहीं होताहै, उनके भागकी मनुने उच्छिष्ट और उच्छेपण  
 इन दोनोंको कहाहै; पृथ्वीपर सबसहित जो विकिरका छेप है उसे उच्छेपण करतेहैं, बिना  
 संवाले हुष्ट तथा बिना अवस्थाके जो मरगयेहैं उनके विकिर देनी उचित है, दोनों साला-  
 नोंके अतिरिक्त पृथक् २ हाथोंसे जो पितरोंको भक्षण देताहै, उस भक्षणकी बात तुष्टविचवाले  
 असुर देखतेहैं, इसकारण एक हाथस भक्षणको परोसना उचित नहीं; अथवा भोजनके पास  
 बैठकर दोनों उच्छेपण दे,

द्वी देवे पितृकृत्ये त्रीनैकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत  
 विस्तरेत् ॥ सत्क्रियां देसकालौ च क्षीयं ब्राह्मणसंपदं ॥ पंचैताम्विस्तरो हति  
 तस्मार्त्तं परिवर्जयेत् ॥ अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शुभशीलो  
 पसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥

दो विश्वदेवाके कार्यमें और तीन पितरोंके कार्यमें अथवा दोनों जगह एक २ ब्राह्मणको  
 ब्रह्मणशी भोजन करावे, और अधिकका सिमाना उचित नहीं, और सत्कर्म, वेद, समय,  
 क्षीय, और ब्राह्मणकी सम्पत्ति विस्तार इन पाँचोंका नष्ट करदेताहै; इसकारण अधिक ब्राह्म-  
 णोंको भोजन कराना उचित नहीं, या एकही वेदके पारको जाननेवाले एक ब्राह्मणको भोजन  
 करावे, जो संपूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त क्षीयणम् और सवदुष्कृतोंसे हीनहो,

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते ॥ प्रास्येदमौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥

( प्रश्न ) यदि श्राद्धमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै तौ वहा सब देव कैसे हों? ( उत्तर ) सम्पूर्ण अन्न एकपात्रमें रखकर देवताओंके स्थानमें रखकर फिर श्राद्ध प्रारंभ होताहै, और उस अन्नको अग्निमें डालदे तथा ब्रह्मचारीको देदे,

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदशंति वाग्यताः ॥ तावद्धि पितरोऽश्रंति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरोऽभ्यवतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्भक्तव्यं शोभनं हविः ॥ नियुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे तं तु समुत्सृजेत् ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥

जबतक अन्न गरम रहताहै तबतक पितर मौन धारण करके भोजन करतेहैं, अन्नके गुणोंका बखानना उचित नहीं, पितरोंके वृष होने पर अन्नकी प्रशंसा करनी उचित है, श्राद्धमें नियुक्त होकर यदि जो मनुष्य देवताओंके कार्य को त्यागदे तो जितने पशुके शरीरमें रोम होतेहैं उतने समयतक नरकमें वासकरताहै,

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः ॥ त्रीणि चान्नं प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मंदी भवति भास्करः ॥ स कालः कुतुपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

श्राद्धमें तीन वस्तु पवित्र हैं, दौहित्र, कुतुप काल और तिल, इनसेही अन्नकी प्रशंसा है अक्रोध, और शीघ्रताका त्याग, और शौच, यह तीनों सामग्री श्राद्धके अन्नको श्रेष्ठ करताहै, दिनके आठवें भागमें सूर्य मंद होताहै उस समयका नाम “कुतुप” है उस समय पितरोंको जो दियाजाताहै सो अक्षय होताहै,

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽविगच्छति ॥ भवंति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः ॥ यतस्ततो जायते च दत्त्वा भुक्त्वा च योऽभ्यसेत् ॥ न स विद्यामवाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥

जो मनुष्य श्राद्धकरके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके मैथुन करताहै उसके पितर उस महीनेमें मांस और रेत भोजन करतेहैं, जो श्राद्ध करके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके विद्या पढताहै, वह न जाने किस योनिमें उत्पन्न होगा, और उस जन्ममें उसे विद्या प्राप्त नहीं होती, और वह अल्पायु होताहै,

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥ मधुमांसैश्च शकैश्च पयसा पायसेन वा ॥ अशुना दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥ संतानवर्द्धनं पुत्रं तृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ देवब्राह्मणसंपन्नमभिनन्दन्ति पूर्वजाः ॥ नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिव कर्षकाः ॥ यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥

असि मांति पक्षी पीबळके वृद्धका देखकर आज्ञा करतेहैं उसीप्रकार पितृ, पितामह, प्रपितामह उत्पन्नहृत् पुत्रके प्रति आशा रखतेहैं कि हमारा पुत्र हमें मीठा, मांस, शाक, रूप, औरआदि वेग, वर्षा और मन्वाओंमें हमारा आश करेगा, जो पुत्र सन्धानको बढ़ातेवाक्य पित्रोके कार्यमें लक्षि करनेवाला है, और देवताकी समान आह्वयसम्पत्तिमुक्त पूर्वपुत्रगत्य वसकी प्रससा करतेहैं, असिमांति किसान वृत्तम् वर्षाको देखकर आनन्दित होतेहैं, उसीप्रकार पितर वससे आनन्दित होतेहैं, जो पुत्र गयामें जाकर आश करताहै, पितर वसलेहैं पुत्रवान् होतेहैं,

भावप्याग्रहायण्योऽष्टकायां च पितृभ्यो दद्यात् द्रव्यदेशप्राज्ञपसन्निधाने वा कालनियमोऽवश्यम् ।

भाषणी पूर्वमा, आमहावण अग्रहनको पूर्वमा, और अष्टका इन दिनोंमें पित्रोका आश करै, अथवा जब उत्तम द्रव्य और देव तथा प्राज्ञप इनका समागम होनाय वस समयमेंही आश करनेका नियम है,

यो ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । दर्शपूर्णमासाग्रयणोऽष्टिचातुमास्यपशुसोमैश्च यजेते । नियमिक क्षेत्रदृष्ट्य संस्तुत च विज्ञायते हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते यज्ञेन देवेभ्यः प्रमया पितृभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः । इत्येव वा अनुपं यज्वा यः पृथी ब्रह्मचर्यवानिति ।

जो ब्राह्मण आहिताग्नि है वह दर्श पूर्णमासपक्ष, आमहायणपक्ष, चातुर्मासपक्ष, तथा सोम इन यज्ञोंको ब्रह्मचर्य करै, कारण कि वह ऋण नियमसे है, देवताओंके निषण्ण ऋण है, पितरोंके निकटसे मनुष्य सन्धानका ऋणी है, और ऋषियोंके निकटसे ऋण्यका (वेशादिब्रह्मचर्यका) ऋण है, इन तीनोंके ऋणोंसे ऋणी होकर ब्राह्मण कसेताहै, वह वह ब्रह्मधीठ और पुत्रवान् तथा ब्रह्मचर्य धारण करनेसेही ऋणसे छूटजाताहै, गर्माष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भेकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम् पालाशो दंडो वैश्यो वा ब्राह्मणस्य नियमोपः क्षत्रियस्य वा औदुवरो वा वैश्यस्य कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गम्भ्य वस्तामिन वैश्यस्य शुक्लमद्वत धासो ब्राह्मणस्य मांजिष्ठं क्षत्रियस्य हारिद्र कीक्षेय वैश्यस्य सर्वेषु वा तान्तयमरक्त भवेत् । भवत्पूर्वा ब्राह्मणो भिक्षां याचेत् भवमध्या राजन्यं भपदाया वैश्यस्य आपोऽश्राद्वाद्यणस्यानतीत काल आद्रापिशात्क्षत्रियस्याचतुर्विंशद्विंशस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भर्षति नैवानुपनयेन्नाध्यापयेत् या जेयैर्भभिर्विवाहयेषु । पतितसावित्रीक उद्दालपमर्तं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन पतयेत्मास मासिकनाष्टरार्थं पृतन पहराप्रमयाचितं त्रिराशमन्भक्षोऽदोराप्रमे यापयासम् । मन्मभेभावमृष्य गच्छेद्द्रात्यस्ताभेन वा यजेत् ॥

इति वासिष्ठे यमशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गर्भते सम्यक्कर जातमें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै, और गर्भते समाकर ग्यारा वर्षमें हाविषका, और गर्भते जाट्टमें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत करनेकी विधि है, ब्राह्मण

दंड ढाक वा बेलके वृक्षका है, और क्षत्रियका दंड बटके वृक्षका है, आर वैश्यका दंड गूलरके वृक्षका है, काले मृगकी छाल ब्राह्मणका दुपट्टा है, रुद्र मृगका चर्म क्षत्रियका, और गौ या छागका चर्म वैश्यका वस्त्र है, सफेद और नवीन वस्त्र ब्राह्मणका है, मजीठसे रंगाहुआ वस्त्र क्षत्रियका, और रेशमका हलदीसे रंगाहुआ वस्त्र वैश्यका होताहै, अथवा तीनोंकाही विना रंगाहुआ सूतका वस्त्र धारण करनेयोग्यहै, ब्राह्मण पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करै, क्षत्रिय बीचमें "भवत्" शब्दका उच्चारणकरै, और वैश्य अंतमें "भवत्" शब्दका प्रयोग करै गर्भसे लगाकर सोलहवर्षतक ब्राह्मणका, और गर्भसे लेकर वाईस वर्षतक क्षत्रियका, और गर्भसे लेकर चौबीस वर्षतक वैश्यके यज्ञोपवीत करनेकी विधि है, इसके उपरान्त जो यज्ञोपवीत न हो तौ वह पतित होताहै और उसे गायत्रीका अधिकार नहीं होता, फिर उनका यज्ञोपवीत करना उचित नहीं, और न उन्हें वेद पढावै अथवा यज्ञ करानामी कर्तव्य नहीं, उनके साथ विवाह न करै, जो मनुष्य गायत्रीसे पतित है वह उद्दालक व्रत करै, दो महीनेतक जौके आटेका भोजन करै, एक महीनेतक सहत खाय, आठ दिनतक धी पिये, छै दिनतक जो विना मागे भिले उससे निर्वाह करै, और तीन दिनतक केवल जलही पीकर जीवन धारण करै, एक अहोरात्र उपवासकरै, इसका नाम उद्दालक व्रत है, या किसीके अश्वमेधयज्ञमे अवभृथस्नान करै, अथवा ब्रात्यस्तोम यज्ञ करै ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

### द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतान स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजांतिवासिभ्यः क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं गामजाविकं सन्ततं हिरण्यं धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्वलाया-प्रयोग्यार्यां नकुलं कुलंस्याद्भ्रंती विततां नातिक्रामेन्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न निष्ठीवेत् परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियै-स्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणामुखः संध्यामा-सीतोत्तरामुदाहरति ।

इसके उपरान्त स्नातक व्रत कहते हैं, स्नातक ब्राह्मण किसीके निकट अन्नकी कभी याचना न करै, अथवा विना दिशे राजा वा शिष्योंसे कुछ मागले, क्षुधासे युक्त हो तौ कुलेक मागले किया वा न किया अन्न वा खेत, गौ, बकरी, बैल, सुवर्ण, धान, और अन्न इनको मागले यह उपदेश है कि, स्नातक मनुष्य क्षुधासे दुःखी न रहै, नदीमें सहसा प्रवेश न करै और रजस्वला तथा अयोग्य स्त्रीकी संगति न करै फैली हुई बलडेकी रस्सीको न उलावै और उदय होते तथा मन्थाहमें तपते हुए और अस्त होते हुए सूर्यका दर्शन न करै, जलमें

१ ब्राह्मण तो इसप्रकार कहै कि "भवति भिक्षा देहि" और क्षत्रिय भवत् शब्दको मध्यमें देकर "भिक्षा भवति देहि" यह कहकर भिक्षा मागे, और वैश्य भवत् शब्दको अन्तमें कहकर "भिक्षा देहि भवति" इसभाति कहै.



विद्युत् मूत्रका त्याग न करे और छत्र समयमें मद्य, मूत्र तथा घृणका त्याग करे और विद्युत् मूत्र त्यागनेके समयमें मस्तकपर बरु बांधे, पल्लके अयोग्य दिनकोंसे पूष्यको डककर सम्बन्धके समय उत्तरको और रात्रिके समय दक्षिणको मुख करके उसके ऊपर मद्य, मूत्र त्याग करे ।

आतकानां तु नित्य स्याद तर्वासस्तयोत्तरम् ॥ यज्ञोपवीते द्वे याष्टि सोदकश्च कमण्डलुः ॥ अप्सु पाणी च काष्ठे च कथित पाषाणं शुचिम् ॥ तस्माद्बुदकपा निम्न्यां परिमृज्यात्कमण्डलुम् ॥ पर्यभिकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापतिः ॥ कृत्वा चावश्यकार्य्याणि आशामेच्छौचवित्तत इति ।

आतकोंके धर्मका यह भी बचन कहते हैं कि आतकोंका नित्य अन्तर्वास और उत्तर है, जो यज्ञोपवीत छाठी और कमण्डलु होता है, जल हाथ और काष्ठमें कमण्डलुको कसा है, इस कारण जल और हाथोंसे कमण्डलुको मांझे, यह मनुने पर्यभिकरण कहा है, फिर आवश्यक कार्योंको कर शौचका जाननेवाला आचमन करे ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत । तूर्ण्यां सौगुष्ठ कृशयास प्रसेत नच मुखस्रग्ध कुर्यात् इतुकालाभिगामी स्यात् । पर्व्ववर्ज स्वदारेषु वा तीर्थसुपेयात् ॥

पूर्वकी ओरको मुख करके भोजन करे और मौन धारण कर बगुंठे सहित बंगछियोंसे छेदा प्रास लाय; और मुखका स्रग्ध न करे इतुकालमें खीका सग करे और धर्मके समयमें खीका निषेध है, और अपनी खीके साथही ससर्ग करे, तीर्थकी यात्रा करे, अयाप्युदाहरति ॥ यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्यात् मैथुनम् ॥ भवति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुञ्ज ॥ या स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसञ्चिता ॥ अपि च पाषाणोऽपि ज्ञायते ॥ अथ श्वो वा विजनिष्यमाणा पतिभिः सहश यत इति स्त्रीणामिदं चो धरः ।

और इसमें यहभी बचन है कि, जो मनुष्य अपनी खीके मुखमें मैथुन करताहै, उसके पितर उस एकमहीनेपर तक शीर्षको मक्षय करतेहैं; और जो अधिभारको छेडकर रतिके धर्ममें स्थित रहताहै वही पवित्र ज्ञानावाताहै "जो क्रिये आजकलमें सगठान उत्पन्न करने-वाली ( मासकप्रसूति ) है वहभी स्वामीके साथ सहवास करसकती है" ऐसा जानाजाताहै कि, इन्द्रमें शिवोंको यह बरदान दियाहै,

न वृक्षमारोहेषु कूपमवरोहेष्वामि मुत्सेनोपपमेन्नानि ब्राह्मण यान्तरेण व्यपे यात्तामिवाङ्गणयोरनुज्ञाप्य वा भार्य्याया सह नाशनीयादधीर्ष्यवदपस्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञाप्यते ॥ नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेन्मधिधनुरिति श्रूयात् ॥ पाला शमासन पादुके दत्तपावनमिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेदधो न भुञ्जीत । धेणव दह धारयेद्ब्रह्मकुण्डले च । न वहिर्माळा धारयेदम्बत्र रुक्ममप्याः समासमवापान्ध वर्जयेत् ॥

वृक्षपर न चढै, कुपपर न बैठे मुखसे आनेको प्रज्वलित न करै, ब्राह्मणके और अग्निके बीचमें होकर न निकले अथवा आज्ञा लेकर निकले स्त्रीके साथ भोजन न करै, कारण कि, ऐसा करनेसे सन्तान बलहीन होतीहै यह वाजसनेयी संहिता ग्रंथमें कहाहै इन्द्र धनुषको नामसे न कहै, परन्तु मणिधनुको नाम लेकर पुकारै, ढाकका आसन, खडाऊं, दतौन, इनका निषेध है, गोदीमें रखकर अन्नको न खाय, वासका दंड और सुवर्णके कुंडल धारण करै, और सुवर्णकी मालाके अतिरिक्त प्रत्यक्ष मालाको न पहरे; और सभाके समूहका त्याग करै.

अथाप्युदाहरन्ति । अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव दर्शनम् ॥ अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ इति । नानाहृतो यज्ञं गच्छेत् यदि ब्रजेदधि वृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्यते । नावं च सांशयिकी बाहुभ्यां न नदीं तरेद्दुत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्त्ते ब्राह्मणः स्वनियमाननुत्तिष्ठेदनुत्तिष्ठेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इसमें यहभी वचन कहाहै कि, वेदोंका प्रमाण न मानना, और सम्पूर्ण ऋषियोंके शास्त्रोंमें अव्यवस्था समझनी यही आत्माका नष्ट करनाहै, यज्ञमें विनावुलाये कदापि न जाय अथवा केवल देखनेको चाहिये तौ जाय ।

वृक्षोंके ऊपर तथा सन्मुखसे सूर्यके मार्गका आश्रय न करै, जिस नावमें डूबनेका सन्देह हो उसमें कदापि न बैठे और नदीमें न पैरै, पिछली रात्रिके पहरके समय उठकर और पढ़कर फिर शयन न करै, ब्राह्मणमुहूर्तमें उठकर अपने नियमोंको करै ।

इति वासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

### त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां वाग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवैभ्यश्च्छन्दोभ्यश्चेति । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य दधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत । अर्धपंचममासानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयीत । कामं तु वेदांगानि ।

इसके उपरान्त स्वाध्याय और उपाकर्मको वर्णन करते हैं, श्रावणकी पूर्णिमा अथवा मादोंकी पूर्णिमामें उपाकर्म करै, फिर देवता और वेदके उद्देश्यसे अग्निको समीप रखकर ब्राह्मण हवन करै, ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर दधिभोजनके उपरान्त साढे पाच वा साढे छैः महीनेतक जप करै, इसके उपरान्त शुक्लपक्षमें पढै और वेदके अगोंको इच्छानुसार पढै ।

तस्यानध्यायाः संध्यास्तमिते स्युस्तत्र शवे दिवाकीर्त्ये नगरेषु कामं गोमयप-  
र्युषिते परिलिखिते वा श्मशानांते शयानस्य श्राद्धिकस्य ।

वेदाध्ययनके अनध्याय हैं कि संध्याके समयमें वेदक पढ़नेका नियम है, प्रामके बीचमें यदि बाण्डाळ वा प्रेत आजाय तौ वेदको न पढ़ै धर्मके बढ़ानेकी इच्छासे नगरमें भी वेदका पढ़ना निषिद्ध है, जिस प्रवेक्षके लिये हुए गोबर बासी होगये हैं उस भूमिपर बैठके न पढ़ै और ब्रह्मदानके समीप और क्षयन करते करते बार माद्य करके भी वेद न पढ़ै ।

मानव चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ फलान्वापास्तिलान्भक्ष्यमयान्यच्छादिकं भवेत् ॥ प्रतिगृह्याप्यनध्यायं पाण्यास्या घ्राण्णानां स्मृता इति ।

इस विषयमें संक्षिप्तमें मनुका श्लोक कहा है - छल, लस, तिल, वा अन्य माद्यमें पिना गुमा अस्य जो कुछ भी लेता है, सब भी पढ़नेका निषेध है, कारण कि ब्राह्मणोंके शत्रुको सुख कहा है ।

घाघत प्रतिगपिमसूतेरितवृक्षमारुहस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चार्घमाणे वाणशब्दे चतुर्वेदयाममावास्यायामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्पस्योपाभितस्य गुरुसमीपे मिथुनव्यपेतायां वाससा मिथुनव्यपेतेनानिर्मुक्तन प्रामति छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चरितस्य यजुषां च सामशब्दे वा जीर्णे निर्घातभूमौ च न चद्रसूर्योपरगेषु दिङ्नादपर्वतनादकपप्रपातेषूपलरुधिरपांशुषर्षेष्वकालि कमुत्काधिर्युत्सज्योतिपमपत्वाकालिक वा ।

दौहनेके समयमें वेद न पढ़ै, वृषपर चहकर लौकापर चहकर और सेनाके बीचमें स्थाितके समय, भोजनके अन्तमें वेदाध्ययन न करै, बाणका शब्द होनेके समय भी अनध्याय है चतुर्वेदी अमावस्या अष्टमी और अष्टकाओंमें वेदको न पढ़ै, देरोंको कैलाकर वेद न पढ़ै जिस समय गुरुके निकट मद्र और विनीत भावसे बैठा हो, उस समय भी न पढ़ै, मैथुन करके छोड़ी हुई शय्याके ऊपर और बिना बच्चोंके स्वागे तथा प्रामके समीप, वा वनम कर बिना मूत्र त्यागनेके उपरान्त वेद पढ़नेका निषेध है, सामवेदके गानके समयमें यजुर्वेदको न पढ़ै, जिस पृथ्वीपर बिजली गिरी हो उस पृथ्वीके ऊपर तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें, दिशाओंके लक्षमें, पर्वतके शरमें भूकम्पमें, ओले, कभिर, भूल, इनकी वर्षाके समयमें और अक्काळमें अनध्याय होता है और जिस समय बिना अक्षरके तारे और पिगडी दूटकर गिरे, तब इनमें अक्काळिका अनध्याय होता है ।

आचार्य्यं च प्रेत त्रिराश्रमाचार्य्यपुत्रशिष्यभार्यास्वहीराश्रमं ऋत्विग्योनेसंघ धेषु च गुरो पादोपसग्रहण कार्य्यं ऋत्विक्कृदधुगुरपितृम्यमातुलानवरधमसः प्रत्युत्थायाभिषदेद्ये चैव पादमाहास्तेषां भार्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिवन्दितुमहमय भोरिति श्रुपाद्यश्च न विद्यात्प्रत्यभिषादे नाभिषदेत् ।

आचार्यके मरनेके उपरान्त तीन रात्रि आचार्यका पुत्र, शिष्य वा स्त्री इनके और ऋत्विज योनेसम्बन्धके मरनेपर अशोराश्रम अनध्याय होता है, गुरुके परमोंको पढ़े और ऋत्विज श्रुगुर वा चापा, मामा, तथा जो अक्षर्यामें पढ़े हों जिसका पैर पकड़ने योग्य हो उनकी स्त्री तथा गुरुकी माता और पिता इनको ममस्कार करे, जो ममस्कार करना जानता हो वह ' भवमई भोः ' ( भो गुरु यह मैं ) देखा करे, और जो इस भाँति करना न जाने उसे आशीर्वाद न दे ।

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥ अथाप्युदाहरन्ति । उपा-  
ध्यायाद्दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं पिता ॥ पितुर्दशशतं माता गौरवेणाति-  
रिच्यते ॥ भार्य्याः पुत्राश्च शिष्याश्च संस्पृष्टाः पापकर्मभिः ॥ परिभाष्य  
परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा भवेत् ॥ ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेया-  
वन्यत्र हानात् पतितो नान्यत्र पतितो भवतीत्याहुर्न्यत्र स्त्रियाः ॥ सा हि पर-  
गमिता तद्भिन्नामक्षुण्णामुपेयात् ॥

और यदि पिता पतित हो तौ उसको त्याग दे, और माता पुत्रके लिये पतित नहीं होती  
इसमें यह भी वचन कहते हैं कि उपाध्याय पढानेवालेसे दशगुना आचार्य्य है और आचार्य्यसे  
दशगुना पिता है और पितासे सहस्रगुनी माता गौरवमें अधिक है, यदि स्त्री, पुत्र, शिष्य  
इनको पापकी संगति होजाय तौ निन्दनीय वचन कहकर उनको त्याग दे और जो इनको  
नहीं त्यागता वह पतित होता है, ऋत्विक् यदि यज्ञ न करावै और आचार्य्य न पढावै तो  
दोनोंको त्याग दे, और जो इनका त्याग नहीं करता वह पतित होता है, और कोई २ ऐसा  
भी कहते हैं कि पतित नहीं होता अर्थात् स्त्रीके अतिरिक्त स्त्री पतित होती है जो स्त्री पर  
पुरुषके साथ गमन करनी है, तौ दूसरी नई स्त्रीके साथ विवाह करले ।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ॥ गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः  
शास्त्रं वस्त्रं तथान्नानि प्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य विद्याविजयजः संबन्धः कर्म  
च मान्यम् पर्वः पूर्वो गरीयान् । स्थविरबालातुरभारिकचक्रवतां पंथाः समागमे  
परस्मै देयो राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः । सर्वैरेव वा उच्च-  
तमाय तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सूनृतानसूयाः सप्त गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन  
कदाचनेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गुरुका गुरु यदि सन्मुख हो तौ उसके साथभी गुरुके समान आचरण करै, और गुरुके पुत्रके  
साथ भी गुरुके समान वर्ताव करै, यह वेदमें कहा है, वस्त्र और अन्न यह ब्राह्मणके ग्रहण  
करनेसे, विद्या, विनय सबन्ध, कर्म, यह चारों माननेके योग्य हैं, इन सबमें पहलाही श्रेष्ठ  
है, वृद्ध, बालक, रोगी, भारी और चक्रचालक गाडीवान् मनुष्योंको मार्ग छोड दे राजा और  
स्नातकके उपस्थित होनेपर राजा स्नातकको मार्ग छोडदे और सबके एकत्र समागममें ऊंचे  
मनुष्यको पहले मार्ग छोडदेना उचित है, तृण, आसन, भूमि, अग्नि, जल, सूनृतवचन और  
अनसूया साधुओंके घरमें कदापि इनका अभाव न हो ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ चिकित्सकमृगयुपुंश्चलीदंडिकस्ते-  
नाभिश्स्तपंडपतितानामभोज्यं कदर्य्यक्षितवद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौ-  
डिकसूचकवार्धुषिकचर्माविकृतानां शूद्रस्य चायज्ञस्योपयज्ञे यश्चोपपति मन्यते

यश्च गृहीततद्देव्युर्ध्वं वधाहं नोपहन्यात् । कौं वधमोक्षौ इति स्वाभिकृश्येत्  
गणान्नं गणिकान्नम् ॥

इसके उपरान्त जो वस्तु भक्षणके योग्य है और जो अयोग्य है उसका वधन करते हैं, वैद्य, व्याध, व्यभिचारिणी स्त्री, जो पशुमोंको दबसे मारे, और चोर, धापमस्त, नपुंसक, पवित्र, कृपण, कैदी, आतुर, मरिय बेचनेवाला, वडाई, घोड़ी, कबाख, धुगख, और जो ब्याज लेता हो इनके यहांका अन्न भोजनकरना निषिद्ध है बर्मेकारके यहांमी भोजन न करै, यज्ञके अनधिकारीके यहां उपयज्ञमें अन्न भोजन न करै जो मनुष्य यज्ञमें दूसरेको स्वामी माने, जो मनुष्य पकड़नेमें कारण हो वधा जो वध करने योग्यका वध न करै, और जो मनुष्य यह कहे कि वध मोक्ष क्या है, गणका अन्न और वैश्याका अन्न यही भोजन करनेके योग्य नहीं है।

अथाप्युदाहरन्ति । नाश्नति श्वपतेर्देषा नाश्नति वृषलीपते\* ॥ भाष्याजितस्य  
नाश्नति यस्पचोपपतिर्गृहे इति एषोदकसप्तत्सकुशालाम्बुघतपानावसतयसफरिभि  
यगुस्तरजमधुमांसानि नैतेषां प्रतिगृह्णीयात् ।

इसमें यहभी वचन है, कि कुत्तोंके स्वामीके यहांका देवता अन्न भोजन नहीं करते और वृषलीपतिके यहांका अन्नभी भोजन नहीं करते, जो स्त्रीके वधमें हो उस मनुष्यके, और मित स्त्रीके घरमें उपपति रहताहो उसके यहांका अन्नभी देवता भोजन नहीं करते हैं, इनके यहांसे काष्ठ, अन्न, फल, पुष्प, और विनयसे अवाह्यमा वृषभादि पानी पर मत्स्य, कांग्नी, अश्व, मधु, और मांस इनका ग्रहण करना वर्जित नहीं;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ गुर्वर्यदारमृग्विहीपन्नर्षिष्णन्देषतातियीन् ॥ सर्वत\* प्रति  
गृह्णीयात् त्व तुप्येस्त्वय तत इति ।

यह कहा है कि "गुरुके निमित्त वशिष्ठाका द्रव्य अपने दिवाहके निमित्त तथा" कुम्भ पाखन और देवता और अतिथियोंका पूजन तथा भेद्य कार्य करनेके निमित्त सबके निकटसे प्रतिग्रह लेके, परन्तु वध प्रतिग्रह छियेहुए द्रव्यसे स्वयं ग्रह न हो,

न मृगयोरिपुष्चारिण\* परिषर्ज्यमन्नम् । विश्वायते ह्यगस्त्यो धर्मसाहस्रिके  
सत्रे मृगयां श्वचार तस्यासस्तु रसमया\* पुरोडाशा मृगपक्षिणां प्रज्ञस्ता-  
नामपि ह्यन्नम् ॥

जो बाणसे पशुमीकी हिंसा करता है उसभ्यासका अन्न त्यागने योग्य नहीं है वह साश्वसे विहित है, कारण कि अगस्त्य ऋषिने सहस्र वर्षके व्रतमें मगारिपक्षियोंकी मृगया की थी, उससे उनका प्रसस्त मग और पक्षियोंका सुरसपूर्ण पुरोडाश और अन्न हुआथा,

माजापत्याम्भोकानुदाहरति ॥ उद्यतामाहतां भिक्षां पुरस्तादन्नचोदिताम् ॥  
भोज्य प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकारिण\* ॥ अहधानेर्न मोक्तव्यं शीरस्यापि  
त्रिशेषतः ॥ नत्वेव घहुपा तस्य याधानपहता भवेत् ॥ न तस्य पितरोऽश्नति  
दशवपाणि पच च ॥ नच हृष्य घहृत्पमिर्पस्तामम्यवमन्यते ॥ चिकित्स

कस्य मृगयाः शिल्पहस्तस्य पाशिनः ॥ पंढस्य कुलदायाश्च उद्यतापि न गृह्यते इति ॥

पंडितोंने प्रजापतिके कितने एक श्लोक कहेहैं, जो स्वयं दान लेनेके निमित्त आयाहुआ अयाचित, जिसकी पहले सूचना न हो, और दुष्कर्म करने वालेकी भी भिक्षा प्रजापतिने भोज्य मानीहै, तब फिर श्रद्धावाला मनुष्य चोरके अन्नको कदापि भोजन न करै, और जो भिक्षा चोरीकी न हो, उसको एक वारके अतिरिक्त न खाय, और जो पूर्वोक्त चोरीकी भिक्षाका अपमान करता है उसके यहां पंद्रह वर्षतक पितर भोजन नहीं करते, और अग्नि साकल्यको ग्रहण नहीं करती चिकित्सक, शास्त्रधारी, फाँसी देनेवाला, पशुओंको मारनेवाला, छुँव और व्यभिचारिणी, इनकी स्वयं दीहुई भिक्षा ग्रहण करनेके योग्य नहीं है,

उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च यदशनं केशकीटोपहतं च कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनावकीर्य वाचा च प्रशस्तमुपभुंजी-  
तापि ह्यन्नम् ॥

गुरुके अतिरिक्त दूसरेकी उच्छिष्ट अपनी उच्छिष्ट और उच्छिष्टसे दूषित अन्नको भोजन न करै, केश वा कीड़े आदिसे दूषित हुआ अन्नभी भोजन करनेके योग्य नहीं है, और वाल तथा कीड़े आदिको निकालकर जल छिड़कनेसे वह खानेके योग्य होजाताहै, इसके उपरान्त वचनसे-श्रेष्ठ बतायाहुआ अन्न भोजन करनेके योग्य है,

प्राज्यापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति । त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामक-  
ल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णिकं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ देवद्रोण्यां विवाहेषु  
यज्ञेषु प्रकृतेषु च ॥ काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥ तस्मात्तदन्न-  
मुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ॥ द्रवाणां प्लावनेनैव धनानां क्षरणेन तु ॥ पाकेन  
मुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्भवेत् ॥ अन्नं पर्युषितं भावदुष्टं हल्लेखनं पुनः ॥  
सिद्धमायमृजीषपक्कं च । कामं तु दद्याद्दृष्टेन चाभिधारितमुपभुंजी-  
तापि ह्यन्नम् ॥

इस विषयमें पंडितोंने प्रजापतिके श्लोक कहे हैं कि, शौचाशौचके विषयमें जिसकी शुद्धि न देखीहो जो जलसे छिड़का हो, जिसे वाणीसे श्रेष्ठ कहाहो, देवद्रोणी, विवाह, यज्ञक प्रस्तुत इनमें काक तथा कुत्तोंने जिस अन्नका स्पर्श कियाहो उसका त्यागना उचित नहीं, इसकारण उतनेही अन्नको निकालकर शेष अन्न संस्कारके योग्य हैं, उस अन्नमें द्रव्योंकी शुद्धि छिड़कनेसे होजातीहै और जिसमें मुखका स्पर्श हुआहो उसकी शुद्धि पकानेसे होजातीहै, चाँसी अन्न, भावदुष्ट अन्न हृदयको जो अच्छा न लगे, पकाहुआ अन्न, कच्चा अन्न, जो भूतनेके पात्रमें पकाहो उस अन्नकी घीमें भिगोकर इच्छानुसार देदे, और स्वयंभी खाले,

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यंजनानि च ॥  
दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुंक्ते च किल्विषमिति ॥ १ ॥

इस विषयमें प्रजापतिके श्लोक कहेहैं कि हाथसे दियाहुआ घृतआदि लवण शाक उसका फल दाताको नहीं मिलता, और खानेवाला पापका भागी होताहै,

लशुनपलाहुकमुकगुजनक्षेष्मातर्दृष्टानिर्पासलोहितामभनाभ्रकाकावलीठ शूद्रो  
 च्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्र इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलाधिकर्षेष्वाप्राम्यपश  
 विषयं संधिनीक्षीरमवसागोमहिष्यजातरोमानिर्वशाहानामनामर्ष्यं नाप्यु  
 दकमपूपधानाकरंमसकुचरकतैलपायसक्षाकानिलशुक्लानि वर्जयेदन्वीक्षीरयव  
 पिष्टवीरान् ।

और अस्सम, सज्याम, कमुक, गाजर, बहेरा, हुसका गोंद, अलगाव, जा पूसके काटनेके  
 उत्पन्न हो, चोडा, कुत्ता, काक, इनका चाटा हुआ, सूत्रका अष्टिष्ठ जो मनुष्य इसका योजन  
 करके वो कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करे और सहज, मांस, फल इनके अतिरिक्त अन्यमें प्रायश्चित्त  
 भी करे, बतके पशुओंसे मित्र, संधिनी और जिसके बछडा म हो इनका दूध गौ, भैंस आर  
 जिनके दूधे न पूटे हों, इनका दूध और ब्यानेसे दस दिनके भीतरका दूध, यह खाने योग्य  
 नहीं है, माषका अन्न, माछपुत्रे, धान, करम्भ, सपू, चरक, वेड, पापस, क्षाक, इनको  
 त्यागवे; और अन्यभी क्षीर औषधी चून्की मखिरा हैं इनको भी त्यागवे,

श्राविच्छल्लकशशकच्छपगोधा पचनस्ता नामस्या अलुप्ता पशूनामन्यतोद  
 न्तश्च मत्स्यानां वा वेहगवयशिशुभारनककुलीरा विकृतरूपा सपक्षीर्पाश्च  
 गौरगवयश्चलभाभानुद्विष्टास्तथा ॥ धेन्वनद्वाहौ मेथ्यौ धानसनेयने । सङ्गे तु  
 विषदस्यप्राम्यशूकरे च शुकनानां च विश्वाविधिष्किरजालपादा फलधिकपुव  
 इसषक्रवाकभासमहुटिद्विमाटवाधनकचरा दार्वापाटाश्चटकैलातकहारितस  
 जरीटप्राम्यकुष्ठशुकसारिकाकोकिलकम्पादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

इति वासिष्ठे परमंसाक्षे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गैदा, सेह शस्य, कठवा गोह, यह पांचनकवाले पशु अमक्ष्य नहीं हैं, और कटक  
 अतिरिक्त अन्य पशुओंमें जो एकदरक दांतवाले हैं वह भी अमक्ष्य नहीं हैं, और मत्स्योंमें  
 वह नीलगाय क्षिप्रमार, नाका कुडीर, जिनका आकार मुरा न हो, जिनका सर्वके समान  
 क्षिर हो, गोरे पक्षी, टीसी और जिनको नहीं कहा है वह अमक्ष्य नहीं हैं बाजसनेयमवमें गौ  
 बैलभी पवित्र हैं, गैदा और गामक्य सूकर इनमें विवाह अथि गज करते हैं कि कोरे तो  
 मक्ष्य है और कोई अमक्ष्य है, और पक्षियोंमें विशुभि विभिन्न, बालपाव कर्बदिक, पक्ष  
 मुरग्य, हंस चकवा, मांस मशु, टिट्टिम पांश रात्रिको बनेवाले दार्वापाट जो कापछे  
 ओचसे लोरे, पिडियां, बैल, हारीव, संजरीट गांवका मुरगा, तोरा, मैदा, कोकिल  
 मांसका मक्षक, माममें जो जो विचरण करें वह अमक्ष्य हैं ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ मावादीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्याय १५

शोपितशुक्रसंभयः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य मदानविक्रयत्यागेषु माता  
 पितरौ प्रमथत । मत्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृहीयाद्वा स हि सतानाय प्रवेपाम् ।  
 न स्त्री दद्यात् प्रतिगृहीयादाभ्यश्रानुज्ञानादर्थं ।

मनुष्योंका उपादान कारण शुक्र है, रुधिर निमित्तसे पिता माता कारण है, इस कारण उसके देनेमें तथा विक्रयकरनेमें और त्यागनकरनेमें मातापिता समर्थ हैं, एक पुत्रके होनेपर उसे दान न करै, और उससे प्रतिग्रहभी न करै, कारण कि यह पुत्र पूर्वपुरुषोंकी धाराका रक्षा करनेवाला है, स्वामीकी विना आज्ञाके खिये दान वा प्रतिग्रह न करै,

पुत्रं प्रतिगृहीष्यन् वंधूनाह्वय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतीर्हुत्वा दूरेबांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने दूरेबांधवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहु जायत इति ।

जो पुत्रको लेनेकी इच्छा करै तौ वह अपने वंधुवांधवोंको बुलाकर राजाके सन्मुख निवेदनकर घरके मध्यमें व्याहृतियोंसे हवन करके जिसके वंधुवाधव दूर हो, और जो संदेह आजाय तथा बधु दूर हो उसे शूद्रके समान टिकावै, और शास्त्रसे यह जानागया है कि एक से बहुत होते हैं,

तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभागभागी स्यात् ।

दत्तकपुत्रके लेनेके उपरान्त जो अपने औरससे पुत्र उत्पन्न होजाय, तौ यह दत्तकपुत्र प्रतिगृहीता पिताके धनके चार भागका एक भाग पावै,

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः स्वयेन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्ण पात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्य केशान् ज्ञातयोऽन्वारभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येन्नत ऊर्द्धं तेन सह धर्ममीयुस्तद्धर्माणस्तद्धर्मापन्नाः पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ।

यदि दत्तक पुत्र आभ्युदयिककर्ममें युक्त न हो अथवा वेदको अष्ट करदे तौ वामपादसे कुशाओंके अग्रभागको रखकर अथवा रक्त कुशाओंको रखकर इस दत्तक निमित्त पूर्णपात्र दे; और इसके घट देनेवालेको मुंडन कराकर जातिके मनुष्य इस कर्मका प्रारंभ करै, और अपसव्य कराकर घरोंमें इच्छानुसार विचरण करने दें, इसके पीछे उसके धर्मको प्राप्त होते हैं उसके धर्म वालेभी उस के धर्मको प्राप्त होते हैं, और पतित यदि व्रतको करले तौ उसकाभी उद्धार होजाता है,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्कीडांति च हंसति च ॥ यश्चोत्पातयतां गच्छेच्छौचमित्याचार्यमात्पितृहंतारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा । एषा प्रत्यापत्तिः । पूर्णांदात् प्रवृत्ताद्वा कांचनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वापोहिष्ठाभिरेव षड्भिर्ऋग्भिः सर्वत्र वाभिरिक्तस्य प्रत्युद्धारिपुत्रजन्मना व्याख्यातः ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इसमें यह भी वचन है कि जो अभिका उद्धार करताहै, उसके साथ गमन करनेवाला, क्रीड़ा करनेवाला, हँसनेवाला और पतितके साथ गमन करनेवाला, उनके मातापिताके मारनेवालोंकी शुद्धि मातापिताकी प्रसन्नता वा भयसे होतीहै वही प्रायश्चित्त है जो पूर्ण घटके दानमें प्रवृत्त है, सुवर्ण वा सुवर्णसे पृथ्वीका गट्टा भरकर " आपो हि ष्टा " इन छैः ऋचाओंसे व सर्वत्र इन ऋचाओंसे मार्जन करै यह अभिरिक्त पतितका उद्धार पुत्रजन्मके समानहै।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



## षोडशोऽध्याय १६

अथ व्यवहाराः ॥ राजमन्त्री सद'कार्याणि कुर्वात् । द्वयोर्विषदमानयोरत्र पक्षांतर गच्छेद्ययासनमपराधो ह्यंते नापराध' सम सर्वेषु भूतेषु यथासनम पराधो ह्याद्यवर्षयोर्विधानत' सपन्नतामाचरेद्राजा षालानाममातृव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तद्वत् । लिखितं साक्षिणो भुक्ति' प्रमाणं त्रिविध स्मृतम् ॥ घनस्वीकरणं पूर्ष धनी धनमवाप्तुयात् ॥ इति । मार्गश्रेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन ऋणाग्रहेष्वर्थांतरेषु त्रिपादमात्र गृहश्रेत्रविरोधे सामतप्रत्ययः सामतविरोधेषुपि लेख्यप्रत्यय' प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धभेदिप्रत्यय ।

इसके उपरान्त व्यवहारको कहते हैं राजमन्त्री समाका कार्य करे । वादी प्रतिवादी दोनोंके बीचमें यदि मन्त्री एकका पक्षपात करे तो वह अपराध राजाको होगा सब प्राप्ति योंकी बराबर दृष्टिसे देखे, यदि राजासे किसी प्रकारका अपराध होजाय तो ब्राह्मण क्षत्रियकी विधिके अनुसार उसको शुद्ध करके अप्राप्त व्यवहारमें बाह्यकोका विचार राजा करे, प्राप्त व्यवहार होनेपर पहलेकी समान नियम धारै । छेस, साक्षी और मोग यह तीन प्रकारका प्रमाण है, इसके दिखातेही धनी धनको पावे हैं मार्ग और श्रेत्रके विचारमें त्याग वा बहरेसे निर्णय करके, ऋणके आग्रह वा अर्थांतरमें तिहाई भाग दिखानै, घर वा श्रेत्रके विचारमें अन्धकारको वातका विश्वास करै सामन्तियोंके वचनके विरोधमें छेसका विश्वास करना होगा । छेसके विरोधमें उस ग्रामके निवासी तथा वृद्धजनोके वचनका विश्वास करै,

अयाप्युदाहरन्ति ॥ य एकं क्रीतमाधेयमन्वाधेय प्रतिग्रहम् ॥ यज्ञादुपगमा वोनैस्तथा घूमशिक्षा ह्यमी ॥ इति । तत्र भुक्ते दशवर्षमेवोदाहरन्ति ।

इसमें यह भी बचन है कि एकद्वैत आधेय, अन्वाधेय, प्रतिग्रह, यज्ञमें, वा बाजोंसे उद्धमें जो मिच्छजाय और धर्मशिक्षा यह निर्णयके कारण हैं तिनमें इस वर्षका मोग कहा है ।

आधि' सीमाधिक शेष निक्षेपोपनिधि स्त्रिय ॥ राजस्व भोजियद्रव्य न राजाऽऽदातुमर्हति ॥ इति । तच्च संभोगेन ग्रहीतव्यम् । गृहिणां द्रव्याणि राजगामीनि भवति ।

बरोहर, सीमा अधिक, निक्षेप सौपना, उपनिधि, की राजाका और देवपाठीका द्रव्य इनको राजा न छ और इसका संभोग वच धनसे कुछ उत्पन्न करके छेसे, कारण कि एह स्थियोंके द्रव्य राजाके यहाँ जानेवाले होते हैं ।

तथा राजा मंत्रिभि' सह नागरैश्च कार्याणि कुर्वावती वा राजा भेषान् वसुपरिवारः स्यादगृह परिवार वा राजा भेषान् गृहपरिवार' स्यान्नगृहो गृहपरिवार' स्यात् । परिवाराद्दोषा' प्रादुर्भवन्ति स्तेपहारविनाशन तस्मात् पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥

और राजा मन्त्री, तथा नागर विवासी इनसे मिच्छकर कार्यको करे बचवा भेष राजाही इस धनको ग्रहण करे, और धनही इच्छा राजाका परिवार न करे, तथा कुटुम्ब और राजा दोनोंही बचकी इच्छा न करे, परिवारसे दोष उत्पन्न होते हैं कि जोटी इत्या और विनाश होता है इस कारण पहलेही परिवारको धन मिछे ।

अथ साक्षिणः ॥ श्रोत्रियो रूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः  
सर्वे एव वा । स्त्रीणां साक्षिणः स्त्रियः कुर्यात् । द्विजानां सदशा द्विजाः  
शूद्राणां संतः शूद्राश्च अंत्यानामंत्याः ॥

इसके उपरान्त साक्षियोंका वर्णन करते हैं, वेदपाठी रूपवान्, शीलस्वभाव, पुण्यात्मा और सत्यवादी मनुष्यही साक्षी होनेके योग्य है, अथवा दस्युतादिके स्थानमें सभी साक्षी हो सकते हैं, स्त्रियोंके कार्यमें स्त्रियां साक्षी उचित हैं ब्राह्मणोंके कार्यमें अनुरूप ब्राह्मण, शूद्रोंके कार्यमें श्रेष्ठ शूद्र, और अन्त्यज जातिके कार्यमें अन्त्यज जातिका साक्षी होना उचित है ।

अथाप्युदाहरंति ॥ प्रातिभावं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दंडशु-  
ल्कावशिष्टं च न पुत्रोदातुमर्हतीति ॥

इसमें यह भी वचन है कि पिताके प्रतिभाव्य अर्थात् दर्शन और प्रत्यय प्रतिभू तद्देय अर्थ है, वृथा दान, साक्षी, शूरवीरता, दण्ड, शुक कन्याका सोल इनमें जो ऋण लिया हो, उसे पुत्र नहीं दे सकता ।

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लंबंते पितरस्तव ॥ तव वाक्यमुदीर्यतमुत्पतंति पतंति  
च ॥ नमो मुंडः कपाली च भिक्षार्थं क्षुत्पिपासितः ॥ अंधः शत्रुकुले गच्छे-  
द्यस्तु साक्ष्यनृतं वदेत् ॥ पंच कन्यानृते हंति दश हंति गवानृते ॥ शतमश्व-  
नृते हंति सहस्रं पुरुषानृते ॥ व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्ते कुले स्त्रियः ॥  
तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यंते वागवादिभिः ॥

हे साक्षी देनेवाले ! सत्य २ कह, तेरे पितर लटक रहे हैं, तेरा वचन निकलतेही ऊपरको उठ जायेंगे नहीं तो बीचमें लटकते रहेंगे, जो साक्षी झूठ कहेगा तौ नगे शिर मुड़ाये, अन्धे और क्षुधा तृष्णासे कातर हो कपाल हाथमें लेकर शत्रुओंके कुलमें भिक्षा मागते फिरेंगे कन्याके निमित्त जो असत्य कहता है उसके पाच पुरुष नरकको जाते हैं, गौके निमित्त मिथ्या कहनेपर दश पुरुष नरकको जाते हैं, अश्वके निमित्त असत्य बोलनेपर एकसौ पुरुष नरकको जाते हैं और पुरुषके निमित्त मिथ्या कहनेपर सहस्र पुरुष नरकको जाते हैं, व्यव-  
हारमें, मरणमें, वैवाहिक विधिमें, प्रायश्चित्तमें और (?) स्त्रीके कुलके विषयमें (?) मिथ्या साक्षी देनेवालोंके पूर्वके सम्बन्ध (?) छूटजाते हैं ।

उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ॥ विप्रस्य चार्थे अनृतं  
वदेयुः पंचानृतान्याहुरपातकानि ॥

स्वजनस्यार्थे यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैव वदंति कार्यम् ॥ वैशब्दवादं स्वकुला-  
नुपूर्वान्स्वर्गस्थितानपि पातयंत्यापि ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विवाहके समय, रतिकार्यमें प्राणनाशकी सम्भावना, सर्वस्व चौर्य और ब्राह्मणार्थ, इन पाच विषयोंमें असत्य कहनेसे पातक नहीं होता, अपने जनके लिये और जनके लोभसे किसीके पक्षमें होकर जो झूठ बोलते हैं वह स्वर्गमें स्थित हुए अपने पुरुषोंको नरकमें गिराते हैं ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## सप्तदशोऽध्याय १७

ऋणमस्मिन् सन्नपति भ्रमृतस्य च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पर्येषेऽ-  
 ष्ठीवतो मुञ्चम् ॥ अनता पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति भ्रूयते ।  
 प्रजा संत्वपुत्रिण इत्यपि क्षाप ॥ प्रजामिरभेस्त्वमृतत्वमभुयामित्यपि निगमो  
 मयति ॥ पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानत्यमश्नुते ॥ अय पुत्रस्य पौत्रेण धन  
 स्यामोति विष्टपमिति ॥

पिता यदि अश्विष्ठ अवस्थामें उत्पन्न हुए अपने पुत्रका मुख देखले तो अपना पितृभ्रज  
 उसके ऊपर सौंपता है और मोक्षकी प्राप्ति होता है पुत्रबाओंके लोक और स्वर्ग आदि अन्न  
 होते हैं और जिसके पुत्र न हो उसको लोककी प्राप्ति नहीं होती, यह शास्त्रमें विहित है,  
 सन्तान पुत्रवान् न हो ऐसा क्षाप है और अश्विष्ठी वपासनासे सन्तान होनेसे मोक्ष हो यह  
 भी निगम है, पुत्रसे लोकोंको जीतता है और पोतेसे अन्नत्व लोक भोगता है और पुत्रके  
 पोतेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है ।

क्षेत्रिण पुत्रो जनयितु पुत्र इति विवदन्ते तत्रोभयपाप्युदाहरन्ति ॥ यद्यन्यगोपु  
 वृषमो वत्सान् जनयत सुतान् ॥ गोमिनामेव ते वत्सा मोघ स्पदनमोक्षण  
 मिति । अप्रमत्ता रक्षतु वैर्न माघ क्षेत्रे परे वीजानि वासी जनयितु पुत्रो भवति  
 सपरायो मोघं रेतोऽकुरुत तदुमेतमिति ।

जिसकी स्त्री उसका पुत्र होता है, अथवा जिससे उत्पन्न हो उसका पुत्र होता है, इस  
 विषयमें बहुतसे विवाद करते हैं इन दोनों विवादोंमें यह भी बचन कहते हैं कि जिस माति  
 अश्विष्ठी गौमें जो पशुओंको उत्पन्न करता है, वह कछड़े गौवालेकेही होते हैं, वही माति  
 अश्विष्ठी कीमें वीर्यका छेड़ना निष्फल है अप्रमत्त हुए इस पुत्रकी रक्षा करनी विहित है और  
 पर्येषे क्षेत्रमें वीर्य बाधना विहित नहीं, ऐसा जाननेवालोंका पुत्र होता है वीर्यको परलोकमें  
 सफल करने कारण कि वह वस्तुरूप है ।

बहूनामेकजातानामेकभ्येत्पुत्रवासर ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवत इति श्रुति ॥  
 एकसे उत्पन्नहुए बहुतसे मनुष्योंमें यदि एक पुत्रवासर हो तो वह सभी उससे पुत्रवासे  
 हैं, यह वेदमें लिखा है,

यद्दीनां द्वादश शेषपुत्रा पुराणदृष्टा स्वयमुत्पादित स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथम  
 तदक्षामे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीय तृतीय पुत्रिका विज्ञायते अत्रादका पुंस  
 पितृलभ्येति प्रतीचीम गच्छति पुत्रत्वम् ॥

और बहुत क्षियोंके बाह्य मन्त्रके पुत्र होते हैं यह पुराणोंमें देखायाताहै, उत्पन्नकरके  
 विवाही हुई अपनी स्त्रीमें जो अपने औरससे उत्पन्न हो वह प्रथम, वह न होय तो नियुक्त  
 जिसके क्षिये शुक्रमादिने बाधायी हो, अश्विष्ठी कीमें उत्पन्नहुआ पुत्र दूसरा, तीसरा पुत्रिका  
 पुत्र, माई जिसके न हो वह कन्या जो कन्या के पितासे पुरुषको मिले उसका छहका कन्या  
 के पिताका होताहै,

श्लोकः ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥

यह श्लोकभी है कि बिना भाईकी भूषणआदिसे शोभायमानकर कन्या में तुझे देताहूँ इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा होगा ।

पौनर्भवश्चतुर्थः पुनर्भूः कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्वैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुंब-माश्रयति सा पुनर्भूर्भवति । या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्वं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ।

पौनर्भव पुत्र चतुर्थ है, जो स्त्री वाग्दान करके स्वामीको त्यागकर दूसरेके साथ सहवास करती है और फिर स्वामीके कुटुम्बके साथ मिलती है वह पुनर्भू होतीहै, और जो नपुंसक पतित, तथा उन्मत्तको छोडकर या पतिके मरजानेके उपरान्त जो दूसरा पति करलेती है, वह पुनर्भू स्त्री होती है,

कानीनः पंचमो या पितुर्गृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेन्मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ अप्रत्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्दति तुल्यतः ॥ पुत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् इति ॥

पाचवा पुत्र कानीन होताह जो कन्या संस्कारसे प्रथम अपनी इच्छासे पुत्रको उत्पन्न करले वह नानाका पुत्र होताहै, और ऐसा कहाहै कि बिना विवाही कन्या सजातीय पुरुषसे यदि पुत्र उत्पन्न करले तो उस पुत्रसे नाना पुत्रवान् होताहै, और वह पुत्र नानाके धनका अधिकारी होताहै, और नानाको पिंडदान करै,

गूढे च गूढोत्पन्नः षष्ठः इत्येते । दायादा बांधवास्त्रातारो महतो भयात् ॥ इत्याहुः ।

और छठा गुप्तस्थानमे जो उत्पन्न हो वह गूढोत्पन्न यह छै' भागके अधिकारी बांधव हैं, और बड़े भयसे रक्षाकरनेवाले हैं, ऐसा कहा है,

अथादायादास्तत्र सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति । दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम् । क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं हरिश्चंद्रो ह वै राजा सोजीगर्तस्य सोपवस्सैः पुत्रं विक्राय्य स्वयं क्रीतवान् । स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं शुनःशेषो ह वै यूपे नियुक्तो देवतास्तुष्टाव तस्येह देवता पाशं विष्णुचुस्तमृ-विज ऊर्चुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति । तानाह न संपदेते संपादयामासुरेष एव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति तस्येह विश्वामित्रो होतासीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥ अपविद्धः पंचमो यं माता पितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् । शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुरित्येतेऽदायादा बांधवाः ॥

अब अदायाद पुत्र कहते हैं, तिनमें पहला सहोढ है, जिस कन्याका गर्भवतीकाहीं संस्कार होगया हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह सहोढ कहाताहै, दूसरा दत्तक, जिसे माता पिता दें, तीसरा क्रीत, यह शुनःशेषे व्याख्यान कहागया है, हरिश्चंद्र राजा हुआ

वह अजीगर्वक पुत्रको बिकबाकर आप मोछ लेताहुआ, और जो स्वयं आपाहो वह चौया है, यहमी धुनक्षेपसे व्याख्यान जानागया, धुनक्षेप धूपमें निमुक्त होकर देवताओंकी स्तुति कर ताहुआ, देवताओंने उसके बचनको सुटाया, तब उससे ऋषिब्रह्म बोले कि यह पुत्र मेराही हो, और उनसे कहा यह समति करो कि जो ऋषि इसको पुत्र करनेकी इच्छा करे यह उसीका होजाय, उस धर्ममें विश्वामित्र होता ये धुनक्षेप उसीका पुत्र हुआ, पांचवां अथ ऋषि पुत्र जिसे मातापिताने त्याग दिया हो उसे ग्रहण करले, और धृष्टापुत्र छटा होता है- यह है पुत्र भागके अधिकारी नहीं हैं,

अथाप्युदाहरन्ति॥स्य पूर्व्यां वर्णानां न कश्चिद्वायाद् स्यादेते तस्यापहरति।

इस विषयमें पहमी बचन है कि जिसके पिछले वर्णमें कोई पायाद् न हो उसके धनके यह छे-रने अधिकारी हैं,

अथ भ्रातृणां दायविभागो अर्शं ज्येष्ठो हरेद्भ्रातृण्यस्य चानुसहस्रमजावयो गृहं च कनिष्ठस्य काष्ठं गां यवसं गृहोपकरणानि च । मध्यमस्य मातुः पारिषेयं स्त्रियो विभजेरन् । यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीसाम्प्रियावैश्यासु पुत्रां स्युर्यसं ब्राह्मण्यां पुत्रो हरेत् । अर्शं राजन्यायां पुत्रं सममितरे विभजे रत्न्येन त्रैषां स्वयमुत्पादितं स्यात् ब्रह्ममेव हरेदन्येषां त्वाश्रमान्तरगतां स्त्रीभोन्मत्तपतिताश्च भरणं स्त्रीषो मत्तानाम् ।

अब भाइयोंका अंश विभाग कहा जाया है, बड़ा भाई छोटा और इनके समान बहरी और घर इनके दो भागोंका अधिकारी है और छोटे भाईको काष्ठ गौ और पासके छेनेका अधिकार है, विचछ भाई परकी सम्पूर्ण सामग्रियोंके छेनेका अधिकार रखता है और माताके सम्मुखके धनको जो कि विवाहके समयका है वहुएँ बांटें हैं जो ब्राह्मणसे ब्राह्मणी स्त्रिया और वैश्या स्त्रियोंमें जो पुत्र हों, तो ब्राह्मणीका पुत्र तीन भागका अधिकारी है और स्त्रियाका पुत्र दो भागके छेनेका अधिकारी है, और अन्यान्य वैश्या तथा क्षत्रिका पुत्र यह समभागसे बांटें इनके बीचमें जिसने स्वयं धन पैदा किया है वह दो भाग छेनेका अधिकारी है, और जो अन्य आभयमें रहता है तथा नपुंसक और पतित है, वह धनके भागका अधिकारी नहीं है, नपुंसक और उन्मत्त केवल भरण पोषणके अभिमत धनके अधिकारी होत हैं ।

प्रेतपत्नी पण्मास व्रतचारिण्यक्षारण्यञ्जुजाना शयीतोर्ध्वं पृथ्व्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म गुरुयोनिर्बध्नात् । सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्सपसे धोन्मत्तामवशां व्यापितां वा निपुज्यात् । ज्यायसीमपि पोद्बशर्षा नचेदामयाविनी स्यात् । प्राजापत्ये मुहूर्त्तं पाणिग्रहणं यदुपचारोऽन्यत्र सस्याप्य वाक्पारुष्याद्दृष्टपारुष्याच्च प्रासाच्छादनज्ञानलेपनेषु प्राग्यामिनी स्यादनिपुक्तापासु पत्न्य उत्पादयितुं पुत्रो भवतीत्याहुः स्यादेनि योगिना इष्टा लोभात्तास्ति नियोगः । प्रायश्चित्तं चाप्युपनिषुंज्यादित्येके ।

जिस स्त्रीका स्वामी मरगया है वह छै: महीनेतक व्रत करै, खारी वस्तु और लवणको न खाय, पृथ्वीपर शयन करै, फिर छै: महीनेके उपरान्त स्नान कर पतिका श्राद्ध करके विद्या वा कर्ममें बड़े गुरु तथा अपने सम्बन्धियोंको इकट्ठा करके स्त्रीका पिता और भाई उस स्त्रीको नियोग करावै, अर्थात् दूसरे पुरुषसे गर्भ धारण करावै, और जो उन्मत्त तथा बशमें न हो, वा रोगी हो, रिस्तेमें बड़ी तथा सोलह वर्षसे अधिक अवस्थाकी न हो उसको नियोग कराना उचित नहीं, और देवर आदि भी रोगी न हो, प्राजापत्य मुहूर्त्तमें नियोग करावै और पतिके समानही वह स्त्री उसकी सेवा करै, हंसना, कठोर वचन, कठोर दण्ड इनको न करै, जो पहला पति धन छोडगया है उससे भोजन वस्त्र और लेपन इनको करै, और जिस स्त्रीका नियोग न हुआ हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह उत्पन्न करनेवालेका होता है, यह शास्त्रके जाननेवालोंने कहा है; यदि नियोग करनेवाली स्त्रीको धनका लोभ हो ता नियोग नहीं है और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि वह प्रायश्चित्त करै ।

कुमार्यृतुमती त्रिवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षभ्यः पतिं विदेत्तुल्यम् ॥  
अथाप्युदाहरंति ॥ पितुः प्रदानात्तु यदा हि पूर्वं कन्या वयो यैः समतीत्य दीयते ॥ सा हंति दातारमपीक्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणे च ॥ प्रयच्छे-  
न्नसिकां कन्यामृतुकालभयात्पिता ॥ ऋतुमत्यां हि तिष्ठत्यां दोषः पितरमृच्छ-  
ति ॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशंति तुल्यैःसकामामभियाच्यमाना ॥ भ्रूणानि  
तावंति हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

कुमारी अवस्थामे रजस्वला होनेपर कुमारी कन्या तीन वर्षतक अपेक्षा करै, फिर स्वयं अपने तुल्य स्वामीकी खोज आप वरले, इस विषयमें यह भी कहा है कि यदि पिताके दान करनेसे प्रथमही ऋतुकाल होजाय और पीछे वह कन्या विवाही जाय तौ वह कन्या दृष्टि मात्रसेही दाताको हतदी है, पिता ऋतुकालके भयसे शीघ्रही कन्याका विवाह कर देते हैं, जो कन्या कुमारी अवस्थामें ऋतुमती होती है तौ उसका पिता पापका भागी है, अनुरूप वरकी इच्छा करनेवाली और जिस कन्याकी अन्य पुरुष अभिलाषा करते हो और उस अवस्थामें यदि कन्याका विवाह न कियाजाय, तौ वह कन्या जितनीवार ऋतुमती होगी उतनीही बार पिता माताको भ्रूणहत्याका पाप लगता है यह धर्म कहागया,

अद्भिर्वाचा च दत्तानां म्रियेताथो वरो यदि ॥ न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी  
पितुरेव सा ॥ यावच्चेदाहता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिव-  
द्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ पाणिग्रहे मृते वाला केवलं मंत्रसंस्कृता ॥ सा  
चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ॥

केवल जलके छोटें देने अथवा वचनमात्रसेही कन्यादान होजाताहै, वाग्दान होनेपर वरकी मृत्यु होजाय तौ यह कुमारी कन्या पिताकीही होगी, कारण कि मंत्रोंसे विवाह तौ हुआही

\* यह विषय कलियुगातिरिक्त है कारण कि कलियुगमें पुरुष विशेषकर विषयासक्त होते हैं "अक्षता गोपशुचैव श्राद्धे मार्ग तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पच विवर्जयेत्" देवरादिसे नियोग करना कलियुगमें निषेध है ।

नहीं है; इसने हरीहुइ कन्याका मंत्रसे संस्कार न हुआ हो तो वह कन्या विधिपूर्वक इसरेको वे देनी, उचित है, कारण कि वह कन्याकेही समान है, जो पतिके मरवाने पर केवल मंत्रोंसे संस्कारकी हुइ बाह्यक कन्या अमृतयोनि अर्थात् जिसे अन्यपुरुषका संबंध न हुआ हो वह पुन विवाहके योग्य है,

प्रोपितपत्नी पशवपा प्रवसेद्यथकामा यथा प्रेतस्य एवं च वर्तितव्य स्यात् । एष पशु ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्यां प्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाताद्दे शूद्रा प्रजाता । अत ऊर्ध्व समानोदकपिंडजन्मविगोप्राणां पूर्वं पूर्वो गरीयान् । न स्त्रलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ।

जिसका पति परदेशको गयाहो वह पांच वर्षतक बैठीरहै, इसके उपरांत पतिके निकट चली जाय, यदि धर्म और धनके छेदसे परदेशकी इच्छा न करे तो मरनेकी स्त्रीके समान वर्थाव करे; इसीप्रकार ब्राह्मणकी सत्ता पांच वर्षतक, क्षत्रियाकी चारवर्षतक, वैश्याकी तीन वर्षतक और शूद्राकी दो वर्षतक प्रदीक्षा करे पीछे पर पतिपर चलीजाय, भागे समानोदक गोत्र, सपिंड इनमें पहचान भेद है और कुलीमके विद्यमान होतेहुए पर पुरुषका सग न करे.

यस्य पूर्वेषां पण्णां न कश्चिद्वायाद् स्यात् सर्पिंढां पुत्रस्यानीया वा तस्य धनं विभजेरंस्तेषामल्लभे आचार्यान्तेषासिनी हरेयातां तयोरल्लभे राजा हरेत् । न तु ब्राह्मणस्य राजा हरेद्ब्रह्मस्व तु विप घोरम् । न विपं विपमित्याहुर्ब्रह्मस्व विपमुच्यते ॥ विपमेकाकिन हति ब्रह्मस्व पुत्रपौत्रकम् इति ॥ त्रिविद्यसाधुभ्यं समपच्येदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशाऽध्यायः ॥ १७ ॥

जिस पुरुषके पहले वायके भागिषोंमेंसे यदि कोईभी अंशका भागी न हो तो सर्पिंड वा पुत्रके स्वामी उसके धनको परस्परमें बाँटले, और यदि वहभी न होय तो आचार्य और शिष्य उसके धनके अधिकारी हैं, और यदि वहभी न होय तो उस धनको राजा छे छे, और ब्राह्मणके धनको राजाके छेनेका अधिकार नहीं, कारण कि ब्राह्मणका धन घोर विप है, कारण कि वह कहाँ है कि विप विप नहीं है ब्राह्मणके धनको विप कहा है विप तो केवल एक कोही मारताहै, और ब्राह्मणका धन पुत्र पौत्रोंको मारनेवाला है इस कारण राजाको उचित है कि ब्राह्मणके धनको राजा तीनों विद्याओंके जाननेवालोंको देदे ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ मायाटीक्ष्ण्यौ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

### अष्टादशोऽध्याय १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामु पन्नघांढानो भवतीत्याहुः । राजन्यायां वैश्यायामन्याय साया । वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः । राजन्यायां पुकसः । राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नं सुतोभवतीत्याहुः ॥

शूद्रेसे जा ब्राह्मणमें उत्पन्नहो वह पांडाव होताहै, ऐसा कहागयाहै, क्षत्रिया और वैश्योंमें जो शूद्रके औरससे उत्पन्नहुआ पुत्र अत्याचसायी होताहै और ब्राह्मणमें या वैश्यसे पुत्र उत्पन्न

हुआ है वह रोमक कहाता है, और क्षत्रिया स्त्रीमें जो वैश्यके औरससे पुत्र उत्पन्न हुआ है उसे पुत्रकस पुत्र कहते हैं, और क्षत्रियके औरससे जो ब्राह्मणोंमें उत्पन्न हुआ है वह पुत्र सूत कहाता है,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः ॥ गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानियुरिति । एकांतरद्व्यंतरव्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरवच्छिन्ना अंबघ्ना निषादा भवन्ति । शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृताख्या एतच्छावं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

इसमें यह भी वचन कहे गये हैं कि इसभावि गुप्तभावसे उत्पन्न होकर नीचजाति भी समान गुणवाली होजाती है इसकारण गुणहीन भ्रष्टाचार और हीनकर्मोंसे इनकी पहचान करै एक, दो, वा तीन वर्णके व्यवधानसे जो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंसे उत्पन्न हो वह क्रमानुसार अष्ट निषाद और भील होते हैं, और शूद्रोंमें उत्पन्न हुआ पारशव होता है, वह जीता हुआ ही शव होता है, यह शास्त्रमें विदित है, शव यह मृतकका नाम है और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि शूद्र ही श्मशान है, इसकारण शूद्रके समीप कदापि न पड़े,

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥ श्मशानभेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पापचारिणः ॥ तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं कदाचन ॥ न शूद्राय मति दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

यहापर यम ऋषिके कहे हुए श्लोकोंको कहते हैं, कि पापकरनेवाले शूद्र ही प्रत्यक्ष श्मशानकी समान हैं, इसी कारणसे शूद्रके निकट पढ़नेका निषेध है और शूद्रको ज्ञान, उच्छिष्ट, तथा साकल्य न दे, और धर्मोपदेश तथा व्रतका उपदेश भी शूद्रको देना उचित नहीं ॥

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥ सोऽसंवृतं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ॥ इति ।

जो मनुष्य शूद्रको धर्म और व्रतका उपदेश करता है वह पुरुष शूद्रके साथ घोरनरकमें जाता है; व्रणद्वारे कृमिर्यस्य संभवेत् कदाचन ॥ प्राजापत्येन शुद्धयेत् हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति ।

जिस पुरुषके घावमें कदाचित् कीड़े होजायें तो प्राजापत्य व्रतकर सुवर्ण गौ और वस्त्र इनकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होता है,

नात्रिचित्परामुपेयात् कृष्णवर्णायाः सरमाया इव न धर्माय न धर्मयेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य अन्यस्त्रीका संग न करै, कारण कि कालेवर्ण ( शूद्र ) की स्त्री भोगके लिये ही है धर्मके लिये नहीं है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥



## एकोनविंशोऽध्याय १९

धर्मे राज्ञः पालन भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः । भयकारणं ह्यपालनं च  
एतत् ॥ सूत्रमाहुर्विद्वंसस्तस्माद्गार्हस्थ्यनिपतिकेषु पुरोहिते दद्याद्विजातये  
ब्राह्मणं पुरोहितो राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसामर्प्याश्च ॥

प्रजाकी पालना करना ही राजाका धर्म है, कारण कि, पालनाका न करना यही भयका  
कारण होजाताहै इस्से यही जीवनपर्यन्त करने योग्य है, इसी विषयमें विद्वानोंने सूत्र कहाहै,  
इस कारण गृहस्थके भावश्यक कार्यमें पुरोहितको पालनका भार सौंपदे, कारण कि यह  
शास्त्रसे विहित हुआहै कि राजाका पुरोहित ब्राह्मण देसकी पालना करता है अपालन और  
सामर्प्यक समावेशे राजाको भय होजाहै;

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् सर्वान् वैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान् स्वध-  
र्मे स्थापयेत्सर्वधर्ममरेषु दृढं तु देशकालधर्माधर्मव्योविद्यास्थानविशपैर्दिक्षेत्  
आगमाहृष्टाभावात् पुष्पफलोपगान्यदेयानि हिंस्यात् कर्षणकरणार्थं चोप-  
हृत्या । गार्हस्थ्यं गां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् । अधिष्ठानासौ नीहारसा  
र्थानामस्मात्तन्मूल्यमाश्रमैहारिकं स्यान्महामहस्पं स्यात् । समानयेद्व्याह-  
नीयद्विगुणकारिणी स्यात् । प्रत्येकं प्रयास्य पुमान् शतं वाराह्यं वा तदेतद्  
प्यर्थां स्त्रियं स्युः काराणी मानाधारमध्यमं पादः कार्पापणस्य । निरुक्तो  
न्तरो मानाकं भोत्रियो राजपुमानय प्रमजितघालपृद्धतरुप्रदाता प्रागा  
मिकां कुमार्यो मृतापत्याश्च वाह्यम्पामुत्तरं शतगुणं दद्यात्तदीकक्षधनशैलो  
पमांगा निष्करां स्युस्तदुपजीविनो वा दस्युः । प्रतिमासमुद्राहकैस्त्वागमये  
द्राजनि च प्रेते दद्यात् । प्रासगिकं तेन मातृपृत्तिर्व्याख्याता । राजमहिष्या  
पिनृम्यामातृलाक्षजापितृम्यान् राजा विभृयात्तद्भ्रामित्वादशस्य स्युस्तद्वंशुष्वा  
म्याश्च राजपत्न्यो प्रासाख्यादनं लभेरन् अनिच्छन्तो वा प्रव्रजेरन् द्वीवोन्मत्ता  
श्च वापि ॥

देश, जाति, कुल इनके सब धर्मोंको राजा जानकर चारों वर्णोंको अपने २ धर्ममें स्थितकरे  
और सब चारोंवर्णों अपनेमें उत्तर होजायें तब देश, काल, समय धर्म, अवस्था, विद्या, स्थान  
इनकी विशेषताके अनुसार दृढ रहे साथमें कहा नहीं इसवात्से फलवाळे पृथकोंको काटना  
बहित नहीं यदि लेती करनी हो तो काटके गृहस्थकी सामग्री और भियमोंके मान तथा  
तत्पकी रक्षा राजाको करनी बहित है और नगरीमेंसे अपने करके मन्वमें भ्रम इत्यादिको  
न ले परन्तु धन लेके, और देवस्नान, स्मशान, तथा मार्ग इनका कर राजाको लेना बहित नहीं  
मुद्रकी पात्राके समय दस वाहक बाहिरी सना हुनी लेजानी बहित है और सैन्य २ में प्याह  
भी हों कमसे कम सौ गज घोषामोंसे युद्धकरावे और जो घोषा सूतक रोगवेई उनकी कियों-  
को राजा जाने के जिसे भोजन है, और अगरीका कर भाठ भुसका कर पाँच और अन्नका  
कर चौथाई कार्पापण होजाये यदि कुछ सूख गयाहो, तो करका लेना बहित नहीं, देवपाठी,

राजाका पुरुष, संन्यासी, बालक, वृद्ध, विद्यार्थी, दाता, विधवा स्त्री और सेवकोंकी स्त्री इनसे राजाको कर लेना उचित नहीं, यदि कोई भुजाओके बलसे नदीको पार हो तौ उससे सौ गुना कर लेनेका दंड दे, नदीके किनारे, वन दाह पर्वतोंके निवासियोंको निष्कर कहते है अथवा जो उन नदी इत्यादिसे जीविका निर्वाह करै वह राजाको कर दे या न दे, और जो अपने शरीरसे शिल्पविद्याका कार्य करते हैं उनसे प्रत्येक महीनेमें एक दिन काम करावे जिस राजाके संतान न हो और उसकी मृत्यु होजाय तौ राजाके करको राजाके श्राद्धमें लगा दे, इसकारण राजामें माताके समान वर्ताव कहा है, अर्थात् जिसभांति माताके श्राद्धमें पुत्र देताहै उसी भांति राजाके श्राद्धमें दे, और जिस रानीको राज्य मिलाहो, उसके चाचा, मामा, तथा बंधुओंका पालन राजा करै, राजाको स्त्रियोंकोभी भोजन वस्त्र मिलना उचित है, जिस राजाकी रानीकी भोजन वस्त्रकी इच्छा नहो वह जहां इच्छा हो वहां चलीजाय, नपुंसक और उन्मत्तोंका पालन राजा करै, कारण कि उनका धन राजाकोही मिलताहै,

मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥ न रिक्तकार्पापणमस्ति शुल्कं न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न धर्मे ॥ न भैक्षवृत्तौ न हुतावशेषे न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे ॥ इति ।

शुल्कके विषयमें इस स्थानपर मनुके श्लोक कहतेहै, व्यापारियोंको दूकानपरसे राजा करले, और शिल्प, विद्या, बालक, दूत, भिक्षासे मिला, चोरीसे वचा, संन्यासी, यज्ञ इन स्थानोंमें राजाको करलेना उचित नहीं;

स्तेनाभिश्चस्तदुष्टशस्त्रधारिसहोद्वरणसंपन्नव्यपविष्टेष्वेकेषां दंडोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदंडच्यदंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं वा ॥

यदि चोर चोरीका धन राजाको देदे तौ दूषित नहीं है, यदि शस्त्रधारी, अपराधी और जिसके शरीरमें घाव होजाय और वह राजाके पास चलाजाय तो वह अपराधी नहीं है, यदि राजा दंड देने योग्यको बिना दंडदियेही छोडदे तौ एक रात्रितक उपवास करै और पुरोहितको तीन रात्रितक उपवास करना उचित है, और दण्डके अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहितको कृच्छ्र करना उचित है,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अत्रादे भ्रूणहा मार्षि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥ राजभिर्धृतदंडास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ॥ एनो राजानमृच्छत्यप्युत्सृजंतं सकिल्बिषम् ॥ तं चेन्न वातयेद्राजा राजधर्मेण दुष्यति ॥ इति ।

यहां यह भी बचनहै, कि भ्रूणहत्याकरनेवाला अन्नके भोक्ताको, व्यभिचारिणी स्त्री पति को शिष्य और याज्य गुरुको और चोर राजाको अपना पाप देतेहै, यह पापकरनेवाले राजा के दंडदेनेसे शुद्ध होते हैं, और वह शुद्धहोकर स्वर्गमें इस भांति जातेहैं जिसभांति पुण्यात्मा, पापियोंके छोडनेसे पाप राजाको लगताहै, यदि राजा पापीका वध न करै तो राजधर्म दूषित होता है,

राज्ञामन्येषु कार्येषु सद्यः शौचं विधीयते ॥ तथा तान्यपि नित्यानि काल एवाप्रकारणम् ॥ इति ॥ यमगीतं च श्लोकमुदाहरन्ति ॥ नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै धातिनां न च मत्रिणाम् ॥ पेंद्रस्यानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा इति ॥

इति श्रीबशिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

रामा हिंसाके कर्मोंमें शीघ्रही मुद्र होजाताहै, जसीप्रकार सम्पूर्ण कर्मोंमें राजाकी मुद्रि है, कारण कि इसमें कारण समयाही है यहाँपर यमश्रुतिके कहेहुए श्लोकोंको वजन करतेहैं, राजा, प्रसवान् और मन्त्रके ज्ञाता इनको शेष नहीं लगता, कारण कि वह सब इन्द्रके स्वाममें ( अर्थात् राजगद्दी और धर्म गद्दी यह इन्द्रका स्थानहोताहै इस वास्ते ) वे सर्वदा प्रथम रूपसे विराजमान हैं ॥

इति श्रीबशिष्ठस्मृतौ मायादीक्यामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

### विंशोऽध्याय २०

अनभिसधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे सधिकृतेऽप्येके । गुरुतामवतां शास्ता राजा शास्ता बुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैष्वतो यम इति । तत्र च सूर्याभ्युदयतः सप्तहस्तिष्ठेत्सावित्री च जपेदेव सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत् ॥

अज्ञानसे किये हुए पापका प्रायश्चित्त है और जानकर किये हुए पापका प्रायश्चित्त भी कोई २ करते हैं, गुरु ज्ञानियोंका शासनकर्ता है, राजा बुरासामर्थीका शासन करनेवाला है, इस लोकमें जो गुणमावसे पाप करतेहैं, इनका शासन करनेवाला यमराज है, प्रायश्चित्तके समयमें सूर्योदयसे छेकर सारे दिनतक लडाहुआ गायत्रीका जप करताहै, और सूर्यास्त होनेपर सारी रात्रि बैठ रहै।

कुन्ती श्यावर्तस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्निर्विशेषः । अयं दिधिपुपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेषतां वैशोपयच्छेद्विधिपुपतिः कृच्छ्रातिः कृच्छ्रौ चरित्वा निर्विशेषं चरणमहरहस्तदक्ष्याम् । ब्रह्मघ्नं कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपनीतो वेदमाचार्य्योत् । गुरुतत्पगं सशृपणं शिश्नमुत्कृत्वांजलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयाग्निष्कालको वा पृतास्तस्तां सुमिं परिष्वजेन्मरणान्मुक्तो भवतीति विज्ञायते । आचार्य्यपुत्रक्षिप्यमायांसु श्वेषं योनिषु च गुपी सखीं गुरुसखीं च पतितो च गत्वा कृच्छ्राभ्यं श्वरेत् एतदेव खांडालपतितान्नभोजनेषु ततः पुनरुपनयनं वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥

बिगड़े मरुवाला तथा जिसके काळे दाँत हों वह बारा रात्रितक कृच्छ्र करताहै, और पतिविधि बारा रात्रितक कृच्छ्र करै, इसके पीछे दूसरी स्त्रीके साथ बिबाह करे और

१ करवेला और पतिविधिके कारण यह है कि बड़े भारिक अग्निद्विष्ट रहै जेय मार बिबाह करे तो वह पतिविधि और बरामारं पतिविधि करताहै ।

छोटे भाईकी स्त्री जिसका विवाह अपने विवाहसे प्रथम हुआहै उस स्त्रीको ग्रहण न करै, और परिवर्ति छोटाभाई कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करके उस स्त्रीको बड़े भाईकी अनुमतिसे फिर ग्रहण करले, और अग्नेदिधिपुका पति वारह रात्रितक कृच्छ्र करके अपना दूसरा विवाह करले, और पहली स्त्रीको ग्रहण न करै और दिधिपुके पतिको उस स्त्रीके अर्पणकर फिर उसे अंगीकार करै, और शूर वीरके हत्यारेका प्रायश्चित्त अगाडी कहेंगे, और वेदका त्यागकरनेवाला वारह रात्रितक कृच्छ्र करके फिर आचार्यसे वेद पढै, और गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला अण्डकोशो सहित अपनी लिंग इन्द्रियको काटकर हाथकी अजुलीके ऊपर उसे रखकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरके चलाजाय; और जब न चलाजाय तो उसी स्थानपर मरण समयतक स्थित रहै, और जो जबभी मृत्यु न हो तो तपीहुई लोहेकी सलाका का स्पर्श करै, वह मृत्युसेही पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे विदितहै, आचार्य, पुत्र और शिष्य इनकी स्त्रियोंमें और अपनी जातिकी स्त्रियोंमें भी गमन करनेसे यही प्रायश्चित्त है, गर्भवती, मित्रकी स्त्री, वा गुरुके मित्रकी स्त्री, हीनजातिकी स्त्री और पतितके साथ गमन करनेवाला तीन महीनेतक कृच्छ्र करै, और जो मनुष्य चांडाल तथा पतित इनके यहाका भोजन करता है उसके लियेभी यही प्रायश्चित्त है और वह मनुष्य अपना पुनर्वार यज्ञोपवीत करै, परन्तु मुंडन न करावै,

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ वपनं भेखला दंडो भैक्षचर्यव्रतानि च । निव-  
र्त्तते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ इति ॥

इस विषयसे मनुका श्लोक कहते हैं कि, मुंडन, भेखला, दंड, भिक्षा, व्रत यह द्विजातियों के दुवारा संस्कारमें नहींहोते अर्थात् इनका निषेध है,

सर्वमद्यपाने क्लीबव्यवहारेषु विण्मूत्ररेतोऽभ्यवहारेषु चैवम् ।

जो जानकर आटेसे बनी या गुड तथा मधुसे बनीहुई सवप्रकारकी मदिराको पीताहै, और जो छीवोंके व्यवहार करता है, वह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करै और पुनर्वार संस्कार करै, विष्ठा, मूत्र, वीर्य इनके खानेमेंभी यही प्रायश्चित्त करै;

मद्यभांडे स्थिता अपो यदि कश्चिद्विजोऽर्थवत् ॥ पद्मोदुंबरविल्वपलाशानामु-  
दकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । अभ्यासे सुराया अग्निवर्णा तां द्वि-  
जः पिबेत् ।

यदि कोई द्विज मदिराके पात्रमें रक्खे हुए जलको पीले तो पिलखन, गूलर, बेल और ढाकको औटाकर इनके जलको तीन रात्रितक पिये तब वह शुद्ध होताहै; और जो मनुष्य वारंवार मदिराको पीताहै वह अग्निके समान वर्णवाली तप्तमदिराका पान करै, तब उसकी शुद्धि शरीरपात होनेसे होती है अर्थात् वह मरकर शुद्ध होता है,

भ्रूणहनं च वक्ष्यामः । ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं च गर्भम् । अवि-  
ज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवन्ति तस्मात् पुंस्कृत्य जुहुयात् । लोमानि मृत्यो-  
र्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति प्रथमां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं  
वासय इति द्वितीयं लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयां

स्वच मृत्योर्जुहोमि स्वचा मृत्यु वासय इति चतुर्थी मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसै-  
र्मृत्युं वासय इति पचर्मा भेदनं मृत्योर्जुहोमि भेदसा मृत्युं वासय इति पष्टीम-  
स्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमी मज्जान मृत्योर्जुहो-  
मि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इति अष्टमीम् । राजार्थं ब्राह्मणार्थं वा प्रामेऽभिमुख  
मात्मानं घातयेत् । विरजितो वापराय पूतो भवतीति विज्ञायते । द्विरुक्त  
कृतं कनीयो भवतीति ।

ब्राह्मणको और जिस गर्मका ज्ञान न हो उस गमके मारनेसे मनुष्यको भूमहत्याका पाप  
घोटा है कारण कि बिना जाने गर्म पुत्र्य होते हैं इसकारण पुरुष मानकर इन मंत्रोंसे  
हवन करे 'छोमोंको मृत्युके निमित्त होमवाहुं और छोमोंसे मृत्युको हन करवाहुं' यह पढ़ी  
'स्वचाको मृत्युके निमित्त होमवाहुं और स्वचासे मृत्युको हन करवाहुं' यह दूसरी 'दभिरको  
मृत्युके निमित्त होमवाहुं, और छोदिवसे मृत्युको हन करवाहुं' यह तीसरी 'मंसोंको मृत्युके  
निमित्त होमवाहुं, और मांसोंसे मृत्युको हन करवाहुं' यह चौथी 'स्नायुको मृत्युके हिये  
होमवाहुं, और स्नायुसे मृत्युको हन करवाहुं' यह पाँचवीं 'मेवाको मृत्युके निमित्त होमवाहुं,  
और मेवासे मृत्युको हन करवाहुं' यह छठी 'अस्थियोंको मृत्युके हिये होमवाहुं, और  
अस्थियोंसे मृत्युको हन करवाहुं' यह सातवीं 'मज्जाको मृत्युके निमित्त होमवाहुं और मज्जाओंसे  
मृत्युको हन करवाहुं' यह आठवीं आहुति इसमंवि दे राजा वा ब्राह्मणके निमित्त संवाममें  
अपनेको मरवा दे पूर्वोक्त प्रकारसे जब उसकी हीनवार पराअप होजाय तब वह मृत्यु हांवाहै  
यह शास्त्रमें विहित है, यदि दूसरेको अपने पापको कहे तो पापीका पाप कनित्त होजाता है,  
तदप्यदाहरन्ति ॥ पतित पतितेत्युक्त्वा चोर चोरेति वा पुनः ॥ घचसा हृत्पदोप-  
स्यान्न मिथ्यादीपतां व्रजेत् ॥ इति ।

जयवा चोरको चोर कहते और पतितको यदि पतित कहते तो उसमें समानही दोष है  
इसमें मिथ्या दोष नहीं होसकता

एव राजन्य हत्वाष्टी वर्षाणि चरेत् । पद्भ्यश्च त्रीणि शूद्र ब्राह्मणौ चात्रेयी  
हत्वा सपनगतौ च राजन्यवैश्यौ च । आत्रेयीं वक्ष्यामी रमस्वला मृत्युघातामा-  
त्रेयीमाहुः । अत्रेत्येवामपत्य भवतीति चात्रेयी । राजन्यवैश्यायां वैश्यवैश्या  
यां शूद्र हत्वा सवत्सर ब्राह्मणसुवर्णहरणात् प्रकीर्ष्यं केशान् राजानमभिषा  
वेत् स्तेनोऽस्मि मो शास्त्र भवानिति तस्मै राजीवुवर क्षत्र वधायेनात्मान  
प्रमापयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते । निष्कालको वा घृताको गोमया  
मिना पादप्रभृत्यात्मानमपिदाहयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

अत्रियको मारनेवाला आठ वर्षतक कृच्छ्रकरे, वैश्यका मारनेवाला छे वर्षतक और शूद्रको  
मारनेवाला तीनवर्ष तक कृच्छ्र करे, और वैश्य तथा आत्रेयी और पक्षमें स्थित क्षत्री और  
वैश्यको मारनेवाला तीन वर्षतक कृच्छ्र करे, आत्रेयीका कहते हैं कि जिस रमस्वला  
क्षत्री मृत्युघात कियाहो उसीको आत्रेयी कहते हैं, यह क्षत्रियोंके कहते आत्रेयी परका यह  
वर्ष है कि, जिसमें गमनकरनेमें संवाम उत्पन्नहो, आत्रेयीके अतिरिक्त ब्राह्मणीकी द्विसांसे

क्षत्रीकी हिंसामें और क्षत्रियाकी हिंसामें वैश्यकी हिंसाका और वैश्याकी हिंसामें शूद्रकी हिंसाका प्रायश्चित्त करके शूद्रको मारनेवाला एक वर्षतक कृच्छ्र करै, ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला अपने केशोंको खोलकर राजाके सन्मुख दौडकर चलाजाय और शीघ्रतासे जाकर यह कहै “कि हे राजन् ! मैं चोर हूं तुम सुझे दंड दो” तब राजाको उसे गूलरका शाख देना उचित है, उससे वह अपने शरीरको मारे तब वह मरनेसे शुद्ध होताहै यह शाख से जाना गयाहै, यदि वह न मरै तौ अपने शरीर पर घीको मलकर उपलोंकी अग्निसे परोतक अपने शरीरको जला दे, उसकी शुद्धि मरनेसेही होतीहै,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ पुरा कालात्प्रमीतानामानाकविधिकर्मणाम् ॥ पुनरापन्न देहानामंगंभवति तच्छृणु ॥ स्तेनः कुनखी भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा ॥ सुरापः श्यावदंतस्तु दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ इति । पतितैः संप्रयोगे च ब्राह्मेण वा यौनेन वा तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदु- दीची दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

इस विषयमें किसीर का यहभी वचन है कि, जिन्होंने स्वर्गकी विधिके कर्म नहीं किये हैं, और जो समयसे प्रथमही मरगयेहैं, फिर जब उनका जन्म होताहै तब उनके शरीरपर यह चिह्न होतेहैं उनका वर्णन करतेहैं श्रवणकरो, चोरी करनेवालेके धुरे नख होतेहैं, ब्रह्महत्या करनेवाला श्वेतकुष्ठी होताहै, मदिरा पीनेवालेके दांत काले होतेहैं, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवालेका चमडा चुरा होताहै, पतितोंके साथ विद्या वा योनिका सम्बन्ध करनेसे जो उनसे धन आदि मिलै उसे त्याग दे, और उनके साथ फिर निवास न करै, फिर वह उत्तर दिशामें जाय भोजनको त्यागकर संहिताको पढतारहै तब वह शुद्ध होताहै, यह शाखसे जाना गयाहै,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ शरीरपातनाञ्चैव तपसाध्ययनेन च ॥ मुच्यते पापकृत्पा- पादानाञ्चापि प्रमुच्यते ॥ इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे वर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इसमें यह वचनभी कहाहै, कि शरीरके गिराने, तपस्या करने और पढनेसे पाप करनेवाला मुक्त होजाता है और दान देनेसे भी पापसे छूटजाता है यह शाखसे विदित हुआ है ।

इति वासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकाया विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

### एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्द्वारणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाम्यज्य नग्नां खरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्धोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाम्यज्य नग्नां गोरथमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रै-

वैद्ययित्वा राजन्यमन्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्यां शिरोषापन कारयित्वा सर्पिषामन्यज्य  
नमो रक्तस्वरमारोप्य महापयमनुव्राजयेत् ॥ एष वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च  
राजन्यावैश्ययोः ।

शूद्र यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो शूद्रको तुष्णोमें छपेटकर अग्निमें डालदे, और  
ब्राह्मणीका शिर मुडाकर उसके सारे शरीरमें पृथ मलकर नंगी कर गभेकी पीठपर बढा  
कर सबके बीचमें पुमावे ऐसा करनेसे वह ब्राह्मणी पवित्र होती है यह शास्त्रसे जाना गया  
है वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो वैश्यको छाल कुशागोंसे छपेटकर अग्निमें डाल  
दे और ब्राह्मणीका मस्तक मुडाकर उसके सारे शरीरमें भी मलकर नंगीकर बैडोंके रथमें  
बैठाकर महामार्गमें निकालदे तब यह पवित्र होती है, यह शास्त्रसे विदित हुआ है यदि क्षत्रिय  
ब्राह्मणीके साथ गमन करे वा क्षत्रिक पत्नीमें छपेटकर क्षत्रीको अग्निमें डाले और ब्राह्मणीका  
शिर मुडाकर उसके समस्त शरीरमें पृथ मल नगीकर गभेपर बढाकर महा मार्गको निकालदे  
इसीमांति वैश्य क्षत्रियाक साथ गमनकरे, और शूद्र क्षत्रिया वा वैश्यामें गमनकरे तो पूर्वोक्त  
प्रायश्चित्त करनेसे उनको शुद्धि होती है ।

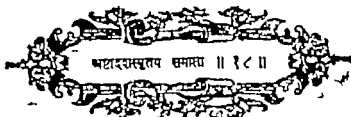
मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्र यावत् क्षीर भुञ्जानाद्यश्याना त्रिरात्रमप्यु निन्न  
गामा साषिभ्यष्टशतेन शिरोभिवा जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीब्रह्मसिद्धे धर्मशास्त्र एकविंशतिविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तये षासिष्टस्मृति ।

जो स्त्री मनस पतिका अवलंबन करे वह तीन रात्रिक औ और वृषको खाकर पूष्पीपर  
क्षयन करे, जङ्गमें घीन रात्रि स्नानकरे, और आठसौ गायत्री वा शिरोमन्त्रोंसे हवन करे  
तब वह पवित्र होती है, ऐसा शास्त्रसे जाना गया है ।

इति श्रीब्रह्मसिद्धे मागादीक्यामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



पुस्तक भिन्ननेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“भिवेदुत्तर स्टीम्-प-शालय-यम्बई”







